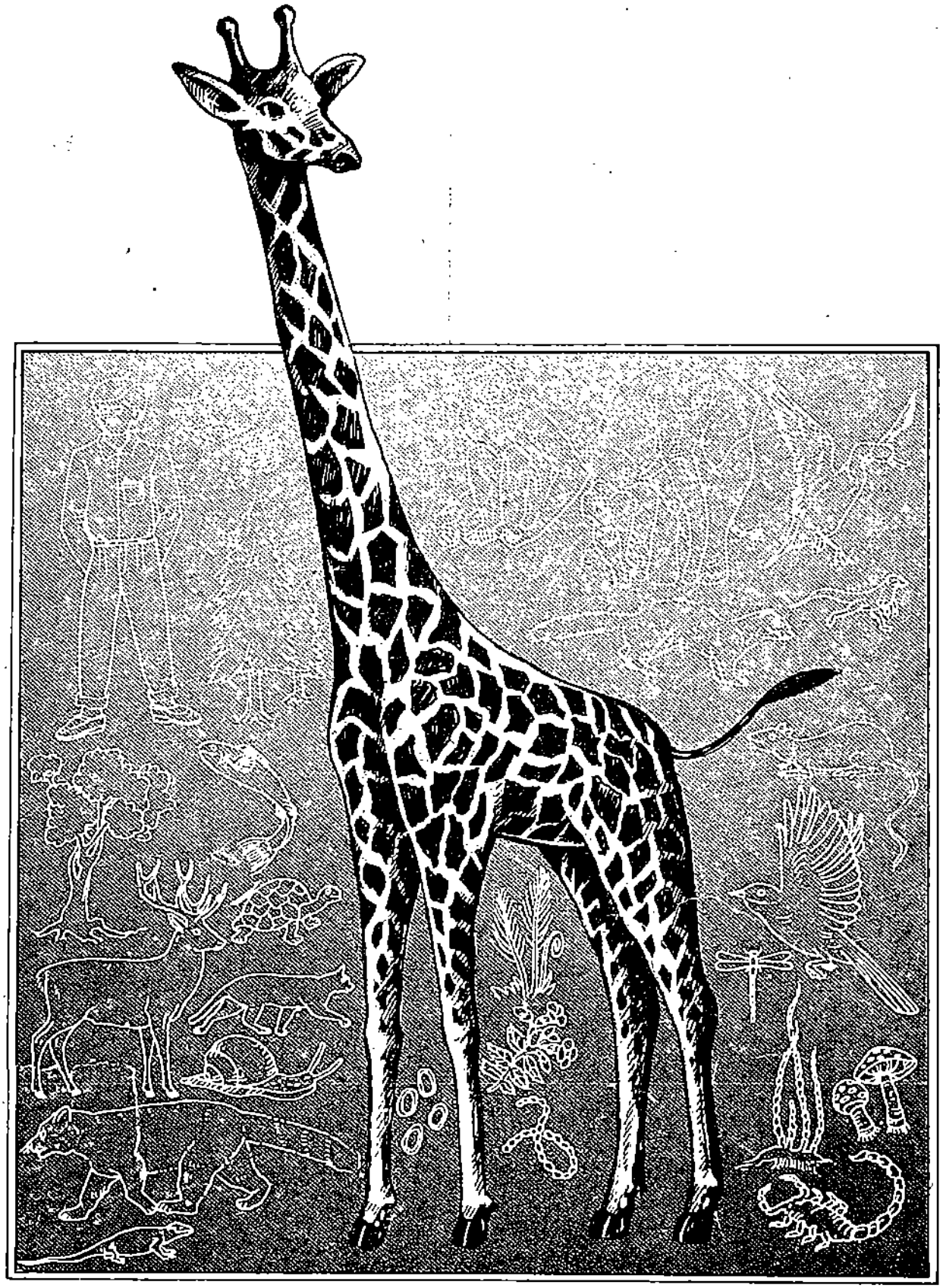

वर्गिकी में साधन और उपनतियां

2

उत्तर प्रदेश
राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय

UGZY/BY-10
वर्गिकी तथा विकास

खंड

1

वर्गिकी का इतिहास एवं संकल्पना

इकाई 1

वर्गिकी संकल्पनाएं एवं उनका विकास 7

इकाई 2

वर्गीकरण की प्रणालियाँ : पादप 24

इकाई 3

वर्गीकरण -प्रणालियां : प्राणी गण 46

इकाई 4

द्विपद-नाम-पद्धति 87

वर्गिकी तथा विकास

वर्गिकी तथा विकास चार क्रेडिट का ऐच्छिक पाठ्यक्रम है। इसमें चार खंड हैं। खंड 1 और 2 वर्गिकी वर्गीकरण विज्ञान से तथा खंड 3 तथा 4 विकास से संबंधित हैं। इन दोनों विषयों को एक ही पाठ्यक्रम में रखने के विशिष्ट कारण हैं। आपको ज्ञात होगा कि जैव विकास की अवधारणाओं की नींव ईसा के जन्म से भी पूर्व ग्रीक दार्शनिकों के समय काल में पड़ चुकी थी। लेकिन 18वीं शताब्दी से प्रारंभ पुनर्जागरण काल के दौरान ही, विशेष रूप से कार्ल लिनियस (Carl Linnaeus; 1707-1778) के प्रयासों से विकासीय जीव विज्ञान अस्तित्व में आया। कार्ल लिनियस को आधुनिक वर्गीकरण विज्ञान का जन्मदाता माना जाता है। लिनियस ने विकासीय विज्ञान के लिए आवश्यक वर्गीकरण प्रणाली दी। इस महत्वपूर्ण योगदान के अलावा, उनका यह मानना भी था कि सभी जातियां या स्पीशीज़ एक ही जीनस या वंश से विकसित हुई हैं और जातियों में विविधता संकरण के कारण आई है। दूसरे शब्दों में, किसी जीनस की जातियां आनुवंशिक रूप से परस्पर जुड़ी हैं। डार्विन के समकालीन और विकास सिद्धांत के प्रबल समर्थक (इसीलिए "डार्विन्स बुलडॉक" कहे जाने वाले टॉमस हेनरी हकसले (1825-1891) ने वर्गीकरण विज्ञान या वर्गिकी के बारे में कहा था, "यह पता चलना सबसे उल्लेखनीय घटना है कि प्राणियों के समस्त विविध रूपों को, एक ही क्रम में, एक-दूसरे के नीचे रखकर वर्गीकृत किया जा सकता है।" वास्तव में, डार्विन ने विभिन्न वर्गों के बीच अलग-अलग स्तर पर आनुवंशिक या वंशगत संबंध महसूस किए थे। उदाहरण के लिए, भले ही कॉर्डेटा या कशेरुक फाइलम के सभी जीवों के बीच जातिवृत्तीय संबंध बहुत दूर का हो लेकिन इन सभी जीवों में एक समान कशेरुकीय या रज्जुकी गुण पाए जाते हैं। एक संवर्ग या क्लास में संबंध और भी गहन स्तर के होते हैं। वर्गीकरण के क्रम में नीचे उतरते जाने पर ये संबंध और गहरे होते जाते हैं और अंततः एक जाति के प्राणी एक ही वंश-परंपरा के होते हैं और उनके लक्षणों में मामूली से अंतर होते हैं। इसी विचार को डार्विन द्वारा दी गयी विकास की परिभाषा—रूपांतरित जातियों का उद्गम में निश्चित स्वरूप दिया गया है। आइए, अब इस पाठ्यक्रम में दिए गए विवरण के विषय में चर्चा करें।

वर्गिकी—विज्ञान के खंडों में आपको जंतुओं और वनस्पतियों के वर्गीकरण, इसके उद्देश्यों और महत्व की जानकारी दी जाएगी। आपको जंतुओं और वनस्पतियों के वर्गीकरण की आवश्यकता और वर्गीकरण की विभिन्न प्रणालियों के बारे में बताया जाएगा। वर्गिकी विज्ञान से संबद्ध वैज्ञानिक शब्दावली के महत्व और द्विपद-नाम-पद्धति की धारणा पर विशेष रूप से चर्चा की जाएगी। वर्गिकी का क्षेत्र अब विज्ञान के अन्य क्षेत्रों तक भी फैल गया है और जंतुओं तथा वनस्पतियों के वर्गीकरण पद्धति के कई क्षेत्र विकसित हुए हैं। जैसे—रासायनिक वर्गीकरण विज्ञान, कोशिकीय वर्गीकरण विज्ञान, संख्यात्मक वर्गीकरण विज्ञान आदि।

पिछले पांच दशकों में विकासीय जीवविज्ञान का महत्व बहुत बढ़ा है। चार्ल्स डार्विन के प्राकृतिक वरण के सिद्धांत में बताया गया कि विकास प्रकृति का साभान्य नियम है। डार्विन ऐसे पहले वैज्ञानिक थे जिन्होंने जीव संख्याओं के संदर्भ में विकास के बारे में सोचा। उन्होंने सुझाव दिया कि अनुकूलन और वंशानुगतता के जरिए विकास को समझाया जा सकता है। विकास के अध्ययन से संबंधित खंडों में प्राकृतिक वरण की प्रक्रिया के माध्यम से अनुकूलन के प्रारंभ पर विशेष महत्व दिया गया है। विज्ञान की एक जीवंत शाखा के रूप में पिछली शताब्दी के दौरान विकासीय जीवविज्ञान का विस्तार हुआ और आनुवंशिकी, जीवांश्मविज्ञान तथा आण्विक जीवविज्ञान जैसे विषयों ने इस शाखा को बड़ा विस्तृत और व्यापक रूप दिया।

पाठ्यक्रम के उद्देश्य

इस पाठ्यक्रम के अध्ययन से आप :

- वर्गीकरण के सिद्धांतों का उद्देश्य और महत्व समझ सकेंगे तथा जंतुओं और वनस्पतियों के वर्गीकरण की विविध प्रणालियों से परिचित हो सकेंगे,

- वर्गीकरण विज्ञान में जीव विज्ञान की अन्य शाखाओं के योगदान के महत्व को समझ सकेंगे और वर्गीकरण विज्ञान की नवीनतम प्रवृत्तियों से परिचित हो सकेंगे,
- यह चर्चा कर सकेंगे कि कैसे जंतु और वनस्पति समूह अपने पर्यावरण से अनुकूलन करते हुए विकसित होते हैं और विकास प्रक्रिया की मूलभूत बातें समझ सकेंगे, तथा
- जाति उद्भवन प्रक्रिया को समझा सकेंगे और मानव जाति के विकास को बेहतर तरीके से जान सकेंगे।

अध्ययन के लिए निर्देश

इस अध्ययन सामग्री का ज्यादा से ज्यादा लाभ उठाने के लिए निम्न बातों पर ध्यान दें :

i) सामग्री को धीरे-धीरे और ध्यान से पढ़ें। चित्रों और तालिकाओं को पर्याप्त समय देकर समझें। इससे आप पाठ्य सामग्री को बेहतर तरीके से समझ सकेंगे।

ii) पढ़ते समय, महत्वपूर्ण बातों को खंडों में ही रेखांकित कर लें। हर पृष्ठ में दिए गए खाली स्थान पर, अथवा जरूरी होने पर कॉपी में महत्वपूर्ण बातें लिखें।

iii) किसी भाग अथवा उपभाग को पढ़ लेने के बाद स्वयं को पूछें—मैंने क्या सीखा? अपनी कॉपी में महत्वपूर्ण बातों की सूची बनाने का प्रयास करें और फिर उसकी पाठ्य सामग्री से तुलना करके यह देखें कि आपसे क्या-क्या बातें छूट गईं।

iv) हर प्रमुख अवधारणा के बाद हमने पाठ्य सामग्री में बोध प्रश्न दिए हैं। हर इकाई के अंत में भी कुछ प्रश्न दिए गए हैं। इन सभी प्रश्नों का उत्तर देने का प्रयास करें। इनमें से किसी भी प्रश्न को छोड़े नहीं क्योंकि ये पाठ्य सामग्री के विषय में आपकी समझ का आकलन करने के लिए तैयार किए गए हैं। अगर आप इनका उत्तर न दे सकें तो पाठ्य-सामग्री फिर पढ़ें।

v) प्रत्येक इकाई के अंत में बोध प्रश्नों तथा अंत में दिए गए प्रश्नों के उत्तर दिए गए हैं। इनका स्वयं उत्तर लिखने से पहले अंत में दिए गए उत्तर नहीं देखें।

vi) अगर पाठ्य-सामग्री में कोई शब्द आपकी समझ में न आए तो शब्दकोश देखें। वैज्ञानिक और तकनीकी शब्दों के लिए हर खंड के अंत में दी गई शब्दावली देखें। अगर जरूरी हो तो किसी वैज्ञानिक शब्दकोश की मदद लें।

vii) विकासीय 'जीवविज्ञान' के कुछ विचार और अवधारणाएं आपको अस्पष्ट लग सकती हैं। इसलिए कुछ इकाइयों, खास तौर से इकाई 11, 12 और 13 को ध्यान से तथा बार-बार पढ़ें ताकि आप इन अवधारणों को पूरी तरह समझ सकें।

viii) विकासीय अवधारणा को समझने के लिए आनुवंशिकता की प्रक्रिया की बुनियादी समझ जरूरी है। विकासीय जीवविज्ञान की बेहतर समझ के लिए आपको हमारे आनुवंशिकी पाठ्यक्रम को भी चुनना चाहिए। अगर आपने यह पाठ्यक्रम नहीं चुना है तो इसकी पाठ्य-सामग्री लेकर उसका अध्ययन करें ताकि आप विभिन्न धारणाओं से परिचित हो सकें।

ix) हमने हर खंड के अंत में आगे अध्ययन के लिए कुछ उपयोगी पुस्तकें सुझाई हैं। ये आपके अध्ययन केंद्र में उपलब्ध हैं। अगर आप विस्तृत अध्ययन करना चाहें तो ये पुस्तकें उपयोगी होंगी।

x) हर खंड के अंत में प्रश्नावली दी गई है। इसे भरें और खंड से निकालकर हमें भेजें। इसका उद्देश्य यह जानना है कि खंड के अध्ययन के दौरान क्या आपको कहीं कोई मुश्किल आई? आपके उत्तरों से हमें पाठ्य-सामग्री में आगे समुचित सुधार करने में सहायता मिलेगी।

खण्ड 1 वर्गिकी का इतिहास एवं संकल्पना

हममें से हर कोई जन्म से लेकर मृत्यु तक एक वर्गिकीविद होता है। हर कोई अपने दैनिक जीवन में सामने आने वाली एक -एक चीज़ को वर्गीकृत करता, उसे पहचानता, उसे नाम देता तथा उसका वर्णन करता है। इस प्रकार आधुनिक मानव के लिए वर्गिकी जांच-परख का एक सर्वाधिक सुसंगत क्षेत्र है। संसार के तमाम पौधे एवं प्राणियों को उनके संबंधित समूहों में व्यवस्थित करने के लिये विकसित किये गए वैज्ञानिक वर्गीकरण का ही दूसरा नाम वर्गिकी है। वैज्ञानिक वर्गीकरण में लैटिन तथा ग्रीक शब्द इस्तेमाल किए जाते हैं क्योंकि आरम्भिक विद्वानों ने इन्हीं भाषाओं का इस्तेमाल किया था।

वर्गीकरण कुछ खास आधारभूत सिद्धांतों अथवा दिशानिर्देशों पर आधारित होता है, जिसका सारे विश्व में अनुसरण किया जाता है। इस प्रकार कुछ वर्गीकरण–प्रणालियां बनायी जाती हैं। पौधे तथा प्राणी एक दूसरे से भिन्न होते हैं इसलिए उनका वर्णन अलग-अलग किया गया है। इस खण्ड में आप वर्गिकी उसकी संकल्पनाओं तथा उसके सिद्धांतों एवं उनके विकास के संबंध में पढ़ेंगे। आप इसे पढ़ने के दौरान वर्गीकरण के इतिहास तथा विभिन्न प्रकार के वर्गीकरणों से भी परिचित हो सकेंगे।

पहली इकाई में वर्गिकी का इतिहास, वर्गीकीय संकल्पनाओं, सिद्धांतों तथा उद्देश्यों को लिया गया है। आप इस इकाई में वर्गिकी तथा वर्गविज्ञान के बीच अंतर के विषय में जानेंगे। पादप एवं प्राणि वर्गीकरण के इतिहास में भारत में पादप–वर्गीकरण के इतिहास पर विशेष बल दिया गया है।

दूसरे इकाई में पौधे की वर्गीकरण-प्रणाली दी गयी है। यह विवरणात्मक इकाई है तथा इसमें भी वर्गीकरण-प्रणालियां दी गयी हैं।

i)	कृत्रिम प्रणाली	–	लिनियस–प्रणाली
ii)	प्राकृतिक प्रणाली	–	बेंथम तथा हुकर प्रणाली
iii)	जातिवृत्तीय प्रणाली	–	ऐंग्लर तथा प्राण्टल प्रणाली
			हचिंसन प्रणाली
			तख्तज़ान प्रणाली

इनका आधार इनकी रूपरेखा तथा गुणों एवं दोषों का विस्तार से वर्णन किया गया है।

तीसरी इकाई में प्राणि-वर्गीकरण दिया गया है। इसमें विविध प्रकार के वर्गीकरणों अर्थात् दृष्यमान, प्राकृतिक, जातिवृत्तीय, क्रमविकासीय तथा सर्वदिशीय वर्गिकीय लक्षणों, उनका चयन तथा वर्गिकीय पदानुक्रमों का वर्णन किया गया है ताकि आपको पता चल सके कि उन्हें कैसे इस्तेमाल किया जाता है और आप उनका महत्व भी समझ सकें। यह इकाई लम्बी है। व्यापक मान्यता प्राप्त पांच जगतों वाली वर्गीकरण प्रणाली जो यहां दी गयी है, उसमें प्राणि जगत तथा पादप जगत दोनों ही हैं।

इकाई चार में आप द्विपदनाम नामकरण पद्धति के विषय में पढ़ेंगे। पौधों को नाम देना नामकरण कहलाता है जो कि सत्रहवीं शताब्दी तक अपेक्षाकृत अस्तित्व में नहीं आया था। यदि कोई पौध सुपरिचित है तो उसके एक दर्जन या उससे भी ज्यादा सामान्य नाम हो सकते हैं। सामान्य अथवा देसी नाम सार्वत्रिक नहीं होते और उन्हें केवल एक ही भाषा में प्रयोग किया जा सकता है। ये नाम अलग-अलग स्थानों पर अलग-अलग होते हैं। इसी से वैज्ञानिक नामों की आवश्यकता हुई, जो सर्वत्र मान्य हों तथा सारे संसार में प्रयोग किए जायें। पौधे तथा प्राणियों के वैज्ञानिक नाम, ज़ीनस नाम तथा प्रजातीय विशेषण पर आधारित होते हैं। इस दो-शब्दीय स्वरूप अर्थात् **द्विपदनाम नामकरण** ने नाम रखने को अधिक साल बना दिया है तथा यह सर्वत्र, स्वीकारा जाता है।

इस इकाई में आप द्विपदनाम नामकरण के विषय में और अधिक पढ़ेंगे।

उद्देश्य

इस खण्ड को पढ़ने के बाद आप ये सब बातें कर सकेंगे :

- वर्गिकी की परिभाषा दे सकेंगे, तथा इसका एवं अन्य संकल्पनाओं, उनमें पाए जाने वाले अंतरों तथा उनके विकास का वर्णन कर सकेंगे,
- पादप एवं प्राणि वर्गिकी के इतिहास के विषय में अध्ययन कर सकेंगे और वह भी भारत में पादप वर्गीकरण के इतिहास के विशेष संदर्भ के साथ,
- पौधों के कृत्रिम, प्राकृतिक तथा जातिवृत्तीय वर्गीकरण का वर्णन कर सकेंगे तथा उनका महत्व बता सकेंगे,
- विभिन्न प्राणि-वर्गीकरणों का वर्णन क़र सकेंगे तथा उनमें से किसी का भी इस्तेमाल करने के लाभ की व्याख्या कर सकेंगे,
- सामान्यतः स्वीकृत पांच जगतों की वर्गीकरण प्रणाली जिसमें पौधे और प्राणी दोनों ही हैं, वर्णन कर सकेंगे और उसका इस्तेमाल कर सकेंगे, तथा इसके गुण-दोष बता सकेंगे,
- नामकरण के आधारभूत सिद्धांतों का एवं जैविकीय संसार में विशेषकर वर्गिकी में इसके महत्व का वर्णन कर सकेंगे,

इकाई 1 वर्गिकीय संकल्पनाएं एवं उनका विकास

इकाई की रूपरेखा

1.1 प्रस्तावना
उद्देश्य
1.2 वर्गीकरण की आवश्यकता
1.3 वर्गिकी के लक्ष्य, उद्देश्य एवं उनका महत्व
1.4 वर्गिकी तथा वर्गीविज्ञान के सिद्धांत
1.5 पादप-वर्गीकरण का इतिहास
प्राचीन यूनानी एवं रोमवासी गण
विविध औषध ग्रंथ
संक्रमण काल
उत्तर औषध ग्रंथ काल
1.6 प्राणि वर्गिकी का इतिहास
1.7 प्राचीन भारत में पादप वर्गिकी
1.8 सारांश
1.9 अंत में कुछ प्रश्न
1.10 उत्तर

1.1 प्रस्तावना

वर्गीकरण का इतिहास पादप-वर्गिकी का एक दिलचस्प हिस्सा है। भोजन के लिए और फिर बाद में औषधियों के रूप पौधों के इस्तेमाल की खोज, सभ्यता के इतिहास में बहुत शुरू की अवस्था में प्रारंभ हो गयी थी। शुरू के शिकारी संग्रहकर्ता समाज ने ही अंततः पौधों के वर्गीकरण का पथ प्रशस्त किया। पोधों को खाए जाने योग्य, विषैले तथा औषधोपयोगी वर्गों में विभाजित किया गया। इस प्रकार वर्गिकी का जन्म हुआ एवं उसने अपना स्वरूप प्राप्त किया। शुरू-शुरू में बनाए गए वर्ग और समूह व्यावहारिक थे और उनका आधार मुख्यतः आर्थिक उपयोग ही था। वे पूर्णतः आकारिकी पर आधारित नहीं थे बल्कि गंध, स्वाद तथा पोषण के महत्व पर भी आधारित थे। तब से लेकर आज तक वर्गीकरण के विकास ने अनेकानेक परिवर्तनों को देखा है। जैसे-जैसे जानकारी बढ़ती गयी वैसे-वैसे पौधों के विषय में प्राचीन संकल्पनाओं में पूर्णरूपेण परिवर्तन आ गया, तथा आरंभिक खोजों से अधिक आधुनिक रूपांतरण होते गए। पौधों का वर्गीकरण अनेक विस्तृत उत्सुकताएं प्रस्तुत करता है।

पादप-वर्गिकी का इतिहास अति रोचक है तथा मतभेदों से भरपूर भी है। यह आज भी बदलता जा रहा है। पादप वर्णन की योजनाबद्ध कहानी बहुत पहले बॉक, ड् लोबल, ब्रुनफेल्स तथा फुक्स जैसे व्यक्तियों के पुराने काल से शुरू होती है। थियोफ्रास्टस, अरस्तू, डायोस्कोराइडीस तथा प्लाइनी जैसे दर्शन दिग्गजों ने इस विषय में एक अधिक सुयोजित एवं वैज्ञानिक दिशा जोड़ी। वर्गिकी में होने वाली प्रगति कृत्रिम थी तथा इसमें उन सभी ने योगदान दिया जिनकी रुचि आर्थिक महत्व के पौधों के अलग-अलग विषय में थी। पौधों के वर्गीकरण के आरंभिक प्रयास पूर्णतः कृत्रिम लक्षणों पर आधारित थे और वे भी पौधों के केवल बाहरी लक्षणों पर ही आधारित थे। परंतु धीरे-धीरे पौधों के पारिस्थितिकीय अध्ययन तथा पर्यावरण संबंधी सोच-विचार के उपयोग से वर्गिकी के विज्ञान का विकास हुआ। इस इकाई में आप वर्गिकी के इतिहास से परिचित हो सकेंगे तथा आप वर्गिकी के सिद्धांतों को जान सकेंगे तथा प्राचीन भारत में वर्गिकी के विकास पर विशेष प्रकाश डाला जाएगा।

उद्देश्य

इस इकाई का पढ़ने के बाद आप :

- वर्गिकी तथा वर्गविज्ञान की परिभाषा दे सकेंगे तथा इनमें विभेद कर सकेंगे,
- वर्गिकी तथा वर्गविज्ञान के विभिन्न सिद्धांतों का वर्णन कर सकेंगे,
- वर्गिकी के लक्ष्यों, उद्देश्यों तथा उसके महत्व का विवेचन कर सकेंगे, और
- पादप एवं प्राणि वर्गिकी के इतिहास का विशेषकर प्राचीन भारत में वर्गिकी पर बल देते हुए वर्णन कर सकेंगे।

1.2 वर्गिकी की आवश्यकता

सबसे पहले तो यह जानना ज़रूरी है कि आखिर वर्गीकरण है क्या? आइए इसे सरल शब्दों में परिभाषित करें। किसी पौधे को (अथवा पौधों के समूहों को) या प्राणी को (अथवा प्राणियों के समूहों को) एक विशिष्ट योजना अथवा क्रमबद्धता के अनुसार एवं नामकरण व्यवस्था के अनुरूप रखने को वर्गीकरण कहते हैं। प्रत्येक स्पीशीज (species) को एक खास जीनस के सदस्य के रूप में वर्गीकृत किया जाता है और इसी तरह जीनस (genus) आती है फ़ेमिली में, फ़ेमिली (family) आती है आर्डर (order) में, आर्डर आता है क्लास (class) में, आदि-आदि (चित्र 1.1.)

स्पीशीज प्राकृतिक समष्टियों के ऐसे समूहों को कहते हैं जो या तो वास्तव में परस्पर प्रजनन कर रहे हो अथवा ऐसा करने में सक्षम हों और जो ऐसे ही अन्य समूहों से जनन की दृष्टि में पृथक्कृत हों।

जगत	:	प्लांटी, ऐनिमेलिया आदि
फाइलम	:	इकाइनोडर्मेटा, आथ्रोपोडा, मोलस्का, कार्डेटा, आदि
क्लास	:	एवीज, एम्फीबिया, रेप्टीलिया, मैमिलिया, आदि
आर्डर	:	प्राइमेटीज, पेरिसोडेक्टाइला, आर्टियोडेक्टाइला, इन्सेक्टिवोराख् कार्निवोरा, आदि
फेमिली	:	केनिडी, अर्सिडी, मस्टेलिडी, विवेरिडी, फेलिडी, आदि
जीनस	:	पैंथेरा, फेलिस, आदि
स्पीशीज	:	कॉनकलट, कैटस्, आदि

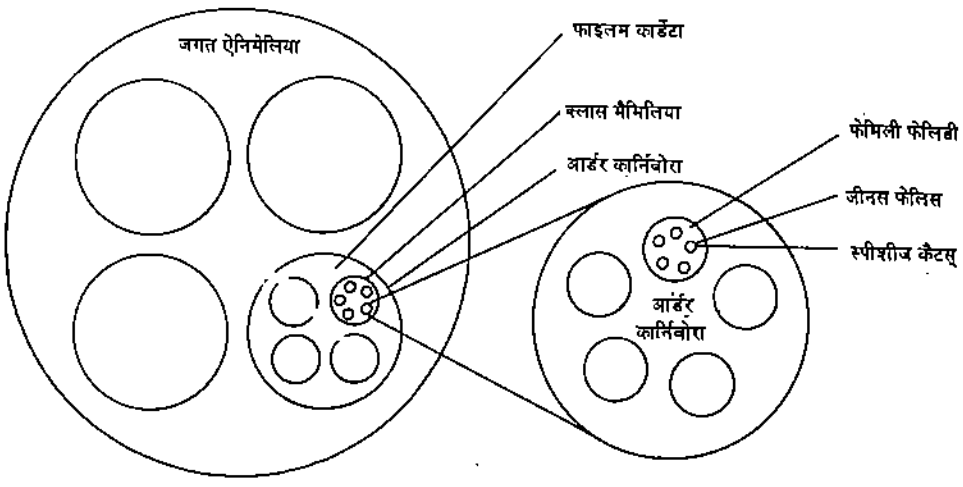

चित्र 1.1. वर्गीकरण की प्रधान श्रेणियां

व्यावहारिक तौर से वर्गीकरण में किसी एक व्यष्टिगत पौधे को कई गौण श्रेणियों में से किसी एक श्रेणी में रखने की अपेक्षा एक पादप वर्ग को किसी चयन व्यवस्था में रखा जाना अधिक होता है। अतः किसी वर्गीकरण व्यवस्था का होना आवश्यक है ताकि पौधों तथा प्राणियों को पहचाना जा सके और उनके विषय में विज्ञान के धरातल पर अन्य व्यक्तियों से संपर्क किया जा सके। वास्तव में वर्गीकरण एक सूचना भंडारण है और साथ ही सूचना की पुनः प्राप्ति व्यवस्था भी, जिसके बिना वैज्ञानिक तौर पर एक दूसरे से संचारण संभव नहीं है। उदाहरण के लिए, किसी पौधे का नाम वह कुंजी है जो उसकी संपूर्ण जैविकी का द्वार

खोल देती है। पारिस्थितिकीविदों, उद्यानकृषकों, जैवरसायनविदों, कृषक वर्ग तथा अन्य लोगों को पौधों की एक संदर्भ प्रणाली उपलब्ध होना अति आवश्यक है जिसे वे अपने अनुसंधानों में प्रयोग करते हैं। मगर पौधों का नाम केवल वैज्ञानिकों के लिए ही नहीं है वरन् इसका उपयोग अन्य विविध रुचियों तथा प्रशिक्षण वाले अन्य व्यक्ति भी करते हैं—यानी व्यक्ति जो विविध रुचियों तथा प्रशिक्षण वाले पौधों के प्राकृतिक इतिहास में रुचि रखते हैं। पौधे का वैज्ञानिक नाम उसकी जीनस तथा स्पीशीज़ की सूचना देता है और उसके आधार पर फ़ेमिली सरलता से निर्धारित की जा सकती है।

अनादि काल से पौधों को कोई न कोई नाम तो दिया ही जाता रहा है। इस प्रकार के सामान्य नाम अलग-अलग व्यक्ति अपनी अलग-अलग स्थानीय भाषाओं में देते रहे हैं। इस प्रकार एक ही पौधे के अनेक नाम हो सकते हैं या फिर अनेक पौधों का अलग-अलग एक ही नाम भी हो सकता है उदाहरण के लिए, *Verbascum* के 140 नाम हैं, *Viola* (पैंजी) के 150से भी अधिक नाम हैं, *Plantago* के लगभग 50 नाम हैं। कुछ सामान्य नाम जैसे कि सेलर (Celar), फाक्सटेल (Foxtail), फ्लेम आफ द फ्रॉरेस्ट (Flame of the forest) ऐसे विविध पौधों के लिए लिये जाते हैं जो एक दूसरे से बहुत भिन्न हैं। इसलिए यह स्पष्ट है कि भ्रांतियों से बचने के लिए कुछ ऐसे सामान्य सिद्धांत बनाने जरूरी थे जिन्हें सर्वत्र स्वीकार किया जा सके। इस प्रकार वनस्पतिक विज्ञानविदों ने धीरे-धीरे सभी ज्ञात पौधों के नाम सुझाए तथा उन्हें एक वैज्ञानिक तरीके से वर्गीकृत किया। वैज्ञानिक नाम तथा वर्गीकरण प्रकाशित किए जाते हैं तथा वे विभिन्न भाषाओं में अपरिवर्तित बने रहते हैं। एवं उन्हें एक ही प्रकार वनस्पतिक साहित्य में सर्वत्र लिखा जाता है।

आइए, एक उदाहरण लेकर देखें कि वर्गीकरण के प्रयोगकर्त्ता को इससे किस प्रकार सहायता मिलती है। उदाहरणतः जब कभी कोई वन कार्यकर्त्ता किसी एक सफेद बलूत *(Quercus alba)* की पहचान करता है तब यह मानना भी युक्तिसंगत होगा कि प्रकृति में सफेद बलूत के अन्य व्यष्टिगत पौधे भी होंगे जिनमें इसी के समान आकारिकीय लक्षण संरचना एवं शरीर क्रिया पायी जाती होगी। यह जान लेना कि पौधा *Quercus alba* है स्वतः इस बात की पूर्वघोषणा करता है कि बहुत सी सूचनाएं जो हमें ज्ञात हैं उस पौधे पर भी लागू होंगी।

इस प्रकार वर्गीकरण के द्वारा हम जीवों के संबंध में अपनी जानकारी को एक सारांश रूप दे सकते हैं, और वर्गिकी का यही सबसे महत्वपूर्ण कार्य है।

1.3 वर्गिकी के लक्ष्य, उद्देश्य तथा उसका महत्व

पौधों और प्राणियों दोनों का ही मानव जीवन पर अत्यंत महत्वपूर्ण तथा अद्वितीय प्रभाव पड़ता है। हमारी अधिकतर आवश्यकताएं पौधों से ही पूरी होती हैं जैसे कि खाद्य-पदार्थ, औषधियां, और पशुओं का चारा प्राप्त करना आदि। इसलिए पौधे चाहे हानिकर हों या लाभकर वे हमारे दैनिक जीवन के साथ निकटतः जुड़े हुए हैं और इसी हेतु पौधों के अध्ययन में एक सुव्यवस्थित एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोण का बनाना आवश्यक है। पौधे लाखों प्रकार के होते हैं जिनमें कुछ हद तक विभिन्नताएं भी हैं और कुछ हद तक समानताएं भी हैं।

लेकिन ऐसा नहीं है कि उनमें से कोई भी सर्वसमान हों। इस प्रकार समानताएं दर्शाने वाले व्यष्टिगत पौधों को स्पीशीज़ नामक बृहत्तर समूहों में रखा जाता है। तथा विभिन्न स्पीशीज़ को जीनस नामक बृहत्तर समूहों में रखा जाता है। पौधों की आधारभूत जानकारी का होना पहली आवश्यकता है और उसी से हमें उनके आकारिकीय विभिन्नताओं के विषय में कल्पना बनती है। दैनिक जीवन में पौधों के विविध उपयोगों के कारण विभिन्न पादप अवयवों के वर्णन के लिए ऐसी मानक शब्दावली के सृजन की आवश्यकता हुई जिसके द्वारा पौधों की पहचान करने तथा उनके नामकरण में सहायता मिल सके। प्राणियों तथा पौधों के वर्ग विज्ञान संबंधी अध्ययन से उन सभी को लाभ पहुंचा है जिनका संबंध वानिकी,

चिकित्सा, कागज-उद्योग तथा आहार आदि से है, क्योंकि इसके द्वारा उन्हें उचित सामग्री प्राप्त करने में सहायता मिलती है। इसका संबंध पादप एवं प्राणी रोगों से भी है क्योंकि इनसे मनुष्य की अर्थव्यवस्था प्रभावित होती है।

आज संकर पौधों के विकास का कार्य बहुत ज्यादा हो रहा है क्योंकि ऐसे पौधे लोगों को बेहतर फल, बेहतर बीज और बेहतर फूल प्रदान करते हैं और संकरण का यह कार्य वर्गिकी के ज्ञान के बिना असंभव है। पौधों के अध्ययन से मृदा संरक्षण में भी सहायता मिलती है क्योंकि विशिष्ट लक्षणों वाले पौधों को लगाने से मिट्टी की कम से कम हानि होती है तथा मिट्टी की उर्वरता को भी बढ़ाया जा सकता है। इसके बाद कृषि तथा उद्यानिकी आते हैं, ये दोनों ही परस्पर संबंधित विज्ञान शाखाएं हैं तथा यह सीधे ही वर्गिकी पर आधारित हैं। जीवाश्मों (fossil) की पहचान करना भी तभी संभव है जब जीवित पौधों एवं प्राणियों से संबंधित पर्याप्त साहित्य उपलब्ध हो। परिरक्षित पौधों की पहचान करना कभी-कभी इसलिए कठिन हो जाता है क्योंकि वे या तो ठीक से परिरक्षित नहीं होते और वे अपूर्ण होते हैं। लेकिन इनसे संबंधित सूचना द्वारा इनके विकास इतिहास का क्रम स्थापित होता है और उससे विभिन्न टेक्सानों (वर्ग-सोपानों) के बीच योजक कड़ियां स्थापित करने में मदद मिलती है।

टेक्सान जीवों का एक समूह है जो वर्गीकरण योजना द्वारा परिभाषित होता है जैसे कि कोई विशिष्ट स्पीशीज़ अथवा क्लास

पादप वर्गिकी का इतिहास बहुत पुराना है। इसने वनस्पतिकी की अनेक प्रावस्थाओं को जन्म दिया है। यह आज भी उतनी ही रोचक एवं उतनी ही उत्तेजक तथा महत्वपूर्ण बनी हुई है और उसका कारण यह है कि पौधों की विभिन्न स्पीशीज़ और मानव निवासियों के बीच एक सीधा संबंध है। वर्गिकीय अध्ययनों का मुख्य उद्देश्य है--पृथ्वी पर पाए जाने वाले पौधों एवं प्राणियों के विभिन्न प्रकारों के विषय में जानना, उनके नाम, उनके परस्पर विभेद, उनकी बंधुताएं तथा उनके वितरण एवं आदतों के विषय में जानना। आरंभ में वर्गिकी का विज्ञान पौधों के छोटे-छोटे अंशों का अध्ययन करना था जिन्हें इकट्ठा करके, उनका नामांकन करके उनका रिकार्ड रखा जाता था। ऐसे अध्ययनों से एकत्रित हुई सूचना पृथ्वी के समस्त पादप संसाधनों की सम्पत्ति-सूची के वैज्ञानिक जानकारी के लिए एक आधारभूत आवश्यकता है।

वर्गिकी का दूसरा उद्देश्य है प्राप्त जानकारी का एकत्रीकरण। यह प्रायः शोध प्रबधों के रूप में होता है जो सहविज्ञानियों के लिए तथा सामान्य रूप में समस्त सभ्यता के लिए उपयोगी होते हैं। लेकिन इस प्रकार प्राप्त हुआ ज्ञान तब तक फलदायी नहीं होता जब तक कि वह अध्ययन हेतु दूसरों तक नहीं पहुंच जाता। इस प्रकार किसी एक क्षेत्र के पौधों तथा प्राणियों का वर्णन करने की दिशा में वहां के प्राणिजातों (Fauna) तथा वनस्पतिजातों (Flora) का प्रकाशन किया जाता है। पुस्तिकाएं (manuals) बनायी जाती हैं ताकि किसी स्थान के पौधों तथा प्राणियों को जल्दी से पहचाना जा सके और उन्हें नाम दिया जा सके। समय-समय पर संशोधन किए जाते तथा मॉनोग्राफ (monographs) द्वारा किसी भी व्यक्ति को किसी भी एक विशिष्ट जीव वर्ग एवं उसके फटकों का विस्तार एवं उनकी परिसीमाएं पता चल सके। वितरण संबंधी अध्ययनों का प्रकाशन किया जाता है ताकि किसी क्षेत्र विशेष के टेक्सॉनों के परास विस्तारों, संशोधनों तथा उनके परस्पर संबंधों की जानकारी उपलब्ध हो सके। प्रत्येक वर्गिकी अनुसंधान से संसाधनों से बढ़ोत्तरी होती है और वह वैज्ञानिकों को उपलब्ध हो जाती है। ऐसे प्रकाशन अनिवार्य हैं ताकि उनके द्वारा उस कच्ची सामग्री के संसाधनों का अध्ययन किया जा सके जो मानव की नानाविध आवश्यकताओं के लिए उपयुक्त होता है जैसे कि वन-उत्पादों, औषधियों, आहार, सजावटी सामग्री, कृषि तथा उद्योग के लिए।

तीसरा उद्देश्य पौधों और प्राणियों के संसार में पायी जाने वाली विशाल विविधता तथा क्रमबद्ध विकास संबंधी मानव के ज्ञान में उसके संबंध को दर्शाता है। पौधों और प्राणियों के जगत को एक सुव्यवस्थित समग्र रूप में केवल तभी गठित किया जा सकता है जब इस जगत के तमाम घटकों की भंडार सूची बना ली गई हो। भंडार सूची बना लेने के बाद ही विभिन्नता की मात्रा और विभिन्नता का वह स्वरूप तैयार किया जा सकता है जो विविधता को दर्शा सकेगा और इन्हीं आंकड़ों को क्रमविकास संबंधी अन्य पहलुओं के साथ जोड़कर एक अधिक सही जातिवृत्तीय (Phylogenetic) योजना बनायी जा सकती है।

आइए वर्गिकी के उद्देश्यों को सारांश में देखें :

i) विश्व के समस्त वनस्पतिजात तथा प्राणिजात को सूचीबद्ध किया जाना।

ii) पहचानने एवं सूचना संप्रेषण की विधि प्रदान करना।

iii) वर्गीकरण की एक सुसंगत एवं सार्वभौमिक प्रणाली तैयार करना।

iv) पादप एवं प्राणी विविधता के क्रमविकासीय जोड़-तोड़ को दर्शाना।

v) संसार के प्रत्येक जीवित एवं जीवाश्म वर्ग के पौधों तथा प्राणियों के एक लातिनी (latin) वैज्ञानिक नाम प्रदान करना।

बोध प्रश्न 1

बताइए कि निम्न कथन सही हैं या गलत और उनके आगे दिए गए कोष्ठकों के भीतर सही के लिए (स) तथा गलत के लिए (ग) लिखिए।

1) पौधों की आधारभूत जानकारी से उनकी आकारिकीय विभिन्नता का अनुमान लग जाता है। ( )

2) वर्गिकी के ज्ञान के बगैर संस्करण करना संभव है। ( )

3) पादप वर्गिकी के अध्ययन से मृदा संरक्षण में तथा मृदा उर्वरता को घटाने में भी सहायता मिलती है। ( )

4) आंशिक तथा कुपरिरक्षित नमूनों से कभी-कभी विभिन्न टेक्सानों के बीच योजी कड़ियां स्थापित करने में मदद मिलती है। ( )

5) पादप वर्गिकी का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य सही जातिवृत्तीय योजना प्रदान करना है। ( )

6) वर्गिकी वैज्ञानिकों का एक सबसे लम्बा-चौड़ा काम एकल लातिनी वैज्ञानिक नाम प्रदान करना है। ( )

1.4 वर्गिकी तथा वर्ग विज्ञान के सिद्धांत

वर्गिकी के सिद्धांतों का उल्लेख करने से पूर्व आइए वर्गिकी (taxonomy) तथा वर्गीकरण पद्धति (systematics) इन दो शब्दों के अंतर का विवेचन कर लें। वर्ग विज्ञान समस्त जीवधारियों को पहचानने, उन्हें नाम देने तथा उनका वर्गीकरण करने से संबंधित विज्ञान है। हो सकता है कि पौधें का संभावित आर्थिक उपयोग तत्काल स्पष्ट नजर न आए मगर हमारे लिए यह जानना जरूरी है कि कौन सा पौधा किस पौधे के निकट संबंध वाला है ताकि उसके गुणधर्मों कि पूर्व घोषणा की जा सके। हमारे फसली पौधों के जंगली संबंधियों में यदाकदां ऐसे जीव विद्यमान होते हैं जो वांछित गुण प्रदान कर सकते हैं जैसे कि रोग-प्रतिरोध जिसकी ज़रूरत पादप-प्रजननकारियों को फसल सुधार के लिए होती है। जो लोग वैज्ञानिक नहीं हैं वे भी उन रूपों और कार्यों के संबंध को जो कि फूलों में इतना स्पष्ट है देख सकते हैं और विकास और विभिन्नता को सरलता से समझ सकते हैं। इस प्रकार यह एक ऐसा विषय है जो वैज्ञानिकों तथा गैर-वैज्ञानिकों दोनों को समान रुचि प्रदान करता है।

वर्गविज्ञान के सिद्धांतों पर चर्चा करने से पहले आइए वर्गविज्ञान की परिभाषा करें और देखें कि वर्गीकरण पद्धति तथा वर्गिकी में अंतर क्या है (चित्र 1.2)। उदाहरणतः वर्गीकरण पद्धति वनस्पतिकी का वह विस्तृत क्षेत्र है जिसका संबंध पौधों की विविधता, उन्हें पहचानना, उनके नामकरण (वर्गीकरण) और उनके विकास के अध्ययन करने से हैं। वर्गीकरण पद्धति एक विस्तृत अध्ययन क्षेत्र है जबकि वर्गिकी वर्गीकरण के अध्ययन तक ही सीमित है। इसके बावजूद वर्गिकि तथा वर्गीकरण पद्धति को बहुत से लोग अक्सर एक ही मानते हैं और इन शब्दों को समानार्थी के रूप में इस्तेमाल करते हैं।

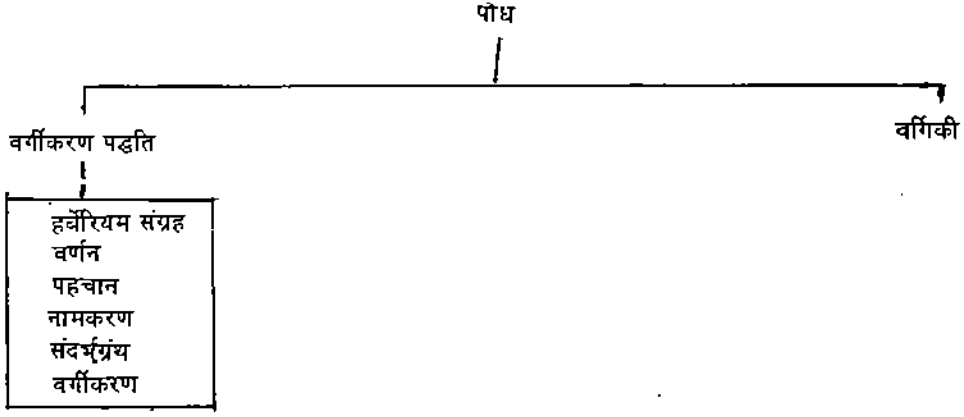

चित्र 1.2 पादप वर्गीकरण तथा वर्गिकी में अंतर

वर्गीकरण में जीवधारियों को उनमें पायी जाने वाली समान विशिष्टताओं के आधार पर समूहों में व्यवस्थित किया जाता है। उसके बाद इन समूहों को एक व्यवस्था में रख दिया जाता है। उदाहरण के लिए, पुष्पी पौधों की समान स्पीशीज़ को एक जीनस में रख दिया जाता है, समान जीनसों को एक साथ मिलाकर फ़ेमिलियां बनायी जाती है, समान लक्षणों वाली फेमिलियों को आर्डरों में रखा जाता है, आर्डरों को क्लासों में और क्लासों को डिविजनों में। वर्गीकरण से जीवों को, श्रेणियों अथवा पदस्तरों के एक पदानुक्रम में रख दिया जाता है जैसे कि स्पीशीज़, जीनसें, फेमिलियां आदि-आदि। आप इन संकल्पनाओं के विषय में अधिक विस्तार से इकाई 4 में पढ़ेंगे।

अब हम वर्गीकरण पद्धति के विषय में कुछ अधिक विस्तार से बात करेंगे। शुरू-शुरू में हानिकर तथा लाभकर पौधों की पहचान से ही वर्गीकरण पद्धति का जन्म हुआ। भाषा के विकास के बाद यह संभव हुआ कि पौधों के संबंध में हुए प्रेक्षणों को इकट्ठा किया जा सके और इस जानकारी को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में पहुंचाया जा सके। आज पौधों की आधारभूत पहचान एवं उनका समूहन एक अति सम्मिश्र विज्ञान के रूप में विकसित हो गया है जिसका संबंध पौधों के प्रस्तावित क्रमविकासीय परस्पर संबंधों पर आधारित समूहों में वर्गीकरण से है। वर्गीकरण पद्धति के अंतर्गत वे सभी क्रियाकलाप आते हैं जो पौधों की विविधता को व्यवस्थित रूप देने एवं उसे लिपिबद्ध करने के प्रयास के अंश हैं तथा जो हमें पौधों की विभिन्न स्पीशीज़ में रोचक अंतरों से परिचित कराते हैं। इस प्रकार वर्गीकरण पद्धति हमें पौधों तथा प्राणियों की संपदा सूची, पहचान करने की योजना, उनके नाम तथा एक वर्गीकरण व्यवस्था उपलब्ध कराता है। वर्गीकरण पद्धति अन्य विज्ञान क्षेत्रों के लिए आधारस्वरूप तो है ही, साथ ही वह सूचना एवं उन आंकड़ों के लिए दूसरी शाखाओं पर भी निर्भर होता है जो वर्गीकरणों के निर्माण में सहायक होते हैं। संबंधित जीवधारियों को एक साथ लाने वाला एक सुचारू वर्गीकरण हो सकता है, ऐसी समस्याओं का भी सुझाव दे सके जो परिस्थितिकीविदों, पादप प्रजननकारियों, औषधिविज्ञानियों, उद्यानिकीविदों तथा जैव रसायनशास्त्रियां द्वारा अध्ययन योग्य हो।

बोध प्रश्न 2

रिक्त स्थानों में उपयुक्त शब्द भरिए :

वर्गीकरण वनस्पतिकी पद्धति का एक विस्तृत क्षेत्र है जिसका संबंध पौधों की.....एव उनकी.....उनके.....तथा उनके.....से है। वर्गीकरण करना पौधों को ऐसे समूहों में व्यवस्थित करना है जिनमें..... .....पायी जाती हो, और समूहों को एक.....में व्यवस्थित किया जाता है। समान पौधे एक.....में रखे जाते हैं, तथा समान जीनसें एक.....में। वर्गीकरण के फलस्वरूप.....का एक पदानुक्रम प्राप्त होता है जैसे कि..... ..... आदि-आदि।

अब हम वर्गिकी के उन सिद्धांतों का विवेचन करेंगे जिनके द्वारा हम जीवों की विविधता को विभिन्न समूहों में वर्गीकृत कर सकते हैं।

- वर्गिकी का लक्ष्य है एक ऐसा व्यावहारिक वर्गीकरण विकसित करना जिसमें क्रमविकासीय संबंधों की झलक हो और जो पहचान एवं नामकरण में सहायता प्रदान कर सके।
- विभिन्न स्पीशीज़ उन वंशक्रमों की प्रतिदर्श है जो विकास क्रिया से बने हैं और प्रत्येक समूह के टेक्सॉनों के बीच विशाखनशील आनुवंशिक संबंध पाया जाता है।
- स्पीशीज़, जीनसें, फ़ेमिलियां तथा आर्डर जैसी श्रेणियां स्थिर नहीं है बल्कि लचीली हैं और वे प्रत्येक समूह के लिए अलग-अलग परिसीमित हैं। पदानुक्रम की स्थापना पौधों के लिए **इंटरनेशनल कोड ऑफ बोटेनिकल नॉमेनक्लेचर** द्वारा तथा प्राणियों के लिए **इंटरनेशनल कोड आफ ज़ूलौजीकल नॉमेनक्लेचर** द्वारा की जाती है।
- विभिन्न टेक्सॉन लक्षणों के परस्पर संबंध तथा विभिन्नता व्यवस्था में असांतत्यों पर आधारित होते हैं। पौधे अथवा प्राणी के किसी भी गुण को एक लक्षण के रूप में लिया जा सकता है और विभिन्न पद स्तरों पर उनका कोई स्थायी मूल्य नहीं है।
- लिया गया लक्षण स्थिर होना चाहिए और टेक्सॉनों को परिसीमित करने के लिये उसे पर्यावरण से प्रभावित नहीं होना चाहिए।
- विभिन्न टेक्सॉन एकस्रोताद्भवी (monophyletic) होने चाहिए।
- वर्गीकीय अनुप्रयोग व्यावहारिक होने चाहिए तथा विविध श्रेणियों में उनके उपयोग सुसंगत होने चाहिए।
- विभिन्न टेक्सॉनों में अभिसरण (convergence) अथवा समातरंता (parallelism) के कारण एक-दूसरे से समानता हो सकती है।
- वर्गीकरण को बनाने में जब कभी संभव हो तो टेक्सॉनों के नमूने पूरे विस्तार क्षेत्र से लिए जाने चाहिए तथा निम्नतर पदस्तरों के सभी टेक्सॉनों का अध्ययन करना चाहिए।
- जीवित जीवधारियों की संरचना में पैतृक लक्षण तथा विविधता की प्रवृत्तियों की ज्यादातर झलक देखी जा सकती है।
- पैतृक जीवधारियों पर ध्यानपूर्वक विचार करना चाहिए।
- क्रमविकास के फलस्वरूप शरीर के भागों में ह्रास अथवा उनकी हानि हो सकती है, इसे भी ध्यान में रखना चाहिए।
- आकारिकीय लक्षणों को उचित महत्व दिया जाना चाहिए क्योंकि एक तो वे आदिम बनाम उन्नत लक्षणों का दिशादर्शन उपलब्ध कराते हैं और दूसरे उनसे जातिवृत्तीय संबंधों को बनाने में सहायता मिलती है। सोचने का ढंग लचीला होना चाहिये ताकि जब भी प्रमाण मिले तो वर्गीकरण में सुधार किया जा सके।
- समलक्षणमान (phenetic) वर्गिकी में टेक्सॉनों का गठन एवं उनका वर्गीकरण जीवधारी समलक्षणी या लक्षणप्ररूपी (phenotypes) की समानताओं के आधार पर किया जाता है।
- आधुनिक वर्गिकी में शास्त्रीय (cladistic) वर्गिकी आती है जिसमें विभिन्न टैक्सॉनों के बीच पायी जाने वाली समानताओं की जानकारी का सारांश एक विशाखनशील आरेख के रूप में दिया जाता है, ऐसे आरेख को शाखारेख (cladogram) कहा जाता है जिसमें परिकल्पना के आधार पर जीवधारियों के क्रमविकासीय इतिहास को दर्शाया गया होता है।
- जैव-भूगोल (Biogeography) भी वर्गिकी का एक महत्वपूर्ण अंश है क्योंकि यह जीवधारियों की वितरण व्यवस्थाओं का विश्लेषण करता है और उन्हें जीवधारियों के वर्गविज्ञान से जोड़ता है।
- इस प्रकार वर्गीकरण के द्वारा हम जीवधारियों के विषय में अपनी जानकारी को एक सारांश रूप दे सकते हैं और यह कार्य वर्गिकी के सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्यों में से एक है। इस प्रकार यह समय और प्रयास के बचत का एक तरीका है जिसमें हम वर्गीकरण की उपयोगिता तथा उसके उद्देश्य को परिभाषित कर सकते हैं।

बोध प्रश्न 3

गलत शब्द अथवा शब्दों को काटिए :

1) वर्गिकी का उद्देश्य है एक ऐसा व्यावहारिक वर्गीकरण तैयार करना जिसमें क्रमविकासीय/गैरक्रमविकासीय संबंध की झलक मिलती हो।

2) स्पीशीज़, उन वंशक्रमों का प्रतिदर्श होती है जो विकास एवं विशाखानशील अनुवंशिक/गैर आनुवंशिक संबंधों द्वारा बनते हैं।

3) विभिन्न स्पीशीज़, जीनसें, फेमिलियां स्थिर/अस्थिर होती हैं और प्रत्येक समूह के लिए वे अलग-अलग परिसीमित होती हैं

4) टेक्सानों के परिसीमन के लिए जो लक्षण चुने जाते हैं वे सतत पाए जाने वाले/सतत न पाए जाने वाले होने चाहिए तथा उनमें विभिन्नता न के बराबर पायी जाती हो।

5) टेक्सान एकसोताद्भवी/द्विस्रोतोद्भवी होने चाहिए।

6) वर्गीकरण के बनाने में निम्नतर पद स्तरों का अध्ययन किया जाना चाहिये/नहीं किया जाना चाहिए।

7) क्रमविकास के द्वारा अंगों में केवल ह्रास/वृद्धि हो सकती है।

8) आकारिकीय लक्षणों को उचित महत्व दिया जाना चाहिए/नहीं दिया जाना चाहिए क्योंकि वे जातिवृत्तों को विकसित करने में सहायक होते हैं।

9) आधुनिक वर्गिकी में विशाखनी वर्गिकी शामिल होती है/शामिल नहीं होती है।

10) क्लैडोग्राम (शाखन-आरेख) जीवधारियों के क्रमविकासीय इतिहास को दर्शाता है/नहीं दर्शाता है।

1.5 पादप वर्गीकरण का इतिहास

डार्विन के विकासवाद एवं 1859 में उसकी युगांतरकारी कृति **"ओरिजिन ऑफ स्पीशीज़"** के प्रकाशन से पूर्व पौधों के वर्गीकरण का कोई सुस्पष्ट आधार नहीं था। अतः पादप वर्गीकरण के इतिहास को दो युगों में बांटा जा सकता है—एक तो विकासवाद के पूर्व का युग और दूसरे विकासवाद के बाद का युग।

विकासवाद पूर्व के युग को सुविधा की दृष्टि से एवं बेहतर समझ सकने के लिए इसे और आगे चार महत्वपूर्ण कालों में विभाजित किया जा सकता है।

1) प्राचीन यूनानी एवं रोमवासी गण

2) औषधग्रंथकार गण

3) संक्रमण काल, तथा

4) उत्तर औषधग्रंथ काल

इस इकाई में हम आपको उन कुछ प्राचीन यूनानी एवं रोमवासी प्रकृतिविदों तथा विद्वानों के विषय में संक्षेप में बताएंगे जिन्होंने अपने-अपने तरीकों से सामान्यतः पादप विज्ञानों में एवं विशेषतः पादप वर्गीकरण में महत्वपूर्ण योगदान दिये हैं। उन्हें सजीव जीवधारियों पर सर्वेक्षण किए तथा उनका वर्गीकरण किया। इन शास्त्रीय प्राचीन यूनानियों तथा रोमवासियों का काल उस वर्णनात्मक वनस्पतिकी काल के चरम बिंदु पर पहुंचा था जिसमें अनेकानेक विख्यात चिकित्सक गण, प्रकृतिविज्ञानी गण तथा अन्य विद्वानों ने अनेक महत्वपूर्ण औषध ग्रंथों की रचना की। यह सब कार्य पुरानी कृतियों से महत्वपूर्ण रूप से हटकर था क्योंकि पुरानी कृतियां केवल उपयोग हेतु लिखी गई थी और उनका कोई खास विद्योचित महत्व नहीं था। आप इन मध्ययुगीन औषधग्रंथकारियों एवं उनके कार्यों के विषय में भी इस इकाई में पढ़ेंगे।

1.5.1 प्राचीन यूनानी एवं रोमवासी गण

हिप्पोक्रेटीज़ (Hippocrates) (460-377 ईसापूर्व) जिसे चिकित्सा का जन्मदाता कहा जाता है, डेमाक्रिटस का एक विख्यात शिष्य था। वह लंबी आयु तक जिया और हिप्पोक्रेटिक चिकित्सा विद्यालय के स्थापक के रूप में प्रसिद्ध हुआ, यह विद्यालय उसने रोगों के कारणों के अध्ययन के लिए खोला था। इसने जड़ी-बूटियों के प्रयोग पर एक नयी रोशनी डाली। हिप्पोक्रेटिक विद्यालय के लेखनों में चिकित्सा में इस्तेमाल होने वाले लगभग 240 पौधों की सूची पायी जा सकती है। लेकिन इन पौधों का उल्लेख मात्र उनके औषध गुणधर्म के रूप में किया गया था न कि वनस्पतिक वर्णन के रूप में। यूनान में जड़ों को खोदकर निकालने वालों (राइजोटोमाई, rhizotomoi) तथा औषध व्यापारियों (फारमोकोपुलाई, pharmocopuloi) को उस दौरान बड़ी ही लाभकारी जानकारी मिली होगी और तभी से पौधों को इकट्ठा करते तथा उनसे औषधियां तैयार करते रहे होंगे। जैसे भी हो, पौधों के विषय में उनका ज्ञान अनुभवजन्य और अंधविश्वासों से भरपूर था और उससे वनस्पतिकी के विज्ञान में शायद ही कुछ योगदान हुआ हो।

अरस्तु स्तगीरी अरस्तु, (Aristotle) (384-324 ईसापूर्व) का विशाल कार्यकलाप यूनान के स्वर्ण युग का चरम बिंदु था। उसके कृत्य का आज तक विद्यमान होना न केवल इस बात का प्रमाण है कि उसने एक सर्वोच्च श्रेणी का सर्वज्ञानविषयक मस्तिष्क पाया था वरन् इस बात का भी प्रमाण है कि उसके पूर्वगामियों ने बहुत से अनुसंधान भी किए थे। उसे जहां एक ओर गहन गणितीय ज्ञान था वहीं दूसरी ओर उसे प्राकृतिक इतिहास की प्रत्येक शाखा की भी उतनी ही अधिक विस्तृत जानकारी थी।

वर्गिकी में प्रमुख योगदान करने के कारण अरस्तू को जैविकीय वर्गीकरण का जन्मदाता कहा जाता था।

अरस्तु का जन्म 384 ईसा पूर्व हुआ था। पिता निकामैक्स मकदोनिया (Nicomachus Macedonia) के एक शाही घराने के चिकित्सक थे। मकदोनिया के समुद्रतट पर बसी स्तगीर नामक एक छोटी सी यूनानी बस्ती में जन्मे होने के कारण उसे कभी-कभी सतगीरी (Stagirite) नाम से भी पुकारा जाता रहा है। उसका पिता निकोमैक्स ऐस्क्लेपिएडों (Asclepiads) के संघ का सदस्य था, इस संघ में चिकित्सक गण हुआ करते थे जो उन जड़ी-बूटियों का उपचारों में इस्तेमाल करते थे जिनकी जानकारी केवल इसी संघ के सदस्यों को थी। सत्तरह वर्ष की आयु में अरस्तु ऐथेन्स में पहुंचा तथा वहां उसकी भेंट प्लेटो (अफलातून) से हुई जिसका वह शिष्य बन गया। अरस्तु अनिवार्यतः एक जीवविज्ञानी था, मगर वह अपने गुरु के बहुत निकट था और प्लैटो की 347 ईसा पूर्व में हुई मृत्यु तक उसके विद्यालय का सदस्य बना रहा।

अरस्तु की दृष्टि में पौधा एक समन्वित वस्तु थी। उसके विचार में पत्तियां तने और जड़ें पौधे के मात्र अवयव ही नहीं थे वरन् एक सुसंगठित वस्तु के सदस्य थे। उनमें से प्रत्येक अवयव की अपनी विशिष्टताएं थी मगर साथ ही साथ उनमें परस्पर निर्भरता थी, संबंध थे और परस्परक्रिया का एक ऐसा तालमेल था जो संपूर्ण पौधों के जीवन को कायम बनाए रखता था।

इरेसस का थियोफ्रास्टस (Theophrastus of Eresus) : **वनस्पतिकी का जन्मदाता** (370-285 ई.पू.) : धरती पर जितने भी मनुष्य हुए इरेसस का थियोफ्रास्टस उनमें सबसे विलक्षण था। उसका जन्म इजियन सागर लेसबॉस (Lesbos) द्वीप (आज का मितिलीन) पर लगभग 370 ई.पू. में हुआ था, और उसे वनस्पतिकी का जन्मदाता माना जाता है। वनस्पतिकी की सर्वाधिक व्यापक पहलुओं को सबसे ज्यादा प्रोत्साहन थियोफ्रास्टस एवं उसके शिष्यों के नेतृत्व में यूनान में ही मिला। उसके विशाल लेखन कृत्यों में वनस्पतिकी का लगभग बीसवां भाग ही है लेकिन उसका **हिस्टोरिया प्लैंटेरम** (Historia Plantarum) नामक ग्रंथ पौधों के विषय में आज की तमाम जानकारी का आधार स्तंभ है। इस ग्रंथ में लगभग 480 प्रकार के पौधों का वर्गीकरण एवं उनका वर्णन किया गया है। साथ ही इसमें जंगल, दलदल, झील, नदी तथा अन्य पादप सहचर्यों के भी विवरण दिए गए हैं। इस श्रेष्ठ ग्रंथ में उसने एकबीजपत्री तथा द्विबीजपत्री पौधों के बीच का भी मूल अंतर दर्शाया है। थियोफ्रास्टस कम उम्र में ही प्लेटों का शिष्य बन गया था। प्लेटों की मृत्यु के साथ थियोफ्रास्टस मात्र 22 वर्ष का था। तदुपरांत यह पहले तो अरस्तु का विद्यार्थी रहे तथा

बाद में उसका मित्र एवं सहयोगी शिक्षक बन गया। मरने से पहले अरस्तू ने अपनी तमाम पांडुलिपियों, पुस्तकें एवं वनस्पति उद्यान वसीयत में थियोफ्रास्टस के नाम कर दिए थे, उस समय थियोफ्रास्टस 40 वर्ष का था।

थियोफ्रास्टस की कृतियों में प्लेटों तथा अरस्तु का दर्शन स्पष्ट झलकता है। उसने तमाम पौधों को उनके स्वरूप एवं गठन के आधार पर वर्गीकृत किया कि वे या तो वृक्ष होते हैं या झाड़ियां या अर्धझाड़ियां या शाक होते हैं और साथ ही उसके वार्षिक (मौसमी) द्विवार्षिक तथा बहुवर्षी (चिरस्थायी) पौधों में भी विभेद किया। उसने अभिकेन्द्री (centripetal) अथवा अनिर्धारी (indeterminate) तथा अपकेन्द्री (centrifugal) अथवा निर्धारी (determinate) प्रकार के पुष्पक्रमों में विभेद किया। उसने अण्डाशय की स्थितियों में पाए जाने वाले अंतर को पहचाना और मुक्तदलीय (polypetalous) एवं संयुक्त दलीय (Gamopetalous) दलपुंजों में विभेद किया। पुष्पीय भागों के गड़े होने के प्रकार जो कि अधजायांगी (hypogynous) पराजयांगी (perigynous) तथा जायांगोपरिक (epigynous) पौधों की विशिष्टताएं हैं, उनके विषय में थियोफ्रास्टस ने स्पष्ट पहचान कर ली थी।

थियोफ्रास्टस की पुस्तक **हिस्टोरिया प्लैंटेरम** उसकी मृत्यु के बाद सदियों तक बनी रही, तथा 15वीं शताब्दी के मध्य में जब मुद्रण (छापने) का आविष्कार हुआ तब पहले पहल छपी गयी पुस्तकों में से एक यह भी थी। उसके बाद यह ग्रीक भाषा, लातिनी, जर्मन तथा अंग्रेजी में बार-बार छपी और सन् 1866 तक लगभग प्रत्येक यूरोपीय भाषा में इसके 20 से भी अधिक संस्करण छप चुके हैं।

केयस प्लाइनियस सेकंडस (Caius Plinius Secondus) जिसे प्लाइनी ज्येष्ठ (Pliny the Elder) भी कहते हैं (23-79 ईसवीं)। यह एक रोमवासी प्रकृतिविज्ञानी एवं विद्वान था, उसका जन्म कोमों में हुआ था। उसने अपनी पुस्तक **"हिस्टोरिया नेचुरेलिस"** (Historia Naturalis) में लगभग एक हजार पौधों का वर्णन किया। 37 खण्डों में प्रस्तुत किया गया यह कार्य एक अति विशद विश्वकोष है जो जहां तहां आलोचनात्मक होते हुए भी बहुत मूल्यवान है क्योंकि इसमें ऐसी सूचना सम्पदा भरी है जो अन्यत्र कहीं नहीं मिलेगी। इनमें से सोलह खण्डों में अधिकता पौधों का जिक्र है जिसमें औषधीय गुणों, वर्गीकरण, वानिकी, पादप शरीर, तथा उद्यानिकी व्यवसाय जैसे विषयों को लिया गया है।

प्लाइनी को पौधों को उनकी समानताओं के आधार पर वर्गीकृत करने में रुचि नहीं थी। उसने वृक्षों को वन वृक्षों, विदेशराज वृक्षों तथा फल वृक्षों में वर्गीकृत किया। वन वृक्षों को उसने और दो वर्गों में विभाजित किया–ग्रंथिधर (Glandiferous) तथा पिचधारी (pitch-bearing), ग्रंथिधर वृक्षों में वे वृक्ष आते हैं जिनमें केट्किन प्रकार का पुष्पक्रम होता है तथा पिचधारियों में अधिसंख्य शंकुधर वृक्ष आते हैं।

पेडेनियॉस डायोस्कोराइडीस (Pedanios Dioscorides) ईसा पश्चात प्रथम शताब्दी में रहने वाला एक सिलिशियन यूनानी था। वह थियोफ्रास्टस के बाद का सबसे महत्वशाली वनस्पितज्ञ था। वह रोम के बादशाह निरो (Nero) के नीचे एक सैन्य चिकित्सक था। उसकी मुख्य रचनाएं चिकित्सा वनस्पतिकी पर थीं। मध्य युग में उसकी कृतियां थियोफ्रास्टस की कृतियों से भी अधिक प्रचलित थी। हालांकि उसे वनस्पतिकी का ज्ञान अपेक्षाकृत कम था। 1500 वर्षों से भी अधिक समय तक उसे यूरोपीय वनस्पतिकी का सर्वज्ञाता माना जाता था। उसके मुख्य योगदान **"मैटीरिया मेडिका"** (Materia Medica) में लगभग छः सौ स्पीशीज़ का वर्णन किया गया था जो मुख्यतः भूमध्यसागरीय थीं तथा जिन्हें चिकित्सा में इस्तेमाल में लाया जाता था। एक और पाण्डुलिपि **"ऐनीसियस जूलियाना कोडेक्स"** (Anicia Juliana Codex) को महाराजा बिजैंटीन (Bazantine) की पुत्री के लिये लगभग 512 ई. में मूलतः डायोस्कोराइडीस की इकट्ठी की हुई सामग्री में से तैयार किया गया था। इस कृति में पौधों के रंगीन चित्र दिए गए थे और यह आज भी विद्यमान हैं।

आरंभिक यूनानी तथा रोमवासी प्रकृति विज्ञानियों तथा विद्वानों के इस युग का एक

सर्वाधिक महत्व का पहलू यह था कि लोगों ने अब ब्रह्मांण्ड के विषय में मौलिक एवं आधारभूत रूप में विचारना शुरू कर दिया था, तथा अलौकिकतावाद एवं पुराणपंथी दृष्टि को छोड़कर तर्क का रास्ता अपनाना अधिक अच्छा समझा जाने लगा। इसी काल में प्रकृति के वैज्ञानिक अध्ययन की नींव पड़ी।

1.5.2 विविध औषध ग्रंथ

मध्य युग के दौरान, यूनानी तथा रोम सभ्यताओं का ह्रास हो जाने के बाद वनस्पतिकी में कोई खास प्रगति नहीं हुई। आरंभिक औषध ग्रंथ (अर्थात् पौधों के विषय में पुरानी किताबें) जैसे कि "डायोस्कोराइडीस के कोडेक्स" की सदियों तक नकल एवं पुनः नकल ही की जाती रही, बस यहां वहां नाममात्र को उसमें कहीं कोई जोड़ तोड़ या सुधार कर दिया जाता था। सोलहवीं शताब्दी के पूर्वार्ध में एक वनस्पतिक पुनर्जागरण का उदय हुआ और इसमें मुद्रण की कला से जो कि तब तक शैशवकाल में ही थी, तीव्रता आयी।

ब्रुनफेल्स (Brunfels), बॉक (Bock), फुक्स (Fucks), कॉर्डस (Cordus) तथा अन्य लेखक जिन्हें कभी-कभी वनस्पतिकी के जर्मन दाता कहा जाता है इनके लिखे औषध ग्रंथों को इस युग के प्रतिदर्श माना जाता है।

सन 1530 और 1536 के बीच के वर्षों में ऑटो ब्रुनफेल्सियम "Otto Brunfelsius" (**ब्रुनफेल्स**, 1436-1534) ने अपना औषध ग्रंथ प्रकाशित किया। इसमें बहुत संख्या में पौधों का वर्णन किया गया था, जिनमें से अनेकों के काष्ठचित्र भी दिए गए थे। यह आधुनिक वर्गिकी का प्रारंभ था। इसके शीघ्र बाद में दो और ग्रंथ आए—एक तो **लियोनार्डस फुक्स का हिस्टोरिया स्ट्रिपियम (De Historia Stripium)** 1542 तथा **हीरोनिमस डाक** का **क्राएटर बुख** (Kroiter Buch) (1539)। फुक्स मूलतः एक चिकित्सिय वनस्पितज्ञ था। उसकी सामान्य रूप में फूल की कल्पना वही थी जो थियोफ्रास्टस की थी। उसने दो प्रकार के फूलों में विभेद किया—पत्तीनुमा (leafy) तथा कोशिकीय (capillary) लेकिन उसका मानना था कि ये दोनों ही प्रकार गुलाब जैसे फूलों में एक साथ जुड़े हैं। उसने **'ड हिस्टोरिया स्ट्रिपियम'** में पौधों को उनके यूनानी नामों से वर्णाक्षर क्रम में रखा, और इसलिए हमें ऐसा नहीं लगता कि उसने वर्गीकरण का प्रयास किया था। इन सीमाओं के होने के बावजूद उसके द्वारा रचित **हिस्टोरिया** प्रशंसायोग्य है।

विलियम टर्नर (William Turner) (1515-1568) ने अपने ग्रंथ "ए न्यू हर्बल" (A New Herbal) को अंग्रेजी भाषा में तीन भागों में प्रकाशित किया। पहला भाग 1551 में, दूसरा भाग 1562 में और तीसरा भाग 1568 में। उन्हें अक्सर "अंग्रेजी वनस्पतिकी का जन्मदाता" कहा जाता है। उसने भी पौधों को उनके वर्णाक्षर क्रम के अनुसार रखा क्योंकि तब तक पौधों के परस्पर संबंधों को और कोई ध्यान ही नहीं दिया जाता था। टर्नर ने बहुत से पौधों को अंग्रेजी नाम दिए। उसमें एक सुधारक के रूप में जो जन्मजात गुण था उसी से उसने पौधों के बारे में पुराने अंधविश्वासों को उखाड़ फेंका।

बेलेरियस कॉर्डस (Valerius Cordus) का औषध ग्रंथ उसके मर्णोपरांत सन् 1561 में प्रकाशित हुआ। इस ग्रंथ में न केवल जर्मनी तथा इटली में पाए जाने वाले पौधों को लिया गया था वरन् अन्य देशों से प्राप्त हुए विदेशी काष्ठों, छालों तथा फलों का भी वर्णन था। उसके द्वारा दिया गया पौधों का वर्णन उसके अन्य किसी समकालीन के द्वारा दिए गए वर्णन से कहीं अधिक परिशुद्ध था। वनस्पतिक वर्णनों को एक योजनाबद्ध रूप में प्रस्तुत करने वाला वह पहला व्यक्ति था, जिसमें उसने पौधों के प्रकार, अवयवों के स्वरूप, रंग, गंध, स्वाद आदि को शामिल किया गया था।

वनस्पतिकी के विकास पर पड़ने वाले बागवानी के प्रभाव को जॉन जेरार्ड (John Gerard) (1545-1612) की रचनाओं में देखा जा सकता है। जेरार्ड ने 1696 में एक वर्णन प्रस्तुत किया जिसमें स्वयं उसके अपने बगीचों में उग रही 1033 से ऊपर पादप स्पीशीज़ का जिक्र किया गया था। उसने अपना महानतम् औषध ग्रंथ "General Historia of Plants" 1597 में प्रकाशित किया जिसमें पौधों के 1800 से भी अधिक काष्ठचित्र दिए गए थे। उसने अपने वर्णित पौधों को तीन पुस्तकों में व्यवस्थित किया

था—पहली में घासों को रखा, दूसरी में चिकित्सा एवं मीठी सुगंध वाले तमाम शाकों अर्थात् जड़ी बुटियों को रखा, और तीसरी पुस्तक में झाड़ियों, फलदायी पौधों, रेजिनों (resins) तथा खुम्बियों (Mushrooms) को रखा। ऐसा करने से बाहरी समानताओं तथा पौधों का मानव से संबंध के आधार पर एक मोटा-मोटा वर्गीकरण प्राप्त हुआ।

इन तमाम कृतियों में जो वनस्पतिक वर्णन दिए गए थे, वे मुख्यतः पौधों की चिकित्सीय तफसीलों से लदे भरे थे। उनमें इन पौधों के कल्पित औषधीय गुणों को जरूरत से ज्यादा बढ़ा चढ़ाकर दिया गया था और यदा-कदा उनमें ऐसी बहुत सी सामग्री थी जिसे हम आज एक मात्र कपोल कल्पना कह कर नकार देंगे। मगर धीरे-धीरे एक अपरिपक्व प्रणाली पनपी जो पौधों की अंशतः मोटी-मोटी आकारिकी पर तथा अंशतः उनके औषध लक्षणों पर आधारित थी।

इस समय पर आकार वर्गिकी में एक महत्वपूर्ण योगदान देने वाला व्यक्ति था **केस्पार बैहिन** (Caspar Bauhin)। उसके ग्रंथ "*फाइटोपिनैक्स*" (Phytopinax) (1596) में 2700 स्पीशीज़ का वर्णन है जिसका प्रारंभ ग्रैमिनेसी (Graminaceae) से शुरू होकर अंत पेपिलियोनेसी (Papilionaceae) से होता है। बौहिन के ग्रंथ *प्रोड्रोमस थिएट्री बोटेनी* (Prodronus Theatri Botanii) (1620) तथा *फिनैक्स थिएट्री बोटेनी* (Pinax Theatri Botanii) (1623) में नामकरण की द्विपदनाम पद्धति को प्रयोग करने का पहला प्रयास दिखायी पड़ता है मगर जिसे केवल बैहिन ने ही इस्तेमाल नहीं किया था। नामकरण की द्विपदनाम पद्धति के विषय में इकाई 4 में पढ़ेंगे। *पिनैक्स थिएट्री बोटेनिसी* में 6000 स्पीशीज़ का वर्णन है। उसने प्राकृतिक बंधुताओं के आधार पर वर्गीकरण किया जिसमें उसने घासों से शुरू करके ऊपर की ओर चलते हुए लिलियों (lilies) द्विबीजपत्री (Dicots) शाकों (Herbs) तथा झाड़ियों (Sherbs) एवं वृक्षों का उल्लेख किया था। मगर फूलों तथा फलों के महत्व के विषय में वह पूर्णतः अनभिज्ञ था।

पुरातनियों से चला आ रहा तथा औषध ग्रंथकारी गुणों द्वारा आगे बढ़ाया गया एक सिद्धांत था **संकेत सिद्धांत** (Doctrine of Signatures)।" यह सिद्धांत उन लक्षणों पर आधारित था जो मानव शरीर के अंग प्रत्यंगों से मिलते-जुलते थे और ऐसा माना जाता था कि सृजनकर्ता ने इन्हें इसीलिए बनाया था कि ये शरीर के उन्हीं भागों के रोगों के लिए इलाज प्रदान करेंगे। अनेक पौधों को ऐसे सामान्य नाम दिए गए जिनमें उन मान लिए गए उपचार गुणधर्मों का संदर्भ शामिल था, और उन अनेक वैज्ञानिक नामों का स्रोत भी इसी सिद्धांत में देखा जा सकता है जो आज भी प्रयोग में आ रहे हैं। उदाहरणतः जीनस नाम *हेपिटिका (Hepatica)* है, इस जीनस की पत्तियों में युक्त जिगर की आकृति से समानता समझी जाती है, अतः इसकी पत्तियों को जिगर की बीमारियों का इलाज माना गया है।

1.5.3 संक्रमण काल

पुनर्जागरण काल से लेकर आधुनिक युग तक के संक्रमण काल में अनेक प्रसिद्ध कार्यकर्ता हुए एवं बहुत सा साहित्य रचा गया। धीरे-धीरे वनस्पतिविज्ञानियों ने पुरातनियों के पारम्परिक सिद्धांतों से नाता तोड़ा और उन्होंने नयी वर्गीकरण पद्धतियां, वर्णन करने की नयी शब्दावली, और एक ऐसी नामकरण पद्धति विकसित की जो वर्गिकी का एक स्थायी अंग बननी थी। तब तक क्रमविकास संबंधी संकल्पना विकसित नहीं हुई थी, इसलिए विभिन्न वर्गीकरण पद्धतियों में पादप वर्गों की व्यवस्था अब भी जातिवृत्तीय न होकर कृत्रिम अधिक थी। इस काल के दौरान हुए कुछ महत्वपूर्ण योगदानों का एक विस्तृत विवरण इस इकाई में आगे दिया जाएगा।

1.5.4 उत्तर औषधग्रंथ काल

एक और संक्रमण काल जिसमें अनेक वर्गीकरण प्रयास किए गए जो सब के सब न्यूनाधिक रूप में कृत्रिम थे (स्वरूप संबंधों पर आधारित) और दूसरी ओर आधुनिक काल जो कि प्राकृतिक बंधुताओं पर आधारित प्रणाली विकसित करने में सतत् प्रगति कर रही प्रणाली के बीच कोई स्पष्ट सीमा रेखा खींचना कठिन है।

इस युग के कार्यकर्ताओं तथा उनके योगदानों के विषय में आप इस ब्लाक के अगली इकाइयों में सविस्तार पढ़ेंगे।

1.6 प्राणि-वर्गिकी का इतिहास

प्राणि वर्गिकी का आरंभ अरस्तु (384-322 ई.पू.) द्वारा हुआ। उसने शरीर (anatomy), भ्रूण विज्ञान (Embryology), स्वभाव एवं पारिस्थितिकी (Ecology) के विषय में विस्तार से अध्ययन किया उसने निष्कर्ष निकाला कि प्राणियों को उनकी जीवन शैली, क्रियाकलाप, स्वभाव एवं देह भागों के अनुसार वर्गीकृत किया जा सकता है। उसके प्रमुख अध्ययनों में ये सब शामिल हैं–

i) शुंडिकायुक्त एवं जबड़ायुक्त प्रारूपों में विभेद,

ii) कीटों में पंखविहीन एवं पंखयुक्त में विभेद,

iii) पक्षी, मछलियों तथा व्हेलों जैसे अन्य प्राणियों की देख-पहचान। कोलियोप्टेरा, डिप्टेरा तथा साइकी (Psychae) एवं आज का लिपिडॉप्टेरा जैसे ऑर्डरों की स्थापना उसी ने की थी।

चित्र 1.3

जॉन रे (1627-170) मॉटेल, ऐसेक्स का निवासी तथा ट्रिनिटी, केम्ब्रिज का फेलो था। उसका सर्वाधिक रोचक वर्गीकरण संबंधी कार्य था "Synopsis Methodica Animalium Quadrupedum et Serpentini Generis" जो 1693 में प्रकाशित हुआ।

प्राणियों तथा पौधों दोनों पर पहला महत्वपूर्ण कार्य जॉन रे (John Ray) (1627-1705) ने प्रारंभ किया चित्र 1.3। उसने अरस्तू का अनुसरण करते हुए प्राणियों को रक्तयुक्त तथा प्रकटतः रक्तरहित नामक दो वर्गों में विभाजित किया। रक्तयुक्त प्राणियों को और आगे गिलयुक्त प्राणियों तथा फेफड़ायुक्त प्राणियों में विभाजित किया। उसने अन्य लक्षणों का भी प्रयोग किया जैसे कि अण्डों का दिया जाना अथवा जीवित शिशुओं को जन्म देना, चौड़े खुरों का होना अथवा नखरों का होना, दो कृतक (incisors) दांतों का होना अथवा दो से अधिक कृतकों का होना आदि-आदि। इस प्रकार उसने लगभग समस्त प्राणी जगत को विभाजित किया। इस वर्गीकरण प्रणाली को सभी ने सराहा क्योंकि यह तर्कसंगत थी, व्यावहारिक थी और इस्तेमाल करने में सरल भी थी। उसने पहली बार एक पदानुक्रम वर्गीकरण प्रणाली की नींव रखी और पहली बार स्पीशीज़ प्रजाति की एक जननशील इकाई के रूप में अच्छी परिभाषा प्रस्तुत की।

चित्र 1.4

प्राणि वर्गिकी में, लिनियस के कारण 1 जनवरी. 1758 की तारीख बहुत महत्वपूर्ण है क्योंकि इसी दिन से नामकरण का प्रारंभ हुआ।

उसके बाद 18वीं शताब्दी में लिनियस (चित्र 1.4) तथा उसके अनुयायियों हार्टमान (Haartman) 1751, 1764, कॉलरॉयटर (Kolreuter) 1761-1766 में वर्गव्यवस्था को और आगे बढ़ाया। लिनियस पहला व्यक्ति था जिसने पदानुक्रम प्रणाली को प्राणिजगत एवं वनस्पति जगत दोनों में लागू किया। उसने प्राणिजगत में चार श्रेणियों की विधि अपनायी, ये श्रेणियां थी क्लास, आर्डर, जीनस तथा स्पीशीज़।

उसने 1758 में क्वाड्रपेडा (Quadrupeda) के स्थान पर मेमेलिया (Mammalia) का नाम इस्तेमाल किया। उसने पहला लक्षण आधारित वर्गीकरण प्रस्तुत किया जो संग्रहों में नमूनों की व्यवस्था का आधार प्रदान करता है, और साथ ही उसने द्विपदनाम नामकरण प्रदान किया जिसके द्वारा सूचना संग्रह एवं विशाल जैविकीय आंकड़ों के लिये एक पुनःप्राप्ति प्रणली प्राप्त हुई उसे "वर्गिकी का जन्मदाता" कहा गया।

लिनिययन विधि की आलोचना भी हुई और उसका सुधार भी हुआ परंतु इसमें सुधार का पहला गंभीर प्रयत्न करने वाला लैमार्क था उसने प्राणि जगत की मानसिक क्षमताओं के आधार पर तीन खण्डों में बांटा। उसने प्राणियों को जिन चार मुख्य प्रारूपों में विभाजित किया वे थे–वर्टीब्रेट प्राणी (Vertebrates) (कशेरूकी) मोलस्क प्राणी (Mollusc) आर्थ्रोपोड प्राणी (Arthopods) तथा रेडिएट प्राणी (Radiates)।

लैमार्क की वर्गिकी मुख्यतः स्थिर प्रकृति की थी और उसके वर्गीकरण में आधुनिक वर्गिकी के विकास की दिशा में वास्तविक मूल्य नहीं झलक पाया। वर्ग व्यवस्था में उसका सबसे बड़ा समर्थन उसकी वह परिशुद्धता है जो उसने विभिन्न टेक्सॉनों की पहचान में की थी।

उसके द्वारा दिए गए अनेक जीनस नाम तथा अन्य नाम आज भी प्रचलन में हैं। उसने विभिन्न प्राणी वर्गों के एक विशाखनशील वृक्ष के रूप में दर्शाया, जो वर्ग व्यवस्था में जातिवृत्त के इस्तेमाल का प्रारंभ था।

कुवियर (Cuvier) (1769-1832) लैमार्क की क्रमविकास संबंधी संकल्पना का आलोचक रहा, और उसके बाद यह संकल्पना आधी शताब्दी तक भूली रही। कुवियार ने लैमार्क की सीधी आलोचना की और इस कारण उस युग में प्राणी वर्गिकी की प्रगति बहुत प्रभावित हुई। उससे आगे के दशक **तीन महान विचारधाराओं** के उदय के लिए प्रसिद्ध है जिनकी प्राणि-वर्गिकी पर गहरी छाप पड़ी। इनमें से पहली विचारधारा थी वॉन बेयर (Von Baer) द्वारा प्रतिपादित बेयर-नियम। इस मत में कहा गया है कि भ्रूण जितना भी अल्पायु होगा वह परिवर्धन की समान प्रावस्थाओं के अन्य जीवों के भ्रूणों से उतना ही ज्यादा मिलता-जुलता होगा।

दूसरी विचारधारा में अर्न्स्ट हीकेल (Earnst Haeckel) द्वारा दिया गया इसी नियम का स्पष्टीकरण था, जिसे पुनरावर्तन सिद्धांत (recapitulation theory) अथवा व्यक्तिवृत में जातिवृत्त की पुनरावृत्ति (ontogeny repeats phylogeny) कहा गया है।

तीसरा सिद्धांत था प्राकृतिक वरण द्वारा क्रमविकास जिसे सन् 1859 में डार्विन तथा वालेस ने संयुक्त रूप में रखा था। इस सिद्धांत ने लैमार्क तथा कुवियर दोनों की ही विचारधाराओं को सर्वाधिक बल दिया।

कई दशकों तक डार्विन के प्रति व्यापक विरोध के कारण वर्गीकरण विज्ञान के विकास पर प्रतिकूल असर पड़ा

19वीं शताब्दी के समाप्त होते-होते डार्विन के विचारों को व्यापक मान्यता दी जाने लगी। प्रकृतिविज्ञानियों ने उन अप्राप्त कड़ियों को ढूंढना शुरू कर दियां जो प्रकटतः असंबंधित टेक्सॉनों के बीच रही होंगी, और अंततः उन्होंने "आदिम पूर्वजों" का पुनर्निर्माण कर ही लिया। हीकेल ने जातिवृत्तीय वृक्षों का प्रस्ताव रखा था और इसने भी अनेक अनुभवसिद्ध कार्यकर्ताओं को प्रोत्साहित किया तथा ऐसी अनेक स्पीशीज़ की खोज हुई एवं उनका वर्णन किया गया।

तदुपरांत आयी आधुनिक वर्गिकी। उसके विकास के साथ-साथ कार्यकर्ताओं ने अनुभव किया कि एक या दो नमूनों पर आधारित लिनियन स्पीशीज़ उतनी परिपूर्ण नहीं होती जितनी की समष्टि अध्ययनों पर आधारित स्पीशीज़ होती है। इन अध्ययनों के बाद मायर (Mayr) ने विभिन्न स्पीशीज़ को परस्पर प्रजनन करती हुई प्राकृतिक समष्टियों के समूहों के रूप में विचारा। समष्टि वर्गिकी की यह विचारधारा "बहुप्रारूपी संकल्पना (Polytypic concept) की स्थापना में लाभप्रद रही।

वर्गिकी के इतिहास में न्यू सिस्टेमेटिक्स नामक पुस्तक का प्रकाशन एक युगान्तरकारी घटना थी

नए-नए नाम जैसे कि न्यू सिस्टेमेटिक्स (new systematics) तथा बायोसिस्टेमेटिक्स (biosystematics) बनाए गए। तब वर्गिकीविदों ने अनुभव किया कि सही-सही दृढ़ वर्गीकरण में अन्य लक्षणों का भी महत्व है। तब वैज्ञानिकों ने क्षेत्र अध्ययनों के द्वारा सजीव प्राणियों के अन्य लक्षणों को भी ढूंढना शुरू किया जैसे कि उनके आचरण, उनकी पारिस्थितिकी, आनुवंशिकी, प्राणिभूगोल, कार्यिकी, जैवरसायन आदि। इस प्रकार वर्गिकी को अपने सही अर्थ में एक नया नाम जैविकीय वर्गिकी दिया गया। स्पीशीज़ सम्मिश्रों को सुलझाने की दिशा में वर्गिकीविदों को नयी लक्षण विशिष्टताओं पर निर्भरता की जानकारी हुई और लगभग 1955 के आने तक वर्गिकी विस्फोट की स्थिति पहुंच चुकी थी।

इसी प्रकार आज के वर्गिकीय कार्यों में सभी उपलब्ध समानताओं एवं असमान्ताओं, जातिवृत्तीय अनुकूलनों, भ्रूणविकसीय व्यवस्थाओं, जैवरसायन विभिन्नताओं, आनुवंशिकीय समानता तथा व्यावहारात्मक विशिष्टताओं आदि को शामिल किया जाता है। इस प्रकार के सभी विविध स्रोतों से प्राप्त आंकड़ें परस्पर तालमेल बढ़ाते हुए वर्गीकरण योजना की मूलभूत वैधता का समर्थन करते हैं।

1.7 प्राचीन भारत में पादप वर्गिकी

भारत में वनस्पतिकीय विज्ञान के इतिहास का प्रारंभ बहुत पहले वैदिक काल (लगभग 1500 ई.पू. से 600 ई.पू.) में हुआ। इसकी शुरुआत कृषि के विकास से हुई जब लोगों ने विविध खाद्य फसलों की खेती करनी शुरू की। उस युग के साहित्य में ऐसे अनेक तकनीकी शब्द मिलते हैं जो पौधों तथा पौधों के विभिन्न भागों के वर्णन के लिए इस्तेमाल किए जाते थे। आर्थिक दृष्टि से महत्वपूर्ण पौधों के वर्गीकरण उनकी आकारिकी एवं शरीररचना के विषय में विस्तृत विवरण मिलते हैं। पौधों के अध्ययन चिकित्सा, कृषि तथा उद्यानिकी के संदर्भ में किया जाता था "आयुर्वेद" "चरक संहिता" तथा "सुश्रुत संहिता" जैसे प्रारंभिक वनस्पतिकीय ग्रंथ इसलिए मूलतः उपयोगितापरक थे। कहा जाता है कि 2500 से अधिक वर्ष पहले तक्षशिला विश्वविद्यालय के एक सुविख्यात शिक्षक भिक्षु अत्रेय (Atreya) ने अपने एक शिष्य जीवक को उस विश्वविद्यालय के चार योजनों के दायरे में सभी उपलब्ध पौधों का संग्रह करने, उन्हें पहचानने तथा उनके गुणधर्मों का विवरण करने का काम सौंपा था। धनवंतरी, नागार्जुन, अग्निवेश, जातुकर्ण, भेला हरिता आदि विभूतियों को औषधीय पौधों की विशिष्टताओं की निकट जानकारी थी।

पादप जीवन के विषय में वैज्ञानिक विधि से लिखी गई एक आरंभिक कृति थी **वृक्षायुर्वेद** जिसे पराशर ने ईसा युग के प्रारंभ होने से भी पहले संकलित किया था। यह ग्रंथ प्राचीन भारत में वनस्पतिकीय शिक्षण एवं चिकित्सा अध्ययनों का आधार था। इस ग्रंथ में देश के पौधों का वर्गीकरण उनकी आकारिकी एवं उनका शारीर, मृदा प्रारूपों की प्रकृति एवं उनके गुणधर्म तथा वनों का वर्गीकरण दिया गया है। इस कृति में पौधों की तुलनात्मक आकारिकी पर आधारित वर्गीकरण प्रणाली भी दी गई है।

पादप वर्गीकरण की इस प्रणाली को अट्ठारहवीं शताब्दी से पूर्व संसार में कहीं भी प्रस्तावित अन्य किसी भी प्रणाली से अधिक उन्नत माना जाता है। अनेक फेमिलियों (गणों) को उसी तरह स्पष्ट देखा जाता था जैसे कि आज भी देखा जाता है। आज की फेमिली **क्रूसिफेरी** (Cruciferae) को **स्वस्तिकगणियम्** कहा जाता था क्योंकि इसकी पंखुडियों एवं बाह्यदलों की व्यवस्था एक स्वास्तिक के समान थी और इसके अलावा फूलों की अन्य विशेषताएं इस प्रकार थी : एक ऊर्ध्व अण्डाशय, चार मुक्त बाह्यदल, चार मुक्त पंखुडियां, छह पुंकेसर जिनमें दो छोटे थे और चार लम्बे, दो स्त्रीकेसर जो समेकित थे तथा जिनसे द्विकोष्ठीय फल बनता था। आज की **कुकुरबिटेसी** (cucurbitaceae) को **त्रिपुंसगणियम्** कहा जाता था और इसमें विशिष्टतः जायांगोपरिक फूल (epigynous) पाए जाते थे,जो कभी-कभी उभयलिंगी होते थे तथा जिनमें पांच बाह्यदल, पांच समेंकित पंखुडियां, तीन पुंकेसर और एक एककोष्ठीय अण्डाशय होता था जिसमें बीजांडों की तीन पंक्तियां होती थी। इससे स्पष्ट पता चलता है कि पराशर का कार्य केवल उपयोगपरक ही नहीं था वरन् साथ ही वैज्ञानिक अध्ययनों का संकलन भी थी। इससे सिद्ध होता है कि उस सुदूर काल में भी यहां भारत में पौधों का वर्गीकरण वैज्ञानिक ढंग से किया गया था।

बोध प्रश्न 4

कॉलम A में दिए गए शब्दों का कॉलम B में दिए गए शब्दों से मिलान कीजिए।

	कॉलम A	कॉलम B
1.	ओरिजिन ऑफ सपीशीज़	डायोसकोरॉइडीस
2.	चिकित्सा का जन्मदाता	थीयोफ्रास्टस
3.	स्तगीरी	पराशर
4.	प्रथम वनस्पतिक उद्यान का संस्थापक	क्रूसिफेरी
5.	वनस्पतिकी का जन्मदाता	चार्ल्स डार्विन
6.	*हिस्टोरिया प्लैंटेरम*	डेमोक्रिटस
7.	*हिस्टोरिया नेचुरेलिस*	कुकुरबिटेसी

8.	*ग़ेनिमिया ज़ूलियाना*	अरस्तू
9.	वृक्षायुर्वेद	अरस्तू
10.	स्वास्तिकागणियम्	प्लाइनी
11.	त्रिपुसगणियम्	थियोफ्रास्टस

1.8 सारांश

- वर्गिकी जीवधारियों को नाम देने तथा उनका वर्गीकरण करने का विज्ञान है।
- सजीव जीवधारियों के वर्गीकरण की आवश्यकता इसलिए है कि किसी पौधे के वैज्ञानिक नाम से उसकी स्पीशीज़ तथा जीनस की सूचना मिलती है और उससे फेमिली का भी निर्धारण हो सकता है।
- वैज्ञानिक नाम से उसे बहुत सी सूचना की भी पूर्वजानकारी हो जाती है जो उस पौधे पर लागू होती हैं।
- वर्गिकी के तीन प्रमुख उद्देश्य इस प्रकार हैं :
  - i) सभी प्रकार के पौधों एवं प्राणियों की जानकारी
  - ii) प्राप्त ज्ञान का संग्रह
  - iii) सजीव जगत में विविधता का प्रदर्शन तथा मानव द्वारा क्रम विकास के समझने में उसका संबंध
- वर्गिकी का मुख्य लक्ष्य एक ऐसा व्यावहारिक वर्गीकरण तैयार करना है जिसमें क्रमविकासीय संबंधों की झलक मिले और एक नामकरण एवं पहचान प्रदान हो सके।
- पादप वर्गीकरण का इतिहास बहुत पुराना है जिसका प्रारंभ प्राचीन यूनानियों एवं रोमवासियों से हुआ। ये औषधग्रंथकाल थे उसके बाद संक्रमण काल एवं उत्तर औषध ग्रंथकाल आया। भारत में वनस्पतिकीय विज्ञानों का इतिहास लगभग 1500 ई.पू. से 600 ई.पू. का पुराना है।

1.9 अंत में कुछ प्रश्न

1) वर्गिकी के मुख्य उद्देश्यों की सूची बनाइए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2) वर्गिकी के किन्हीं 10 सिद्धांतों के विषय में लिखिए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

3) पादप वर्गीकरण के इतिहास पर एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

1.10 उत्तर

बोध प्रश्न

1) 1 स, 2 ग, 3 ग, 4 स, 5 स, 6 स

2) विविधता का अध्ययन, पहचान, वर्गीकरण, क्रमविकास, समान विशिष्टताएं, प्रणाली जीनस, फेमिलीयां, पदस्तर, स्पीशीज़, जीनसें, फेमिलियां।

3) 1) गैर क्रम विकासीय
2) गैर आनुवंशिक
3) अस्थिर
4) सतत न पाए जाने वाले
5. द्विसोतोद्भवी
6) नहीं किया जाना चाहिए
7) केवल ह्रास
8) नहीं दिया जाना चाहिए
9) शामिल नहीं होती है
10) नहीं दर्शाता है।

4)

	कॉलम A	कॉलम B
1.	ओरिजिन ऑफ स्पीशीज़	चार्ल्स डार्विन
2.	चिकित्सा का जन्मदाता	डेमाक्रिटस
3.	स्तगीरी	अरस्तू
4.	प्रथम वनस्पतिक उद्यान का संस्थापक	अरस्तू
5.	वनस्पतिकी का जन्मदाता	थियोफ्रास्टस
6.	हिस्टोरिया प्लैंटेरम	थियोफ्रास्टस
7.	हिस्टोरिया नेचुरेलिस	प्लाइनी
8.	ऐनिसिया जूलियाना	डायोस्कोरॉइडीस
9.	वृक्षायुर्वेद	पराशर
10.	स्वास्तिकागणियम	क्रसिफ़ेरी
11.	त्रिपुसगणियम	कुकुरबिटेसी

अंत में कुछ प्रश्न

1) i) पहला और प्रमुख उद्देश्य है पृथ्वी पर पाए जाने वाले पौधों तथा प्राणियों के विभिन्न प्रकार, उनके नाम, विभेद, बंधुताएं, वितरण एवं स्वभाव विशिष्टताओं के विषय में जानना।

ii) दूसरा उद्देश्य है अर्जित ज्ञान का संचयन।

iii) तीसरा उद्देश्य पादप संसार की विशाल विविधता एवं मानव द्वारा क्रमविकास के बोध में इसके संबंध को दर्शाना है।

2) विद्यार्थी सेक्सन 1.4 में दिए गए किन्हीं 10 सिद्धांतों को लिख सकते हैं।

3) उत्तर के लिए भाग 1.4 देखिए।

इकाई 2 वर्गीकरण एवं प्रणालियां : पादप

इकाई की रूपरेखा

2.1 प्रस्तावना
उद्देश्य
2.2 लिनियस युग : वर्गीकरण की कृत्रिम प्रणाली
वर्गीकरण का आधार
प्रणाली की रूपरेखा
2.3 वर्गीकरण की प्राकृतिक प्रणाली
बेंथम तथा हुकर प्रणाली
वर्गीकरण की रूपरेखा तथा आधार
गुण
दोष
2.4 वर्गीकरण की जातिवृतीय प्रणालियां
ऐंग्लर तथा प्राण्टल प्रणालियां
हचिन्सन प्रणाली
तख्तज़ान प्रणाली
2.5 सारांश
2.6 अंत में कुछ प्रश्न
2.7 उत्तर

2.1 प्रस्तावना

इकाई 1 में आपने वर्गिकी के इतिहास एवं उसकी संकल्पना के विषय में पढ़ा। अब आप ऐंजियोस्पर्मो के वर्गीकरण के विकास के संबंध में पढ़ेंगे। ऐंजियोस्पर्मो के वर्गीकरण का विकास एक बहुत ही रोचक विषय है। क्रमवत घटनाओं के अध्ययन से समय-समय पर अनेक प्रतिष्ठित विद्वानों, वनस्पतिज्ञों तथा विचारकों के द्वारा बनाए गए विभिन्न वर्गीकरण सामने आए। पौधों की जानकारी अनादि काल से चली आ रही है और मानव जीवन के साथ उसका निकट का संबंध है। जैसे-जैसे मनुष्य को अधिकाधिक संख्या में पौधों की जानकारी होती गयी वैसे-वैसे उन्हें एक व्यवस्था में रखने की आवश्यकता महसूस हुई और उसी से कदाचित आदितम वर्गीकरण अस्तित्व में आया। आकारिकी, भ्रूणविज्ञान, परागाणुविज्ञान, कोशिकाविज्ञान, जीवरसायन, कार्यिकी तथा जातिवृत के ज्ञान ने वर्गीकरण की संकल्पना में अनेक चरण जोड़े। वर्गीकरण की कहानी से वनस्पतिकी की कई अन्य सम्बद्ध शाखाओं का विकास हुआ। लिनियस ने एक या कुछ ही लक्षणों पर आधारित वर्गीकरण की एक कृत्रिम प्रणाली बनायी। इस प्रकार वर्गीकरण एक ऐसी मूलभूत विधि है जिसके द्वारा मनुष्य बाहरी संसार पर अपनी पकड़ एवं उसमें एक व्यवस्था बनाता है। वास्तव में पौधों तथा प्राणियों को मूलतः उसी तरीके से वर्गीकृत किया जाता है जैसे कि अजैव वस्तुओं को, यानी उनके विविध लक्षणों के आधार पर। उदाहरण के लिए, कोई व्यक्ति पुस्तकालय की पुस्तकों को उनकी जिल्दों के रंग के आधार पर अथवा उनके लेखकों के आधार पर वर्गीकृत कर सकता है। इसी प्रकार कोई चाहे तो पौधों को उनके फूलों के रंग अथवा किसी अन्य लक्षण के आधार पर वर्गीकृत कर सकता है।

इस आधारभूत इकाई में आप विभिन्न प्रकार के वर्गीकरणों, उनके गुण-दोष, आदि के विषय में विस्तार से अध्ययन करेंगे।

उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन कर चुकने पर आप :

- पौधों के वर्गीकरण का महत्व समझ सकेंगे।
- कृत्रिम, प्राकृतिक तथा जातिवृतीय प्रणालियों में विभेद कर सकेंगे।
- वर्गीकरण की विविध प्रणालियों की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, उनकी रूपरेखा, वर्गीकरण का आधार, तथा उनके गुण-दोष का वर्णन कर सकेंगे।

2.2 वर्गीकरण के प्रकार

यदि कोई अपना सारा जीवन भी लगा दे तो उसके लिए संसार के समस्त पौधों का अध्ययन करना लगभग असंभव है। इसलिए यह आवश्यक है कि पौधों को उनकी समानताओं और भिन्नताओं के आधार पर छोटे-बड़े समूहों में रखा जाए। तदनन्तर इन समूहों के आर्डर, फ़ेमिली, जीनस तथा स्पीशीज़ आदि के पद स्तरों के अनुसार व्यवस्था में रखा जाता है। उदाहरण के लिए, समान व्यष्टियों को एक स्पीशीज़ के समूह में रखा जाता अर्थात् वर्गीकृत किया जाता है, समान स्पीशीज़ को एक जीनस में तथा समान जीनसों को एक फ़ेमिली में और समान फ़ेमिलियों को एक आर्डर में वर्गीकृत करते हैं, आदि-आदि (चित्र 2.1 तथा चित्र 2.2)।

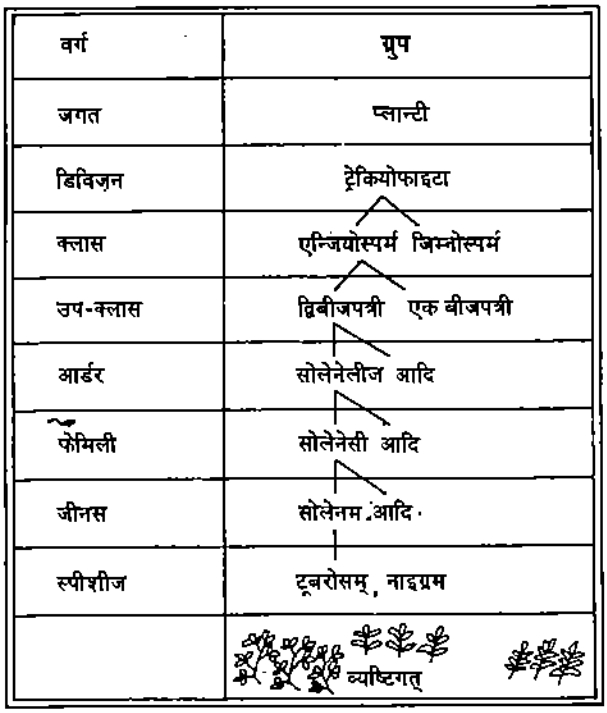

चित्र 2.1 : वर्गीकरण में विभिन्न समूह

वर्गीकरण मूलतः तीन प्रकार के होते हैं कृत्रिम, प्राकृतिक तथा जातिवृतीय।

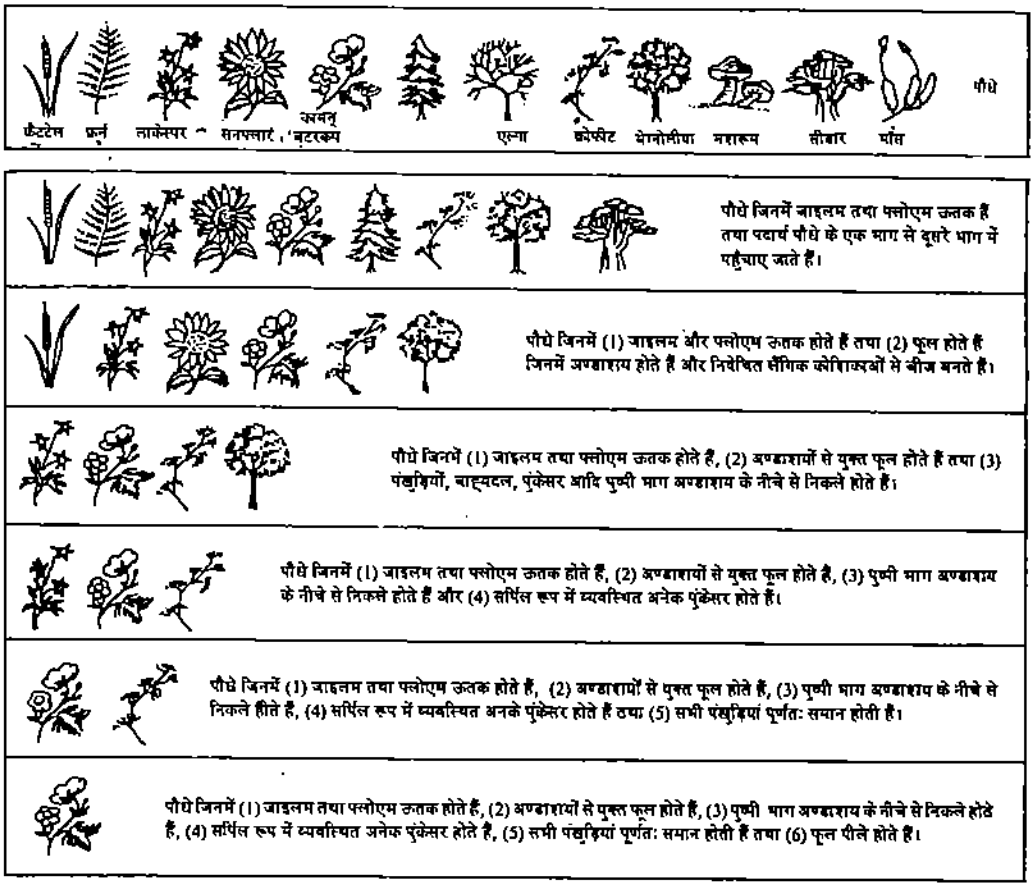

चित्र 2.2 : वर्गीकरण का आरेखीय निरूपण

2.2.3 कृत्रिम वर्गीकरण

पौधों का मात्र सुविधा के लिए यूं ही किसी भी एक अथवा सरलता से दिखाई पड़ने वाले अनेक लक्षणों के आधार पर किया गया वर्गीकरण **कृत्रिम वर्गीकरण** कहलाता है। एक सर्वाधिक परिचित कृत्रिम वर्गीकरण लिनियस का वर्गीकरण है जिसमें उसने पुंकेसरों की संख्या को एक महत्वपूर्ण लक्षण के रूप में मान कर वर्गीकरण किया गया है।

2.2.4 प्राकृतिक वर्गीकरण

वर्गीकरण की प्राकृतिक पद्धति में उस स्थिति की झलक मिलती है जो प्रकृति में विद्यमान रही होगी। इसका स्पष्ट अर्थ है कि आज के सभी पौधे परस्पर संबंधित हैं और उन्हें एक साथ मिलाकर एक प्राकृतिक समूह में रखा जाना चाहिए। बेंथम तथा हुकर की प्रणाली वर्गीकरण के प्राकृतिक समूह का एक अच्छा उदाहरण है।

2.2.5 जातिवृतीय वर्गीकरण

वर्गीकरण की जातिवृतीय प्रणालियों में पौधों को उनकी क्रमविकासीय प्रवृतियों के अनुसार वर्गीकृत किया जाता है। यहां यह स्पष्ट कहना होगा कि अधूरे फॉसिल (fossil) रिकार्ड के कारण किसी भी प्रणाली को एक परिपूर्ण जातिवृतीय प्रणाली नहीं कहा जा सकता। जातिवृतीय वर्गीकरण प्रायः प्राकृतिक वर्गीकरण के आधार पर ही तैयार किया जाता है। इस प्रकार देखा जाए तो व्यावहारिक तौर पर इन दोनों के वर्गीकरणों में एक अतिव्याप्ति पायी जाती है। एंग्लर तथा प्रान्टल (1887-1915), हचिन्सन (1926-1934), (1959 तथा 1973) और तख्तज़ान (1964, 1969 तथा 1980) द्वारा प्रस्तावित वर्गीकरण प्रणालियां जातिवृतीय वर्गीकरण के उत्कृष्ट उदाहरण हैं।

2.3 लिनियस युग : वर्गीकरण की कृत्रिम प्रणाली

केरोलस लिनियस (Carolus linnaeus) जो अधिक प्रचलित कार्ल वॉन लिने (Carl Von Linne) के नाम से प्रसिद्ध है, स्वीडेन के स्मालैंड के एक छोटे गांव रेशल्ट में मई 1707 में जन्मा था। उसे पौधे, प्राणियों तथा खनिजों के संग्रह करने में खास रुचि थी और इसीलिये उसने दूर-दूर की यात्राएं की। इन खोजों के दौरान उसने बहुत बड़ा संग्रह किया, और इसी संग्रह के आधार पर उसने एक वर्गीकरण की कृत्रिम प्रणाली अथवा लैंगिग (sexual) प्रणाली है। लिनियस की अपनी वर्गीकरण प्रणाली से संबंधित सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्रकाशन ये हैं *Systema Naturae* (1735), *Flora Lipponica* (1737), *Genera Plantarum* (1737), तथा *Species Plantarum* (1753)

2.3.1 वर्गीकरण का आधार

लिनियस ने मुख्यतः पुंकेसरों तथा स्त्रीकेसरों के लक्षण का प्रयोग किया। इसीलिए इस प्रणाली को वर्गीकरण की लैंगिक प्रणाली कहा गया है। साथ ही उसने वर्गीकरण में पुंकेसरों की संख्या को लिया, इसीलिए इस वर्गीकरण को संख्यात्मक वर्गीकरण का भी नाम दिया गया है। लिनियस द्वारा प्रस्तावित वर्गीकरण के आधार इस प्रकार हैं :

i)	पुंकेसरों की संख्या	(I—XII क्लास)
ii)	पुंकेसरों का साइज़	(XIV—XV क्लास)
iii)	पुंतंतुओं का बंडलों में जुड़ना	(XVI—XVIII)
iv)	परागकोशों का जुड़ना	(XIX)
v)	पुंकेसरों की अण्डाशय के साथ संलग्नता	(XX)
vi)	पौधों में सेक्स का वितरण	(XXI—XXIII)
vii)	पुष्पविहीन पौधे	(XXIV)

2.3.2 प्रणाली की रूपरेखा

लिनियस ने अपनी प्रसिद्ध रचना *"Genera plantarum"* (1937) तथा *"Species plantarum"* (1753) में पादप जगत को 24 क्लासों में वर्गीकृत किया है। "स्पीशीज़ प्लांटेरम" में उसने 1000 जीनसों के अंतर्गत लगभग 6000 स्पीशीज़ की पहचान की। वनस्पतिकी संसार में आज भी इस कार्य को सर्वाधिक महत्व का माना जाता है। यहां यह कहना अप्रसांगिक नहीं होगा कि इसी पुस्तक में लिनियस ने द्विपदनाम पद्धति (Binomial nomenelature) का प्रस्ताव रखा था और यही कारण है कि *Species plantarum* को और **तिथि 1 मई 1753** को आधुनिक वनस्पतिकीविदों ने आज के वनस्पतिकीय नामकरण का आरंभ बिंदु कहा जाता है। पहली बार उसने एक व्यष्टिगत जीवधारी के लिये लैटिन भाषा में दो नामों का इस्तेमाल किया अर्थात् एक जीनस नाम तथा एक स्पीशीज़ नाम। द्विपदनाम पद्धति के विकास में यही आधारशिला थी।

लिनियस द्वारा प्रस्तावित वर्गीकरण रूपरेखा इस प्रकार है :

क्लास I मोनोऐन्ड्रीआ (Monandria)—एक पुंकेसर, जैसे *कैना (Canna), सैलीकॉर्निया (Salicornia)*

क्लास II डाइऐन्ड्रीया (Diandria)—दो पुंकेसर, जैसे *ओलिए (Olea), वैरोनिका (Veronica)*

क्लास III ट्राइएन्ड्रीया (Triandria)—तीन पुंकेसर, जैसे अनेक प्रकार की घासें

क्लास IV टैट्राऐंड्रीया (Tetrandria)—चार पुंकेसर, जैसे *प्रोटिए (Protea), गैलियम (Galium)*

क्लास V पैन्टाऐन्ड्रीया (Pentandria)–पांच पुंकेसर, जैसे *आइपोमिया (Ipomea)*; *कैम्पैनूला (Campanula)*

क्लास VI हैक्साऐन्ड्रीया (Hexandria)–छह पुंकेसर, जैसे *नार्सिसस (Narcissus)*, *लिलियम (Lilium)*

क्लास VII हैप्टाऐन्ड्रीया (Heptandria)–सात पुंकेसर, जैसे *ट्राइन्टेलिस (Trientalis)*, *ऐस्कुलस (Aescules)*

क्लास VIII औक्टाऐन्ड्रीया (Octandria)–आठ पुंकेसर, जैसे *वैक्सीनियम (Vaccinium)*, *डिरैक (Dirca)*

क्लास IX ईनैन्ड्रीया (Enneandria)–नौ पुंकेसर, जैसे *लॉरस (Laurus)*, *ब्यूटमस (Butomus)*

क्लास X डैकाऐन्ड्रीया (Decandria)–दस पुंकेसर, जैसे *रोडोडेन्ड्रान (Rhododendron)* *औक्जैलिस (Oxalis)*

क्लास XI डोडीकाऐन्ड्रीया (Dodecandria)–ग्यारह से उन्नीस पुंकेसर, जैसे *एसेरम (Asarum)*

क्लास XII आइकौसैन्ड्रीया (Icoandria)–बीस या बीस से अधिक पुंकेसर, बहुयदलपुंज से जुड़े हुए, जैसे *ओपन्शिया (Opuntia)*

क्लास XIII पॉलीऐन्ड्रीया (Polyandria)–बीस या बीस से अधिक पुंकेसर पुष्पासन से जुड़े हुए, जैसे *टिलिया (Tilia)*, *रैनुनकुलस (Ranunculus)*

क्लास XIV डाइडैनेमीया (Didynamia)-2 पुंकेसर छोटे तथा दो लंबे, जैसे *मैन्था (Mentha)*, (पुदीना)

क्लास XV टैट्राडाईनैमीया (Tetradynamia)— दो पुंकेसर छोटे तथा 4 पुंकेसर लंबे, जैसे *ब्रैसिका (Brassica)* (सरसों)

क्लास XVI मॉनोडैल्फीया (Monadelpia)–पुंकेसरों का केवल एक बंडल में बना होना, जैसे *हिबीसकस (Hibiscus)*

क्लास XVII डाईडैल्फीया (Diadelphia)–पुंकेसर 2 बंडलों में बने हुए, जैसे *पाइसम (Pisum)* (मटर)

क्लास XVIII पॉलीडैल्फीया (Polyadelphia)–पुंकेसर अनेक बंडलों में, जैसे *बोम्बैक्स (Bombax)*

क्लास XIX सिन्जेनेसियस (Syngenesia)–परागकोश समेकित लेकिन पुंतंतु स्वतंत्र (सिनजेनेसियम दशा), जैसे सूरजमुखी के समान अनेक कम्पोजिटी पौधे

क्लास XX सिनऐन्ड्रीया (Synandria)–पुंकेसर जायांग से संलग्न, जैसे ऑर्किड

क्लास XXI मोनोशीया (Monoecia)–पौधे उभय लिंगाश्रयी, नर अथवा मादा फूल एक ही पौधे पर होते हैं, जैसे *कुकुरबीटा (Cucurbita)*

क्लास XXII डायोशीया (Diaocia)–पौधे एकलिंगाश्रयी, नर तथा मादा फूल भिन्न पौधे पर लगते हैं, जैसे पपीता

क्लास XXIII पॉलीगैमीया (Polygamia)–पौधे विविधलिंगी (polygamous), नर, मादा तथा उभयलिंगी फूल उसी पौधे पर लगते हैं, जैसे आम

क्लास XXIV क्रीपटोगैमीया (Cryptogamia)–फूल अप्रकट, जैसे शैवाल, लाइकेन, कवक, मस्काई (मासें), फाईलिसीज (फर्न) आदि

वर्गीकरण में पौधों की व्यवस्था करने में लिनियस ने टूर्नेफोर्ट का अनुसरण किया था तथा इसमें उसमें और आगे संशोधन कर उसमें अपनी विचारधारा को भी जोड़ा। मगर उसका वर्गीकरण कृत्रिम था क्योंकि उसने बस केवल एक प्रधान लक्षण लेकर उसके आधार पर टेक्सानों का परिसीमन किया और इन टेक्सॉनों के परस्पर संबंध पर कोई ध्यान नहीं दिया

था। एक ही आधार को इस्तेमाल करते हुए एकबीजपत्री पौधों तथा द्विबीजपत्री पौधों की अनेक फेमिलियां एक साथ एक ही क्लास में आ गयीं। इस बात को वह भी जानता था और उसने संकेत किया कि इस प्रकार की कृत्रिम प्रणाली को मात्र एक व्यावहारिक एवं सरल विधि के रूप में ही लिया गया था ताकि उस काल के सभी ज्ञात पौधों को पहचान कर उन्हें वर्गों में रखा जा सके। अतः लिनियस ने कभी इस बात पर जोर नहीं दिया कि उसकी प्रस्तावित की जा रही प्रणाली ही परिपूर्ण एवं प्राकृतिक थी। अपने बाद में जीवन में उसने कहना शुरू कर लिया था कि एक लक्षण को लेने की बजाय लक्षण समूह को ध्यान में लेना चाहिए।

लिनियस के काल में क्रम विकास की संकल्पना स्पष्ट नहीं थी तथा डार्विन का विकासवाद लिनियस के एक शताब्दी बाद प्रकाश में आया। अनेक परिसीमाओं के बावजूद लिनियस ने जीव जगत के ज्ञान में एक उत्कृष्ट योगदान किया है।

बोध प्रश्न 1

लिनियस द्वारा प्रस्तावित कृत्रिम वर्गीकरण के तीन आधार क्या-क्या थे?

.....

.....

.....

बोध प्रश्न 2

निम्न वनस्पतिकीय अभिव्यक्तियों के लिए एक-एक शब्द बताइए :

अ) जब 2 पुंकेसर छोटे और 2 लंबे होते हैं
..... ।

ब) जब 2 पुंकेसर छोटे और 4 लंबे होते हैं
..... ।

स) जब सभी पुंकेसर एक ही बंडल में होते हैं
..... ।

2.4 वर्गीकरण की प्राकृतिक प्रणाली

लिनियस के बाद वनस्पतिकीविदों की रुचि इस बात में हुई कि वनस्पति की खोज करके वर्गिकीय ज्ञान में प्रसार किया जाए और उन्होंने विभिन्न पौधों में प्राकृतिक बंधुता का अस्तित्व अनुभव करना शुरू कर दिया। वर्गीकरण की प्राकृतिक प्रणालियों को इस प्रकार बनाने में कि उनमें अलग-अलग पौधों के प्राकृतिक संबंधों की झलक मिल सके बहुत से दृष्टिकोण अपनाए गए। वर्गीकरण की एक सर्वोत्तम प्राकृतिक प्रणाली को प्रस्तुत करने वाले थे जार्ज बेंथम (1800-1884) तथा जोजेफ़ डाल्टन हुकर (1817-1911)।

बेंथम तथा हुकर की प्रणाली

बर्नार्ड ड जुसू (1699-1776) ने पेरिस के रॉयल गार्डन के पौधों का वर्गीकरण करने का प्रयत्न किया। इस कार्य के दौरान एक ऐसी वर्गीकरण प्रणाली विकसित की जो वास्तव में वर्गीकरण की सबसे पहली प्राकृतिक प्रणाली थी। उसके शीघ्र बाद ही ए.पी.डी. केन्डोल (1770-1841) ने एक वर्गीकरण प्रणाली सामने रखी जो ड जुसू की प्रणाली के मात्र रूपांतरित स्वरूप के अलावा और कुछ अलग नही थी।

रूपाकृति-संबंधों के सामान्य सिद्धांत पर आधारित वर्गीकरण की सर्वाधिक प्रचलित प्राकृतिक प्रणाली का प्रस्तुतिकरण दो ब्रिटिश वनस्पतिकीविदों जार्ज बेंथम (1800-1884)

तथा सर जोजेफ डाल्टन हुकर (1817-1911) ने किया था। क्यू के रॉयल बोटेनिकल गार्डन्स के निदेशक होने की हैसियत से हुकर को हर सुविधा प्राप्त थी। बेंथम तथा हुकर ने अपनी अतिमहत्वपूर्ण रचना जैनरा पैल्नटैरम (Genera plantarum) (1862-1883) का प्रकाशन किया। इस कृति में उस समय तक के ज्ञात सभी बीजधारी पौधों (लगभग 97,205 स्पीशीज़) के नाम उनके सही-सही विवरण तथा उनका वर्गीकरण किया गया है। इसमें "फेमिली" शब्द को "आर्डर" कहा गया तथा "आर्डर" शब्द को कोहार्ट (Cohort) कहा गया है। इस वर्गीकरण प्रणाली को राष्ट्रमण्डल के अधिसंख्य देशों में जिनमें भारत भी एक है, अपनाया गया है। इस प्रणाली में कुल मिलाकर 202 फेमलियां मानी गयी हैं। इसमें रेननकुलेसी फेमिली से प्रारंभ करके पोएसी फेमिली से अंत किया गया है।

हमारा राष्ट्रीय हर्बेरियम (Central National Herbarium) भी बेंथम तथा हुकर की प्रणाली के अनुसार व्यवस्थित किया गया है।

2.4.1 वर्गीकरण की रूपरेखा एवं उसका आधार

जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है यह प्रणाली मुख्यत: रूपाकृति संबंध के सिद्धांत पर आधारित है। इस प्रकार कुल मिलाकर समानताओं तथा भिन्नताओं के आधार पर विविध जीनसों को आर्डरों के अंतर्गत तथा विविध आर्डरों को कोहार्टो के अंतर्गत रखा गया। कुछ एक आर्डरों को जो संतोषजनक रूप में किसी भी कोहार्ट में नहीं रखे जा सकते थे असंगत आर्डर (Ordines anomali) का दर्जा दिया गया, जैसे *Moringa,* जिसे सामान्य भाषा में सेंजना कहते हैं जो अंग्रेजी में "Drumstick" कहलाता है तथा फेमिली मोरिंगी के अंतर्गत आता है।

इस वर्गीकरण की रूपरेखा तथा आधार निम्नलिखित हैं–

1) फैनेरोगम (पुष्पी पौधे अथवा बीजधारी पौधे) 3 क्लासों में वर्गीकृत किए गए– i) द्विबीजपत्री (Dicotyledons), ii) जिम्नोसपर्म (Gymnosperms), iii) एकबीजपत्री (Monocotyledons) यह विभाजन क्रमश: द्विबीजपत्रीय तथा एकबीजपत्रीय पौधों में जालकीय शिरान्यास बनाम समांतर शिरान्यास, 4-5 खण्डी फूल बनाम 3 खण्डी फूल बीज में 2–बीजपत्र बनाम 1–बीजपत्र के लक्षणों पर आधारित है। इन्होंने जिम्नोस्पर्मो को द्विबीजपत्रियों तथा एकबीजपत्रियों के बीच में रखा क्योंकि जिम्नोस्पर्म वर्ग में बीज नग्न होते हैं।

2) द्विबीजपत्रियों को और आगे तीन उपक्लासों में विभाजित किया गया a) पलिपेटली, (polypetalae) b) गैमोपेटेली (gamopetalae) तथा c) मानोक्लैमाइडी (Monochlamydae)। यह विभाजन मुख्यत: पंखुडियों के होने या न होने तथा उनके समेकन के आधार पर हुआ है। उदाहरण के लिए, पॉलिपेटेली में पंखुडियां होती है और वे स्वतंत्र होती हैं जबकि गैमोपेटेली में पंखुड़ियां समेकित होती है। इसके विपरीत मानोक्लैमाइडी में कोई स्पष्ट पंखुड़िया नहीं होती वरन परिपुष्प (perianth) होता है जो 1 अथवा 2 पंक्तिबद्ध (seriate) होता है।

3) पॉलिपेटेली को और आगे 3 सीरीज़ में विभाजित किया गया है। a) थेलेमिफ्लोरी (Thalamiflorae), b) डिस्कीफ्लोरी (Disciflorae) तथा c) कैलिसिफ्लोरी (Calycifolrae)। यह विभाजन मुख्यत: पुष्पासन (Thalamus) के सापेक्ष अण्डाशय की स्थिति पर आधारित है।

4) थैलेमिफ्लोरी में 6 कोहार्ट (आज के आर्डर) तथा 34 आर्डर (आज की फेमिलियां) हैं। आरंभ किया गया आर्डर है रैनेलीज़ (Ronales) से तथा आरम्भ की गयी अर्थात् पहली फेमिली है रैननकुलैसी (Ranunculanceae) अंतिम छठा आर्डर है माल्वेलीज़ (Malvales) जिसमें इस सीरिज की आखिरी फेमिली है टिलिएसी (Tiliaceae)।

5) डिस्कीफ्लोरी जिसमें ऊर्ध्व अण्डाशय से युक्त एक सुविकसित डिस्क होती है, 4 आर्डर तथा एक असंगत आर्डर यानि (Ordines anomali) आते हैं। इस सीरीज में फेमिलियों की कुल संख्या 23 है। आरंभिक आर्डर जीरैनियेलीज़ (Geraniales) है जिसे फेमिली लाइनेसी (Linaceae) से शुरू किया गया है और असंगत आर्डर अंतिम है और अंतिम फेमिली है मोरिंगेसी (Moringaceae)।

6) Calyciflorae में फूल परिजायांगी (Perigynous) अथवा जायांगोपरिक (epigynous) होते हैं, और इसमें 5 आर्डर तथा 27 फ़ेमिलियां हैं। आरंभकारी आर्डर है रोलेलीज (Rosales) जिसमें शुरू की फ़ेमिली कारोनेरिईयेयी (Connaraceae) है तथा अंतिम आर्डर अम्बेएल्स (Umbellales) है एवं अंतिम फ़ेमिली है कोरोनेसी (Cornaceae)।

7) उपक्लास गैमोपेटेली में पंखुडियां समेकित होती हैं और इसे 3 सीरीज में विभाक्ति किया गया है–

i) इनफेरी, (inferae), ii) हटैरोमीरो (Heteromerae) तथा iii) बाइकार्पेलेटी (Bicarpellatae) यह विभाजन मुख्यतः अंडपों (कार्पेलों की संख्या एवं उनकी स्थिति पर आधारित है। उदाहरणतः सीरीज़ इन्फेरी में जैसा कि नाम से संकेत मिलता है, द्विअंडपी, युक्तांडपी (सिनकार्पस), अधर अण्डाशय होता है जब कि हेटेरोमेरी में अंडप सदा दो से अधिक होते हैं। इसके विपरीत बाइकार्पेलेटी में अण्डाशय सदैव द्विअंडपी, युक्तांडपी तथा ऊर्ध्व अण्डाशय होता है गैमोपेटेली में कुल 10 आर्डर होते हैं। हेटेरोमीरी में 3 तथा बाइकार्पेलेटी में 4, जबकि फ़ेमिलियां कुल मिलाकर 45 हैं–इनफेरी में 9, हेटेरीमीरी में 12 तथा बाइकार्पेलेटी में 24।

8) इनफेरी में 3 आर्डर हैं रुबिएलीज़, एस्टरेलीज़ तथा कैम्पैनेलीज़ (Companulales)। आरंभकारी फ़ेमिली कैपरीफॉलिऐसी (Caprifoliacae) है जबकि अंत में फ़ेमिली कैम्पैनेली आती है।

9) Heteromerae में भी 3 आर्डर आते हैं। ऐरिकेलीज (Ericales) आरंभ की फेमिली है वैक्सीनियेसी (Vacciniaceae) तथा अंतिम फेमिली है स्टाइरैकेसी (Styraceae)।

10) बाइकार्पेलेटी में 4 आर्डर आते हैं : जेन्शिएनेलीज़ (Gentianales) पॉलियोनिएलीज़ (Polemoniales) परसोनेलीज़ (Personales) तथा लेमीऐलीज़ (Lamiales) इनमें से पहले दो आर्डरों अर्थात् जेन्शएनेलीज़ और पॉलियोनिएलीज़ में त्रिज्यासममित (actinomorphic) फूल होते हैं। जबकि परसोनेलीज़ (Personales) तथा लैमीऐलीज़ (Lamiales) में एकव्याससममित (Zygomorphic) फूल होते हैं। आरंभिक फ़ेमिली है आलिऐसी तथा अंतिम फ़ेमिली है लेबिएटी (labiatae) अथवा लेमीऐसी (Lamiaceae) फ़ेमिली प्लैन्टैजिनेसी (Plantaginaceae) को असंगत आर्डरों आर्डिनेस एनॉमेली में रखा गया है।

11) उपक्लास मोनोक्लैमाइडी (Monochlamydeae) को सात सीरीज़ तथा आर्डिनेसी एनॉमेली के रूप में एक सीरीज़ में विभाजित किया गया है। आरंभकारी सीरीज़ है कार्वेम्बी (Curvembryeae) जिसका आरंभ निक्टैजिनेसी (Nyctaginaceae) फ़ेमिली से होता है जबकि अंत की सीरीज़ है ऑर्डिनेस एनॉमेली जिसके अंत में एक जलोदभिदी फ़ेमिली सिरैटोफिलेसी (Ceratophyllaceae) आती है।

12) क्लास जिम्नोएपर्म (Gymnospermae) को द्विबीजपत्रियों एवं एकबीजपत्रियों के बीच रखा गया है जिसमें तीन फ़ेमिलियां आती हैं, साइकैडेऐई, (Cycadaceae), कोनीफेरी (Coniferae) तथा नीटेसी (Gnetaceae)।

13) क्लास एकबीजपत्री (Monocotyledons) को 7 सीरीज़ में बांटा गया है। पहली सीरीज़ है माइक्रोस्मी (Microspermae) जिसमें शुरू की फ़ेमिली है हाइड्रोकैरीटेसी (Hydrocharitaceae)। फ़ेमिली आर्किडेसी (Orchidaceae) भी इसी सीरीज़ में आती है जबकि आखिरी सीरीज़ गलूमेसी (Glumaceae) है जिसमें ग्रामिनी (Graminae), (Poaceae) आखिरी फ़ेमिली है। इस प्रणाली की रूपरेखा को एक योजना आरेख के रूप में भी प्रस्तुत कर सकते हैं।

बेंथम और हूकर द्वारा दिये गये वर्गीकरण (1862-1883) की रूपरेखा बीज वाले पौधे—फेनेरोगैमस्

- द्विबीजपत्री
  - पॉलिपेटेली
    - श्रेणी I **थैलेमिफ्लोरी**
      - गण I रैनेलीज़
      - गण II पैराइटेलीज़, क्रुसीफेरी
      - गण III पोलीगैनेसी
      - गण IV कैरियोफिल्लेनेयी
      - गण V गट्टीफिरेलीज़
      - गण VI माल्वेलीज़, माल्वेसी
    - श्रेणी II **डिस्कीफ्लोरी**
      - गण I जीरैनियेलीज़
      - गण II ओयेकेलीज़
      - गण III सीलस्टरलीज़
      - गण IV सैपिनडेलीज़
    - श्रेणी III **कैलिसिफ्लोरी**
      - गण I रोजेलीज़, लैगूमिनेसी
      - गण II मिरटेल्स
      - गण III पैसीफ्लोरेलीज़, कुकुरबिटैसी
      - गण IV फिकोएडलीज़
      - गण V अम्बेएल्स
  - गैमोपेटेली
    - श्रेणी I **इनफेरी**
      - गण I रूबिएलीज़
      - गण II एस्टरेलीज़, कम्पोजिटी
      - गण III कैम्पैनेलीज़
    - श्रेणी II **हेटेरोमीरी**
      - गण I एरिकेलीज़
      - गण II प्रिमुलेलीज़
      - गण III ऐबेनेलीज़
    - श्रेणी III **बाईकार्पेलेटी**
      - गण I जेन्शिएनेलीज़
      - गण II पॉलिमोनिएलीज़, सोलैनेसी
      - गण III परसोनेलीज़
      - गण IV लैमीऐलीज़
  - मनोक्लीम्ब्री
    - श्रेणी I कर्वेम्ब्री
    - श्रेणी II मल्टिओव्यूलेटी एक्वैटिकी
    - श्रेणी III मल्टिओव्यूलेटी टेरेस्ट्रीज़
    - श्रेणी IV माइक्रोएम्ब्रेई
    - श्रेणी V डैफनेलीज़
    - श्रेणी VI एक्लैमाइडोस्पोरी
    - श्रेणी VII यूनिसैक्युएलीज़
    - श्रेणी VIII आर्डिनेस एनॉमेली
- जिम्नोस्पर्म
- एकबीजपत्री
  - श्रेणी I माइक्रोस्पर्मी
  - श्रेणी II इपीगाइनी
  - श्रेणी III कॉरोनेरिई
  - श्रेणी IV कैलिसनेई
  - श्रेणी V न्यूडीफ्लोरी
  - श्रेणी VI एपोकार्पिई
  - श्रेणी VII ग्लूमेसी

2.4.2 गुण (Merits)

इस वर्गीकरण प्रणाली के गुण निम्न हैं :

- सजीव नमूनों से अथवा हर्बेरियम शीटों से विविध जीनसों के ध्यानपूर्वक प्रेक्षण एवं मौलिक विवरण से एक बहुत अच्छा वर्गिकीय निष्कर्ष निकलता है तथा जीनस संबंधी वर्णन का एक मानक स्तर स्थापित होता है।
- कार्य करने की दृष्टि से यह प्रणाली सरल है तथा प्रत्येक व्यवहारिक उद्देश्य के लिए सबसे उपयुक्त है, दूसरे शब्दों में इस प्रणाली के द्वारा पौधों को फ़ेमिली स्तर तक पहुंचाना बिल्कुल सरल है।
- इस प्रणाली में शामिल अधिसंख्य जीनसों का भौगोलिक वितरण दिया गया है।
- इस प्रणाली में नवीनतम तथा प्रामाणिक सूचना दी गयी होती है। साथ ही, क्यू (Kew) का रॉयल बोटेनिकल गार्डन हर 5 वर्ष के बाद नियमित रूप से Index kewensis के प्रकाशन द्वारा इस प्रणाली को ताजा रखता है।
- यद्यपि यह प्रणाली जातिवृतीय नहीं है, फिर भी रेनेल्स (Ranales) इस प्रणाली का आरम्भकारी आर्डर) का स्थान क्रम विकास की आधुनिक संकल्पना के अनुरूप है।
- एक बीजपत्री का द्विबीजपत्री के बाद का स्थान भी तर्कसंगत है और क्रमविकासीय प्रवृत्तियों की आधुनिक संकल्पना के अनुरूप है।

2.4.3 दोष

इस प्रणाली में कई दोष अथवा कमियां हैं जो इस प्रकार हैं :

- जिम्नोस्पर्मों का द्विबीजपत्री तथा एक बीजपत्री के बीच का स्थान कतई तर्कसंगत और सही नहीं है।
- पॉलिपेटेली तथा गैमोपेटेली की प्राकृतिक समूहों के रूप में स्थापना एवं उनका परिसीमन कुछ मामलों में भ्रांति पैदा करता है। उदाहरण के लिए, कुकुरबिटेसी के कुछ सदस्यों में संयुक्तदली दशा पायी जाती है, लेकिन इस प्रणाली में कुकुरबिटेसी को पॉलिपेटेली में रखा गया है। गैमोपेटेली की व्यवस्था करते हुए सर्वाधिक विकसित फ़ेमिली एस्टरेसी को इस वर्ग के आरंभ में रखा गया है और इस प्रकार एस्टरेसी का स्थान आधुनिक क्रमविकासीय प्रवृत्तियों के अनुसार कतई युक्तिसंगत नहीं है।
- मॉनोक्लैमाइडी को एक पृथक तथा ह्रासित वर्ग मानना तर्कसंगत नहीं है क्योंकि ऐसा करने से कीनोपोडिएससी (Chenopodiaceae) जैसी निकट संबंधी वाली फ़ेमिलियां कैरियोफिलेसी (Caryophyllaceae) के निकट नहीं रखी जा सकती थी।
- इसी प्रकार आर्किडेसी को एकबीजपत्री का आरंभकारी सीरीज़ माइक्रोस्पर्मी में रखना आधुनिक क्रमविकासीय प्रवृत्तियों के अनुरूप नहीं है। फ़ेमली आर्किडेसी को एकबीजपत्री में एक उच्चतम फ़ेमिली माना जाता है, तथा इसलिए इसे आरंभकारी फ़ेमिली के रूप में नहीं रखा जाना चाहिए।

बोध प्रश्न 3

रिक्त स्थानों में उपयुक्त शब्द भरिए :

अ) बेंथम तथा हुकर की वर्गीकरण प्रणाली में.....फ़ेमिलियां मानी गयी थीं।

ब) बेंथम तथा हुकर की प्रणाली में आरंभिक फ़ेमिली.....है, तथा अंत की फ़ेमिली.....है।

स) जिम्नोस्पर्मों को.....तथा.....के बीच रखा गया है।

बोध प्रश्न 4

बेंथम और हुकर की पद्धति के अनुसार निम्नलिखित फ़ेमलियों का

स्थान उचित है या नहीं विवेचना कीजिए।

अ. एस्टरेसी ब. ऑर्किडेसी

2.5 जातिवृतीय प्रणालियां

जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है जाविवृतीय प्रणाली में पौधों को उनके क्रमविकासीय संबंधों के आधार पर वर्गीकृत किया जाता है। चूंकि फॉसिलों का रिकार्ड अधूरा है इसलिए किसी भी जातिवृतीय प्रणाली का परिशुद्ध होने का दावा नहीं किया जा सकता, ऐसी स्थिति में पौधों को उनके उपलब्ध आंकड़ों पर ही वर्गीकृत किया जाता है। एंगलर तथा प्रांटल (1887-1915); हचिन्सन (1926, 1934, 1969 तथा 1973) तथा तख्तजान (1954, 1964, 1980) की वर्गीकरण प्रणालियां जातिवृतीय हैं। अब हम इनमें से हर प्रणाली का एक-एक करके सविस्तार वर्णन करेंगे।

2.5.1 एंग्लर तथा प्रांटल की वर्गीकरण प्रणाली

जर्मनी में बर्लिन विश्वविद्यालय के वनस्पतिकी के प्रोफेसर एडॉल्फ एंग्लर ने वर्गीकरण की जातिवृतीय प्रणाली का प्रस्ताव अपनी पुस्तक Syllabus (1892) में रखा था। उसके शीघ्र बाद एंग्लर ने एक अन्य वनस्पतिकी प्रेफेसर कार्ल ए.ई, के साथ मिलकर एक युगांतकारी रचना प्रकाशित की जिसका शीर्षक था "डाई नैचुरलाइकेन प्लेन्जनफेमिलियन" (Die naturlichen Pflanzenfamilien) जिसके 23 भाग थे। हैन्सस मेल्कियोर ने 1964 में "Syllabus" का संशोधित संस्करण प्रकाशित किया जिसमें इस प्रणाली में अनेक संशोधन किए गए थे।

इस प्रणाली में पुष्पी पौधों की कुल मिलाकर 303 फेमिलियां पहचानी गयीं।

वर्गीकरण की रूपरेखा तथा आधार

केटकिन पुष्पक्रम (catkin) में व्यवस्थित तथा वायु परागित (wind pollenated) फूलों को एंग्लर के निम्नतम स्तर की पुष्प संघटना मानी, इसीलिए इसे एंग्लेरियर संकल्पना कहा जाता है। पुष्प के इससे अगले विकास चरण में । पंक्तिबद्ध पेरिऐन्थ का प्रकट होना था जिससे दो पंक्ति दशा प्राप्त हुई और साथ-साथ द्विलिंगी दशा भी आयी।

एंग्लर तथा प्रांटल की वर्गीकरण प्रणाली की रूपरेखा एवं आधार निम्न प्रकार से हैं

1) पादप जगत को XIII डिविजनों में विभाजित किया गया है तथा मेल्कियोर (1964) द्वारा किए गए हाल के संशोधनों के अनुसार कुल डिविजन XVI हैं।

2) डिविजन I से XII में बेक्टीरिया, विभिन्न शेवालों, कवकों, ब्रायोफाइटों तथा टेरिडोफाइटों को रखा गया है।

3) डिविजन XIII का नाम एम्ब्रयोफाइटा साइफोनोगैमीया (embryophyta siphonogamia) रखा गया है। नग्न तथा आवृत बीजाण्डों के आधार पर इसे दो उपडिविजनों में विभाजित किया गया है :

i) नग्न बीजाण्ड (Gymnospermae)

ii) आवृत बीजाण्ड (Angiospermae)

4) उपडिविजन जिम्नोस्पर्मेयी (Gymnospermae) को 7 आर्डरों में बांटा गया है, इनमें पहला सबसे आदिम आर्डर है साइकैडोफिकेलीज (Cycadofilicales) और सबसे आखिरी आर्डर है निटेलीज़ (Gnetales) जो जिम्नोस्पर्मो का एक उन्नत वर्ग है।

5) उपडिविजन एन्जीयोस्पर्मेयी को दो में विभाजित किया गया है :

   i) एकबीजपत्री (monocotyledonae) तथा

   ii) द्विबीजपत्री (dicotyledonae)

यह विभाजन एकबीजपत्री तथा द्विबीजपत्री में मुख्यत: कुछ अति स्पष्ट अंतरों के आधार पर किया गया है जैसे कि पत्ती का शिरान्यास (Venation), एकबीजपत्री में त्रितयी (trimerous) फूलों का पाया जाना तथा द्विबीजपत्री में 4-5 तयी फूलों का पाया जाना।

6) एकबीजपत्री को और आगे 11 आर्डरों तथा 45 फ़ेमिलियों में विभाजित किया गया (हेन्स मेल्कियोर, (1964) के द्वारा संशोधन होने के बाद 14 आर्डर तथा 53 फ़ेमलियां)। पहला आर्डर है पैन्डैनेलीज (pandanales) जिसमें अनावृत एकलिंगी फूल होते हैं और इसकी पहली फ़ेमिली है टाइफ़ेसी (Typhaceae)। अंतिम आर्डर माइक्रोस्पर्मी है जिसमें अंतिम फ़ेमिली है आर्किडेसी।

7) Dicots को दो उपक्लासों में विभाजित किया गया है :

i) एक्लैमाइडी (Archichlamydeae) तथा

ii) सिम्पैटेली (Sympetalae)

यह विभाजन मुख्यतः पेरिऐन्थ की दशा पर आधारित है कि वह 1 पंक्तिबद्ध है अथवा 2 पंक्तिबद्ध या कि समेकित है। उदाहरण के लिए, एक्लैमाइडी में फूल नग्न हो सकते हैं या 1 पंक्तिबद्ध हो सकते हैं जिनके बाद 2 पंक्तिबद्ध भी हो सकते हैं मगर पंखुड़ियां अधिकतर स्वतंत्र होती हैं। किंतु सिम्पैटली में जैसा कि नाम से ही स्पष्ट होता है पंखुड़ियां समेकित होती हैं अर्थात् इस समूह में संयुक्तदलीय दशा पायी जाती है।

8) एक्लैमाइडी में 23 आर्डर तथा 206 फ़ेमलियां हैं (हैन्स मेलकाइर, 1964 के द्वारा संशोधित के बाद 37 आर्डर तथा 227 फ़ेमिलियां)। इसमें वर्टीसीलेट (verticillatae) आर्डर से शुरू किया है जिसमें पहला फ़ेमिली है कैज़ुराइनेसी (Casuarinaceae) इसके बाद कुछ अन्य आर्डर तथा फ़ेमलियां आती हैं जिनमें पेरिऐन्थ होता ही नहीं अथवा ह्रसित होता है उसके बाद 1-पंक्तिबद्ध पेरिऐन्थ तथा अंत में 2-पंक्तिबद्ध पेरिऐंथ होता है। अंतिम आर्डर अम्बेलीफ्लोरी (umbelliflorae) है जिसमें अंतिम फ़ेमिली कारोनेरिई (cornaceae) है।

9) सिम्पैटॅली जिसका दूसरा नाम मैटाक्लैमाइडी (metachlamydeae) है, में कुल 11 आर्डर हैं जिनमें 52 फ़ेमिलियां आती हैं (हेन्स मेल्कियोर (1064) के द्वारा किए गए संशोधन के बाद 11 आर्डर तथा 64 फ़ेमिलियां)। इसमें पहला आर्डर ऐरिकेलीज़ (Ericales) है जिसमें आरंभकारी फ़ेमिली है क्लीथैरेसी (Clethraceae) सम्पैटली का अंतिम आर्डर कैम्पेन्यूलीज़ (Campanulales) है, जिसमें एस्टरेसी (Asteraceae) अथवा कम्पोजिटी (compositae) अंतिम फ़ेमिली है और उसको यह स्थान देना सही ही था क्योंकि द्विबीजपत्री फ़ेमिलियों में इसी फ़ेमिली को सर्वाधिक विकसित माना जाता है।

इस वर्गीकरण प्रणाली को एक चार्ट के रूप में दर्शाया जा सकता है।

पादप जगत

	डिविजन	I	
		II	
		III	
		–	
		–	
		XII एम्ब्रयोफाइटा	साइफोनोगोमिया एन्जीयोस्पेर्मी
	जिम्नोस्पेर्मेयी		
1.	साइकैडोफिकेलीज़	एक बीजपत्री	द्विबीजपत्री
		11 आर्डर	44 आर्डर
		45 फ़ेमेली	258 फ़ेमेली
1.	पेन्डैनेलीज टाइफ़ेसी	आर्कीक्लैमाइडी	सिम्पैटली
		33 आर्डर	11 आर्डर
		206 फ़ेमेली	52 फ़ेमेली
2.		1 वर्टीसीलेट	1. ऐरिकेलीज़
3.		2.	क्लीथरेसी
4.		3.	
5.		4	
6.		5	
7.		6	
8.		—	
9.		—	
10.		—	
11.	माइक्रास्पर्मी	32 अम्बेलीफ्लोरीज़ कोरोनेरिई	11 कैम्पेन्यूलीज एस्टरेसी

गुण (merits)

एंग्लर तथा प्रांटल द्वारा प्रस्तावित वर्गीकरण प्रणाली को सविस्तार पढ़ लेने के बाद अब हम इसके गुणों को बेहतर तरीके से विवेचन कर सकते हैं। ये गुण इस प्रकार है :

1) हालांकि एंग्लर ने स्वयं इस वर्गीकरण प्रणाली को वास्तविक जातिवृतीय नहीं माना था, फिर भी इस प्रणाली में आर्डरों तथा फ़ेमिलियों की व्यवस्था अधिकतर क्रमविकासीय प्रवृत्तियों के अनुरूप है।

2) इस प्रणाली में पादप जगत के बेक्टीरिया से लेकर शैवाल, कवक, ब्रायोफाइटा, टेरिडोफाइडा, जिम्नोस्पर्म तथा ऐंजियोस्पर्म तक सभी वर्गों को लिया जाता है। यह प्रणाली प्रत्येक पादप वर्ग की पहचान के लिये कुंजिया प्रदान करती है।

3) जिम्नोस्पर्मो का स्थान ऐंजियोस्पर्मो से पहले आना सही है और यह आधुनिक विकासवाद के सर्वथा अनुरूप है।

4) द्विबीजपत्री की अंतिम फ़ेमिली के रूप में एस्टरेसी का स्थान बहुत ही तर्कसंगत है और सही भी है क्योंकि अब यह बिना किसी शक-शुभाह सिद्ध हो चुका है कि द्विबीजपत्री में यही फ़ेमिली सबसे अधिक विकसित है और इस प्रकार इसका स्थान न्यायोचित है।

5) इसी प्रकार एक बीजपत्री की अंतिम फ़ेमिली आर्किडेसी का स्थान भी बहुत सही है क्योंकि एक बीजपत्री में इसी फ़ेमिली को सर्वाधिक विकसित माना जाता है।

6) इस वर्गीकरण प्रणाली में पहली बार शरीर संबंधी आंकड़े विचारधीन किए गए हैं।

दोष

इस प्रणाली में कुछ कमियां अथवा दोष भी हैं। कुछ मुख्य दोष इस प्रकार हैं:

1) आदिम फूल (एकलिंगी, नग्न, केटकिन) की संकल्पना क्रम विकास की आधुनिक संकल्पना के विपरीत है।

2) एक बीजपत्री को द्विबीजपत्री से अधिक आदिम माना गया है। यह धारणा आधुनिक विकास संकल्पना से मेल नहीं खाती।

3) ऐपेटेलस या दलहीन (Apetalous) फ़ेमिलियों को पॉलीपेटेलस फ़ेमिलियों के साथ मिलाकर आर्कीक्लैमाइडी का बनान वांछनीय नहीं है। ऐसा करने से बहुत बड़ा अव्यवस्थित वर्ग बन गया जिसमें 33 आर्डर तथा 206 फ़ेमिलियां हैं।

4) इस प्रणाली की अधिक व्यावहारिक उपयोगिता नहीं है।

2.5.2 हचिन्सन की वर्गीकरण प्रणाली

जॉन हचिन्सन एक विख्यात ब्रिटिश वनस्पतिविद था। उसने 24 जातिवृतीय सिद्धांत रखे और इन सिद्धांतों पर आधारित उसने एक जातिवृतीय प्रणाली को अपनी पुस्तक 'द फैमिलीज आफ फ्लावरिंग प्लान्ट्स' (The families of flowering plants" (1926-1934) की दो जिल्दों में प्रकाशित किया। जिल्द I में द्विबीजपत्री दिए गए हैं और जिल्द II में एकबीजपत्री इस प्रणाली का संशोधित एवं विस्तृत रूप 1959 में प्रकाशित किया गया और इसकी नवीनतम संशोधित प्रणालीं 1933 में प्रकाशित हुई।

वर्गीकरण की रूपरेखा तथा आधार

जैसा कि पहले कहा जा चुका है यह प्रणाली मुख्य 24 जातिवृतीय सिद्धांतों पर आधारित है। अतः इन जातिवृतीय सिद्धांतों का संक्षिप्त विवरण देना उचित जान पड़ता है।

1) विकास की दशा आरोही (ऊपर को) और अवरोही (नीचे को) दोनों ओर होती है। ऊपर की दिशा की प्रवृत्ति में परिरक्षण होता है तथा नीचे की ओर की प्रवृत्ति में लक्षणों का ह्रास तथा उन्मूलन होता है। आरोही विकास के उदाहरण हैं पुष्पी पौधों में संयुक्तदलीय दशा एवं जायांगोपरिकता, तथा अवरोही विकास के उदाहरण हैं दलविहीन दशा एवं एकलिंगता।

2) क्रमविकास में जरूरी नहीं कि एक समय में सभी अंगों में परिवर्तन हो रहा हो। केवल एक अंग या अनेक अंगों में प्रगति हो रही हो, तब भी दूसरे अंग स्थिर रहते हैं या अपरिवर्तनशील रहते हैं।

3) क्रमविकास सामान्यतः लगातार होता है, यानी जब किसी एक लक्षण में प्रगति अथवा ह्रास आ जाता है तो वह फ़ाइलम के अंत तक चलता रहता है। उदाहरणतः पंखुड़ियों में एक व्यासममितता की प्रबलता की प्रवृत्ति के साथ-साथ पुंकेसरों की संख्या में कमी एंग्लर की जायांगाधर फ़ेमिली मेटाकलैमाइडी में देखी जा सकती है। परिजायांगीकता एवं जायांगापरिकता की प्रबल प्रवृत्ति क्रमशः आर्ककैलमाइडी और मेटाकलैडी एवं इनकी फ़ेमिली अम्बेलीफेरी और रुबीयेसी में क्रमशः देखी जा सकती है।

4) कुछ समूहों में वृक्ष एवं झाड़ियां शायद अधिक आदिम है। उदाहरणतः माइमोसी और सज़ैलपिनियेसी (वृक्ष और झाड़ियां) उत्पन्न फ़ेमिली पैपिलीनेसी (फेबेसी) (शाकीय) से अधिक अदिम है।

5) वृक्ष और झाड़ियां किसी एक फ़ेमिली या जीनस में आरोही से अधिक आदिम है। आरोही लक्षण एक विशेष वातावरण के अंतर्गत ही उत्पन्न होता हैं।

6) बहुवर्षी पौधे द्विवर्षी पौधों से अधिक अदिम है और इनसे ही एक वर्षीय पौधे उत्पन्न हुए हैं। अदिम फेमेली रैनुनकुलैसी में कुछ ही एकवर्षीय पौधे हैं। जबकि अत्यधिक प्रगतिशील एवं प्राकृतिक फ़ेमिली क्रूसीफेरी में केवल कुछ ही एकवर्षीय पौधे हैं। पुष्पीय एवं जलीय पौधे पार्थिव पूवजों से उत्पन्न हुए हैं। अधिपादप, मृतजीवी साधारण पौधों की अपेक्षा अधिक अभिनव है।

7) जलीय पुष्पीय पौधे अपने स्थलीय पूर्वाजों से उत्पन्न हुए हैं। अधिपादप, मृतजीवी और परजीवी साधारण पौधों से अधिक आधुनिक हैं।

8) एक वलय में स्थिति वहिः पोषवादी पूल (Phloem vascular bundle) वाले द्विवबीजपत्री छितरे हुए पोषवादी पुल एकबीजपत्री से अधिक आदिम है। पर यह आवश्यक नहीं है कि एकबीजपत्री द्विवबीजपत्री से सीधे उत्पन्न हुए हैं।

9) पंखुड़ियां एवं पत्तियों की तने पर सर्पिल व्यवस्था, एकातंर एवं चक्रीय व्यवस्था से अधिक आदिम है।

10) संयुक्त पंक्तियों की तुलना में सरल पत्तियाँ अधिक आदिम हैं।

11) एकलिंगी फूलों की अपेक्षा द्विलिंगी फूल अधिक आदिम है। एवं एकलिंगाश्रयी पौधों की अपेक्षा द्विलिंगाश्रीय पौधे अधिक आदिम है।

12) किसी भी प्रकार के पुष्पक्रम की अपेक्षा एकल फूल अधिक आदिम है। सर्वाधिक विकसित पुष्पक्रम अम्बेल तथा केपिटुलम (अम्बेलीफेरी तथा कम्पोसिटी) है।

13) सर्पिल कोरछादी पुष्पीय दलविन्यास चक्रीय एवं कोरस्पर्शी से अधिक आदिम है। उदाहरण *मेगनोलीया* एवं *किल्मेटस*।

14) बहुततयी (Polymerous) पुष्पीय पौधें से अल्पतयी (oligomerous) पुष्पीय पौधे बने, और इसी के बाद जननांगों का धीरे-धीरे बंधीकरण शुरू हुआ। उदाहरणः *मैगनोलीया* और *चीरीऐंथस*।

15) दलविहिन पुष्प दलयुक्त पुष्पों से उत्पन्न हुए हैं। दलविहीन पुष्प नीचे जाते हुए क्रम विकास का परिणाम हैं।

16) मुक्तदलीय दशा संयुक्तदलीय दशा से अधिक आदिम है।

17) त्रिज्यासमतिता (Actinomorphy) एकव्ययासमयितता (Zygomorphy) से अधिक आदिम है।

18) अधोजायांगी दशा अधिक आदिम है जिससे परिजायांगी तथा जायोगोंपरिक दशाएं बनी।

19) वियुक्तांडपी (Apocarpy) दशा युक्तांडपी (syncarpy) से अधिक आदिम है। पर कभी-कभी विकासक्रम के समय अण्डाशय ढीले जुड़े होते हैं। तो वो फिर से वियुक्तांडपी हो जाते हैं। उदाहरण ऐसक्लीपिएडेसी (Asclepiadaceae)।

20) अल्पकेसरी (oligocarpy) दशा की अपेक्षा बहुकेसरी दशा अधिक आदिम है। उदाहरणतः *रेनुनकुलेस एवं नाइजीला।*

21) भ्रूणपोषीय बीज एवं छोटे भ्रूण के साथ अभ्रूणपोषीय बीज एवं बड़े भ्रूण से अधिक आदिम हैं। उदाहरणः रैनुनकुलेसी एवं रोजेसी।

22) असंख्य पुकेसर, कम पुंकेसर वाले पुमंग की अपेक्षा अधिक आदिम है (केवल मालवेसी को छोड़कर) उदाहरणतः *रैनुनकुलस, चीरीएंथस।* पर यह स्थिति केवल एक फ़ेमेली के अंतर्गत उल्टी भी हो सकती है उदाहरण पापावरेसी, जिसमें मधुमक्खी परागगणों का पोषण करती है।

23) अलग-अलग पुंकेसरों की दशा से सहजात (connate) दशा बनती है उदाहरण टिलीऐसी और मालवेसी कम्पैनलेसी और लैबीऐसी।

24) सरल फलों (single fruit) की अपेक्षा पुंजफल (Aggregate fruit) अधिक आदिम है। सामान्यतः कैप्सूल पहले आते हैं और बेरी, ड्रूप बाद में।

ऊपर दिए गए इन 24 जातिवृतीय सिद्धांतों के आधार पर हचिंसन ने वर्गीकरण की जातिवृतीय प्रणाली प्रस्तावित की। इस प्रणाली की रूपरेखा नीचे दी जा रही है

परिकल्पित प्रोएन्जीयोस्पर्मस

द्विबीजपत्री — एकबीजपत्री

लिग्नोई — हरबेसी

1) हचिंसन का मानना था कि ऐंजियोस्पर्म किसी एक परिकल्पित वर्ग से एकमूलोदभवी रूप में विकसित हुए हैं, उस परिकल्पित वर्ग का नाम प्रोएन्जीयोस्पर्म (proangiospersms) रखा गया।

2) उसने Dicots में दो विकास दिशाएं पहचानीं :

   i) लिग्नोई (Lignosae) (काष्ठीय)

   ii) हर्बेसी (Herbaceae) (शाकीय)

3) लिग्नोई में 54 आर्डर तथा 251 फ़ेमिलियां आती हैं इसका आरंभ आर्डर मैगनोलीज़ (Magnoliales) से होता है जिसकी पहली फ़ेमिली है मैगनोलेसी और फिर एनोनिलीज़ (Annonalis)–रौजेलीज़ Rosalis)–माल्वेलीज़ (Malvales) रूबीलीज़ (rubiales) से होते हुए अंत में आर्डर वर्बीनेलीज़ (verbenales) आता है जिसमें अंत में आने वाली फ़ेमिली है फ़ाइमेसी (phrymaceac)।

4) हर्बेसी (Herbaceae) में 28 आर्डर तथा 100 फ़ेमिली आती है। सबसे शुरू का आर्डर है रेनलीज़ (Ranales) कैरियोफिल्लैसी (Caryophhyllales) अम्बेलीफेरी (Umbellales) एस्टेरेलीज़ (Asterales) से होते हुए अंतिम आर्डर आता है। लैम्नेलीज़ (Lamiales) जिसमें लैम्नेसी (Laminaceae) लैबिएटी (Labiatae) अंतिम फ़ेमिली है।

5) एकबीजपत्री में 29 आर्डर तथा 69 फ़ेमिलियां आती हैं।

कुल मिलाकर Monocots को उनके पेरिऐन्थ के आधार पर 3 स्पष्ट वर्गों में बांटा गया है :

   i) कैल्सीफेरी (Calyciferae)

   ii) कोरोलीफेरी (Corolliferae)

   iii) ग्लूमीफेरी (Glumiflorae)

कैल्सीफेरी का आरंभिक आर्डर है ब्यूटामेलीज (Buta males) जिसमें शुरुआत होती है फ़ेमिली ब्यूटामेसी (Butamaceae) से। इसमें चरम (अंतिम) बिन्दु पर आने वाला आर्डर है जिन्जीवरेलीज़ (Zingiberales) जिसके अंत में आने वाली फेमिली है मैरेनटेसी (Marantaceae)।

कैरोलीफेरी (Corolliferae) का पहला आर्डर है लिलियेलीज़ (Lilliales) जिसका आरंभ होता है फ़ेमिली लिलियेसी (Liliaceae) से। इस वर्ग का अंतिम आर्डर है आर्किडेलीज़ तथा उसकी अंतिम फ़ेमेली आर्किडेसी है। ग्लूमीफ्लोरी (Glumeflorae) के मामले में पहला

आर्डर है जूनकेलीज (Juncales) जिसका आरंभ होता है फ़ेमिली जंकेसी से। चरम आर्डर ग्रामनीलीज़ है और अंतिम फ़ेमिली है ग्रामीनी।

Monocots की रूपरेखा नीचे चार्ट में दर्शायी गई है :

वर्बीनेलीज़	लैमीनेलीज़	ग्रामीनीलीज़	ग्लूमीफेरी
रुबीयेलीज़	सोलेनेलीज़	साइपरेलीज़	
एपोसाइनेलीज़	एस्टरेलीज़	जूनकेलीज़	
माल्वेलीज़	अम्बेलीज़	आर्किडेलीज़	कौरोलीफेरी
लिगुमीनेलीज़		लिलियेलीज़	
रोसेलीज़	कैयिोफिल्लेसीलीज़	जिंजिबरेलीज़	कैल्सीफोलोरी
एनोनेलीज़	ब्रैसीयेलीज़	ऐलिस्मेसीलीज़	
मेगनोलीयेलीज़	रेनेलीज़	ब्यूटोमेलीज़	

गुण

इस वर्गीकरण के गुण अथवा इसकी उपलब्धियां इस प्रकार है:

- फ़ेमिली वर्णन का स्तर बहुत श्रेष्ठ है और पहचान के लिए कुंजियों में मूल्यवान लक्षण दिए गए हैं।
- वर्गीकरण प्रणाली का व्यावहारिक पहलू बहुत अच्छा है।
- एकबीजपत्री को अधिक पर्याप्त तर्कसंगत तथा स्वीकार्य रूप में लिया गया है।
- पुष्प-शरीर तथा भ्रूण-विज्ञान के आंकड़े एक बीजपत्री के वर्गीकरण में खास तौर से तथा द्विबीजपत्री के वर्गीकरण में सामान्य तौर से ध्यान में रखे गए हैं।
- इस प्रणाली में अधिकांश जीनसों का भौगोलिक वितरण शामिल किया गया है।
- वर्गीकरण प्रणाली जातिवृतीय है।

दोष

इस प्रणाली के दोष दर्शाने के लिए इसकी अनेक कमियां तथा आलोचनाएं सामने लायी गयी हैं।

- ऐंजियोस्पर्मी के परिकल्पित प्रोऐन्जीयोस्पर्मस से एकमूलोदभवी उदगम पर जरूरत से ज्यादा बल दिया गया है।
- हरबेसी तथा लिग्नोसी पर विशेष बल देने के कारण कुछ बहुत ही निकट संबंध वाली फ़ेमिलियां दूर-दूर कर दी गयी हैं। उदाहरण के लिए रैनेलीज़, हरबेसी (herbaceae) तथा लिग्नोसी (lignosae) के अंतर्गत रैनुनकूलेसी (Ranunculaceae) तथा मैग्नोलिएसी (Magnoliaceae) को सिर्फ इसलिए अलग किया गया हैं क्योंकि हरबेसी तथा लिग्नोसी के बीच सीमांकन है। इसी प्रकार फेमिली लैमीयेसी (lamiaceae) तथा एस्टरेसी (Asteraceae), हरबेसी (herbaceae) को वेर्बीनेसी (verbenaceae) तथा रुबीयेसी को (rubiaceae) लिग्नोसी (lignosae) से अलग करके रखा गया है।

इस सबके बावजूद, अधिसंख्य वर्गीकरणविदों की राय में हचिंसन ने फेमिली तथा आर्डर की परिसीमाओं का एक बहुत ही सावधानीपूर्वक एवं आलोचनात्मक मूल्यांकन करके इस क्षेत्र में एक महान योगदान किया है। पिछले एक या दो दशकों में उसके वर्गीकरण ने किसी भी अन्य वर्गीकरण की अपेक्षा कही ज्यादा उत्तेजना प्रदान की है।

2.5.3 तख्तजान की वर्गीकरण प्रणाली

एक और महत्वपूर्ण जातिवृतीय प्रणाली तख़्तज़ान (Takhtajans) ने प्रस्तुत की। तख़्तज़ान सोवियत संघ के लेनिनग्राड स्थित कोमारेव बोटेनिकल इंस्टीट्यूट में कार्यरत प्रसिद्ध रुसी पुरावनस्पतिविद था। उसने पहली बार 1942 में ऐसी प्रणाली रखी जो मुख्यत: जायांग तथा बीजाण्डन्यास (placentation) पर आधारित थी। उसके बाद उसने 1954 में रुसी

भाषा में एक संशोधित प्रणाली विकसित की तथा 1958 में उसी का अंग्रेजी अनुवाद प्रकाशित हुआ। यह संशोधित प्रणाली मुख्यत: जातिवृतीय सिद्धांतों पर आधारित थी। इसके शीघ्र बाद ही उसे ऐंजयोस्पर्मों में क्रमविकासीय प्रवृतियों के अनुसार इस वर्गीकरण प्रणाली में एक बार फिर से संशोधन करने का प्रयास किया जो 1964 में छपकर सामने आया। यह भी अंतिम स्वरूप नहीं था, तख़्तज़ान ने एक बार फिर संशोधन किया और उसकी प्रणाली का नवीनतम स्वरूप 1980 में आया।

इस प्रणाली की रूपरेखा पर विचार करने से पूर्व यह उचित होगा कि इस प्रणाली की महत्वपूर्ण और खास-खास बातों को बताया जाए क्योंकि इसमें तख़्तज़ान ने नई शब्दावली को इस्तेमाल किया है।

i) मैग्नोलियोफाइटा (Magnoliophyta) एन्जियोस्पर्मस को एकमूलोद्भवी माना गया है।

ii) मैग्नोलियोपसिडा (Magnolipsida) द्विबीजपत्री को लिलिओपसिडा (Liliopsida) (एकबीजपत्री) की अपेक्षा अधिक आदिम माना गया है।

तख़्तज़ान वर्गीकरण प्रणाली (तख़्तज़ान, 1980) की

रूपरेखा

1) मैग्नोलियोफाइटा (Magnoliophyta) एन्जियोस्पर्म में 419 फ़ेमिलियां हैं तथा इसे दो क्लासों में बांटा गया है।

   i) मैग्नोलियोपसिडा (Magnoliopsida) द्विबीजपत्री तथा
   ii) लिलिऔपसिडा (Liliopsida) एकबीजपत्री

2) मैग्नोलियोपसिडा (द्विबीजपत्री) को और आगे 7 उपक्लासों, 20 सुपरआर्डरों, 71 आर्डरों तथा 342 फ़ेमिलियों में विभाजित किया गया है।

7 उपक्लास तथा उनके कुछ महत्वपूर्ण आर्डर एवं उनकी खास-खास फ़ेमिलियां (आरंभिक तथा अंतिम) इस प्रकार हैं–

उपक्लास (Sub class)

i) मैग्नोलीडी (Magnolidae)
महत्वपूर्णगण–मैग्नोलीनेई
(Super order—Magnolianae)
गण–मैग्नोलीज़
(Order—Magnoliales (1)
कुल–मैग्नोलेसी
(Family—Magnoliaceae (1)

ii) रैनुनकुलीडी (Ranunculidae)
गण–रैनुनकुलीज़
(Order—Ranunculales)
कुल–रैनुनकुलेसी
(Family—Ranunculaceae)

iii) हैमामिलीडी–(Hamamelididae)
गण–टॉकोडैनड्रेलीज़
(Order-Trochodendrales)

iv) कैरियोफिलेडी– (Caryophyllidae)
गण–कैरियोफिलेलीज़
(Order—Caryophyllales)
कुल–कैरियोफाइलेसी
(Family—Caryophyllaceae)

v) डिलीनीडी–(Dilleniidae)
गण–डिलीनिएलीज़
(Order–Dilleniales)
कुल–डिलीनीएसी
(Family—Dilleniaceae)

vi) रोजॉइडी–(Rosidae)
गण–रोसेलीज़
(Order—Rosales)
कुल–रोसेसी
(Family—Rosaceae)

vii) एस्टरेडी (Asteridae)
गण–एस्टरेलीज़ (71st अन्तिम आर्डर
(Order Asterales-71st, the last or ending order)
कुल–एस्टरेसी– 342nd अन्तिम फेमेली
(Family Asteraceae-342nd, the last or ending family)

3) लिलिऔपसिडा एकबीजपत्री को 3 उपक्लासों, 7 सुपरआर्डरों, 21 आर्डरों तथा 77 फ़ेमिलियों में विभाजित किया गया है। लिलिओपसिडा के तीन उपक्लास और उनके महत्वपूर्ण आर्डर एवं फ़ेमिलियां (आरंभिक तथा अंतिम) नीचे दी जा रही है :

उपक्लास (Sub Classes)

i) ऐलिसमेटीडी–(Alismatidae)
गण–ऐलिस्मेलीज़
(Order—Alismatales)
कुल–ब्यूटामीनेसी
(Family—Butominaceae)

ii) लिलिडेई–(Lilidae)
गण–ट्राईयूरीडेलीज़
(Order—Triuridales)
कुल–ट्राइयूरीडेसी
(Family—Triuridaceae)
गण–आर्किडेलीज़
(Order—Orchidales)
कुल–आर्किडेसी
(Family—Orchidaceae)
गण–पोयेलीज़
(Order—Poales)
कुल–पोयेसी
(Family—Poaceae)

iii) ऐरीसीडेई–(Arecidae)
गण–एरीलीज़
(Order—Arales)
कुल–एरीकैसी
(Family—Arecaceae)
गण–टाईफेलीज़
(Order—Typhales)
कुल–टाईफेसी
(Family—Typhaceae)
गण–एरेलीज़
(Order—Arales)

कुल—एरेसी
(Family—Araceae)

इस वर्गीकरण की रूपरेखा एक चार्ट में दर्शायी गयी है :

मैगनोलियोफाइटा एन्जियोस्पर्मस
(Magnoliophyta (Angiosperm)

	मैग्नोलियोपसिडा (द्विबीजपत्री) (Magnoliopdida (Dicots)) 342 कुल		लिलिऔपसिडा (एकबीजपत्री) (Liliopsida (Monocots)) 77 कुल
i	मैग्नोलीडी (Magnolidae) मैग्नोलीज़ (Magnoliales) (आरंभ का गण) मैग्नोलियेसी (Magnoliaceae) (आरंभ का कुल)	i	ऐलिसमैटीडी (Alismatales) ऐलिसमैटेलीज़ (Alismataidae) (आरंभ का गण) ब्यूटोमीनेसी (Butominaeae) (आरंभ का गण)
ii	रैनुनकूलीडी (Ranunculidae) रैनुनकुलेलीज़ (Ranunculales)	ii	लिलिडी (Lilidae) ट्राइयूरीडेलीज़ (Triuridales) आर्किडलीज़ (Orchidales) पोयेलीज़ (Poales)
iii	हैमामिलीडी (amamelididae) ट्रोकोडैनड्रेलीज़ (Trochodendrales)	iii	एरीसीडेई (Arecidae) एरेलीज़ 21 गण (Arales) (अंतिम गण) ऐरीकैसी 77 कुल (Arecaceae) (अंतिम कुल)
iv	कैरियोफिलिडी (Caryophyllidae) कैरियोफिलेलीज़ (Caryophyllales)		
v	डिलीनीडी (Dilleniidae) डिलीनिएलीज (Dilleniales)		
vi	रोजॉइडी (Rosidae) रोजालीज़ (Rosales)		
vii	एस्टरेसी (Asteridae) एस्टरेलीज़ (Asterales) 71 गण (अंतिम गण) एस्टरेसी (Asteraceae) 342 कुल (अंतिम कुल)		

तख़्तज़ान ने मुख्य तथा उपडिविजनों को क्लासों तथा उपक्लासों के रूप लगभग उसी प्रकार से स्वीकार किया है जैसे कि बेंथम तथा हुकर के द्वारा दिए गए वर्गीकरण में है। हुकर की प्रणाली में बृहत्तर टेक्सॉन प्राकृतिक हैं क्योंकि उनका स्तर बहुत से लक्षणों के आधार पर निश्चित किया गया है। लेकिन जहां तक और आगे के उपविभाजनों का प्रश्न है जैसे कि सीरीज़ (थैलेमिफ्लोरी, डिस्कीफ्लोरी तथा कैलिसिफ्लोरी आदि एवं कई आर्डर तथा फेमिलियां) का प्रश्न है तो एकदम पता चल जाता है कि उसमें विभाजन का आधार न्यूनाधिक रूप में केवल एक ही लक्षण लिया गया है जिससे वह अधिक कृत्रिम हो गया तख़्तज़ान ने ऐसे स्तरों पर संशोधन किया है। तख़्तज़ान के वर्गीकरण के एक समीक्षात्मक परीक्षण से पता चलता है कि इसमें काफी अच्छाइयाँ हैं, ऐसा इसलिए क्योंकि उसने विविध पदाक्रमों के टेक्सॉनों के बनाने में अकारिकी, कोशिका विज्ञान, परागाणु विज्ञान, शरीर, भ्रूण विज्ञान, कोशिकानुवंशिकी, जैवरसायन तथा पुरावनस्पतिकी से लिए गए अधिकाधिक आंकड़ों का इस्तेमाल किया है।

बोध प्रश्न 5

किन्हीं दो विभिन्न स्थानों में की गयी रचना प्रदान कीजिए।

.....की रचना इन ..... के द्वारा की गयी थी।

ब) युगान्तकारी पुस्तक.....जिसकी 23 जिल्दे हैं 1887-1915 के दौरान.....तथा.....द्वारा लिखी गयी थी।

स) एंग्लर तथा प्रांटल की प्रणाली में.....फेमिलियां बनायी गयी थीं।

बोध प्रश्न 6

एंग्लर तथा प्रांटल की प्रणाली में Dicots में दो उपक्लास क्या-क्या हैं

i) .....

ii) .....

2.5 सारांश

इस इकाई में अपने निम्नलिखित बातें सीखी–

- बाहरी दुनिया में एक व्यवस्था प्राप्त करने की दृष्टि से जीवधारियों का वर्गीकरण करना एक मूलभूत विधि है।
- वर्गीकरण की विभिन्न प्रणालियों को तीन वर्गों–कृत्रिम, प्राकृतिक तथा जातिवृतीय वर्गों में बांटा जाता है। लिनियस द्वारा प्रस्तुत वर्गीकरण प्रणाली, कृत्रिम प्रणाली का एक सर्वोत्तम उदाहरण है। लिनियस ने कुल मिलाकर 24 क्लास बनाए।
- वर्गीकरण की प्राकृतिक प्रणाली में दो ब्रिटिश वनस्पतिज्ञों बेंथम तथा हुकर ने ऐसी प्रणाली प्रस्तुत की जो मुख्यतः आकृति संबंधों पर आधारित है। इस प्रणाली में कुल 202 फ़ेमिलियां बनायी गयी थीं। आरंभिक फ़ेमिली है रैनुनकुलेसी तथा अंतिम फ़ेमिली है पोऐसी (ग्रामिनी) है।
- वर्गीकरण की जातिवृतीय प्रणालियां वे होती हैं जिनमें पौधों को उनकी क्रमविकासीय तथा आनुवंशिकीय बंधुताओं के आधार पर वर्गीकृत किया जाता है। इस श्रेणी में सबसे अधिक प्रचलित प्रणालियां हैं दो जर्मन वनस्पतिज्ञ एंग्लर तथा प्रांटल, ब्रिटिश वनस्पतिज्ञ जॉन हचिन्सन तथा रूसी वनस्पतिज्ञ तख़्तज़ान की।
- एंग्लर तथा प्रांटल की वर्गीकरण प्रणाली में एकलिंगी, केटकिन में व्यवस्थित नग्न फूलों को सर्वाधिक आदिम प्रकार के फूल माना गया है। इस प्रणाली में जिम्नोस्पर्मों का ऐंजियोस्पर्मो के तुरंत पहले का स्थान एक महत्वपूर्ण गुण है। इस प्रणाली में पुष्पी पौधों की कुल मिलाकर 303 फ़ेमिलियां बनायी गयी हैं।
- हचिन्सन की प्रणाली मुख्यतः 24 जातिवृतीय सिद्धांतों पर आधारित है। उसने द्विबीजपत्री की दो विकास दिशाएं पहचानी–एक लिग्नोसी (कोष्ठीय पौधे) तथा दूसरी हर्बेसी (शासकीय पौधे) इस प्रणाली में कुल 111 आर्डर तथा 420 फेमिलियां बनायी गयीं।
- तख़्तजान ने अपनी वर्गीकरण प्रणाली 1942 में बनायी और उसके बाद उसने इसे कई बार दोहराया और उसमें संशोधन किए। इस प्रणाली का नवीनतम संस्करण 1980 में आया। उसने द्विबीजपत्री तथा एकबीजपत्री के लिए नए नाम बनाए और उन्हें क्रमशः मैग्नोपसीडा (Magnoliopsida) तथा लिलिऔपसीडा (Liliopsida) के नाम दिए। उसने अपनी वर्गीकरण प्रणाली में पुष्पी पौधों की 419 फ़ेमिलियां बनायीं।

2.6 अंत में कुछ प्रश्न

1) वर्गीकरण की लैंगिक प्रणाली के वर्गकरण की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, वर्गीकरण का आधार, तथा उनकी रूपरेखा दीजिए।

2) बेंथम तथा हुंकर की वर्गीकरण प्रणाली की रूपरेखा दीजिए। इस प्रणाली के गुण दोष बताइए।

3) बेंथम तथा हुकर के पॉलिपैटेली के वर्गीकरण की योजना बना कर दिखाइए।

4) एंग्लर तथा प्रांटल की वर्गीकरण प्रणाली को एक चार्ट के रूप में दर्शाइए।

5) हचिंसन की वर्गीकरण प्रणाली कितने जातिवृतीय सिद्धांतों पर आधारित है। कम से कम 15 सिद्धांत गिनाइए।

6) हचिंसन की वर्गीकरण प्रणाली की रूपरेखा को एक योजना द्वारा दर्शाइए। प्रत्येक वर्ग में आरंभिक तथा चरम स्थान के आर्डर बताइए।

7) तख़्तज़ान की वर्गीकरण प्रणाली को एक चार्ट के रूप में दर्शाइये।

2.7 उत्तर

बोध प्रश्न

1) i) पुंकेसरों की संख्या
   ii) पुंकेसरों का साइज
   iii) परागकोशों का संसंजन

2) अ) डाइडिनेमस
   ब) टेट्राडिनेमस
   स) मॉनेडलफस

3) अ) 202
   ब) रैनुनकुलैसी, पोयेसी
   स) द्विबीजपत्री, एकबीजपत्री

4) अ) बेंथम तथा हुकर की प्रणाली में एस्टरेसी का स्थान कतई ठीक नहीं है और न ही तर्कसंगत है क्योंकि यह गैमोपिटेली के बिल्कुल आरंभ में रखी गयी है। वास्तव में यह फ़ेमिली एक सर्वाधिक विकसित फ़ेमिली है और इसे चरम स्थान पर रखना चाहिए।
   ब) बेंथम तथा हुकर की प्रणाली में ऑर्किडेसी का स्थान न्यायोचित नहीं है क्योंकि इस के अंतर्गत एकबीजपत्री के आरंभ में रखा गया है जब कि आर्किडेसी फ़ेमिली एकबीजपत्री की एक सर्वाधिक विकसित फेमिली है और इसलिए इसे एकबीजपत्री के अंत में रखना चाहिए।

5) अ) एडाल्फ एंग्लर 1892
   ब) डाई नैचुरलाइकेन फलेन्जनफैमिलियन, एडॉल्फ एंग्लर तथा कार्ल ए.ई. प्रांटल
   स) 303

6) i) एक्लैमाइडी
   ii) स्मिपॉटेली

अंत में कुछ प्रश्न

1) मूल पाठ 2.2 तथा 2.2.1 देखिए।

2) मूलपाठ 2.3 देखिए

3) बेंथम तथा हुकर का आलेखीय निरूपण देखिए।

4) एंग्लर तथा प्रांटल प्रणाली के आलेखीय निरूपण की सहायता से चार्ट बनाइए।

5) कुल मिलाकर 24 जातिवृतीय सिद्धांत हैं। इनमें से 15 छाँटिए, विभिन्न आकारिकीय लक्षणों अर्थात फूल की सममिति, एकव्याससममित बनाम त्रिज्यासममित, पुंकेसरों, स्त्रीकेसरों की संख्या, आदि से कुछ कुछ छाँट कर लिखिये।

6) हचिंसन प्रणाली के आलेखीय निरूपण को देखिएं तथा इस प्रणाली की रूपरेखा एवं उसमें पहले तथा अंतिम आर्डरों को दर्शाते हुए एक योजनाबद्ध आरेख बनाइए।

7) सेक्शन 2.5.3 देखिए।

इकाई 3 वर्गीकरण प्रणालियां–प्राणी

संरचना

3.1 प्रस्तावना
उद्देश्य
3.2 जैविकीय वर्गीकरण का लक्ष्य
3.3 वर्गीकरण के प्रकार
प्रकटलक्षणी वर्गीकरण
प्राकृतिक वर्गीकरण
जातिवृत्तीय वर्गीकरण
क्रमविकासीय वर्गीकरण
सर्वलक्षणी वर्गीकरण
3.4 वर्गिकीय लक्षण
3.5 वर्गिकीय लक्षणों का चयन
3.6 वर्गिकीय पदानुक्रम
3.7 कुल कितने जीव जगत?
3.8 पांच–जगत प्रणाली
3.9 सारांश
3.10 अन्त में कुछ प्रश्न
3.11 उत्तर

3.1 भूमिका (Introduction)

आप अनेकों स्पीशीज़ के वैविध्य की भरमार है इनकी कुल संख्या कितनी है मालूम नहीं–लेकिन अनुमान लगाए गए हैं कि जीवित स्पीशीज़ की संख्या एक करोड़ से ऊपर ही होगी। प्राणिवैज्ञानिकों द्वारा प्राणियों की 15 लाख से अधिक स्पीशीज़ के नाम दिए जा चुके हैं और हर साल एक हजार से अधिक नए नाम और जुड़ जाते हैं। इस पर भी प्राणिवैज्ञानिकों का मानना है कि अभी तक जितनी स्पीशीज़ के नाम रखे जा चुके हैं वे समस्त जीवित प्राणियों के 20% से कम हीं हैं और अतीत में जितने रहा करते थे उनके 1% से भी कम हैं। इस विविधता ने लोगों का ध्यान आकर्षित किया है। आरम्भ में इस विविधता का अध्ययन मात्र व्यावहारिक कारणों से ही प्रेरित होता था, ताकि मालूम हो सके कि कौन सा प्राणी आहार का अच्छा स्रोत हो सकता है अथवा कौन सा प्राणी औषधि का अथवा अन्य उत्पादों का, और यह उद्देश्य आज भी जारी है।

जीवन की विविधता के विषय में एक दूसरे से संचार करने के लिये जीववैज्ञानिकों ने यह जरूरी समझा कि जीवों को नाम दिए जाएं एवं उनका वर्गीकरण किया जाए। वर्गीकरण की मूल विधि यही थी कि प्राणियों को उनमें पायी जाने वाली समानताओं के आधार पर वर्गीकृत किया जाए। वर्गीकरण स्थिर नहीं होता बल्कि जैसे-जैसे नई जानकारी मिलती जाती, नई विचारधाराएं आती और नयी-नयी स्पीशीज़ का पता चलता जाता है वैसे-वैसे वर्गीकरण भी लगातार बदलता जाता है। वर्गीकरण की प्रक्रिया में दो स्पष्ट प्रक्रियाएं प्रायः एक साथ की जाती रहती हैं–वर्गीकृत की जाने वाली वस्तुओं के तुल्य लक्षणों की स्थापना और इन लक्षणों के आधार पर उन वस्तुओं के वर्ग बनाना।

वर्गीकरण का मुख्य उद्देश्य है 10 लाख से अधिक स्पीशीज़ की विविधता एवं उनकी संख्या पर निगाह बनाए रखना और नयी स्पीशीज़ की खोज का प्रावधान रखना। यह एक ऐसी संचार–प्रणाली है जिसके द्वारा सर्वाधिक सूचना प्रदान होती है और यह सूचना सर्वाधिक सरलता से निकाल भी ली जाती है। वर्गीकरण की उत्कण्ठा से आज प्रयुक्त होने वाली अनेक सम्मिश्र प्रणालियां बनायी जा चुकी हैं और उन जैविकीविदों के प्रयास से जीव

विज्ञान के अनेक क्षेत्रों में महत्वपूर्ण प्रगति हुई है जैसे कि व्यवहार विज्ञान, पारिस्थितिकी, जैवभूगोल, भ्रूणविज्ञान तथा कार्यिकी के क्षेत्रों में।

इकाई I तथा II में आप विभिन्न पादप–वर्गीकरणों के विषय में पढ़ चुके हैं, अब इस इकाई में आप प्राणि–वर्गीकरण के विषय में पढ़ेगे। इस यूनिट को पढ़ चुकने के बाद आप ये बातें जान पाएंगे :

- प्राणि–वर्गीकरण का महत्व
- जैविकीय वर्गीकरण का लक्ष्य
- प्राणि–वर्गिकी में काम में लायी जानेवाली विभिन्न वर्गीकरण प्रणालियां
- वर्णन की गयी विविध वर्गीकरण विधियों के गुण–दोष

3.2 जैविकीय वर्गीकरण के लक्ष्य

प्राणि–विविधता का संसार काफी जटिल है तथा इसके लिए जीवधारियों में पायी जाने वाली समानताओं तथा असमानताओं को समझने-पहचानने की क्षमता होना जरूरी है। वर्गीकरण प्रणालियों की चार महत्वपूर्ण भूमिकाएं हैं। पहली, ये याद रखने में सहायक होती हैं। यदि हम बहुत संख्या में विभिन्न प्राणियों को ऐसे वर्गों में समूहित न करें जिनके सभी सदस्यों में अनेक लक्षण समान हों तो उनमें से हर एक-एक के लक्षणों को अलग-अलग याद रखना असम्भव है। दूसरी, वर्गीकरण प्रणालियाँ हमारी भविष्यवाणी क्षमताओं को बहुत बढ़ा देती हैं। उदाहरण के लिए, यदि आपको मालूम है कि स्तनियों की सभी स्पीशीज़ में स्तन-ग्रंथियों होती हैं जिनसे वे अपनी संतानों के लिये दूध का स्राव करती हैं तो हम यह ठीक दावे से कह सकते हैं कि किसी नए-नए खोजे गए स्तनी में भी उसकी संतानों को आहार प्रदान कराने की भी यही विधि होगी भले ही उस स्पीशीज़ के पहले पहल खोजे गए नमूने नर ही क्यों न रहे हों। तीसरी, वर्गीकरण प्रणालियों से, प्राणियों में परस्पर संबंधों के विषय में हमारी स्पष्टीकरण–क्षमता बढ़ जाती है। जीववैज्ञानिकों के लिए यह तीसरी भूमिका विशेष तौर पर महत्वपूर्ण है क्योंकि इसी के आधार पर वे उन क्रमविकासीय दिशामार्गों का पुनर्निमाण कर सकते हैं जिनके द्वारा जीवधारियों की विविधता पैदा हुई। प्राणियों के नाम द्विपदनाम पद्धति (binomial nomenclature) के अनुसार दिए जाते हैं जैसे कि आप अगले यूनिट में पढ़ेंगे। यदि नाम बदल दिए जाते हैं तो यह प्रणाली उन नाम-परिवर्तनों को ढूंढ़ने का भी साधन प्रदान करती है। नाम दो प्रकार के होते हैं–वैज्ञानिक नाम तथा सामान्य नाम। सामान्य नाम बहुत ही अविश्वसनीय होते हैं और प्रायः भ्रामक भी। उदाहरण के लिए, मध्य ओटेरियो की बड़ी झीलों की पिकेरेल (pickeral) को एक बढ़िया खाद्यशील मछली माना जाता है जबकि दक्षिण की ओर "ग्रेट लेक्स" में इसे एक अपेक्षाकृत अवांछनीय खाद्यशील मछली माना जाता है। अतः किसी स्पीशीज़ के लिए एक निश्चित वैज्ञानिक नाम होना ही चाहिए।

वर्गीकरण प्रणालियां उन लक्षणों पर आधारित होती हैं जिनकी उपयोगिता इस बात पर निर्भर है कि प्रणाली से हम क्या प्राप्त करना चाहते हैं। प्राचीन काल में प्राणियों का वर्गीकरण कई दृष्टिकोणों से किया गया था जैसे कि जनन का प्रकार, आवास एवं जीवन–शैली, तथा मनुष्यों के लिए उपयोगिता, लेकिन आज हम कहीं अधिक विकसित वर्गीकरण का प्रयोग करते हैं। अतः वर्गीकरण द्वारा वे चारों भूमिकाएं पूरी होनी चाहिए जिनके विषय में आप पढ़ते आए हैं। समय-समय पर विभिन्न वर्गीकरण प्रस्तुत किए गए हैं और हम उन्हें पांच श्रेणियों में विभाजित कर सकते हैं।

3.3 वर्गीकरण के प्रकार

प्राणियों के कई जैविकीय वर्गीकरण हैं जिन्हें समय-समय पर प्रस्तुत किया जाता रहा है

लेकिन वे सभी निम्न में से किसी न किसी एक श्रेणी में आते हैं। ये हैं:

i) प्रकटलक्षणी वर्गीकरण (Phenetic classification)

ii) प्राकृतिक वर्गीकरण (Natural classification)

iii) जातिवृत्तीय वर्गीकरण (Phylogenetic classification)

iv) क्रमविकासीय वर्गीकरण (Evolutionary classification)

v) सर्वलक्षणी वर्गीकरण (Omnispective classification)

3.3.1 प्रकटलक्षणी वर्गीकरण

यह प्रणाली, जो लक्षण जैसे भी दिखायी पड़ते हैं बस उन्हीं पर आधारित है, इसमें उन लक्षणों को जातिवृत्त के किसी सीधे संदर्भ में नहीं लिया जाता। विभिन्न टेक्सॉनों का वर्गीकरण कुछ लक्षणों पर आधारित होता है या कुल मिलाकर विशिष्टताओं पर, जब कुछ ही लक्षणों पर आधारित होता है तब टेक्सॉनों के बीच प्राकृतिक बंधुताओं की खोज के फलस्वरूप वर्गों में परिवर्तन कर दिया जाता है।

प्रकटलक्षणी शैली में एक सबसे बड़ा दोष यह है कि इसमें प्राकृतिक समूहों की स्थापना का एक गलत दावा प्रदर्शित होता है, ये समूह क्रमविकास के फलस्वरूप न बने होकर मानव मस्तिष्क की उपज जान पड़ते हैं। अब यह एक सुविदित तथ्य है कि सभी प्राकृतिक टेक्सॉन, विशेषतः स्पीशीज़ जिनमें जनन विलगाव पाया जाता है, कोई मनमाने व्यक्तिपरक मानवनिर्मित परिघटनाएं नहीं हैं। यह शैली उन वर्गों के लिए काफी लाभदायक है जिनका वर्गीकरण अपरिपक्व है और उन वर्गों के लिए जिनमें बहुत से ऐसे लक्षण पाए जाते हैं जो निरर्थक नहीं हैं। जब उच्चतर जीवधारियों पर लागू करनी हो तब यह शैली काम की नहीं है। प्रकटलक्षणविदों की कम्प्यूटर–विधि वर्गिकी में तब बहुत उपयोगी हो सकती है जब इसे क्रमविकासीय वर्गिकी के तथा लक्षणों के सही-सही मूल्यांकन के साथ जोड़ा जाए।

3.3.2 प्राकृतिक वर्गीकरण

प्राकृतिक वर्गीकरण टेक्सॉनों के प्राकृतिक लक्षणों पर आधारित है। कुछ लोग प्राकृतिक वर्गीकरण को जातिवृत्तीय ही मानते हैं क्योंकि इसमें इसके विभिन्न वर्गों के बीच क्रमविकासीय संबंधों की झलक मिलती है। कुछ लोग इस विचारधारा का इस आधार पर विरोध करते हैं कि जातिवृत्त का पता नहीं है उसकी तो केवल परिकल्पना ही की गयी है। यह कोई गुण-विशेषता नहीं है वरन् गुण-विशेषता का मात्र एक अनुमान है और यह पिछले वर्गीकरण पर आधारित है। प्राणियों को उतने ही वर्गों तथा उपवर्गों में रखा गया है जितनी कि समानताएं एवं असमानताएं हैं। वे "प्राकृतिक वर्गीकरण" की परिभाषा इस प्रकार करते हैं कि इस वर्गीकरण में वर्गों को सर्वाधिक संख्या में समान विशेषताओं के आधार पर पहचाना जाता है, और देखा जाता है कि वैविध्य के असातत्यों की सीमा कहां हैं। इस परिभाषा में उन विशेषताओं की इस क्षमता को भी ध्यान में रखा जाता है कि वे अन्य लक्षणों के सहसंबंधों के विषय में भी अधिकाधिक संख्या में सही निष्कर्ष प्रदान करा सकें।

3.3.3 जातिवृत्तीय अथवा संशाखीय वर्गीकरण

वर्गीकरण में जातिवृत की बहुत बड़ी भूमिका है। वर्गिकी के लिए यह एक उचित सैद्धांतिक पृष्ठभूमि प्रदान करता है तथा वर्गीकरण में निहित सभी साहचर्यों के स्पष्टीकरण के लिए यह सर्वथा अनिवार्य है। कुछ लोगों के विचार में जातिवृत्तीय वर्गीकरण तथा क्रमविकासीय वर्गीकरण एक दूसरे के समान हैं क्योंकि ये दोनों ही उन लक्षणों पर आधारित हैं जो एक समान पूर्वज से व्युत्पन्न हुए हैं, इसके विपरीत कुछ अन्य लोग इन दोनों को अलग-अलग शैलियां मानते हैं। संशाखीय वर्गीकरण (cladistic classification) पूर्णतः जातिवृत्तीय विशाखन पर आधारित है। संख्यात्मक प्रकटलक्षणिकी (numerical phenetics) के विपरीत संशाखीय जातिवृत्त में दो प्रकार के लक्षणों के निर्धारण द्वारा एक जातिवृत्तीय विशाखन क्रम का चित्रण किया जाता है, ये हैं एक तो सहभागी आदिम

(symplesiomorphic) लक्षण तथा दूसरे सहभागी व्युत्पन्न (synapomorphic) लक्षण (चित्र 3.1)। लेकिन आज तक, कुछ हद तक केवल घोड़ों के जातिवृत्तीय वर्गीकरण को छोड़कर, किसी भी अन्य प्राणि-वर्ग के लिए कोई वास्तविक जातिवृत्तीय वर्गीकरण उपलब्ध नहीं हो पाया है। ऐसा होना असम्पूर्ण फॉसिल-रिकार्ड के कारण है तथा इसलिए भी कि अन्य शैलियों के द्वारा प्राप्त होने वाले तुलनात्मक आंकड़े भी कदाचित कोई सही-सही तस्वीर प्रदान नहीं कर पाते। इस प्रकार संशाखीय वर्गीकरण प्रणाली केवल वंशानुक्रम का ही बोध करा पाती है। इन वर्गीकरण प्रणालियों में जीवधारियों की कुल मिलाकर समानताओं की मात्रा को व्यक्त करने का प्रयास नहीं है।

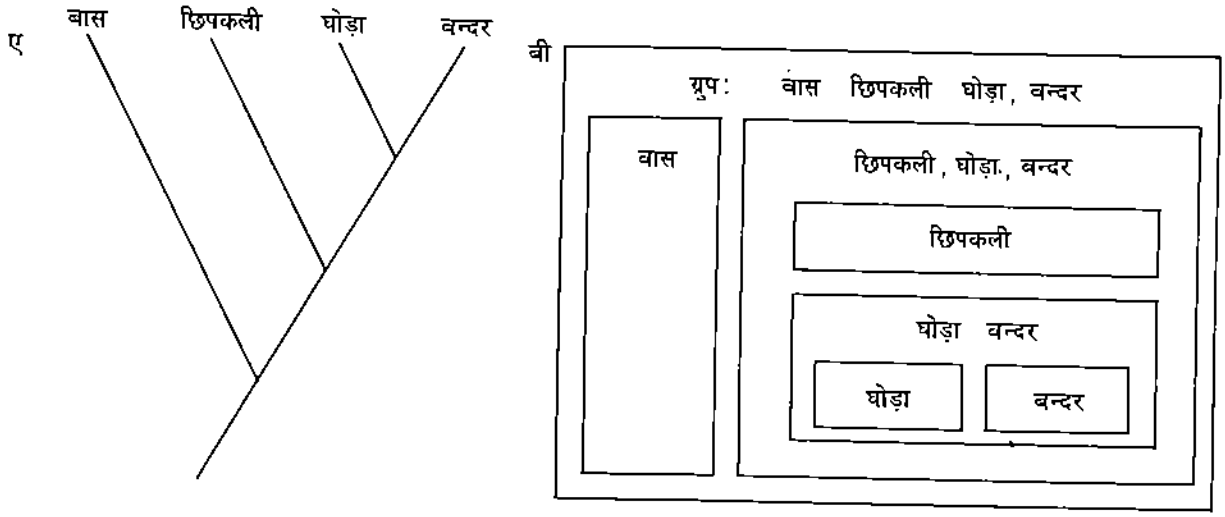

चित्र 3.1 a) एक सरल क्लेडोग्राम (शाखारेख)। बास मछली बहिवर्ग है और बंदर, घोड़ा तथा छिपकली निकटतः संबंधित वर्ग हैं। परम्परागत जातिवृत्तीय वृक्षों से भिन्न क्लैडोग्राम में समय का मापक्रम नहीं दिखाया जाता क्योंकि इसमें वास्तविक ऐतिहासिक घटनाएं न दर्शाकर संबंधों की केवल आपेक्षित मात्रा ही दिखायी जाती है।

b) शाखारेख से निर्मित, शाखीय पदानुक्रम के "समाविष्ट सेट"।

3.3.4 क्रमविकासीय वर्गीकरण

क्रमविकासीय वर्गीकरण में प्रकटलक्षणी तथा संशाखीय दोनों प्रकार का वर्गीकरणों का समावेश है। क्रमविकासीय वर्गीकरणविद अपने वर्गीकरणों में जीवधारियों के बीच क्रमविकासीय संबंध तथा उनके बीच की समानता-मात्राएं दोनों ही के दर्शाने का प्रयास करते हैं। मगर किसी एक अकेली वर्गीकरण प्रणाली में समानताओं तथा वंशानुक्रमों को एक साथ सही-सही दिखाना असम्भव है, ऐसा इसलिए क्योंकि जीवधारियों के वर्गों के बीच विकास-दर और स्वयं जीवधारियों के वर्गों के भीतर के विभिन्न लक्षणों की विकास-दर प्रायः बहुत ज्यादा परिवर्तनशील होती है। अतः क्रमविकासीय वर्गीकरणविदों को अपने दो लक्ष्यों के बीच समझौता करना जरूरी है। यह स्थिति उस समय तक भ्रामक नहीं होती है जब तक कि समझौते की प्रकृति स्पष्टतः दे दी गयी हो जिससे कि प्रयोगकर्ता को पता चल जाए कि वर्गिकीय श्रेणियां किस प्रकार बनाई गई हैं। एक सरल परिकल्पित उदाहरण को लेकर हम दर्शा सकते हैं कि एक ही प्रकार के आंकड़ों को लेकर भी किस प्रकार भिन्न शैलियों से जीवों के भिन्न वर्गीकरण प्राप्त होते हैं चित्र 3.2।

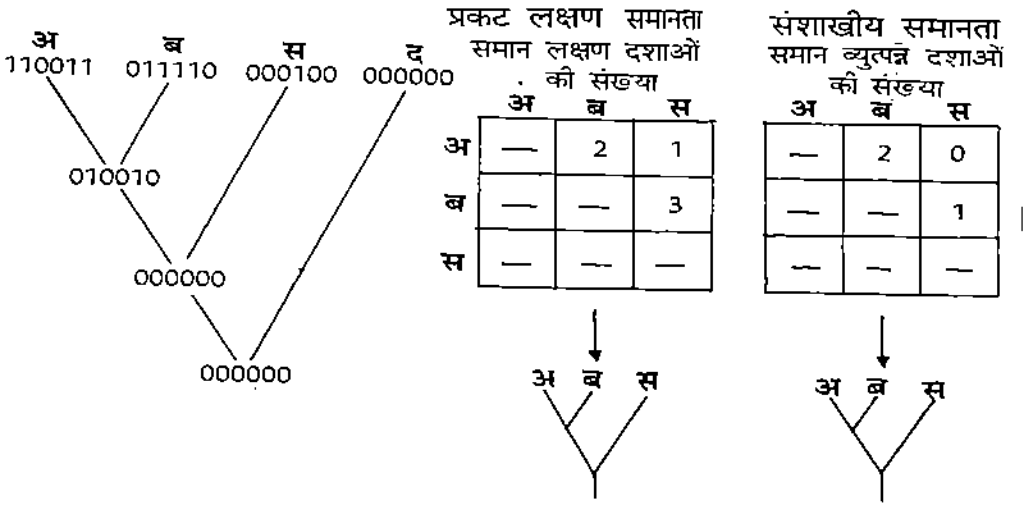

चित्र 3.2 भिन्न प्रणालियों से विभिन्न वर्गीकरण प्राप्त होते हैं।

इस उदाहरण में छह: लक्षण मापे गए हैं और प्रत्येक लक्षण की या तो पूर्वज (0) हो सकती है या एक व्युत्पन्न दशा (1)। इस उदाहरण में लक्षण–दशाओं का क्रमविकासीय उलटाव नहीं पाया गया है लेकिन वास्तविक जीवन में कुछ उलटाव हो सकते हैं। इन लक्षण–दशाओं को लेकर हम चार सपीशीज़ की प्रकटलक्षणत: तथा संशाखीयत: तुलना कर सकते हैं। प्रकटलक्षण समानता–गणना उन समान विशिष्टताओं की संख्या के आधार पर की गयी है जो व्युत्पन्न दशा में हैं। चार स्पीशीज़ के फेनोग्राम (phenograms), (प्रकटलक्षणालेख) तथा क्लैडोग्राम (शाखालेख) बिल्कुल भिन्न हैं (चित्र 3.3)।

एक वास्तविक उदाहरण फ़ीज़ेण्ट पक्षियों तथा उनके संबंधियों के वर्गीकरण का ले सकते हैं। फेज़िएनॉइड पक्षियों की स्पीशीज़ सुविदित हैं और उनकी आकारिकी के संदर्भ में उनका काफ़ी गहन अध्ययन किया जा चुका है। कुक्कुटों के केंद्रकीय जीनोम के तीन क्षेत्रों का गहरा अध्ययन किया गया है, ये हैं लाइसोज़ाइम C के लिए संरचनात्मक जीनों का क्षेत्र, तीन भिन्न "α जैसे" ग्लोबिनों के लिए जीनों का क्षेत्र तथा चार "β जैसे" ग्लोबिनों के जीनों का क्षेत्र। इनमें से प्रत्येक क्षेत्र एक अलग क्रोमोसोम पर स्थित होता है। जीनोमों के इन भागों को इन सबके लिए भी मापा गया है–जंगली मुर्गी (जो सभी पालतू कुक्कुटों की पूर्वज है), चकोर, टर्की, फ़ीजेण्ट, मोर तथा गिनी–फ़ाऊल। यदि हम ग्लोबिन अणुओं में क्रमविकासीय परिवर्तनों की स्थिर दर को मान लें तो आनुवंशिकीय सूचना के आधार पर बने फ़ेज़िएनॉइड पक्षियों के फ़ीनोग्राम को एक क्लैडोग्राम (cladogram) में परिणत किया जा सकता है। यह वर्गीकरण पारम्परिक आकारिकीय प्रमाण पर आधारित वर्गीकरण से (चित्र 3.3) कई महत्वपूर्ण बातों में भिन्न है। इस मामले में, आनुवंशिक प्रमाण इस बात पर खास तौर से बल देता है क्योंकि पक्षियों में पाए जाने वाले अंतरों की मात्रा तीनों जीन–क्षेत्रों में लगभग बराबर है। जाहिर है कि वर्गिकीविद को इन फ़ेज़िएनाइड पक्षियों में काफी ज्यादा अभिसारी क्रमविकास पाए जाने से धोखा हुआ है। नए आनुवंशिक प्रमाण के फलस्वरूप कदाचित आज का वर्गीकरण बदल दिया जाएगा।

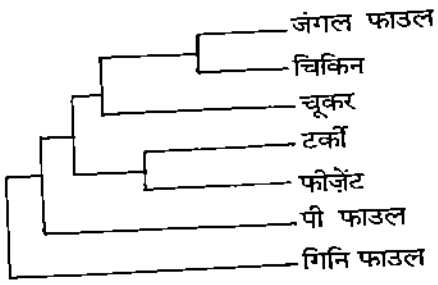

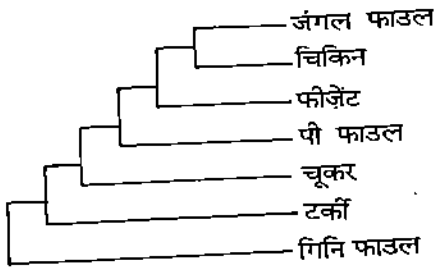

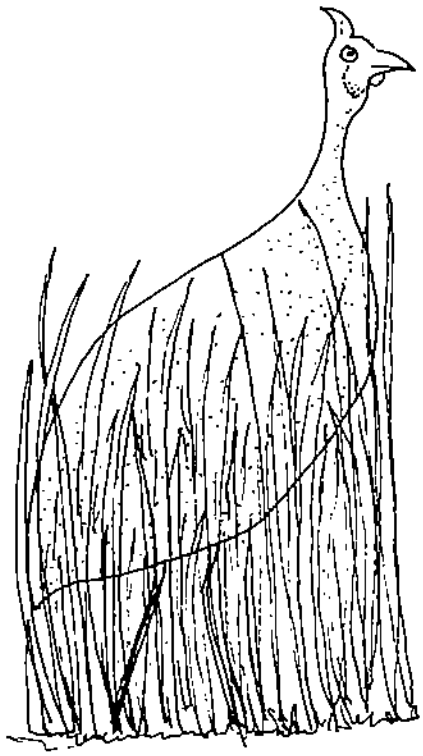

चित्र 3.3 : फेजिएनॉइड पक्षियों का जातिवृत। फजिएनाइड (जैसे–फीजेंट) पक्षी आजकल कई भिन्न फेमिलियों में रखे जाते हैं। इन पक्षियों में ये सब शामिल हैं–न्यूमिनीडेयी (Numinidae), गिनि कुक्कुट (Guinea fowl), मेलिऐग्रिडिडी (Meleagrididae), टर्की (Turkeys), तथा फैज़िएनिडी (Phasianidae) (फीज़ेन्ट, तीतर, मुर्गा)। जातिवृत्त वृक्ष (a) में वे संबंध दर्शाए गए हैं जिनका संकेत केंद्रकीय जीन मानचित्र से प्राप्त होता है। जातिवृत्तीय वृक्ष (b) में वह शाखीय व्यवस्था दर्शायी गयी है जो इन पक्षियों के सामान्य आकारिकीय लक्षणों के अध्ययन के आधार पर बनायी गयी हैं। दोनों योजनाओं में यह समानता है कि गिनी-फाऊल (c) अन्य से सर्वाधिक पृथक है, और यह कि जंगली मुर्गी तथा मुर्गियां बहुत निकटतः संबंधित हैं, लेकिन कुछ अन्य महत्वपूर्ण बातों में ये योजनाएं भिन्न हैं। केंद्रकयी जीन आंकड़ों से पता चलता है कि इस वर्ग में आकारिकी में अभिसारी क्रमविकास हुआ है।

आज सर्वाधिक इस्तेमाल में लाये जाने वाले वर्गीकरण क्रमविकासीय वर्गीकरण हैं। ये वर्गीकरण अंशतः इसलिए इस्तेमाल में चले आ रहे हैं क्योंकि ये सुपरिचित हैं। उदाहरण के लिए, मगरमच्छों को सामान्यतः रेप्टाइलों के साथ वर्गीकृत किया जाता है क्योंकि उनमें तथा छिपकलियों एवं अन्य रेप्टाइलों में आकारिकीय समानताएं हैं (प्रकटलक्षण वर्गीकरण)

हालांकि उनकी समान अर्वाचीन पूर्वजता रेप्टाइलों से न होकर पक्षियों से अधिक है। पूर्णतः संशाखीय वर्गीकरण में मगरमच्छों को रेप्टाइलों के साथ न रखकर कदाचित पक्षियों के साथ वर्गीकृत करना होगा।

3.3.5 सर्वलक्षणी वर्गीकरण

यह वर्गीकरण प्रणाली ब्लैकवेल्डर (1967) द्वारा रखे गए प्राकृतिक वर्गीकरण की सँकल्पना का ही प्रसार रूप है। यह शैली काफ़ी वास्तविक तथा व्यावहारिक प्रतीत होती है। इसमें अनुभवशील वर्गिकीविद जीवधारी के सभी सहज उपलब्ध लक्षणों को शामिल कर लेता है लेकिन वर्गीकरण उद्देश्य के लिए वह केवल उन्हीं लक्षणों को लेता है जो वर्ग बनाने एवं विभिन्नता स्थापित करने में सहायक होते हैं। आज अधिसंख्या प्राणी वर्गिकीविद इसी प्रचलन को अपनाते हैं।

बोध प्रश्न 1

सही कथनों के आगे कोष्ठकों में "स" लिखकर तथा गलत कथनों के आगे "ग" लिख कर बताइए कि निम्न कथन सही हैं या गलत।

i) प्रकटलक्षणी वर्गीकरण सीधे देखे जाने वाले लक्षणों के प्रकट महत्व पर आधारित होता है। ( )

ii) प्रकटलक्षण शैली में प्राकृतिक वर्गों को क्रमविकास की उपज के रूप में लिया जाता है। ( )

iii) प्राकृतिक वर्गीकरण टेक्सॉनों के प्राकृतिक लक्षणों पर आधारित होता है। ( )

iv) प्राकृतिक वर्गीकरण में कम से कम संख्या में समान विशेषताएं होती हैं और इन विशेषताओं की सीमाएं वैविध्य में असंतताओं के कारण होती हैं। ( )

v) संशाखीय वर्गीकरण पूर्णतः जातिवृत्तीय विश्लेषण पर आधारित होता है। ( )

vi) आज तक प्राणियों के किसी भी वर्ण के लिए कोई वास्तविक जातिवृत्तीय वर्गीकरण नहीं बन पाया है। ( )

vii) संशाखीय तथा प्रकटलक्षणी दोनों के मिलने से क्रमविकासीय वर्गीकरण बनता है। ( )

viii) आजकल सर्वाधिक इस्तेमाल होने वाले वर्गीकरण क्रमविकासीय होते हैं क्योंकि वे इतने अधिक सुपरिचित हैं। ( )

ix) सर्वलक्षणी वर्गीकरण प्राकृतिक वर्गीकरण की संकल्पना का प्रसार है। ( )

3.4 वर्गिकीय लक्षण

वर्गीकरण उपलब्ध सूचना के आधार पर किया जाता है। सूचना जितनी अधिक होगी वर्गीकरण भी उतना ही अच्छा होगा। आधुनिक वर्गिकी को, जीवविज्ञान की विविध शाखाओं में हुए योगदानों को शामिल करके विकसित किया गया है। अतः कभी-कभी वर्गीकरण प्रणालियों में महत्वपूर्ण संशोधन किए जाते हैं। जीवधारियों को वर्गीकृत करने में कई प्रकार के लक्षणों को लिया जाता है। सदियों से जीवधारियों के लक्षणों को मापा गया है, और अधिकांश स्पीशीज़ के विवरण स्थूल आकारिकी पर आधारित होते हैं अर्थात देह–भागों के साइज एवं उनकी आकृति पर। आकारिकी फ़ॉसिलों से प्रकट हो सकती है इसलिए सजीव जीवधारियों के पूर्वजों के विषय में सूचना प्राप्त करने का यही एक सर्वोत्तम सीधा स्रोत है। आज ऐसी बहुत सी परिष्कृत विधियां उपलब्ध हैं जिनके द्वारा आकारिकी मापन किए जा सकते हैं तथा व्यष्टिगत जीवों, जीव-समष्टियों एवं स्पीशीज़ के बीच विभिन्नशीलता की मात्राओं की तुलना की जा सकती है।

अनेक जीवों की आरम्भिक परिवर्धन अवस्थाओं में अन्य जीवों से समानताएं दिखायी पड़ती हैं जो वयस्क अवस्था आते-आते समाप्त हो जाती हैं। उदाहरण के लिए, सी–स्क्वर्टों

पायी जाती है जो इन प्राणियों का अन्य कार्डेटों से संबंध प्रकट करती है। वयस्कों के परीक्षण से इस प्रकार का संबंध स्पष्ट नहीं हो सकती था।

फ़ॉसिलों से अतीत के प्राणियों के व्यवहार के विषय में कुछ पता नहीं चलता, जीवित प्राणियों में उनके व्यवहार की समानताओं से निकट बंधुताएं अक्सर प्रकट होती हैं। यह सूचना अपेक्षाकृत निकटतः संबंधित जीवों के संबंधों की पहचान करने में सर्वाधिक लाभदायक है। जर्मन व्यवहार वैज्ञानिक कोनार्ड लोरेन्ज ने सिद्ध किया है कि अन्य प्रमाणों का समर्थन करते हुए व्यवहार-नमूनों की निकट समानताएं यह संकेत देती हैं कि पिच्छ–व्यवस्था (plumage) बिल्कुल भिन्न होते हुए भी बत्तखों की सीशीज़ बहुत निकटतः संबधित होती हैं। बत्तखों की अनेक स्पीशीज़ में संकरण हो सकता है तथा वे जननक्षम संकार संतानें पैदा कर सकती हैं जिससे सिद्ध होता है कि वे आनुवंशिकतः समान हैं। कभी-कभी सफल संकरण से पता चलता है कि ऐसे जीव जो देखने में बहुत भिन्न दिखायी पड़ते हैं वे आनुवंशिक रूप में बहुत समान होते हैं। प्रोटीनों में ऐमीनो अम्ल के क्रम से उन आनुवंशिक समानताओं तथा भिन्नताओं के विषय में सूचना उपलब्ध होती है जो पर्यावरण से प्रेरित परिवर्तनों से अपेक्षाकृत मुक्त होती है। ऐमीनो अम्लों के प्रतिस्थापनों की संख्या से आनुवंशिक दूरी का एक सीधा माप मिल जाता है। ऐसा इसलिए कि जिन टेक्सॉनों का एक समान पूर्वज रहा है उनसे प्राप्त होने वाले प्रोटीनों में ऐमीनों अम्लों का प्रतिस्थापन हुआ हो सकता है। एक महत्वपूर्ण वर्गिकीय लक्षण स्वयं जीनों की संरचना है, यानी न्यूक्लियोटाइडों के क्रम। इन्हें कई विधियों से निर्धारित किया जाता है। इनमें से सबसे महत्वपूर्ण विधि है DNA तथा RNA को खास एन्ज़ाइमों का प्रयोग करके उन्हें छोटे-छोटे खण्डों में तोड़ना, ये एन्ज़ाइम विशिष्ट न्यूक्लियोटाइड–क्रमों की पहचान करने वाले होते हैं। उसके बाद इन खण्डों को इलेक्ट्रोफ़ोरेसिस द्वारा पृथक कर लिया जाता है और उनके क्रम निर्धारित कर लिए जाते हैं। अतः ये कुछ ऐसे महत्वपूर्ण वर्गिकी लक्षण हैं जिन्हें ध्यान में लाया जाना चाहिए। आइए देखें कि लक्षणों का चयन किस प्रकार किया जाना चाहिए।

3.5 वर्गिकीय लक्षणों का चयन

अंततः वर्गीकरण प्रणालियों का लगभग पूर्णतः, स्वयं जीनों के सीधे अध्ययन पर आधारित किया जा सकता है। लेकिन हम लम्बे समय तक अनेक स्रोतों से सूचना प्राप्त करके इस्तेमाल करते रहेंगे। जीवों के वर्गीकरण में उपयोगी लक्षण मापे जा सकने वाले, वर्णन किए जा सकने वाले, तथा जिस पर्यावरण में वह जीव रहता है उसके निरपेक्ष वे अपेक्षाकृत अविभिन्न बने रहने वाले होने चाहिए। एक ऐसे पौधे की पत्तियां उत्तम वर्गिकी लक्षण नहीं हो सकतीं जिसकी पत्तियां इस बात पर निर्भर रहते हुए अलग-अलग आकृतियों की होती हों कि वे जल के भीतर उग रही हैं या बाहर हवा में। अच्छे फॉसिल रिकार्ड के वर्गों के मामले में सीधे ही उन दरों को मापा जा सकता है जिन पर विभिन्न लक्षण प्रकट हुए हैं। न्यूक्लिइक अम्ल के विश्लेषणों तथा प्रोटीनों में ऐमीनों अम्ल क्रमों से जब उन्हें फॉसिल प्रमाण (वर्गों के विभाजन) के साथ जोड़ा जाता है, जीनों में होने वाले परिवर्तन की औसत दर के सही-सही अनुमान एवं उनके सीधे परिणाम पता चल जाते हैं। हालांकि सभी जीवों के लिए ये ही तरीके अपनाए जाते हैं, मगर जिन लक्षणों पर वर्गीकरण आधारित होता है वे अलग-अलग होते हैं, तथा केवल वे ही लक्षण मापे जाते हैं जो जीवों में बहुत स्पष्टतः विभिन्न होते हैं। पुष्पी पौधों में ये लक्षण हैं–विशाखन व्यवस्था, पत्ती की आकृति, विशेषित कोशिकाएं, जनन संरचानाएं, आदि। अनेक अकशेरूकियों में कवच होते हैं जो फॉसिलों के रूप में सरलता से परिरक्षित हो जाते हैं और प्राणी के मर चुकने के बहुत बाद भी उन्हें मापा जा सकता है। अतः वर्गिकीय लक्षण एक ऐसा लक्षण होता है जो सही समयों पर सभी सही नमूनों में विद्यमान हो। उपयोगी लक्षणों के चयन में बहुत सावधानी बरतनी चाहिए। लक्षण का चयन सीधा वर्गिकीविद के संचित अनुभव पर आधारित होता है। केवल वे ही लक्षण चुने जाने चाहिए जो स्पीशीज़ अथवा समूह में स्थिर हों, जो आसानी से

अध्ययन किए जा सके तथा जो अन्य निकट संबंध वाले टैक्सानों के लक्षणों से स्पष्ट रूप से पृथक हों। इस प्रकार वर्गिकीविद को उत्तम लक्षण ढूंढने होते हैं जो स्पीशीज़ अथवा अन्य टेक्सॉनों की भिन्नता को जल्दी से तथा आसानी से देखने में बहुत ही कारगर हों। उसे यह भी ध्यान में रखना होता है कि ज्ञात नमूनों में इन लक्षणों में न तो ज्यादा भिन्नता पायी जानी चाहिए और न ही आंतरिक आनुवंशिक भिन्नता पायी जानी चाहिए। साथ ही ये लक्षण जल्दी से पर्यावरण से भी प्रभावित नहीं हो जाने चाहिए, वरन, वे स्थिर होने एवं नमूने में सरलता से देखे जा सकने वाले होने चाहिए।

किसी लक्षण के चयन का एक महत्वपूर्ण आधार उस लक्षण की अन्य अंगों के लक्षणों के साथ समवृत्ति (Analogy) अथवा समजातता (Homology) का होना भी है। आइए देखें कि इसका अर्थ क्या है। परिभाषा के रूप में समजातता दो संरचनाओं में पायी जाने वाली वह अनुरूपता है जो किसी एक समान पूर्वज से हुई वंशागति के कारण आयी होती है। समाजात संचनाओं में प्रायः कुछ खास आधारभूत लक्षण मौजूद बने रहते हैं जो उनकी समान पूर्वजता दर्शाते हैं। उदाहरणार्थ, संवहनी पौधों की पत्तियों, और जैसा कि आप जानते ही हैं पत्तियों के अनेक रूपांतरण हैं लेकिन वे सब के सब एक-दूसरे की समजाततताएं ही हैं। इसी प्रकार, घोड़ों की, चमगादड़ों की, हवेलों की तथा मानवों की अगली टांगें (भुजाएं) हैं–इन सबकी अस्थि–संरचना का ढांचा समान है फिर भी वे अलग-अलग कार्य करती हैं (चित्र 3.4)

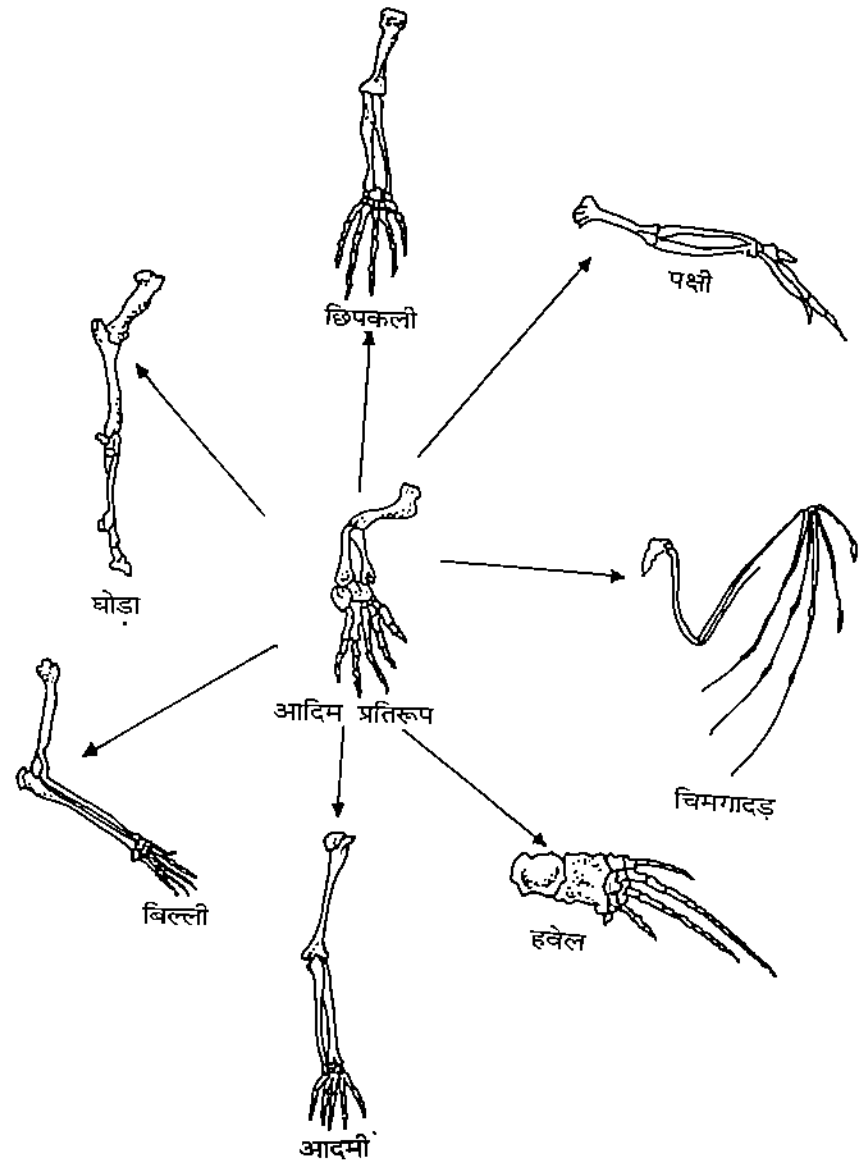

चित्र 3.4 संरचनात्मक समजातता। अलग-अलग उपयोगों के होने के बावजूद अनेक भिन्न कशेरूकियों के अग्रपादों की अस्थि संरचना का ढांचा समान होता है, यानी ये सभी उस एक प्राचीन पूर्वज की आदिम कंकालीय व्यवस्था के रूपांतरण है जिससे वे सभी व्युत्पन्न हुए हैं।

अभिसरित होकर पहले की अपेक्षा अब वे ज्यादा समान हो जाती हैं, क्योंकि अब वे समान कार्य करती हैं। अभिसारी क्रमविकास के कारण कार्य में आयी हुई इस समानता को समवृत्ति (anologous) कहते हैं तथा ऐसी संरचनाओं को समवृत्ति संरचनाएं कहते हैं। उदाहरण के लिए, तितलियों तथा पक्षियों दोनों के पंख उडडयन अंगों का कार्य करते हैं परंतु विशिष्टतः वे भिन्न संरचनाएं हैं तथा उनकी समान पूर्वजता नहीं है। कभी-कभी ये समवृत्ति संरचनाएं वर्गिकीविदों के सामने समस्या पैदा कर देती हैं क्योंकि यदि ध्यानपूर्वक अध्ययन नहीं किया गया कि ये संरचनाएं मूलतः किन संरचनाओं से रूपांतरित हुई हैं तो ऊपरी तौर पर उन एक समान पूर्वजता का मिथ्या आभास हो सकता हैं। इस प्रकार वर्गिकीय लक्षणों का चयन एक बहुत महत्वपूर्ण कार्य है और इसे बड़ी सावधानी से किया जाना चाहिए।

3.6 वर्गिकीय पदानुक्रम

जीवधारियों की जटिलता-सम्मिश्रता इतना आश्चर्यजनक कर देने वाली है कि कुछ लोग समझते हैं कि विवेकशील बुद्धि के लिए जीवन की थाह पाना असम्भव है। जीववैज्ञानिक परिघटनाओं के प्रति लगातार सही स्पष्टीकरण की खोज करके ऐसी धारणाओं को तोड़ते आ रहे हैं। किंतु संघटना की एक अन्य ऐसी पदानुक्रमता के बिना जिसके द्वारा अध्ययन किए जाने वाले जीवों की अतिविशाल विविधता में एक अर्थपूर्ण व्यवस्था बनाई जा सके, प्रकृति के रहस्यों को सुलझाने की हमारी क्षमता में भरी बाधा आएगी। इस व्यवस्थापूर्ण प्रणाली से हम विभिन्न प्रकार के जीवों की बीच विभेद कर पाते हैं। साथ ही इसके द्वारा हम लगभग 20 लाख ज्ञात सजीव जीवधारियों और उनके संग उनके विलुप्त पूर्वजों को अलग-अलग नाम देकर उनका वर्गीकरण कर सकते हैं।

अधिकांश वर्गीकरण प्रणालियों में लघुतर इकाइयों का उत्तरोत्तर बृहततर इकाइयों में समूहित किया जाता है (लघुतर इकाइयों के सदस्यों में पाए जाने वाले समान लक्षणों की संख्या थोड़ी होती है)। उदाहरण के लिए, शुतुरमुर्ग, उल्लू, भ्रमर पक्षी (humming birds) तथा गौरयया बिल्कुल भिन्न प्राणी हैं, मगर इनमें परस्पर मिलते-जुलते लक्षण कहीं अधिक हैं जब कि ह्वेलों, बिल्लियों, चूहों तथा मुर्गों से मिलते-जुलते लक्षण कम हैं। पहले वर्ग को पक्षी वर्ग कह कर तथा दूसरे वर्ग को स्तनी वर्ग कह कर हम उन कुछ खास लक्षणों की ओर सीधा ध्यान दिला देते हैं जो एक वर्ग के सदस्यों का परस्पर जोड़ते हैं और दूसरे वर्गों के सदस्यों से उन्हें अलग करते हैं।

आज जो प्रणाली इस्तेमाल की जाती है उसके अनुसार प्रत्येक स्पीशीज़ को दो नाम दिए जाते हैं, एक नाम है स्वयं स्पीशीज़ की पहचान का नाम और दूसरा नाम है जीनस का नाम जिसके अंतर्गत वह स्पीशीज़ आती है। इस प्रणाली को द्विपदनाम पद्धति (binomial nomenclature) कहते हैं और यह महान स्वेडनवासी जीव वैज्ञानिक केरोलस लिनियस (1707-1778) के कार्य पर आधारित है। जीनस निकटतः संबंधित स्पीशीज़ के समूह को कहते हैं (अंग्रेजी में genus का बहुवचन "genera" है तथा इसका विशेषण रूप है generic)।

लिनियस–प्रणाली में विभिन्न स्पीशीज़ को उत्तरोत्तर उच्चतर वर्गिकीय श्रेणियों में समूहित किया जाता है। इन श्रेणियों की संख्या एवं उनकी परिसीमाएं कुछ-कुछ स्वेच्छ अर्थात मन-मर्जी रूप में बनायी होती हैं, मगर फिर भी इनके बारे में कुछ दिशानिर्देशीय नियम भी हैं। एक नियम तो पूर्ण व्यावहारिक होना है यह कि यदि हर स्पीशीज़ को स्वयं उसकी ही अपनी जीनस में रखा जाता या इसके विपरीत सभी स्पीशीज़ को एक ही जीनस में रख दिया जाता तब जीनस से कोई ऐसी नयी सूचना उपलब्ध नहीं होती जो उस स्पीशीज़ के निर्धारण में पहले से ही विद्यमान न हो। दूसरी बात जो ध्यान में रखी जाती है वह यह है कि जीवधारियों के बीच समानताओं तथा असमानताओं की आपेक्षिक मात्रा कितनी है। एक उच्चतर वर्गिकीय श्रेणी में हो सकता है कि केवल एक ही स्पीशीज़ हो, ऐसा तब होता है

जीनसों में सैकड़ों स्पीशीज़ हो सकती हैं। इसी प्रकार इससे अगली उच्चतर इकाई फ़ेमिली में एक ही जीनस हो सकता है या कई जीनस हो सकते हैं। एक फेमिली में केवल एक ही स्पीशीज़ भी हो सकती है यदि उस स्पीशीज़ को अन्य सभी स्पीशीज़ से काफ़ी भिन्न पाया गया है। मगर पुनः फ़ेमिलियों में भी औसतन कई–एक जीनस होनी चाहिए क्योंकि ऐसा होने पर ही जीवों के बीच जीनसों द्वारा व्यक्त समानता–स्तर से एक भिन्न स्तर का वर्णन करने में वे उपयोगी हो सकेंगी। प्राणि वर्गीकरण में फ़ेमिलियों के नामों की पहचान उनके अन्त में "—idae" के होने से होती है। उदाहरण के लिए Formicidae यह फ़ेमिली है जिसमें सभी चींटी–स्पीशीज़ आती हैं तथा Hominidae फ़ेमिली में मानव एवं हमारे कुछ फॉसिल संबंधी आते हैं। फ़ेमिली नाम एक जीनस सदस्य पर आधारित होते हैं। (Formicidae फेमिली *Formica* पर आधारित हैं (इसका "a" हटा कर —idae जोड़ दीजिए), तथा Homonidae फ़ेमिली हैं *Homo* पर आधारित हैं। इसके आगे फ़ेमिलियों का समूहित किया जाता है आर्डरों में, आर्डरों को क्लासों में, क्लासों को फ़ाइलमों में और डिविजनों में (पौधों में) तथा फ़ाइलमों एवं डिविजनों को जगत में। इस तरह विविध वर्गीकरण इकाइयां अर्थात जगत, फ़ाइलम, क्लास आदि को वर्गिकी श्रेणियां कहते हैं और ये सब मिलकर बनाती हैं वर्गिकीय पदानुक्रम (Taxonomic hierarchy) (चित्र 3.5)।

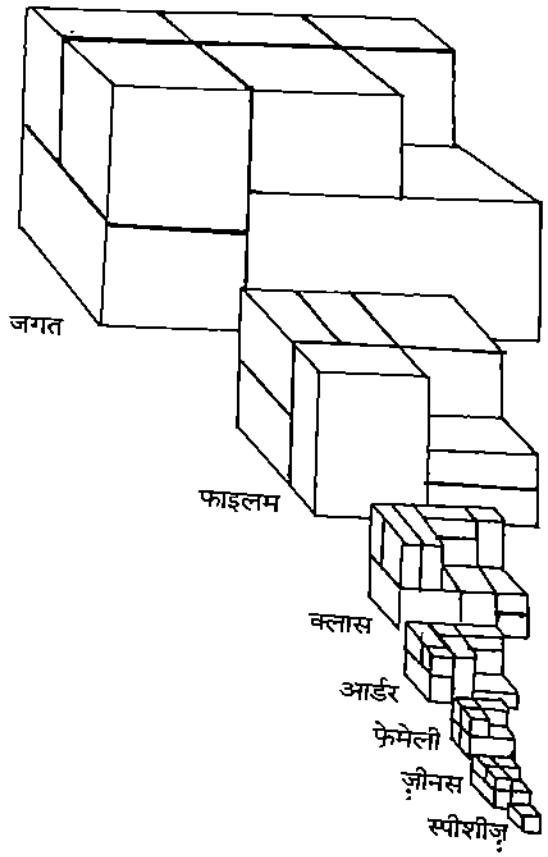

चित्र 3.5. जीवों के वर्गीकरण में विभिन्न वर्गिकी स्तरों का प्रयोग किया जाता है। एक विशिष्ट वर्ग के प्राणी अपने वर्ग के प्राणियों से ज्यादा मिलते-जुलते हैं जबकि दूसरे वर्ग के प्राणियों से भिन्न होते हैं।

तो आइए, एक उदाहरण लेकर देखते हैं कि तीन सुविदित जीव इस प्रणाली में किस प्रकार बैठते हैं (सारणी 3.1)।

सारणी 3.1 प्राणि-वर्गीकरण तथा पादप-वर्गीकरण के उदाहरण

टैक्सानॉमिक ग्रुप	प्राणी उदाहरण		पौधा उदाहरण
जगत	प्राणी	प्राणी	पौधा
फाइलम	एनीलिडा	कार्डेटा	ट्रेकयोफाइटा
क्लास	ऑलिगोकीटा	मेमेलिया	एंजियोस्पर्ममी
आर्डर	टेरीकोलीज़	प्राइमेटस	रेनेलीज
फ़ेमेली	लम्ब्रिसाइडी	होमीनिडी	रेनुनकुलेसी
जीनस	*लम्ब्रिकस*	*होमो*	*रैनुनकुलस*
स्पिशीज़	*लम्ब्रिकस टेरीसट्रिशिस*	*होमो सेपिएन्स*	*रैनुनकुलस ऐक्रिस*
नाम	केंचुआ	मनुष्य	मिडैअ बटरकप

बोध प्रश्न 2

अ) रिक्त स्थानों में उचित एक/एक से अधिक शब्द लिखिए।

i) जीवों के वर्गीकरण के लिये लक्षण कैसे होने चाहिए।

a) .....

b) .....

c) ..... अविभिन्नशील

d) पर्यावरण–संबंधी परिवर्तन से .....

ii) जीनों में परिवर्तन–दर का सही-सही अनुमान जिनके मापन से लगाया जा सकता है, वे क्या हैं?

..... विश्लेषण

प्रोटीन में ..... क्रम

iii) पुष्पी पौधों में जिन लक्षणों का मापन किया जाना है वे हैं।

.....

.....

.....

iv) किसी वर्गिकीविद द्वारा किसी विशिष्ट पादप समूह के लिए जो लक्षण चुने जाने चाहिए वे कैसे होने चाहिए :

i) .....

ii) .....

ii) .....

ब) निम्न में से किस एक सूची में वर्गिकीय पदानुक्रम के स्तर सही अवरोही क्रम में नहीं रखे गए हैं?

i) फाइलम, आर्डर, फेमिली

ii) क्लास, फेमिली, जीनस

iii) क्लास, फेमिली, आर्डर

iv) आर्डर, फेमिली, जीनस

3.7 कुल कितने जीव जगत

अभी हाल ही तक सजीव जीवधारियों को दो जगतों में विभाजित किया जाता रहा है—प्राणि जगत तथा पादप जगत। प्राणि जगत में मुख्यतः गतिशील जीवधारी रखे गए थे जो विषमपोषी (heterotrophic) विधि से आहार प्राप्त करते हैं और पादप जगत में मुख्यतः स्थिर जीवधारी रखे गए जो प्रकाश—संश्लेषण द्वारा स्वपोषण की विधि से आहार प्राप्त करते हैं। एककोशिक विषमपोषी प्राणियों (प्रोटोज़ोआ) को प्राणि जगत में रखा गया तथा एक कोशिक स्वपोषियों (प्रोटोफाइटा) को शैवालों के साथ पादप जगत में रखा गया। कवकों को पौधे माना गया था जिनमें क्लोरोप्लास्ट समाप्त हो गया था और जिन्होंने विषमपोषी प्रकार की पोषण—विधि अपना ली थी। बेक्टीरिया को भी इस आधार पर कि उनमें एक कोशिका—भित्ती पायी जाती के, पादप जगत में रखा गया था।

केवल दो जगत रखने में तीन मुख्य समस्याएं आती हैं। पहली समस्या *युग्लीना (Euglena)* तथा उसके संबंधियों के समान एककोशिक फ्लैजेलेटों से संबंधित हैं। इन्हें प्रोटोज़ोआ के संग प्राणि जगत में रखा गया था मगर कुछ यूग्लीनॉइडों में जैसे कि स्वयं *युग्लीना* में क्लोरोफिल होता है और वह प्रकाशसंश्लेषण द्वारा स्वपोषी विधि से आहार करते हैं। केवल दो जगत रखने पर हमें इस धर्मसंकट वाले तथ्य से समझौता करना पड़ता है कि इन जीवधारियों का कभी तो हम एक जगत में रख देते हैं और कभी दूसरे जगत में।

दूसरी समस्या कवकों की है। हालांकि कवकों के हाइफा *स्पाइरोगाइरा* जैसे सरल बहुकोशिकीय शैवालों के सूत्रों (फिलैमेण्टों) के साथ ऊपरी समानता रखते हैं, कवक वास्तव में हरे पौधों से बहुत भिन्न हैं। उनमें एक तो न केवल क्लोरोफिल का अभाव है और दूसरे न केवल वे विषमपोषी विधि से आहार ही करते हैं, वरन अनेक संरचनाओं में वे पौधों की संरचनाओं से भिन्न होते हैं।

तीसरी समस्या बेक्टीरिया की आती है। इलेक्ट्रॉन माइक्रोस्कोप से हम देख सकते हैं कि बेक्टीरिया में एक सरल प्रोकेरियोटिक कोशिका—संरचना पायी जाती है और यही लक्षण नील-हरित शैवालों में भी पाया जाता है। ये एक-दूसरे के समान जान पड़ते हैं तथा अन्य सभी जीवों से जो कि युकेरियोटिक (eukaryotic) है स्पष्टतः भिन्न हैं। इन समस्याओं के समाधान के लिये ही नयी पांच जगत की प्रणाली का प्रस्ताव रखा गया है।

3.8 पांच-जगत की प्रणाली

ऊपर चर्चित समस्याओं के समाधान की दिशा में दो से अधिक जगत वाली वैकल्पिक वर्गीकरण योजनाओं का सुझाव रखा गया है। सर्वाधिक समर्थन प्राप्त करने वाली योजना वह है जिसे सन 1969 में एक अमरीकी जीववैज्ञानिक R.H. Whittaker ने सामने रखी थी। ह्विटेकर की योजना में जीवों को पांच जगतों में रखा गया है। प्राणि-जगत का बहुकोशिक गतिशील जीवों के लिए रखा गया जो विषमपोषी विधि के आहार प्राप्त करते हैं तथा पादप जगत में उन बहुकोशिक जीवों को रखा गया जो प्रकाश—संश्लेषण की विधि से आहार प्राप्त करते हैं। प्रोटोज़ोआ तथा एककोशिक शैवालों को एक साथ एक पृथक् जगत प्रोटिस्ट (Prostist) में रखा गया है,और बेक्टीरिया तथा नील—हरित शैवालों, जो प्रोकेरियोटिक होने के नाते जीवित वस्तुओं में सबसे भिन्न हैं, को एक साथ मिलाकर मोनेरा (Monera) जगत में रखा गया है (चित्र 3.6)। पांच जगत प्रणाली से कई कठिनाईयां तो दूर हुई लेकिन साथ ही कुछ नयी कठिनाइयां भी पैदा हुई हैं। उदाहरण के लिए,

एककोशिक शैवालों को सरल बहुकोशिक शैवालों से पृथक करना संतोषजनक नहीं है क्योंकि इन दोनों में कुछ विशिष्ट लक्षण समान हैं। इसके आधार पर कुछ जीववैज्ञानिकों का सुझाव है कि एककोशिक तथा बहुकोशिक सभी शैवालों को प्रोटिस्ट जगत में शामिल करना चाहिए। इस योजना में समुद्री खरपतवार–जैसे काफी सम्मिश्र जीव भी प्रोटिस्टो में आ जाएंगे, जिन्हें पारम्परिक तौर पर एककोशिक जीवों के साथ रखा जाता रहा है। कुछ जीव विज्ञानिकों का कहना है कि इस विस्तारित समूह के लिए प्रोटिस्टा नाम नहीं देना चाहिए और उनका सुझाव है कि इस जगत को (protoctista) कहना चाहिए। ह्विटेकर की मूल पांच जगत प्रणाली के इस रूपांतर में कुछ लाभ हैं, मगर इन्हें हम यहां नहीं लेंगे, और इस प्रणाली में वाइरस भी तो शामिल नहीं किए गए हैं।

जीवित वस्तुओं का जगतों में समूहन करने में हम चाहे जो भी योजना अपनाएं उसमें कुछ न कुछ विसंगतियां अवश्य ही रह जाएंगी। चित्र 3.6 देखने पर पता चलेगा कि विभिन्न जगत तो वास्तव में क्रमविकासीय वृक्ष के तने एवं मुख्य शाखाएं ही हैं। वृक्ष को जगतों में विभाजित करना तो एक-एक स्वेच्छ प्रक्रिया ही है और वह इस बात पर निर्भर है कि तने और शाखाओं पर आप अपने चाकू–काट कहाँ-कहाँ लगाते हैं।

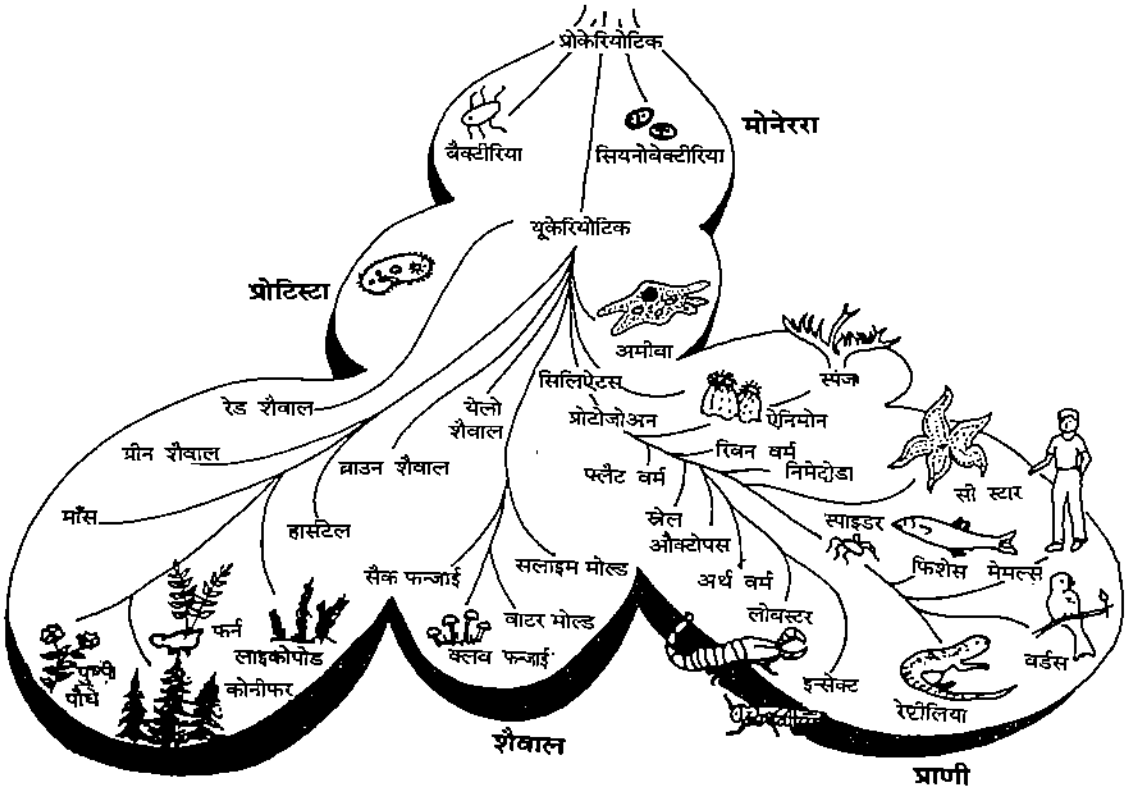

चित्र 3.6 जीवविज्ञानीय वर्गीकरण की आधुनिक पांच–जगत योजना। इस आरेख में पांच जगतों के बीच को संबंध तथा प्रत्येक जगत में स्पीशीज़ वाला प्राणि–जगत सबसे बड़ा है, और इसमें सर्वाधिक विविधता पायी जाती हैं।

बोध प्रश्न 3

ह्विटेकर द्वारा पहचानी गयी पांच जगत प्रणाली क्या है, तथा उसने इन जगतों को किस आधार पर पहचाना?

.....

.....

.....

ह्विटेकर की पांच-जगत प्रणाली

सारणी 3.2 जीवों के पांच जगत

जगत	प्रतिनिधि	विशिष्टताएं
मोनेरा (Monera)	बेक्टीरिया तथा सेएनोबेक्टीरिया (पूर्वतः नील-हरित शैवाल कहलाने वाले)	–प्रोकेरियोटिक (न केंद्रक और न ही कोशिकीय अंगक) –एककोशिक –कोशिका-भित्ति पौलीसैकेराइडों तथा पौलीपेप्टाइडों की बनी –स्वपोषी (रससंश्लेषी तथा प्रकाश संश्लेषी) या विषमपोषी –जल मुख्यतः अलैंगिक, द्विविभजन
	16 फाइलम, 2000 स्पीशीज़ द्वारा, विरल लैंगिक जनन, संयुग्मन द्वारा	
प्रोटिस्टा (Protista)	शैवाल, प्रोटोजोआ, स्लाइममोल्ड, जल मोल्ड	–यूकेरियोटिक एककोशिक, अथवा सरल कोशिका-कॉलोनियां, ऊतक नहीं –जलीय –कुछ में विविध प्रकार की कोशिका-भित्तियां
	27 फाइलम, 60,000 स्पीशीज़	–स्वपोषी (प्रकाश संश्लेषी) अथवा विषमपोषी
कवक-वर्ग (Fungi)	रोटी की फफूंदें, यीस्टें, ट्रफलें, पफबॉल, छत्तकें लाइकेन्स	–यूकेरियोटिक –बहुकोशिक –कोशिका-भित्ति काइटिन अथवा पौलीसैकेराइडों की –विषमपोषी। पाचन एंज़ाइमों को बाहर छोड़ते हैं तथा बाहर पचे पोषकों का अवशोषण करते हैं –लैंगिक जनन तथा अलैंगिक स्पीशीज़ का उत्पादन
	5 फाइलम, 100,000 स्पीशीज़	–भ्रूण परिवर्धन नहीं होता
पादप-वर्ग (Plantae)	मॉसें, लिवरवर्ट, हॉर्नवर्ट, क्लब मॉसें, हार्स टेल, फर्न, साइकड, शंकुधर, निटोफाइटा पुष्पी पौधे	–यूकेरियोटिक –बहुकोशिका, सरल तथा सम्मिश्र ऊतक बन गए हैं। –कोशिका-भित्तियां मूलतः सेलुलोज की बनी –स्वपोषी (प्रकाशसंश्लेषी) –अगुणित तथा द्विगुणित पीढ़ियों का स्पष्ट एकांतरण
	9 फाइलम, 400,000 स्पीशीज़	–भ्रूण-परिवर्धन होता है

प्राणि-वर्ग (Animalia)	स्पंज, सीलेंटरेट, चपटे कृमि, सखण्ड कृमि, नीमेटोड, अन्य कृमि सदृश प्राणी। रोटिफर, मोलस्क, आर्थ्रोपोड (क्रस्टेशियन, मकड़ियां, कीट) स्तनी, पक्षी, मछलियां, ऐम्फीबियन, सरीसृप।	–यूकेरियोटिक –बहुकोशिक, सरल तथा सम्मिश्र ऊतक बने होते हैं। –विषमपोषी, आहार खाते हैं और उसे भीतर ही भीतर पचाते हैं –लैंगिक जनन –भ्रूण परिवर्धन, –तंत्रिका-तंत्र, कभी-कभी सम्मिश्र
	32 फाइलम, 1,300,000 स्पीशीज़	

मोनेरा जगत

संरचना की दृष्टि से मोनेरा जीव समस्त सजीव वस्तुओं में सरलतम हैं। पृथ्वी पर सर्वप्रथम प्रकट होने से लेकर अब तक उनमें प्रकटतः कोई परिवर्तन नहीं हुआ। इनकी संरचना बहुत सरल है तथा इनमें केंद्रक झिल्ली नहीं होती और न ही झिल्ली से परिसीमित अंगक 9 + 2 की विशिष्ट संरचना से युक्त सूक्ष्मनलिकाओं वाले फ्लैजेला होते हैं। इस सरलता के ही कारण इन्हें यूकेरियोटों का पूर्वज माना जाता है।

फाइलम-बेक्टीरिया (यूबेक्टीरिया, Eubacteria)

यूबेक्टीरिया अर्थात वास्तविक बेक्टीरिया बहुत ही छोटे होते हैं। इनकी संख्या विशाल है तथा ये पृथ्वी पर लगभग हर जगह पाए जाते हैं। ये ऊपरी वायुमण्डल से लेकर गरम सोतों, ध्रुवीय हिम-आवरणों, कच्चे पेट्रोलियम, गहरे से गहरे समुद्रों तथा जानवरों की आहार नाल तक में पाए जाते हैं। **ऐसा माना जाता है कि इनकी कुल मिलाकर संहति पृथ्वी के समस्त पौधों तथा प्राणियों की संहति से कहीं ज्यादा होगी।**

ये एककोशिक होते हैं (चित्र 3.7) किंतु कोशिकाएं एक साथ गुच्छों अथवा शृंखलाओं के रूप में समूहित भी हो सकती हैं। इनमें पोषण-विधियां विभिन्न होती है, अर्थात रससंश्लेषण द्वारा अथवा प्रकाश संश्लेषण द्वारा स्वपोषण तथा अवशोषण द्वारा विषमपोषण। कुछ महत्वपूर्ण परजीवी होते हैं। अलैंगिक जनन *द्विविभजन* (binary fission) द्वारा होता है तथा *लैंगिक जनन* एक सरल प्रकार के *संयुग्मन* द्वारा। बेक्टीरिया को उनकी आकृतियों के आधार पर अलग-अलग वर्गों में विभाजित किया जा सकता है (चित्र 3.8)

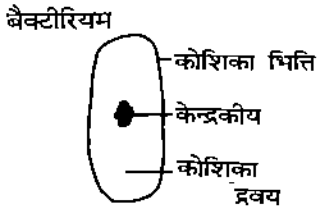

चित्र 3.7 बेक्टीरियम

स्टैफाइलोकोकस (Staphylococcus)	कोशिकाएं गोल होती हैं और वे गुच्छों के रूप में हो सकती हैं।
डिप्लोकोकस (Diplococcus)	–गोल कोशिकाओं के जोड़े
स्ट्रेप्टोकोकस (Streptococcus)	–गोल कोशिकाओं की शृंखलाएं
बैसिलस (Bacillis)	–शलाकाकार कोशिकाएं, शृंखलाएं बनी हो सकती हैं, कुछ में फ़्लैज़ेला होते हैं।
विब्रियो (Vibrio)	–कोशिकाओं की आकृति एक मुड़ी हुई छड़ जैसी, जिसमें एक एकल फ़्लैज़ेलम होता है।
स्पाइरिलम (Spirillum)	–सर्पिल रूप में कुंडलित कोशिकाएं जिनमें फ़्लैज़ेला का एक गुच्छा होता है।

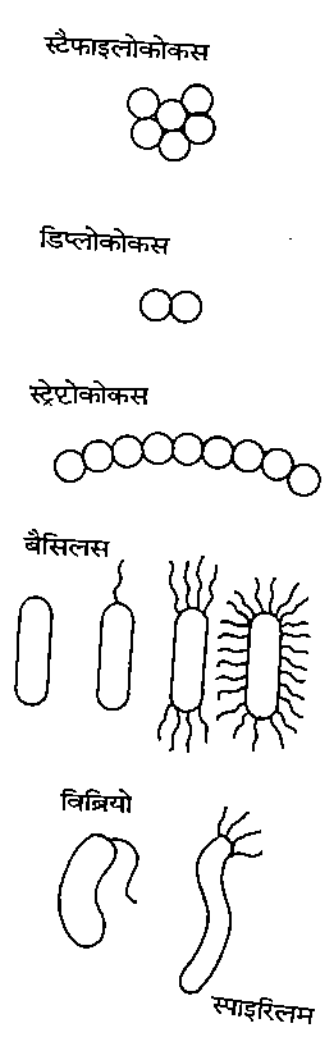

चित्र 3.8 बेक्टीरिया के प्रकार

फाइलम सिएनोबैक्टीरिया (Phylum Cyanobacteria)

सेएनोबेक्टीरिया प्रोकेरियोट (Prokaryots) होते हैं लेकिन बेक्टीरिया शब्द के सामान्य अर्थ में वे इस प्रकार के नहीं हैं। सिएनोबेक्टीरिया में क्लोरोप्लास्ट नहीं होते तथा इनका प्रकाश–अभिग्राही वर्णक अतिवलनित भीतरी झिल्ली पटलिकाओं पर छितराया रहता है। फिर भी इनका प्रकाश संश्लेषी क्रियाविधि अन्य बेक्टीरिया की क्रियाविधि से भिन्न है।

पौधों की तरह, ये अपने आवश्यक इलेक्ट्रानों को जल के अणुओं से प्राप्त करते हैं। नीलहरितों में नाइट्रोजन को "स्थिर" करने की महत्वपूर्ण क्षमता होती है।

1) एककोशिक अथवा सूत्राकार, कुछ सूत्राकार प्रारूपों में शाखाएं होती हैं।
2) स्वपोषी, इनमें प्रकाशसंश्लेषण की क्रिया कोशिकाओं की परिधि पर बनी झिल्लियों के ऊपर होती है।
3) प्रकाशसंश्लेषी वर्णकों में क्लोरोफिल के साथ-साथ लाल वर्णक (फाइकोएरिथ्रिन, phycoerythrin) तथा नीला वर्णक (फाइकासिएनिन, phycocyanin) होते हैं।

कुछ उदाहरण हैं :–क्रूकोकस *(Chroococus)* ऐनाबीना *(Anabaena)* (चित्र 3.9)।

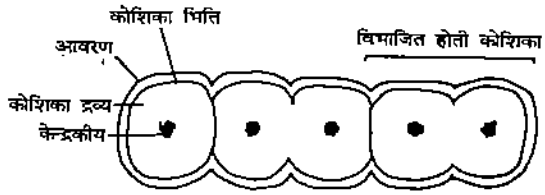

चित्र 3.9 ऐनाबीना

जगत प्रोटिस्टा (Kingdom Protista)

प्रोटिस्ट ऐसे जीवधारियों का एक सम्मिश्र तथा वैविध्यपूर्ण समूह है जो मात्र इसलिए एक साथ रखे गए हैं कि ये सभी एककोशिक यूकेरियोट हैं लेकिन कुछ की तो अपेक्षाकृत विशेषित कालोनियां होती हैं।

फाइलम फाइटोफ्लेजेलेटा (Phylum Phytoflagellata)

(पादप फ़्लेजेलेट)

1) जीवन-चक्र के किसी न किसी चरण में एक या अधिक फ़्लैजेला होते हैं। फ़्लैजेला का उपयोग संचलन में होता है।
2) प्रकाशसंश्लेषी प्रोटिस्टनों में क्लोरोफिल होता है।
3) ये सब मिलकर पादपप्लवक (phytoplankton) का अधिभाग बनाते हैं।

कुछ उदाहरण :– *यूग्लीना (Euglena), क्लैमिडोमोनास (Chalmydomonas), वॉलवाक्स (Volvox)* (चित्र 3.10)।

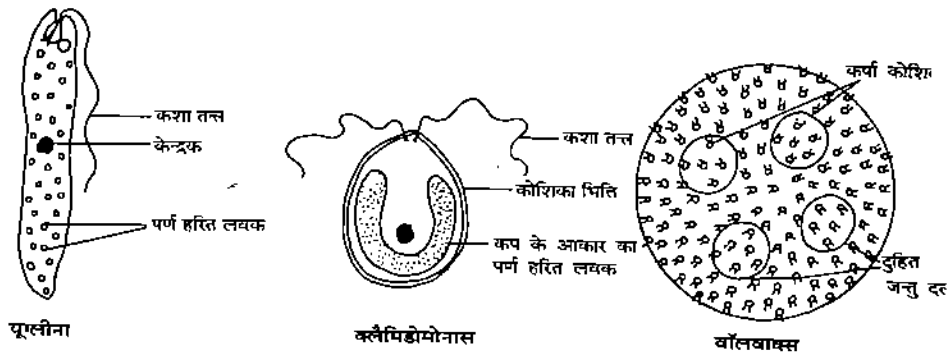

चित्र 3.10 पादप फ्लैजेलेट

अन्य संबंधित फाइलम जिनमें प्रकाश-संश्लेषी मगर फ़्लैजेला विहीन जीव आते हैं, इस प्रकार हैं।

प्लूरोकोकस *(Pleurococcus)*, (चित्र 3.11), ऐसीटेबुलेरिया *(Acetabularia)*, डायटम *(Diatoms)* तथा डेस्मिड (Desmids)

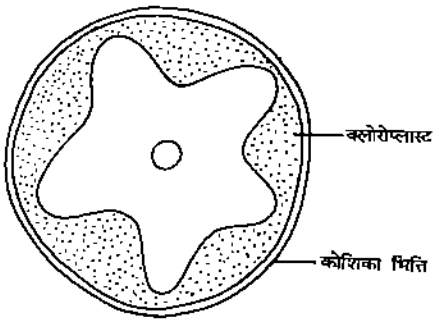

चित्र 3.11 प्यूरोकोकस

फाइलम जुफ्लैजेलेटा (Phylum Zooflagellata) प्राणी फ्लैजेलेटस)

1) जीवन-चक्र के किसी न किसी चरण में इनमें एक या अधिक फ़्लैजेला होते हैं।
2) ये अवशोषण द्वारा अथवा कोशिकभक्षण द्वारा विषमपोषी रूप में आहार करते हैं तथा इनमें क्लोरोफिल नहीं होता। कुछ उदाहरण *ट्रिपैनोसोमा (Trypanosomes)*, कॉलर-फ़्लैजेलेट

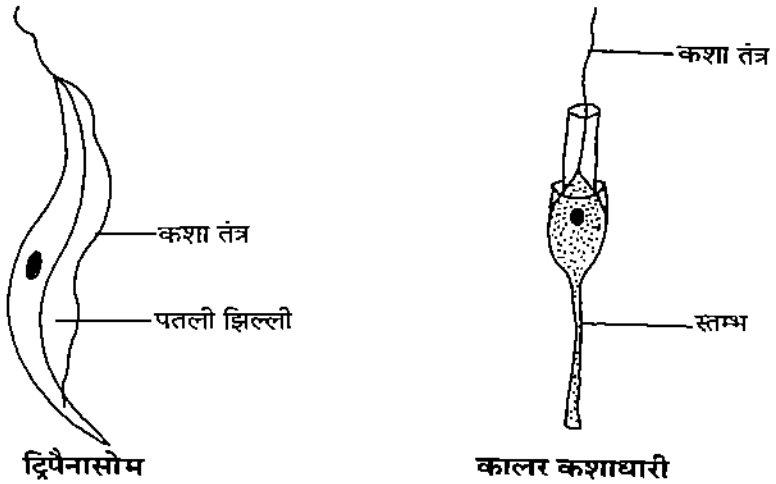

चित्र 3.12 प्राणी फ्लैजेलेट

फाइलम सार्कोडिना (Phylum Sarcodina)

1) ये कूटपादों द्वारा अथवा ऐसी ही अन्य संरचनाओं द्वारा गति करते हैं।
2) ये कोशिकभक्षण विधि से विषमपोषी रूप में आहार करते हैं।

कुछ उदाहरण :– *अमीबा (Amoeba)*, (चित्र 3.13), *ऐन्टअमीबा (Entamoeba)*, *एल्फिडियम (Elphidium)*, *एक्टिनोस्फीरियम (Actinospherium)*

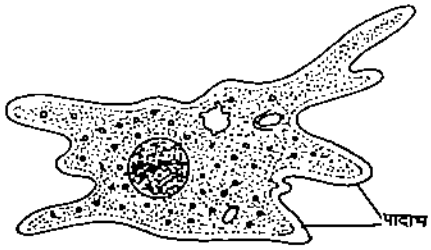

चित्र 3.13 अमीबा

फाइलम सिलियोफोरा (Phylum Ciliophora)

1) इनमें जीवन-चक्र की किसी न किसी अवस्था में सिलिया होते हैं। सिलिया का उपयोग संचालन में अथवा अशन (आहार-ग्रहण) धारा के पैदा करने में होता है।

2) ये विषमपोषी रूप में प्रायः कोशिकाभक्षण द्वारा आहार करते हैं।

3) इनमें दो केन्द्रक होते हैं, (i) गुरुकेन्द्रक (Meganucleus) तथा (ii) सूक्ष्मकेंद्रक (Micronucleus)। गुरुकंद्रक का संबंध जीवधारियों के कायिक कार्यों से तथा सूक्ष्मकेंद्रक का कार्य जनन से संबंधित होता है।

कुछ उदाहरण—*पैरामीशियम (Paramecium), स्टाइलोनशचिया (Stylonichia), वोर्टीसेला (Vorticella), सक्टोरियन (Suctorians)* (Fig. 3.14)

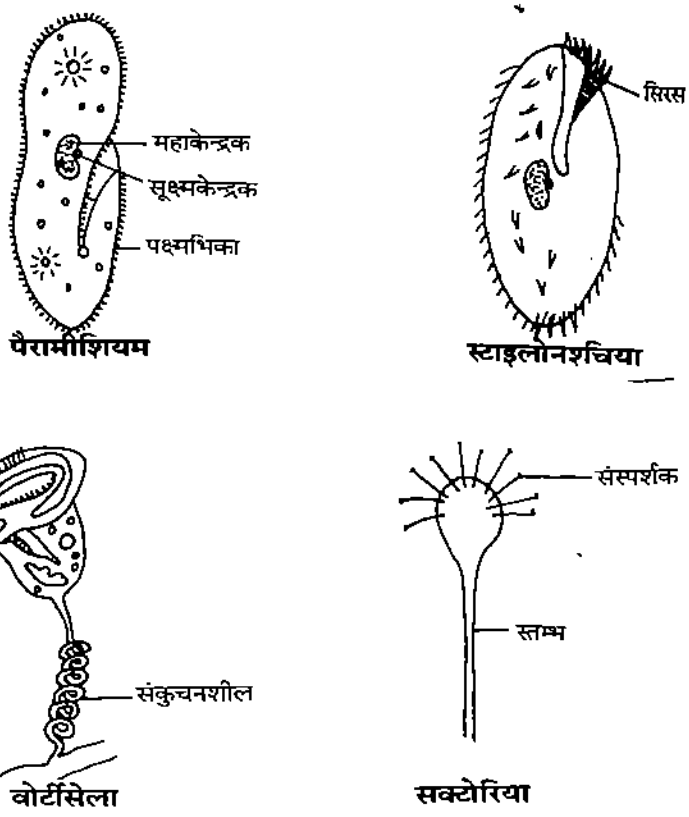

चित्र 3.14 अ. पैरामीशियम
ब. स्टाइलोनशचिया
स. वोर्टीसेला
द. सक्टोरिया

फाइलम स्पोरोजोआ (Phylum Sporozoa)

1) इनमें कोई बाहरी संचलन युक्ति नहीं होती तथा ये रेंग–ऐंठ कर (wriggling) गति करते हैं।

2) जनन बहुसंख्यक स्पोरों (spores) के बनने के द्वारा होता है।

3) सभी अन्य प्राणियों के परजीवी होते हैं और विषमपोषी विधि से आहार करते हैं। कुछ उदाहरण–प्लाजमोडियम *(Plasmodium)* मोनोसिस्टिस *(Monocystis)* (चित्र 3.15)।

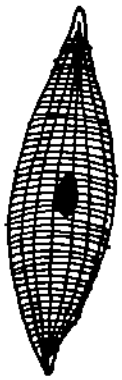

चित्र 3.15 स्पोरोजोअन

जगत फंजाई (Kingdom Fungi)

फंजाई वर्ग को पहले वास्तविक पौधों में रखा जाता था और आज भी वनस्पतिविदों द्वारा इन्हें अधिकतर पौधों में ही माना जाता है मगर फिर भी ये बिल्कुल भिन्न हैं। ये बहुकोशिक यूकेरियोट होते हैं जिनमें अवशोषी प्रकार का विषमपोषी पोषण होता है। प्रायः इनका शरीर सेलुलोज (cellulose) अथवा काइटिनी (chitinous) दीवार वाले धागे–जैसे हाइफों के एक जाल माइसीलियम (Mycelium) का बना होता है। कुछ उदाहरणों में हाइफों का अनुप्रस्थ दीवारों (पटों, septa) द्वारा बहुकेंद्रकी कक्षों में विभाजन हो गया होता है, अन्य उदाहरणों में हाइफा अविभाजित होते हैं। प्लास्टिड नहीं होते। इनमें जनन अलैंगिक (asexual) विधि से बने स्पोरों द्वारा होता है या सरल लैंगिक संयुग्मन (sexual conjugation) द्वारा।

फाइलम जाइगोमाइसिटीज (Phylum jygomycetes)

1) अलैंगिक जनन गतिविहीन स्पोरों द्वारा होता है जो स्पोरेंजियम नामक एक सवृंत स्पोर-दानी के भीतर बनते हैं।

2) जनन निकटवर्ती हाइफों के बीच संयुगमन द्वारा होता है।

कुछ उदाहरण "पिन-मोल्ड" मुरब्बों तथा ब्रेड आदि पर मृतपोषी (saprotrophically) विधि से रहती है और पनपती है (चित्र 3.16)

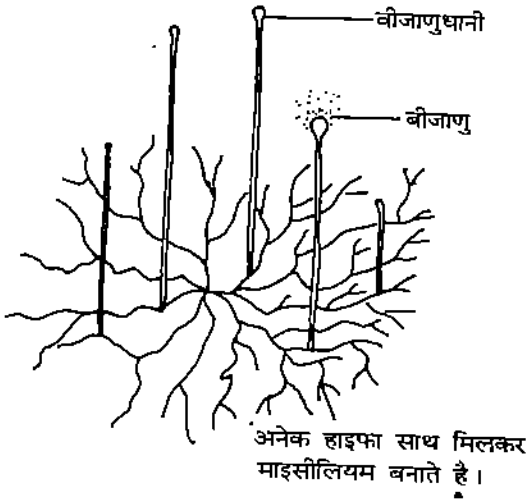

चित्र 3.16 म्यूकर

फाइलम ऊओमाइसिटीज (Phylum Oomycetes)

1) इनमें जनन गतिविहीन कोनीडिया द्वारा तथा/अथवा गतिशील फ़्लैज़ेलायुक्त जूस्पोरों द्वारा अलैंगिक विधि से होता है।

2) लैंगिक जनन एक नर गैमीट का ऊगोनियम के भीतर स्थित अण्डे (egg) के साथ समेकन (fusion) के द्वारा सम्पन्न होता है।

कुछ उदाहरण—पेरोनोस्पोरा *(Peronospora)* (चित्र 3.17), फाइटोफ्थोरा *(Phytophthora)*, पिथियम *(Pythium)*।

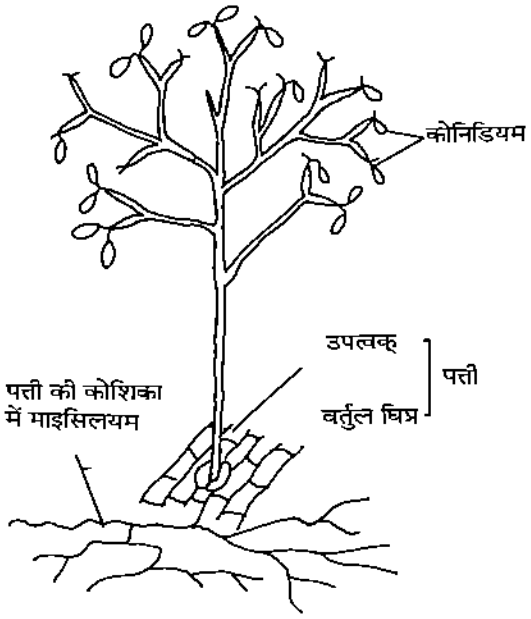

चित्र 3.17 पेरोनोस्पोरा

फाइलम ऐस्कोमाइसिटीज (Phylum Ascomycetes)

1) लैंगिक जनन संयुग्मन (conjugation) और उसके उपरांत ऐस्कस नामक थैले के भीतर बनने वाले ऐस्कोस्पोरों द्वारा सम्पन्न होता है।

2) एकाधिक एस्कस एक साथ समूहित होकर एक प्याले जैसी संरचना बना लिए हो सकते हैं, इस संरचना को पेरिथीसियम (perithecium) कहते हैं।

कुछ उदाहरण—सारडेरिया *(Sordaria)*, (चित्र 3.18) न्यूरोस्पोरा *(Neurospora)*, पेनेसिलियम *(Penicillium)*

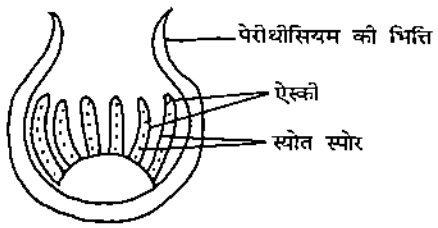

चित्र 3.18 सार्डेरिया

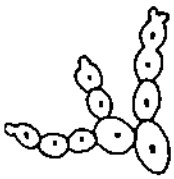

चित्र 3.19 यीस्ट

यीस्ट (Yeast)

ये एककोशिक कवक होते हैं जो शर्कराओं पर मृतपोषीय विधि से आहार करते हैं। ये अवायवीय विधि से श्वसन कर सकते तथा मुकुलन (budding) अथवा समेकन से जनन करते हैं। लैंगिक जनन के बाद बनने वाले ऐस्कोस्पोरों से पता चलता है कि ये ऐस्कोमाइसिटीज के अंतर्गत आते हैं (चित्र 3.19)।

फाइलम बेसिडिओमाइसिटीज (Phylum Basidiomycetes)

1) अलैंगिक जनन बेसिडियोस्पोरों (Basidiospores) द्वारा होता है जो एक सूक्ष्म मुद्गराकार बेसिडियम (basidium) के भीतर बनते हैं।

2) बेसिडिया (basidia) का बनना एक फलन पिंड (Fruiting body) के भीतर होता है जो सघनतः भरे हुए हाइफों का बनना होता है कुछ उदाहरण–कुकुरमुत्ता (चित्र 3.20), *पक्सिनिया (Puccinia)*

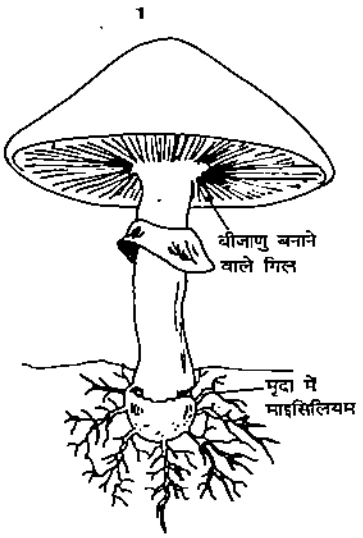

चित्र 3.20 कुकुरमुंता

फाइलम मिक्सोसाइसेटीज (Myxomycetes)

1) इन्हें कोशिकीय स्लाइम मोल्ड (Slime moulds) कहते हैं जो अधिकतर नमी वाली जगहों में उगते हैं जैसे कि मिट्टी में तथा वृक्षों के सड़ते-गलते तनों में।

2) इनका जीवन-चक्र विचित्र होता है, जिसमें स्वच्छन्द जीवी "*अमीबा*" एकत्रित होकर लसदार बहुकेंद्रकी "स्लग" (Multinucleate 'slug') बना लेते हैं और इस "स्लग" में एक स्पोर बनाने वाला स्पोरंजियम (sporangium) बन जाता है, इन स्पोरों से "अमीबाओं" की अगली पीढ़ी बन जाती है।

कुछ उदाहरण–*डिक्टियोस्टीलियम (Dictyostelium)* (चित्र 3.21)।

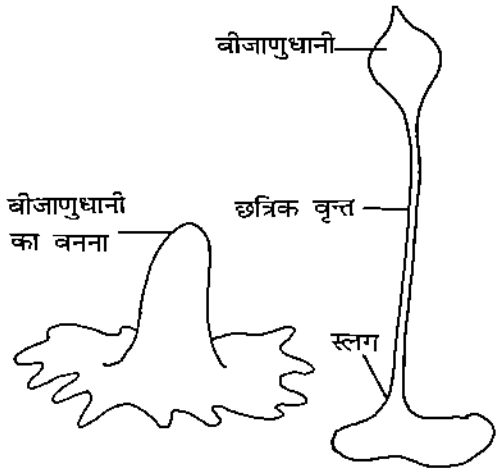

चित्र 3.21 डिक्टियोस्टीलियम

जगत प्लैंटी (Kingdom Platae) अर्थात पादप जगत

जगत प्लैंटी में प्रकाशसंश्लेषणी पोषण से युक्त बहुकोशिक यूकेरियोट (Eukaryote) संघटना पायी जाती है। प्ररूपतः कोशिका में सेलुलोज भित्ति, रस-धानी (sap-vacoule), प्लास्टिडें (plastid), एकाधिक प्रकाशसंश्लेषी वर्णक होते हैं, इन वर्णकों में क्लोरोफिल तो सदैव ही होता है। इनमें जनन के विविध तरीके पाए जाते हैं जिनमें लैंगिक भी हैं और अलैंगिक भी।

फाइलम क्लोरोफाइटा (Phylum Chlorophyta) (हरे शैवाल)

1) मुख्य प्रकाश-संश्लेषी वर्णक (photosynthetic pigment) क्लोरोफिल होता है।

2) थैलस में कोशिका विभेदन मामूली सा होता है अथवा होता ही नहीं। थैलस प्रायः सूत्राकार अथवा चपटा होता है।

कुछ उदाहरण :—*स्पाइरोगाइरा (Spirogyra)* (चित्र 3.22), *ईडागोनियम (Oedogonium)*।

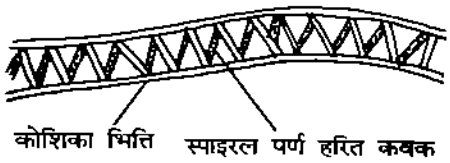

चित्र 3.22 स्पाइरोगाइरा

फाइलम रोडोफाइटा (Phylum Rhodophyta) (लाल शैवाल)

1) प्रकाशसंश्लेषी वर्णकों में क्लोरोफिल के अतिरिक्त लाल वर्णक फाइकोएरिथ्रिन, (phycoerythrin) तथा नीला वर्णक (फाइकोसाएनिन, (phycocyanin) होते हैं, इनमें से लाल वर्णक का प्रभुत्व होता है। मगर रंगों का परास हरे से लाल, बैंगनी अथवा हरापन लिए हुए काला तक होता है।

2) ये एककोशिक तथा सूत्राकार हो सकते हैं अथवा बड़े हो सकते हैं जिनमें प्रकटतः अधिक सामान्य पादप-सदृश शरीर होता है।

उदाहरण :—*रोडोमेला (rhodomela)*

फाइलम फीओफाइटा (Phylum Phaeophyta) (भूरे शैवाल)

1) ये भूरे शैवाल होते हैं, इनमें क्लोरोफिल के अलावा भूरा वर्णक फ्यूकोजेंथिन (fucoxanthin) होता है जो शेष के ऊपर प्रभावी होता है।

2) ये सर्वाधिक सम्मिश्र प्रकार का शैवाल है और पुष्पी पौधों से भिन्न इसकी कोशिकाओं में सेंट्रियोल (centrioles) होते हैं।

3) सामान्य "रॉकवीड" फयूकर (Fucus) इसी समूह में आती है और इसी तरह विशाल केल्पें (kelps) भी इसी में आती है जो प्रशांत महासागर के तट पर पायी जाती है।

कुछ उदाहरण :—*फयूकस (Fucus)* (चित्र 3.23), *लेमिनैरिया (Laminaria)*

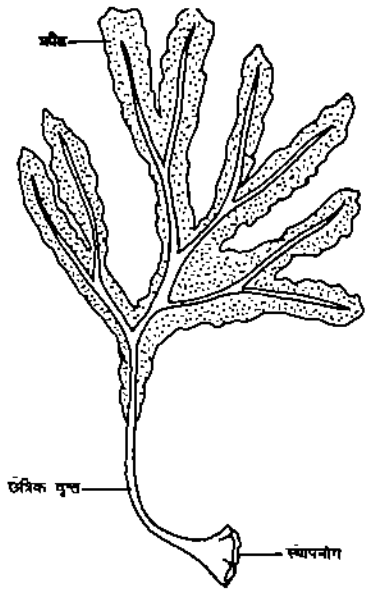

चित्र 3.23 फ्यूकस

फाइलम ब्रायोफाइटा (Phylum Bryophyta)

ब्रायोफाइटा में मॉसें तथा उनके निकट संबंधी आते हैं। ये अत्यन्त विविध होते हैं तथा नानाविद स्थानों पर उगते पाए जाते हैं।

1) जीवन-चक्र में दो प्रावस्थाओं के बीच पीढ़ी एकांतरण (alternation of generations) पाया जाता है, ये प्रावस्थाएं हैं–अगुणित गैमीट का उत्पादक गैमीटोफाइट (gametophyte) तथा अधिक सुव्यक्त स्पोरोफाइट (sporophyte) जिसमें द्विगुणित स्पोर बनते हैं।

2) गैमीटोफाइट में संवहनी ऊतक (vascular tissue) नहीं होता मगर इसमें स्तम्भ एवं पत्तियों का विभेदन हो गया होता है। राइजाहड (rhizoids) सूत्राकार होते हैं तथा वे अधरस्तर से चिपके-जुड़े होने का कार्य करते हैं।

3) स्पोरोफाइट, गैमीटोफाइट पर लगा एवं जुड़ा होता है और उसी से पोषण प्राप्त करता है। स्पोरोफाइट का सर्वाधिक महत्वपूर्ण लक्षण स्पोर केप्सूल (spore capsule) होता है जो गैमीटोफाइट के ऊपर एक पतले वृंत के सिरे पर बना होता है।

हेपेटिसी (Hepaticae) (लिवरवर्ट)

गैमीटोफाइट या तो थैलॉइड (thalloid) पिंड होता है या सरल स्तम्भ एवं पत्तियों के रूप में, जिसकी प्रकृति जलीय अथवा अर्धस्थलीय होती है। राइजॉइड बहुकोशिक होते हैं।

कुछ उदाहरण–*मार्केन्शिया (Marchantia), रिक्सिया (Riccia), फ्यूनेरिया (funaria),* (मॉस) (चित्र 3.24)

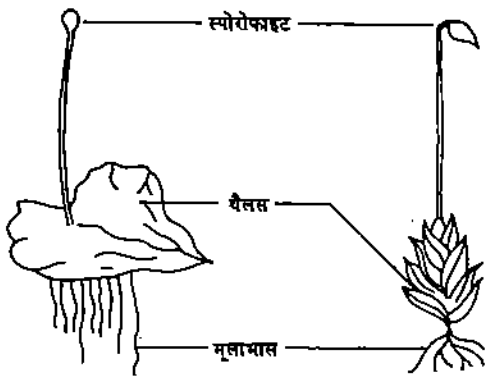

चित्र 3.24 लिवरवर्ट एवं मांस

फाइलम ट्रेकियोफाइटा (Phylum Tracheophyta)

ट्रेकियोफाइटा का अर्थ है संवहनी पौधे (vascular plants)। ट्रेकियोफाइटा में फर्न, जिम्नोस्पर्म तथा पुष्पी पौधे आते हैं। ये लगभग 40 करोड़ वर्ष पहले प्रकट हुए थे और लगभग 5 करोड़ वर्ष के भीतर ही इनमें वैविध्य स्थापित होकर ये स्थलीय पौधों की मुख्य क्रमविकासीय दिशाएं बन गए थे।

1) ब्रायोफाइटों की तरह इनमें भी पीढ़ी एकांतरण पाया जाता है, मगर इनके मामले में स्पोरोफाइट अधिक सुव्यक्त प्रावस्था होती है।

2) स्पोरोफाइट का जड़ों, स्तम्भ, पत्तियों तथा संवहनी ऊतकों में विभेदन हो गया होता है।

3) लिग्निनयुक्त ऊतक (lignified tissue) मौजूद होता है।

उपफ़ाइलम टेरिडोफ़ाइटा (Subphylum Pteridophyta)

गैमीटोफाइट ह्रसित होकर छोटा सरल प्रोथैलस (prothallus) बन गया है।

क्लास फाइलिकेलीस (Class Filicales) (फर्न)

बनी सुव्यक्त पत्तियां फ्रॉण्ड (fronds), जिनकी निचली सतह पर स्पोर केप्सूल (सपोरेंजिया) बने होते हैं (चित्र 3.25)।

चित्र 3.25 फर्न

कुछ उदाहरण—*ड्रायोपटेरिस (Dryopteris)*, हार्ट टन्ग (Hart's tongue)

क्लास एक्वीसीटेलीज़ (Class Equisetales)

सीधे खड़े स्तम्भ पर पर्वों (nodes) के ऊपर छोटी-छोटी पत्तियों के चक्र होते हैं तथा शीर्ष पर स्पोर-उत्पादक "शंक्" होते हैं।

उदाहरण—*एक्वीसीटम (Equisetum)* (चित्र 3.26)

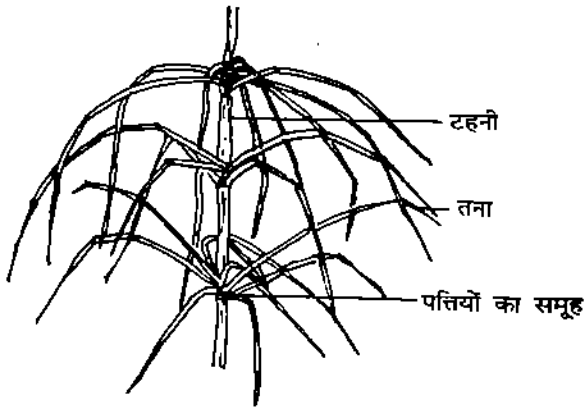

चित्र 3.26 एक्वीसीटम

क्लास लइकोपोडिएजील (Class Lycopodiales)

(ये मॉसें नहीं हैं) पर छोटी-छोटी पत्तियों वाले टेरिडोफाइट होते हैं। शाखाओं पर प्रायः पत्तियां सघनतः व्यवस्थित होती है।

कुछ उदाहरण–*लाइकोपोडिएम (Lycopodium)* चित्र 3.27 सिलेजिनेला Selaginella (चित्र 3.28)

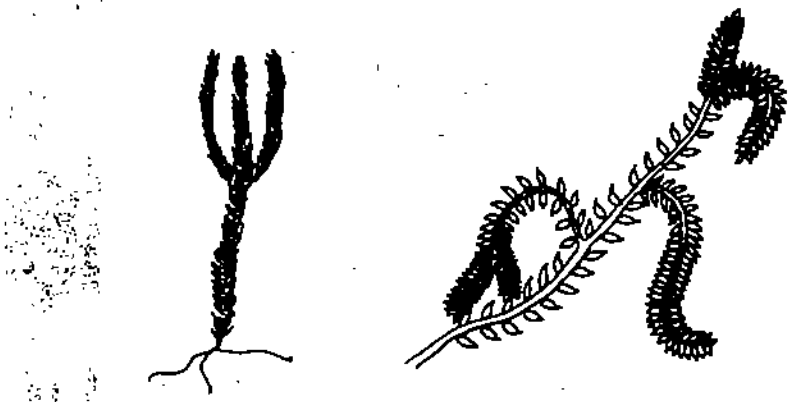

चित्र 3.27 लाइकोपोडियम

चित्र 3.28 सिलेजिनेला

उपफाइलम स्पर्मेटोफाइटा (Subphylum Spermatophyta) (बीजधारी पौधे)

गैमीटोफ़ाइट स्पोरोफ़ाइट ऊतक के भीतर पनपता है। नर तथा मादा स्पोर बनते हैं, माइक्रोस्पोर (Microspores) पराग कणों (pollen grains) के भीतर बनते हैं। मादा गैमीटोफाइट बीज के भीतर भ्रूण के रूप में परिवर्धित होता है।

क्लास जिम्नोस्पर्मस (Class Gymnosperms) (अनावृत्त बीज)

पत्तियां ताड़ (palm) के जैसी होती हैं, जनन संरचनाएं (reproductive structure) एक साथ शंकुओं में पहुंच जाती हैं, बीजाण्ड (ovule) असुरक्षित होते हैं। पराग कण का प्रकीर्णन (dispersion) वायु द्वारा होता है। संवहनी ऊतक में केवल ट्रेकीड (tracheids) होते हैं, जाइलम (xylem) नहीं होता। (चित्र 3.29)

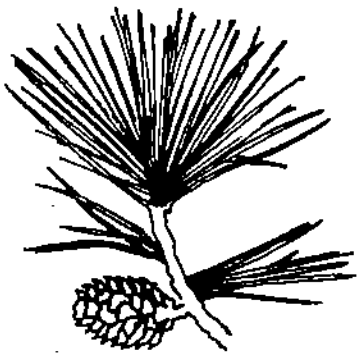

चित्र 3.29 चीड़

1) **साइकस (Cycas)** (100 सपीशीज़, साइकस पौधे), पत्तियां ताड़ के जैसी होते हैं। फ़्लैजेलायुक्त शुक्राणु पराग नली में होते हैं।

2) **गिंगों (Ginkgo स्पीशीज)** वृक्षों में पंखे जैसी पत्तियां होती हैं, बीज खुले होते हैं, पराग का प्रकीर्णन वायु द्वारा होता है। शुक्राणु पराग नली के भीतर गतिशील होते हैं।

3) **कोनीफर (Conifers)** प्राय: पत्तीयुक्त बड़े वृक्ष, पत्तियां सुईयों-जैसी अथवा शल्क-जैसी होती हैं। सदाबहार वृक्ष होते हैं।बीज खुले हुए तथा शंकुओं पर बने हुए, शुक्राणु गतिविहीन होते हैं।

4) **नीटोफाइटस (Gynetophytes) (7 स्पीशीज)** ये पुष्पी पौधों के लक्षण एवं जाइलम वाहिकाओं से युक्त जिम्नोस्पर्म हैं। पराग शंकुरूपी, बीज खुले हुए तथा शुक्राणु गतिविहीन होते हैं।

क्लास ऐंजियोस्पर्मी (Class Angiospermae)

फूल जनन संरचनाएं हैं। बीजाण्ड अण्डाशय के भीतर सुरक्षित होते हैं, जाइलम वाहिकाएं होती हैं। निषेचन के बाद अण्डाशय फल में विकसित होता है।

द्विबीजपत्री (Dicotyledons 200,000 स्पीशीज़)

ये नानाविध प्रकार के होते हैं। पत्तियों में जाल शिराएं होती हैं, स्तम्भ में संवहनी बंडल होते हैं, केम्बियम ऊतक होता है अत: द्वितीयक वृद्धि होती है। पुष्पी भाग चार, पांच अथवा इनके गुणकों में होते हैं, बीज के भीतर दो बीजपत्र होते हैं।

उदाहरण : रैनुनकुलैसी (Ranunculaceae), लैग्यूमिनेसी (Leguminosae), क्रूसीफेरी (Cruciferae), कम्पोस्टि (Compositae), यूफोरबीयेसी (Euphorbiacae), लेबिएटी (Labiatae), अम्बेलीफेरी (Umbelliferae) (चित्र 3.30)

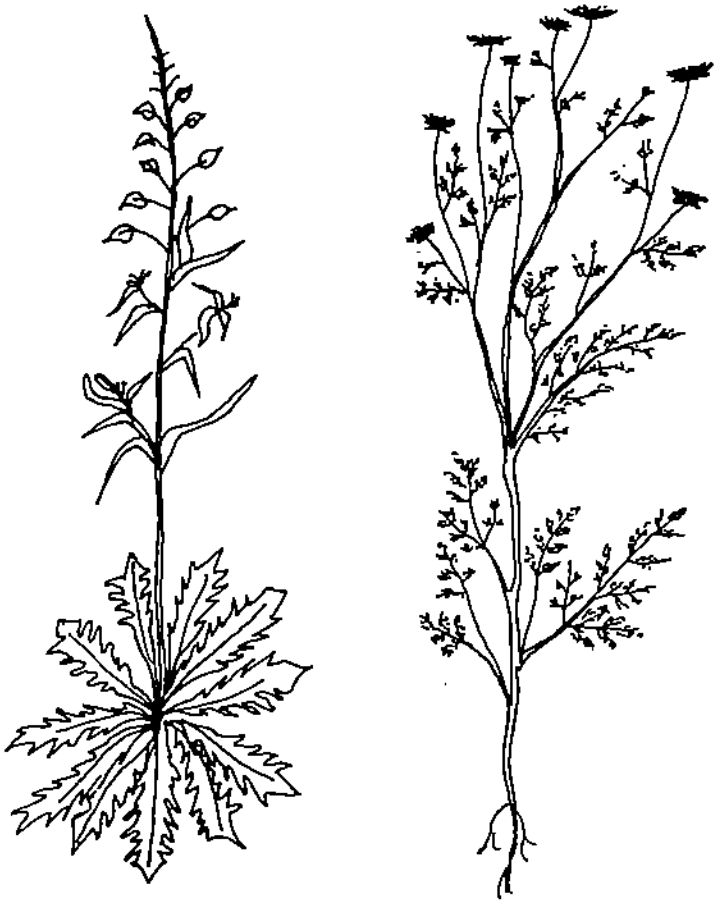

चित्र 3.30 अ. क्रूसीफेरी ब. अम्बेलीफेरी

एकबीजपत्री (Monocotyledons) (50,000 स्पीशीज़)

ये भी नानाविध प्रकार के होते हैं। पत्तियों में समांतर शिराएं होती हैं। द्वितीयक वृद्धि विरल होती है। पुष्पी भाग तीन अथवा तीन के गुणकों में होते हैं। संवहनी बंडल छितराए हुए होते हैं। बीज में एकल बीजपत्र होता है। इनमें से अधिकतर पौधे ज्यादा ऊंचे नहीं होते हैं (चित्र 3.31)।

उदाहरण : लिलीऐसी (Liliaceae), ग्रामीनी (Graminae), पामेसी (Palmaceae), आर्किडेसी (Orchidaceae)

चित्र 3.31 ग्रामीनी

प्राणि-जगत (Kingdom Animalia)

बहुकोशिक, विषमपोषी, यूकेरियोट, विशेषित ऊतक, अधिकतर में अंगों का होना, अधिकांशतः बहुत संवेदनशील। केवल गैमीट ही अगुणित होते हैं, निषेचन बीच में बिना अगुणित चक्र के सम्पन्न होता है। शुक्राणु फ़्लैजेलमयुक्त होता है। अण्डा बड़ा होता है, तथा प्रतिरूपी एवं स्थिर होता है।

उपजगत पैराज़ोआ (Subkingdom Parazoa) : फ़्लैजेलेट उद्भव के प्राणी, सरल परिवर्धन

फाइलम पोरिफेरा (Phylium Porifera) (5000 स्पीशीज़)

इनमें कोशिकीय स्तर की संघटना पायी जाती है। वयस्क सदैव गतिविहीन एवं स्थानबद्ध (sessile) होता है। आहार करने की विधि फिल्टर-अशन होती है। कंकाल केल्सियम कार्बोनेट, सिलिकन डाइऑक्साइड, अथवा स्पॉजिन का बना होता है। अलैंगिक जनन मुकुलन द्वारा होता है जबकि लैंगिक जनन भीतर स्थित एक अण्डे के निषेचन द्वारा होता है (चित्र 3.32)।

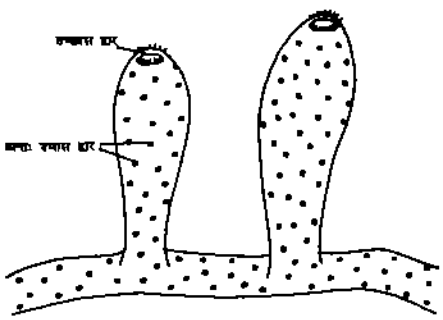

चित्र 3.32 स्पंज

उपजगत मेटाजोआ (Subkingdom Metazoa) : सीलेंटेट—उद्भव के प्राणी, इनमें पोरिफेरा को छोड़कर सभी अन्य प्राणी आते हैं।

अरीय, असीलोमी फाइलम
अरीय सममिति, सीलोम नहीं होता, डिप्लोब्लास्टिक

फाइलम सीलन्टरेट (Phylum Coelenterata) : (9000 स्पीशीज़)

शरीर अरीय होता है और दो कोशिका—परतों का बना होता है। जठर-संवाहक गुहा थैलेनुमा होती है, स्पर्शकी तथा दंश-कोशिकाएं होती हैं। ये दो स्वरूपों में पाए जा सकते हैं—मेड्सा तथा पौलिप या फिर अपना सारा जीवन एक ही स्वरूप में गुजर सकते हैं।

तीन क्लास

हाइड्रोज़ोओ (Hydrozoa) (हाइड्रा, ओबीलिया, चित्र 3.33 अ, ब)

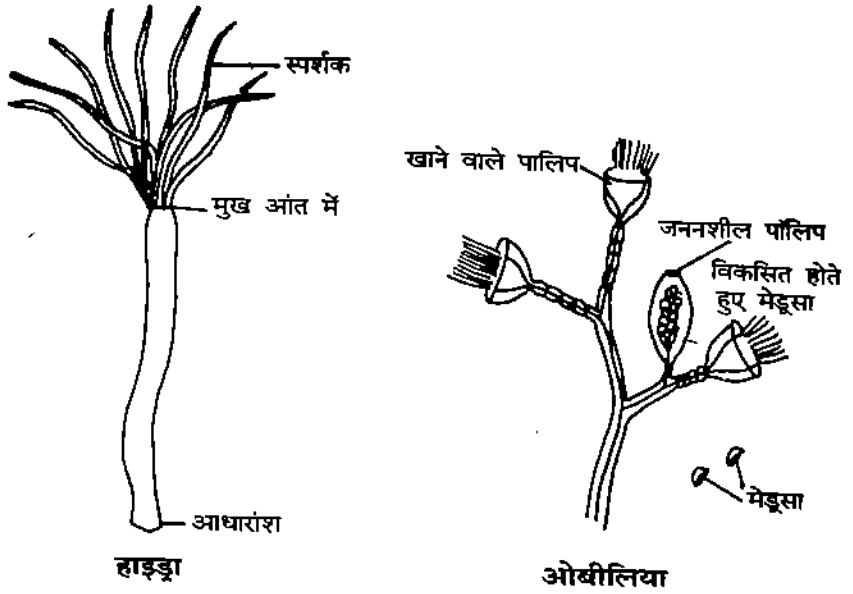

चित्र 3.33 : ब) हाइड्रा, ब) ओबीलिया

स्काइफ़ोजोआ (Scyphozoa) (जेलीफिश, चित्र 3.34)

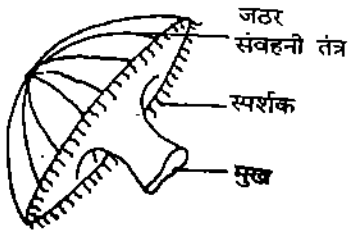

चित्र 3.34 : जेलिफिश

ऐंथोज़ोआ (Anthozoa) (**प्रवाल तथा ऐनीमोन, चित्र 3.35 अ, ब**)

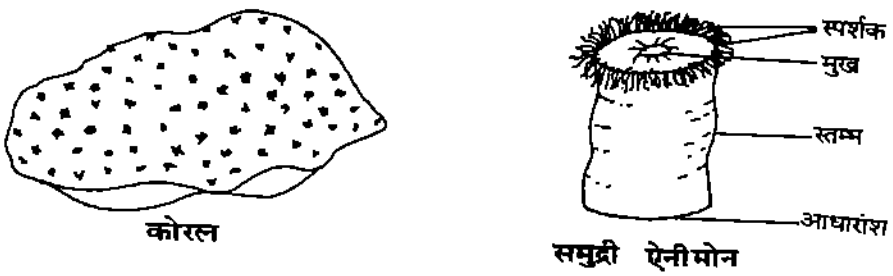

चित्र 3.35 : अ) कोरल, ब) ऐनीमोन

फाइलम टीनोफोरा (Phylum Ienophora) (90 स्पीशीज़ केवल समुद्री) सिलर जलीय होता है जिसमें दो कोशिका परतें होती हैं, स्पर्शकों में आसंजन कोशिकाएं (glue cell) पायी जाती हैं।

द्विपार्श्वीय, असीलोमी फ़ाइलम
द्विपार्श्वतः सममिति, सीलोम नहीं, ट्रिप्लोंब्लास्टिक

फाइलम प्लैटीहेल्मिन्थीज (Phylum Platyhelminthes) (13,000 स्पीशीज़, चपटे कृमि)

शरीर चपटा होता है। जठर संवाहक गुहा विशाखित होती है, अनेक कोशिका परतों से युक्त सघन शरीर, मुख होता है मगर गुदा नहीं होती। अभयलिंगी मगर स्वनिषेचन (self-fertilization) को न्यूनतम करने के पक्की सावधानियां बरती जाती है। इस फाइलम में कई महत्वपूर्ण परजीवी आते हैं। तीन क्लास: टर्बिलेरिया (Turbellaria) (सवच्छंदजीवी प्लैनेरियन, चित्र 3.36)

ट्रीमैटोडा (Trematoda) (परजीवी पर्णाभ, चित्र 3.37)

सेस्टोंडा (Cestoda) (परजीवी चपटे कृमि, चित्र 3.38)

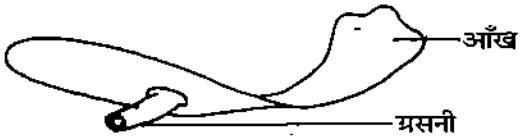

चित्र 3.36 : प्लैनेरियन

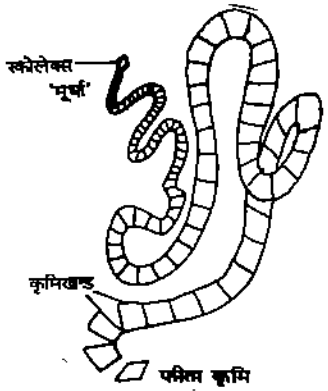

चित्र 3.38 : फीता कृमि (Tapeworm)

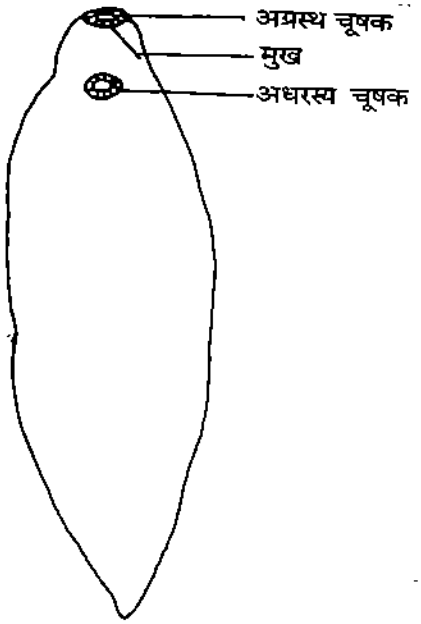

चित्र 3.37 : यकृत पूर्णाभ (liver fluke)

द्विपार्श्वीय, कूटसीलोमी फाइलम (Bilateral Pseudocoelomate
द्विपार्श्वत : सममिति, कुटसीलोम

फाइलम नेमाटोडा (Phylum Nematoda) (12,000 स्पीशीज़ का नाम दिया जा चुका है तथा लगभग 5 लाख बिना नाम दी गयी अनुमानित हैं, गोलकृमि) नीमेटोडों में स्वच्छंदजीव तथा परजीवी दोनों ही प्रकार की स्पीशीज़ आती हैं। शरीर पतला होता है तथा शरीर की योजना "नलिका के भीतर नलिका" के रूप में हैं (चित्र 3.39)

चित्र 3.39 ऐस्केरिस

फाइलम रोटीफेरा (Phylum Rotifera) ये स्वच्छदजीवी तथा सूक्ष्म होते हैं और इनमें बहुत सम्मिश्र अंग-तंत्र पाए जाते हैं। इसके सदस्य अलवणजल के तलाबों में आम तौर से पाए जाते हैं (चित्र 3.40)।

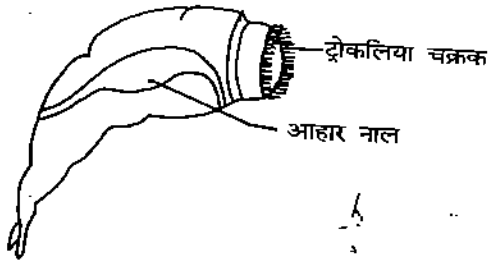

चित्र 3.40 रोटीफेरा

फाइलम नेमैटोफोरा (Phylum Nemataphora) (230 स्पीशीज़) (हार्सहेयर कृमि, चित्र 3.41)

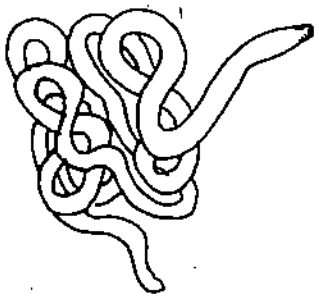

चित्र 3.41 नीमर्टीनिया

फाइलम रिंकोसीला (Phylum Rhynchocoela) (650 स्पीशीज़) शुंडिका अथवा रिबन कृमि।

द्विपार्श्वीय, सीलोमी, प्रोटोस्टाम, फाइलम (The Bilateral, Coelomate, Protostome Phylum)

वे प्राणी जिनमें द्विपार्श्वीय सममिति, वास्तविक सीलोम तथा भ्रूणविज्ञानतः "मुख पहले" की व्यवस्था होती है।

फाइलम मोलस्का (Phylum Mollusca) (47,000 स्पीशीज़) खण्डीभवन तथा सीलोम हो सकता है विद्यमान न हों। शीर्ष, पाद, प्रावार (Mantle) तथा रेडुला (radula) का, आहार करने के लिए विविधीकरण। आंतरांग प्रायः एक कवच के भीतर सुरक्षित रहते हैं। इस फाइलम में सात क्लास आते हैं (चित्र 3.42)।

ऐप्लाकोफोरा (Aplacophora) (सॉलेनोगैस्टर–कृमि सदृश, केवल रेडुला ही स्पष्ट विशिष्टता है)

मॉनोप्लैकोफोरा (Monoplcophora) निओपाइलिना (Neopilina), गहरे समुद्र के प्राणी, विलुप्त माने जाते हैं।

स्कैफ़ोपोडा (Scaphopodo) *("टस्क-शेल")*

पॉलीप्लैकोफोरा (Polyplacophora) काइटन (Chiton)

बाइवैल्विया (Bivalvia) (दो-कवची, सीपियां)

गैस्ट्रोपोडा (Gastropoda) (घोंघे तथा स्लग)

सेफेलोपोडा (Cephalopoda) (आक्टोपस,स्किवड जो अपेक्षाकृत बुद्धिमान होता है तथा तीव्र खाने वाला होता है, पाद का विभाजन होकर स्पर्शक बन गए हैं, आवरक प्रावार, बड़ा मस्तिष्क, तीव्र दृष्टि होती है।

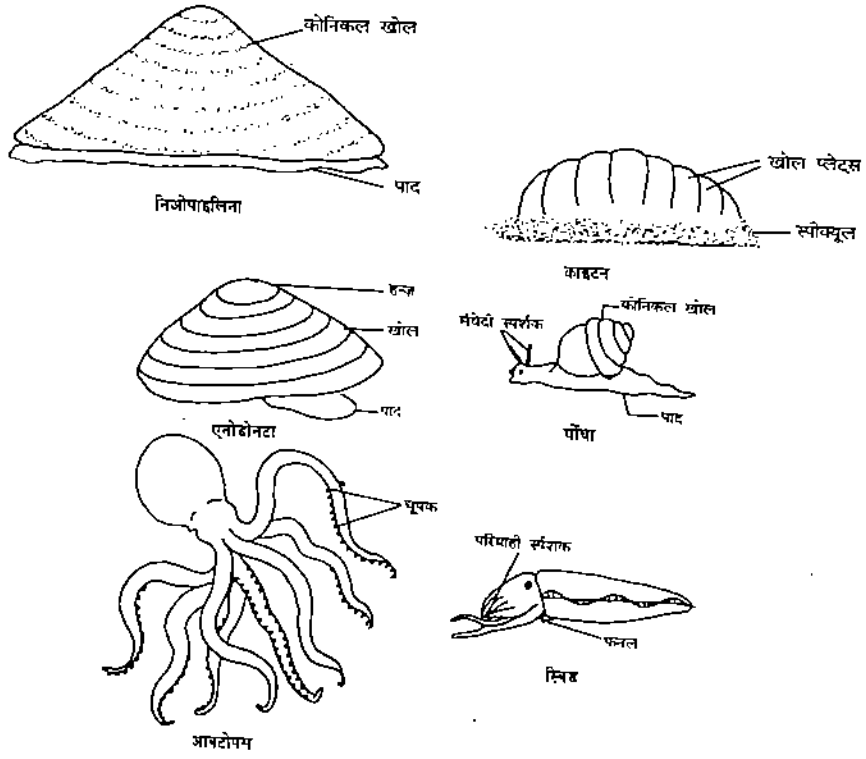

चित्र 3.42 विविध मोलस्क

फाइलम ऐनेलिडा (Phylum Annelida) (9000 स्पीशीज़ सखण्ड कृमि) शरीर पुनरावृत्तिशील खण्डों में विभाजित, वास्तविक सीलोम, सुविकसित पाचन-तंत्र, बंद परिसंचरण तंत्र।

तीन क्लास :

ऑलिगोकीटा (Oligochaeta) केंचुआ (चित्र 3.43

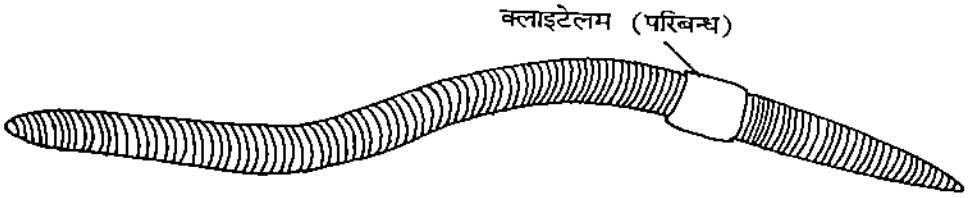

चित्र 3.43 केंचुआ

हिरुडिनिया (Hirudinea) जोकें (चित्र 3.44)

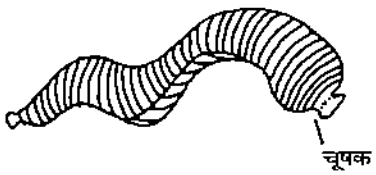

चित्र 3.44 · जोक

पॉलीकीटा (Polychaeta) (समुद्री कृमि, नेरीस (चित्र 3.45)

चित्र 3.45 : नेरीस

फाइलम प्राएपुलाइडा (Phylum Priapulida) (9 स्पीशीज़ शुंडिका कृमि)

फाइलम पोगोनोफोरा (Phylum Pogonophora) (100 स्पीशीज़ दाढ़ी कृमि)

फाइलम साइपनकुला (Phylum Sipuncula) (300 स्पीशीज़ मूंगफली कृमि)

फाइलम टार्डिग्रेडा (Phylum Tardigrada) (350 स्पीशीज़ जल भालू)

फाइलम आर्थ्रोपोडा (Phylum Arthropoda) (8,00,000 से 10,00,000 स्पीशीज़)

इन्हें संधियुक्त पादीय (joint footed) प्राणी कहते हैं। इनके उपांग युग्मित (paired) तथा संधियुक्त (jointed) होते हैं, शरीर पर काइटिनी बाह्यकंकाल होता है, विविध और व्यापक खण्डीभवन, व्यापक वितरण होता है।

उपफाइलम केलिसेरेटा (Phylum Chelicerata) छह जोड़ी उपांग जिनमें चार जोड़ी टांगें होती हैं, और युग्मित कीलिसेरी (डंक) होते हैं। इस फाइलम में तीन क्लास हैं।

i) जाइफोस्यूरा (Xiphosura)—नृप केकड़ें (चित्र 3.46)

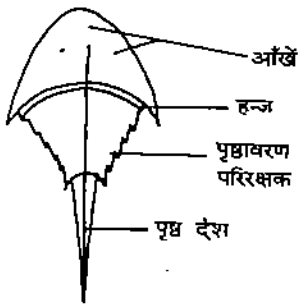

चित्र 3.46 नृप केकड़ा

ii) अर्किनिडा (Arachnide)—मकड़ियां, किलनियां, बिच्छू, चिचड़ियां (चित्र 3.47)

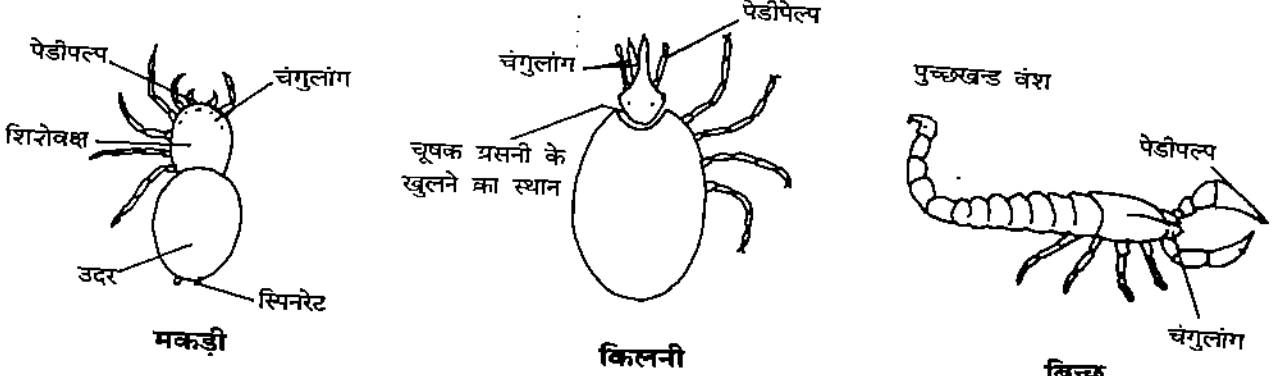

चित्र 3.47 ऐरेक्निडा क्लास के विविध सदस्य

iii) पिक्नोगोनिडा (Pycnogonida)–समुद्री मकड़ियां

उपफाइलम मैंडिबुलेटा (Subphylum Mandibulata) अधिकांश में तीन जोड़ी चलन टांगें, मेंडिबल, संयुक्त नेत्र ऐंटेना, कुछ में पंख।

इसमें चार क्लास आते हैं

क्रस्टेशिआ (Crustacea)–पपड़ीनुमा बाह्यकंकाल से युक्त जलीय प्राणी, गिल पाये जाते हैं।

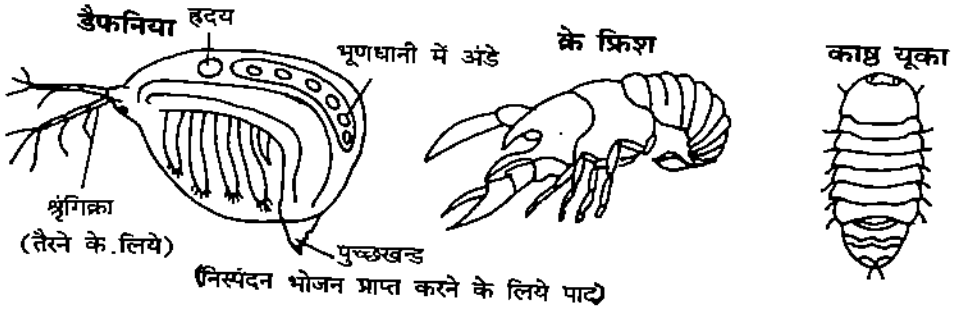

चित्र 3.48 : विविध क्रस्टेशियन

काइलोपोडा (Chilopoda) सेन्टीपीड (चित्र 3.49)

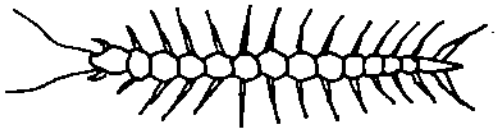

चित्र 3.49 : कनखजूरा

डिप्लोपोडा (Diplopoda)–गिजाइयां (चित्र 3.50)

चित्र 3.50 : मिलीपीड

इन्सेक्टा (Insecta)–सामान्यतः 3 जोड़ी टांगों से युक्त, (कीट वर्ग) जीवन-चक्र में किसी अवस्था पर पंखों का होना, शरीर तीन क्षेत्रों में विभाजित, मुखांग विशेषित (चित्र 3.51)

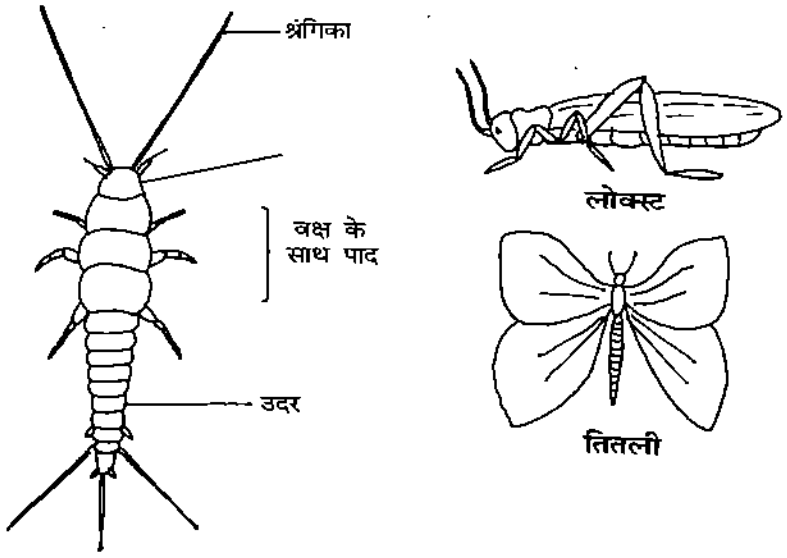

चित्र 3.51 : अ) लेपिस्मा, ब) टिडडी, स) तितली

फाइलम ओनिक्रेफोरा (Phylum Onychophora) (70 स्पीशीज़, पेरिपेटस, चित्र 3.52)

इनमें ऐनेलिड तथा आथ्रोपोड दोनों प्रकार के लक्षण पाए जाते हैं।

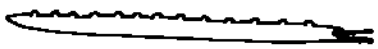

चित्र 3.52 : पेरिपेटस

फाइलम ब्रैकियोपोडा (Phylum Brachiopoda) (250 स्पीशीज़) ये बाइवैल्वों के समान होते हैं। किंतु कवच अलग प्रकार से चढ़ा होता है, लोफ़ोफ़ोरा सिलियायुक्त स्पर्शकों का वलय होता है।

फाइलम फोरोनिडा (Phylum Phoceronida) (18 स्पीशीज) लोफ़ोफोर होता है।

फाइलम एक्टोप्रोक्टा (Phylum Ectoprocta) (4000 स्पीशीज़) मॉस प्राणीयों में लोफ़ोफ़ोर होता है।

द्विपार्श्वीय सीलोमयुक्त ड्यूटेरोस्टोम फाइलम

(The Bilaterel, Coelomate, Deuterostome Phyla)

द्विपार्श्व सममिति, वास्तविक सीलोम, भ्रूणविज्ञानत "मुख दूसरा"

फाइलम इकाइनोडर्मेटा (Phylum Echinodermata) (6,000 स्पीशीज़) ये कांटेदार त्वचा वाले प्राणी होते हैं, इनके वयस्कों में पांच अंशीय अरीय सममिति पायी जाती है, लार्वा द्विवार्शवीय होता है, अंतःकंकाल (Endoskeleton) जल संवाहक तंत्र के रूप में होता है।

इस फाइलम में पांच क्लास आते हैं :

क्लास क्राइनॉइडिया (Class Crinoidea) (समुद्री लिली)

क्लास होलाथूरॉइडिया (Class Holothuroidea) (समुद्री खीरे, चित्र 3.53)

क्लास एकाइनॅइडिया (Class Echinoidea) (समुद्री अर्चिन, सैंड डालर, चित्र 3.53)

क्लास एस्टेरॉइडिया (Class Asteroidea) (तारा मछलियां, बास्केट स्टार चित्र 3.53)

क्लास ओफियूरॉइडिया (Class Ophiuroidea) (सर्पेट–स्टार, भंगुर तारा, चित्र 3.53)

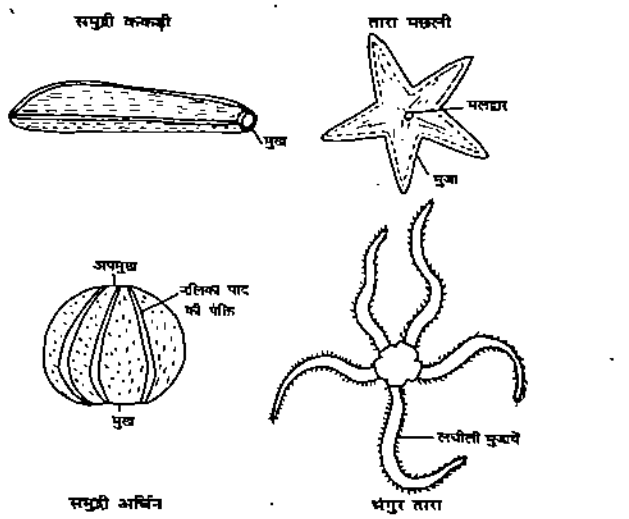

चित्र 3.53 : विविध इकाइनोर्डम–प्राणी

उपफाइलम हेमिकॉर्डेटा (Sub Phylum Hemichordata) (80 स्पीशीज़) गिल–दरारें होती हैं; नोटोकार्ड, गुदापश्चीय पूंछ (Postanal tail) पृष्ठीय खोखली तंत्रिका रज्जु, ये रचनाएं सभी जीवन-चक्र की किसी अवस्था में मौजूद होते हैं (चित्र 3.54)

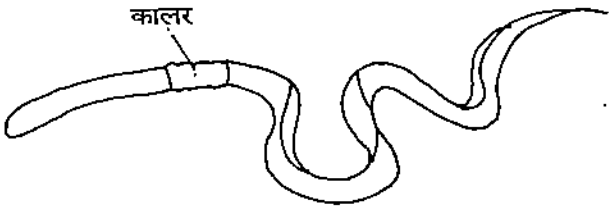

चित्र 3.54 : एकार्न कृमि

फाइलम कोर्डेटा (chordata)

नोटोकार्ड, पृष्ठीय स्थित होता है जिससे शरीर को मजबूती मिलती है, खोखली तंत्रिका नली पृष्ठत स्थित, ग्रसनी विदर होती है, गुदापश्चीय पूंछ, रक्त का संचारण, में अग्रभाग में अधरीय एवं पीछे से पृष्ठीय होता है।

उपफाइलम यूरोकार्डेटा (Subphylum Urochordata) : (13,000 स्पीशीज़ समुद्री स्क्वर्ट)

नोटोकार्ड पृष्ठतः स्थित होता है, तंत्रिका नली पृष्ठतः स्थित तथा खोखली होती है, कॉर्डेट लक्षण मुख्यतः द्विपार्श्व लार्वा में दीखते हैं।

उपफाइलम सेफैलोकॉर्डेटा (Subphylum Cephalochordata) (28 स्पीशीज़, लेन्सलेट)

प्राणी–शरीर मछली के जैसा, नोटोकॉर्ड तथा गिल दरारें स्थायी होती हैं। फिल्टर विधि से अशनकर्ता। (चित्र 3.55)

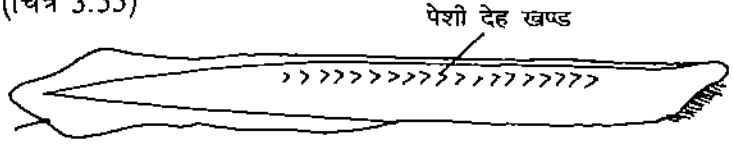

चित्र 3.55 ऐम्फिऑक्सस

उपफाइलम वर्टीब्रेटा (Subphylum Vertebrata) : (41,700 स्पीशीज़, कशेरूकी प्राणी)

हड्डी अथवा कार्टिलेज का बना कशेरूक दण्ड सुविकसित शीर्ष, हृदय अधर दिशा में स्थित, पृष्ठ महाधमनी, दो जोड़ी पाद, इस फाइलम में छह क्लास आते हैं। (चित्र 3.56–चित्र 3.61)।

क्लास साइक्लोस्टोमटा (Class Cyclostomata)

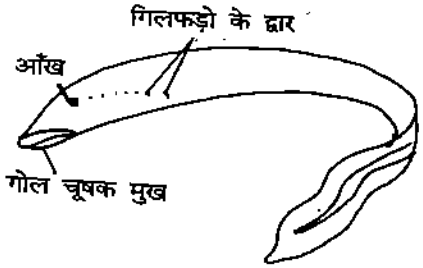

चित्र 3.56 लैम्प्रे

क्लास पिसीज़ (Class Pisces)

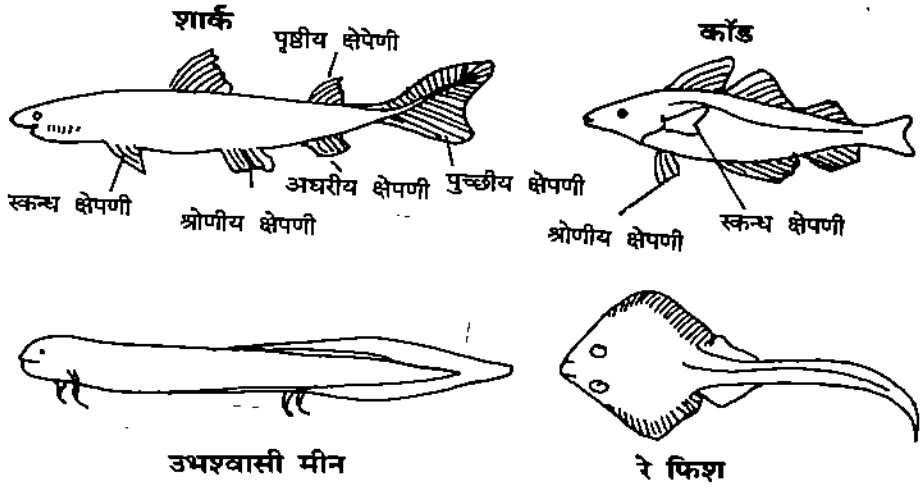

चित्र 3.57 : मछलियां

क्लास ऐम्फीबिया (Class Amphibia)

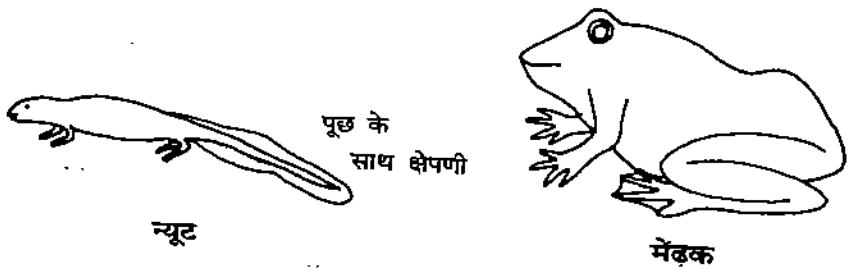

चित्र 3.58 : ऐम्फीबियन

क्लास रेप्टीलिया (Class Reptilia)

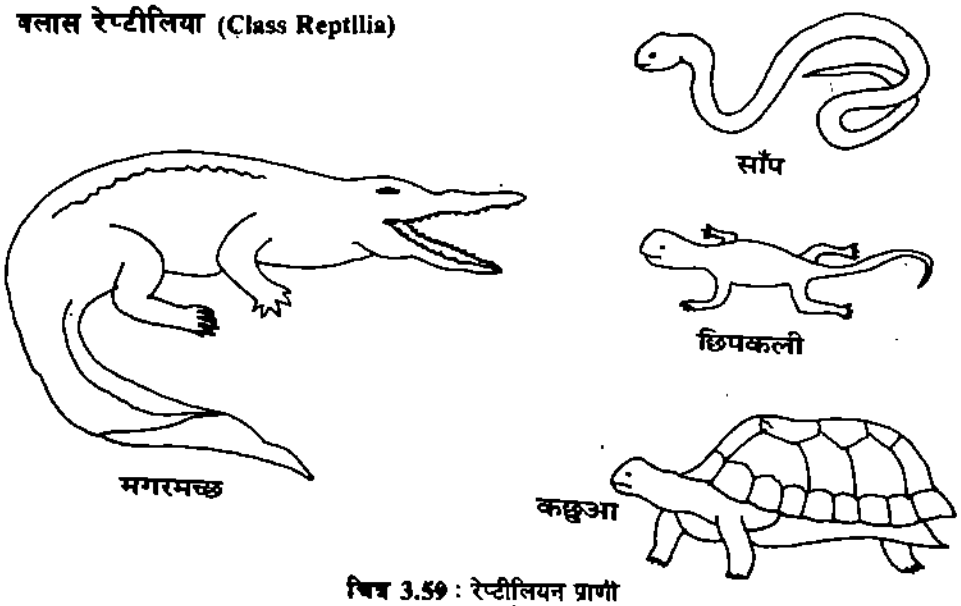

चित्र 3.59 : रेप्टीलियन प्राणी

क्लास एवीज (Class Aves)

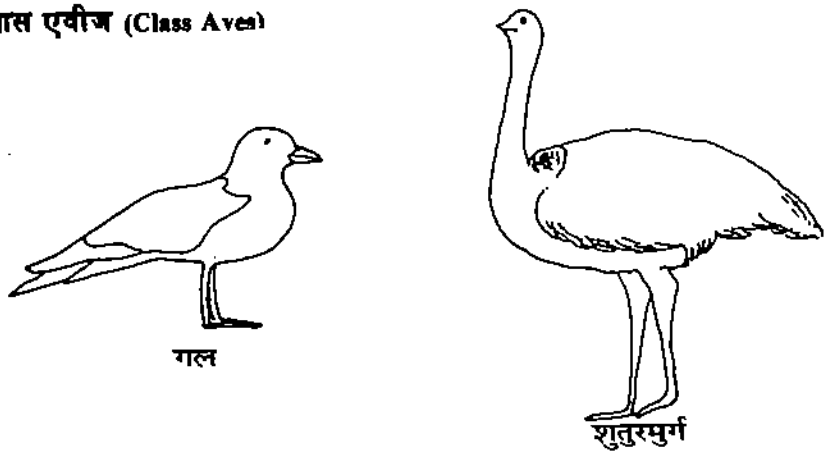

चित्र 3.60 : पक्षी

क्लास मैमेलिया (Class Mammalia)

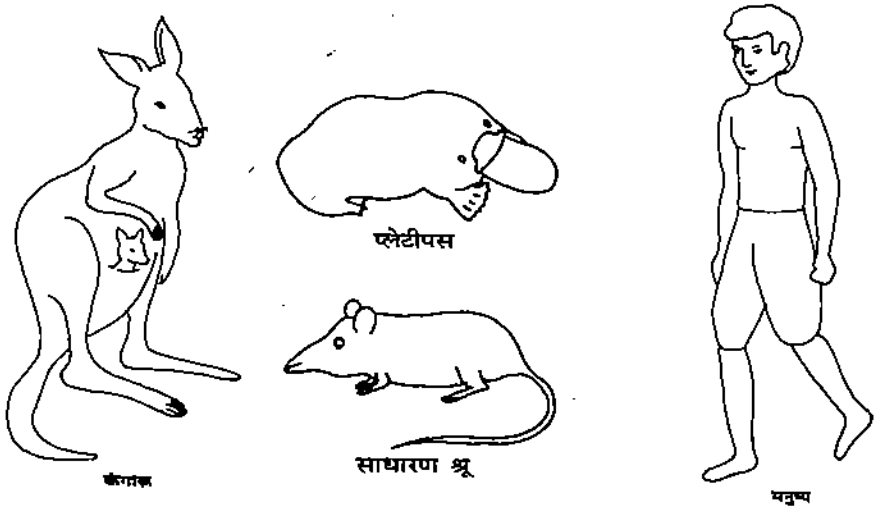

चित्र 3.61 मैमेलियन

वर्गीकरण में विभिन्न क्लासों का विस्तृत अध्ययन प्राणि विविधता I तथा II में किया गया है।

इस सर्वेक्षण में केवल मुख्य समूह तथा उपसमूह ही लिए गए हैं।

3.9 सारांश (Summary)

- वर्गीकरण एक मूलभूत एवं अतिआवश्यक जरूरत है तथा जीवों की इस क्रमबद्ध व्यवस्था से हम विभिन्न प्रकार के जीवों में स्पष्ट अंतर कर सकते हैं, और इसके द्वारा हम वर्गीकरण कर सकते तथा लगभग 20 लाख ज्ञात जीवित जीवों को अलग-अलग नाम दे सकते हैं।
- महत्वपूर्ण वर्गीकरण विधियों इस प्रकार हैं : (1) प्रकट लक्षणी वर्गीकरण, (ii) प्राकृतिक वर्गीकरण, (iii) जातिवृत्तीय वर्गीकरण, (iv) क्रमविकासीय वर्गीकरण (v) सर्वलक्षणी वर्गीकरण।
- जीवों के वर्गीकरण में उपयोग में लाए जानेवाले लक्षण हैं : आकारिकी, परिवर्धन नमूने, व्यवहार तथा विविध आणविक तकनीकों से प्राप्त सूचनाएं।
- वर्गीकरण में एक सर्वाधिक महत्वपूर्ण पहलू है लक्षणों का चयन। जीवों के वर्गीकरण में उपयोगी लक्षण मापशील, वर्णनशील तथा जिस पर्यावरण में वे रह रहे हो उससे निरपेक्ष लगभग अविभिन्न बने रहने वाले हों।

जीववैज्ञानिक जीवों का निम्न पदानुक्रम–श्रेणियों में वर्गीकृत करते हैं :–

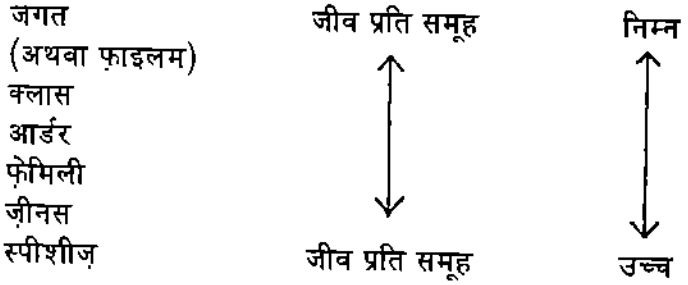

आजकल पांच जगत की प्रणाली अपनायी जाती है और इसे सर्वाधिक समर्थन मिला है। जहां एक ओर इस प्रणाली से अनेक कठिनाइयों के सुलझाने में सहायता मिली है वहीं इससे कुछ कठिनाइयां भी पैदा हुई हैं।

3.10 अंत में कुछ प्रश्न

1) संरचना को उपयुक्त पादप वर्ग से मिलाइए :–

अ)	जिम्नोस्पर्म	i)	प्रोथैलस
ब)	ऐंजियोस्पर्म	ii)	स्ट्रॉबिलस
स)	फर्न	iii)	राइजाइड
द)	मॉसें	iv)	फल तथा फूल
य)	क्लबमॉसें	v)	अनावृत्त बीज

2) निम्न शब्दों का इस्तेमाल करके दिए गए पादप वर्गीकरण को पूरा कीजिए।

लिवरवर्ट	ब्रायोफ़ाइटा	जिम्नोस्पर्म
हार्न वर्ट	ट्रैकियोफाइटा	एन्जियोस्पर्म
स्फीनोफ़ाइटा	लाइकोफ़ाइटा	साइलोफ़ाइटा
साइकेडोफ़ाइटा	गिंगोफ़ाइटा	नीटोफ़ाइटा

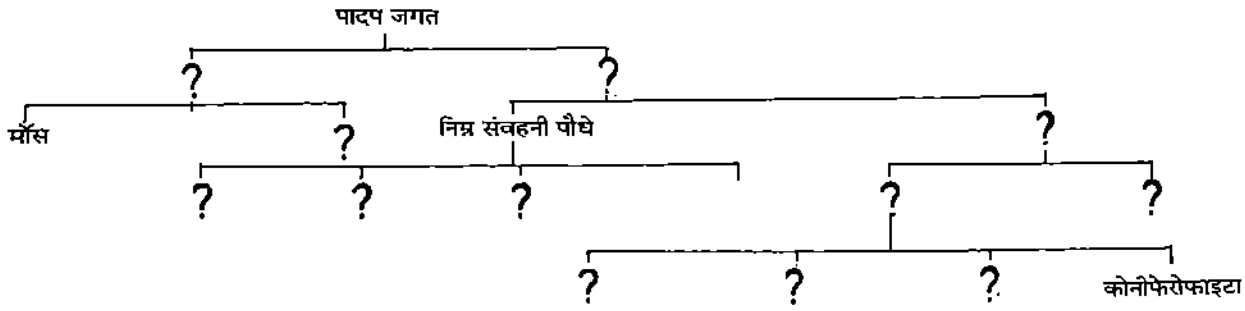

3) निम्न संरचनाओं को सही फाइलम से मिलाइए :

i)	कशेरुक दण्ड	अ)	नाइडेरिया
ii)	दशकोशिकाएं	ब)	कॉर्डेटा
iii)	आंतरांग सहति	स)	पोरीफेरा
iv)	कोएनोसाइट	द)	मौलस्का
v)	बाह्यकंकाल	य)	ऐनेलिडा
vi)	सीटी अथवा पैरापोडिया	र)	आथ्रोपोडा

4) सजीव जीवधारियों के दो जगत रखने में आनेवाली मुख्य समस्याओं का वर्णन कीजिए।

5) निम्न शब्दों या नामों को उचित स्थानों पर रखकर प्राणि जगत के लिए वर्गीकरण को पूरा कीजिए :

यूमेटाज़ोआ	रोडेयल सममिति	प्लेटीहेल्मिन्थीज़
सीलोमेट्स	नेमाटोडा	द्विपार्श्वतः सममिति
पोरीफेरा	डयूटेरोस्टोम	ऐनेलिडा
आर्थोपोडा	ईकाइनोडरमेटा	

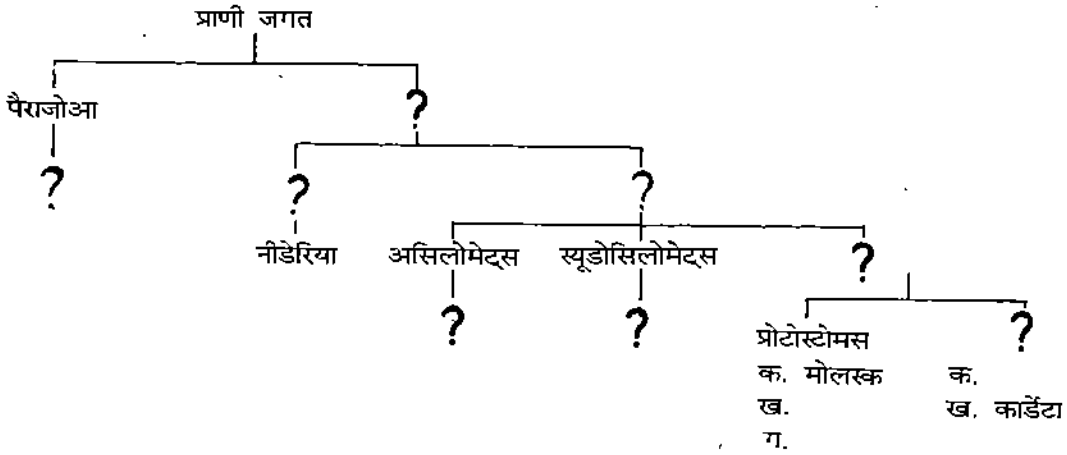

3.11 उत्तर (Answers)

1) (i) स, (ii) ग, (iii) स, (iv) ग, (v) स, (vi) स, (vii) स, (viii) स

2) क) i) a) मापशील

b) वांछनीय

c) अपेक्षाकृत

d) निरपेक्ष

ii) न्यूक्लिइक अम्ल विश्लेषण

ऐमीनो अम्ल

iii) विशाखन नमूने

पत्ती की आकृति

विशेषित कोशिका

जनन संरचना

vi) a) किसी स्पीशीज़ अथवा समूह में स्थिर।

b) आसानी से अध्ययन किए जाते हैं।

c) स्पष्टतः विभेदशील तथा निकटतः संबंधित टेक्सॉनों से सरलतापूर्वक पृथक किए जा सकते हैं

ब) iii)

3) विद्यार्थियों को सेक्शन 3.8 देखना चाहिए।

अन्त में कुछ प्रश्न

1) (अ) v, (ब) iv, (स) i, (द) ii, (य) iii

2)

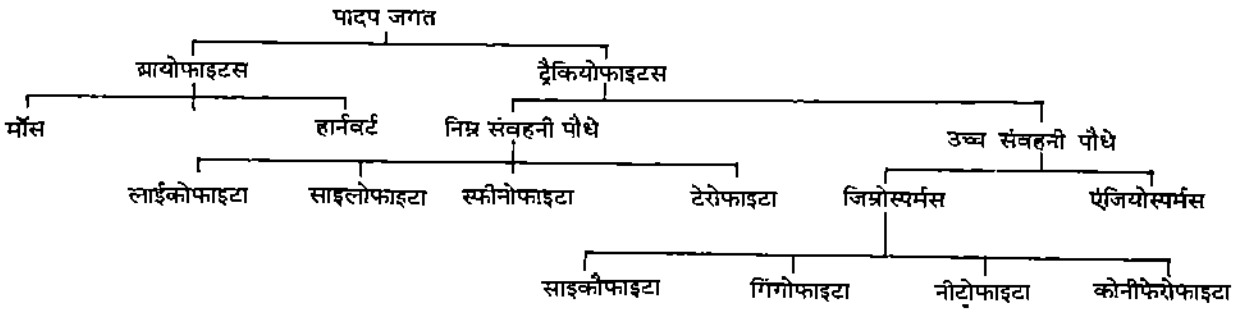

3) (i) ब, (ii) अ, (iii) द, (iv) स, (v) र, (vi) य

4) सेक्शन 3.8 देखिए

5)

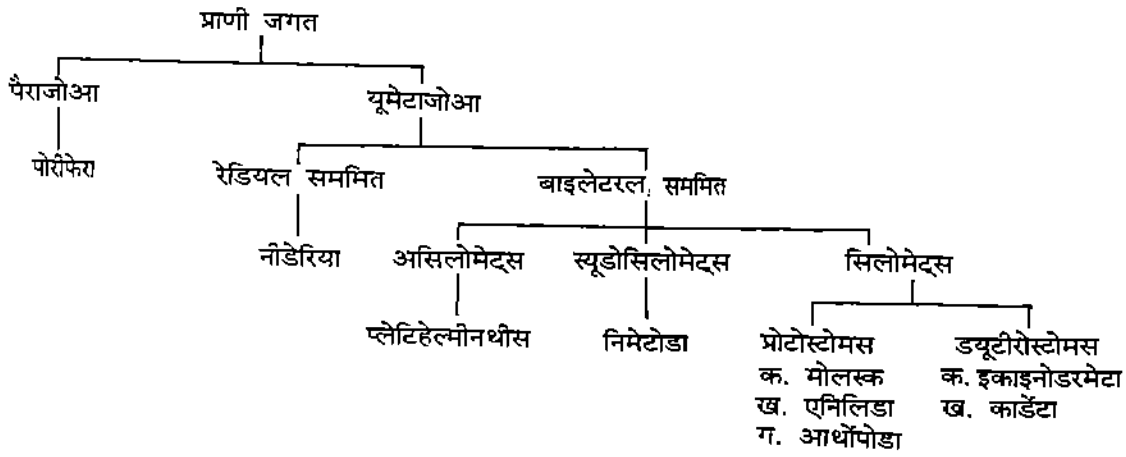

इकाई 4 द्विपदनाम पद्धति

इकाई की रूपरेखा

4.1 प्रस्तावना
उद्देश्य
4.2 संकल्पनाओं का विकास
4.2.1 अंतर्राष्ट्रीय कोड
4.2.2 द्विपदनाम पद्धति के सिद्धांत
4.3 नामकरण के महत्वपूर्ण नियम
4.4 द्विपदनाम प्रणालियां
4.4.1 बौहिन
4.4.2 लिनियस
4.5 वर्गीकरण की इकाइयां--स्पीशीज, जीनसे तथा फेमिलियां
4.6 सारांश
4.7 अंत में कुछ प्रश्न
4.8 उत्तर

4.1 प्रस्तावना

आपने इकाई 2 और 3 में पौधों, प्राणियों के वर्गीकरण, उनके क्रमबद्ध समूहीकरण की स्पष्ट व्याख्या, तथा उसे संस्थापित करने की प्रक्रिया के विषय में पढ़ा। इस इकाई में हम द्विपदनाम नामकरण के विषय में विवेचन करेंगे जिसका जीव विज्ञानों में इस्तेमाल होता है। द्विपदनाम पद्धति व्यक्तिगत सत्ता तथा अंतर्राष्ट्रीय नियमों के आधार पर बने वर्ग के नामकरण को कहते हैं। यह नियम अंतर्राष्ट्रीय कोड के नाम से प्रकाशित किये जाते हैं। अन्य विज्ञान शाखाओं के विपरीत, जीवविज्ञान अपनी विषयसामग्री, अपनी लाक्षणिक विशिष्टताओं तथा ज्ञान भंडार में सदैव ही बदलता रहा है। द्विपदनामपद्धति शीर्षक के अंतर्गत हम तीन चीजों का विवेचन करेंगे (1) इसकी संकल्पनाएँ एवं सिद्धांत, (2) बोहिन तथा लिनियस द्वारा प्रस्तुत की गई द्विपदनाम प्रणाली तथा (3) वर्गीकरण की इकाईयां जैसे कि स्पीशीज, जिनसे तथा फेमिलियां। यहाँ ये स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि कोड (नियमावली) का वैज्ञानिक विवेचन के निष्कर्ष निकालने से कोई संबंध नहीं है परन्तु जो भी निर्णय आप लेते हैं उसमें कोड का ही निर्देश पालन करना होता है, अर्थात अध्ययन की जा रही जिस किसी भी सत्ताओं को नाम दिए जा रहे हों वे कोड के ही अनुसार हों।

उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ लेने के बाद आप :

- द्विपदनाम पद्धति की संकल्पनाओं का स्पष्टीकरण कर सकेंगे,
- पौधों तथा प्राणियों का नामकरण करते समय आप उनपर द्विपदनाम पद्धति के सिद्धांतों को लागू कर सकेंगे।
- वैज्ञानिक नामों के महत्व को न्यायोचित ठहरा सकेंगे,
- नामकरण की अंतर्राष्ट्रीय नियमावली की सूची बना सकेंगे।

4.2 संकल्पनाओं का विकास

किसी भी वस्तु के संदर्भ संकेत के लिए नाम एक पारम्परिक साधन है। उदाहरण के लिए,

जब हम चिम्पैंजी, गौरय्या, धान, वाइरस आदि कहते हैं तब हम क्रमशः एक खास जंगली जानवर, पक्षी, बोया जाने वाला पौधा और वाइरस की ओर संकेत कर रहे होते हैं। इस प्रकार ऊपर दिए गए शब्द नाम हैं। आइए नामकरण की संकल्पना को एक उदाहरण देकर स्पष्ट करें। मान लीजिए एक किसान के पास आधा दर्जन गायें हैं। वह इनमें से अलग अलग गायों को वर्णनात्मक वाक्यांशों द्वारा पुकार सकता है जैसे लम्बे सींग वाली भूरी गाय, और छोटे सींग वाली सफेद गाय, आदि। लेकिन जब उसकी गायों की संख्या बढ़ जाती है तब हो सकता है कि लम्बे सींग वाली भूरी गाय अब एक नहीं कई हो गयी हों, और तब उसके मन में प्रत्येक गाय को एक छोटा अलग नाम देने का विचार आए और तब जरूरी नहीं कि यह नाम वर्णनात्मक ढंग का ही हो।

आपको मालूम होना चाहिए कि जीवों का नामकरण करने की दो प्रकार की प्रवृत्तियां होती हैं—एक तो साधारण व्यक्ति की सुविधा के लिए जिसे हम देसी नाम (vernacular name) यानि आम बोलचाल का नाम कहते हैं और दूसरा वैज्ञानिक नाम (Scientific name) वाइरस, गोरय्या, चिम्पैंज़ी, मानव तथा धान सामान्य नामों के उदाहरण है तथा शलगम का पीला मोज़ेक वाईरस (Turnip yellow mosaic virus), पेसर डोमेस्टिकस, *(Passer domesticus)*, पेन ट्रोग्लोडईटस, *(Pan troglodigtes)* होमोसेपियंस *(Homo sapiens)* तथा ओरीज़ासैटीवा *(Oryza sativa)* क्रमशः वाईरस, गौरय्या मानव तथा धान के वैज्ञानिक नाम है (चित्र 4.1)।

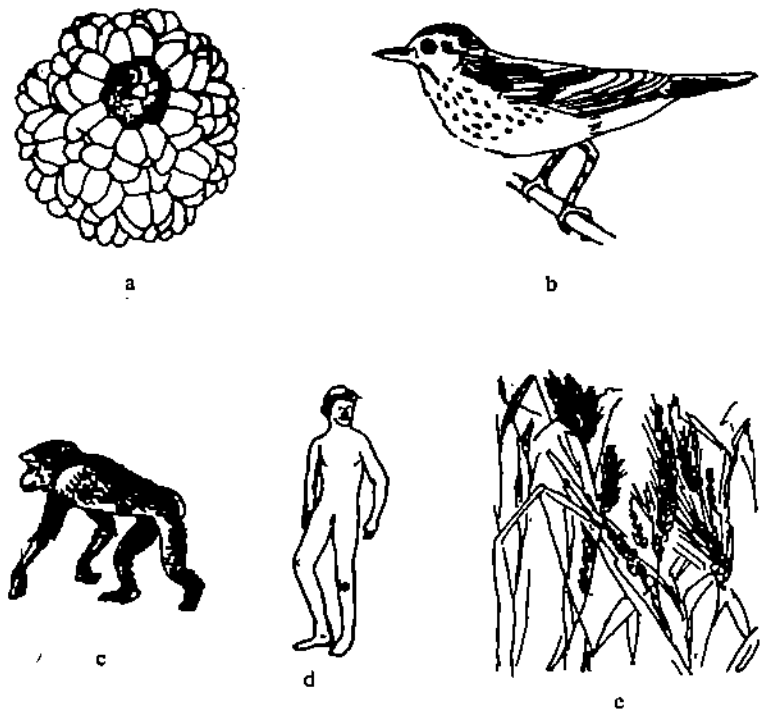

चित्र 4.1 : सामान्य नाम एवं उन्हीं के वैज्ञानिक नामों मे कुछ उदाहरण।

क) वाइरस (शलगम का पीला मोज़ेक वाईरस)
ख) गौरय्या *(पेसर डोमेस्टिकस)*
ग) चिम्पैंजी *(पेन ट्रोग्लोडईटस)*
घ) मानव *(होमो सेपियंस)*
ङ) धान *(ओरीजासैटीवा)*

आम बोलचाल के देसी नाम सामान्य बातचीत के लिए तो सुविधाजनक होते हैं। मगर ये शायद ही कभी दो भाषाओं में एक हों, तथा एक जिले से दूसरे जिले और एक प्रांत से दूसरे प्रांत एवं एक देश से दूसरे देश में भिन्न होते जाते हैं। ये नाम बस यूं ही मनमर्जी रख लिए जाते हैं तथा इनमें जीवों के बीच पाए जाने वाले किसी संबंध को व्यक्त करने का कोई

सचेतन प्रयास नहीं किया गया होता। उदाहरण के लिए तमल एक सुंदर पुष्पी सदाबहार पौधा है, इसे हिन्दी में डेम्पल, ओतर तथा तमल कहते हैं, मराठी में डेम्पल, ओठ तथा ओस्ट और गुजराती में कर्नल एवं ओटा कहते हैं। धान को बिहार, उत्तरप्रदेश तथा मध्यप्रदेश में चावल, उड़ीसा में धान, मद्रास में नेलु तथा मैसूर में भात कहते हैं। इसी प्रकार घरेलू गैरय्या को फ्रांस में मोएनू, स्पेन में गोरियोन, पुर्तगाल में पार्दल, इटली में पैसर तथा जर्मनी में हाउस ओपरलिंग कहते हैं। जगह-जगह पर अलग तरह से व्यक्त करने से जो अनिश्चितताएं तथा कमियां पैदा होती हैं उन्हीं को दूर करने के लिए तकनीकी अर्थात वैज्ञानिक नाम देने की संकल्पना का विकास हुआ। आज इसे द्विपदनाम नामकरण कहते हैं और यह सभी जीवधारियों अर्थात् पौधों और प्राणियों पर लागू होता है। इस नामकरण का समूचे विश्व में प्रयोग किया जाता है। उदाहरण के लिए "घरेलू गौरय्या" को अब सर्वत्र एक ही वैज्ञानिक नाम पैसर डोमोस्टिक्स लिन्न से जाना जाता है। वैज्ञानिक नाम का लाभ यह है कि इसमें सामान्य नामों की विविधता के विपरीत एक पूर्ण निश्चितता होती है।

इकाई 1 में आपने जीववैज्ञानिक वर्गीकरण के वर्गिकीय पदानुक्रम के विषय में पढ़ा था जैसे कि वर्गिकीय पदस्तरों, वर्गिकीय समूहों, वर्गिकीय इकाईयों आदि के विषय में। टैक्सॉन की अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर परिभाषा है कि यह किसी भी पदस्तर का एक वर्गिकीय समूह अथवा श्रेणी है। पदानुक्रम श्रेणियों के विभिन्न स्तरों पर जो नाम दिए जाते हैं वे वर्गिकी का नामकरण हैं। वैज्ञानिक नाम की संकल्पना द्विपदनाम नामकरण को मानक रूप देने की दिशा में पहला प्रयास है। आपको यह भी जान लेना चाहिए कि परस्पर संबंध की संकल्पना में परिवर्तन आने तथा संसार भर के जीवविज्ञानियों के बीच संचार बढ़ जाने के साथ-साथ नामकरण की नियमावली (कोड) की संकल्पना का उदय हुआ। यह कोड सार्वत्रिक नियमों पर आधारित था ताकि जीवधारियों के नाम इसी के अनुसार रखे जा सके।

4.2.1 अंतर्राष्ट्रीय कोड

सन् 1753 में लिनियस ने एक ऐसी द्विपदनाम पद्धति का सुझाव दिया जिसमें प्रत्येक जीव को दो गुणसूचकों द्वारा व्यक्त किया जाता था इनमें से पहला गुणसूचक जीनस नाम है और दूसरा गुणसूचक स्पीशीज नाम। ऐसे वैज्ञानिक नाम बहुत सुविधाजनक थे तथा इस विचार को संसार भर के वनस्पतियों ने स्वीकारा। इस उद्देश्य से कि नामकरण संबंधी मुद्दों पर अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर अनुरूपता बनी रहे, समय-समय पर अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलनों का आयोजन किया जाता रहा है और उनमें अपनाए गए नियमों को वनस्पतिकीय, प्राणिविज्ञानीय, जीवाणुविज्ञानीय तथा विषाणुपरक नामकरण पद्धतियों के अंतर्राष्ट्रीय कोड के रूप में प्रकाशित किया जाता है। प्राणियों के वैज्ञानिक नाम बनाना और उनका प्रयोग करना इंटरनेशनल कोड ऑफ जूलाजिकल नोमनकलेचर (International code of Zoological Nomenclature I.C.Z.N.) के अधीन होता है। अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर प्राणिविज्ञानीय कोड को बनाने के लिए जो संगठन जिम्मेदार हैं वे इंटरनेशनल यूनीयन ऑफ बयोलाजिकल साइंसीज (International Union of Biological Sciences I.U.B.S) के विभिन्न अंग है। कवकों तथा लाइकेनों सहित पौधों को नाम देने के लिए इंटरनेशनल कोड ऑफ बोटेनिकल नॉमनक्लेचर (International code of Botanical Nomenclature I.C.B.N) है। इसके अतिरिक्त पौधों के नामकरण के लिए एक आयोग तथा इंटरनेशनल ऐसोसिएशन ऑफ प्लांट टेक्सौनोमी (International Association of Plant Taxonomy I.A.P.T) है। जीवाणुओं को नाम देने के लिए इंटरनेशनल कोड ऑफ नोमनक्लेचर आफ बेक्टीरीयोलोजी (International Code of Nomenclature of Bacteriology I.C.N.B) है। वाइरसों के नामकरण का नियंत्रण इंटरनेशनल कोड ऑफ वाइरल नोमनक्लेचर (International code of Viral Nomenclature I.C.V.N) के अधीन है। कृषिपरक पौधों के नामकरण के लिए एक अलग कोड है जिसे इंटरनेशनल कोड ऑफ नामनक्लेचर फॉर कल्टीवेटेड प्लांटस (International code of Nomenclature for Cultivated Plants I.C.N.C.P) कहते हैं। यह कोड कृषिपरक पौधों के नामकरण के अतिरिक्त उनके वर्गीकरण एवं पंजीकरण का भी प्रावधान करता है

और इसके लिये ICBN के कुछ संपूरक नियम भी है। संकर पौधों के नामकरण के लिए प्रत्येक कोड में अलग नियम है। प्राणिविज्ञानीय तथा जिवाणुविज्ञानीय कोडों में संकरों के नाम का कोई प्रावधान नहीं है। प्राणिविज्ञान में घरेलू पालतू जानवरों की अलग-अलग नस्लों का नाम देने के लिए अभी तक कोई पृथक कोड उपलब्ध नहीं है।

हर कोड का अपना अलग ही दृष्टिकोण, अलग ही व्यवस्था तथा अन्य पहलू भी अलग-अलग होते हैं फिर भी उनमें से हर एक का प्रयास यही होता है कि वह अपने क्षेत्र की समान मूलभूत समस्याओं का समाधान प्रदान कर सके। प्रत्येक के कार्य सिद्धांतों पर नामकरण पद्धति आधारित है जिसके साथ-साथ संख्याबद्ध नियम भी होते हैं जो पदार्थों को द्योतित करते हैं। कुछ नियमों के साथ-साथ विस्तृत सुझाव दिए जाते हैं जिनका संबंध कुछ पूरक मुद्दों से होता है जिससे भविष्य में होने वाले प्रयोग में अधिक एकरूपता एवं स्पष्टता लायी जा सकती है।

4.2.2 द्विपदनाम पद्धति के सिद्धांत

द्विपदनाम पद्धति के कुछ मूल सिद्धांत इस प्रकार है :

i) विभिन्न नामकरण प्रणालियां एक दूसरे से अलग हैं, उदाहरणार्थ, यद्यपि **कौरीडेलिस (Corydalis)** नाम फेमिली फ्यूमेरीयेसी में पौधों की एक जीनस का नाम है। यह नाम (**कौरीडेलिस**) कीटों के आर्डर मेगालोपटीरा (Megaloptora) की एक जीनस का भी है। हालांकि ऐसा हो जाना कोड में स्वीकार्य है पर दो विभिन्न प्रणालियों में एक ही पदस्तर के दो अलग-अलग प्रकार के जीवधारियों के लिए एक ही नाम रखना वांछनीय नहीं है। इससे अंतरविज्ञानीय स्तर पर समझने बूझने में कठिनाई पैदा हो सकती है।

ii) प्रत्येक नाम पद्धति में एक विशिष्ट परिभाषा, स्थिति तथा पदस्तर वाले टेक्सॉन का एक ही सही नाम हो सकता है, हां कोई असाधारण अथवा विशिष्ट मामला हो तब और बात है।

iii) दो अलग-अलग टेक्सॉनों का एक ही नाम नहीं होना चाहिए।

iv) टेक्सॉनों के वैज्ञानिक नामों को उनकी व्युत्पत्ति की परवाह किए बगैर लैटिन नाम के रूप में लिया जाता है।

v) फेमिली के पदस्तर के ऊपर को छोड़कर किसी भी टेक्सॉन का सही नाम प्रकाशन की प्राथमिकता के आधार पर होता है।

vi) वनस्पतिकी में आर्डर अथवा प्राणि विज्ञान में सुपर फेमिली और दोनों की निम्न की श्रेणियों में टेक्सॉनों के नाम टाइप नमूनों, टाइप स्पीशीज तथा टाइप जीनसों के आधार पर दिए जाते हैं। कुछ विशिष्ट मामलों में अपवाद भी हो सकते हैं।

बोध प्रश्न 1

क) द्विपदनाम पद्धति से आप क्या समझते हैं?

.....

.....

ख) द्विपदनाम पद्धति के कुछ महत्वपूर्ण पहलुओं की सूचि बनाइए :

.....

.....

ग) सामान्य नामों की अपेक्षा वैज्ञानिक नामों के क्या लाभ हैं?

.....

.....

4.3 नामकरण के महत्वपूर्ण नियम

नामकरण का संबंध वर्गिकी से जोड़ा जाता है क्योंकि इसके द्वारा किसी ज्ञात टेक्सॉन का सही नाम होता है। सामान्य अथवा बोलचाल के नामों की अपेक्षा वैज्ञानिक नामों का प्रयोग करने में बहुत अच्छाइयां हैं। लिनियस के समय में यह सामान्य राय थी कि किन्हीं भी दो जीनसों का एक ही जीनस नाम नहीं होना चाहिए और एक ही जीनस के अंतर्गत आने वाली किन्हीं भी दो स्पीशीज का एक ही विशिष्ट नाम नहीं हो सकता। जीवविज्ञानीय साहित्य में ऐसे अनेक उदाहरण हैं जिनमें विभिन्न वर्गों के कार्यकर्त्ताओं ने एक ही समय पर अलग-अलग नामकरण कोडो को बनाया एवं उनका पालन किया। परन्तु यह प्रथा कम होती गई। प्राणियों के नामों में स्थिरता एवं सार्वभौमिकता प्राप्त करने के उद्देश्य से पहला प्राणिविज्ञानीय कोड "दि स्टिकलैंड कोड" (The stickland code) 1842 में बनाया गया, इसे बनाने वाली समिति में डार्विन (चित्र 4.2), हेन्स्लो, वाटरहाउस तथा वेस्टवूड भी थे। मगर यथार्थतः कोई सर्वदेशीय नियमावली 1898 में ही जाकर अपनायी जा सकी।

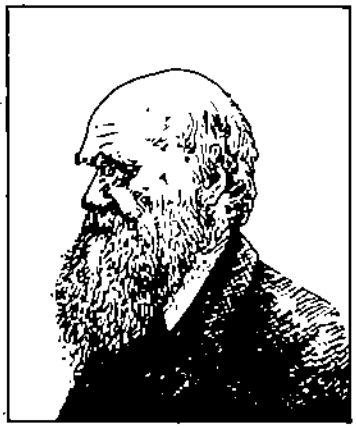

आपको ज्ञात होना चाहिए कि वनस्पतिकी के लिए पहला कोड 1813 में आगस्टीन डी केंडोल (चित्र 4.3) ने अपने ग्रंथ "थियोरी एलीमेन्टाईर डि ला बोटानीक" (Theorie elementaire de la Botanique) में बनाया था तथा संदद्ध संगठन की स्थापना 1867 में हुई। जीवाणुविज्ञान के अंतर्राष्ट्रीय कोड को पहले पहल 1947 में अपनाया गया। इसी प्रकार सर्वदेशीय वाइरस नामकरण की जानकारी 1951 में स्थापित जीवणुविज्ञान अंतर्राष्ट्रीय आयोग की वाइरस उपसमिति ने व्यक्त किया। तब से लेकर अब तक अनेक प्रणालियां रखी गई लेकिन उनमें से कुछ ही को सार्वत्रिक स्वीकृति मिल पायी है। वाइरसों के वर्गीकरण एवं उनके नामकरण पर प्रथम रिपोर्ट 1971 में ही प्रकाशित हुई। आपको यह जान लेना चाहिए कि एक लम्बे इतिहास के बाद ही कहीं जाकर आज वनस्पतिकी, प्राणिविज्ञान तथा कुछ हद तक जीवाणुविज्ञान संबंधी कोड अपेक्षाकृत एक स्थिर स्तर प्राप्त कर पाए हैं। विषाणुविज्ञान के कोड तो सबसे आधुनिक समय के हैं, ये अभी अपर्याप्त हैं तथा इनको इन्हें अंतिम रूप देने से पहले इनमें बड़े अनेकों संशोधन किए जा सकते हैं। आपको यह भी जान लेना चाहिए कि प्राणिविज्ञानीय नामकरण वनस्पतिकीय नामकरण से भिन्न है। हर संभव प्रयास किया जाना चाहिए कि जो जीनस नाम पहले से ही वनस्पतिकी में इस्तेमाल हो रहे हैं वे प्राणिविज्ञान में न आने पाएं। उपजीनसों तथा उससे ऊपर के

प्राणियों के वैज्ञानिक नाम एक पद नाम (uninomial होते हैं। स्पीशीज के नाम द्विपदनाम (Binomial) होते हैं तथा उपस्पीशीज के नाम त्रिपदनाम (Trinomial) होते हैं। उदाहरण के लिए

जीनस	उपजीनस	स्पीशीज	उपस्पीशीज	नामकर्ता
डेक्स	*एफ्रोडेक्स*	*एब्बीरेन्स*	*निगरिटस*	हाडी 1955
(Dacus)	*(Afrodacus)*	*(aberrans)*	*(nigritus)*	Hardy

पहला (जीनस) तथा तीसरा (स्पीशीज) नाम मिलकर द्विपदनाम बनाते हैं। दूसरा नाम उपजीनस है तथा चौथा नाम उपस्पीशीज है जिनके साथ मिलने पर त्रिपदनाम बनता है। इस टेक्सॉन का मूल नामकर्ता हार्डी है और इसकी उदघोषणा 1955 में हुई थी। प्राणिविज्ञानीय नामकरण का अंतर्राष्ट्रीय कोड घोषणा भी निकालता है कि आयोग को अधिकार है कि वह कोड के संशोधन का प्रावधान भी लागू कराए। यद्यपि ट्रस्ट अस्वीकृत एवं अवैध नामों एवं कृतियों की अधिकारिक अनुक्रमणिकाएं तथा वैधित किए हुए नामों एवं स्वीकार कर लिए गए नामों के अधिकारिक मूलपाठों को अलग से प्रकाशित तो करता है परन्तु इन्हें प्राणिविज्ञानीय कोड का ही अभिन्न भाग माना जाता है।

बोध प्रश्न 2

क) मूलपाठ में से उपयुक्त शब्दों का प्रयोग करके रिक्त स्थानों को भरिए :

i) वैज्ञानिक नामों की आधारिक भाषा.....होती है।

ii) आधारभूत रूप में समान जीवों के समूह को.....कहा जाता है।

iii) .....निकटतः संबंधित स्पीशीज के समूहों को कहते हैं।

iv) एक जीनस जिसमें एक मात्र स्पीशीज होती है.....कहलाती है।

v) फेमिली को अंतर्जात तब कहा जाता है। जब उसके सभी सदस्य.....मूल से व्युत्पन्न हुए हों।

ख) बहुपद नाम तथा द्विपदनाम पद्धतियों में विभेद कीजिए।

4.4 द्विपदनाम प्रणालियां

पिछले खंडों में हमने अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर द्विपदनाम नामकरण की संकल्पनाओं की रूपरेखा प्रस्तुत की थी और आज के उन सिद्धांतों की भी चर्चा की थी जिनका अनुसरण आज हम जीवों का नामकरण करते समय करते हैं। आपको जान लेना चाहिए कि ये जितने भी सिद्धांत तथा संकल्पनाएं हैं इनमें एक लम्बे समय तक क्रमशः सुधार हुआ है।

इस इकाई के पिछले खंडों को पढ़ने के बाद आप जरूर समझ गए होंगे कि जीवविज्ञानीय वर्गीकरण व्यक्तिगत जीवों के प्राथमिक समूहों पर केंद्रित होता है अर्थात स्पीशीज पर 17वीं शताब्दी के पूर्ण विद्वान जीवविज्ञानियों को जब भी किसी एक या एक से अधिक स्पीशीज की चर्चा अथवा उनका विवेचन करना होता था तो उनके पास उन्हें नामित करने के लिए उनका वर्णन लिखने के अतिरिक्त और कोई चारा नहीं था। उदाहरण के लिए माकिंग पक्षी को जिसे लैटिन वाक्यांश से पुकारा जाता था वह था "थूरडस माइनर सिनेरो-एलबम नोन मेकूलेटस" *(Turdus minor Cinero-albus* non-maculatus) अर्थात कस्तूरिका घूसर सफेद बिना चित्री। इसी प्रकार पुदीने की एक स्पीशीज़ को लैटिन वाक्यांश "प्रूनेला मेगना फ्लोरे एलबो", *(Prunella Magna Flore albo)* अर्थात प्रुनेला जिसमें बड़े सफेद फूल लगते हैं, इत्यादि। ये नाम बहुपदनाम थे जो एक क्रम में लिखे हुए कई शब्दों से बने थे। ये बड़े झमेले वाले थे और कभी-कभी इनकी व्याख्या करना भी कठिन होता था। आधुनिक नामपद्धति को विकसित करने में सबसे पहले के वे उपाय थे जिनसे द्विपदनाम पद्धति बनी। द्विपदनाम के लैटिन शब्द बाईनामियल द्वारा दो शब्दों के योग का बोध होता है जो मिलकर एक द्विनाम "बाइनोमन" बनाते हैं जिसे

"बाइनरी" भी कहते है। एक जीनस नाम और उसके साथ में एक विशिष्ट जातिगत गुणसूचक या विशेषण (Epithet) या वर्णन (जिसे ट्रिवियल नाम भी दिया गया होता है) जोड़कर स्पीशीज का नाम देने की प्रणाली को द्विपदनाम पद्धति कहते हैं। उदाहरण के लिए फिर से घरेलू गौरय्या के वैज्ञानिक नाम को याद करें यानि पैसर *डोमेस्टिकस* लिनन को इस द्विपदनाम में पहला शब्द पैसर से उस जीनस का संकेत होता है जिसमें यह पक्षी आता है तथा दूसरा शब्द *डोमेसटिकस* इस जीनस की एक विशेष स्पीशीज के लिए है। ये दो शब्द एक संयोजन में ही आकर गौरय्या की स्पीशीज बनाते हैं।

स्पीशीज़परक विशेषण को जीनस के साथ जोड़कर स्पीशीज नाम बनने में एक स्पष्ट दोष भी आ जाता है। वर्गिकिविदों के निर्णयों के अनुसार जब कभी किसी स्पीशीज को किसी एक अन्य जीनस में स्थानांतरित किया जाता है तब उसका नाम बदल दिया जाता है। और ऐसा करने से पूरी तरह से सूचना मिलने में बाधा पड़ती है। इस प्रकार पैदा होने वाली कठिनाई से बचने के लिए कोड ने कुछ व्यवस्था रखी है जिनका कठोरता से पालन करना चाहिए। द्विपदनाम प्रणाली के गुणों को हम संक्षेप में इस प्रकार कह सकते है:

विशेषक
एक विशेषण अथवा वर्णनात्मक वाक्यांश जो वस्तु का लक्षण अथवा सर्वाधिक महत्वपूर्ण गुण बताता है। यह किसी वर्ग के सदस्य को अंतिम नाम देना है।

1) यह हमारे सामने सहज संबंध का सार प्रस्तुत करती हैं। जिससे स्मरण रखने में मदद मिलती है तथा हमें अनजाने ही जीवधारियों के विषय में मूल सूचनाएं मिल जाती है।
2) इससे कुछ समान लक्षणों वाली स्पीशीज के समूहों के विषय में चर्चा करने में सुविधा मिलती है।

4.4.1 बौहिन

स्पीशीज नाम के द्विपद प्रयोग का प्रथम संदर्भ हमें एक स्विटजरलैंडवासी चिकित्सक एवं वनस्पतिकीविद् केस्पर बौहिन (1560-1624) के प्रकाशन *पिनैक्स* (Pinax, 1623) में मिलता है। इस प्रकाशन में पौधों की स्पीशीज तथा जीनसों में नामकरण संबंधी विभेद करने का प्रयास किया गया है। इस विधि से स्पीशीज के संबंध में स्थिति की अभिव्यक्ति में तो सहायता मिली लेकिन इसमें कोई व्यवस्था नहीं थी जीनस नाम में प्रायः दो या तीन शब्द होते थे तथा स्पीशीज संबंधी विशेषण प्रायः लम्बा वाक्यांश होता था। केस्पर बौहिन ने पौधों को उनके गठन एवं स्वरूप के आधार पर वर्गीकृत किया। जिस द्विपदनाम पद्धति का श्रेय प्रायः लिनियस को दिया जाता है, उसकी स्थापना वास्तव में लिनियस द्वारा किए गए प्रयोग के एक शताब्दी से अधिक पहले बौहिन द्वारा हो चुकी थी। अगले खंड में हम लिनियस की कृतियों का विवेचन करेंगे।

4.4.2 लिनियस

बौहिन के लगभग पूरी एक शताब्दी के बाद महान स्वीडनवासी प्रकृतिविज्ञानी केरोलस लिनियस (1707-1778) ने दो युगान्तरकारी कृतियां प्रकाशित की—एक तो पौधों से संबंधित "*स्पीशीज फ्लैन्टैरम*" (species plantarum) 1753 थी तथा दूसरी प्राणियों से संबंधित "*सिसटेमा नेचूरा*" (Systema Naturae) 1758। इन पुस्तकों में कुछ निश्चित नियमों के साथ पौधों तथा प्राणियों के द्विपदनाम देने की प्रणाली को नियमित प्रचलन बना दिया। प्रत्येक स्पीशीज के नाम को लैटिन के दो शब्दों में ही सीमित रखा गया भले ही वह स्पीशीज पहले पहल किसी भी देश में पायी गयी हो या उसका वर्णन पहले पहल किसी भी भाषा में किया गया हो। नामकरण के इस प्रकार के सार्वत्रिक उपयोग से अलग-अलग स्थानीय भाषाओं तथा सामान्य बोलचाल के नामों से मिलने वाले अर्थों की अस्पष्टता से बचने में सहायता मिली, और इसके द्वारा समस्त संसार के वैज्ञानिको को चर्चागत स्पीशीज के संबंध में सदैव एक ही सूचना उपलब्ध होने लगी।

लिनयस को वर्गिकीय वनस्पतिकी तथा प्राणिकी का जन्मदाता माना जाता है। उसकी कृतियां अधिकांश प्राणियों एवं पौधों के लिए एक अधिकारिक आरंभ विंदु है। वैज्ञानिक नामों का सर्वत्र इस्तेमाल किया जाने का लैटिनी स्वरूप सीधे इस तथ्य का परिणाम है कि

प्राकृतिक इतिहास के अधिकांश प्रकाशन लैटिन में लिखे गए थे। लैटिन उस समय की विद्वानों की भाषा थी। यह भाषा शब्दों के मूल का एक सम्पन्न भण्डार है जिसमें से वैज्ञानिक नाम बनाए जा सकते हैं, यानि ऐसे नाम जो विशिष्ट एवं अर्थ में बिल्कुल सही है।

बोध प्रश्न 3

क) 17वीं शताब्दी से पूर्व जीववैज्ञानिक गण स्पीशीज़ के नाम किस प्रकार दिया करते थे?

क) स्पीशीज़, जीनस तथा फेमिली में विभेद कीजिए।

ग) मूलपाठ में से उपयुक्त शब्द का प्रयोग करके रिक्त स्थान भरिए :

1) स्पीशीज़ नाम के द्विपदीय प्रयोग पहला संदर्भ.....के प्रकाशन से मिलता है।

2) केस्पर बौहिन ने पौधों को.....के आधार पर वर्गीकृत किया था।

3) लिनियस का 1753 में प्रकाशित ग्रंथ.....पौधों पर था।

4) .....को वर्गिकी, पादप विज्ञान एवं प्राणिविज्ञान का जन्मदाता माना जाता है।

5) .....को उस समय की विद्वानों की भाषा माना जाता था।

4.5 वर्गीकरण की इकाइयां

नामकरण के नियमों ने उन श्रेणियों का प्रस्ताव किया है जिनमें पौधों का वर्गीकरण किया जाना चाहिए। ये श्रेणियां वर्गीकरण की इकाईयां हैं। इनके क्रम तथा इनके महत्व स्तर को नियमों द्वारा निश्चित किया गया है। वर्गीकरण की इकाईयों को अवरोही क्रम में, सर्वाधिक परिणाम वाली इकाइयों से शुरू करके न्यूनतम परिणाम वाली इकाईयों की दिशा में व्यवस्थित किया जाता है। इस इकाई में हम केवल तीन वर्गीकरण इकाईयों अर्थात् फेमिली, जीनस और स्पीशीज़ का विवेचन करेंगे।

फ़ेमिली

प्राणियों तथा पौधों के वर्गीकरण में पहला तथा सबसे महत्वपूर्ण कदम व्याष्टिगत जीवधारियों को उनके परस्पर संबंधों अथवा साहचर्यों के आधार पर समूहित किया जाता है। ये समूह फेमिलियां हैं। फेमिली नाम एक बहुवचनीय विशेषण होता है जिसे संज्ञा के रूप में इस्तेमाल करते हुए पौधों में जीनस नाम अथवा सम्मिलित जीनस नामों के मूल के अंत में–ऐसी (aceae) लगाकर तथा प्राणि फेमिलियों के लिए–इडी (idae) लगाया होता है। उदारण के लिए रोज़ेसी (Rosaceae) *रोज़ा* से, जिरेनिएसी (Geraniaceae) *जिरेनियम* से, लेमीएसी (Lamiaceae) *लेमीएम* से आदि (चित्र 4.4)।

क) रोजेसी *(रोजा)*
ख) जिरेनिएसी *(जिरेनियम)*
ग) लेमीएसी *(लेमीएम)*

चित्र 4.4 अपने प्रारूपों से व्युत्पन्न फेमिलीनामों के कुछ उदाहरण

अवैध मूलनाम के आधार पर सुझाया गया फेमिली नाम अवैध सुरसित कर दिया जाता है बशर्ते कि अंतर्राष्ट्रीय कोड की सिफारिशों के अनुसार सुरसित न कर लिया गया हो। आपको मालूम होना चाहिए कि कुछ फेमिलीनामों को इसलिए स्वीकार कर लिया गया है क्योंकि उन्हें लम्बे समय से इस्तेमाल किया जाता रहा है, उदाहरण के लिए पामी (Palmae), ऐरीकेसी (Arecaceae) टाइप *ऐरिका;* लिग्यूमिनोसी (Leguminosae) फैबेसी (Fabaceae) टाइप *फैबा* Mill, ग्रामिनी (Gramineae) पोआसी (Poaceae) टाइप पौआ, तथा रैनिडी (Ranidae) *राना टिग्रीना* (चित्र 4.5)।

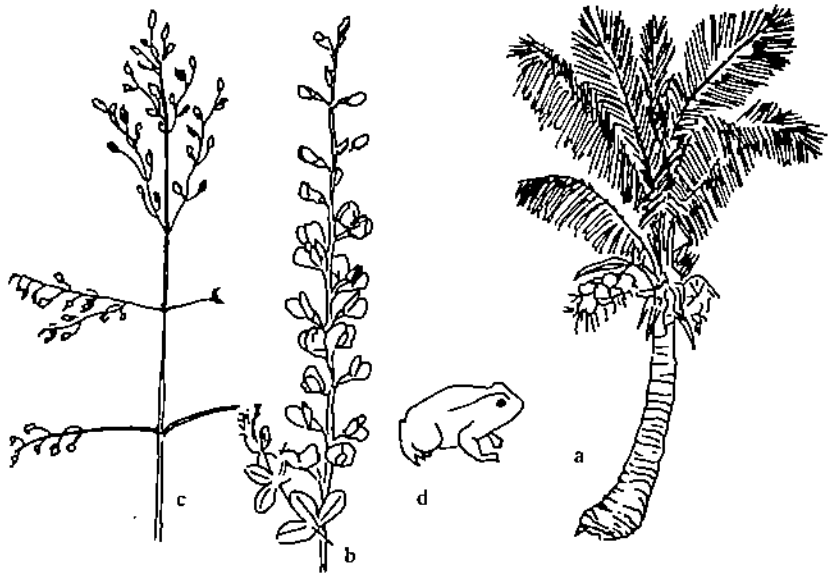

क) पामी (एरीकेसी टाइप *ऐरीका* ल.)
ख) लिग्यूमिनोसी (फैबेसी टाइप *फैबा* मिल)
ग) ग्रामिनी (पोआसी टाइप *पोआ* ल.)
घ) रैनिडी *(राना टिग्रीना)*

चित्र 4.5 : अपने अपने टाइपों से व्युत्पन्न विभिन्न फेमिलियां

ज्ञात स्पीशीज़ की संख्या में वृद्धि और साथ में उनके बीच के संबंधों की मात्रा के द्वारा जीवों को विभिन्न फेमिलियों में रखने में सुविधा हो जाती है। इकाई 2 तथा 3 में आपने पौधों तथा प्राणियों के वर्गीकरण की कृत्रिम प्रणाली के विषय में पढ़ा था। आपको मालूम होना चाहिए कि फेमिली को प्राकृतिक तभी कहा जा सकता है जब उसके सदस्य एक समान पूर्वज मूल से व्यत्पन्न हुए हों अर्थात् जब वह फेमिली एकमूलोद्भवी उद्भव की हो। साथ ही आपकी सूचना और बोधगम्यता के लिए यह भी कहना अच्छा होगा कि उच्चतर पोधों की फेमिलियों को एक दूसरे से जिन लक्षणों द्वारा पृथक किया जाता है उनमें ये सब शामिल हैं—पुष्पक्रम का प्रकार, अण्डाशय की स्थिति, बीजाण्डविन्यास (प्लैसेंटेशन) का प्रकार, अण्डपों (कार्पेलों) की संख्या, बीजाण्ड का प्रकार, तथा सेक्स का वितरण जैसे कि एक लिंगाश्रयता एवं द्विलिंगाश्रयता। फेमिली का कोई विशिष्ट साइज नहीं होता। आप उसमें जितनी चाहे उतनी संख्या में जीवों को शामिल कर सकते हैं बशर्ते कि उन जीवों के बीच समानता तथा परस्पर संबंध होना चाहिए। जब फेमिली बड़ी हो और उसमें बहुत से घटक हों तब आप उसे उपफेमिलियों (Subfamilies) की इकाईयों में विभाजित कर सकते हैं। इनका लैटिनी नाम होना चाहिए जिसके अंत में—इंडी आता हो। उदाहरण के लिए फेमिली पैपैविरेसी (अफीम फेमिली) को तीन उपफेमिलियों में विभाजित किया गया है अर्थात, पैपैविरोइडी (Papaveroideae) फ्यूमेरोइडी (Fumaroideae), तथा हाइपिकोइड़ी (Hypecoideae) में। इस प्रकार आपने ध्यान दिया होगा कि इन सभी उपफेमिलियों के अंत में —इडी आता है।

जीनस

स्पीशीज़ की तरह जीनस भी एक संकल्पना का प्रतिदर्श है। जीनसे निकटतः संबंधित स्पीशीज़ का योग होती है। जीनस के लिए कोई साइज नियुक्त नहीं है कि उसमें कितने

सदस्य हों। जीनस का नाम एकवचन में संज्ञा स्वरूप होता है। आपको अंग्रेजी में जीनस नाम लिखते समय उसका पहला अक्षर बड़ा लिखना चाहिए और एक प्रकार के पौधे के लिए केवल एक ही जीनस नाम होना चाहिए। इन नामों के नीचे एक रेखा बना देनी चाहिए या छापने में उन्हें तिरछे अक्षरों (italics) में छापना चाहिए। जब जीनस में केवल एक ही स्पीशीज़ हो तब उसे एक प्रारुपी (monotypic) कहते हैं जैसे *लीटनेरिया (Leitneria)* जिसमें एक ही स्पीशीज़ ल. *फ्लोरिडाना (L. floridana)* है। जब किसी जीनस में दो या अधिक स्पीशीज़ होती है तब उसे बहुप्रारुपी (Polytypic) कहते हैं। यह जान लेने की बात है कि इस संकल्पना से पक्षियों, स्तनियों, घोंघों, तितलियों तथा अन्य कीटों जैसे सुविदित वर्गों के वर्गीकरण करने में बहुत आसानी हो गयी है।

स्पीशीज़

ऐसे व्यष्टिगत पौधों एवं प्राणियों के समूह को, जो आधारभूत रूप में समान होते हैं एक स्पीशीज़ माना जाता है। स्पीशीज़ किसी पौधे अथवा प्राणी के पूरे नाम का एक अंश है। अलग-अलग स्पीशीज़ को उनके अन्य निकटतः संबंधित जीवों से स्पष्ट आकारिकीय भिन्नताओं के आधार पर पृथक किया जाता है। स्पीशीज़ एक संकल्पना है जिसको स्पष्ट शब्दों में परिभाषित नहीं किया जा सकता तथा वह अंतिम एवं अपरिवर्तनशील भी नहीं है। स्पीशीज़ के विषय में संकल्पना का विकास करने में, प्रतिदर्शों (specimens) को आनुवंशिकतः संबंधित सजीव, जननशील समष्टियों के नमूने के रूप में समझा जाता है। स्पीशीज़ के नाम द्विपदसंयोजन होते हैं जिनमें पहला नाम जीनस का तथा दूसरा नाम किसी अकेले एक विशिष्ट विशेषक का सूचक होता है। यदि विशिष्ट गुणसूचक में दो शब्द हों तो उन दोनों को या तो जोड़ दीजिए या दोनों के बीच में एक हाइफन लगा दीजिए। आपको विदित होना चाहिए कि जिन स्पीशीज़ परक गुणसूचकों में लिनियस के प्रस्ताव के अनुसार कोई संकेत होते हैं तो उन्हें लिपिबद्ध किया जाता है जैसे *पाइनस (Pinus)* एक विशिष्ट जीनस का नाम है, *पाइनस निगरा (Pinus nigra)* इस जीनस की एक स्पीशीज़ का नाम है तथा *पाइनस निगरा वैराइटी कैरेमानिका (Pinus nigra var. caramanica)* इस स्पीशीज़ की एक किस्म का नाम है। इसी प्रकार *डैकस (Dacus)* एक खास जीनस का वैज्ञानिक नाम है। *डैकस ऐबरैन्स (Dacus aberrans)* इस जीनस की एक स्पीशीज़ का नाम है। *फैरेटिमा (Pheretima)* एक खास जीनस का वैज्ञानिक नाम है, *पं. पोस्थुमा (Pheretima posthuma)* इस जीनस की एक स्पीशीज़ का नाम है तथा *प. पोस्थुमा ल. (P. posthuma L.)* सम्पूर्ण नाम है जिसमें संकेत मिलता है कि इस स्पीशीज़ का मूल लेखक लिनियस था। वैज्ञानिक नामों की आधारीय भाषा लैटिन है तथा अन्य भाषाओं से

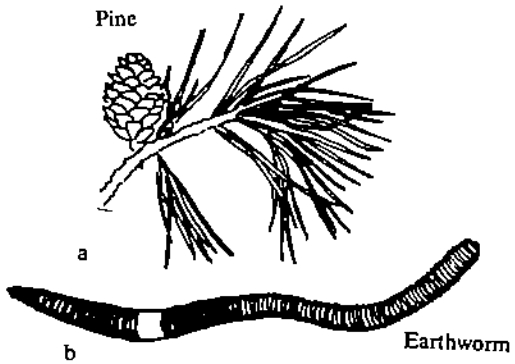

क) *पाइनस निगरा वैराइटी कैरेमानिका*
ख) *फेरेटिमा पोस्थुमा ल.*

चित्र 4.6 कुछ पौधों तथा प्राणियों के द्विपद नाम

लिये गए वैज्ञानिक नामों को लैटिनीकृत कर दिया जाता है। विविध क्रमविकासीय एवं आनुवंशिक क्रियाविधियों के द्वारा अनेकों विभिन्न प्रकार की स्पीशीज़ विकसित हुई है। स्पीशीज़ के विषय में आपको एक संकल्पना अवश्य याद रखनी चाहिए कि बहुत संख्या में अनेकों स्पीशीज़ लैंगिक हैं और कुछ अलैंगिक हैं। कुछ की उत्पत्ति पॉलीपलाइडी, क्रोमोसोम संख्या में परिवर्तन तथा अन्य क्रियाविधियों द्वारा हुई है जिनका इस स्तर पर विशेष वर्णन करना आवश्यक नहीं है।

4.6 सारांश

हमने इस इकाई में जो कुछ सीखा है उसका सारांश हम इस प्रकार दे सकते हैं :–

- द्विपद नामकरण, व्यष्टिगत सत्ताओं को जो जीवित, जननशील, आदि हो, नाम देने की प्रक्रिया है।
- स्पीशीज़ के नाम द्विपदी संयोजन होते हैं जिनमें एक नाम जीनस का होता है जिसके उपरांत केवल एक विशिष्टक गुणसूचक होता है।
- फेमिली ऐसे जीवों का समूह होती है जो आपसी संबंधों एवं उनके बीच के साहचर्यों के आधार पर एक साथ समूहित किए जाते हैं।
- वैज्ञानिक नामें की संकल्पना का विकास उन कमियों तथा अनिश्चितताओं को दूर करने के लिए किया गया जो अन्यथा स्थानीय अभिव्यक्तियों का प्रयोग करने से पैदा होती है।
- स्पीशीज़ नाम के द्विपदीय प्रयोग का प्रथम संदर्भ केस्पर बौहिन के प्रकाशन में मिलता है।
- लिनियस को वर्गीकीय वनस्पतिकी एवं प्राणिविज्ञान-वर्गिकी का जन्मदाता माना जाता है।

4.7 अंत में कुछ प्रश्न

1) विज्ञान की अन्य शाखाओं से भिन्न, जीवविज्ञान का क्षेत्र सतत परिवर्तनशील रहा है, ऐसा क्यों? स्पष्ट कीजिए।
2) नाम देने (नामकरण) की संकल्पना के विकास पर एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
3) द्विपदनामों के कुछ उदाहरण दीजिए।
4) टेक्सॉन की परिभाषा लिखिए।
5) निम्न संक्षिप्तियों को पूरा करके लिखिए:

   आई यु बी एस (IUBS), आई सी बी एन (ICBN), आई ए पी टी (IAPT), आई सी एन बी (ICNB), आई सी बी एन (ICVN), आई सी एन सी ओ (ICNCO)

4.8 उत्तर

बोध प्रश्न

1) क) द्विपदनाम नामकरण किसी व्यष्टिगत अस्तित्व को नाम देना है, और इस प्रकार वर्गीकरण के द्वारा बनने वाला समूह अंतर्राष्ट्रीय नियमों की परम्पराओं के अनुरूप होता है।

ख) द्विपदनाम नामकरण के महत्वपूर्ण पहलू है—इसकी संकल्पनाएं एवं सिद्धांत, द्विपदनाम प्रणालियां, वर्गीकरण की इकाईयां तथा अंतर्राष्ट्रीय कोड।

ग) द्विपदनाम नामकरण को मानक बनाने की दिशा में पहला कदम वैज्ञानिक नाम की संकल्पना है। इनका उपयोग सार्वभौमिक है, जैसे कि मनुष्य का वैज्ञानिक नाम *होमो सेपिएन्स (Homo sapiens)* है और इसका प्रयोग हर जगह होता है। सामान्य नाम आम बातचीत के लिए सुविधाजनक है लेकिन ये एक से अधिक भाषाओं में कदाचित ही इस्तेमाल किए जाते हैं, तथा ये एक स्थान से दूसरे स्थान, एक राज्य से दूसरे राज्य तथा एक देश से दूसरे देश में भिन्न होते हैं, उदाहरण के लिए धान को बिहार, उत्तरप्रदेश तथा मध्य प्रदेश में चावल, उड़ीसा में "धान" मैसूर में "भात" कहते हैं।

2) क) i) लेटिन
ii) स्पीशीज़
iii) जीनसें
iv) एकलप्ररूपी
v) समान पूर्वजी

ख) बहुपद नाम कई क्रमवत शब्दों का बना होता है जैसे *प्रुनेला मेगना फ्लोरे एलबो* अर्थात बड़े सफेद फूलवाला प्रुनेला। ऐसे नाम असुविधाजनक होते हैं तथा प्रायः इन्हें समझने में भी कठिनाइ होती है। द्विपदनाम एक लैटिन नाम होता है जिसके द्वारा दो नामों का संयोजन व्यक्त किया जाता है, उदाहरणतः गौरय्या का वैज्ञानिक नाम *पैसर डोमेस्टिकस* लिन है। *पैसर* वह जीनस है जिसमें यह पक्षी आता है और *डोमेस्टिकस* इस जीनस की एक विशिष्ट स्पीशीज़ है और लिन लेखक का नाम है।

3) क) 17 वीं शताब्दी से पूर्व जीवविज्ञानी वर्णन लिखकर स्पीशीज़ को व्यक्त करते थे, जैसे उस समय मॉकिंग पक्षी को एक लैटिन वाक्यांश में व्यक्त किया जाता था जो इस प्रकार था "थूरड़स *माईनर* सिनेरो एलबस नोन मेकूलेटस जिसका अर्थ है कस्तूरिका छोटा धूसर-सफेद बिना चित्री! तथा पुदीने की एक स्पीशीज़ जिसका लैटिन वाक्यांश है।" *प्रुनेला मेगना* फ्लोरे एलबो अर्थात् बड़े सफेद फूलों वाला प्रुनेला।

ख) स्पीशीज़ :—व्यष्टिगत पौधों तथा प्राणियों के एक ऐसे समूह को जिनमें आधारभूत रूप में समानता हो स्पीशीज़ के रूप में माना जाता है। स्पीशीज़ एक संकल्पना है।
जीनस : स्पीशीज़ की तरह जीनस भी एक संकल्पना है। जीनसें निकटतम संबंधित स्पीशीज़ के समुच्चयों को कहते हैं तथा जीनस शब्द एकवचन में एक संज्ञा होती है।
फेमिली :—ऐसे जीवधारियों (पौधों अथवा प्राणियों) के समूह जिनमें आपस में कुछ संबंध एवं साहचर्य पाए जाते हैं, को फेमिली कहते हैं। फेमिली नाम बहुवचन विशेषण होता है जिसे जीनस नामों के साथ जोड़कर संज्ञा रूप में इस्तेमाल किया जाता है और पादप फेमिलियों में इस नाम के अंत में—ऐसी तथा प्राणियों की फेमिलियों में—इड़ी लगाकर लिखा जाता है।

क) i) कैस्पर बौहिन
ii) गठन एवं आकृति
iii) *स्पीशीज़ प्लान्टेरम*
iv) लिनियस
v) लैटिन

अंत में कुछ प्रश्न

I) जीवविज्ञान का क्षेत्र सदैव अपनी अंतर्वस्तु में बदलता रहा है—जैसे लक्षणों में, परिसीमन वर्णनों में, जानकारी आदि में। ऐसा इसलिए है क्योंकि जीवविज्ञान अन्य संबंधित विज्ञानों जैसे आकारिकी, शरीर, भ्रूण विज्ञान तथा कोशिका विज्ञान आदि में

हुई खोजों पर निर्भर है। आधुनिक वर्गिकीय अनुसंधान का निष्कर्ष व्यष्टिगत होने की अपेक्षा एक समग्र संश्लेषण का रूप ले रहा है।

2) नाम देने की संकल्पना अपने महत्व के कारण ही उपजी है। स्थानीय अभिव्यक्तियों के प्रयोग से सामने आने वाली कमियों तथा अनिश्चितताओं को दूर करने के ही उद्देश्य से तकनीकी अथवा वैज्ञानिक नाम देने की संकल्पना विकसित हुई है। जैसे-जैसे संसार के जीवविज्ञानियों के बीच संचार-सम्पर्क बढ़ा वैसे-वैसे नामकरण की नियमावली की अवधारणा भी विकसित हुई। यह नियमावली (कोड) सार्वत्रिक नियमों पर आधारित है। ताकि जीवों के नामों के अनुप्रयोग को उनके ही आधीन रखा जाता है।

3) चीड (*पाईनस निगरा* वैराइटी कैरेमोनिका)
गौरय्या (*पैसर डोमसटिकस* लिन.)
डैकस (*डैकस ऐक्वीरेनस* हारड़ी)
टीनिया (*टीनिया सोलियम* लिन.)
मानव (*होमो सेपिएन्स* लिन.)
गुलाब (*रोजा इन्डिका* लिन.)
धान (*ओराइजा सैटाइवा* लिन.)

4) टेक्सॉन को अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर इस प्रकार परिभाषित किया जाता है कि यह किसी भी पदस्तर की वर्गिकीय श्रेणी अथवा समूह होता है तथा पदानुक्रम-श्रेणियों के किसी भी पद को जो नाम दिया जाता है, वह नामकरण कहलाता है।

5) IUBS इंटरनेशनल यूनियन ऑफ बायोलाजिकल साइन्सेज
ICBN इंटरनेशनल कोड ऑफ बोटेनिकल नोमनक्लेचर
IAPT इंटरनेशनल एसोसियेशन ऑफ प्लांट टेकसौनोमी
ICNB इंटरनेशनल कोड ऑफ नोमनकलेचर ऑफ बेक्टीरियोलोजी
ICVN इंटरनेशनल कोड ऑफ वाइरल नोमनकलेचर
ICNCP इंटरनेशनल कोड ऑफ नोमनकलेचर फार कल्टीवेटेड प्लांटस

6) नामकरण के कुछ महत्वपूर्ण नियम इस प्रकार है :

i) सामान्य नामों के स्थान पर वैज्ञानिक नामों का प्रयोग करना चाहिए।

ii) किन्हीं भी दो जीनसों का एक ही जीनस नाम नहीं होना चाहिए।

iii) प्राणिविज्ञान का नामकरण वनस्पतिकी नामकरण से अलग है।

iv) जो जीनस नाम वनस्पतिकी में पहले से ही इस्तेमाल हो रहे हों उन्हें प्राणिविज्ञान में जीनस नाम नहीं बनाना चाहिए।

v) स्पीशीज़ के नाम द्विपदनाम तथा उपस्पीशीज़ के नाम त्रिपदनाम होते हैं।

vi) अंग्रेजी भाषा में जीनस नाम के पहले अक्षर को सदैव बड़ा लिखना चाहिए तथा स्पीशीज़ के नाम को छोटे अक्षर से और फिर बाद में मूल लेखक का नाम आना चाहिए।

vii) इन शब्दों को मुद्रण में तिरछे अक्षरों में छापना चाहिए तथा हाथ से लिखने पर उनके नीचे लाइन लगानी चाहिए।

शब्दावली (Glossary)

अदलधर (Apetaliferous) : दलधर (petaliferous) फूल जिसमें पंखुड़ियां बनी होती है, के विपरीत पंखुड़ीविहीन फूल होते हैं।

वियुक्ताण्डयी (Apocarpus) : जब अण्डप पृथक होते हैं यानी जुड़े नहीं होते, यह व्यवस्था संयुक्ताण्डपी (syncarpus) के विपरीत है जिसमें अण्डप जुड़े होते हैं।

बेरी (Berry) : गूदेदार एण्डोकार्प से युक्त मांसल फल, जेसे अंगूर।

केपिटुलम (Capitulum) : प्रायः अवृत फूलों के समुच्चय से बने एक घना पुष्पक्रम को कहते हैं।

केप्सूल (Capsule) : संयुक्त अण्डाशय (एक से अधिक अण्डपों वाले) के परिपक्वन से बनने वाला फल, परिपक्व होने पर एक या अधिक रेखाओं पर स्फुटित होता है।

केटकिन (Catkin) : एकशल्कीय ब्रैक्ट वाला, प्रायः लचीला स्पाईक अथवा साइम्यूलों का स्पाइक सदृश पुष्पक्रम, यह "विलो", "बर्च" तथा बलूत आदि में सुस्पष्ट होता है।

एकलिंगाश्रयी (Dioecious) : द्विलिगाश्रयी (monocious) जिसमें स्त्रीकेसरी फूल तथा पुंकेसरी फूल एक ही पौधे पर लगते हैं, से भिन्न ऐसे पौधे जिनमें स्त्रीकेसरी फूल तथा पुंकेसरी फूल अलग-अलग पौधों पर लगते हैं।

ड्रूप (Drupe) : एक मांसल फल जिसमें पथरीला-सा एंडोकार्प होती है जैस प्रूनस में।

इलेक्ट्रोफोरेसिस (Electrophoresis) : आण्विक अस्तित्वों का विद्युत धारा के द्वारा पृथक करना।

जायॉगोपरिता (Epigyny) : वह दशा जिसमें बाहयदल, पंखुड़ियां तथा पुंकेसर पुष्पी नलिका से, अण्डाशय के ऊपर की ओर जुड़े होते हैं, तथा अण्डाशय नलिका अथवा हाइपैंथेडियम के संलग्न होता है। एक अन्य दशा अधोजायंगिता (Hypogyny) है जिसमें बाहयदल, पंखुड़िया तथा पुंकेसर अण्डाशय के नीचे जुड़े होते हैं। एक और भी दशा है जिसे परिजायांगता (Perigyny) कहते हैं जिसमें बाहयदल, पंखुड़ियां और पुंकेसर पुष्प नलिका से जुड़े होते हैं अथवा हाइपैंथियम से जो अण्डाशय को घेरे रहता है और जिसमें नलिका अथवा हाइपैंथियम अण्डाशय से मुक्त होता है।

अधर अण्डाशय (Inferior ovary) : ऐसा अण्डाशय जो प्रकततः बाहयदल, पंखुड़ियों तथा अन्य पुष्पी अंगों से नीचे बना होता है, ये भाग अण्डाशय के ऊपर लगे होते हैं। इससे विपरीत दशा ऊर्ध्व अण्डाशय है जिसमें पुष्पी भाग अण्डाशय के नीचे जुड़े होते हैं।

एकमूलाद्भवी (Monophyletic) : एक एकल पूर्वज रेखा से व्युत्पन्न; इसके विपरीत की स्थिति बहुमूलोद्भवी (polyphyletic) होती है अर्थात विभिन्न उद्भवों वाली दो या अधिक रेखाओं में विकसित हाने का परिणाम।

परिपुष्प (Perianth) : बाहयदलों तथा संयुक्त बाहयदलपुत एवं दलपुंज का समुच्चय को कहते हैं।

सिनैंड्रियम (Synandrium) : परागकोशों द्वारा संसक्त पुमंग जैसे कि कुछ एरॉइडों में होता है, इसकी विपरीत दशा "सिबेजेनेसियस" होती है जिसमें परागकोश सहजात होते हैं।

अम्बेल (Umbel) : एक अनिश्चित संख्या में फूलों वाला प्रायः चपटा पुष्पक्रम जिसमें पुष्पवृंत तथा वृंत (किरणों) एक समान बिंदु से निकलते हैं, मानो किसी छतीर की कॉपें हों। आमबेल प्रकार का पुष्पक्रम फेमिली अम्बेलीफेरी (Umbelliferee) की विशेषता है।

कुछ उपयोगी पुस्तकें

हिंदी माध्यम में

1) पादप वर्गिकी लरान्स उत्तर प्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी
2) प्राणिलोक वर्ग 1, अंक 1 हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय
3) प्राणिलोक वर्ग 1, अंक 2
4) प्राणिलोक वर्ग 2, अंक 1

अंग्रेजी माध्यम की कुछ उपयोगी पुस्तकें में

1) *An Introduction to Plant taxonomy*—C. Jeffrey, J and A Churchill Ltd., London.

2) *Principles of angiosperm taxonomy*—V.H. Heywood. Academic Press, London, New York.

3) *Taxonomy of Vascular Plants*—George H.M. Lawrence, Mac Millan, New York.

4) *An Introduction to taxonomy of Angiosperm*—Priti Shukla, Shital P. Misra, Vani Educational Books. A division of Vikas Publishing House Pvt. Ltd.

5) *Fundamentals of Plant Systematics*—Albert F. Radjord, Harper and Row, Publishers, Inc.

6) *Plant Taxonomy*—Dr. Ravindra Nath, Metropolitan New Delhi.

7) *Principles of Animal Taxonomy*—George Gaylord Simpson Oxford & IBH Publishing Co., Calcutta, New Delhi, Bombay.

NOTES

NOTES

खंड

2

वर्गिकी में साधन और उपनतियां

इकाई 5

वर्गिकीविद् के कार्यसाधन I 5

इकाई 6

वर्गिकीविद के कार्यसाधन-II 22

इकाई 7

पादप वर्गिकी में आधुनिक प्रवृत्तियां 48

इकाई 8

प्राणि वर्गिकी में आधुनिक प्रवृत्तियां 73

खंड 2 वर्गिकी में साधन और उपनतियां

वर्गिकी व्यापक क्षेत्र है जो पादपों की विविधता, उनकी पहचान, नामकरण, वर्गीकरण और विकास से संबंधित है। यद्यपि पृथ्वी के पेड़-पौधों की तालिका उत्तरी शीतोष्ण कटिबंध क्षेत्र में पूरी है, फिर भी उष्णकटिबंध क्षेत्रों में बहुत कुछ कार्य किया जाना शेष है। सभी प्रकार के जीवों की अनुमानित 1,50,000 प्रजातियों में से लगभग 10 लाख प्रजातियों का वर्णन किया जा चुका है। ये प्रजातियाँ शीतोष्ण कटिबंध क्षेत्रों में हैं परंतु उष्णकटिबंध क्षेत्रों में अनुमानित 30 लाख प्रजातियों में से केवल लगभग 50,000 का अब तक वर्णन किया जा चुका है। वर्गिकी का अध्ययन सभी अन्य जैव विज्ञानों के लिए आधार है, परंतु यह सूचनाओं और आंकड़ों के लिए दूसरी विधाओं पर निर्भर है जो वर्गीकरण को तैयार करने में बहुत उपयोगी हैं। पिछले खंड में आपने वर्गिकी के इतिहास और संकल्पना, उसके उद्देश्यों और प्रकार्यों, वर्गीकरण पद्धतियों और जैव-नाम पद्धतियों का अध्ययन किया है। इस खंड में आप वर्गिकी के साधनों और उपनतियों का जैव विज्ञान की अन्य विधाओं द्वारा अध्ययन करेंगे। हम वर्गिकी की आधुनिक उपनतियों के बारे में भी अध्ययन करेंगे।

इस खंड में 5, 6, 7 और 8 चार इकाइयां हैं। इकाई 5 में हम क्षेत्र में प्रेक्षणों (field observations) के साथ-साथ वर्गिकी के पारिस्थितिक और पादपसमाज-विज्ञानी (phytosociological) पक्ष पर चर्चा करेंगे। हम सिवपुर वनस्पति उद्यान विस्तृत अध्ययन करेंगे और भारत के एक अधिकतम जीव जंतु विविधता वाले वन्य प्राणी उद्यान का भी अध्ययन करेंगे। हम वनस्पति संग्रहालय की क्रिया पद्धति (methodology) के बारे में भी जानकारी प्राप्त करेंगे। इकाई 6 में हम प्रयोगशाला प्रेक्षणों, पुस्तकालय प्रलेखन, पादपों और जीव जंतुओं की पहचान करने की कुंजियों और वनस्पति संग्रहालय विज्ञान की नीतियों द्वारा प्राप्त जानकारी पर बल देते हुए वर्गिकी का अध्ययन करेंगे।

इकाई 7 और 8 में हमने आकारिकी के साथ-साथ अनेक आधुनिक विधियों का जीवों के वर्गीकरण में उपयोग का वर्णन किया है। ये विधियां विशेषत: निकटतम संबंधित तथा समाभासी जातियों को पहचानने में उपयोगी होते हैं।

इकाई 7 और 8 में वर्गिकीविदों द्वारा इलेक्ट्रॉन मार्कोस्कोप द्वारा अध्ययन, शरीर, भ्रूण विज्ञान, कोशिका विज्ञान, प्रजनन आचरण, रसायन वर्गिकी और संख्यात्मक वर्गिकी एवं आकारीकी द्वारा अतिरिक्त आंकड़ों का अध्ययन करके पौधों एवं जन्तुओं की पहचान ज्यादा विश्वसनीयता से कैसे कर सकते हैं, इसका वर्णन किया गया है। इसके अतिरिक्त इन सूचनाओं से वर्गिकीविदों को कुंजियां तैयार करने एवं पौधों एवं जन्तुओं को पहचानने में मदद मिलती है। इस प्रकार पौधों एवं जन्तुओं के परस्पर संबंध और इनका विकासीय इतिहास ज्यादा वैज्ञानिक तरीके से बता सकते हैं।

उद्देश्य

इस खंड का अध्ययन करने से आप:

- वनस्पति उद्यानों और वन्य प्राणि उद्यानों में विविध जैव रूपों की पहचान कर सकेंगे,
- संग्रहालयों और वनस्पति संग्रहालयों के नमूने (specimen) परिरक्षित रख सकेंगे,
- जीव विज्ञान की विविध विधाओं से एकत्र की गई प्रयोगशालामूलक जानकारी के आधार पर जीवों का वर्गीकरण कर सकेंगे,
- पादपों और जीव जन्तुओं की पहचान करने के लिए विभिन्न प्रकार की कुंजियां तैयार कर सकेंगे,
- वनस्पति संग्रहालय की नीतियों का अनुकरण कर सकेंगे, और
- पादपों और जीव जन्तुओं के वर्गीकरण में वर्गिकी की नवीन विधियों का प्रयोग कर सकेंगे।
- पादपवर्गिकी एवं जन्तुवर्गिकी में नवीन विधियां जैसे कि इलेक्ट्रान माइक्रोस्कोप अध्ययन, शारीर, भ्रूण विज्ञान, कोशिका विज्ञान, आचरण प्रतिरूप, रसायनवर्गिकी और संख्यात्मक वर्गिकी का किस प्रकार प्रयोग कर, वर्गीकरण कैसे सुधारा जा सकता है, का वर्णन कर सकेंगे।

इकाई 5 वर्गिकीविद् के कार्यसाधन - I

इकाई की रूपरेखा

5.1 प्रस्तावना
उद्देश्य

5.2 क्षेत्र प्रेक्षण : पारिस्थितिक-पादपसमाजिकीय

5.3 हर्बेरियम तथा संग्रहालय
क्षेत्र कार्यविधि
राष्ट्रीय वनस्पतिकीय अनुसंधान संस्थान, लखनऊ

5.4 उद्यान तथा ग्रीन हाऊस
वनस्पतिक उद्यान, कियू (लंदन)
वनस्पतिक उद्यान, सिबपुर (भारत)
वनस्पतिक उद्यान की भूमिका

5.5 प्राणि उद्यान (चिड़ियाघर)
वन्य जीवन अभ्यारण्य
राष्ट्रीय उपवन
वर्गिकीय संग्रहों का संग्रहण, नामांकन, माऊंटिंग, अभिनिर्धारण तथा देखभाल

5.6 प्ररूप नमूने

5.7 सारांश

5.8 अंत में कुछ प्रश्न

5.9 उत्तर

5.1 प्रस्तावना

वर्गिकी अन्य कई विज्ञानों पर निर्भर है और इसी प्रकार उलटे वे सब भी इस पर उतने ही निर्भर हैं। वर्गिकीविद् का क्रियाकलाप अन्य सभी जैविकीय विज्ञानों के लिए आधारभूत है। ऐसा इसलिए कि वर्गिकी के ही द्वारा तमाम वनस्पतिजात एवं प्राणिजात की भंडारसूची, अभिनिर्धारण की योजनाएं तथा पौधों एवं प्राणियों के नाम एवं उनकी वर्गीकरण प्रणालियां उपलब्ध होती हैं। वर्गिकी अन्य विज्ञान क्षेत्रों के लिए तो आधारभूत है ही साथ ही यह स्वयं भी अन्य अध्ययन शाखाओं पर निर्भर है जैसे कि पारिस्थितिकि, पादप प्रजनन, पादप समाजिकीय औषधविज्ञान तथा जैवरसायन, आदि पर। वर्गिकी-समस्याओं पर अध्ययन करते समय हमें पौधों तथा प्राणियों के वितरण को भी समझना होता है। आज जिन हजारों-हजारों पौधों को हम स्पीशीज के रूप में जानते हैं वे आज के वर्तमान एवं स्थापित हो चुके वर्गिकी-सिद्धांतों के अनुप्रयोग द्वारा स्थापित हुए हैं। आपको जान लेना चाहिए कि पृथ्वी के वनस्पतिजात की संचित जानकारी अभी असंपूर्ण है और जब इसके क्षेत्रों की खोज, इसके घटकों का संग्रह, उनका अध्ययन तथा वर्गीकरण होगा तभी कहीं जाकर यह अधिक संपूर्ण हो सकेगी। एक बार नाम तथा वर्गीकरण प्रणालियां उपलब्ध कर देने के बाद हमें ऐसी विधियां उपलब्ध हो जानी चाहिए जिनके द्वारा किसी टेक्सॉन को एक अन्य ज्ञात अस्तित्व के साथ समान अभिनिर्धारित किया जा सके। हम पौधों तथा प्राणियों के अभिनिर्धारण के वास्ते कुंजियों का विवेचन इकाई 6 में करेंगे। इस इकाई में आप वर्गिकी के पारिस्थितिकीय एवं पादपसमाजिकीय पहलुओं, हर्बेरियमों, वनस्पतिक उद्यानों तथा ग्रीन हाउस के बारे में पढ़ेंगे। आपको कियू (लंदन) स्थित रायल बोटेनिक गार्डन के तथा सिबपुर हावड़ा (भारत) स्थित वनस्पति उद्यान के विषय में संक्षिप्त जानकारी दी जाएगी। साथ ही हम जैविकीय संसाधनों के संरक्षण का भी विवेचन करेंगे जिसमें वन्य जीवन अभ्यारण्यों तथा राष्ट्रीय उपवनों की विशेष चर्चा की जाएगी।

उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप:

- वर्गीकरण विवेचन में पारिस्थितिकी के योगदानों की सूची बना सकेंगे,

- हर्बेरियमों तथा संग्रहालयों के लिए नमूनों का परिरक्षण कर सकेंगे,
- वनस्पतिक उद्यानों की भूमिका समझ सकेंगे,
- वनस्पतिक उद्यानों तथा प्राणि-उद्यानों (चिड़ियाघरों) में विविध पौधों तथा प्राणियों को पहचान सकेंगे।

5.2 क्षेत्र प्रेक्षण : पारिस्थितिकीय —पादपसमाजिकीय

पौधों के किसी भी वर्ग के संबंधों को समझ सकने के वास्ते क्षेत्र अध्ययनों का किया जाना वांछनीय है। यदि क्षेत्र में पौधों का अध्ययन करना संभव नहीं है तो इन्हें एक या अधिक परीक्षण उद्यानों में उगाना चाहिए। इस काम के लिए बीजों तथा पौधों को स्थानीय स्रोतों से प्राप्त किया जा सकता है। क्षेत्र में पारिस्थितिकीय अध्ययन करते समय फूल लगने तथा फल लगने के मौसमों को नोट कीजिए तथा सभी परिवर्धन अवस्थाओं की सामग्री एकत्रित कीजिए। संग्रहणों के पाए जाने के ठीक-ठीक स्थानों, आवास के प्रकारों तथा पृथक् विशिष्टताओं को नोट कीजिए। उन सब लक्षणों का विस्तृत अध्ययन कीजिए जो सूखे नमूनों में प्राय: नहीं बचे रहते जैसे कि पत्तियों तथा पुष्प भागों के रंग, गंध लेटेक्स का होना या न होना, दलपुंज का किसलय-विन्यास (वर्नेशन) दलपुंज का रंग तथा स्फुटन से पहले एवं स्फुटन के बाद का परागकोश का रंग। साथ ही कुछ भागों की श्यानता (गाढ़ापन) भी नोट कीजिए विशेषत: मकरंदधारी अंगों की। परागण-साधन को देखने की कोशिश कीजिए तथा परागण का समय नोट कीजिए। पत्तियों एवं परिपुष्प के गठन का बहुत महत्व है और इसी प्रकार ताजा-ताजा परिपक्व हुए फूलों के रंग का भी। याद रखिए कि जड़ों के लक्षणों द्वारा भी यदाकदा बहुत महत्वपूर्ण सूचना मिलती है, इसलिए इन्हें भी नजरअंदाज नहीं करना चाहिए। पादप समाजिकीय अध्ययन करते समय, एक ही समष्टि के भीतर तथा अन्यान्य समष्टियों के बीच पाए जाने वाले प्राकृतिक विभिन्नताओं को निर्धारित कीजिए। एक ही समान क्षेत्र के भीतर विभिन्न कालोनियों से प्राप्त किए गए नमूनों का अलग-अलग संग्रहण संख्या दीजिए। यदि सामग्री बहुतायत से उगी हो तो उसके चार या पांच डुप्लीकेट सेट बनाइए और अध्ययन पूरा हो जाने के बाद उसे खास-खास हर्बेरियमों में बांट सकते हैं। आप हर्बेरियमों के विषय में और अधिक जानकारी अगले भाग में प्राप्त कर सकेंगे।

सामूहिक संग्रह से आपको संबंधों को अधिक सही-सही निर्धारित करने में सहायता मिलेगी कि कोई एक अंतर किसी एक कालोनी से अथवा आवासों या भूक्षेत्रों से संबंधित है या उसी तक सीमित है। इस सूचना से आप निर्धारित कर सकेंगे कि कोई एक समष्टि किस बात का प्रतिदर्श करती है—एक उपस्पीशीज़ का प्रतिदर्श या किसी पमेद या स्वरूप का। उन अंशों को इकट्ठा कीजिए जो अपने लक्षणों में महत्वपूर्ण है तथा यादृच्छिक (रैंडम) नमूने भी एकत्रित कीजिए। समष्टि से ठीक-ठीक छांट कर करीब 50 नमूने लीजिए, यह अध्ययन सामग्री तो होगी ही साथ में स्थायी हर्बेरियम रिकार्ड भी होगा जिसमें विभिन्नता की बारंबारता, विभिन्नता का असातत्य और विभिन्न चरों (वेरिएबल्स) के बीच सहसंबंध का संकलन भी होगा।

बोध प्रश्न 1

क) पारिस्थितिकीय तथा पादपसमाजिकीय लक्षणों के बीच संक्षेप में विभेद कीजिए।

.....

.....

ख) नमूनों का सामूहिक संग्रह क्यों अनिवार्य है? दो पंक्तियों में उत्तर लिखिए।

.....

.....

5.3 हर्बेरियम तथा संग्रहालय

परिभाषा के रूप में हर्बेरियम प्रेस किए हुए सूखे पौधों का एक संग्रह होता है जो किसी वैध वर्गीकरण प्रणाली के अनुसार व्यवस्थित किया गया होता है तथा किसी भी संदर्भ के वास्ते उपलब्ध रहता है। पादप स्पीशीज़ से संबंधित सभी अनुसंधान तथा शैक्षिक संस्थानों में स्थानीय क्षेत्रों से एकत्रित किए गए नमूनों का तथा एक या अधिक महाद्वीपों के पादपजात को दर्शाने वाले धीरे-धीरे एकत्रित हुए लाखों नमूनों का अपना ही एक संग्र

होता है। हर्बेरियमों का प्रारंभ सोलहवीं शताब्दी में इटली में हुआ था जहां सूखे पौधों को कागजों पर सिल कर संग्रह बनाया जाता था। लिनियस ने कागज की एक शीट पर नमूनों का माऊंट करने तथा चट्टों के रूप में उन्हें भंडारित करने की आधुनिक प्रणाली चलायी थी। हर्बेरियम पादप नमूनों का स्थायी खजाना होते हैं और पौधों तथा वनस्पति के विषय में वे सूचना स्रोत होते हैं (चित्र 5.1)।

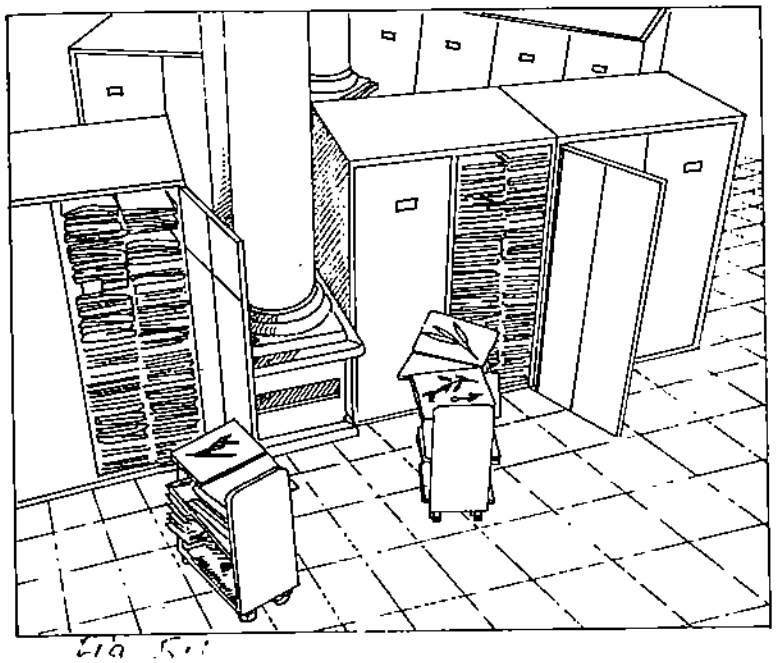

चित्र 5.1 : हर्बेरियम, उपयोग किए जाते हुए।

अगले उपभाग में हम उस विधि का विवेचन करेंगे जो पादप एवं प्राणी नमूनों को एकत्रित करने के लिए क्षेत्र भ्रमण पर निकलने के समय आपको अपनानी चाहिए। साथ ही आपको राष्ट्रीय वनस्पतिक अनुसंधान, लखनऊ (भारत) के विषय में कुछ जानकारी देंगे।

5.3.1 क्षेत्र कार्यविधि

क्षेत्र भ्रमण पर योजना बनाने से पूर्व आवश्यक यंत्रों एवं उपकरणों का निर्णय कर लीजिए। पादप संग्रह के वास्ते कुछ साज सामान होना आवश्यक है। जड़ों तथा कंदों को खोदने के वास्ते एक गैंती चाहिए। एक तेज चाकू चाहिए जिससे टहनियों को तथा अन्य पादप भागों को काटा जा सके। एक प्रूनिंग शीयर्स (छंटनी कैंची) चाहिए जिससे काष्ठीय तथा कड़े भागों को काटा जा सके। फूलों को खोलने तथा उनके भीतर पुंकेसरों तथा स्त्रीकेसरों का अध्ययन करने के वास्ते एक चिमटी चाहिए। एक चपटा सा बैग (वेस्कुलम) चाहिए जिसमें अध्ययन एवं प्रेस किए जाने वाले एकत्रित पौधों को रखा जा सके (चित्र 5.2)। एक पादप प्रेस चाहिए जिसके साथ ब्लॉटिंग पेपर अथवा अखबारी कागज हो जिनके भीतर इकट्ठा किए गए नमूनों को दबाया एवं रखा जा सके। साथ ही आपको एक फील्ड बुक ले जानी चाहिए ताकि एकत्रित किए गए नमूने की तफ्सीलों को उसमें नोट कर सके (चित्र 5.3)। काफी सारी पोलीथीन थैलियां भी चाहिएं ताकि ताज़ा पादप नमूनों को उनमें रखा जा सके। पौधों को इन थैलियों में रखने के बाद थैलियों का मुंह कसकर बंद कर देना चाहिए जिससे पौधे मुर्झा न जाएं। तालाबों और झीलों में जलीय पौधों को इकट्ठा करने के वास्ते एक लंबी रस्सी ले जाइए तथा शंकुओं, फलों एवं कवकों के नमूनों को इकट्ठा करने के वास्ते शीशियां ले जाइए। वन में जाने के वास्ते संबद्ध अधिकारियों से आवश्यक अनुमति ले लीजिए। वन गाइड अथवा अन्य अधिकारी की सहायता मांग लीजिए। अपने कैम्प में सभी आवश्यक कागजात की प्रतिलिपि भी रखिए। अपने ठहरने, भोजन-वस्त्र आदि की समुचित व्यवस्था कर लीजिए तथा फील्ड-जूते पहनिए।

पौधों के संग्रहण का सर्वोत्तम समय फ़रवरी से सितम्बर तक का होता है। आपको मालूम होना चाहिए कि हमारी मातृभूमि वनस्पतिजात एवं प्राणिजात से बहुत सम्पन्न है। पौधों को ढूंढने के लिए चट्टानों की दरारें, रेत के टीलों, दलदली क्षेत्रों, पर्वतों, चूनामय क्षेत्रों तथा मृत एवं गिरे हुए पेड़ों के तने तक को देखिए। पौधे की प्रकृति, अन्य पौधों के साथ उसका संबंध तथा उसके अध:स्तर भी ध्यान से देखिए। समूची तथा संपूर्ण सामग्री इकट्ठा कीजिए जिसमें फूल और फल भी लगे हों। औषध महत्व के पौधों को इकट्ठा करते समय उनकी जड़ों, प्ररोह, बीज तथा ऐसे पादप भागों को, जिनका औषध महत्व है काफी मात्रा में इकट्ठा कीजिए। बाद में आप इनके बीजों को अपने उद्यान में उगा कर नए पौधे बना सकते हैं जिनसे आपका संग्रह और ज्यादा बढ़ जाएगा। यदि पौधे का साइज़ आपके माऊंटिंग बोर्ड अथवा हर्बेरियम शीट से ज्यादा बड़ा हो तो पौधे को 'N' अथवा 'U' की आकृति में झुका कर मोड़ दें मगर ध्यान रखें कि स्तंभ को न तोड़ा

जाए। एक महीन जाल को धीरे-धीरे पानी में खींचते हुए पादप प्लवक (phytoplankton) इकट्ठा कर लीजिए (जाल 180 खाने/इकाई का होना चाहिए)। जाल के सिरे पर लगे छोटे कीप-पात्र में जीव इकट्ठे हो जाते हैं। अब इस पकड़ी गई सामग्री को एक घोल में परिरक्षित कर लीजिए, यह घोल आयोडीन (0.5 g), पोटेशियम आयोडाइड (0.1 g), ग्लेशियल एसिटिक एसिड़ (4.0 ml), फ़ार्मेलिन (24.0 ml) तथा जल (400 ml) से बनाया गया होता है। समुद्री खरपतवार को पौलीथीन की थैलियों में इकट्ठा करके उन्हें ठीक से संख्या देकर 2.5% फार्मेलीन ऐल्कोहल में परिरसित कर लीजिए। कवक नमूनों को पूर-पूरा ताज़ा और स्वस्थ रूप में उस अध:स्तर अथवा परपोषी के साथ इकट्ठा कीजिए, जिन पर वे उग रहे हों। लाइकेनों को इकट्ठा करते समय उस पौधे का नाम नोट कर लीजिए जिस पर वे उग रहे हों। लिवरवर्टों को सुखा कर रखिए तथा केक्टसों तथा अन्य सकुलेंटों को द्रव परिरक्षकों में रखिए। यदि आपको छोटे गूदेदार फल मिलें तो उनमें सुई से कई जगह सूराख करके उन्हें गरम जल में तब तक डुबोए रखें जब तक कि उनका तमाम रस बाहर नहीं निकल जाता। फिर इन नमूनों को प्रेस कर लें। जलीय पौधों को गीले अखबार में लपेट लें और उन्हें तब तक बैग में रखे जब तक कि उन्हें प्रेस न किया जाए। साथ ही आर्थिक महत्व के आपको समुद्री तथा अलवणजलीय दोनों प्रकार के कुछ शैवाल भी मिलेंगे और साथ ही कुछ डायटम भी मिलेंगे। इन्हें आप एक पिचकारी (पिपेट) से इकट्ठा कीजिए, इस पिचकारी में एक कांच की नली होती है जिसके एक सिरे पर एक बड़ा सा चूषण बल्ब बना होता है नीले हरे शैवाल को कागज़ पर सुखाइए, काए की विभिन्न स्पीशीज को अखबार के कागज पर फैलाइए और फिर उन्हें हर्बेरियम शीट पर लगा दीजिए। 50% ऐल्कोहल तथा 5% फार्मेलिन का एक परिरक्षण द्रव बनाइए तथा नमूनों को इस द्रव में रखिए।

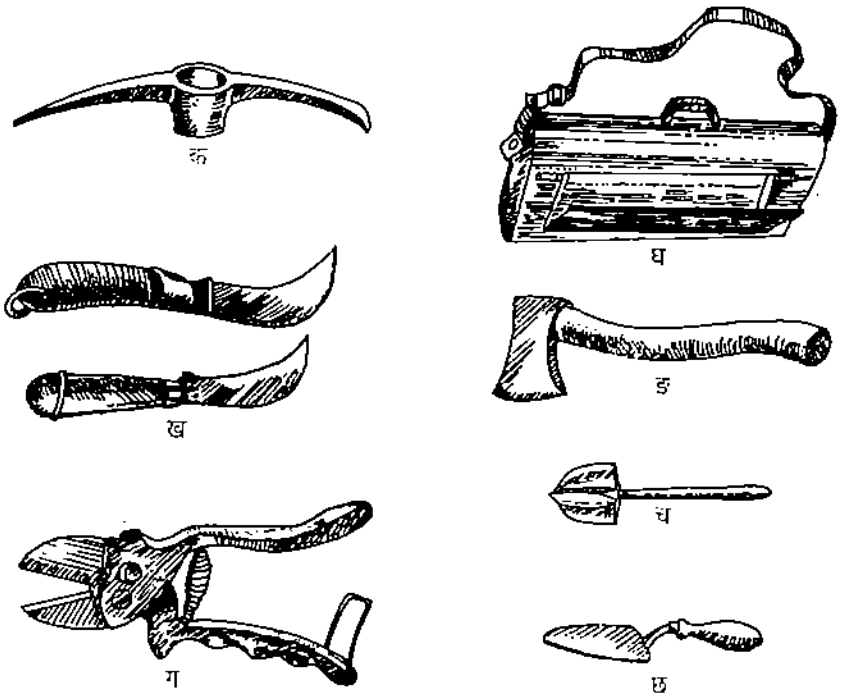

चित्र 5.2 : संग्रहण में काम आने वाले उपकरण, क) संग्रहण नैती, ख) चाकू, ग) कैंची, घ) बैग, ङ) कुल्हाड़ी, च) फावड़ा, छ) करनी।

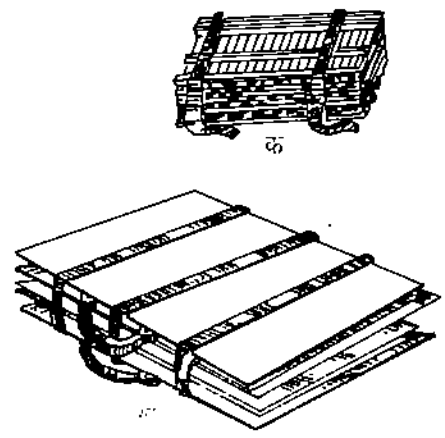

चित्र 5.3 : पादप प्रेस (क) सिंथेटिक पादप प्रेस, (ख) लोहे की जाली वाला पादप प्रेस।

इससे पौधों पर फफूंद नहीं लगेगी। यदि आप वृक्ष फर्नों को तथा अन्य थल पौधों को इकट्ठा करें तो आप पहले उन्हें पौलीथीन की थैलियों में रखें तथा बाद में उन्हें अखबार की तहों के बीच दबाएं। शंकुओं, फलों तथा जिम्नोस्पर्म पौधों की सूएं जैसी पत्तियों को पौलीथीन की थैलियों में रखें।

कीटों को इकट्ठा करने के वास्ते बोतलें ले जाइए और साथ में इथाइल एसिटेट और क्लोरोफार्म जैसे कुछ मारने वाले साधन ले जाइए। कीटों को पकड़ते ही उनका रंग बिगड़ने से पहले ही उन्हें मार दीजिए। इन शीशियों पर "जहर" का लेबल लगा दीजिए क्योंकि ये सभी मारने वाले साधन बहुत ही जहरीले होते हैं। कीटों को मारने पर शीशियों में ज्यादा देर तक पड़ा न रहने दें, और न ही इन शीशियों में कीटों को ज्यादा संख्या में डालिए। कीटों के लार्वों को पहले तो खौलते पानी में मारिए और उसके बाद उन्हें तरल परिरक्षक में रखिए। अलग-अलग मारक शीशियां इस्तेमाल कीजिए। लड़ाकू कीटों तथा टूट सकने वाले कीटों को एक ही शीशी में साथ-साथ न रखें क्योंकि ये एक दूसरे को क्षति पहुंचा सकते हैं।

5.3.2 राष्ट्रीय वनस्पतिक अनुसंधान संस्थान (National Botanical Research Institute), लखनऊ

राष्ट्रीय वनस्पतिक अनुसंधान संस्थान को इससे पहले राष्ट्रीय वनस्पतिक उद्यान कहा जाता था। इस नाम से पहले इस उद्यान को "सिकन्दर बाग" कहा जाता था। इस उद्यान के संस्थापक निदेशक थे प्रो. के.एन. कौल। इस उद्यान की सामान्य योजना एवं व्यवस्था इस बात का बड़ा संवृत है कि प्रो. कौल में कितना ज्यादा सौंदर्य बोध था और कितनी ज्यादा सृजनशीलता। डॉ. टी.एन.खुशू इस उद्यान के दूसरे निदेशक थे।

यह उद्यान नगर के बीचों-बीच गोमती के किनारे पर स्थित है। इसमें विविध पौधों को उगाया जाता है तथा उनका एक भरपूर भंडार है। उद्यान की विशेषताओं में है—विविध ताड, फर्नें, औषध पौधे, विविध आर्किड, कैक्टस तथा अन्य सजावटी पौधे। लखनऊ से लगभग 20 किलोमीटर दूर बंथरा स्थित प्रायोगिक अनुसंधान केन्द्र, इसी अनुसंधान संस्था का एक अंग है और इसमें मुख्यत: ऊसर भूमि के उद्धार तथा अन्य अनुप्रयोग पहलुओं पर खोज की जाती है। इसके भीतर एक विशाल हर्बेरियम, एक पुस्तकालय और अनेक ग्रीन हाउस हैं, तथा इसमें कई प्रयोगशालाएं भी हैं जिनमें कोशिका विज्ञान, परागाणु विज्ञान, शरीरक्रिया विज्ञान, ऊतक संवर्धन, कवक विज्ञान तथा आकारिकी पर काम होता है। इस उद्यान का पूरा खर्चा वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसंधान परिषद् (CSIR) द्वारा उठाया जाता है। यह भारत में ज्ञानार्जन एवं अनुसंधान का एक मंदिर है (चित्र 5.4)।

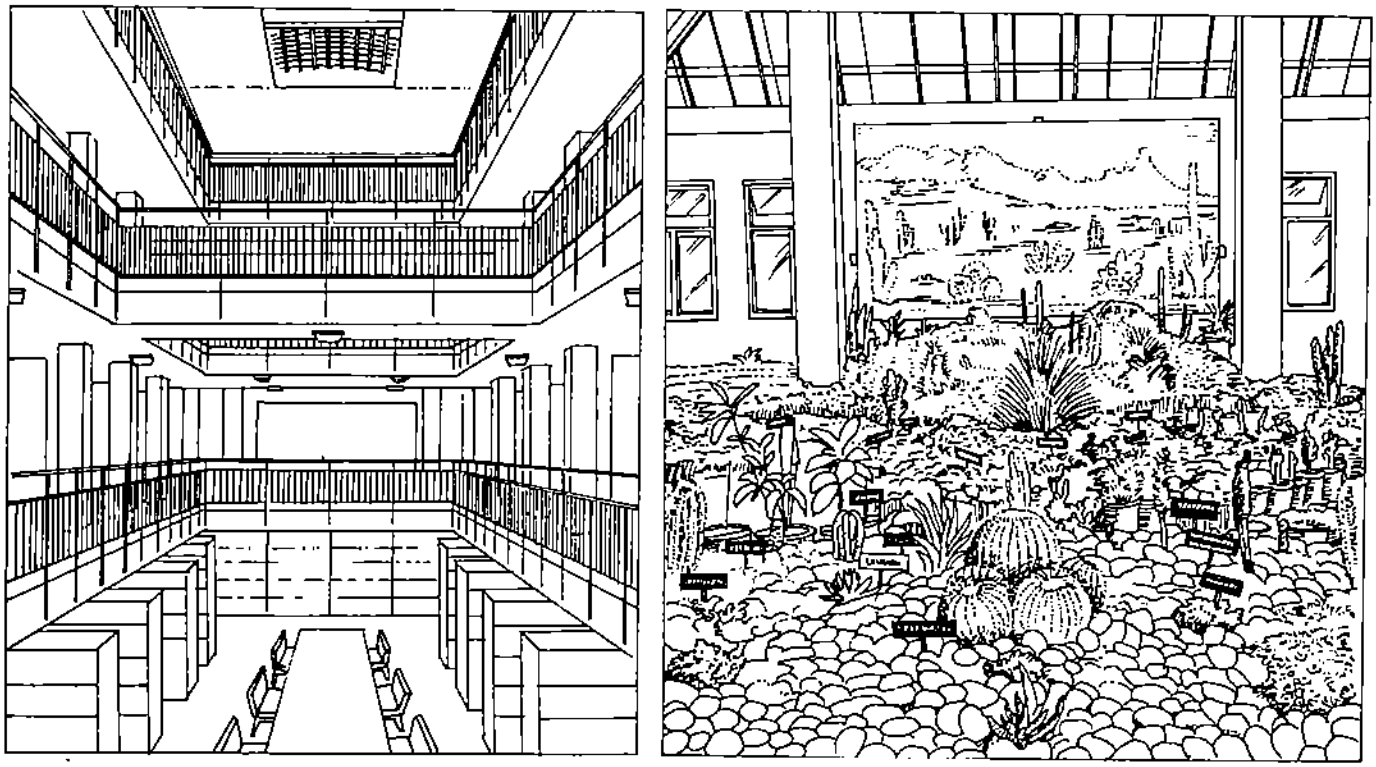

चित्र 5.4 : क) NBRI के पुस्तकालय हर्बेरियम का फर्श से छत तक का दृश्य, ख) केक्टस गृह का भीतरी दृश्य।

बोध प्रश्न 2

क) हर्बेरियम क्या होता है परिभाषा लिखिए।

.....

.....

ख) नमूनों का संग्रहण क्यों अनिवार्य है

.....

ग) नमूनों को माउंट करने की प्रथा किसने चलाई थी?

.....

5.4 उद्यान तथा ग्रीन हाऊस

सबसे पहला वनस्पतिक उद्यान 1545-1558 में स्थापित हुआ था जिसमें औषध पौधों का संग्रह किया गया था।

सार्वजनिक पार्क तथा उद्यान सौंदर्य स्थल और मनोरंजन के केन्द्र होते हैं। वनस्पतिक उद्यान ऐसे पौधों का एक जीवंत भंडार होता है जिन्हें सही वर्गिकीय अभिनिर्धारण के साथ वैज्ञानिक आधार पर व्यवस्थित एवं कायम बनाए रखा जाता है। एक अच्छे वनस्पतिक उद्यान में निम्न बातों का स्पष्टीकरण होता है:

- वनरोपण का महत्व
- पौधों की खेती का विकास
- आम आदमी के वास्ते उद्यानिकी प्रथाएं
- बागवानी में ग्रहणियों की रुचि बनना
- हमारी पसंद के पौधों को देख सकने के वास्ते गाइडों को देना जो बाग में हमारे साथ जा सकें।

यह कार्य ग्रहणी के रूप में भी हो सकता है। हम किसी ऐसी रजनीगंधा को ढूंढना चाहें जो हमारे अपने घरों में उगाने के लिए उपयुक्त हो । किसान के रूप में हो सकता है हम किसी उपयुक्त बांस को ढूंढ रहे हों जो मिट्टी की उपयुक्तता तथा उपलब्ध जल स्रोत की जानकारी के बाद हम अपनी जमीन में उगा सकें ।

ग्रीन हाऊस एक ऐसा स्थान होता है जिसमें पौधों को वांछित पर्यावरण में उगाया जाता है। शीतोष्ण देशों में इसमें पौधों को भरपूर हवा और प्रकाश प्रदान किये जाते हैं मगर उष्ण कटिबंधीय देशों में इसमें छाया में पनपने वाले पौधों को अधिक रखा जाता है। एक सफल ग्रीन हाऊस के पर्यावरण में प्रदान किए जाने वाले अनिवार्य तत्व है ऊष्मा, आर्द्रता, वायु का आना-जाना, प्रकाश और पौधों की समुचित व्यवस्था। इसके भीतर ऊष्मा देना, आर्द्रता प्रदान करना, पानी देना तथा पोषक पदार्थों का दिया जाना, ये सारे कार्य एक स्वचालित प्रणाली से होते रहते हैं। ग्रीन हाऊस की मिट्टी हल्की होती है तथा बगीचों की मिट्टी की अपेक्षा पोषकों से अधिक भरपूर होती है और इसमें कम्पोस्ट, बालू तथा वर्मिकुलाइट का अंश अच्छी तरह होता है। ऊष्णकटिबंधीय ग्रीन हाऊसों में

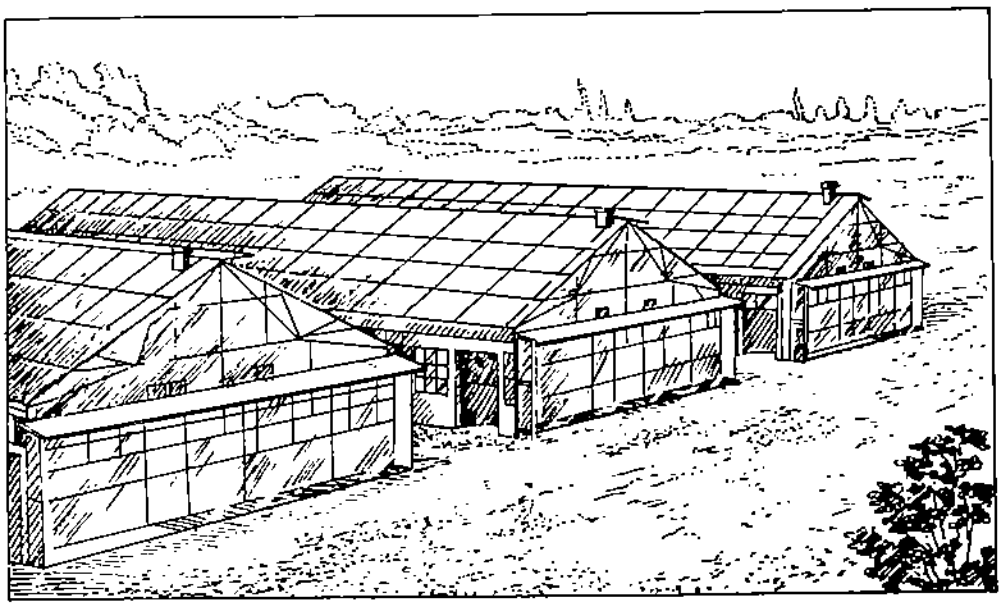

चित्र 5.5 : दृढ़ प्लास्टिक से ढका ग्रीन हाऊस।

हम सजावटी पत्तीदार पौधों, ताड़ों, फर्नों, ऑर्किडों तथा छायारागी पौधों को उगा सकते हैं। यहां ग्रीन हाऊस की छत की जगह एक मज़बूत फ्रेम के ऊपर बांस की खपच्चियों की छत बना दी जाती है जिस पर नारियल अथवा खजूर की पत्तियां बिछा देते हैं। स्थायी छत के वास्ते लताएं उगाई जाती हैं और दीवारें ईंटों की बनायी जाती हैं।

ग्रीन हाऊस शब्द की रचना एवेलिन ने 17 वीं शताब्दी में की थी।

5.4.1 वनस्पतिक उद्यान, क्यू (लंदन)

क्यू के रॉयल बोटेनिकल गार्डन संसार भर में एक अतिविशेष संस्थान है। इसमें अति आधुनिक और साज-सामान से परिपूर्ण प्रयोगशालाएं हैं एवं दुर्लभ पौधों का संग्रह है। इसका उद्यान 200 एकड़ भूमि में फैला हुआ है तथा बहुत ही सुनियोजित है। यह संसार भर का एक मुख्य आकर्षण है तथा इसे बहुत ही मूल्यवान माना जाता है। हाल ही में अनुभव किया गया है कि इंग्लैंड में प्रदूषण के कारण उद्यान पर बुरा असर पड़ रहा है और यह भी कि अनेक दुर्लभ पौधों के वास्ते अब इसकी मिट्टी उपयुक्त नहीं रही। ब्रिटिश सरकार ने इस समस्या की ओर तत्काल ध्यान दिया और एक राष्ट्रीय ट्रस्ट के अधीन क्यू के ही निकट लगभग 400 एकड़ भूमि की स्वीकृति दे दी है जहां की मिट्टी और धलाकृति बेहतर है एवं तापमान कठोर नहीं है, इस भूमि को "क्यू सैटेलाइट" (Kew Satellite) का नाम दिया गया है। इस भूमि पर लम्बे जाड़े की बहुत कड़ाके की ठंड का असर नहीं होता तथा यह लंदन के प्रदूषण एवं शोर से भी दूर है। इस अतिविशेष उद्यान की स्थापना का सही समय बहुत पहले 1759 का है। विलियम ऐटन इसके सुपरिंटेंडेंट थे। ऐटन के पहले रॉयल बोटेनिकल गार्डन्स के हर्बेरियम स्वामी एवं पुस्तकालय स्वामी के रूप में डब्ल्यू. बी. टुरिल्ल कार्य करते थे। सर विलियम चैम्बर्स तथा सर जॉन हिल नें अपनी दो कृतियों द्वारा इस उद्यान के नाम में बहुत ख्याति जोड़ी। इन कृतियों में एक तो था "द रॉयल बोटेनिक गार्डन" क्यू (टुरिल्ल डब्ल्यू. बी.) नामक प्रकाशन जिसमें इस उद्यान में उग रहे पौधों का विवरण था, और दूसरी कृति थी उस काल में उग रहे पौधों के कैटेलॉग "Hortus Kewensis" का तैयार करना। ऐटन ने लिनियस की पद्धति को अपनाते हुए इस ग्रंथमाला में "Hortus Kewensis" नाम की दूसरी पुस्तक निकाली जिसमें 5,500 स्पीशीज़ का वर्णन था। सर जोज़ेफ़ बैंक ने अपनी खोज यात्राओं से लाकर नए पौधे जोड़े तथा अपना निजी धन भी खर्च किया। अपने आप में यह काफी प्रमाण था कि इस व्यक्ति को उद्यान तथा हर्बेरियम के विकास में कितनी अधिक रुचि थी एवं कितना उत्साह और लगन भी थी। सन् 1841 में सर विलियम जैक्सन हुकर ने क्यू गार्डन के निदेशक का पदभार संभाला। उसने एक भव्य ताड़-गृह (Palm house) बनाया एवं एक विशाल हर्बेरियम की स्थापना की। उसके पुत्र जे.सी. हुकर ने रोडोडेन्ड्रान भी जोड़े जिन्होंने क्यू की उत्कृष्टता में चार चांद लगा दिए। उसने "Flora of British India" प्रकाशित किया तथा वह एक वनस्पतिक पत्रिका का संपादक भी रहा। थिसलटन डायर ने "क्यू बुलेटिन" तथा "Index Kewensis" प्रकाशित किए। उसने ऐल्पाइन हाऊस, रोज़ गार्डन, बैम्बू गार्डन तथा लिलि ताल भी बनाए। क्यू गार्डन के विन्यास में इन सबका संग्रह शामिल है — विलो, बलूत, एल्म, सेडार, लिलियम, चीड़, मीठा चेस्टनट, ट्यूलिप, डेफ़ोडिल, हैज़ेल, "स्वीट गम" पापलर, "फिल्मी फर्न", थूजा, *साइप्रेस*, जापानी सेडार, गुलाब, नाशपातियां *प्रूनस*, भारतीय सेम, जापानी चेरी, हार्स चेस्टन, क्रैब एप्ल, *एकेशिया*, नींबू, *हिबिस्कस मैंग्रोलिया* तथा अख़रोट।

क्यू के विशेष उद्यानों में ये शामिल हैं — रोडोडेन्ड्रानों का संग्रह, बांस उद्यान, चॉक उद्यान, रॉक गार्डन, झाड़ी उद्यान, हीथ गार्डन तथा रोज़री।

क्यू के शानदार उद्यानों में आते है ताड़ गृह, फर्नेरियां, जलकुमुदनी गृह, ऐल्पाइन हाऊस तथा तापमान गृह।

5.4.2 वनस्पतिक उद्यान, सिबपुर (भारत)

हावड़ा (बंगाल) में सिबपुर स्थित वनस्पतिक उद्यान दक्षिण-पूर्व एशिया का सबसे बड़ा तथा सबसे पुराना उद्यान है। इसकी स्थापना सन् 1770 में ईस्ट इंडिया कंपनी गार्डन के रूप में कर्नल रॉबर्ट किड द्वारा हुई थी। भारतीय वनस्पतिकी के जन्मदाता माने जाने वाले डॉ. विलियम राक्सबर्ग ने 1793 में इस उद्यान का कार्यभार संभाला। यह 310 एकड़ भूमि में फैला है तथा इसमें हज़ारों शाकीय स्पीशीज़ के अलावा 2350 स्पीशीज़ का प्रतिदर्श करने वाले 15000 वृक्षों एवं झाड़ियों का एक विशाल खज़ाना है। आजकल इसका रखरखाव भारत सरकार के पर्यावरण, वन एवं मत्स्यिकी मंत्रालय के भारतीय वनस्पतिकीय सर्वेक्षण द्वारा किया जाता है। इसमें आर्थिक महत्व के अनेक पौधों को उगाया जाता है जैसे कि *सिनकोना*, पटसन, फ्लेक्स, भांग, भारतीय रबड़, *यूकेलिप्टस*, पेपर मल्बेरी, लौंग, तेजपत्ता, काली मिर्च, टमाटर, तम्बाकू, कॉफी, आदि। सन् 1787 में जब बंगाल में सबसे भयंकर अकाल पड़ा था तब कई अतिरिक्त खाद्य स्पीशीज़ भी इसमें लगाई गयी थी।

सन् 1864 तथा 1867 में आए भयंकर तूफानों से इस उद्यान के अनेक वृक्ष नष्ट हो गए थे। इस उद्यान का सबसे बड़ा आकर्षण यहां का विशाल वट वृक्ष (Great Banyan Tree) है, यह वृक्ष करीब 250 वर्ष पुराना

है, इसकी परिधि 200 मीटर है तथा इसमें 1600 वायवयी जड़ें हैं। प्राकृतिक आर्किडगृह में शाश्वत् सौंदर्य वाले आर्किड हैं। औषधीय पौधों के उद्यान में आयुर्वेद, यूनानी, होमियोपैथी तथा ऐलोपैथी में इस्तेमाल होने वाली करीब 450 स्पीशीज उगायी हुई हैं। आजकल यहां पर पादप आप्रवेश, पादप प्रजनन तथा पादप संरक्षण पर अनुसंधान हो रहा है। उद्यान के प्रकाशन विभाग के नवीनतम योगदानों में शामिल है "Red Data Book" तथा 24 जिल्दों वाला "Flora of India".

5.4.3 वनस्पतिक उद्यान की भूमिका

वनस्पतिक उद्यान से हमें सीधे-सीधे प्रकृति के सौंदर्य तथा उसकी विविधता का आनंद मिलता है। प्रकृति की इस प्रशंसा से मिलने वाला आनन्द हमारे एक अच्छे प्रकृतिविज्ञानी बनने में बदल जाता है। साथ-साथ हम पर्णता तथा फूलों की सुंदरता का भी आनंद ले सकते हैं। वनस्पतिक उद्यानों की भूमिका इस प्रकार है :

- वैज्ञानिक आधार पर महत्वपूर्ण पौधों को उगाना और उनका रख रखाव करना।
- संसार की वनस्पति को भौगोलिक विशिष्टताओं के आधार पर दर्शाना, जैसे कि हिमालयी वनस्पतिजात, ऐल्पाइन वनस्पतिजात।
- विलुप्त होने के खतरे में आए पौधों को रखना, संभालना तथा स्पीशीज को बचाना।
- जर्म-प्लाज़्म (जनन द्रव्य) के संग्रह की योजना बनाना।
- विविध क्षेत्रों में अनुसंधान केंद्रों के रूप में कार्य करना।
- परिरक्षित एवं जीवित पौधों के द्वारा वर्गिकीय अध्ययनों में सुविधाएं प्रदान करना।
- प्रायोगिक वनस्पतिकी तथा सजावट उद्यानिकी में शैक्षिक कार्यक्रमों एवं अनुसंधानों को बढ़ावा देना।
- पदार्थों का आदान-प्रदान, जीवित, सुखाए गए तथा "Index Semidum" अर्थात् आदान प्रदान किए जा सकने वाले बीजों की सूची बनाना।

बोध प्रश्न 3

मूल पाठ से उपयुक्त शब्द लेकर रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :

i) सार्वजनिक पार्क तथा उद्यान ..... के स्थानों का कार्य करते हैं।

ii) ग्रीन हाऊस वांछित ——— में पौधों को उगाने का स्थान होता है।

iii) ग्रीन हाऊस शब्द को ——— ने 17वीं शताब्दी में बनाया गया था।

iv) आदितम वनस्पतिक उद्यान सन् ------ से ——— में स्थापित किया गया जिसमें औषध पौधे रखे गए थे।

v) वनस्पतिक उद्यान की भूमिका ------ तथा ------ नमूनों द्वारा किए जाने वाले वर्गिकीय अनुसंधानों में सुविधा प्रदान करता है।

5.5 प्राणी उद्यान (चिड़ियाघर)

प्राणी उद्यान का एक दुतरफा पहलू है — मानव तथा जानवरों का एक दूसरे से संबंध। इस संबंध में एक तरफ डर है तो दूसरी तरफ उनकी हत्या। एक तरफ उपासना है तो दूसरी तरफ विनाश। जंगली जानवरों के लिए अब भी हमदर्दी है, लेकिन इस मनोभावना को बाहर आने का अवसर नहीं है। आज के जीवित व्यक्तियों में से विशाल बाहुल्य ऐसे लोगों का ही है जिनके लिए जंगली जानवरों के पास आ सकने का बस एक ही स्थान है — चिड़ियाघर।

तथ्यों और आंकड़ों से कहानी का बस अंश भर प्रकट होता है, फिर भी उससे एक प्रश्न आ खड़ा होता है कि आखिर लोग चिड़ियाघर में क्यों जाते हैं। आपको यह जानकर आश्चर्य नहीं होगा कि चिड़ियाघरों की तमाम

सैर यात्राओं में से लगभग एक तिहाई लोग चिड़ियाघरों में इसलिए जाते है कि बच्चों को ले जाने के लिए चिड़ियाघर एक अच्छी जगह है। बहरहाल, ऐसा माना जाता है कि लोग चिड़ियाघरों में इसलिए जाते है कि जंगली जानवरों की उपस्थिति में कुछ तो ऐसी चीजें हैं जो हमें बहुत कुछ देती हैं — प्राणियों के प्रति सम्मान, प्राणियों के प्रति घृणा, ये सब ऐसी भावनाएं हैं जो व्यक्त की जानी चाहिए तथा इन्हें व्यक्त करने का बस एक ही स्थान है चिड़ियाघर। साथ ही यह भी महत्वपूर्ण है कि, प्राणियों को न देखकर वहां उन्हें देख रहे लोगों को देखा जाए, तभी चिड़ियाघर के प्रति उनके आकर्षण को वास्तव में समझा जा सकता है।

विलोप होना जीवन की एक सच्चाई है। पृथ्वी पर कभी भी रह रही तमाम स्पीशीज़ की 99 प्रतिशत स्पीशीज़ आज जिंदा नहीं है। जो आज जीवित हैं वे भी सदा विद्यमान नहीं रहेंगी। विख्यात प्रकृतिविज्ञानी डॉ. नार्मन मायर्स के अनुसार "ऐसा मानना तर्कहीन नहीं है कि कम से कम एक स्पीशीज़ हर रोज समाप्त होती जा रही है।" विलोप की दर इसलिए महत्वपूर्ण है कि इससे चिड़ियाघरों की स्थापना न्यायोचित बनती है। चिड़ियाघरों द्वारा स्पीशीज़ का विलोप रोका जा सकता है। आगामी उपसेक्शनों में हम भारत के वन्य जीवन अभ्यारण्यों तथा राष्ट्रीय उपवनों के विषय में अधिक विस्तार से पढ़ेंगे।

5.5.1 वन्य जीवन अभ्यारण्य

आपने देखा होगा कि कुछ उपवनों पर किस तरह कटीले तारों की बाड़ लगायी गयी होती है। इसका उद्देश्य जानवरों को बाहर निकल जाने से रोकने का है ताकि वे पास के खेतों को बरबाद न कर सके। इस बाड़ से उपवन में एक और बाधा बना दी जाती है। समस्या जानवरों को भीतर ही सीमित रखने तक की नहीं है वरन् समस्या है लोगों को बाहर ही बाहर रोके रखने की। आज वन्य जीवन के विषय में जानने योग्य सर्वाधिक महत्व की बात यह है कि अधिकांश स्थानों पर आज परभक्षियों की पर्याप्त संख्या नहीं है। ऐसा होना कई मिले-जुले कारणों से है। मानव द्वारा कृषि के उपयोग से जितना असर वन्य जीवन पर पड़ा है, शायद उतना अन्य किसी भी चीज़ से नहीं पड़ा। परभक्षियों को उससे कहीं ज्यादा जगह चाहिए जितनी कि उनके शिकार को जरूरत होती है। यही कारण है कि बड़े खूंखार जानवर दुर्लभ हो गए हैं। ये हर जगह दुर्लभ हैं, लेकिन जब वे एक तो दुर्लभ हों और साथ ही छोटे अलग-थलग हो गए स्थानों में सीमित हो गए हों तब खतरे अधिक होते हैं।

किसी क्षेत्र को वन्य जीवन अभ्यारण्य घोषित करने के बाद वहां के पारितंत्र समेत प्राकृतिक समुदाय का परिरक्षण हो जाता है। वन्य जीवन अभ्यारण्य में पक्षियों अथवा स्तनियों की किसी भी स्पीशीज़ का मारना, शिकार करना, गोली का निशाना बनाना, या पकड़ना वर्जित है। हां, केवल उस अभ्यारण्य की व्यवस्था के लिए उत्तरदायी विभाग का उच्चतम अधिकारी द्वारा अथवा उसके नियंत्रण में ही ऐसा किया जा सकता है। जलवायु के गड़बड़ा जाने से सदा ही समष्टियों में उतार चढ़ाव होता रहता है। यदि किसी एक स्थान पर पर्याप्त भोजन नहीं है तो जानवर किसी ऐसे अन्य क्षेत्र में चले जाते हैं जहां वह अधिक मात्रा में उपलब्ध हों। साथ ही अन्य परभक्षी प्राणियों के हाथों वे मारे जाते हैं, या वे बीमार पड़ते हैं, भूख से पीड़ित होते हैं और अंततः मर जाते हैं। मृत्यु जीवन का एक स्वरूप है। चार्ल्स डार्विन ने जिसे "वृद्धि पर रोक" कहा था उससे दो प्रकार से संख्या कम बनी रहती है — एक तो समष्टि में से प्राणियों के समाप्त हो जाने के द्वारा और दूसरे यह सुनिश्चित करके कि चरम जनन आयु के बाद कम ही जानवर बच पाएं। बंदी अवस्था में समष्टि वृद्धि की सभी रोक समाप्त हो जाती है।

वन्य जीवन संरक्षण में मानव द्वारा किए जाने वाले सभी प्रयास आ जाते हैं जिनके द्वारा जंगली जानवरों को विलोप से बचाया जाता है। मानव की प्रगति से सदा मनुष्य जाति को ही लाभ पहुंचा है मगर वन्य जीवन को लगातार हानि ही पहुंचती रही है। आपको ज्ञात होना चाहिए कि वन्य जीवन का अस्तित्व वर्षों के विकास के फलस्वरूप हुआ है और यह बीते समय की पर्यावरण धरोहर का एक अंश है — एक ऐसा संसार जो कभी हमारे पूर्वजों का परिवेश हुआ करता था। हम अपनी आने वाली पीढ़ियों के लिए उत्तरदायी हैं कि हम उनके लिए एक ऐसी बिन बिगड़ी दुनिया छोड़ें जो सम्पूर्ण तथा सजीव सौंदर्य से युक्त तथा सम्पन्नता से भरपूर हो। भारत में घटते जाते वन्य जीवन की सुरक्षा के लिए अनेक नियम पारित किए गए हैं तथा वन्य जीवन अभ्यारण्यों एवं राष्ट्रीय उपवनों की स्थापना की गयी है। वन्य पक्षी एवं प्राणियों का सुरक्षा अधिनियम सन् 1812 में पारित हुआ था तथा उसे सन् 1887 में दोहराया गया। भारतीय वन्य जीवन बोर्ड की स्थापना सन् 1952 में हुई थी और उसके बाद भारत के विभिन्न राज्यों में वन्य जीवन बोर्डों की शुरुआत हुई। सन् 1972 में एक और नया वन्य जीवन सुरक्षा अधिनियम बनाया गया। इस अधिनियम के अंतर्गत जानवरों को जिंदा या मरी हालत में अपने पास रखना, उन्हें पकड़ना, बंदूक से मारना आदि मुख्य वन्य जीवन वार्डन तथा अधिकृत अधिकारीगण के नियंत्रण एवं देखरेख में होता है। कई अलग-अलग व्यष्टिगत संकटग्रस्त स्पीशीज के लिए संरक्षण परियोजनाएं चलायी गयी जैसे कि मृग (1921), मगरमच्छ (1947), हंगल (1970), सिंह (1972) तथा बाघ (1973)। वन्य जीवन अभ्यारण्य ऐसे स्थान होते हैं जहां संबद्ध अधिकारियों के आदेश के अंतर्गत् छोड़कर किसी भी जानवर को पकड़ना या उसको मारना वर्जित होता है। आज भारत में 412 वन्य जीवन अभ्यारण्य तथा 80

राष्ट्रीय उपवन हैं। साइट्रस तथा घटपर्णी के लिए एक-एक जीन अभ्यारण्य है, और ये दोनों ही उत्तर पूर्व भारत में स्थित है। आपको एक बात ध्यान में रखनी चाहिए कि पृथ्वी पर हर प्रकार की जीव सृष्टि के कायम बने रहने के वास्ते पौधों का होना नितांत आवश्यक है।

बोध प्रश्न 4

क) वन्य जीवन अभ्यारण्य की तथा राष्ट्रीय उपवन की परिभाषा लिखिए :

.....

.....

ख) मूल पाठ से उपयुक्त शब्दों के द्वारा रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :

i) भारत में वन्य जीवन अभ्यारण्यों की कुल संख्या ..... है।

ii) भारत में राष्ट्रीय उपवनों की कुल संख्या ..... है।

iii) बाघ परियोजना का आरंभ ..... में हुआ था तथा इसका व्यय भार ..... द्वारा उठाया जाता है।

भारत के कुछ सुविख्यात वन्य जीवन अभ्यारण्य इस प्रकार हैं :

काज़िरंगा वन्य जीवन अभ्यारण्य: इसकी स्थापना असम के जोरहाट सबडिविज़न के सिबसागर ज़िले में ब्रह्मपुत्र नदी के दक्षिणी तट पर सन् 1926 में हुई थी। यह 430 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में जंगल की घास-स्थली तथा दलदल में फैला है इसमें गैंडा, हाथी, जंगली भैंसा, बाइसन, बाघ, तेंदुआ, रीछ, सांभर, दलदल का मृग, काकड़, गिबन (हुलूक) तथा पेलिकन, सारस तथा छल्लेदार पूंछ वाले मछलीमार उक़ाब जैसे पक्षियों का प्राणिजात पनपता है।

मानस वन्यिक जीवन अभ्यारण्य एवं बाघ रिजर्व: यह आसाम के कामरूप ज़िले में 540 वर्ग किलोमीटर के क्षेत्र में फैला तथा 2,000 metres above sea level की ऊंचाई पर स्थित है। इस अभ्यारण्य के बीच में से मानस नदी बहती है। इसमें ये सब जानवर पाए जाते हैं: बाघ, तेंदुआ, जंगली कुत्ता, भैंसा, सांभर, दलदली मृग तथा सुनहरा लंगूर।

जाल्दापुर वन्य जीवन अभ्यारण्य: यह पश्चिम बंगाल के जलपाई गुड़ी ज़िले में स्थित है तथा 65 वर्ग किलोमीटर की घास-स्थली में फैला है। इसके वन्य जीवन में ये शामिल हैं: गैंडा, गौड़, हाथी, बाघ, तेंदुआ, मृग तथा नानाविध पक्षी एवं सरीसृप।

पाँट कोलिमर वन्य जीवन अभ्यारण्य : यह तमिलनाडु में तंजावुर ज़िले की दक्षिणी नोक पर स्थित है। इसके पश्चजल तथा लैंगून में हंसावर तथा हवासिल पक्षी आते हैं। यह वेदारण्यम जंगलों के निकट है जिसमें अनेक काले मृगों, चीतलों तथा जंगली सूअरों का प्राणिजात पाया जाता है।

पेरियार वन्य जीवन अभ्यारण्य: केरल राज्य में स्थित यह अभ्यारण्य लगभग 777 वर्ग किलोमीटर में फैला हुआ है। यह सन् 1949 में स्थापित हुआ था, यह उस एक कृत्रिम झील के चारों ओर बना है जो 1990 में पेरियार नदी पर बने बांध के पीछे बन गयी है। इस अभ्यारण्य में जो प्राणिजात फल फूल रहा है वह है जंगली हाथियों, गौड़, तेंदुओं, स्लॉथ कुत्तों, जंगली सूअरों, काला नीलगिरी लंगूर तथा धूसर धनेश जैसे जल पक्षियों का प्राणिजात।

मदुमलाई वन्य जीवन अभ्यारण्य: यह वन्य जीवन अभ्यारण्य तमिलनाडु में नीलगिरी के उत्तर पश्चिमी भाग में सन् 1940 में स्थापित हुआ था। यह अपने घने जंगलों और विविध प्राणिजात के लिए प्रसिद्ध है। यहां के प्राणिजात में जंगली हाथी, गौड़, सांभर, चीतल, काकड़, पिसूरी, चौसिंहा, बाघ, तेंदुआ, वेनेट मंकी नामक बंदर, लंगूर, जंगली बिल्ली, रीछ, सेही, साधू सांप, उड़न छिपकली, धामन सांप, अजगर तथा विविध पक्षी आते हैं।

बांदीपुर वन्य जीवन अभ्यारण्य: यह अभ्यारण्य सन् 1941 में मैसूर (कर्नाटक) के तब के नरेश द्वारा स्थापित किया गया था। यह मैसूर नगर के 80 किलोमीटर दक्षिण में उटकमंड के रास्ते में स्थित है। इसका क्षेत्रफल 874

वर्ग किलोमीटर है तथा यह समुद्रतल से 1454.4 मीटर ऊंचाई पर बना है। इसका जंगल बहुत घना है तथा इसमें बहुत वर्षा होती है। इसके वन्य जीवन प्राणिजात में बहुत संख्या में गौड़ हैं तथा अन्य जानवर हैं जैसे कि हाथी, तेंदुआ, रीछ, जंगली कुत्ता, चीतल, गुलदार, काकड़, सेही तथा लंगूर।

सेसन गीर: एशियाई सिंह का यह प्रसिद्ध वन्य जीवन अभ्यारण्य गुजरात राज्य में अहमदाबाद से 468 किलोमीटर तथा वीरावल से 43 किलोमीटर दूर स्थित है। यह 1295 वर्ग किलोमीटर में फैला है। यहां की धरती अर्धशुष्क है और इसमें जहां तहां कटीली झाड़ियां एवं पर्णपाती वृक्ष हैं। इसके प्राणीजात में ये सब हैं – एशियाई सिंह, चकत्ता-मृग, नीलगाय, चौसिंहा, धारीदार लकड़बघ्घा, जंगली सूअर, सोही, लंगूर, अजगर, मगरमच्छ तथा कबूतर, तीतर, "रॉक ग्राऊज" आदि पक्षी।

दाचीगाम वन्य जीवन अभ्यारण्य: यह कश्मीर में श्रीनगर से 26 किलोमीटर दूर 1951 में स्थापित किया गया था। इसका क्षेत्रफल 29 वर्ग किलोमीटर है तथा इसके दो तल है एक तो ऊपरी दाचीगाम जो समुद्रतल से 3,692.3 मीटर की ऊंचाई पर स्थित है और दूसरा निचला दाचीगाम जो समुद्रतल से 1,246.2 मीटर की ऊंचाई पर है। इसमें मुख्यत: हंगल अर्थात् कश्मीर का बारहसिंगा, कस्तूरी मृग, तेंदुआ, काला मृग, काला भालू, भूरा भालू तथा बैबून सुरक्षित किए गए हैं।

अनामलाई अभ्यारण्य: यह अभ्यारण्य तमिलनाडु में कोयम्बटूर ज़िले के दक्षिणी भाग में 1972 में स्थापित किया गया था। यह 958 वर्ग किलोमीटर के क्षेत्र में फैला हुआ है और इसमें जानवरों का एक भरपूर प्राणिजात पलता है जैसे कि हाथी, गौड़, सांभर, चित्तीदार मृग, काकड़, नीलगाय, लंगूर, नीलबानर, बाघ, तेंदुआ, रीछ, सेही और सल्लू सांप (पैंगोलिन)।

5.5.2 राष्ट्रीय उपवन

राष्ट्रीय उपवन एक ऐसा क्षेत्र होता है जिसमें कई चीजों का संरक्षण किया जाता है — पर्यावरण, प्राकृतिक एवं ऐतिहासिक वस्तुएं, तथा उस क्षेत्र में पाया जाने वाला वन्य जीवन। राष्ट्रीय उपवनों में जानवरों से मनोरंजन भी प्रदान किया जाता है और वह भी ऐसी विधि तथा ऐसे साधनों के द्वारा जिनसे ये जानवर अक्षत रूप में भावी पीढ़ियों के मनोरंजन के लिए बने रहेंगे। राष्ट्रीय उपवनों में एक तो कोई निजी अधिकारी नहीं होता और दूसरे हर प्रकार के वानिकी कार्यचालन तथा पालतू जानवरों को चराना आदि के उपयोग पर प्रतिबंध होता है। भारत के कुछ सुविख्यात राष्ट्रीय उपवन इस प्रकार हैं :

हज़ारीबाग राष्ट्रीय उपवन: यह राष्ट्रीय उपवन बिहार में सन् 1954 में स्थापित हुआ था। यह 184 वर्ग किलोमीटर में फैला है जिसमें घने उष्णकटिबंधीय वन हैं। इस उपवन के प्रतिरूपी प्राणिजात में ये सब शामिल हैं : जंगली सूअर, सांभर, नीलगाय, बाघ, तेंदुआ, रीछ, लकड़बघ्घा तथा गौड़।

सिम्लिपाल राष्ट्रीय उपवन: यह उड़ीसा के मयूरभंज ज़िले में स्थित है। इसका क्षेत्रफल 2,750 वर्ग किलोमीटर है। इसके घने साल वृक्षों के जंगल हैं तथा इसे बाघ परियोजना के वास्ते चुना गया है। इसके प्रतिरूपी प्राणिजात में ये सब शामिल हैं : बाघ, हाथी, मृग, मोर बोलती मैना, चीतल, सांभर, तेंदुआ, गौड़, लकड़बघ्घा तथा रीछ।

पालामाऊ राष्ट्रीय उपवन: यह बिहार के डाल्टनगंज में स्थित है तथा यह 345 वर्ग किलोमीटर में फैला है। इस राष्ट्रीय उपवन के प्राणिजात में शामिल हैं : बाघ, तेंदुआ, रीछ, हाथी, चीतल, गौड़, नीलगाय, चिंकारा तथा पिसूरी। यहां का वनस्पतिजात है घने उष्णकटिबंधीय वन।

कान्हा राष्ट्रीय उपवन: यह राष्ट्रीय उपवन मध्य प्रदेश में सन् 1955 में स्थापित हुआ था। इस उपवन का क्षेत्रफल 939.94 वर्ग किलोमीटर है और इसमें ऊंचा नीचा पहाड़ी क्षेत्र तथा नदियां आदि हैं। यह जबलपुर से 175 किलोमीटर दूर है तथा इसमें साल वृक्ष के जंगल हैं। इसके प्रतिरूपी प्राणीजात में आते हैं: बाघ, चीतल, तेंदुआ, सांभर, काला मृग तथा बारहसिंगा।

तंदोबा राष्ट्रीय उपवन: यह महाराष्ट्र के चंद्रपुर जिले में है और 116 वर्ग किलोमीटर में फैला है। इसके प्राणिजात में आते हैं : बाघ, सांभर, रीछ, बाइसन, चीतल, चिंकारा, काकड़, नीलगाय, चौसिंगा, लंगूर, मोर तथा कुछ मगरमच्छ।

भरतपुर पक्षी अभ्यारण्य: यह राजस्थान के भरतपुर जिले में स्थित है। यह 29 वर्ग किलोमीटर में फैला है। इसमें सभी प्रकार के देशीय पक्षी रहते हैं जैसे कि घोंसला रखने वाले जल पक्षी और जल के समीप रहने वाले

पक्षी तथा प्रवासी पक्षी। यहां पर पाए जाने वाले 328 प्रकार के पक्षियों में ये सब शामिल है : पनकौआ, चम्मच बाज, सफेद बाज, पनडुब्बी, बगुले, ढ़ोक, घोंघिला, लोहा सारंग आदि। अनेक प्रवासी पक्षी जैसे कि बत्तखें, हंस, साइबेरिया की सारस, आदि इस अभ्यारण्य में नियमित रूप से आते हैं। इस दलदलीय अभ्यारण्य के कुछ सूखे भागों में चित्तीदार मृग, काला मृग, सांभर, नीलगाय, जंगली सूअर तथा अजगर पाए जाते हैं।

कार्बेट राष्ट्रीय उपवन: यह भारत का एक प्रसिद्ध वन्य जीवन अभ्यारण्य है। इसकी स्थापना भारत के सबसे पहले राष्ट्रीय उपवन के रूप में सन् 1935 में की गयी थी। यह उत्तर प्रदेश में नैनीताल तथा गढ़वाल ज़िलों के बीच में स्थित हैं। इसका क्षेत्रफल 525 वर्ग किलोमीटर है तथा यह रामगंगा नदी के पश्चिम दक्षिण मोड़ के बीच में स्थित है। इसमें इन सब प्राणियों का एक भरपूर एवं विविध प्राणिजात पाया जाता है — बाघ, तेंदुआ, रीछ, लकड़बग्घा, हाथी, नीलगाय, दलदल मृग, काकड़, कुरंग, सेही तथा बुलबुल, कठफोड़वा, बार्बेट, पटेना जैसे पक्षी और मगरमच्छ, अजगर जैसे सरीसृप (चित्र 5.6)।

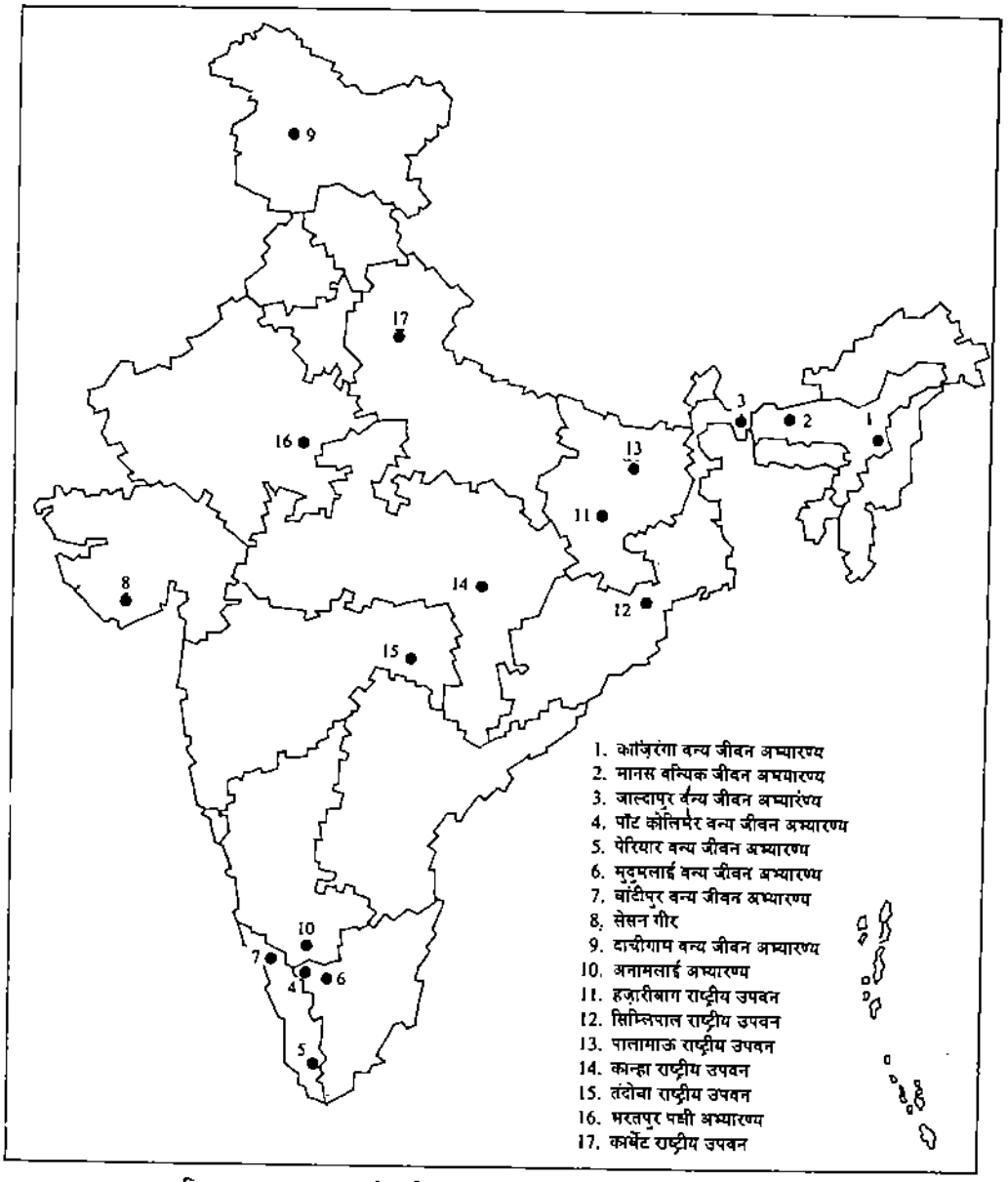

चित्र 5.6: भारत (मुख्यभूमि) के राष्ट्रीय उपवन, अभ्यारण्य तथा जैवमन्डल रिजर्व।

5.5.3 वर्गिकीय संग्रहों का संग्रहण, नामांकन, माऊंटिंग, अभिनिर्धारण तथा देखभाल

पादप नमूनों का संग्रहण वर्गिकीय अनुसंधान के लिए अनिवार्य है। हर्बेरियम नमूने एक स्थायी रिकार्ड बन जाते हैं। पादप सामग्री को ध्यान से छांटिए। संग्रहित नमूने सदा फूल और फल लगी अवस्था में होने चाहिए। प्रत्येक पादप के कम से कम पाँच नमूने होने चाहिए जो पुष्पन एवं फलन की विभिन्न अवस्थाओं में हों तो अच्छा है। नमूने को उसके स्थान से प्राप्त करने के बाद जितनी जल्दी हो सके प्रेस कर परिरक्षित कर लीजिए। पादपों का संकरण करके, तथा मिट्टी, नमी, ढलान तथा प्रकाश बदल जाने पर जो भी नयी रचना-व्यवस्थाएं दिखायी पड़े उन्हे नोट कीजिए। नमूनों को उनके पुष्पन तथा फलन की विभिन्न अवस्थाओं में इकट्ठा करने के वास्ते एक ही स्थली में वर्ष में कई बार जाना चाहिए। पुष्पी पौधों की पतियां, फूल, फल और बीज सभी महत्वपूर्ण हैं। इनसे

नमूने का अभिनिर्धारण आसान हो जाता है। इसी प्रकार कीटों को शाम को वत्तियों की ओर उड़ते आते हुए पकड़िए या परावैंगनी (ultraviolet) लैंप का इस्तेमाल करके पकड़िए। पक्षियों को जाल लगाकर पकड़िए तथा उन अन्य तरीकों से पकड़िए जिन्हें हम पहले ही हर्बेरियम तथा क्षेत्र कार्य विधियों के अंतर्गत बता चुके हैं। नमूने एकत्रित करते समय अपना विवेक काम में लाइए तथा दुर्लभ अथवा असामान्य पौधों को इकट्ठा न कीजिए। आपको ज्ञात होना चाहिए कि कुछ स्पीशीज़ अपने खास स्थानों से इसलिए विलुप्त हो गयी हैं क्योंकि वहां पर बिना सोचे समझे संग्रह किया जाता रहा है।

अब आप पादप नमूनों को दाब देकर प्रेस कीजिए। यह काम आप या तो किसी बायोलॉजिकल सप्लाई हाऊस से खरीदे हुए प्रेस के अथवा खुद ही बनाए हुए प्रेस के द्वारा कर सकते हैं। खुद बनाने के लिए आप प्लाईवुड की शीटों को 12/18" के टुकड़ों में काटकर प्रेस के दोनों सिरों के रूप में काम में ला सकते हैं। सबसे अच्छा प्रेस वह है जो पादप सामग्री को एक जैसे दबाव को लगातार बनाए रख सके। नमूनों को दबाने के लिए अखबार का इस्तेमाल कीजिए। नमूनों को व्यवस्थित करने के बाद प्रेस को रस्सियों तथा डोरियों से कस कर बंद कर दीजिए ताकि नमूनों में सलवटें न पड़े। प्रेस को सूखने के वास्ते छोड़ दीजिए। नमूने एकत्रित करते समय अपनी फील्डबुक में आवश्यक आंकड़े नोट कीजिए जैसे कि संग्रहण की तारीख, स्वभाव, आवास, फूल का रंग, स्थान, स्थानीय नाम, गंध, लेटेक्स का होना या न होना, परागण क्रियाविधि आदि। अब आप ध्यान से और साफ-साफ लेख में हर्बेरियम लेबल तैयार कीजिए। इन लेबलों पर संग्रह संख्या, स्थान, आवास, संग्रहण तिथि, संग्रहकर्ता का नाम, तथा पौधों का वैज्ञानिक नाम लिखिए। नमूनों को माऊंटिंग पेपर की शीट पर जोड़कर उसे माऊंट कीजिए। नमूनों को माऊंट करने के वास्ते अच्छी गुणवत्ता के हर्बेरियम शीट लीजिए ताकि वे लम्बे अरसे तक चलें और कीड़ों द्वारा खराब न हों। नमूनों की पिछली दिशा में गोंद लगाइए तथा उन्हे धीरे से माऊंटिंग शीट पर दबाइए। फूल और फल पौधे के कुछ भारी भरकम भाग होते है उन्हें पारदर्शी लिनेन टेप की पट्टियों से बांधिए। उसके बाद इन शीटों को लकड़ी अथवा लोहे की खानों वाली अल्मारियों में रखिए तथा कीटों को भगाने वाले रसायनों एवं धूमनकों का इस्तेमाल कीजिए। प्रतिकर्षी रसायनों से कीट हर्बेरियम नमूनों से दूर रहेंगे तथा धूमन से कीट नष्ट हो जाएंगे। इन रसायनों को इस्तेमाल करते समय सावधानी बरतिए क्योंकि ये बहुत खतरनाक होते हैं। केवल प्रमाणित रसायनों का ही प्रयोग कीजिए। सामान्य इस्तेमाल किए जाने वाले धूमक है सयनाइड गैस, पैराडाइक्लोरोबेंजीन, कार्बन डाइसल्फाइड। हर्बेरियम डिब्बों के भीतर डी.डी.टी. के तरल का छिड़काव करना अधिक सरल उपाय होता है। डी.डी.टी. का तैयारशुदा तरल बाजार में उपलब्ध होता है।

हर्बेरियम पेटियों के नमूनों को आप पर्याप्त गर्मी देकर भी सुरक्षित रख सकते हैं। हर पादप सामग्री को सीधे हर्बेरियम शीट पर माऊंट करना संभव नहीं है, उन्हें लकड़ी के डिब्बों में रखिए। सूखे फलों को लिफाफों में रखिए और उन पर लेबल लगाइए। सकुलैंट सामग्री को व्यापारिक फॉर्मल्डीहाइड के 5% जलीय घोल में परिरक्षित कीजिए। इससे आपकी सामग्री में विघटन नहीं होगा। इन पात्रों को संग्रहालय में रखिए। आकारिकीय अध्ययन के वास्ते अपने नमूनों को 50% या 70% ऐल्कोहल में परिरक्षित कीजिए। इससे उन नमूनों में विघटन नहीं होगा। पौधों तथा प्राणियों दोनों के संग्रह को अग्निरोधी तथा धूलरोधी इमारतों में भंडारित कीजिए। संभव हो तो संग्रहालय नमूनों को वातानुकूलित इमारतों में रखिए क्योंकि उससे सारे साल समान तापमान मिलता है।

हर्बेरियम में पौधों को एक छाँटे गए वर्गीकरण के अनुसार रखिए। एक ही स्थान से इकट्ठा किए गए सभी नमूनों को पौधों तथा प्राणियों दोनों को एक साथ रखिए। यदि आपका संग्रह बड़ा है तो उसे एक पूर्वनिर्धारित भौगोलिक क्रम में व्यवस्थित कीजिए क्योंकि इससे बाद में आपको स्पीशीज़ के भौगोलिक वितरण को समझने में सहायता मिलेगी। यदि आप कुछ स्पीशीज़ पहचान नहीं पाएं हैं तो उन्हें अलग रखिए तथा पहचान करने-कराने की कोशिश कीजिए। किसी एक खास क्षेत्र से नमूने (पौधे तथा प्राणी) इकट्ठे करने के बाद उनकी पहचान करना अनिवार्य है। फेमिलियों, जीनसों तथा स्पीशीज़ की पहचान के लिए एक कृत्रिम कुंजी तैयार कीजिए। "अभिनिर्धारण के लिए कुंजियां", इस विषय में आप इसी खंड की इकाई 6 में पढ़ेंगे।

पहचान के द्वारा आप निर्धारित कर सकेंगे कि आपने किस प्रकार का नमूना इकट्ठा किया है। यदि आप अभिनिर्धारित में प्रवीणता प्राप्त करना चाहते हैं तो स्पीशीज़ स्तर तक जाने की कोशिश कीजिए। अभिनिर्धारण का प्रयत्न करने से पहले नमूनों का वर्गीकरण कर लीजिए। साथ ही यह भी महत्वपूर्ण है कि आप को वर्गिकीय विधियों, वर्गिकी लक्षणों तथा प्रयोग में आने वाली नवीनतम परिभाषिक शब्दावली का भी ज्ञान हो। प्रासंगिक संदर्भ साहित्य का उपयोग कीजिए तथा उसे जब जरूरत हो तब देख सकने के लिए तैयार रखिए। पौधों तथा प्राणियों के मुख्य वर्गों के लिए एक कुंजी बनाइए। इससे पहचान करने में सुविधा होगी।

5.6 प्ररूप नमूने

जिन नमूनों पर स्पीशीज़ के नाम आधारित होते हैं उन्हे टाइप नमूनों के रूप में रखा जाता है। ऐसे नमूनों में अदला

बदली न कीजिए क्योंकि स्पीशीज़ के अभिनिर्धारण में ये संदर्भ-सामग्री का काम करेंगे। इन नमूनों को सुरक्षित तथा मानक संग्रहालयों में वाकि अन्य सामान्य संग्रह से अलग रखिए तथा इन्हें बड़ी सावधानी से हाथ लगाइए। यदि आपको अन्य सहकर्मियों से प्रार्थना आए तो इन्हें योग्यता प्राप्त विशेषज्ञों को काम चलाने के लिए उधार दे दीजिए और उन पर ठीक-ठीक लेबल लगा दीजिए। उन्हें सुरक्षित तथा कारगर वाहन साधन द्वारा भेजिए। यदि आप टाइप संग्रह को उपहार के रूप में अन्य कार्यकर्ताओं अथवा संग्रहालय को भेंट करें, तो भी इस संग्रह पर आपका नियंत्रण एवं अधिकार आजीवन बना रहता है। आप इन नमूनों पर "होलोटाइप" का लेबल भी लगा सकते हैं। यदि आपके सभी मूल नमूने और यहां तक कि अगर उनके डुप्लिकेट नमूने (आइसोटाइप) भी खो जाएं अथवा आग या अन्य किसी दुर्घटना में बरबाद हो जाएं तो आप फिर से नए नमूने इकट्ठा कर सकते हैं तथा उन्हें नीओटाइप का नाम दे सकते हैं। एक बात याद रखने की है कि टाइप नमूना उस टेक्सॉन विशेष का केन्द्र बिंदु तथा उसके नाम की आधारशिला होता है। टाइपों का विशेष महत्व होने के कारण हर्बेरियमों के संग्रहालय अध्यक्ष इनका विशेष ध्यान रखते हैं और इन्हे उधार के तौर पर अन्य वनस्पतिकीविदों को अथवा संस्थानों को भेजने की अनुमति नहीं देते।

हर्बेरियम नमूनों का अध्ययन करते समय हर्बेरियम शीटों को यहां से वहां रखने या लाने या ले जाने में हर संभव सावधानी बरतनी चाहिए। इन्हें हाथों से उठाना चाहिए ताकि ये मुड़ न जाएँ। हर्बेरियम शीटों को उस तरह न पलटिए जैसे कि किसी किताब के पन्ने पलटते हैं। इन्हें दोनों हाथों से उठाकर एक के ऊपर एक रखिए। यदि आपने इन शीटों को ठीक से नहीं रखा, उठाया तो नमूनों को क्षति पहुंचने की बहुत संभावना होती है।

महत्वपूर्ण हर्बेरियम

हर्बेरियम वह स्थान होता है जहां किसी भी मान्यताप्राप्त वर्गीकरण प्रणाली के अनुसार सुखाए गए एवं माऊंट किए गए नमूने भंडारित किए जाते हैं। नमूनों की सुरक्षा तथा टाइप नमूनों की भी सुरक्षा की ओर खास ध्यान दिया जाता है ताकि उन्हें हर प्रकार के कीट, धूल, सीलन एवं अन्य बाहरी क्षतियों से बचाया जा सके। हर्बेरियमों के द्वारा संग्रहित पौधों के विषय में विविध प्रकार से जानकारी मिलती है जैसे कि रिकार्ड की गयी टिप्पणियां, फ़ोटो तथा हाथ से बनाए गए चित्र आदि। सभी हर्बेरियम वनस्पतिक उद्यानों से संबंधित रहते हैं।

आपकी सूचनार्थ कुछ महत्वपूर्ण हर्बेरियम नीचे दिए जा रहे हैं :

1. Herbarium of Royal Botanic Gardens, Kew, Richmond, Surray, Great Britain.
2. Herbarium of British Museums (National History), London, Britain.
3. Herbarium of New York Botanical Garden, New York, U.S.A.
4. Herbarium of Missouri Botanical Garden, St. Louis.
5. Central National Herbarium (Herbarium of Indian Botanic Garden) , Calcutta, India.
6. Herbarium of Forest Research Institute, Dehradun, India.
7. Southern Circle Herbarium, Coimbatore, India.
8. Western Circle Herbarium, Poona , India.
9. Eastern Circle Herbarium, Shillong, Assam, India.
10. Herbarium of National Botanical Garden, Lucknow (India).
11. Herbarium of Indian Agricultural Research Institute, New Delhi, India.

5.7 सारांश

इस इकाई में आपने पढ़ा कि :

- किसी क्षेत्र की वनस्पति को समझने के लिए पारिस्थितिकीय एवं पादपसमाजिकीय अध्ययनों का करना महत्वपूर्ण है।

- हर्बेरियमों का होना पादप नमूनों के स्थायी भण्डार होना है और ये पौधों के विषय में सूचना प्राप्त करने के स्रोत होते हैं।
- लंदन का किमू का रॉयल बोटेनिकल गार्डन एक अतिविशेष संस्थान है।
- हावड़ा (बंगाल) का वनस्पति उद्यान दक्षिण पूर्व एशिया का सबसे बड़ा और सबसे पुराना उद्यान है।
- चिड़ियाघर अनेकानेक स्पीशीज को विलुप्त होने से बचाते हैं।
- कुछ क्षेत्रों को वन्य जीवन अभ्यारण्य अथवा राष्ट्रीय उपवन घोषित करने से वहां का, पारितंत्र समेत प्राकृतिक समुदाय परिरक्षित हो जाता है।
- वर्गिकीय अनुसंधान के वास्ते पौधों तथा प्राणियों का अभिनिर्धारण एवं उनकी देख भाल करना अनिवार्य है।

5.8 अंत में कुछ प्रश्न

1. वर्गिकी अध्ययन के लिए क्षेत्र प्रेक्षणों के महत्व का संक्षेप में विवेचन कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2. वनस्पति उद्यानों की भूमिका की रूपरेखा दीजिए।

.....

.....

.....

3. चार्ल्स डार्विन ने जो "वृद्धि के लिए रोक" कहा था, उससे आप क्या समझते हैं, स्पष्ट कीजिए।

.....

.....

.....

.....

4. टाइप नमूने की परिभाषा लिखिए।

.....

.....

.....

.....

5.9 उत्तर

बोध प्रश्न

1. क) पारिस्थितिकीय प्रेक्षणों से हमें इन सबको समझने में सहायता मिलती है — संग्रहणों का स्थान, आवास के प्रकार तथा मृदा-विशिष्टताएं, जबकि पादपसमाजिकीय प्रेक्षणों से समष्टियों के अपने-अपने भीतर की अथवा उनके बीच की प्राकृतिक विभिन्नता को निर्धारण करने में मदद मिलती है।

   ख) व्यापक तौर पर नमूनों का बड़ा संग्रह करने से नमूनों के बीच के संबंधों को अधिक परिशुद्धता के साथ अभिनिर्धारण करने का एक साधन प्राप्त हो जाता है तथा उससे यह भी पता चल जाता है कि कोई एक विभिन्नता कालोनियों से जुड़ी या उन तक सीमित है या आवासों से या क्षेत्रों से। इस सूचना से हमें यह निर्धारण करने में सहायता मिलती है कि कोई समष्टि किस उपस्पीशीज़ किसी किस्म अथवा फॉर्मा को दर्शाती है।

2. क) एक ऐसे संग्रह जो प्रेस किए हुए सूखे नमूनों का ही तथा वर्गीकरण की किसी वैद्य प्रणाली के अनुसार व्यवस्थित किया गया हो तथा संदर्भ अध्ययन के लिए उपलब्ध हो, हर्बेरियम कहलाता है।

   ख) नमूनों का संग्रह करना इसलिए अनिवार्य है कि ये ही स्थायी भण्डार होते हैं तथा पौधों एवं प्राणियों (वनस्पतिजात एवं प्राणिजात) के विषय में सूचना स्रोत भी ये ही होते हैं।

   ग) कागज की एक-एक शीट पर माऊंट करने तथा इन्हें गड्डियों के रूप में भंडारित करने की आज की प्रणाली को कार्ल वॉन लिनियस (Carl von Linnaeus) ने प्रचलित किया था।

3. i) मनोरंजन

   ii) पर्यावरण

   iii) जॉन एवेलिन

   iv) 1545-1550

   v) परिरक्षित, जीवित

4. क) वन्य जीवन अभ्यारण्य में प्राकृतिक समुदाय को उसके परितंत्र के समेत परिरक्षित किया जाता है और वहां पक्षियों तथा स्तनियों की किसी भी स्पीशीज़ को मारना, उसका शिकार करना, गोली से दागना अथवा पकड़ना वर्जित होता है। राष्ट्रीय उपवन वह क्षेत्र होता है जिसमें पर्यावरण को तथा प्राकृतिक एवं ऐतिहासिक वस्तुओं को संरक्षित किया जाता है और साथ ही उसके भीतर के वन्य जीवन को भी बरकरार रखा जाता है।

   ख) i) 412

   ii) 80

   iii) अप्रैल 1, 1973, World Wide Fund for Nature

अंत में कुछ प्रश्न

1. वर्गिकीय अध्ययन पर कार्य करते हुए हमें टेक्सॉनों के वितरण, टेक्सानों के भीतर पायी जाने वाली विभिन्नता और पौधों के अनुकूलनों को समझना होता है। यह तभी संभव होता है जब हम बाहर निकल कर क्षेत्रों में प्रेक्षण करें। आकारिकीय लक्षणों को पर्यावरण कारकों के साथ जोड़ कर समझा जाता है जैसे कि प्रकाश, नमी तथा मृदा उर्वरता के साथ जोड़ कर। क्षेत्र अध्ययनों से हमें इन बातों के बारे में भी जानकारी मिलती है — पारिस्थितिक प्ररूप (इकोटाइप संबंधी) विभिन्नता, मृदीय विशेषीकरण, परागण क्रियाविधि, संकरण पर आवास का प्रभाव, पादप-पादप भक्षी परस्पर क्रियाएं तथा बीज प्रकीर्णन क्रियाविधि।

2. वनस्पतिक उद्यान की भूमिकाएं इस प्रकार है :

   - वैज्ञानिक आधार पर महत्वपूर्ण पौधों को उगाना और उनका रख रखाव।

- उन पौधों को बनाए रखना जो विलोप के खतरे में आए हुए हों।
- परिरक्षित तथा जीवित पौधों के द्वारा वर्गिकीय अध्ययनों में सुविधा प्रदान करना।

3. जिसे चार्ल्स डार्विन ने "वृद्धि पर रोक" की संज्ञा दी वह संख्या को घटाए रखता है, ऐसा दो प्रकार से होता है — एक तो समष्टि से जानवरों को समाप्त करके और दूसरे यह सुनिश्चित करके कि जनन संबंधी चरम आयु पर थोड़े ही प्राणी जीवित बच पाएं। प्राणियों की समष्टियों के नियमन की दो विधियां हैं एक तो रोक और दूसरा हटाना। रोक अनिवार्यत: संतति निरोध है जबकि हटाना अधिशेष जानवरों को मार कर होता है।

4. टाइप नमूने वे नमूने होते हैं जिन पर किसी तत्व विशेष का नाम आधारित होता है। यह टेक्सॉन का केन्द्र विंदु तथा नाम की आधारशिला होता है। एक बार पदसंज्ञा दे देने के बाद टाइप को बदला नहीं जा सकता। टाइपों का महत्व होने के कारण, हर्बेरियमों के संग्रहालय अध्यक्ष उनकी खास देखभाल करते हैं। टाइप नमूनों को केवल तभी हाथ लगाना चाहिए जब अनिवार्य हो। अनेक हर्बेरियमों के संग्रहालय अध्यक्ष ऐसे नमूनों को बाहर अन्य वनस्पतिकीविदों को अथवा संस्थानों को उधार मांगे जाने पर भी नहीं देते।

इकाई 6 वर्गिकीविद् के कार्यसाधन - II

इकाई की रूपरेखा

6.1 प्रस्तावना
उद्देश्य

6.2 वर्गिकीविद् के कार्यसाधन — प्रयोगशाला से संबद्ध:
आकारिकीय प्रमाण
शारीरिय प्रमाण
परागाणुविज्ञानीय प्रमाण
भ्रूणविज्ञानीय प्रमाण
कोशिकाविज्ञानीय प्रमाण
पुरावनस्पतिकीय प्रमाण
शरीरक्रिया प्रमाण
परिस्थितिकीय प्रमाण

6.3 पादप वर्गिकी में वर्गिकी — पुस्तकालय प्रलेखन:
सामान्य वर्गिकी अनुक्रमणिकाएं
वनस्पतिजात
मॉनोग्राफ
संशोधित संस्करण
मैनुअल
शोध पत्रिकाएं
शब्दकोश
प्राणिवर्गिकी में काम आने वाले संदर्भ ग्रंथ
प्राणिविज्ञानीय नामकरण का अंतर्राष्ट्रीय ट्रस्ट
जर्नलों की संदर्शिकाएं

6.4 अभिनिर्धारण के लिए कुंजियां, पौधे तथा प्राणी
कुंजियां क्या होती हैं
कुंजियों के प्रकार
कुंजियों का निर्माण
कुंजी को कैसे प्रयोग किया जाए
कुंजी को कैसे तैयार किया जाए
पंच कार्ड

6.5 हर्बेरियम का प्रयोग—आचार
नमूनों का संग्रहण
उधार मांगे गए नमूने
सामग्री का विनिमय
सहकर्मियों के साथ संबंध

6.6 सारांश

6.7 अंत में कुछ प्रश्न

6.8 उत्तर

6.1 प्रस्तावना

इकाई 5 में आप वर्गिकी के पारिस्थितिकीय तथा पादपसमाजिकीय पहलुओं के तथा हर्बेरियम कार्यविधि के

विषय में पढ़ चुके हैं। इस इकाई में आप आकारिकी, भ्रूणविज्ञान, शारीरिय, पारिस्थितिकी तथा जीवविज्ञान के अन्य क्षेत्रों से एकत्रित की जाने वाली वर्गिकीय जानकारी के विषय में पढ़ेंगे। आप उपलब्ध वर्गिकीय साहित्य और पौधों तथा प्राणियों के अभिनिर्धारण की कुंजियों के विषय में जानेंगे तथा हर्बेरियम आचार से परिचित होंगे। आपको जान लेना चाहिए कि वर्गिकीय साहित्य के साथ एक विधिवत् सम्पर्क बनाने से, जहां हमें एक ओर अभिनिर्धारण एवं परिचय प्राप्त होता है वहीं दूसरी ओर आकारिकी, आर्थिक महत्व तथा शैक्षिक महत्व के उद्देश्यों में सहायता मिलती है। इस इकाई को पढ़ने के बाद वर्गिकी के विशाल साहित्य भंडार का तथा भविष्य में इसकी विकास क्षमता का आपको दिग्दर्शन हो सकेगा।

उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- जीव विज्ञान की विविध अध्ययन-शाखाओं से वर्गिकीय सूचना का निष्कर्ष निकाल सकेंगे,
- पौधों तथा प्राणियों के अभिनिर्धारण के वास्ते वर्गिकीय साहित्य की गणना कर सकेंगे,
- पौधों तथा प्राणियों के अभिनिर्धारण के वास्ते कुंजियाँ बना सकेंगे,
- हर्बेरियम आचार का वर्णन कर सकेंगे।

6.2 वर्गिकीविद् के कार्यसाधन : प्रयोगशाला से संबद्ध

आधुनिक वर्गीकरण प्रणालियाँ नानाविध प्रमाणों पर आधारित होती हैं। वास्तव में प्राकृतिक वर्गीकरण तभी प्राप्त किया जा सकता है जब उसे तमाम अंगों तथा जड़ों के प्रकार, स्तम्भ के प्रकार, पुष्पक्रम आदि से मिले सभी प्रमाणों का विश्लेषण एवं उनके समन्वय से तैयार किया गया हो। मोटी-मोटी ऊपरी आकारिकी से वर्गिकी का आधारस्वरूप तो प्राप्त हो जाता है मगर उसके साथ अन्य क्षेत्रों से प्राप्त सूचना को भी जोड़ना चाहिए जैसे कि शरीर, परागाणुविज्ञान, भ्रूणविज्ञान, कोशिकाविज्ञान, पुरावनस्पतिकी, कार्यिकी तथा पारस्थितिकी से। अगले उपभागों में हम इनमें से सभी का एक-एक करके विवेचन करेंगे (चित्र 6.1)।

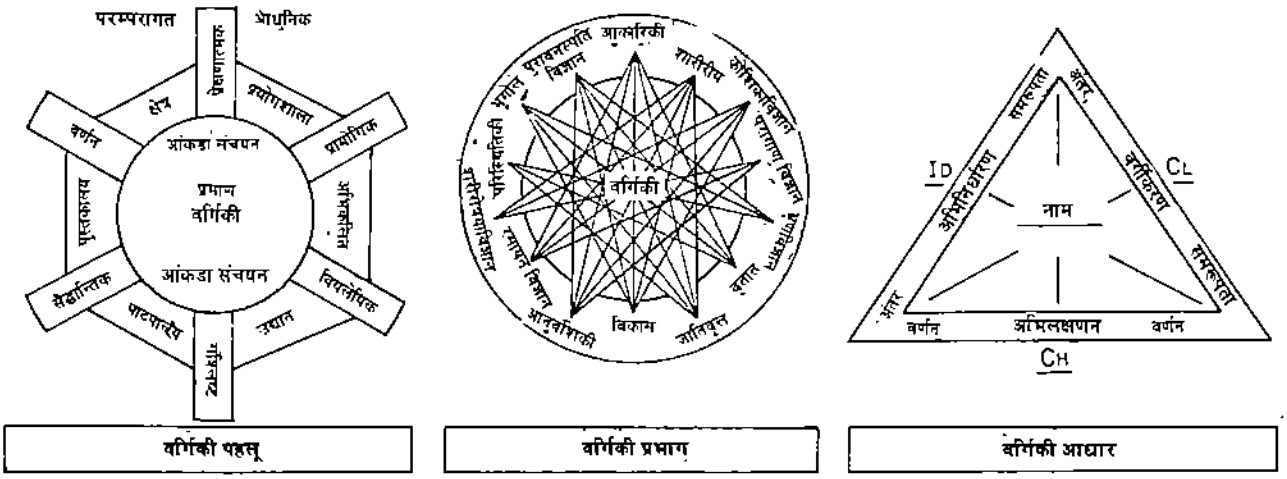

चित्र 6.1 : वर्गीकरण विज्ञान: आधारभूत कार्यविधियां एवं प्रणालियां। ये सभी परस्पर संबंधित हैं तथा नाम से भी संबंधित हैं।

6.2.1 आकारिकीय प्रमाण

आकारिकी में पौधों तथा प्राणियों की संरचना एवं स्वरूप का अध्ययन किया जाता है और इसमें भी प्राय: जीवधारी तथा उसके संघटक अंगों का ही अध्ययन होता है। आकारिकीय प्रमाण से पादप विशिष्टता अभिनिर्धारण, वर्गीकरण तथा संबंधों के वास्ते एक आधारभूत भाषा प्राप्त होती है। आकारिकीय आंकड़े सरलता से देखे जा सकते तथा प्राप्त किए जा सकते हैं और इसीलिए वे वर्गिकीय अध्ययनों में प्राय: सबसे ज्यादा इस्तेमाल किए जाते हैं। शाकीय अथवा काष्ठीय पौधों का वृद्धि-स्वभाव वर्गीकरण में उपयोगी है। जड़ों के संरचनात्मक प्रकारों जैसे कि मूसला जड़तंत्र (तर्कुरूपी, Fusiform अथवा कुम्भीरूपी, Napiform) तथा अपस्थानी जड़तंत्र (गुच्छित मूल, Fascicled, तंतुकी, Fibrous) से पौधों को दो प्रधान वर्गों एकबीजपत्री तथा द्विबीजपत्री में विभाजित किया जाता है। एकबीजपत्रियों में बीजपत्र की संख्या एक होती है

(मक्का का दाना) और इनमें विशिष्टत: अपस्थानी जड़ें होती हैं। इसके विपरीत द्विबीजपत्रियों में बीजपत्रों की संख्या दो होती है (अरंडी) और इनमें विशिष्टत: मूसला जड़तंत्र पाया जाता है (चित्र 6.2)।

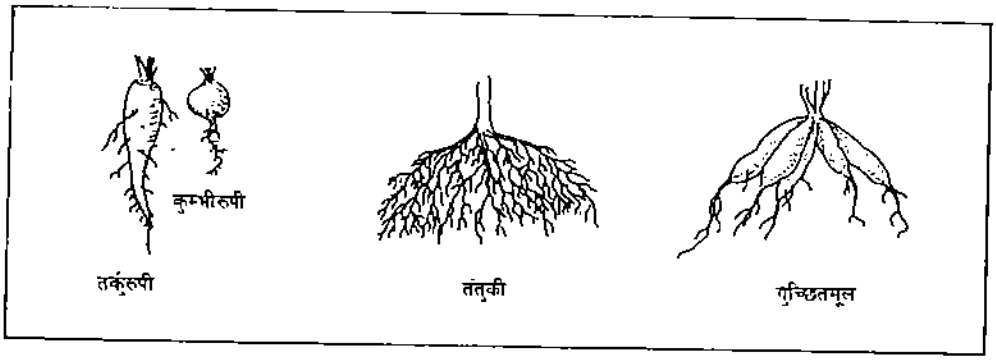

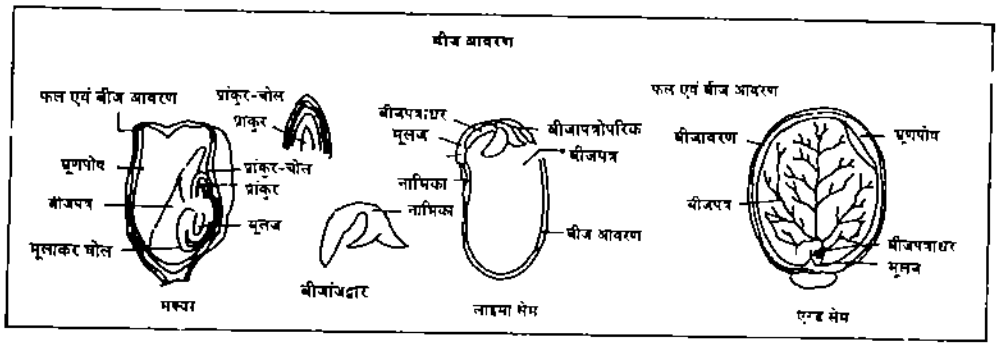

चित्र 6.2 : जड़ के संरचना प्रकार (तुर्कुरूपी, कुम्भीरूपी, गुच्छित मूल, तंतुकी)
बीजों के प्रकार: एक बीज पत्री (मक्का का दाना) द्विबीजपत्री (लाइमा सेम, एरंड सेम)

अध:भूमिक कायिक संरचनाओं से भी वर्ग विशेष की विशेषताएं प्रकट होती हैं, जैसे कि प्रकंद (Rhizome), घनकंद (Corm) तथा शल्ककंद (Bulb) से। साथ ही पौधों का द्विबीजपत्रियों तथा एकबीजपत्रियों के दो वर्गों में विभाजन करना पत्तियों तथा उनके शिराविन्यास पर भी आधारित होता है। एकबीजपत्रियों में विशिष्टत: समांतर शिराविन्यास होता है, जबकि द्विबीजपत्रियों में विशिष्टत: जालकीय शिराविन्यास होता है (चित्र 6.3)।

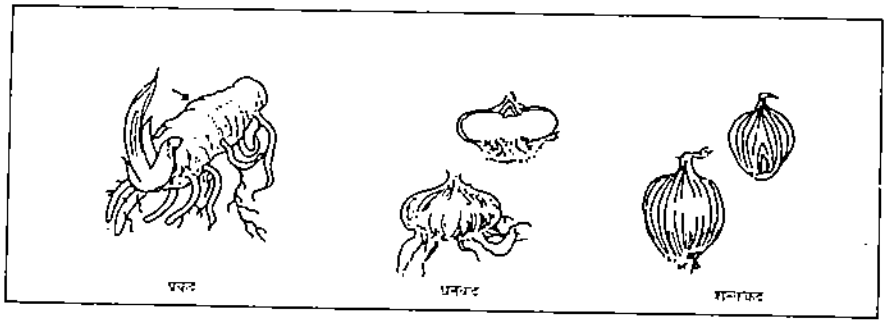

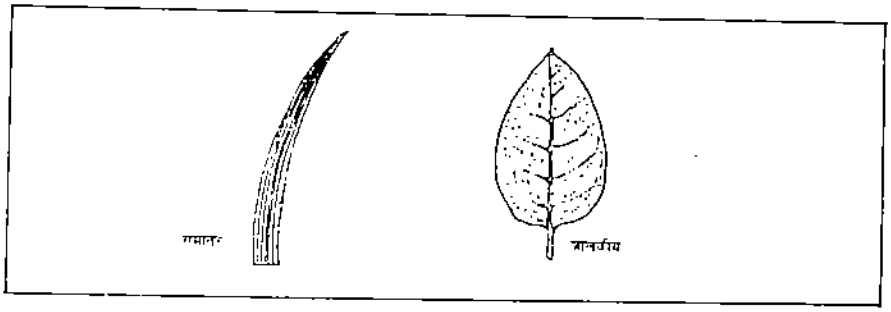

चित्र 6.3: स्तंभ के संरचना प्रकार (प्रकंद, घनकंद, शल्ककंद) शिराविन्यास के प्रकार :
i) समांतर ii) जालकीय

सफल जनन से जुड़े प्राकृतिक वरण के कारण विविध स्पीशीज़, जीनसों तथा फ़ेमिलियों के भीतर फूलों, फलों तथा बीजों के जनन लक्षणों में एक आधारभूत समानता बनी रहती है। हम इन अभिधारणाओं पर पहले ही इकाई 5 में चर्चा कर आए हैं। इस सामान्य स्थिरता (एकसमानता) से वर्गिकीय समूहों की लक्षण विशेषता दर्शाने की दिशा में विभिन्न संरचनाएं

आधारभूत महत्व है, ऐसा इसलिए कि वनस्पतिक लक्षणों की अपेक्षा पुष्पी लक्षण अधिक स्थिर होते हैं। द्विबीजपत्रियों में चतुष्टयी अथवा पंचतयी पुष्प होते हैं जबकि एकबीजपत्रियों में त्रितयी पुष्प होते हैं। जनन लक्षण बहुत संख्या वाले होते हैं, अत: इनसे हमें विभिन्न टेक्सॉनों में विभेद करने की दृष्टि से अधिक आधार-लक्षण मिल जाते हैं। पुष्प आकारिकी को परागण-विधि तथा विशेषित जनन-विधि के साथ जोड़ा जा सकता है। वायु-परागित टेक्सानों में प्राय: एकलिंगी ह्रासित फूल होते हैं जो स्वयं अकेले अस्पष्ट होते हैं। पौधों के जनन लक्षणों में योगदान देने वाली जो नानाविध विशेषताएं हैं उनमें ये सब शामिल हैं — दलपुंज (पंखुड़ियों) का रंग, परागण करने वाले के लिए मार्गदर्शक, पुष्पी चक्रों की संरचना, पुंकेसर संख्या, परागकोश की स्थिति, अंडाशय का स्थान, स्त्रीकेसरों की संख्या, परिपुष्प (पेरिऐंथ) भागों की संख्या एवं उनका स्थान, पुष्पक्रम का प्रकार, और फल एवं बीजों का प्रकार, आदि। सरसों की स्पीशीज़ (क्रूसीफेरी) तथा गाजर की स्पीशीज़ एवं उसके संबंधियों (अम्बेलिफेरी) के परिपक्व फलों में एक विशेष निदान-लक्षण पाया जाता है। क्रूसीफेरी का फल सिलीक (Silique) अथवा सिलिकिल होता है तथा अम्बेलीफेरी का फल साइज़ोकार्प होता है।

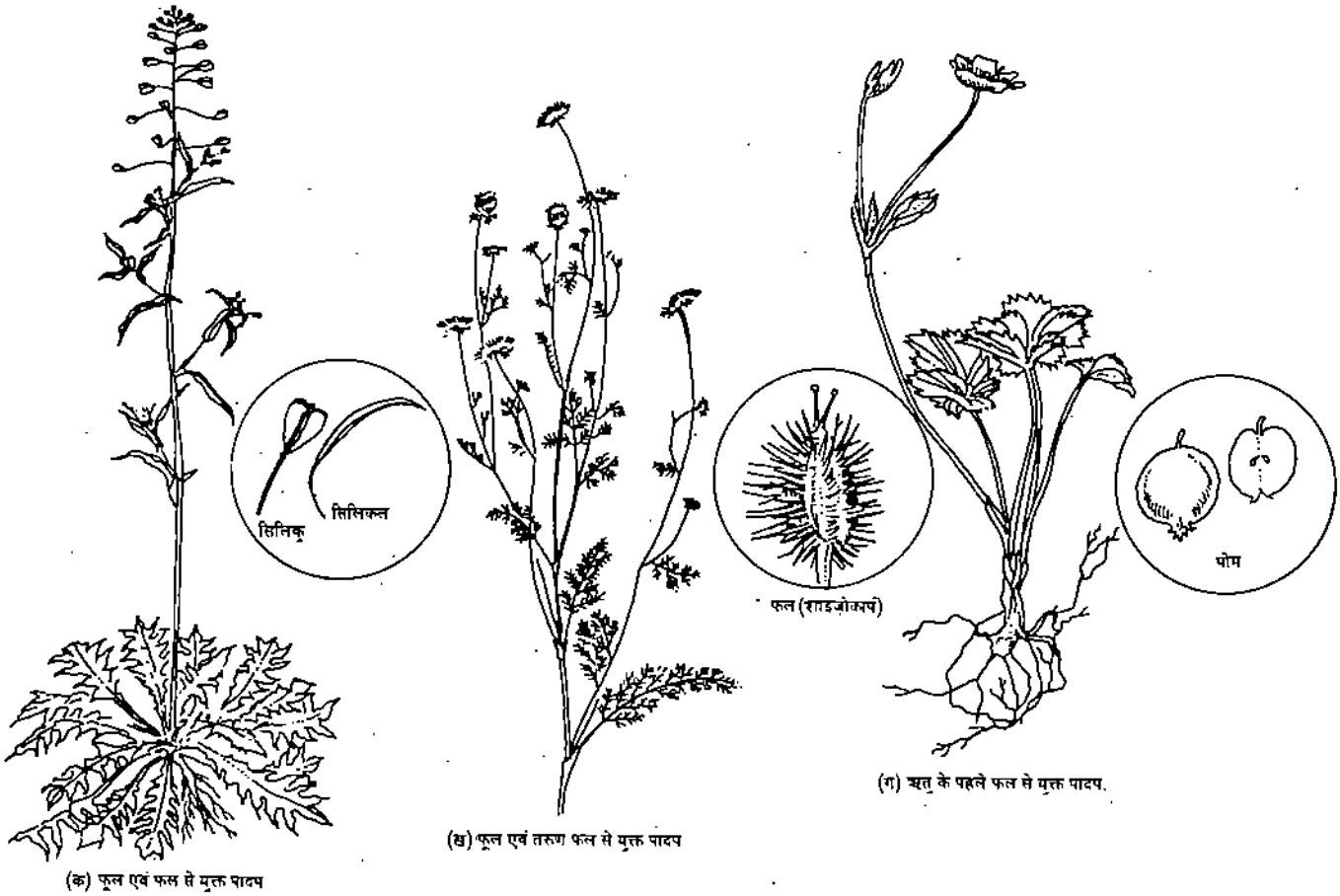

चित्र 6.4 : फल संरचना के प्रकार।
सिलिक (क्रूसिफेरी)
शाइज़ोकार्प (अम्बेलीफेरी)
पोम (रोज़ेसी)

इन फेमिलियों के अभिनिर्धारण को सुनिश्चित करने के वास्ते उनके परिपक्व फलों को शामिल करना चाहिए, इसी प्रकार गुलाब की स्पीशीज़ (रोज़ेसी, Rosaceae) के वर्गीकरण में उनके फूलों तथा फलों का होना जरूरी है। इनके फूल प्राय: त्रिज्यासममित (Actinomorphic) एवं परिजायांगी (Perigynous) से लेकर जायांगोपरिक (Epigynous) तक तथा फल मांसल पोम के प्रकार के होते हैं (चित्र 6.4)। स्क्रिफवर्ट (Scrophulariaceae) के दल पुंजों तथा पुंकेसरों से इस फ़ेमिली के भीतर विविध वर्गीकीय पदस्तरों के वर्गीकरण के लिए बहुत सी जानकारी प्राप्त होती है। इसके दलपुंज में द्विओष्ठीय 4-5 सहजात पंखुड़ियां होती हैं तथा पालियों से एकांतरक्रम बनाते हुए 4 द्विदीर्घी (Didynamous) इलोपरिक पुंकेसर का पुमंग है (चित्र 6.5)।

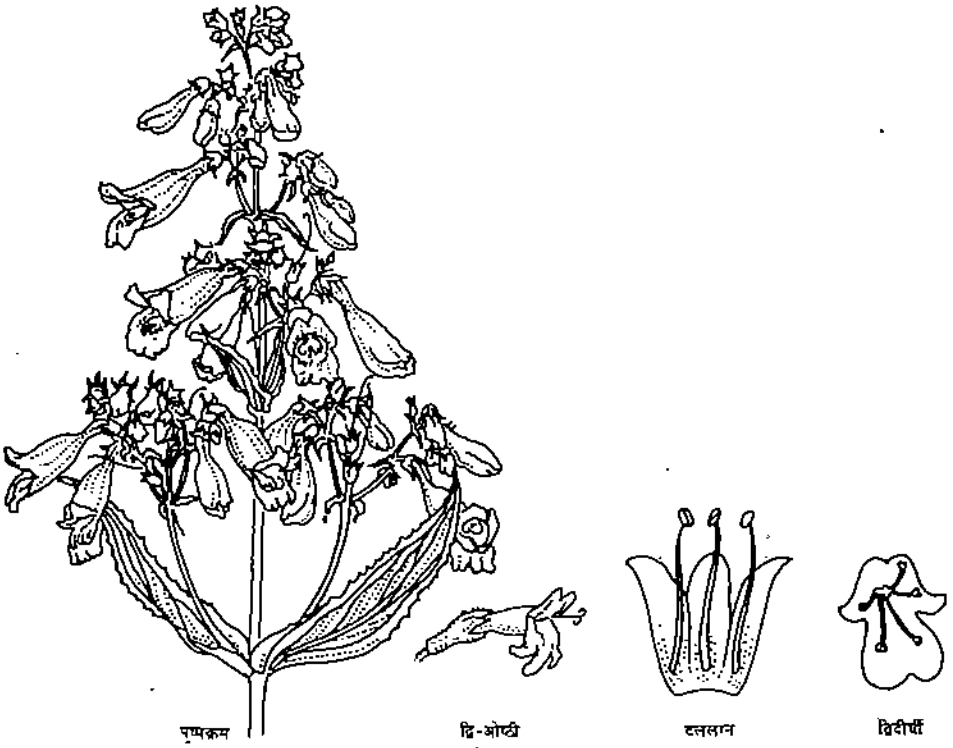

चित्र 6.5 : फेमिली स्क्रापुलेरिएसी: पुष्पक्रम क) दलपुंज आकृति (द्विओष्ठीय), ख) पुंकेसर स्थान दललग्न, ग) पुंकेसर व्यवस्था (द्विदीर्घी)

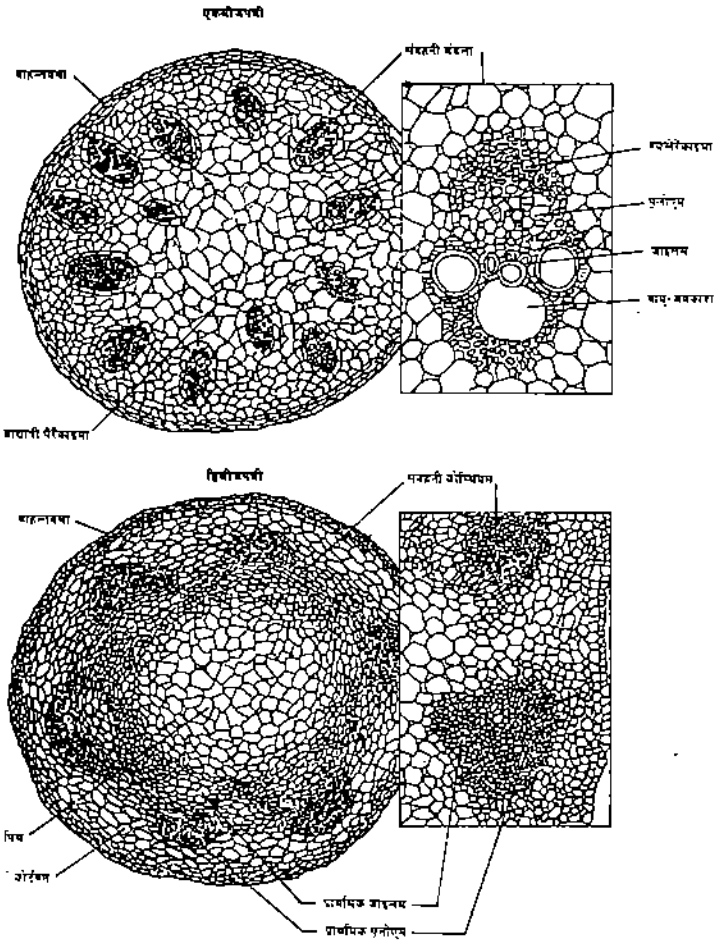

चित्र 6.6 : इस आरेख में एकबीजपत्री तथा एक द्विबीजपत्री स्तंभ का शारीर दर्शाया गया है। एकबीजपत्री स्तंभ में संवहनी बंडल समूचे पैरेंकाइमा में छितराए होते हैं जबकि द्विबीजपत्री स्तंभ में संवहनी बंडल अधिक व्यवस्थित होकर एक निश्चित संकेंद्रीय वलय में बने होते हैं। कुछ द्विबीजपत्रियों में बंडलों के बीच-बीच में संवहनी केम्बियम बन जाता है जो अंतत: सब तरफ फैले हुए एक ठोस संवाहक ऊतक का रूप ले लेता है।

6.2.2 शारीरिय प्रमाण

शरीर वह अध्ययन क्षेत्र है जिसमें पौधों तथा प्राणियों की संरचना, उनकी संघटना तथा कोशिकाओं एवं ऊतकों के परिवर्धन का अध्ययन किया जाता है। एक शताब्दी से अधिक के समय से वर्गिकीविद् तुलनात्मक पादप शरीर का ही वर्गीकरण में एक सहायक के तौर पर उपयोग करते आए हैं। स्तंभों तथा जड़ों के शारीरिय लक्षणों का महत्व जिम्नोस्पर्मों की ऐंजियोस्पर्मों से तथा एकबीजपत्रियों को द्विबीजपत्रियों से पृथक करने में रहा है। एक बीजपत्री स्तंभ में संवहनी बंडल समूचे पैरेंकाइमा में छितराए रहते है जबकि द्विबीजपत्रियों में ये अधिक व्यवस्थापूर्ण होकर एक निश्चित सकेंद्रीय वलय के रूप में पाए जाते हैं। कुछ द्विबीजपत्रियों में बंडलों के बीच-बीच में संवहनी केम्बियम बन जाता है जो अंततः सब तरफ फैल-जुड़ कर एक ठोस संवाहक ऊतक बना लेता है (चित्र 6.6)।

जिम्नोस्पर्मों में सामान्यतः पायी जाने वाली ट्रेकीडों से एंजियोस्पर्मों के द्वितीयक ज़ाइलम में पाऐ जाने वाले विशेषित वाहिका तत्वों के रूप में इनका एक उत्तरोत्तर उन्नत होता जाता श्रृंखला क्रम पाया जाता है। वाहिका काष्ठ से लेकर अति विशेषित वाहिका तक की सभी विशेषीकरण-अवस्थाओं के तत्व, समकालीन पुष्पी पौधों में पाए जाते हैं। वाहिका काष्ठ से युक्त एंजियोस्पर्म आदि माने जाते हैं (चित्र 6.7)।

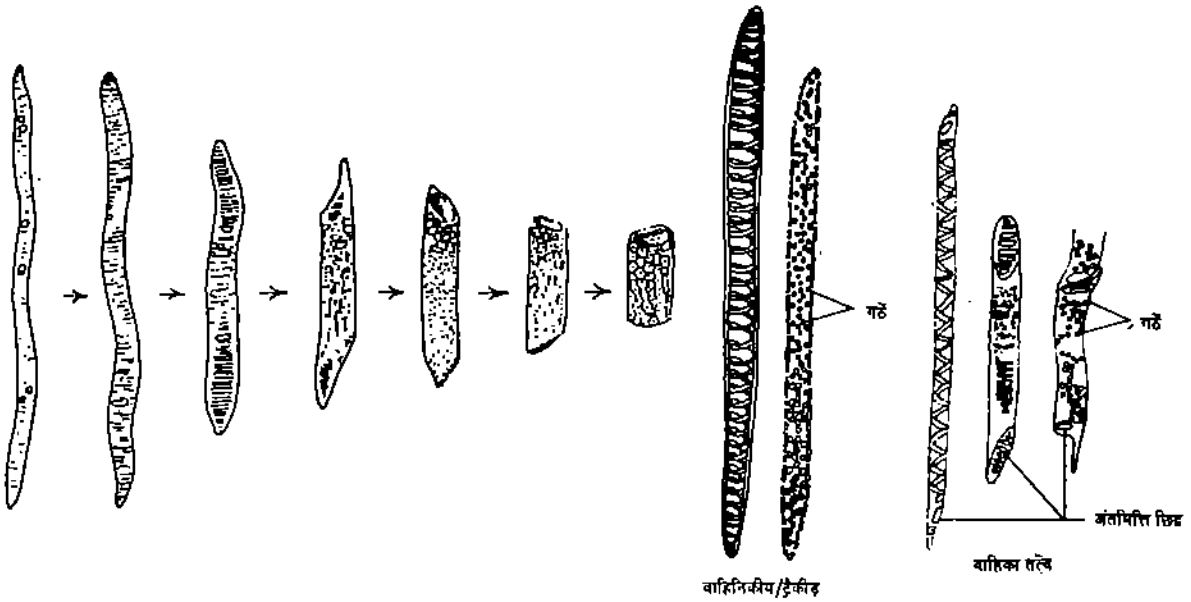

चित्र 6.7 : तत्व के प्रकारों की आकारिकी प्रवणता जिसमें एक परिकल्पित श्रृंखला दर्शायी गयी है। इसमें आप देखेंगे कि बायीं ओर दिखायी गई, वृत सीमांत वाले गर्तों से युक्त आछिद्रित जिम्नोस्पर्मी ट्रेकीड से एक एंजियोस्पर्मी ट्रैकीड बन रही है जिसमें सीढ़ीनुमा गढ़े बन जाते हैं। उससे आगे एक लंबी वाहिका बन जाती है जिसमें सीढ़ीनुमा गढ़े तथा बहुसंख्यक सीढ़ीनुमा शलाकाएं बनी होती हैं, और उसके बाद निरंतर छोटी होती जाती हुई अधिक चौड़ी वाहिकाएं आती हैं जिनमें एकांतर क्रम में अथवा विपरीतस्थ सरल छिद्र-प्लेटें एवं अनुप्रस्थ अंत्य दीवारें होती हैं।

ट्राइकोमों की उपस्थिति और उनकी संरचना तथा साथ ही विभिन्न टेक्सॉनों में उनके विविध वितरण नमूने पाया जाना वर्गिकीय दृष्टि से महत्वपूर्ण है। ट्राइकोमों की विभिन्नता के विभिन्न स्वरूपों में वर्गीकरण के लक्षण उपलब्ध होते हैं। स्टोमेटा के प्रकार वर्गिकी में उपयोगी होते हैं। द्विबीजपत्री पौधों के स्टोमेटा में वृक्काकार द्वार कोशिकाएं होती हैं तथा एकबीजपत्री पौधों के स्टोमेटा में डम्बेल आकृति की द्वार कोशिकाएं पायी जाती हैं (चित्र 6.8)।

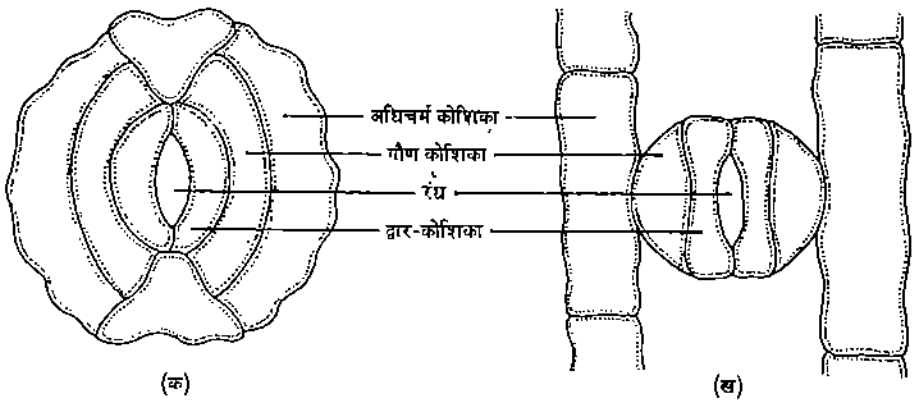

चित्र 6.8 : इन आरेखों में द्विबीजपत्री पौधों की प्रतिरूपी वृक्काकार द्वार-कोशिकाएं दर्शायी गयी हैं (क) और एकबीजपत्री पौधों की द्वार कोशिकाएं डम्बेल आकृति की होती हैं (ख)।

प्राणियों में शारीरिय भागों के रूप में पर्याप्त संख्या में वर्णन योग्य लक्षण मिलते हैं तथा इन पर आधारित वर्गीकरण से कुछ निश्चित निष्कर्ष निकलते हैं। यह बात स्तनियों के निम्नतर टेक्सानों के एक परीक्षण-मामलों में कड़े शरीर भागों के लिए सही पायी गयी जबकि त्वचा से ऐसा नहीं हो सका। इसमें पहला कदम तो यह है कि स्तनियों में संग्रहालय नमूनों के परम्परागत प्रकार के शारीरिय आंकड़ों के अलावा और भी आंकड़े लिए जाएं जैसे कि शिश्नास्थि, कर्णास्थियां और फिर उसके बाद कोमल भागों को। तदनन्तर दूसरा कदम यह होगा कि शारीरिय प्रेक्षणों को कोशिका विज्ञान और उसमें विशिष्टत:केंद्रक विज्ञान के गहनतर स्तरों को लिया जाए।

6.2.3 परागाणुविज्ञानीय प्रमाण

परागाणुविज्ञान में पराग तथा बीजाणु का अध्ययन किया जाता है। परागकणों के वर्गिकी-लक्षण में ये सब आते हैं — कणों की भित्ति-संरचना, ध्रुवता, सममिति, आकृति एवं उनका साइज़। एंजियोस्पर्मों में परागकण दो प्रकार के होते हैं — एक विदरकी तथा त्रिविदरकी। एक विदरकी परागकण नौकाकार होते हैं तथा इनमें एक लम्बी अंकुरण दरार एवं एक अंकुरण छिद्र होता है। यह लक्षण आदिम द्विबीजपत्रियों की तथा अधिसंख्य एकबीजपत्रियों की विशेषता है। कुछ परागिकीविदों की राय में प्रथम पुष्पी पौधों में एकविदरकी परागकण होते थे। त्रिविदरकी परागकण गोलाकार, सममित, तीन अंकुरण छिद्रों से युक्त होते हैं, तथा ये विशिष्ट लक्षण के रूप में उन्नत द्विबीजपत्रियों में पाए जाते हैं।

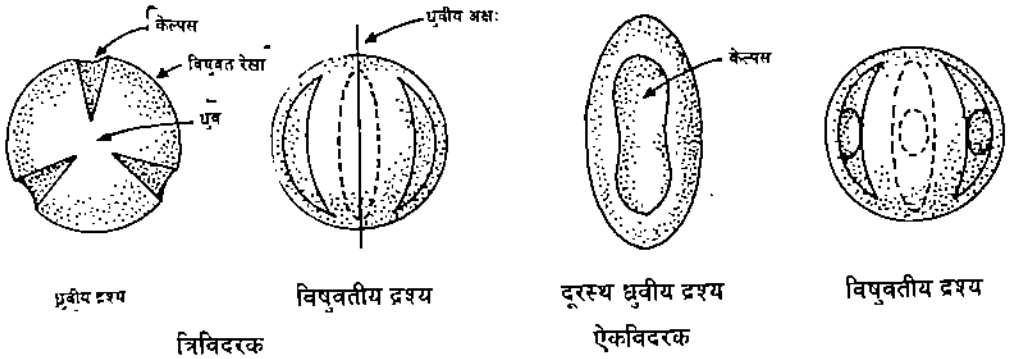

चित्र 6.9 : पराग-आकारिकी।

6.2.4 भ्रूणविज्ञानीय प्रमाण

भ्रूणविज्ञान में स्पोरजनन, युग्मकजनन तथा भ्रूण की एवं परिवर्धन की क्रमिक अवस्थाओं का अध्ययन किया जाता है। पराग प्रकीर्णन के समय परागकणों में केंद्रकों की संख्या दो या तीन होती है। समस्त एंजियोस्पर्मों में भ्रूण विज्ञानीय समता का उदाहरण दोहरा निषेचन होना है। बीजपत्रों की संख्या के आधार पर एकबीजपत्रियों को द्विबीजपत्रियों से पृथक रखा गया है। भ्रूणविज्ञान के अनुसार द्विकेंद्रकी पराग कण का घास की फ़ेमिली में वर्गिकीय महत्व है, इस फ़ेमिली में हमें अन्य कई लक्षणों के साथ जोड़कर फ़ेमिली के वर्गीकरण में इस्तेमाल किया गया है। प्राणियों में भ्रूणविज्ञानीय प्रमाण का बहुत महत्व है, उदाहरणत: *ऐनॉफ़िलीस मेक्यूलिपेन्निस* के सम्मिश्र को उनके अंडे की संरचना के आधार पर अनेक समाभासी (Sibling) स्पीशीज़ में तोड़ा गया है। *डैकस ओलीं* तथा *सेरेटाइटिस केपिटाटा* (फल मक्खियां) के तमाम अंडों को अग्र ध्रुव के लक्षण के आधार पर विभाजित किया गया है तथा सफेद मक्खियों का संपूर्ण वर्गीकरण मुख्यत: उनके प्यूपों की संरचना पर आधारित है।

ऐन्जियोस्पर्म के भ्रूण-कोष प्रकार

प्रकार	गुरुबीजाणु मातृ कोशिका	विभाजन I	विभाजन II	विभाजन III	विभाजन IV	विभाजन V	प्रौढ़ भ्रूण-कोष
एकबीजाणुज 8-न्यूक्लीय पोलीगोनम प्ररूप		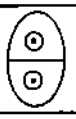	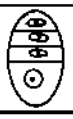		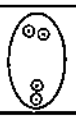	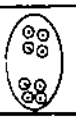	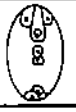
एकबीजाणुज 4- न्यूक्लीय ओडनोथिरा प्ररूप	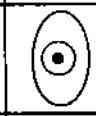	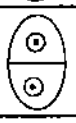			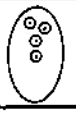		
द्विबीजाणुज 8- न्यूक्लीय ऐलीयम प्ररूप	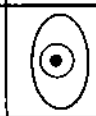	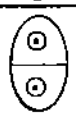			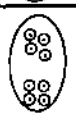		
चतुएकीबीजाणुज 16-न्यूक्लीय पैपरोमिया प्रकार				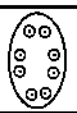			

चित्र 6.10 : एंजियोस्पर्मों के भ्रूण कोश के प्रकार।

6.2.5 कोशिका विज्ञानीय प्रमाण

कोशिकाविज्ञान में कोशिकाओं की आकारिकी एवं उनकी कार्यिकी का अध्ययन होता है। क्रोमोसोम संख्या, उनकी आकृति तथा मीयोसिस के समय उनके युगल बनाने के तरीके को वर्गीकरण उद्देश्य को उपयोग में लाया जाता है। कोशिकावर्गिकी (Cytotaxonomy) वह विज्ञान है जिसमें क्रोमोसोम-संख्या तथा क्रोमोसोम-आकारिकी के आँकड़ों को वर्गीकरण में इस्तेमाल किया जाता है। कोशिकानुवंशिकी में वे अध्ययन आते हैं जिनका संबंध मीयोसिस के समय क्रोमोसोम युग्मन बनने अथवा उनके आचरण पर होने वाले प्रेक्षणों से है। एंजियोस्पर्मों में अगुणित क्रोमोसोम-संख्या *हैप्लोपैपस ग्रैसिलिस* (*Haplopappus gracilis*) कंपोजिटी में n=2 से लेकर *पोआ लिटोरोआ* (ग्रैमिनी) में लगभग n=132 तक के पराश में होता है। अधिसंख्य एंजियोस्पर्मों में क्रोमोसोम संख्या n=7 से n=12 के बीच होती है। 30 से 40 प्रतिशत पुष्पी पौधों बहुगुणित (पोलीप्लाइड) होते हैं। बहुगुणित जीव वे होते हैं जिनमें क्रोमोसोम समुच्चयों में गुणन होकर क्रोमोसोम संख्या ऊंची हो जाती है। पुष्पी पौधों में अनेक प्रकार के बहुगुणित संख्या-संबंध पाए जाते हैं। *पाइनस* (पाइनेसी) में n=12 होकर समगुणित (होमोप्लाइड) व्यवस्था होती है जबकि कम्पोजिटी फ़ेमिली की विभिन्न स्पीशीज़ में n=9, 18 तथा 27 होती है। यही नहीं ऐसी जीनसें भी है जिनकी क्रोमोसोम संख्या में कोई संख्या परक संबंध नजर नहीं आता (ऐन्यूप्लाइड) जैसे कि *ब्रैसिका* (क्रूसीफेरी) में n=6, 7, 8, 9 या 10 की संख्या होती है। घास फ़ेमिली में संबंधों को समझने में आधार-संख्या तथा क्रोमोसोम-साइज़ दोनों ही उपयोगी हैं। क्रोमोसोमों की समजातता में प्राय: टेक्सॉनों का परस्पर संबंध झलकता है। इसलिए दो स्पीशीज़ के संकरों में मीयोसिस के दौरान क्रोमोसोमों का युग्मन निकट संबंध वाली स्पीशीज़ के संबंधों को समझने में सहायक होता है। आपको जान लेना चाहिए कि दो स्पीशीज़ के संकरों में मीयोसिस के समय युग्मन की प्रतिशतता जितनी ज्यादा होगी उतना ही ज्यादा इन पौधों के बीच का निकट संबंध माना जाएगा। प्राणियों में स्तनियों, पक्षियों तथा कीटों की लगभग 1,000 स्पीशीज़ के अब अधिक अविश्वसनीय केरियोटाइप उपलब्ध हैं।

क्रोमोसोमों की संख्या तथा आकृति के आधार पर *ड्रोसोफ़िला* जीनस की लगभग 16 स्पीशीज़ में विभेद किया गया है।

6.2.6 पुरावनस्पतिकीय प्रमाण

पुरावनस्पतिकी में पौधों तथा प्राणियों के जीवाश्म रिकार्ड का अध्ययन किया जाता है। फ़ॉसिल पुष्पी पौधों के अध्ययन के नए-नए दृष्टिकोणों एवं नयी-नयी तकनीकों से वर्गिकीय सूचना प्राप्त होती है। पुरावनस्पतिकी में पराग कणों अथवा स्तंभ एवं अन्य पादप-भागों के सूक्ष्मजीवाश्म से बहुत कुछ आंकड़े प्राप्त होते हैं। हाल ही में

संयुक्त राज्य अमेरिका के दक्षिणी भाग एवं केंसस के ईओसीन अवसादों से जो सुपरिरक्षित एंजियोस्पर्म फूल मिले हैं उनसे पुष्टि हो जाती है कि आज के "ऐमेंन्टीफ़ेरी वंशक्रम (Amentiferae line)" वैविध्य-प्राप्त प्रतिनिधियों का मध्य ईओसीन के आने तक अस्तित्व बन चुका था तथा उनमें वायु-परागण के लिए अनुकूलन आ गया था।

मध्य ईओसीन में भी ऐसे फूलों तथा पुष्पक्रमों का अस्तित्व था जिनमें बीटलों, मक्खियों, मधुमक्खियों एवं तितलियों द्वारा परागण हो सकने के वास्ते संबद्ध संरचनात्मक लक्षण मौजूद थे। *ऐसर (Acer), सेल्टिस (Celtis) क्वेरकस (Quercus), उल्मस (Ulmus)* तथा *जेल्कोवा (Zelkova)* के मायोसीन के पत्ती-नमूनों के कार्यनिक रासायनिक-पार्श्वचित्रों के रूप में एक विलक्षण आंकड़ा-स्रोत प्राप्त हुआ है। जीवाश्म के रासायनिक यौगिकों तथा आधुनिक स्पीशीज़ के रासायनिक यौगिकों में एक उच्च सहसंबंध पाया गया है। पुरावनस्पतिकी से प्राप्त आकड़ों से एंजियोस्पर्मों के फ़ॉसिल रिकार्ड के तथ्यों में तथा उनके संभावित पूर्वजों के विषय में वर्गिकीविदों को कार्य करने में सहायता मिली है। फिर भी, अभी तक प्राप्त आंकड़े अब भी इतने सीमित हैं कि उनसे एक सही सामान्य जातिवृत्तीय योजना नहीं बनायी जा सकती।

6.2.7 शरीरक्रिया प्रमाण

शरीरक्रिया संबंधी तथा जैवरासायनिक प्रमाण से पादप वर्गीकरण की दिशा में अधिकाधिक महत्व के आंकड़े प्राप्त हो रहे हैं। हाल ही में प्रकट हुआ है कि शारीरिक एवं शरीरक्रिया संबंधी लक्षणों का एक ऐसा संलक्षण (सिंड्रोम) है जिसका संबंध एक उच्च कारगरता वाली कार्बन स्थिरीकरण प्रक्रिया से है, तथा यह बहुत से पौधों में पाया जाता है। इस संलक्षण को क्रैंज सिंड्रोम (Kranz Syndrome) अथवा C_4 प्रकाश संश्लेषण की संज्ञा दी गई है। शैवालों, मांसों, अधिसंख्य फर्नों, जिम्नोस्पर्मों तथा पुष्पी पौधों की अनेक फ़ेमिलियों में C_3 प्रकाश-संश्लेषण ही एकमात्र ज्ञात कार्बन स्थिरीकरण चक्र है, C_4 प्रकाश-संश्लेषण एकबीजपत्रियों तथा द्विबीजपत्रियों की लगभग 10 असंबंधित फ़ेमिलियों में होता पाया जाता है। घास फ़ेमिली में *पैनिकम* तथा अन्य टैक्सॉनों के विशिष्ट लक्षण बताने की दिशा में क्रैंज सिंड्रोम उपयोगी सिद्ध हुआ है। द्विबीजपत्री जीनस *यूफ़ोर्बिया* (यूफ़ोर्बिएसी) में C_3, C_4 तथा CAM (Crassulacean Acid Metabolism) स्पीशीज़ पायी जाती है। *ज़ाइगोफ़िल्म* (Zygophyllaceae) तथा *एट्रिप्लेक्स* (Chenopodiaceae) में C_3 तथा C_4 दोनों ही कार्बोक्सलेशन पाए जाते हैं (चित्र 6.11)।

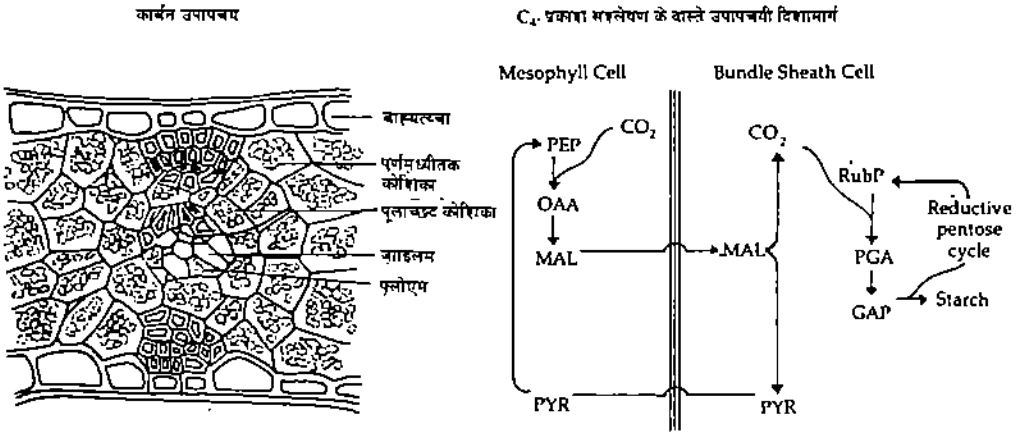

चित्र 6.11 : क्रैंज शरीर C_4 स्पीशीज़ का द्योतक है। इस आरेख में क्लोरोफ़िल युक्त बंडल आच्छद कोशिकाओं तथा अपेक्षाकृत अविभेदित मीज़ोफ़िल कोशिकाओं की प्रतिरूपी व्यवस्था दर्शायी गई है। बंडल आच्छद के क्लोरोप्लास्टों में पटलीय व्यवस्था पाई जाती है। मीज़ोफ़िल कोशिका के क्लोरोप्लास्टों में प्रतिरूपी ग्रैना पाए जाते हैं।

6.2.8 पारिस्थितिकीय प्रमाण

पारिस्थितिकी के अंतर्गत जीवधारियों का उनके पर्यावरण के साथ संबंध आता है। इन संबंधों को जैविक, अजैविक, स्थानगत तथा कालगत वर्गों में बांटा जा सकता है। पारिस्थितिकीय अध्ययनों से प्रकट होता है कि

आकारिकीय लक्षणों की लक्षण-दशाओं का संबंध पर्यावरणी कारकों के साथ होता है जैसे कि प्रकाश, नमी तथा मृदा-उर्वरता के साथ। पादपों तथा प्राणियों के टैक्सॉनों का वितरण टैक्सॉनों के भीतर की विभिन्नता तथा जीवधारियों के अनुकूलनों से पादप एवं प्राणि स्पीशीज़ की वर्गीकरण स्थिति के विषय में जानकारी प्राप्त होती है। पारिस्थितिकीविद् के रूप में हमें यह सब भी देखना चाहिए: पारिस्थितिक विभिन्नता, मृदीय विशेषीकरण, परागण क्रियाविधियां, संकरण क्रियाविधियां तथा विजौने (नवोदभिद्) की स्थापना की पारिस्थितिकी। पौधों में जीनस के नीचे के स्तर पर वर्गीकरण करने में पारिस्थितिकीय सूचना का बहुत कुछ अर्थ है। अपने पर्यावरण के प्रति समष्टियों में हुए अनुकूलनों में ये लक्षण महत्वपूर्ण हैं। आप चाहें तो प्रतिरोपण के प्रयोग कर सकते हैं और पौधों को नियंत्रण में रखते हुए इस प्रकार उगा सकते हैं कि उनके अध्ययन के साथ-साथ उनके जीवन-इतिहासों का वर्णन कर सकते हैं तथा अनेक लक्षणों का मूल्यांकन भी कर सकते हैं (चित्र 6.12)।

क) सीधे खड़े पौधे का एक अंश

ख) शयान (ज़मीन पर फैले) पौधे का एक अंश

चित्र 6.12 : *यूफ़ोर्बिया* की स्पीशीज़ में पारिस्थितिक विभिन्नता।
क) सीधे खड़े पौधों का एक अंश। ख) शयान (जमीन पर फैले) पौधों का अंश।

प्राणियों में प्रत्येक स्पीशीज़ के ऐसे निकट संबंधी होते हैं जिनकी आहार-अभिरुचि, प्रजनन ऋतु, विविध भौतिक कारकों के लिए सहनशीलता आदि में समानता होती है। आप जानते ही होंगे कि जब एक ही समान आवास में दो निकट संबंधी स्पीशीज़ साथ-साथ रह रहे हों तब वे अपने-अपने स्पीशीज़-विशिष्ट निच-संबंधी विशेषताओं के द्वारा उस प्रतिस्पर्धा के होने से बचती हैं जो अन्यथा घातक हो सकती थी। *ड्रोसोफ़िला मुलेरी* तथा *ड्रोसोफिला आल्ड्रिची* के लार्वा *ओपंशिया लिंडहाइमेराई* नामक कैक्टस के सड़ते हुए फलों में साथ-साथ रहते हैं फिर भी इन दोनों में कुछ खास-खास यीस्टों (Yeast) तथा बैक्टीरिया के लिए अलग-अलग अभिरुचि की विशेषता होती है।

बोध प्रश्न 1

क) वास्तविक रूप में प्राकृतिक वर्गीकरण किस प्रकार प्राप्त किया जाता है?

.....

.....

ख) वर्गीकरण-अनुसंधान में आकारिकीय प्रमाण क्यों अनिवार्य है?

.....

.....

ग) मूलपाठ से उपयुक्त शब्द छांट कर रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :

i) द्विबीजपत्रियों में ------ तथा ------ फूल होते हैं जबकि एकबीजपत्रियों में ------ फूल होते हैं।

ii) क्रूसिफेरी में फल या तो ------ या ------ होता है जबकि अम्बेलीफेरी में फल ------ होता है।

iii) एकबीजपत्री स्तंभ में संवहन ------ होते हैं जबकि द्विबीजपत्री स्तंभ में ------ बंडल एक ------ में व्यवस्थित होते हैं।

iv) परागकण एकबीजपत्री में ------ होते हैं तथा त्रिविदरक परागकण ------ की विशिष्टताएं हैं।

v) पुरावनस्पतिकी में ------ तथा ------ के ------ रिकार्ड का अध्ययन किया जाता है।

6.3 पादप वर्गिकी में वर्गिकी : पुस्तकालय प्रलेखन

वर्गिकी आधारभूत रूप में एक वर्णनात्मक एवं ऊंचे दर्जे की आलेखित विज्ञान-शाखा है। यही कारण है कि इसका साहित्य इतना विशाल है और यही साहित्य इसकी संरचना का सबसे महत्वपूर्ण भाग है। ऐसी संदर्भ सूची जो केवल वर्गिकीय साहित्य से ही संबंधित हो न तो पूरी है और पर्याप्त भी नहीं है। अगले उपभाग में हम वर्गिकी अनुसंधान के लिए उपलब्ध साहित्य के विषय में चर्चा करेंगे।

6.3.1 सामान्य वर्गिकी अनुक्रमणिकाएं

अनुक्रमणिकाएं तीन तरीकों से सहायता करती हैं : किसी नाम के मूल प्रकाशनों का स्रोत शीघ्र ही ढूंढ निकालना, कोई विशिष्ट नाम किसी पौधे को दिया गया है या नहीं पता लगाना और किसी एक नाम का पौधा किस आर्डर, फ़ेमिली, उपफ़ेमिली या ट्राइब में आता है इसका पता लगाना। संवहनी पौधों की महत्वपूर्ण अनुक्रमणिकाएं इस प्रकार हैं :

i) **Index Kewensis Plantarum Phanerogamarum,**
2 जिल्दें, 18 सप्लीमेंट, ऑक्सफोर्ड 1893-1985

यह कृति पुष्पी पौधों के वर्गीकरण के साहित्य की आधारशिला है। इस मूल कृति का संकलन चार्ल्स डार्विन द्वारा दिए गए आर्थिक उपहार के द्वारा संभव हुआ। इसका संकलन रॉयल बोटेनिकल गार्डन्स कियू में जे.डी. हुकर के निर्देशन में बी.डी. जैक्सन एवं उसके लिपिक सहायकों द्वारा सम्पन्न हुआ। **Index Kewensis** ऐसा संदर्भ है जिसे किसी बीज वाले पौधों के जीनस-नाम अथवा द्विपदनाम के मूल प्रकाशनों के स्रोत को निर्धारित करने के काम में लाया जाता है।

ii) **Gray Herbarium Card Index,**
केम्ब्रिज, मैसेचु, संयुक्त राज्य अमेरिका

यह एक कार्ड अनुक्रमणिका है जो त्रैमासिक रूप में उन ग्राहकों को भेजी जाती है जो पश्चिमी गोलार्ध के पुष्पी पौधों तथा टेरिडोफ़ाइटों की किसी भी वर्गीकरण श्रेणी में दिए जाने वाले सभी नए नामों तथा नए संयोजनों पर काम करने वाले हैं।

iii) **Genera Siphonogamarum,**
बर्लिन 1900-1907

सी. जी. डाला टोरे तथा एच. हार्म्स द्वारा सम्पादित इस एक जिल्द में स्पर्मेटोफाइटों की फेमिलियों तथा जीनसों के विषय में प्रकाशित सभी नामों का वर्णन दिया गया है। आर्डरों तथा फेमिलियों को अनिवार्यत: एंग्लर की

प्रणाली के अनुसार व्यवस्थित किया गया है तथा प्रत्येक फ़ेमिली के नीचे उपफ़ेमिलियों, ट्राइबों आदि के नाम दिए गए हैं जिनके साथ-साथ प्रत्येक में रखे गए जीनस नाम भी दिए गए हैं, और प्रत्येक जीन्स के नीचे उसके भीतर वर्णन की गयी विभिन्न स्पीशीज़ की संख्या दी गई है। प्रत्येक श्रेणी में नामों के साथ-साथ सही-सही वर्णनकर्ता का नाम, प्रकाशन का स्रोत एवं तिथि और उन नामों के पर्यायवाची नाम भी दिए गए हैं।

6.3.2 वनस्पतिजात

वनस्पतिजात उन पौधों की भण्डार सूची होती है जो किसी एक क्षेत्र में पाए जाते हैं और प्राय: इसमें केवल संवहनी पौधे ही लिए जाते हैं। वनस्पतिजातों में पौधों के वर्णनों के साथ उनकी पहचान के लिए कुंजियां भी दी गई होती हैं। वनस्पतिजात में पौधों को किसी एक या अन्य उपलब्ध वर्गीकरण-प्रणाली (बेंथम एवं हुकर, ऐंग्लर एवं प्रान्टल, वेसी, हचिनसन, आदि) के अनुसार व्यवस्थित किया गया होता है। संसार का कोई भी ऐसा एक वनस्पतिजात नहीं है जिसमें और तो और पृथ्वी के स्पर्मेटोफ़ाइटा की ही प्रत्येक स्पीशीज़ का उल्लेख किया गया हो। कुछ महत्वपूर्ण वनस्पतिजातों की सूची नीचे दी जा रही है :

1. World Floras : Baillon, H. The Natural History of Plants. 8 vols. London, 1871-1888. Bentham, G. and Hooker, J.D. Genera Plantarum. 3 vols. London 1862-1883.

   Engler, A. and Prantl, K. This is a glorified book in German language entitled, "Die Naturalichen Pflanzenfamilies". 23 vols. Leipzeg 1887-1915 and other important contribution is of Hutchinson, J., "The families of flowering plants". 2 vols. London 1926, 1959, 1973.

2. Asian Floras: Some important Asian Floras are listed as under:

   i) Babu, C.R. Herbaceous Flora of Dehradun, New Delhi, CSIR, 1977.

   ii) Bhandari, M.M. Flora of Indian Desert. Scientific publishers, Jodhpur, 1978.

   iii) Duthie, J.F. Flora of Upper Gangetic Plain and of the adjacent Siwalik and sub-Himalayan Tracts. Reprinted, Dehradun.

   iv) Hooker, J.D. Flora of British India (New Flora of India). 7 vol. London 1876-1897, Reprinted, Dehradun.

   v) Kachroo, P. Flora of Ladakh, Bishen Singh, Mahindra Pal Singh, 1977, Dehradun.

   vi) Kirtikar, K.R. Indian Medicinal Plants, Dehradun, 1975.

   vii) Maheshwari, J.K. Flora of Delhi, 2 vols. New Delhi, CSIR.

   viii) Nair, N.C. Flora of Himalayas, Hissar International Bio-Science Publication. 1977.

   ix) Royle, J. Forbes. Illustrations of the Botany and other branches of the Himalayan mountains and the flora of Kashmir. New Delhi, Today and Tomorrow, 1970 (Reprint).

6.3.3 मॉनोग्राफ

परिभाषा के रूप में मॉनोग्राफ किसी भी एक फेमिली, ट्राइब अथवा जीन्स का एक ऐसा संपूर्ण विवरण होता है जिसमें एक समय पर उपलब्ध सभी कुछ दिया गया होता है और कुछ भी छोड़ा नहीं गया होता। अपने विस्तार एवं अनुप्रयोग में यह विश्वपरक होता है। इसके भीतर उस टेक्सान विशेष के विषय में दिए गए समस्त वर्गिकीय विवेचनों का सर्वेक्षण एवं मूल्यांकन किया गया होता है। इसमें टेक्सान के विभिन्न लेखकों, सहकर्मियों तथा अन्य व्यक्ति द्वारा किए गए हर प्रकार के कोशिकाविज्ञानीय, आनुवंशिकीय, आकारिकीय, शारीरिक, पुरावनस्पतिकीय एवं पारिस्थितिकीय अध्ययनों को एक साथ लेकर उनका परस्पर जोड़ किया गया होता है। इन मॉनोग्राफ़ों में सभी वर्णनों के साथ-साथ ये सब चीजें भी दी गई होती हैं : द्विशाखी कुंजियां, संपूर्ण

पर्यायवाचक नाम, संपूर्ण विवरण, टाइपों (प्रतिरूपों) का सही-सही निर्धारण जिनके साथ-साथ यह भी टिप्पणी दी गयी होती है कि ये टाइप कहां पर जमा किए गए हैं। परीक्षण किए गए नमूनों का उल्लेख, वितरण परास, आवासों पर टिप्पणियां तथा वर्गिकीय एवं नामकरण संबंधी बातों पर विविध विवेचन।

6.3.4 संशोधित संस्करण

संशोधन में या तो किसी एक जीनस के एक अंश का या उन बातों का जो एक महाद्वीप अथवा लघुतर भौगोलिक क्षेत्र तक सीमित हो, उल्लेख किया गया होता है। कुछ संशोधन पूर्णत: हर्बेरियम शीटों के अध्ययनों पर आधारित होते हैं, इनमें न तो उस टेक्सॉन पर पहले के किए गए कार्य को देने का प्रयत्न किया गया होता है और न ही वर्गिकी के अन्य परस्पर संबंधित विज्ञानों, आनुवंशिकी, पारिस्थितिकी, आदि की ओर प्रयास किया गया है।

ध्यान देने की बात है कि संसार के मॉनोग्राफों के विभिन्न विषयों एवं संशोधनों को लेकर कोई भी आधुनिक संदर्भ ग्रंथ सूचियां नहीं है। प्रिटज़ेल, जैक्सन, रेहडर तथा मेरिल एवं वॉकर द्वारा बनायी गयी संदर्भ सूचियों में कई हज़ार मॉनोग्राफों तथा संशोधनों की सूचियां बनायी गयी हैं।

6.3.5 मैनुअल

मैनुअल एक ऐसी पुस्तक होती है जिसमें निम्न बातें दी गयी होती हैं : वर्णन किए जा रहे विषय क्षेत्र की सूचना, फेमिलियों, जीनसों तथा उपजीनसों के वर्णन जिनके साथ-साथ स्वीकृत वैज्ञानिक नाम एवं नामों के बाद आने वाला लेखक नाम, मुख्य पर्याय नाम, अंतरास्पीशीज़ीय टेक्सॉन की कोई सूचना अगर है तो, पारिस्थितिकीय एवं वितरण संबंधी आंकड़े तथा सामान्य नाम। अनेक मैनुअलों को बार-बार संशोधित एवं उनका पुनर्मुद्रण किया गया है। उदाहरण के लिए ग्रे (1950) का वनस्पति मैनुअल अब अपने आठवें संस्करण में है। ऐसे मैनुअल किसी एक विशिष्ट क्षेत्र के वनस्पतिजगत का मानक संदर्भ बन जाते हैं। वर्गिकी की आधुनिक प्रवृत्ति के अनुसार आवश्यकता है कि मान्यकृत हर्बेरियमों में जमा की गई हर्बेरियम शीटों के माध्यम से टेक्सॉनों की तफसीलों एवं उनके प्रलेखनों की ओर अधिक ध्यान दिया जाए। एक आधुनिक वनस्पतिज्ञातीय अनुसंधानकर्ता मूलभूत तुलनात्मक आकारिकी के साथ-साथ प्रतिरूपीकरण (टाइप बनाना) नामकरण, वितरण तथा पारिस्थितिकी की ओर बहुत ध्यान देता है।

6.3.6 शोध पत्रिकाएं

शोध पत्रिकाएं ऐसे प्रकाशनों को कहते हैं जो नियमित अंतरालों के बाद छपते हैं उनका प्रत्येक प्रकाशन एक अंक कहलाता है तथा अंकों को एक साथ मिलाकर एक जिल्द कहते हैं। पत्रिकाओं के प्रायोजक अक्सर एक से ज्यादा पत्रिकाएं निकालते हैं। कोई सोसाइटी हो सकता है कि एक मासिक पत्रिका निकालती हो ताकि उसके सदस्यों द्वारा लिखे गए विविध एवं अपेक्षाकृत छोटे शोध-लेखों को प्रकाशित करने के वास्ते एक स्रोत मिल जाए और साथ ही इस पत्रिका में स्वयं सोसाइटी के कार्यविवरण के रिकार्ड भी छपते हैं। ऐसी पत्रिका को प्राय: "जर्नल", "ऐनल", "बुलेटिन", अथवा "प्रोसीडिंग्ज" कहा जाता है। वनस्पतिविद् अपने लेखनों अथवा संदर्भ सूचि में इन प्रकाशनों के नामों को प्राय: संक्षिप्त रूप में लिखा करते हैं और इस कारण से इनके वे पूरे नाम मालूम होने ज़रूरी हैं जो कि सूचियों में दिए गए होते हैं। विभिन्न पुस्तकालयों, पत्रिकाओं के नामों की सूचियां अलग-अलग तरीकों से बनाते हैं, और ऐसा अक्सर ही होता है कि वे विविध संभव शीर्षकों के अंतर्गत पत्रिका नामों का क्रास-इंडेक्सिंग नहीं करते। सामान्यत: यदि किसी पत्रिका का प्रकाशन किसी सरकारी अथवा नगरपालिका संस्थान द्वारा होता है तब इसे सूची में उस प्रायोजनकर्ता देश अथवा नगर के नाम के अंतर्गत लिखा जाता है। इसी तरह यदि उसका प्रकाशन किसी सोसाइटी, अकादमी या शिक्षण संस्थान द्वारा होता है तब उसे उस संगठन के नाम के अंतर्गत सूचिबद्ध किया जाता है, और स्वयं इस संगठन को उस नगर के नाम के नीचे लिखा जाता है, जहां पर वह स्थित होता है।

पौधों के वर्गिकीय अध्ययनों में सबसे ज्यादा इस्तेमाल होने वाली पत्रिकाएं इस प्रकार हैं :

1. Annals of Royal Botanic Gardens, Calcutta.
2. Journal of Linnean Society.
3. Records of Botanical Survey of India.
4. Journal of Indian Botanical Society.
5. Tropical Ecological Bulletin.

6. Indian Bulletin of Torrey Botanical Club.

Taxon नामक पत्रिका एक बुलेटिन है जिसका प्रकाशन नीदरलैंड्स के International Association of Plant Taxonomy द्वारा समय-समय पर होता है।

6.3.7 शब्दकोष

पौधों के विषय में लिखे गए कोष प्राय: विश्वकोष के रूप के होते हैं और वे इतने थोड़े हैं कि जब उन्हें सूचीवद्ध करना होता है तो मात्र अंग्रेजी में ही लिखने तक सीमित नहीं रखा जाता। कोषों में जो अधिसंख्य उपलब्ध आंकड़े होते हैं वे पौधों के नामों के होते हैं और वे उन लैटिन अथवा स्थानीय नामों की व्युत्पत्ति के स्रोत स्वरूप हैं। ऐसे स्रोत जिनसे इन लोगों की जीवनकथाओं की कुछ सूचना मिल पाती है जिनके लिए पौधों के नाम दिए गए और उनसे विभिन्न देशीय भाषाओं में उनके नामों की सूचना मिलती है।

कुछ महत्वपूर्ण कोषों के नाम नीचे दिए जा रहे हैं :

1. Anderson, T.H. (1865). *Catalogue of Plants Cultivated in Royal Botanic Gardens.* Calcutta (1861-1864), Calcutta.

2. The Wealth of India : *A Dictionary of Indian Raw Materials and Industrial Products.* CSIR (1948).

3. Jackson, B.D. (1928). *A Glossary of Botanic Terms with their Derivation and Accent*, London.

4. Lloyd, D. (1950). *A Dictionary of Botanical Terms*, Oxford University Press, London.

5. Watt, G. (1889-96). *Dictionary of Economic Products of India*, Calcutta, 6 vols.

6. Willis, J.C. (1911). *A Dictionary of the Flowering Plants and Terms*, Cambridge (6th ed.).

6.3.8 प्राणिवर्गिकी में काम आने वाले संदर्भ-ग्रंथ

इसका प्रकाशन सर्वप्रथम "बायोसाइंसेज इंफॉर्मेशन सर्विस" द्वारा शुरू किया गया था। यह द्विमासिक पत्रिका है तथा वर्गिकी संबंधी सूचना इसमें वर्गीकरण-जीवविज्ञान के भाग में संक्षिप्त रूप में दी गयी होती है। इसमें शोध लेख का एक संक्षिप्त सारांश भी दिया गया होता है, इस तरह शोध लेख की सही-सही सामग्री प्राप्त हो जाने के रूप में इसकी बहुत उपयोगिता है।

Dissertation Abstracts

ये भी उपयोगी हैं तथा संयुक्त राज्य अमेरिका में हर माह प्रकाशित होते हैं। इनमें विषय सामग्री के अनुसार व्यवस्थित उन सभी डिजर्टेशनों (dissertation) के सारांश होते हैं जो संयुक्त राज्य अमेरिका के विभिन्न संस्थानों से प्राप्त होते हैं।

Century of Dictionary

यह न्यूयार्क की सेंचुरी कंपनी द्वारा छह जिल्दों में प्रकाशित हुई है। जीवविज्ञानीय नामों की प्रमुख गाइडों में यह सर्वाधिक संपूर्ण है। इस शब्दकोश में सामान्य जीनसों के हजारों प्राणिविज्ञानिय नामों की सूची और साथ-साथ अधिक बड़े वर्गों के भीतर आने वाले ज्ञात नामों की सूची भी दी गई है।

Directories

वर्गीकरण वैज्ञानिकों के नाम तथा उनके विशेष अध्ययन क्षेत्रों के विषय में जानने के लिए ये बहुत उपयोगी है। विषय सामग्री की जांच पड़ताल के लिए सबसे आधुनिक एवं उपयोगी डाइरेक्ट्रियां ये हैं:

क) R.E. Blackwelder एवं R.M. Blackwelder द्वारा रचित "Directories of the Zoological Taxonomists of the World", Carbonadale Illinois University Press, 1961.

ख) V.C. Kapoor द्वारा रचित "Directory of the Zoological Taxonomists of India", Kalyane

Publishers, Ludhiana, India, 1974.

6.3.9 प्राणिविज्ञानीय नामकरण का अंतर्राष्ट्रीय ट्रस्ट

यह ट्रस्ट लंदन के ब्रिटिश संग्रहालय में स्थित है और इसी ने प्राणिवैज्ञानिक नामकरण में कुछ महत्वपूर्ण साहित्य निकाला है, जो इस प्रकार है :

i) **International Code of Zoological Nomenclature**

इस पुस्तिका का संपादन एन.आर. स्टॉल एवं अन्य ने किया और जो 1964 में प्रकाशित हुई थी। इसमें वे सभी नियम दिए गए हैं जो संसार भर में एकरूपता के साथ प्राणियों के नामकरण के लिए आवश्यक है तथा 14वीं अंतर्राष्ट्रीय प्राणिविज्ञान कांग्रेस में 1961 में पारित हुए थे।

ii) **Bulletin of Zoological Nomenclature**

इसका आरंभ 1943 में इस एक मात्र उद्देश्य से किया गया था कि इसके माध्यम से नामकरण संबंधी समस्याओं पर विवाद किया जा सके।

बोध प्रश्न 2

क) संवहनी पौधों की महत्वपूर्ण अनुक्रमणिकाओं के नाम लिखिए :

.....

.....

.....

.....

ख) निम्न जोड़ों के शब्दों में विभेद कीजिए :

मैनुअल - वनस्पतिजात
मॉनोग्राफ - संशोधन
टेक्सॉन - पत्रिका

.....

.....

.....

ग) प्राणी-वर्गिकी में कुछ संदर्भ कृतियों के नाम लिखिए :

.....

.....

.....

.....

.....

.....

6.3.10 जर्नलों की संदर्शिकाएं

कुछ खास-खास जर्नल इस प्रकार हैं :

i) Systematic Zoology

इसमें प्राणियों के वर्गीकरण पर लेख होते हैं तथा इसमें जो शोध लेख छपते हैं वे इन सभी पहलुओं पर लिखे गए होते हैं : स्पीशीज़ तथा उनसे उच्चतर टेक्सॉनों की कोशिकाविज्ञानीय विशेषताएँ, वितरण नमूने, आचरण वर्गिकीसांख्यिकी, विभिन्नशीलता, स्थानिकता, विलुप्तता, सीरमविज्ञान, भौगोलिक वितरण, जातिभवन, क्रम-विकास की दरें, जलवायु-नियम आदि।

ii) Systematic Association, London के प्रकाशन

इसका प्रारंभ 1953 में हुआ था तथा इनमें उपयोगी प्रकाशन एवं समय-समय पर होने वाली संगोष्ठियों के कार्यवृत्त शामिल हैं।

iii) Taxon

इसमें पादप वर्गिकी, नामकरण आदि की समस्याओं पर लेख होते हैं। इसका प्रकाशन सर्वप्रथम 1951 में इंटरनेशनल ऐसोसियेशन ऑफ प्लांट टेक्सोनोमी ने किया था।

6.4 अभिनिर्धारण के लिए कुंजियां, पौधे तथा प्राणी

अभिनिर्धारण का कार्य तमाम वर्गिकीय कार्य का अभिन्न अंग है। इसमें फूल, फल, पत्ती अथवा स्तंभ के कुछ विशिष्ट लक्षणों को पहचाना जाता है और फिर उन्हें उन लक्षणों से युक्त एक पौधे का नाम दिया जाता है। अज्ञात नमूनों को कुंजियों की सहायता से पहचाना जाता है। कुंजी एक ऐसी युक्ति होती है जिसके द्वारा दो-दो कथनों के बीच एक का निराकरण करते हुए किसी अज्ञात पौधे को आसानी से पहचान लिया जाता है। निराकरण प्रक्रिया द्वारा किसी नमूने की सही पहचान कुंजी से की जा सकती है। जब तक मेल न मिल जाए तब तक पहले से ही नाम दिए गए हर्बेरियम नमूने के चट्टे में से एक के बाद एक की जांच की अपेक्षा कुंजियों के द्वारा नमूने की पहचान करना अधिक कारगर विधि है।

6.4.1 कुंजियां क्या होती हैं

कुंजियां ऐसी युक्तियों के रूप में बनायी जाती है जिनके द्वारा पौधों तथा प्राणियों को पहचानने में सहायता मिलती है। क्रमिक रूप में दो-दो परस्परविरोधी लक्षणों के बीच किए गए चयन के आधार पर पहचान के लिए कुंजियां मात्र एक सहायता-साधन होती हैं। पौधों में कुंजियां वनस्पतिजातों तथा मॉनोग्राफों का अंश होती हैं तथा ये टेक्सॉनों के वर्णन के पहले दी गई होती हैं। इनमें द्विपद (couplet) के रूप में दो-दो कथन दिए जाते हैं जो अग्र लीड (lead) के रूप में गिनती के अनुसार एक-एक करके आगे बढ़ते जाते हैं। अग्रों की संख्या दी गई होती है तथा द्विपद में ये एक ही शब्द से शुरू होते हैं, द्विपद में मुख्य परस्परविरोधी लक्षण इस्तेमाल किए जाते हैं और इन्हें निदान-लक्षण या कुंजी-लक्षण भी कहा जाता है। हर द्विपद में पहले परस्परविरोधी लक्षणों को प्राथमिक कुंजी लक्षण अथवा अग्र लक्षण कहते हैं जिनके बाद द्वितीयक कुंजी लक्षण आते हैं।

आइए अब हम पौधों तथा प्राणियों के प्रमुख वर्गों के अभिनिर्धारण के लिए बनायी गयी एक कुंजी के उदाहरण का अध्ययन करें।

कुंजी 1

1. पौधे जाल-शिराओं वाली पत्तियों से युक्त, पुष्पी पत्तियां चार-चार अथवा पांच-पांच, भ्रूण में दो या अधिक बीज पत्र ------ 2. द्विबीजपत्री

1. पौधे समांतर शिराओं वाली पत्तियों से युक्त पुष्पी भाग तीन-तीन की गिनती में, भ्रूणों में एक बीजपत्र ------ एकबीजपत्री

2. पेरिऐंथ (परिपुष्प) एकपंक्तिक तथा समान ---- मानोक्लेमाइड्री

2. पेरिऐंथ (परिपुष्प) द्विपंक्तिक वाह्यदलीय तथा पंखुड़ीय—— 3

3. पंखुडियाँ प्राय: मुक्त —— Polypetalae

3. पुंखुड़ियाँ समेकित —— Gamopetalae

इस उदाहरण में कथन 11, 22 तथा 33 द्विपद है, इनमें से एक कथन आगे ले जाने वाला अग्रग होता है और अगले द्विपदों में प्रत्येक विरोधी विकल्प के प्रारंभ का शब्द एक ही होता है तथा उन दोनों के पहले लिखी जाने वाली संख्या भी एक ही होती है। द्विपद 22 में पेरिएंथ आरंभिक शब्द है तथा परस्परविरोधी लक्षण है पेरिएंथ की पक्तियों की संख्या 1 द्विपद 3 में आरंभकारी शब्द है पंखुड़ी तथा मुक्त या समेकित, इनका विरोधी लक्षण है।

कुंजी 2

1. पौधे जिनमें जाल-शिराओं वाली पत्तियों होती हैं, पुष्पी पत्तियां चार-चार अथवा पांच-पांच की संख्या में। भ्रूण दो या अधिक बीजपत्र —— Dicots

2. पेरिऐंथ एकपंक्तिक तथा समान —— Monochlamydae

2. पेरिऐंथ द्विपंक्तिक वाह्यदलीय तथा दलीय ——3

3. पंखुड़ियां (दल) मुक्त —— Polypetalae

3. पंखुड़ियां (दल) संयुक्त —— Gamopetalae

1. पौधे जिनमें समांतर शिराओं वाली पत्तियां होती हैं, पुष्पी पत्तियां तीन-तीन की संख्या में। भ्रूण एकबीजपत्र —— Monocots

इस उदाहरण में दो द्विपद अग्रग अथवा संकेत (1 और 1') दूर-दूर हो गए हैं तथा उनके उपाधीन अन्य विकल्प बीज में दिए गए हैं।

कुंजी 3

क) पंख अधिकतर काचांभ

ख) सीमांतीय पट्टी शिखरस्थत: फूली हुई

ग) स्कुटेलर रोम 1 जोड़ा —— *Dacus cucurbitae*

खख. सीमांतीय पट्टी शिखरस्थत फुली नहीं

वक्ष में मध्यक पीली धारी —— *D. diversus*

वक्ष में मध्यक धारी नहीं —— *D. dorsatis*

कक. पंख अधिकता अपारदर्शी

ख) पंखों में धारियां

ग) स्कूटेलम में 5 काले धब्बे —— *Carpomyia vesuviana*

स्कूटेलम में 4 काले धब्बे —— *C. zizyphae*

खख. पंख जालकीय

ग) पंखों के पश्च सीमांत में 3 काचांभ धब्बे —— *Tephraciura xanthotricha*

पंखों के पश्च सीमांत में 5 काचांभ धब्बे —— *Spathulina aerolececa*

इस प्रकार की कुंजी का यह लाभ है कि विभिन्न विभाजनों के बीच का संबंध आँखों को तुरंत नजर आ जाता है तथा उल्टे क्रम में भी इस्तेमाल किया जा सकता है।

6.4.2 कुंजियों के प्रकार

कुंजियां दो प्रकार की होती हैं:

i) कृत्रिम कुंजी

ii) प्राकृतिक कुंजी

कृत्रिम कुंजियां

ये टेक्सॉनों के कुछ सुव्यक्त लक्षणों की समानताओं एवं विभिन्नताओं पर आधारित होती हैं।

प्राकृतिक कुंजियां

ये विभिन्न टेक्सॉनों के बीच के जातिवृत्तीय संबंध पर आधारित होती हैं।

कृत्रिम कुंजियां दो प्रकार की होती हैं – ब्रेकेटेड कुंजी तथा इंडेटेड कुंजी।

ब्रैकेटेड कुंजियां

ब्रैकेटेड कुंजियों में एक ही पद के द्विपद अग्रग साथ-साथ रखे जाते हैं। वैकल्पिक संकेत अथवा द्विपद सहवर्ती पंक्तियों में लिखे जाते हैं अथवा छापे जाते हैं तथा उनके अनुक्रमिक उपाधीन संकेतों को उनके अंत में लिखी संख्या द्वारा दिया जाता है।

एक ब्रेकेटेड कुंजी का स्वरूप इस प्रकार होता है :

1 क .....

1 ख .....

2 क .....

2 ख .....

3 क .....

3 ख .....

4 क .....

4 ख .....

5 क .....

5 ख .....

6 क .....

6 ख .....

इस स्वरूप में लीड को अक्षरों द्वारा गिनाया जा सकता है जैसे कि । तथा ।' एवं 1'क या 1'ख को क तथा कक से तथा 22' या 2क 2ख को ख तथा खख से, मगर इन (अंग्रेजी के) अक्षरों की संख्या तो 33 तक ही सीमित होती है। बड़े समूहों के मामलें में जिनमें 33 द्विपदों से अधिक की आवश्यता होती है तब अक्षरों से काम नहीं चल सकता और तब ऐसी संख्याएं इस्तेमाल करनी पड़ती हैं जो किसी भी सीमा तक जा सकती है।

इंडेण्टेड कुंजियों में पहले एक लीड के समूहों को इंडेण्टेड (भीतर को खिसकाए गए) अग्रगों के द्वारा पूरा कर

लेते हैं तथा संबंधित टेक्सॉन साथ-साथ आ जाते हैं।

इंडेण्टेड कुंजी का स्वरूप इस प्रकार होता है :

1क .....

2 क .....

2 ख .....

3 क .....

3 ख .....

1ख .....

4 ख .....

4 ग .....

5 ख .....

5 ग .....

6.4.3 कुंजियों का निर्माण

कुंजियों को विपरीत लक्षणों का प्रयोग करके बनाया जाता है। कुंजी के संभावित नामों को छोटे और उससे भी छोटे समूहों में विभाजित कर दिया जाता है। हर बार चयन करने के साथ एक या अधिक टेक्सॉन निकल जाते हैं। कुंजियों में दिए गए कथन पौधों के लक्षणों पर आधारित होते हैं जैसे कि (i) शाकीय बनाम काष्ठीय। यदि पौधा शाकीय है तो काष्ठीय पौधे निकल जाते हैं। एकव्याससममित (zygomorphic) बनाम त्रिज्या समित (actinomorphic) यदि एकव्याससममित है तो त्रिज्यासममित फूलों को वहीं छोड़ देते हैं।

विपरीत लक्षणों का इस्तेमाल करते हुए हर बार चयन करने पर टेक्सॉनों की संख्या घटती जाती है। एक ही सामग्री पर आधारित होते हुए कुंजियां अलग-अलग तरीके से बनायी जाती हैं। एक अच्छी कुंजी वह होती है जो एकदम द्विशाखी हो, यानि उसमें किसी भी एक विंदु पर दो से अधिक विकल्प न हों।

6.4.4 कुंजी को कैसे प्रयोग किया जाए

कुंजी का इस्तेमाल एक ऐसे राजमार्ग पर यात्रा करने के समान है जो बारबार दो मार्गों (दो राहों) में फटता जाता है, और ऐसे हर दोराहे पर मार्ग निर्देश लिखा होता है। यदि यात्री सही निर्देशों का पालन करता जाता है तो वह निश्चय ही गन्तव्य पर पहुंच जाएगा।

किसी अज्ञात पौधे के अभिनिर्धारण में पहला कदम यह है कि कुंजियों का इस्तेमाल करके उसकी फ़ेमिली का पता लगाया जाए। उसके बाद आती है जीनसों की कुंजी जिससे जीनस नाम का पता चल जाता है। जीनस के अभिनिर्धारण के बाद इस प्रक्रिया को और आगे तब तक बारबार दोहराया जाता है जब तक कि स्पीशीज़ का पता नहीं चल जाता।

यदि आपको कुछ पौधे क ख ग घ ङ पहचानने के लिए दिए जांए तो सर्वप्रथम आपको उन्हें पहले दी गई कुंजियों की मदद से दो समूहों अर्थात् द्विबीजपत्री तथा एकबीजपत्री में विभाजित करना चाहिए। इनके समूहनों के वास्ते आपको जो लक्षण देखने है वे हैं क) पत्तियां-इनका शिराविन्यास, ख) फूल — पुष्पी भागों की संख्या, ग) भ्रूण — बीजपत्रों की संख्या।

दिए गए पौधों में आप इन लक्षणों का अध्ययन कीजिए और उन्हें रिकार्ड करिए। मान लीजिए कि क ग ङ पौधों के मामलें में दिए गए तीन लक्षणों का उत्तर अग्रग लीड़ में दिए गए लक्षणों के समान है तब ये द्विबीजपत्रियों (dicots) में आते हैं अर्थात् इनकी पत्तियों में जाल-शिराविन्यास है, इनके फूल पंचतयी अथवा

चतुष्टयी है और बीजपत्रों की संख्या 2 है जबकि पौधे ख घ में लक्षण अग्रग (लीड) I में दिए गए लक्षणों के समान हैं, यानि पत्तियों में समांतर शिराविन्यास, फूल त्रितयी और भ्रूणों में एक बीजपत्र, ये पौधे एकबीजपत्तियों (monocots) में आते हैं।

इससे आगे Dicots की तीन सीरीज़ Monochlamydeae, तथा Polypetalae तथा Gamopetalae में विभाजन करने के लिए पैरा 3 की कुंजी 2 में अग्रग 2 तथा 3 में दिए गए लक्षणों के होने या न होने का पता लगा कर किया जा सकता है।

कुंजी का इस्तेमाल करते हुए क्या-क्या करना होता है :

i) परिभाषिक शब्दों को ठीक-ठीक समझना और सही शब्दों का इस्तेमाल करना।

ii) द्विपद के दोनों अग्रगों (संकेतों) को ध्यान से पढ़ना। जब किसी एक अग्रग का उत्तर सकारात्मक हो तथा उसके विकल्प का उत्तर नकारात्मक हो तब समझ लीजिए कि आप सही रास्ते पर हैं। यदि दोनों मामलों में उत्तर नकारात्मक भी है और सकारात्मक भी, तब समझ लीजिए कि कहीं कोई गलती है।

iii) यदि द्विपदों में दिए गए विकल्प स्पष्ट एवं परस्परविरोधी नहीं है वरन दोनों में परस्परव्याप्ति है, तब पहले से ही अभिनिर्धारित स्पीशीज़ के वर्णन से मिलान करके निष्कर्ष निकालिए।

iv) कुंजी में दिए गए अंगों की मापों का मिलान करते समय एक से अधिक भागों को और अच्छा होगा कि वैसे ही तीन नमूनों में माप करके, एक औसत निकाल लीया जाय। यह समझ लेने की बात है कि ताज़ा और सुखाए गए नमूनों में साइज़ की विभिन्नता आ जाती है।

6.4.5 कुंजी को कैसे तैयार किया जाए

आइए एक कुंजी बनाएं। इसके लिए पहले महत्वपूर्ण एवं अमहत्वपूर्ण लक्षणों की सूची बनाकर लक्षण छांट लें, तथा इनकी तालिका बनाकर इनकी द्विशाखें बना लें। सभी स्थायी आकारिकीय लक्षणों की सूची बनाकर उन्हें उसी क्रम में एक कार्ड पर लिख लें। प्रत्येक टेक्सॉन के लिए एक अलग कार्ड लें। यदि हम पर्णवृंत का लक्षण लें तो उसे हर कार्ड पर उसी संख्या पर लिखें। यदि कुछ पौधों में पर्णवृंत अविद्यमान हों तो हमें इसकी अविद्यमानता उसी स्थान पर रिकार्ड करनी होगी, जैसा कि तालिका I में दर्शाया गया है।

तालिका I

	लक्षण	टेक्सॉन I	टेक्सॉन II	टेक्सॉन III	टेक्सॉन IV
1	भ्रूण बीजपत्रों की संख्या	2	2	2	1
2	पत्तियां शिराविन्यास	जालकीय	जालकीय	जालकीय	समांतर
3	फूल पुष्पी पत्तियों की संख्या	चतुष्टयी	पंचतयी	पंचतयी	त्रितयी
4	फूल में पेरिएंथ	बाह्यदल पंखुड़ियां	बाह्यदल पंखुड़िया	केवल एक प्रकार	केवल एक प्रकार
5	फूल में पंखुड़ियां	मुक्त	सहजात	प्राय: अविद्यमान	पेरिएंथ

तालिका से स्पष्ट है कि टेक्सॉन I, II और III एक वर्ग में आते हैं तथा टेक्सॉन IV अन्य वर्ग में 1, 2 तथा 3 के स्थानों पर नोट किए गए लक्षणों के आधार पर इसे द्विशाखन (dichotomy) कहते हैं। संख्या 4 पर लिखे गए पेरिपंथ के लक्षण के आधार पर, फिर से दो वर्ग बन जाते हैं। एक में टेक्सॉन I तथा II और दूसरे में टेक्सॉन III तथा IV. टेक्सॉन I तथा II को मुक्त अथवा सहजात पंखुड़ियों के लक्षण के आधार पर और आगे पृथक किया जाता है। अब सभी कार्डों को दो समूहों में अलग-अलग कर लीजिए तथा प्रत्येक समूह को और आगे उपसमूहों में अलग-अलग करने का क्रम तब तक जारी रखना है जब तक कि सभी टेक्सॉन पूरे नहीं हो जाते एवं सभी कार्ड छांट नहीं लिए जाते। वे सभी लक्षण, जिनके आधार पर कार्डों को छांटा जाता है, अग्रगों (लीडों) के द्विपद बन जाते हैं। अब कुंजी को इस तरह छापिए कि "त्रितयी फूल" न लिख कर "फूल त्रितयी" तथा "जालकीय पत्ती" न लिखकर "पत्ती जालकीय" लिखा जाए। यदि साइज़ एक लक्षण है तो मापों का परास लिखिए न कि बड़े, छोटे या मोटे जैसे शब्द लिखे जाएं।

6.4.6 पंच कार्ड

जब कुंजी बनाए जा रहे टेक्सॉनों की संख्या ज्यादा हो तब पंच कार्ड बनाने चाहिए। इस प्रकार के कार्डों में किसी लक्षण के अनुरूप दी गई संख्या पर बने छिद्र को कार्ड के किनारे तक काट कर खोल दिया जाता है। हर संख्या से एक लक्षण दर्शाया जाता है। उदाहरण के लिए पैरा 6 में विवेचन किए जा चुके टेक्सॉन I से IV तक के लिए निम्नलिखित कथन तैयार किए गए हैं :

1. बीजपत्रों की संख्या ——— 1 (एक)
2. बीजपत्रों की संख्या ——— 2 (दो)
3. पत्तियों में जालीय शिरान्यास
4. पत्तियों में समांतर शिरान्यास
5. फूल त्रितयी
6. फूल चतुष्तयी
7. फूल पंचतयी
8. फूल बाह्यदलों तथा पंखुड़ियों से युक्त
9. फूल एक ही प्रकार के पेरिएंथ से युक्त
10. फूल पेरिएंथ के एक चक्र से युक्त
11. पंखुड़ियां मुक्त
12. पंखुड़ियां संयुक्त/सहजात

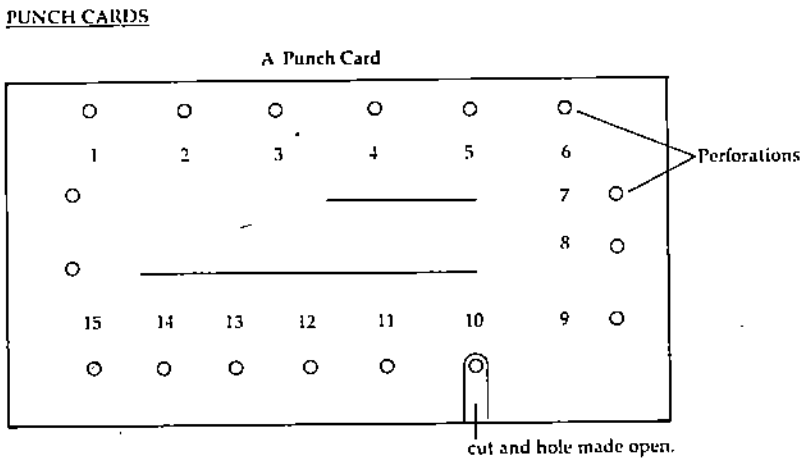

चित्र 6.13 : पंच कार्ड

जब कोई लक्षण विशेष मौजूद होता है तब उसकी संख्या वाले छिद्र में एक वेधक (पोकर) डालकर उसे कार्ड के किनारे तक खोल दिया जाता है। ऐसे कार्ड जिनमें उस लक्षण के मौजूद होने के कारण संख्या को काट कर खुला कर दिया जाता है, नीचे आ गिरते हैं और बाकी कार्ड नहीं गिरते और इस प्रकार इस लक्षण के आधार पर दो समूह बना लिए जाते हैं। जब 2, 3, 6, 8, 10, 11 आजमाए जाते हैं तब टेक्सॉन I के सभी कार्ड बाहर गिर आते हैं। जबकि लक्षण 1, 4, 5, तथा 9 संख्या पर करने से टेक्सॉन IV के कार्ड बाहर आ गिरते हैं। अत: कुंजी 2 में 1 तथा 1' पर दिखाए गए समूह प्राप्त हो जाते हैं।

6.5 हर्बेरियम का प्रयोग-आचार

इकाई 5 में आप हर्बेरियम की क्रियाविधि के विषय में पढ़ चुके हैं। आपको यह भी जान लेना चाहिए कि हमें नीति कथनों के साथ-साथ ये सूचनाएं भी उपलब्ध होती हैं : 1) फाइलिंग व्यवस्था, 2) रीशेल्विंग, 3) उधार पर मांगने की विधि, 4) टिप्पणी लेवल, और 5) पुस्तकालय संग्रहों का उपयोग। हमें नीति कथनों का पूर्ण-पूर्ण पालन करना चाहिए। यदि नमूने सूखे तथा टूट सकने वाले हैं तब उन्हें लचीले कागज पर माऊंट करना है तथा इन शीटों को चपटा रखिए। इन फोल्डरों को एक समय में एक-एक ही उठाना चाहिए और इन नमूनों के ऊपर कभी कोई भारी चीजें नहीं रखनी चाहिए जैसे कि कोहनी, किताबें, चाय आदि के प्याले, वगैरा। नमूनों का अध्ययन करते समय लम्बी भुजा वाला माइक्रोस्कोप इस्तेमाल कीजिए तथा शीट को मुड़ने से बचाइए। यदि नमूने को क्षति पहुंच ही जाए तो उसे एक ओर रखें तथा क्यूरेटर को सूचित

करें। नमूनों में से कभी कोई फूल या फल न तोड़ें और न ही उनका विच्छेदन करें, क्योंकि ये भाग नमूने के महत्वपूर्ण अंश होते हैं तथा इनके द्वारा नमूने आसानी से पहचाने जाते हैं।

6.5.1 नमूनों का संग्रहण

पौधों के नमूनों का संग्रहण वर्गिकीय अध्ययन के वास्ते अनिवार्य है। इनके द्वारा स्पीशीज़ परिसीमन होता है एवं उनकी विभिन्नताओं का एक वास्तविक नमूना-भण्डार बनता है। पादप-सामग्री को सावधानीपूर्वक छांटा जाता, तैयार किया जाता तथा परिरक्षित किया जाता है। नमूनों को इकट्ठा करते समय, चाहे वे पौधे हों या प्राणी, स्थान तथा आवास नोट करने चाहिए तथा पौधों में फूलों का रंग तथा फूलों की गंध आदि, क्योंकि ये केवल जीवित पौधों में ही स्पष्ट होती हैं और सूखे नमूनों में आसानी से नहीं देखे पहचाने जा सकते। अभिनिर्धारण तथा अनुसंधान के वास्ते एक समूचा सम्पूर्ण पौधा इकट्ठा किया जाता है। उसकी प्रतिनिधि पत्तियाँ एवं जनन रचनाएं अनिवार्य है। पुष्पी पौधों के फूल, फल तथा बीज खास तौर से महत्वपूर्ण हैं। आप हर्बेरियम विधि के विषय में पहले ही इकाई 5 में पढ़ चुके हैं। अब तक आप समझ गए होंगे कि हर्बेरियम "मूल प्रमाणों" का भण्डार है अर्थात् ऐसे नमूनों का भंडार जिस पर तमाम वनस्पतिजात की वर्गिकी, क्रमविकास एवं वितरण संबंधी जानकारी निर्भर होती है। ये एकत्रित नमूने एक मानक संदर्भ संग्रह का कार्य करते हैं ताकि आगे नए इकट्ठा किए गए पौधों की पहचान को जांचा जा सके। यह इस बात का रिकार्ड है कि कोई स्पीशीज़ किसी एक खास स्थान पर पायी जाती रही है और उसके द्वारा उस स्पीशीज़ का भौगोलिक परास पता चलता है, और साथ ही इनके माध्यम से वर्गीकरण समस्याओं के पाए जाने का भी पता चलता है। साथ ही यह कायिक एवं जनन आकारिकी, पराग नमूनों, रासायनिक विश्लेषणों के लिए पत्ती नमूनों, शारीरिय नमूनों जैसी पादप सामग्री एवं आंकड़े भी प्रदान करता है।

इसके अलावा इस संग्रह के लेबलों से पारिस्थितिकीय, आर्थिक महत्व तथा मानव जाति वनस्पति के संबंध में सूचना आंकड़े भी प्राप्त होते हैं। हर लेबल पर ये चीजें लिखी गई होती हैं — स्थानीय नाम, वैज्ञानिक नाम, स्थान, आवास, संग्रह तिथि, संग्रहकर्ता का नाम तथा संग्रह संख्या। ये लेबल हर्बेरियम शीट के निचले दाहिने कोने पर एक किनारे से चिपका दिया जाता है (चित्र 6.14)।

इन्डेक्स कार्ड का स्वरूप

Index Card Sketch

Flora ..... No. .....
Family .....
Botanical name .....
Local name .....
Habit .....
Flower colour .....
Habitat ..... Locality ..... Altitude .....
Ecological notes .....
.....
.....
Date of collection .....
Collector .....

चित्र 6.14 : इंडेक्स कार्ड का स्वरूप

6.5.2 उधार मांगे गए नमूने

अधिकाधिक संगत सामग्री के अध्ययन हेतु सामग्री को दूसरे स्थानों से भी उधार मांगा जाता है। मांगे गए नमूनों से उधार देने वाले संस्थानों को भी लाभ होता है, क्योंकि हमारी यह भी जिम्मेदारी है कि नमूनों पर टिप्पणियां करें एवं उनके अभिनिर्धारण का संशोधन किया जाए।

उधार देने वाले संस्थानों से पहुंचने वाले उधार नमूनों को ध्यानपूर्वक देखा-जांचा जाता है कि कहीं रास्ते में उनमें टूट-फूट तो नहीं हुई और सूची को ठीक-ठीक मिला लिया जाता है। (इन नमूनों का अध्ययन केवल संस्थान के ही भीतर किया जाता है। जब इस्तेमाल नहीं हो रहे हों तब नमूनों को धातु के बने मानक हर्बेरियम बक्सों में रख दिया जाता है।) यदि पराग आदि को नमूनों से प्राप्त करना हो तो उसके लिए पूर्व अनुमति ली जानी चाहिए। उचित टिप्पणी के बाद नमूनों को वापस लौटा दिया जाता है। टिप्पणी लेबल पर ये बातें लिख दी जाती हैं : पौधे का संपूर्ण वैज्ञानिक नाम (जीनस, स्पीशीज़ संबंधी विशेषक तथा वर्णनकर्ता), टिप्पणी करने वाले व्यक्ति का पूरा नाम, तथा टिप्पणी किए जाने का वर्ष। जिन बक्सों में ये नमूने आए थे उन्हें तथा उनका पैकिंग संभाल कर रख लिये जाते हैं ताकि सामग्री को इन्हीं में लौटाया जा सके। लौटाते समय पैकिंग की पूरी तफसीलें दे दी जाती हैं।

6.5.3 सामग्री का विनिमय

संग्रहकर्त्ताओं के बीच नमूनों का विनिमय एक-के-लिए-एक के आधार पर किया जाता है। संग्रह को कम से कम खर्च पर बढ़ाते जाने का यह एक महत्वपूर्ण साधन है। विनिमय किए जाने वाले नमूनों को बिना माऊंट किए हुए खुला-खुला प्रेसिंग पेपर में रखा जाता है और ठीक से नामांकित किया हुआ होता है। हमें सदा अच्छी गुणवत्ता वाली सामग्री का ही विनिमय करना चाहिए क्योंकि घटिया सामग्री को विनिमय के वास्ते अधिसंख्य क्यूरेटर सामान्यत: स्वीकार नहीं करते।

6.5.4 सहकर्मियों के साथ संबंध

विविध हर्बेरियम अपने आगन्तुकों को अपनी नीति कथन देते हैं तथा हर्बेरियम में घूमते समय तथा सहकार्यकर्त्ताओं के साथ संबंध बनाते समय हमें उन नीतियों का पूरी तरह पालन करना चाहिए। अन्य हर्बेरियमों को देखना कई प्रकार से लाभकारी होता है — इनसे प्राय: बहुत ही खास नमूनों तथा संग्रहों को देखने का मौका मिलता है, एवं अनिर्धारित फोल्डरों को ढूंढने-देखने एवं अन्य वर्गिकीविद्‌ों के साथ विचार-विनिमय करने का अवसर मिलता है। हमारे सहकर्मी कुछ मदद कर सकें इसके वास्ते हमें पहले से ही उन्हें लिख भेजना चाहिए। इससे वहां का क्यूरेटर हमारे आगमन की तैयारी कर सकेगा और हमें कार्य करने के लिए स्थान तथा एक माइक्रोस्कोप का प्रबंध कर देगा। अनेक हर्बेरियम शाम का समय तथा सप्ताहांत के दिनों में बंद रहते हैं, फिर भी वे सामान्य समय के अलावा भी हर्बेरियम दिखाने की कृपा कर सकते हैं, मगर हमें इसकी मांग नहीं करनी चाहिए।

बोध प्रश्न 3

क) कुंजियों द्वारा नमूने का अभिनिर्धारण करना क्यों उपयोगी है?

ख) मूलपाठ में से उपयुक्त शब्दों का चुनाव कर रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :

i) कुंजियों को ------ के अभिनिर्धारण में बहुत लंबे समय से प्रयोग किया जाता रहा है, तथा अधिसंख्य मैनुअलों में ये ------ हैं।

ii) कुंजियों के लिए अंग्रेजी शब्द key लैटिन के ------ से बनाया गया है।

iii) आधुनिक कुंजियों का इस्तेमाल ------ से शुरू हुआ।

iv) निदान लक्षणों को ------ लक्षण भी कहा जाता है।

v) कुंजियां दो प्रकार की होती हैं - 1) ------- तथा 2) ------

vi) आकारिकीय लक्षण ------ होते हैं जबकि कोशिकाविज्ञानीय लक्षण ------- होते हैं।

vii) जब अभिनिर्धारण किए जाने वाले टेक्सॉनों की संख्या ------- होती है तब पंच कार्ड इस्तेमाल किए जाते हैं।

viii) अग्रग के बाद आने वाले लक्षणों को ------ कुंजी लक्षण कहते हैं।

ix) ------ ही सामग्री पर आधारित होते हुए कुंजियों को विभिन्न ------ से बनाया जा सकता है।

6.6 सारांश

इस इकाई में आपने पढ़ा कि :

- कोई टेक्सॉन जितने ज्यादा लक्षणों पर तथा जितने ज्यादा नानाविध प्रमाणों पर आधारित होगा उतना ही अच्छा है।
- वर्गिकी की दृष्टि से कोई भी एक प्रकार का प्रमाण अंतर्भूत रूप में किसी दूसरे प्रकार के प्रमाण से श्रेष्ठतर नहीं होता।
- किसी भी वर्गीकरण प्रणाली को बनाए रखने एवं उसके परिमार्जन के लिए अभिनिर्धारण अनिवार्य है।
- कुंजियों के इस्तेमाल के सुझाव से कुंजियों के बनाने में सहायता मिलती है।
- वर्गिकी साहित्य को ठीक ढंग से वर्गीकृत, अभिनिर्धारित, सूचिबद्ध, और उन्हें नाम दिया जाता है, ताकि उन्हें उपयोगी तरीके से भण्डारण, पुन: प्राप्ति एवं उपयोग किया जा सके।

- वर्गिकी साहित्य एक प्रकार का प्रलेख है जिसमें बीते हुए समय के आंकड़े, सूचना, जानकारी, अनुसंधान तथा विद्वत्ता दर्ज रहती है।

6.7 अंत में कुछ प्रश्न

1. निम्न पर संक्षिप्त टिप्पणियां लिखिए :
   i) कृत्रिम कुंजियां
   ii) प्राकृतिक कुंजियां
   iii) ब्रेकटेड कुंजियां
   iv) इडेंटेड कुंजियां
2. कुंजियां किस प्रकार बनाई जाति हैं? समझाइए।
3. पौधों के कितने प्रमुख वर्गों का अभिनिर्धारण किया जाता है, पौधों के वर्गीकरण के लिए जिन लक्षणों का अध्ययन किया जाता है उनकी सूची बनाइए।
4. कुंजी के इस्तेमाल करने में किन-किन खास बातों का ध्यान रखना चाहिए। संक्षेप में उल्लेख कीजिए।
5. कुंजियां बनाने में किन-किन निर्देशों का पालन करना चाहिए, सूचि बनाइए।
6. महत्वपूर्ण तथा अमहत्वपूर्ण लक्षणों में क्या अंतर है?

6.8 उत्तर

बोध प्रश्न

1. क) एक वास्तविक रूप में प्राकृतिक वर्गीकरण प्राप्त करने के लिए सभी अंगों-प्रत्यंगों जैसे कि जड़-तंत्र, स्तंभ-प्रकार, पुष्पक्रम आदि से प्राप्त प्रमाण का विश्लेषण एवं संभागीकरण किया जाता है।

   ख) वर्गीकरण अनुसंधान में आकारिकीय प्रमाण अनिवार्य है क्योंकि इसी के द्वारा हमें पादप — लक्षणवर्णन, अभिनिर्धारण, वर्गीकरण तथा संबंध के लिए आधारभूत भाषा प्राप्त होती है।

   ग) i) चतुष्टयी, पंचतयी, त्रितयी ii) सिलिक, सिलिकल, शाइज़ोकार्पी iii) बंडल, छितराए, संवहनी, वलय iv) एकविदरकी, द्विबीजपत्री v) पौधों, प्राणियों, फॉसिल

2. क) संवहनी पौधों के वास्ते महत्वपूर्ण निर्देशिकाएं इस प्रकार हैं :
   i) Index Kewensis Plantarum Phanerogamarum, 2 vols, 18 Suppl. Oxford, 1893-1985.
   ii) Gray Herbarium Card Index, Cambridge, Mass : USA.
   iii) Genera Siphonogamarum: Berlin, 1900-1907.

   ख) i) Manual: मैनुअल एक ऐसी पुस्तक होती है जिसके अंदर विषय-क्षेत्र से संबंधित सूचना तथा फेमिलियों, जीनसों एवं स्पीशीज़ की कुंजियों एवं विवरण दिए गए होते हैं।
   वनस्पतिजात (floras): वनस्पतिजात में किसी एक क्षेत्र में पाए जाने वाले पौधों की सूचि होती है, और यह प्राय: संवहनी पौधों तक ही सीमित होती है।

   ii) Monograph: मॉनोग्राफ की परिभाषा इस प्रकार दी जाती है, यह किसी फ़ेमिली, ट्राइब, अथवा जीनस का किसी एक समय पर बिना कुछ छोड़े, दिया गया संपूर्ण विवरण होता है।
   संशोधन (Revisions): संशोधन में किसी एक जीनस के अंश अथवा उसके ऐसे तत्वों का वर्णन होता है जो किसी एक महाद्वीप अथवा लघुतर भौगोलिक क्षेत्र तक सीमित होता है।

   iii) Taxon: यह नीदरलैंड्स के International Association of Plant Taxonomy द्वारा नियमित अंतरालों पर प्रकाशित होने वाला एक बुलेटिन है।

पत्रिका (Periodical): नियमित अंतराल के बाद होने वाले प्रकाशन को पत्रिका कहते हैं। इसके प्रत्येक प्रकाशन को एक अंक कहा जाता है तथा सारे अंक मिलकर एक जिल्द (Volume) बनाते हैं।

ग) प्राणि वर्गिकी में संदर्भ प्रकाशन इस प्रकार हैं :

i) Biological Abstracts

ii) Century of Dictionary

iii) Directories

3. क) किसी नमूने के आभिनिर्धारण के वास्ते, बजाए इसके कि पहले से नाम दिए जा चुके हर्बेरियम नमूनों के ढेर में तलाशा-ढूंढ़ा जाए, उसे कुंजियों के इस्तेमाल से पहचानना ज्यादा कारगर है, ऐसा इसलिए है कि कुंजियों के उपयोग से छोड़ते जाने की प्रक्रिया द्वारा नमूने का सही अभिनिर्धारण होता है।

ख) i) पौधों, होती

ii) क्लेविस (clavis)

iii) लैमार्क (1778)

iv) कुंजी लक्षण

v) कृत्रिम, प्राकृतिक

vi) महत्वपूर्ण, अमहत्वपूर्ण

vii) अधिक

viii) द्वितीयक

ix) विधि, सामग्री

अंत में कुछ प्रश्न

1. i) कृत्रिम कुंजियां: ये कुंजियां टेक्सॉनों में कुछ प्रमुख लक्षणों में समानताओं एवं असमानताओं पर आधारित होती हैं।

ii) प्राकृतिक कुंजियां: ये कुंजियां विविध टेक्सॉनों के बीच जातिवृत्तीय संबंधों पर आधारित होती हैं।

iii) ब्रेकेटेड कुंजियां: ये कृत्रिम कुंजियां होती हैं जिनमें एक ही पद के दो द्विपद अग्रग (लीड) एक साथ रखे गए होते हैं।

iv) इंडेन्टेड कुंजियां: ये भी कृत्रिम कुंजियां हैं जिनमें एक अग्रग के वर्ग इंडेन्टेड (यानि भीतर की ओर खिसकाए गए) अग्रगों की सहायता से पहले पूरे कर लिए जाते हैं तथा संबंधित टेक्सॉन साथ-साथ आ जाते हैं।

2. कुंजियों को बनाने में विपरीत लक्षण लिए जाते हैं जिनके द्वारा कुंजी में आने वाले संभावित नामों को लघु और लघुतर वर्गों में विभाजित किया जाता है। हर बार एक चयन के साथ एक या अधिक टेक्सॉन अलग हो जाते हैं। कुंजियों में दिए गए कथन पौधों के लक्षणों पर आधारित होते हैं। उदाहरण के लिए निम्नलिखित विकल्पों का इस्तेमाल करते हुए कुंजी के द्वारा टेक्सॉन अलग अलग किए जा सकते हैं :

i) शाकीय बनाम काष्ठीय, यदि शाकीय है तो काष्ठीय पौधे बाहर निकल जाते हैं।

ii) एकव्याससममित फूल बनाम त्रिव्याससममित फूल वाले पौधे बाहर हो जाते हैं।

विपरीत लक्षणों का इस्तेमाल करके हर बार चयन करने पर बचे रह जाने वाले टेक्सॉनों की संख्या कम होती जाती है।

एक ही सामग्री पर आधारित होते हुए कुंजियों को अलग प्रकार से बनाया जा सकता है।

3. आज की तारीख तक पौधों को दो बड़े समूहों में पहचाना जाता है, अर्थात् monocots तथा dicots में। इनके समूहन के वास्ते आपको जिन लक्षणों का अध्ययन करना होता है वे हैं — पत्तियां तथा उनका शिराविन्यास, 2) फूल – पुष्पांगों की संख्या, 3) भ्रूण – बीजपत्रों की संख्या।

4. कुंजियों का उपयोग करते समय निम्न बातों को सुनिश्चत कर लीजिए :

   i) आप परिभाषिक शब्दों को ठीक से समझ कर उन्हें सही तरीके से इस्तेमाल करें।

   ii) किसी द्विपद के दोनों अग्रगों (लीडों) को ध्यानपूर्वक पढ़ें। जब एक अग्रग के लिए उत्तर सकारात्मक हो तथा उसके विकल्पी अग्रग के लिए नकारात्मक हो तो समझ लीजिए कि आप सही रास्ते पर हैं। यदि दोनों मामलों में उत्तर सकारात्मक हो या नकारात्मक हो तो समझ लीजिए कि कहीं कोई गलती है।

   iii) यदि द्विपद के विकल्पों में स्पष्टता नहीं है और न ही उनमें परस्परविरोधिता है वरन् उनमें परस्परव्याप्ति है तब विवरण को पूर्व अभिनिर्धारित स्पीशीज़ के साथ मिलाने के बाद ही निष्कर्ष निकालना चाहिए।

   iv) कुंजियों में उल्लेख किए गए अंशों की मापों का मिलान करते समय ऐसे एक से अधिक भागों को मापा जाना चाहिए, और ज्यादा अच्छा होगा कि इन्हें तीन वैसे ही नमूनों में माप कर औसत निकाल लिया जाए। साथ ही आपको यह भी ज़ान लेना चाहिए कि ताज़े तथा सूखे नमूनों के साइज़ में विभिन्नता आ जाती है।

5. कुंजियां बनाते समय निम्न निर्देशों का पालन करना चाहिए :

   i) द्विशाखों का बनाना

   ii) लक्षणों का चयन

   iii) महत्वपूर्ण एवं अमहत्वपूर्ण लक्षण

   iv) लक्षणों की सारणी बनाना

   v) समूहों को फैलाना

6. महत्वपूर्ण: पुष्पी पौधों के वर्गीकरण में पुष्प-आकारिकी के लक्षण महत्वपूर्ण होते हैं, इन्हें सुगमता से देखा जा सकता है। प्राकृतिक वरण और उसके साथ सफल जनन दोनों मिलकर विविध स्पीशीज़, जीनसों तथा फ़ेमिलियों के भीतर फूलों, फलों तथा बीजों के जनन लक्षणों में एक आधारभूत समानता बनाए रखते हैं।

   अमहत्वपूर्ण लक्षण: अमहत्वपूर्ण लक्षण वे होते हैं जैसे कि अलग हो गया हुआ भौगोलिक वितरण और कोशिकाविज्ञान क्योंकि हो सकता है कि व्यक्ति को अज्ञात पौधों के कोशिकाविज्ञानीय आंकड़े मालूम न हो, और इसलिए पौधे के अभिनिर्धारण में इनसे कोई खास मदद नहीं मिलती। क्रोमोसोम संख्या जैविकीय दृष्टि से महत्वपूर्ण हो सकती है मगर उसके द्वारा हर्बेरियम नमूनों का अभिनिर्धारण नहीं किया जा सकता और कुंजी में उसका कोई महत्व नहीं है।

इकाई 7 पादप-वर्गिकी में आधुनिक प्रवृत्तियां

इकाई की रूपरेखा

7.1 प्रस्तावना
उद्देश्य

7.2 ऐल्फ़ा वर्गिकी एवं ओमेगा वर्गिकी
ऐल्फ़ा वर्गिकी
ओमेगा वर्गिकी

7.3 वर्गिकी के संबंध में आकारिकी

7.4 वर्गिकी के संबंध में शारीर

7.5 वर्गिकी के संबंध में भ्रूण-विज्ञान

7.6 कोशिकावर्गिकी तथा जैववर्गीकरण पद्धति
गुणसूत्र संख्या
गुणसूत्रों की संरचना
गुणसूत्रों का व्यवहार

7.7 रसोवर्गिकी अथवा रासायनिक पादप वर्गिकी
प्रत्यक्ष दृश्यमान रासायनिक लक्षण
प्राथमिक मेटाबोलाइट (उपापचयज)
द्वितीयक मेटाबोलाइट सेमेटाइड

7.8 संख्यात्मक वर्गिकी
संख्यात्मक वर्गिकी के सिद्धांत
संख्यात्मक वर्गिकीविद्‌ों द्वारा अपनाई जाने वाली प्रक्रियाएं

7.9 सारांश

7.10 अंत में कुछ प्रश्न

7.11 उत्तर

7.1 प्रस्तावना

वर्गिकीविद् के काम आने वाले अध्ययन-साधनों के विषय में आप पहले ही पढ़ चुके हैं। अब आप इस इकाई में पादप-वर्गिकी की आधुनिक प्रवृत्तियों के विषय में पढ़ेंगे।

इस इकाई में यह बताया गया है कि सब कुछ मिलाकर वर्गीकरण के समेकन में जीवविज्ञान की विभिन्न शाखाएं किस प्रकार वर्गिकीविद्‌ों की सहायता करती है। वर्गिकीविद्‌ों द्वारा तैयार किया गया हर वर्गीकरण कभी भी पुराना और त्याज्य नहीं हो जाता। इसमें लगातार संशोधन होता जाता है तथा महत्वपूर्ण जीवविज्ञानीय खोजों के परिप्रेक्ष्य में जैसे-जैसे एक के बाद एक नई-नई सूचनाओं का भंडार बढ़ता जाता है वैसे-वैसे उसमें नई बातें जुड़ती रहती हैं। साथ ही, विविध जीवधारियों के अध्ययन में प्रयोग किए जाने वाले नये-नये अध्ययन साधनों तथा तकनीकों के द्वारा महत्वपूर्ण प्रेक्षण प्राप्त होते है जिनका वर्गिकीविद् आगे-आगे अधिकाधिक इस्तेमाल करते जाते हैं। इस प्रकार, वर्गिकीविद् इस तमाम सूचना को एक साथ जोड़कर समेकित करने वाले होते हैं तथा वर्गिकी एवं पादप वर्गीकरण पद्धति की प्रक्रिया एक कभी न समाप्त होने वाली समेकन प्रक्रिया है।

आज, आधुनिक वर्गिकीविद् यह महसूस करता है कि उच्चतर पौधों की स्पीशीज़ की चरम वर्गिकी, आकारिकी, शारीर, भ्रूणविज्ञान, कोशिका-विज्ञान, तथा प्रजनन, आचरण और रसायनशास्त्र एवं अन्य लक्षणों इत्यादि की जानकारी पर आधारित होनी चाहिए। इस सबके एक बहुअध्ययनी दृष्टिकोण की आवश्यकता है तथा वर्गिकीविद् को कंप्यूटरों का भी इस्तेमाल करना पड़ता है ताकि उसे पादप-जीवविज्ञान के विविध पहलुओं से प्राप्त होने वाले आंकड़ों का विश्लेषण करने में सहायता मिल सके।

अतः, वर्गिकी में आधुनिकतम नवीनताओं के साथ-साथ परंपरागत दृष्टिकोण की वर्तमान अवस्था भी आ जाती है। इससे अगली इकाई में प्राणि-विज्ञान में आधुनिक प्रवृत्तियों के विषय में बताया जाएगा।

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- पादप वर्गिकी के अध्ययन की विभिन्न विधियों का वर्णन कर सकेंगे,
- शास्त्रीय अथवा ऐल्फ़ा वर्गिकी एवं आधुनिक अथवा ओमेगा वर्गिकी में विभेद कर सकेंगे,
- वर्गिकी के संबंध में आकारिकी, शारीर तथा भ्रूणविज्ञान का महत्व समझा सकेंगे,
- कोशिकावर्गिकी तथा जैववर्गिकी में गुणसूत्रपरक सूचना के प्रयोग का महत्व बता सकेंगे,
- वर्गिकी में पादप-रसायनों का महत्व बता सकेंगे,
- उपयुक्त उदाहरण देकर संख्यात्मक वर्गिकी की परिभाषा दे सकेंगे।

पादप वर्गिकी के आधुनिक तौर-तरीकों के अध्ययन का आरंभ करने से पूर्व यह जरूरी है कि ऐल्फ़ा तथा ओमेगा वर्गिकी के संबंध में जान लिया जाए।

7.2 ऐल्फ़ा वर्गिकी एवं ओमेगा वर्गिकी

7.2.1 ऐल्फ़ा वर्गिकी

इसका संबंध उस आधारभूत अथवा आरंभिक वर्गीकरण से है जो लगभग पूर्णत: बाह्य आकारिकी पर निर्भर रहा है। इसको वर्गिकी में आनुभविक विधि माना जा सकता है जिसमें वर्गीकरण को प्रेक्षित तथ्यों के आधार पर समाकलित किया जाता है। ऐल्फ़ा वर्गिकी को शास्त्रीय (classical) अथवा पुरातनी (orthodox) या फिर औपचारिक (formal) वर्गिकी भी कहा गया है। इसे प्राचीन काल से प्रयोग में लाया जाता रहा है और इस विधि के विभिन्न पहलू आज भी इस्तेमाल में लाए जा रहे हैं। ऐल्फ़ा वर्गिकी का नाम टुर्रिल (Turrill) (1935) ने दिया था, और इस विधि में वर्गिकी में की जाने वाली दो विकास-प्रावस्थाएं लाने वाले थे, वैलेंटीन एवं लव (Valentine and Love) (1958) और डेविस एवं हेवुड (Davis and Heywood) (1963) जैसे वर्गिकीविद्। ये प्रावस्थाएं इस प्रकार हैं :

i) **अन्वेषण प्रावस्था** (Exploratory phase), जिसमें संग्रह करना तथा उसके बाद उनका वर्गीकरण आता हैं, और

ii) **व्यवस्थापन** (Systematic) अथवा **समेकन** (Consolidation) **प्रावस्था**, जिसमें हर्बेरियमों तथा क्षेत्रों का विस्तृत अध्ययन करके वनस्पतिजात (floras), मॉनोग्राफ तथा वर्गीकरण की विस्तृत प्रणालियां बनायी जाती हैं।

7.2.3 ओमेगा वर्गिकी

एक आधारभूत वर्गीकरण तैयार कर लेने के बाद वर्गिकीविद् उसमें सुधार लाने का प्रयत्न कर सकता है। इसलिए ओमेगा (Omega) वर्गिकी में देखे गए तथ्यों का विवेचन किया जाता है ताकि एक व्याख्यात्मक वर्गीकरण उपलब्ध हो सके। क्रमविकासीय एवं जातिवृत्तीय दृष्टिकोण को इस्तेमाल किया जाता है ताकि हर स्तर पर पौधों के वर्गिकीय एवं क्रम-विकासीय संबंध समझे जा सकें। ओमेगा वर्गिकी नाम भी टुर्रिल (1935) ने ही दिया था। इस वर्गीकरण को **बीटा वर्गिकी** (beta taxonomy) अथवा **नववर्गिकी** (neotaxonomy) अथवा **आधुनिक वर्गिकी** (modern taxonomy) भी कहते हैं। वैलेंटीन तथा लव (1958) के अनुसार इसमें वर्गिकी के विकास में जैववर्ग पद्धति अथवा प्रायोगिक प्रावस्था की प्रतिदर्श है, जिसमें विस्तृत कोशिकाविज्ञानीय एवं आनुवंशिक अध्ययन भी शामिल हैं। डेविस तथा हेवुड (1963) का कहना है कि ओमेगा वर्गिकी में जैववर्ग पद्धति तो है ही उसके साथ-साथ शब्दकोशीय अथवा पूर्णवर्गिकीय (holotaxonomic) प्रावस्था भी शामिल है, जिसमें वर्गिकीविद् हर प्रकार की सूचना का विश्लेषण कर उसे समेकित करता है।

7.3 वर्गिकी के संबंध में आकारिकी

वर्गिकी का मूलभूत अध्ययन-साधन आकारिकी है। ऐसा इसलिए है क्योंकि पौधे की प्राथमिक पहचान उसके लक्षणों पर ही की जाती है। आकारिकीय लक्षणों को जीवित पौधों तथा हर्बेरियम नमूनों, दोनों में ही आसानी से देखा जा सकता है। इन्हीं लक्षणों से पादप-वर्गिकी की अधिसंख्य प्रणालियों के लिए मूलभूत सूचना प्राप्त हुई है। हाल के वर्षों में इलेक्ट्रॉन माइक्रोस्कोपी के रूप में आधुनिक वर्गिकीविदों को एक अत्यंत मूल्यवान अध्ययन-साधन प्राप्त हुआ है जिसके द्वारा विभिन्न आकारिकीय लक्षणों का बहुत उच्च आवर्धन पर अध्ययन

किया जा सकता है। और इस प्रकार प्राप्त हुई सूचना को अभिनिर्धारण, वर्गीकरण तथा संबंधों को स्थापित करने के उद्देश्यों में इस्तेमाल किया जाता है।

हेवुड तथा दक्षिनी (Heywood and Dakshini) ने स्कैनिंग इलेक्ट्रॉन माइक्रोस्कोप (SEM) का इस्तेमाल करके अम्बेलीफेरी फेमिली की 12 जीनसों की 40 स्पीशीज़ में फलों की सतह के पैटर्नों (जिन्हें मेरिकार्प, mericarp कहते हैं) का अध्ययन किया है। उन्होंने पाया कि फल-भित्ती के ऊपर SEM से देखे गए अनेक सूक्ष्म लक्षण विभिन्न जीनसों के परस्पर संबंधों का स्पष्टीकरण करने में अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। उन्होंने इन स्पीशीज़ के फलों की संरचना में भी भारी विविधता देखी और इस सबसे उन्हें वर्गिकी उद्देश्यों के लिए व्यवहारिक महत्व की नयी सूचना प्राप्त हुई।

अधिसंख्य वर्गिकीविदों ने जीनस *Glinus* Linn को जीनस *Mollugo* Linn से, बीजों के लक्षण के आधार पर परंपरागत रूप में अलग किया है किंतु कभी-कभी इन दो जीनसों को सही-सही पहचानने में कठिनाइयां आती थीं। SEM की मदद से बीजों की सतह के पैटर्नों का विस्तार से अध्ययन किया गया है ताकि जीनसों के अभिनिर्धारण में बीज की सतह के सूक्ष्म लक्षणों का महत्व स्थापित किया जा सके। साथ ही *Mollugo* जीनस के भीतर, बीज-चोल (seed coat) की सूक्ष्मआकारिकी से विभिन्न स्पीशीज़ को पहचानने में भी सहायता मिली है।

इन तथा ऐसे ही अन्य अध्ययनों से सिद्ध होता है कि आज के अत्यंत विशेषित एवं जटिल वनस्पतिकी के आधुनिक युग में भी आकारिकीय लक्षणों से निरंतर महत्वपूर्ण सूचना प्राप्त हो रही है।

7.4 वर्गिकी के संबंध में शारीर

वर्गिकी में शारीर-लक्षणों का इस्तेमाल माइक्रोस्कोप (Microscope) के साथ-साथ शुरू हुआ। माइक्रोस्कोप के द्वारा जीवविज्ञानियों को एक नया अध्ययन-साधन प्राप्त हुआ जिससे अंगों तथा ऊतकों की अंतरिक संरचना को देखा जा सकता था। तब यह अनुभव किया गया कि शारीरीय लक्षण (anatomical character) भी उतने ही महत्वपूर्ण हैं जितने कि आकारिकीय लक्षण। पौधे के सभी भागों से बहुसंख्यक लक्षण उपलब्ध होते हैं जिन्हें वर्गिकीय उद्देश्यों के लिए इस्तेमाल किया जाता है। कुछ शारीरीय लक्षण ज्यादा विशिष्ट होते हैं और उन्हें नित्य प्रति के अभिनिर्धारण में आमतौर से इस्तेमाल किया जाता है। हमें यह भी मालूम है कि यह विषय उन वैज्ञानिकों के लिए भी बहुत महत्व का है जिन्हें कुछ खास उद्देश्यों के लिए पादप-सामग्री के छोटे-छोटे नमूनों अथवा अंशों को पहचानने के लिए आमंत्रित किया जाता है, जैसे कि औषधवृत्तविदों के लिए जिन्हें औषध के स्रोत का निर्धारण करना होता है, अथवा किसी न्यायालयी विशेषज्ञ को जो किसी अपराध की खोजबीन में संकेत प्रदान कर सकता है, आदि, आदि। इस प्रकार के प्रेक्षणों से पादप अभिनिर्धारण एवं वर्गीकरण में शारीर की भूमिका पूरी तरह स्थापित हो गयी है।

पत्ती कदाचित् ऐंजियोस्पर्मों की सबसे विविध अंग है और इसमें संभावित वर्गीकरण महत्व के अनेक शारीरीय लक्षण पाए जाते हैं। पादप कार्यिकी पाठ्यक्रम (खंड 3, इकाई 13 में आप प्रकाशसंश्लेषण में C_3 तथा C_4 दिशामार्गों के विषय में पढ़ चुके हैं। इन दिशामार्गों को अपनाने वाले पौधों के शारीर पर किए गए अन्वेषणों से इन दो प्रकार के दिशामार्गों से संबंधित अनेक महत्वपूर्ण लक्षण पता चले हैं। पत्तियों में जो सबसे अधिक स्पष्ट लक्षण पाया गया है वह है C_4 दिशामार्ग दर्शाने वाले पौधों की पत्तियों में संवहनी बंडलों को घेरता हुआ एक सुव्यक्त क्लोरेंकाइमी (Chlorenchyma) आच्छाद (Sheath) का पाया जाना तथा C_3 दिशामार्ग वाले पौधों में इसका न होना। इस प्रकार की पत्ती शारीर से पौधे की प्रकाश-संश्लेषी कार्यक्षमता के विषय में सूचना प्राप्त होती है।

ऐंजियोस्पर्मों में द्विबीजपत्रियों की पत्तियों में जालकीय (रेटिकुलेट) शिरान्यास तथा एकबीजपत्रियों की पत्तियों में समांतर शिराविन्यास पाया जाता है।

वनस्पतिविज्ञान के विद्यार्थी के रूप में हम शुरू से ही पढ़ते चले आ रहे हैं कि ऐंजियोस्पर्मों के दो प्रधान विभाजनों में शिरान्यास (venation) का आधारभूत स्वरूप भिन्न होता है। प्रत्येक विभाजन में बहुसंख्यक पत्री-शिरान्यास पाए जाते हैं तथा इस लक्षण को वर्गिकीविद् ने विविध पादप वर्गों में जातिवृत्तीय संबंधों को समझने में इस्तेमाल किया है।

डॉ. ललिता सहगल ने *Euphorbia* जीनस की 150 स्पीशीज़ में पत्ती-शिरान्यास का सर्वेक्षण किया। इनमें उसे 12 प्रमुख पैटर्न पता चले और उन्होंने, अन्य लक्षणों के साथ-साथ इस लक्षण को भी लेकर इन स्पीशीज़ का निर्धारण एवं उनका वर्गीकरण किया। इन्होंने पत्ती-शिरान्यास नमूने को स्पीशीज़ के आवास के साथ भी सहसंबंधित किया और दर्शाया कि इस जीनस के मरूद्भिदी सदस्यों में ट्रैकीड (trachied) तत्वों के समूहों का संचय हुआ है जबकि शयान तथा आरोही (prostrate and ascending) स्वभाव वाली विभिन्न शाकीय

स्पीशीज़ में शिराओं के चारों ओर एक आच्छाद पाया जाता है। शिराविन्यास के कई अन्य लक्षणों को भी वर्गिकीय महत्व का पाया गया (सारणी 7.1)।

सारणी 7.1 : पत्तियों के शिराविन्यास नमूनों के आधार पर *Euphorbia* की विभिन्न स्पीशीज़ का वर्गीकरण

श्रेणी 1.1	एकशिरा दशा		6 स्पीशीज़, जैसे *E. incisa*
श्रेणी 1.2	द्विशिरा दशा		4 स्पीशीज़, जैसे *E. polygonifolia*
श्रेणी 1.3	त्रिशिरा दशा		अधिसंख्य स्पीशीज़
	वर्ग	1.3.1	शिराओं पर अलंकरण (आकृतियां)
	प्रारूप	1.3.1.1	जैसे *E. indivisa*
	प्रारूप	1.3.1.2	जैसे *E. hirta*
	प्रारूप	1.3.1.3	जैसे *E. granulata*
	वर्ग	1.3.2	शिराओं पर अलंकरण नहीं
	उपवर्ग	1.3.2.1	त्रिसूत्रीय मध्यशिरा
	प्रारूप	1.3.2.1.1	जैसे *E. milii*
	प्रारूप	1.3.2.1.2	जैसे *E. pulvinata*
	प्रारूप	1.3.2.1.3	जैसे *E. tirucallic*
	उपवर्ग	1.3.2.2	जैसे एकल सूत्रीय मध्यशिरा
	प्रारूप	1.3.2.2.1	जैसे *E. gorgonis*
	प्रारूप	1.3.2.2.2	जैसे *E. glareosa*
	प्रारूप	1.3.2.2.3	जैसे *E. peplus*
श्रेणी 1.4	विशेष		18 स्पीशीज़, जैसे *E. neriifolia*

डॉ. ललिता सहगल के सौजन्य से प्राप्त आंकड़े

एक अन्य महत्वपूर्ण अध्ययन में वाइसबर तथा म्हालबर्ग (Bisber and Mahlberg) (1981) ने लेटेक्सधारी कोशिकाओं (laticifer cell) का तथा स्टार्च कणिकाओं के स्कैनिंग इलेक्ट्रॉन माइक्रोग्राफ़ों का अध्ययन किया ताकि उनके प्रयोग द्वारा *Euphorbia* जीनस के भीतर हुए विकास की व्याख्या की जा सके। वर्गीकरण उद्देश्यों के लिए पत्ती के शारीर के कई अन्य पहलू भी प्रयोग में लाए गए हैं। इनमें से कुछ पहलू इस प्रकार हैं — एपिडर्मिस की प्रकृति, स्टोमेटा के प्रकार, मीज़ोफ़िल का प्रकार, स्क्लेरीडों एवं क्रिस्टलों के मौजूद होने एवं अनके प्रकार, आदि। ऐंजियोस्पर्मों के विभिन्न वर्गों में पत्तियों के स्क्लेरीडों के प्रकारों तथा उनके वितरण में विभिन्नता पायी जाती है।

वर्गिकी तथा जातिवृत्त में जो एक अन्य महत्वपूर्ण शारीरीय लक्षण इस्तेमाल किया जाता है वह है — द्वितीयक काष्ठ (secondary wood) की संरचना। काष्ठ-शारीर को प्रत्येक वर्गिकी स्तर पर इस्तेमाल किया गया है। जब भी कभी दो या दो से अधिक संभावनाएं रखी जाती हैं, तब अन्य लक्षणों के साथ-साथ इस लक्षण के द्वारा उन टेक्सॉनों के वर्गिकीय स्थान का निर्धारण करने में लाभकारी प्रमाण मिलते हैं। इस विधि के द्वारा किसी जीनस का अथवा फ़ेमिली को, सही-सही उच्चतर श्रेणी में वर्गीकरण निर्धारित किया जा सकता है। इसी प्रकार पर्णवृंत (petiole) की संवहनिका व्यवस्था के पैटर्न तथा पर्व शारीर (nodal anatomy) के द्वारा अधिकाधिक वर्गिकीय प्रमाण उपलब्ध होते हैं।

व्हेन्के (Behnke) तथा उसके सहयोगियों ने छलनी नलिका (sieve tube) प्लास्टिडों की परासंरचना को समझने के लिए 380 फ़ेमिलियों में से 1500 से अधिक स्पीशीज़ पर अन्वेषण किया है। छलनी नलिका प्लास्टिड (sieve tube plastids) मोटे तौर पर दो प्रकार के होते हैं — एक है S-प्रकार जिसमें स्टार्च का संचय होता है तथा दूसरा है P-प्रकार जिसमें प्रोटीन का संचय होता है। ट्रांसमिशन इलेक्ट्रॉन माइक्रोस्कोप (TEM) के इस्तेमाल के द्वारा प्राप्त हुई इस शारीरीय सूचना को द्विबीजपत्रियों तथा एकबीजपत्रियों, दोनों ही के विभिन्न वर्गों के बीच परस्पर संबंधों को समझने में प्रयोग में लाया गया है (चित्र 7.1)।

तथापि, यह याद रखना जरूरी है कि वर्गिकी के लिए शारीरीय लक्षणों ने ही उत्कृष्ट आंकड़े प्रदान किए हैं। इन लक्षणों को अकेले-अकेले लेकर हो सकता है कारगर वर्गीकरण प्रणाली प्राप्त न हो सके, मगर जब इन्हें अन्य अध्ययन शाखाओं से प्राप्त जानकारी के साथ जोड़ दिया जाता है, तब उनसे अनेक वर्गिकीय समस्याओं का समाधान निकलता है। वर्गिकीविदों को ऐसा नहीं करना चाहिए कि वे शारीरीय अंकड़ों को आकारिकीय लक्षणों से पृथक करके देखें, उन्हें इस सूचना को अपने औपचारिक वर्गिकीय वर्णनों में शामिल कर लेना चाहिए।

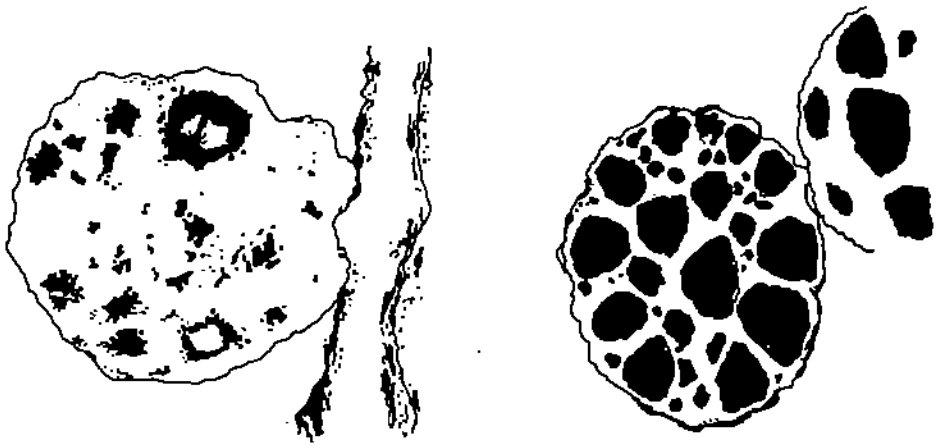

क ख

चित्र 7.1 : (TEM) द्वारा लिए गए छलनी नलिकाओं के माइक्रोग्राफ। अ:S-प्रकार के प्लास्टिड, ब:P-प्रकार के प्लास्टिड।

बोध प्रश्न 1

क) नीचे दिए गए कथनों में सही कथनों के सामने सही का निशान (✔) तथा गलत कथनों के सामने काटने का निशान (✕) दिए गए कोष्ठकों के भीतर लगाइए।

i) आधुनिक वर्गिकीविद् विभिन्न अन्वेषण क्षेत्रों से प्राप्त ज्ञान का इस्तेमाल कर सकते हैं। ( )

ii) ऐल्फ़ा वर्गिकी में एक व्याख्यात्मक दृष्टिकोण अपनाया जाता है। ( )

iii) ओमेगा वर्गिकी को औपचारिक वर्गिकी भी कहते हैं। ( )

iv) ओमेगा वर्गिकी में अकारिकीय लक्षणों का इस्तेमाल किया जाता है। ( )

v) पादप शारीर से ऐल्फ़ा वर्गिकी तथा ओमेगा वर्गिकी दोनों ही के लिए लक्षण प्राप्त होते हैं। ( )

vi) चाय के पौधे की विभिन्न किस्मों में पत्ती-स्क्लेरिडों की आकारिकी का पत्ती में कुछ खास रासायनिक पदार्थों के होने या न होने से सह-संबंध जोड़ा जा सकता है। ( )

ख) शास्त्रीय वर्गिकी तथा आधुनिक वर्गिकी ये दोनों पद्धतियां वर्गिकीय समस्याओं को सुलझाने के लिए अलग-अलग विधियां अपनाती हैं। इन विधियों के क्या-क्या महत्वपूर्ण अंतर हैं, गिनाइए।

.....

.....

.....

.....

ग) C_3 तथा C_4 प्रकाशसंश्लेषी दिशामार्गों वाले पौधों को उनके पत्ती-शारीर से पहचाना जा सकता है। इस बात के लिए सर्वाधिक महत्वपूर्ण शारीरीय लक्षण कौन सा है?

.....

.....

.....

घ) छलनी नलिका प्लास्टिडों से प्राप्त होने वाली सूचना से वर्गिकीविदों को किस प्रकार सहायता प्राप्त होती है?

.....

.....

.....

7.5 वर्गिकी के संबंध में भ्रूण-विज्ञान

भ्रूणविज्ञानीय सूचना को वर्गिकीय उद्देश्यों के लिए वर्गीकरण के विविध स्तरों पर इस्तेमाल किया गया है। आप पादप-जगत के उस अत्यंत मूलभूत विभाजन से पहले ही अवगत हैं जिसमें उसे दो इकाइयों — थैलोफाइटा तथा ऐम्ब्रियोफ़ाइटा में विभाजित किया गया है। इन विभाजनों को अन्य लक्षणों (सारणी 7.2) के अतिरिक्त जाइगोट (युग्मनज) के आचरण के आधार पर भी पहचाना जाता है।

सारणी 7.2 : वर्गिकी में इस्तेमाल होने वाले भ्रूणविज्ञानीय लक्षण

1. परागकोश (anther)
2. माइक्रोस्पोर मातृ कोशिका (microspore mother cell) का चतुष्कक्षीय विभाजन
3. पराग कण (pollen grain)
4. बीजांड (ovule) का विकास एवं संरचना
5. बीजांड में स्पोरेजनी ऊतक का उद्‌भव एवं उसका विस्तार
6. मेगास्पोटजनन (megasporogenesis) तथा भ्रूण कोश (Embryo sac) का विकास
7. परिपक्व भ्रूण-कोश का स्वरूप एवं उसकी संघटना
8. निषेचन (fertilisation)
9. ऐंडोस्पर्म (endosperm)
10. भ्रूण (embryo)
11. बीजचोल (seed-coat)
12. एकाधिक विशेष लक्षण

थैलोफाइटा में जाइगोट सीधे ही नए पौधे में विकसित हो जाता है या फिर यह स्पोरों में विभक्त हो जाता है जिनसे बाद में नए पौधे बनते हैं। किंतु एम्ब्रियोफ़ाइटों (ब्रायोफ़ाइटों, टेरिडोफ़ाइटों, जिम्नोस्पर्मों तथा ऐंजियोस्पर्मों) में जाइगोट से पहले तो एक भ्रूण बनता है और फिर बाद में उस भ्रूण से वयस्क पौधा बनता है।

आप यह भी जानते हैं कि इसी प्रकार के अन्य लक्षणों को जोड़कर भ्रूण के लक्षणों द्वारा यह आधार प्राप्त होता है जिससे ऐंजियोस्पर्मों को दो मुख्य वर्गों एकबीजपत्रियों (monocotyledons) तथा द्विबीजपत्रियों (dicotyledons) में विभाजित किया जाता है।

आगे हम भ्रूण-विज्ञान संबंधी आंकड़ों के उस महत्व को स्पष्ट करेंगे जो पौधों की वर्गिकी की आधुनिक प्रवृत्ति में आ गया है। इस उपभाग को पढ़ने के बाद आप एक तो वर्गिकीविदों द्वारा इस्तेमाल होने वाले विविध प्रकार के भ्रूणविज्ञानीय लक्षणों का महत्व समझ जाएंगे, और तीसरे, वर्गिकी समस्याओं के समाधान करने में इस ज्ञान

का उपयोग कर सकेंगे।

भ्रूणविज्ञान में केवल भ्रूण के विकास का तथा परिपक्व भ्रूण की संरचना का अध्ययन ही आता है, और कुछ नहीं। किंतु प्रोफेसर पी. महेश्वरी एवं अनेक अन्य प्रसिद्ध वनस्पतिज्ञों ने भ्रूणविज्ञान शब्द के अंतर्गत भ्रूण के अध्ययन के अतिरिक्त उन सभी घटनाओं को शामिल किया है जिनसे आगे चलकर निषेचन संपन्न होता है। यह वर्दित संकल्पना उन बहुसंख्यक लक्षणों को प्रदान करने में अत्यंत लाभकारी सिद्ध हुई है जिन्हें वर्गिकीय उद्देश्यों के लिए इस्तेमाल किया जा सकता है तथा इस आधार पर पिछले लगभग 50 वर्षों में अत्यधिक जानकारी इकट्ठी कर ली गई है जो वर्गिकी उद्देश्यों में इस्तेमाल की जा रही है। पुष्पी पौधों में स्पोरजनन, युग्मकजनन, निषेचन तथा भ्रूणजनन (embryogenesis) में बहुत से लक्षण जान लिए गए हैं जो अपेक्षाकृत अधिक स्थिर हैं और जिन पर अनुकूली दबाव का असर कम पड़ता है। अत: ये लक्षण पादप वर्गिकी में बहुत महत्व के हैं, खासतौर से तब जबकि बाह्य आकारिकी से वर्गिकीय संबंधों में दो या अधिक संभावनाओं का संकेत मिलता हो।

ऐसे अनेक पहलू हैं जो वर्गिकी में भ्रूणविज्ञानीय लक्षणों के इस्तेमाल का समर्थन करते हैं। सबसे महत्वपूर्ण तथा विशेष लक्षण हैं — भ्रूणविज्ञानीय लक्षणों में एक बहुत उच्च सहसंबंध पाया जाना। उदाहरण के लिए ऐसे कम से कम 10 भ्रूणविज्ञानीय लक्षण हैं जो आर्डर एरिकेलीज़ (Ericales) के अंतर्गत वर्गीकृत किए जाने वाले सभी पौधों में सदैव एक साथ आते हैं (सारणी 7.3)। लक्षणों का यह अति महत्वपूर्ण सहसंबंध इस आर्डर के अभिनिर्धारण में बहुत ही महत्व का है, और ऐंजियोस्पर्मों के किसी भी अन्य वर्ग में ये सभी लक्षण एक साथ मौजूद नहीं होते।

सारणी 7.3 : आर्डर ऐरिकेलीज के भ्रूणविज्ञानीय लक्षण

1.	अविभेदित एंडोथीसियम (endothecium)
2.	ग्रंथिल टेपेटम (glandular tapetum) जिसमें बहुकेंद्रित कोशिकाएं होती हैं
3.	पराग स्थायी चुतष्कों (tetrads) में होते हैं
4.	एकटेग्मनी (unitegmic) तनुयीजांडकायी बीजांड
5.	एंडोथीसियम विद्यमान
6.	8 केंद्रक वाला एकस्पोरी मेगागैमीटोफाइट (monosporic megagametophyte)
7.	लम्बा हो गया जाइगोट
8.	कोशिकीय एंडोस्पर्म जिसकी पहली 4 कोशिकाएं एक रेखीय पंक्ति में होती हैं।
9.	सीधा भ्रूण
10.	एकल परत वाला बीजावरण (seed-coat)

इसी प्रकार, विभिन्न जलवायुपरक दशाओं में भी जननांगो में कम विभिन्नता पायी जाती है जिससे वे अभिनिर्धारण के लिए स्थिर भ्रूण-विज्ञानीय लक्षण बन जाते हैं। इनमें पारिस्थितिकीय विभेद (ecotypic variation) भी नहीं पाए जाते तथा बहुगुणित पौलीप्लॉइड (polyploid) श्रृंखला के विभिन्न प्लॉइडी स्तरों पर भी अपरिवर्तित बने रहते हैं। एक तो, इन्हीं पहलुओं के आधार पर तथा दूसरे, इस तथ्य से कि अधिसंख्य जीव वैज्ञानिकों की राय में भ्रूणविज्ञानीय लक्षण संरक्षी होते हैं, आधुनिक वर्गिकी में भ्रूणविज्ञान का महत्व और भी बढ़ जाता है।

वर्गिकीय समस्याओं के समाधान में भ्रूणविज्ञान के महत्व को कुछ खास उदाहरणों के अध्ययन द्वारा समझा जा सकता है। भ्रूणविज्ञानी जिन शास्त्रीय उदाहरणों को दिया करते हैं उनमें से एक है – जीनस *पायोनिया* (*Paeonia*) का वर्गिकी स्थान। ऐंजियोस्पर्मों के वर्गीकरण की अधिसंख्य शास्त्रीय प्रणालियों में इस जीनस को रैनुनकुलेसी का सदस्य माना गया है। किंतु अनेक वनस्पतिदों ने *पायोनिया* में ऐसे कई लक्षण देखें हैं जो इसे रैनुनकुलेसी फ़ेमिली के अन्य सदस्यों से पृथक कर देते है। इन लक्षणों में एक तो संवहनी (vascular) एवं पुष्पी शारीर (floral anatomy) आता है तथा दूसरे इनमें पाई जाने वाली आधारभूत गुणसूत्र संख्या एवं गुणसूत्रों का साइज़ व उनकी आकारिकी भी आती है। जीनस *पायोनिया* तथा रैनुनकुलेसी फ़ेमिली के अन्य सदस्यों के बीच के सबसे महत्वपूर्ण अंतर का संबंध कई भ्रूणविज्ञानीय लक्षणों से है तथा इस अध्ययन को एक ओर रूसी वनस्पतिज्ञ याकोवलेव एवं योफ़े ने तथा दूसरी ओर भारतीय वनस्पतिज्ञ प्रेम मुरगई ने अलग-अलग स्वतंत्र रूप से किया। इनमें पता चलने वाला सबसे महत्वपूर्ण प्रेक्षण *पायोनिया* के भ्रूणविज्ञान से संबंधित था। अन्य

ऐंजियोस्पर्मों से भिन्न इस जीनस में एक अपने ही किस्म का अलग प्रकार का भ्रूण विकास पाया जाता है। रूसी वनस्पतिज्ञों के अनुसार जाइगोट के केंद्रक में बार-बार विभाजन होकर एक सीनोसीटिक (coenocytic) संरचना बन जाती है। बाद में ये केंद्रक साइटोप्लाज्म की परिधि-पटल में पहुंचकर स्थित हो जाते हैं और फिर इसके बाद भित्ति-निर्माण होता है जिससे परिधीय क्षेत्र कोशिकीय (cellular) बन जाता है। तब इनमें से कुछ परिधीय कोशिकाएं भ्रूण-प्रारंभकारी बन जाती है मगर उनमें से केवल एक ही से वयस्क भ्रूण बनाती है। इसके विपरीत मुरगई ने अनुभव किया कि जाइगोट में विभाजन होकर एक-दो कोशिकीय पूर्वभ्रूण (proembryo) बनता है तथा इस पूर्वभ्रूण की आधारीय कोशिका से सीनोसीटिक संरचना बनती है जिससे आगे चलकर वयस्क भ्रूण बनता है जैसाकि रूसी वनस्पतिज्ञों ने वर्णन किया था। *पायोनिया* को शेष रैनुनकुलेसी से पृथक करने वाले अन्य भ्रूणविज्ञानीय लक्षण नीचे सारणी में दिए गए हैं। इन्हीं बातों से *पायोनिया* को शेष रैनुनकुलेसी से पृथक करके उसे फ़ेमिली पायोनियेसी में वर्गीकृत किया जाना न्यायोचित हो जाता है।

सारणी 7.4 : तथा रैनुनकुलेसी के भ्रूणविज्ञानीय लक्षणों की तुलना

लक्षण		रैनुनकुलेसी
पुंकेसर (स्टेमन)	सर्पिल रूप में व्यवस्थित अपकेंद्रीय	सर्पिल रूप में व्यवस्थित अभिकेंद्रीय
परागकोश (ऐंथर)	बहुपरती एंडोथीसियम, अधिकतर 2-परती टेपेटम	एकपरती एंडोथीसियम तथा एक परती टेपेटम
पराग	जालकीय रूप में गढों से युक्त एक्साइन, जननिक कोशिका बड़ी तथा लम्बी	एक्साइन कणिकीय अथवा पेपिलीय या चिकनी, जननिक कोशिका छोटी एवं लेन्सरूपी
मादा आर्किस्पोरियम	बहुकोशिकीय, अनेक मेगास्पोर मातृ कोशिकाएं कार्य करती हैं	एककोशिकीय अथवा बहुकोशिकीय, एक कोशिका कार्य करती हैं
ऐंटीपोडिल (antipodal) कोशिकाएं	स्थायी, पौलीप्लॉइड नहीं होती	स्थायी, (*Adonis* में अल्पकालिक) एक या एक से अधिक केंद्रक, पौलीप्लॉइड
भ्रूणजनन	अद्वितीय	ओनेग्रेड प्रकार का, विरलतः सोलेनेड प्रकार का
बीज	ऐरिलेट (arillate)	गैर-ऐरिलेट
फल	फॉलिकल (follicle)	ऐकीन (Achene)

हम सिंघाड़े से परिचित हैं जिसे वनस्पतिक नाम *ट्रैपा बाइस्पाइनोसा* (*Trapa bispinosa*) से पुकारा जाता है। इस पौधे के वर्गीकरण में अनेक परिवर्तन हुए हैं। बैंथम तथा हुकर ने जीनस *ट्रैपा* को फ़ेमिली ओनाग्रैसी (Onagraceae) में वर्गीकृत किया था किंतु एंग्लर एवं हचिंसन समेत अन्य वनस्पतिज्ञों ने जीनस *ट्रैपा* को वहां से हटाकर फ़ेमिली ट्रैपेसी में रखा तथा ऐसे अनेक आकारिकीय लक्षण गिनाए जो इस पृथक्करण को प्रमाणस्वरूप सही दर्शाते हैं।

डॉ. मानसी राम ने *ट्रैपा बाइस्पाइनोसा* का विस्तृत भ्रूणविज्ञान अध्ययन किया तथा ऐसे अनेक लक्षण गिनाए जिनके आधार पर *ट्रैपा* नामक जीनस ओनाग्रेसी फ़ेमिली से भिन्न है और इस तरह *ट्रैपा* को एक पृथक फ़ेमिली ट्रैपेसी में वर्गीकृत किया।

सारणी 7.5 : ट्रैपा तथा ओनाग्रेसी के भ्रूणविज्ञानीय लक्षणों की तुलना

लक्षण	ट्रैपा	ओनाग्रसी
पराग कण	पिरामिडीय और 3 अतिवलनित रेखांशिक किरीटियों (meridional crest) से युक्त	कुंठित रूप में त्रिकोणीय तथा द्रोणी रूपी (basin shaped)
अण्डाशय	अर्धअधरीय, द्विकोष्ठीय जिसमें प्रत्येक कोष्ठक में एक अकेला दोलनी	अधरीय, अधिकतर त्रिकोष्ठीय, प्रत्येक कक्ष में अक्षीय प्लैसेंटे (axile placenta)

	ऐनाट्रोपस बीजांड (pendulous anatropous ovule) होता है।	पर अनेक बीजांड
भ्रूण कोश	पौलीगोनम प्रकार (polygonum type)	ईनोथेरा प्रकार (onethera)
एंडोस्पर्म	अविद्यमान	विद्यमान एवं केंद्रकीय
भ्रूण	सोलेनेड प्रकार (solanad)	ओनेग्रेड प्रकार
सस्पेंसर	सुविकसित सस्पेंसर हॉस्टोरियम (suspensor haustorium)	छोटा एवं अस्पष्ट
बीजपत्र	एक बीजपत्र अत्यंत हूसित	बीजपत्र समान होते हैं
फल	बड़ा, एक बीज वाला ड्रुप जिसमें सुव्यक्त काटे होते हैं	लौक्यूलिसाइडल केप्सूल (Loculicidal)

ऊपर वर्णन किए गए उदाहरणों के अलावा *एक्सोकारपस (Exocarpus)*, *पेन्टाफार्मा (Pentaphragma)*, *ब्यूटमस (Butomus)*, *डेफिनीफाइलम (Daphniphyllum)* जीनसों एवं पोडोस्टेमेसी (Podostemaceae) ओनेग्रेसी तथा लोरनथेसी (Loranthaceae) फ़ेमिलियों में अन्य अनेक महत्वपूर्ण बातें पाई गई हैं, इन भ्रूणविज्ञानीय लक्षणों को वर्गिकीय सहसंबंधों को समझने में इस्तेमाल किया गया है।

बोध प्रश्न 2

क) भ्रूणविज्ञान सूचना का इस्तेमाल करते हुए निम्न में परस्पर विभेद कीजिए :

i) थैलोफाइट पौधे तथा एम्ब्रियोफाइट पौधे

.....

.....

.....

ii) एकबीजपत्री पौधे तथा द्विबीजपत्री पौधे

.....

.....

.....

ख) वर्गिकीय उद्देश्यों के लिए इस्तेमाल किए जाने वाले कोई छः भ्रूणविज्ञानीय लक्षण गिनाइए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

ग) कोई तीन पहलू बताइए जो वर्गिकीय समस्याओं के समाधान में भ्रूणविज्ञानीय लक्षणों को महत्वपूर्ण बना देते हैं।

.....

.....

.....

घ) पुष्पी पौधों की कोई तीन जीनसें तथा कोई तीन फ़ेमिलियां गिनाइए जिनमें भ्रूणविज्ञानीय लक्षणों से वर्गीकीय संबंधों को समझने में सहायता मिलती है।

जीनस	फ़ेमिलियां
.....	.....
.....	.....
.....	.....

7.6 कोशिकावर्गिकी तथा जैववर्गीकरण पद्धति

19वीं शताब्दी के समाप्त होते-होते तथा 20वीं शताब्दी के आरंभिक वर्षों में वनस्पतिज्ञों के सामने एक समस्या यह आयी कि पौधों में प्राकृतिक रूप में पाए जाने वाली विभिन्नताओं का किस प्रकार विश्लेषण किया जाए। इससे यह हुआ कि अब तक पादप वर्गिकी में वर्णनात्मक शास्त्रीय विधि पर जो बल दिया गया था वह वहां से हटाकर प्रायोगिक वर्गिकी नामक नई आधारपद्धति पर ले जाया जाने लगा जिसके द्वारा इन विभिन्नताओं के उत्पन्न होने के कारण को समझने का प्रयास किया गया। इस नयी पद्धति को जैववर्गीकरण पद्धति (biosystematics) का नाम दिया गया तथा यह अधिकतर, कोशिका विज्ञानीय विभिन्नता के आधार पर आधारित थी। वर्गिकी में कोशिका विज्ञानीय आंकड़ों के इस इस्तेमाल को कोशिकावर्गिकी (cytotaxonomy) कहा जाता है।

विवेचन की दृष्टि से पादप वर्गिकी की इस प्रवृत्ति को हम तीन बड़े शीर्षकों के अंतर्गत रख सकते हैं — i) गुणसूत्र की संख्या, ii) गुणसूत्रों की आकारिकी तथा iii) अर्धसूत्री विभाजन के समय गुणसूत्रों का व्यवहार।

7.6.1 गुणसूत्र संख्या

हम सामान्यतः जानते हैं कि एक स्पीशीज़ की सभी व्यष्टियों में उनकी प्रत्येक कोशिका के भीतर गुणसूत्र संख्या (chromosome number) स्थिर होती है। यह भी स्थापित हो चुका है कि विभिन्न स्पीशीज़ जितनी अधिक निकटता से संबंधित होती है, उनमें समान गुणसूत्र होने की उतनी ही ज्यादा संभावना होती है, जबकि अधिक दूर के संबंध वाली स्पीशीज़ में यह संख्या भिन्न हुआ करती है। इस अपेक्षाकृत संरक्षणता के कारण गुणसूत्र संख्या एक महत्वपूर्ण वर्गिकी लक्षण बन जाती है तथा इसका अक्सर प्रयोग भी होता है। साथ ही, देखा गया है कि ऐंजियोस्पर्मों में गुणसूत्र संख्या में काफी अंतर होता है, यह संख्या बहुत कम 2n = 4 (*Haplopappus gracilis* में) (Asteraceae) से लेकर बहुत ज्यादा 2n = 530 (*Poa litterosa* में Poaceae) तक पायी जाती है। इस दृष्टि से बहुत सारे ऐंजियोस्पर्मों का विश्लेषण कर उनकी गुणसूत्र संख्या पता लगाई गयी है जिससे बड़ी लाभकारी वर्गिकीय सूचना उपलब्ध हुई है।

2n संख्या (द्विगुणित (diploid)) अथवा कायिकक्रोमोसोम संख्या होती है जबकि n संख्या (अगुणित (haploid)) अथवा युग्मकी संख्या होती है।

गुणसूत्र संख्याओं के ज्ञान से अनेक महत्वपूर्ण विचारधाराएं विकसित हुई हैं। उदाहरण के लिए, जीनस फ़ेस्टुका (*Festuca*) में विभिन्न स्पीशीज़ में पायी जाने वाली विभिन्न गुणसूत्र संख्याएं एक गणितीय श्रृंखला बनाती हैं। इनमें गुणसूत्र संख्याएं इस प्रकार है : 2n = 14, 28, 42, 56, 70 आदि। इस सूचना से एक सामान्य निष्कर्ष यह निकाला जा सकता है कि कभी विभिन्न स्पीशीज़ का एक ही आधार रहा होगा। यदि हम मान लें कि इन गुणसूत्र संख्याओं में एक समान अभिहित संख्या है जिसे हम "x" कह सकते हैं (और x = 7) तब हम विभिन्न स्पीशीज़ को इस संख्या के गुणज मान सकते है। इस अभिहित संख्या अथवा आधार संख्या (x = 7) को पौधे द्वारा वहन की जाने वाली आनुवंशिक सूचना का आधारीय सेट (समुच्चय) कहा जा सकता है, तथा इस आधारभूत आनुवंशिक सेट के गुणन होने के ही कारण विभिन्न स्पीशीज़ का विकास हुआ है। इस प्रकार की श्रृंखला को पौलीप्लॉइड (बहुगुणित) कहते हैं जिसमें आधारभूत संख्या (x) एक द्विगुणित स्पीशीज़ के गुणसूत्रों की अगुणित संख्या (अर्थात् x = n = 7) के तुल्य होती है। तब फिर अन्य स्पीशीज़ क्रमशः चतुर्गुणित (टेट्राप्लॉइड), षटगुणित (हेक्साप्लॉइड), अष्टगुणित (ऑक्टेप्लॉइड), दशगुणित (डेकाप्लॉइड), आदि होंगी।

x = n = द्विगुणित
2x = n = चतुर्गुणित
3x = n = षटगुणित
4x = n = अष्टगुणित
5x = n = दशगुणित

7.6.2 गुणसूत्रों की संरचना

कोशिकाविज्ञानियों ने गुणसूत्रों की अकारिकी का अध्ययन करके इस ओर संकेत किया है कि गुणसूत्रों की

संरचना का एक सर्वाधिक महत्वपूर्ण लक्षण सेंट्रोमीयर (centromere) का स्थान होता है। सेंट्रोमीयर अर्थात् गुणसूत्र की लम्बाई में किसी एक जगह बना हुआ संकीर्णन, उस गुणसूत्र की दो भुजाओं के परस्पर संबंध के विषय में सूचना प्रदान करता है। इस प्रकार सेंट्रोमीयर के स्थान केआधार पर गुणसूत्रों में तीन स्थितियां वर्णन की जाती हैं — मेटासेंट्रिक (metacentric), एक्रोसेंट्रिक (acrocentric) तथा टेलोसेंट्रिक (telocentric) (चित्र 7.2)।

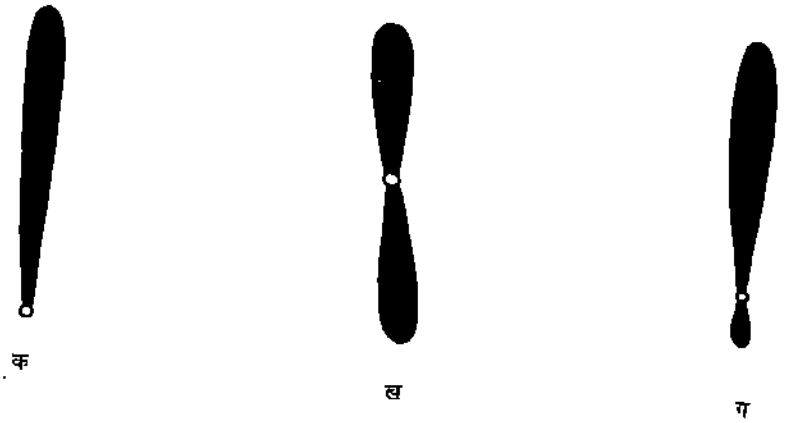

चित्र 7.2 : क्रोमोसोम संरचना - क) एक्रोसेंट्रिक, ख) मेटासेंट्रिक, ग) टेलोसेंट्रिक

जब कोशिका में विभाजन हो रहा होता है, तब उसमें जो आधारभूत गुणसूत्र समुच्चय प्रकट होता है, उसे कोशिका का केरियोटाइप (karyotype) कहते हैं। इसके द्वारा न केवल गुणसूत्र संख्या के ही विषय में सूचना प्राप्त होती है, वरन् गुणसूत्र साइज़, उसके आयतन तथा कोशिका के भीतर गुणसूत्रों के प्रकार के विषय में भी पता चलता है। इस सूचना का उपयोग करके वर्गिकीविद् पौधों को पहचानते हैं तथा उनके बीच के संबंधों की जानकारी प्राप्त करते हैं। केरियोटाइप को आरेखीय रूप में एक **इडियोग्राम** (ideogram) अथवा **केरियोग्राम** (karyogram) द्वारा दर्शाया जा सकता है तथा इन आरेखों की तुलना करके वर्गिकीय निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं। एक और महत्वपूर्ण अनुभव यह है कि किसी केरियोटाइप के गुणसूत्रों का निरपेक्ष साइज़ काफी कुछ स्थिर होता है क्योंकि इसका नियंत्रण जीनप्ररूप (genotype) द्वारा होता है। वर्गिकीविदों ने देखा कि एकबीजपत्रियों में द्विबीजपत्रियों की अपेक्षा प्राय: अधिक बड़े गुणसूत्र होते हैं, और यह भी पाया कि अपने शाकीय संबंधियों की अपेक्षा दृढ़काष्ठीय पौधों में गुणसूत्र अपेक्षाकृत छोटे होते हैं।

7.6.3 गुणसूत्रों का व्यवहार

अर्धसूत्री विभाजन (meosis) का अध्ययन करते समय हम न केवल गुणसूत्रों के जोड़े बनाने की उस नियमितता को ही देखते हैं, जो पौधों की जनन-क्षमता के लिए महत्वपूर्ण है, वरन् हम एक-एक गुणसूत्र का हर अन्य गुणसूत्र से परस्पर तुलना भी करते हैं। इस अध्ययन से वंशागति में गुणसूत्र की भूमिका के विषय में मूल्यवान जानकारी प्राप्त होती है। इस सूचना का उपयोग करके वर्गिकीविद् पौधों की विभिन्न स्पीशीज़ में परस्पर संबंधों को समझने का प्रयत्न करते हैं। इसके द्वारा हम जीनोम (genome) की प्रकृति निर्धारित करके यह भी पता लगा सकते हैं कि कोई पौधा-विशेष समयुग्मजी (homozygous) है अथवा विषयुग्मजी (heterozygous)। पादप-वर्गिकी में जीनोम विश्लेषण को विशेषकर पॉलीप्लॉइडी के समझने तथा पॉलीप्लॉइडों की पैतृकता तय करने में लाभकर पाया गया है। इस संबंध में जो एक बहुत ही महत्वपूर्ण अध्ययन किया गया है, वह है — जाना-माना सामान्य खाया जाने वाला हेक्साप्लॉइड गेहूं *ट्रिटिकम एसटाइवम* (*Triticum aestivum*)।

इस आर्थिक दृष्टि से महत्वपूर्ण पौधे के जीनोम को AABBDD निर्धारित किया जाता है जिसमें 2n = 42 गुणसूत्र होते हैं। विस्तृत जीनोम विश्लेषणों से स्पष्ट हो गया है कि इस हेक्साप्लॉइड गेहूँ के विकास में 3 डिप्लॉइड स्पीशीज़ का योगदान रहा है। A जीनोम, डिप्लॉइड *ट्रिटिकम मोनोकम (Triticum monococcum)* (2n = 14) से आया है, B जीनोम एक जंगली घास *ऐजीलोप्स स्पेल्टाइडीस (Aegilops speltiodes)* (2n = 14) से तथा D जीनोम का योगदान *ऐजीलोप्स स्कुएरोसा (Aegilops squarrosa)* (2n = 14) से रहा है।

अंतत: हमें याद रखना चाहिए कि जैसा कि अन्य लक्षणों के साथ है, कोशिकावर्गिकीय आंकड़ों क महत्व भी अध्ययन किए जा रहे वर्ग अथवा श्रेणी पर निर्भर होता है। कोशिकाविज्ञानीय सूचना को अन्य अध्ययन शाखाओं से जोड़कर ही वर्गिकीविदों को एक अधिक उपयोगी अध्ययन साधन उपलब्ध हो सकेगा।

बोध प्रश्न 3

क) निम्न की परिभाषा लिखिए :

i) आधारीय क्रोमोसोम संख्या

.....

.....

.....

ii) हेप्लॉइड (अगुणित) क्रोमोसोम संख्या

.....

.....

.....

iii) डिप्लॉइड (द्विगुणित) क्रोमोसोम संख्या

.....

.....

.....

ख) अपने अध्ययन केंद्र की पुस्तकों में ढूंढ़कर बताइए कि निम्नलिखित पौधों की डिप्लॉइड क्रोमोसोम संख्या क्या है?

i) धान *(Oryza sativa)*

.....

ii) आलू *(Solanum tuberosum)*

.....

iii) चाय *(Thea sinensis)*

.....

iv) कॉफी *(Coffea arabica)*

.....

v) आम *(Mangifera indica)*

.....

vi) प्याज *(Allium cepa)*

.....

ग) निम्न प्रकार के क्रोमोसोमों में सेंट्रोमीयर कहां स्थित होता है?

i) ऐक्रोसेंट्रिक क्रोमोसोम

.....

ii) मेटासेंट्रिक क्रोमोसोम

.....

ब) टलासाट्रक क्रोमासोम

.....

घ) केरियोटाइप किसे कहते हैं? इससे कोशिकाविज्ञानीय उद्देश्यों के लिए किस प्रकार सूचना प्रदान होती है?

.....

ङ) कोशिकावर्गिकी में जीनोम-विश्लेषण किस प्रकार उपयोगी है?

.....

.....

7.7 रसोवर्गिकी अथवा रासायनिक पादप वर्गिकी

रसोवर्गिकी यह विज्ञान है जिसमें वर्गिकीय उद्देश्य के लिए रासायनिक सूचना को एक लक्षण के रूप में इस्तेमाल किया जाता है। इससे पहले कि पादप वर्गिकी में इस आधुनिक प्रवृत्ति का विश्लेषण करें, आइए कुछ क्षणों के लिए उन विध प्रकार के पौधों के बारे में विचार कर लें, जो हमारे दैनिक जीवन में काम आते हैं। जब हम चाय अथवा कॉफी पी रहे होते हैं, तब हम उनके सुवाद (flavour) अथवा महक (aroma) का आनन्द लेते हैं तथा इसी लक्षण के आधार पर हम इन दोनों में विभेद करते हैं। इसी प्रकार जब हम आम, केला अथवा सेब जैसे फल खा रहे होते हैं तब हमें उनका स्वाद अलग-अलग अनुभव होता है। यह अंतर इन खाद्यों में अलग-अलग रासायनिक रचक के पाए जाने के कारण होता है और यही रसोवर्गिकी का आधार है जिसमें रासायनिक लक्षण अथवा रासायनिक रचक वर्गिकी के लिए प्रमाण के रूप में कार्य करते हैं। पादप वर्गिकी में रासायनिक प्रमाण के इस संभाव्य महत्व को वनस्पतिज्ञों एवं रसायनज्ञों दोनों ही ने सुझाया है और यह आजकल एक महत्वपूर्ण आधुनिक प्रचलन बन गया है, खासतौर से इसलिए कि पादप सामग्री के शीघ्र विश्लेषण के लिए नयीनेतर तकनीकें विकसित कर ली गई हैं। रसोकोशिका वैज्ञानिकों का सुझाव है कि रासायनिक लक्षणों का अपना एक विशेष उच्च महत्व है क्योंकि ये लक्षण — i) स्थायी होते हैं, ii) असंदिग्ध होते हैं, तथा iii) यदि परिवर्तनशील हुए भी तो आसानी से परिवर्तित नहीं होते। इसके अलावा रासायनिक लक्षण पौधों में रासायनिक संबंधों को उसी प्रकार दर्शाएंगे जैसे कि आकारिकीय लक्षण आकारिकीय संबंधों को दर्शाते हैं।

रसोवर्गिकी को हालांकि एक अपेक्षाकृत आधुनिक विधि माना जाता है, मगर वास्तव में इसका उद्भव बहुत आरंभिक शास्त्रीय वर्गिकी में देखा जा सकता है। आपको याद होगा कि मसालों के पौधों को उनकी महक के गुणधर्मों के आधार पर या उसी तरह औषधिय पौधों को उनके उपचारपरक महत्व के आधार पर पहचाना जाता था। ये ऐरोमेटिक (महकपरक) गुणधर्म अथवा ये उपचार महत्व, पौधे के रासायनिक रचकों पर आधारित होते थे तथा वर्गिकीविदों ने प्राचीन काल से ही इन पौधों को आकारिकीय लक्षणों के साथ-साथ इन्हीं रासायनिक लक्षणों का उपयोग करके वर्गीकृत किया था। फिर भी, देखा जाए तो रसावर्गिकी का एक यह महत्वपूर्ण गुण अध्ययन क्षेत्र के रूप में स्थापित हाल के ही वर्षों में हुआ है।

इस क्षेत्र में प्रकाशित विशाल साहित्य भंडार को पढ़ने से पता चलता है कि रासायनिक आंकड़े पौधे के किसी भी भाग से प्राप्त हो सकते हैं। दूसरे, इस पर निर्भर करते हुए कि अन्वेषण किस उद्देश्य के लिए किया जा रहा है, रासायनिक सूचना को चाहे तो पौधों के वर्णन करने अथवा उनको पहचानने के लिए इस्तेमाल किया जा सकता है, या फिर उन पौधों के बीच के संबंधों को स्थापित करने के लिए किया जा सकता है। प्रमाण उस स्थिति में तो और भी अधिक महत्वपूर्ण हो जाता है जब इसे वर्गिकीय संबंधों में पाए जाने वाले विभेदों को उस समय सुलझाने में इस्तेमाल किया जाता है जब, आकारिकीय लक्षणों के आधार पर दो या अधिक संभावनाएं रखी गयी हों।

वर्गिकीविद् के लिए यूं तो सिद्धांतत: पौधे के सभी रासायनिक रचकों का संभावित महत्व होता है, फिर भी व्यावहारिक दृष्टि से कुछ विशेष प्रकार के ही अणु शेष की तुलना में अधिक उपयोगी होते हैं। इस प्रकार हम कुछ प्रत्यक्ष दिखाई देने वाले रासायनिक रचकों का इस्तेमाल कर सकते हैं जैसेकि क्रिस्टलों, रेफाइडों, अथवा स्टार्च कणों का जो विभिन्न पौधों में रासायनिक लक्षणों के रूप में पाए जाते हैं। इसका दूसरा विकल्प यह है कि पादप सामग्री का रासायनिक विश्लेषण करके उसके रासायनिक रचकों का पता लगा लिया जाए और फिर इस सूचना को वर्गिकी उद्देश्य के लिए इस्तेमाल किया जाए। अधिसंख्य रसोवर्गिकीविद् रासायनिक यौगिकों के तीन बड़े-बड़े वर्ग बनाते है — प्राथमिक मेटाबोलॉइट (उपापचयज), द्वितीयक मेटाबोलाइट तथा सेमेंटाइड (semantides), जो वर्गिकी दृष्टि से महत्वपूर्ण है।

7.7.1 प्रत्यक्ष दृश्यमान रासायनिक लक्षण

पौधों में बहुत ही थोड़े रासायनिक पदार्थ हैं जिन्हें प्रत्यक्ष देखा जा सकता है। लेकिन स्टार्च कणों के जैसे पदार्थों, जो कि सुरक्षित भोजन के रूप में अधिकतर हरे पौधों में पाए जाते हैं, रसोवर्गिकीय उद्देश्यों के लिए प्रयोग किया गया है। विभिन्न पौधों में पाए जाने वाले स्टार्च कण बहुत ही विशिष्ट होते हैं और इस जानकारी को बिना किसी संदिग्धता के उपयोग में लाया जा सकता है। रीचर्ट (Reichert) (1913) ने 350 स्पीशीज़ में स्टार्च कणों का अध्ययन किया और जीनसों एवं स्पीशीज़ के संबंध में उनमें विभेद स्पष्ट करते हुए उनकी विशिष्टता स्थापित की तथा इस प्रकार रसोवर्गिकीय सूचना प्रदान की। तातिओका (Tateoka) (1962) ने घास की फ़ेमिली Graminae में स्टार्च कणों का सर्वेक्षण किया तथा फ़ेमिली को ट्राइबों (Tribes) में विभाजित करने के लिए इस लक्षण को एक अतिरिक्त सूचना के रूप में इस्तेमाल किया। उदाहरण के लिए, ट्राइब हार्डियेई (*Hordeae*) में *हार्डियम (Hordeum)* जैसे प्रतिरूपी सदस्यों में यौगिक स्टार्च कण पाए जाते हैं जबकि *लोलीयम (Lolium)*, *नारडस (Nardus)* तथा *पापाफ़ोलिस (Papapholis)* जैसी जीनसों में सरल स्टार्च कण पाए जाते हैं।

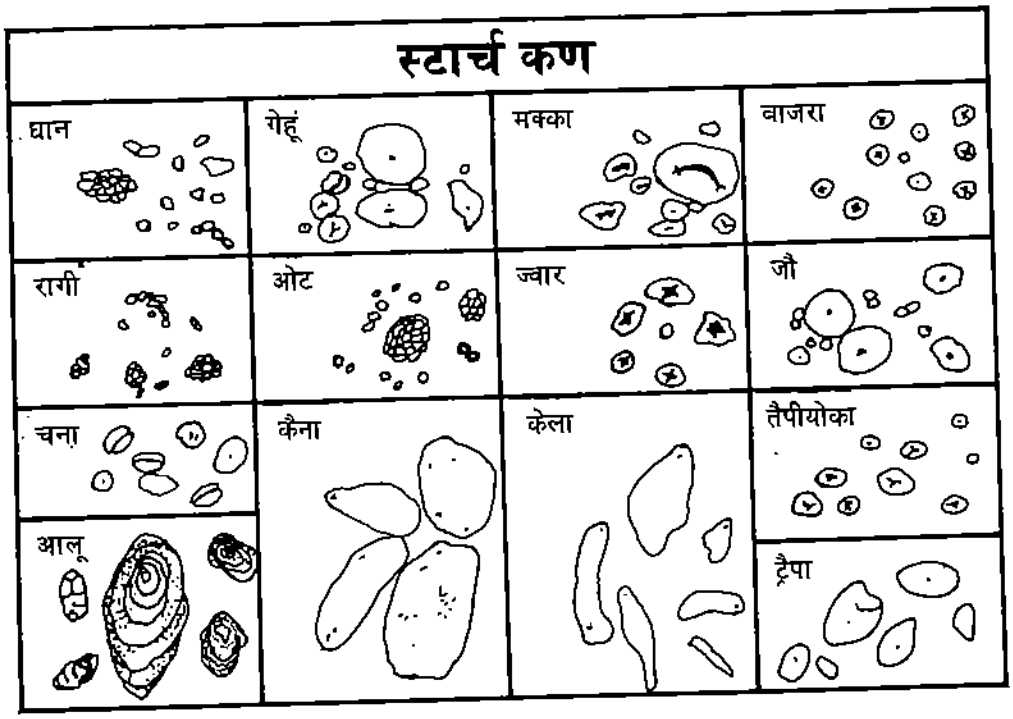

चित्र 7.3 : स्टार्च कणों के प्रकार (कोचर 1981, के आधार पर)

रेफ़ाइड (Raphides) नामक रचनाएं कैल्सियम ऑक्जेलेट के क्रिस्टल होते हैं जो विभिन्न पादप ऊतकों की बड़ी कोशिकाओं के भीतर पाए जाते हैं और उन्हे प्रत्यक्ष देखा जा सकता है। ये लम्बे, सुई की आकृति के क्रिस्टल होते हैं जो दोनों सिरों पर नुकीले होते हैं तथा बंडलों के रूप में पाए जाते हैं। इन विशिष्टताओं के कारण इन क्रिस्टलों को सरलता से पहचाना जा सकता है। इन्हें बहुत सी ऐंजियोस्पर्म फ़ेमिलियों जो कि संख्या में 35 फ़ेमिलियाँ हैं, में पाया गया है। आर्डर सेन्ट्रोस्पर्मेयी (Centrospermae) की अनेक फ़ेमिलियों में तथा फ़ेमिली कैकटेसी (Cactaceae) में रेफाइडों का होना पाया गया है। अन्य रासायनिक लक्षणों के साथ-साथ इस लक्षण का पाया जाना तथा भ्रूणविज्ञानीय लक्षणों की समानता इस सुझाव को और मजबूत कर देती है कि फ़ेमिली कैकटेसी का कुछ संबंध ऑर्डर सेन्ट्रोस्पर्मेयी से है।

7.7.2 प्राथमिक मेटाबोलाइट (उपापचयज)

जैसाकि नाम से ही पता चलता है, प्राथमिक मेटाबोलॉइड वे अणु हैं जो जीवनावश्यक मेटाबोलिक दिशामार्गों में निहित होते हैं। वे सर्वत्र पाए जाते हैं तथा रसोवर्गिकी में उनका इतना ज्यादा महत्व नहीं है। फिर भी, जब कभी टेक्सानों के बीच ऐसे पाए जाने वाले अणुओं की मात्रा में काफी भिन्नता पायी जाती है तब ये अणु रसोवर्गिकी लक्षण के रूप में उपयोगी बन जाते हैं। उदाहरण के लिए, "सीडोहेप्टुलोस" (sedoheptulose) नामक शर्कराधारी कार्बोहाइड्रेट जीनस *सीड्म (Sedum)* में एक सुरक्षित आहार के रूप में अत्यधिक मात्राओं में भण्डारित रहती है। इस प्रकार इस प्राथमिक मेटाबोलाइट के मौजूद होने से इस जीनस के सदस्यों को सरलता से पहचाना जा सकता है। एक रोचक बात यह है कि सीडोहेप्टुलोस डाइफ़ॉस्फ़ेट प्रकाशसंश्लेषी कार्बन-चक्र का एक अंश है और अधिसंख्य पौधों में सीडोहेप्टलोस बिलकुल भी संचित नहीं होता। इसी प्रकार 22 ऐमीनो

-... (amino acid) सर्वत्र पाए जाते हैं। ये प्रोटीनों के निर्माणकारी खण्ड हैं। इनके द्वारा रसोवर्गिकी के लिए लाभकारी वृहत्अणु संबंधी आंकड़े प्राप्त हो सकते हैं। विभिन्न प्रोटीनों के ऐमीनो अम्ल क्रम पता चलाए जा सकते हैं और हम मान सकते हैं कि इनमें पायी जाने वाली समानता की मात्रा आनुवंशिक संबंध की मात्रा के ही अनुपात में होगी। मगर 3 लाख के लगभग ऐंजियोस्पर्म स्पीशीज़ में बस कुछ ही में ऐमीनों अम्ल-चक्र का विश्लेषण किया गया है। उदाहरण के लिए, गेहूँ तथा जौ में पाए जाने वाले ऐमीनों अम्ल आंकड़ों से इन जीनसों के संबंध की पुष्टि होती है। जैसाकि अन्यथा शास्त्रीय वर्गिकीविदों ने भी सुझाया था।

7.7.3 द्वितीयक मेटाबोलॉइट

द्वितीयक मेटाबोलॉइट (secondary metabolite) अथवा द्वितीयक पादप उत्पाद वे वृहतअणु होते हैं, जिनमें नाइट्रोजन नहीं होती तथा जिनका पाया जाना सीमित है और इसलिए ये, प्राथमिक मेटाबोलाइटों की अपेक्षा अधिक वर्गिकीय महत्व के हैं। इस वर्ग में विभिन्न प्रकार के यौगिक पाए जाते हैं जैसे कि विभिन्न फीनॉलिक (Phenolics), विभिन्न ऐल्केलॉइड (Alkaloids), विभिन्न टर्पीनॉइड (Terpenoids) आदि। ये प्राय: जीवनावश्यक कार्यों में शामिल नहीं होते तथा ये अधिकतर भण्डारित उत्पाद अथवा वर्णक होते हैं। द्वितीयक मेटाबोलॉइटों में विभिन्न फ्लेवोनॉइड रसोवर्गिकी उद्देश्यों के लिए बहुत उपयोगी रहे हैं, ये फ्लेवोनॉइड पत्तियों में पाए जाने वाले एवं सबसे अधिक सामान्यत: पाए जाने वाले फीनोलिक यौगिक होते हैं। एकबीजपत्रीयों तथा द्विबीजपत्रीयों दोनों में ही इन यौगिकों का व्यापक सर्वेक्षण किया गया है। ये यौगिक व्यापक रूप में वितरित तो हैं ही, साथ ही इनमें संरचनात्मक विभिन्नता एवं रासायनिक स्थिरता दोनों ही पाई जाती हैं। इन्हें जल्दी से और आसानी से पहचाना जा सकता है तथा ये वर्गिकी कार्यों के लिए महत्वपूर्ण लक्षण प्रदान करते हैं। उदाहरण के लिए फ़ेमिली अल्मेसी (ulmaceae) की 80 स्पीशीज़ के पौधों में फ्लेवोनॉइड रसायन का अध्ययन सिआनासी (Ciannasi) (1978) द्वारा किया गया है। अधिसंख्य स्पीशीज़ में फ्लेवोनॉल होते हैं, लेकिन कुछ स्पीशीज़ में ग्लाइको फ्लेवोनॉल होते हैं तथा ये दोनों प्रकार के फ्लेवोनॉइड यौगिक किसी भी स्पीशीज़ में एक साथ नहीं पाए जाते और काफी आश्चर्य की बात है कि अधिसंख्य वर्गीकरण प्रणालियों में फ़ेमिली अल्मेसी को दो उपफ़ेमिलियों – अल्मोएडी (ulmoideae) तथा सिलटोएडी (celtoideae) में विभाजित किया गया है जिनमें फ्लेवोनॉइड रसायन के आधार पर भी विभेद किया जा सकता है। अत: अकारिकीय आधारों के साथ फ्लेयोनॉइड द्विशाखन को इस्तेमाल करके फ़ेमिली अल्मेसी (sensu lato) को दो पृथक फ़ेमिलियों में विभाजित किया जा सकता है: फ़ेमिली अल्मेसी (sensu stricto) जिसमें विशिष्टत: फ्लेवोनॉल पाए जाते हैं तथा फ़ेमिली सिल्टेसी (Celtaceae) जिसमें विशिष्टत: ग्लाइकोफ्लेवोनॉल पाए जाते हैं।

कई अन्य अध्ययनों में फ्लेवोनॉइड रसायन को फ़ेमिलियों में वर्गिकीय उद्देश्यों के लिए इस्तेमाल किया गया है जैसे कि एरीलीडेसी (Arilidaceae), कोरोनेई (Cornaceae), लैबिएटी (Labiatae), लेगूमीनेसी (Leguminoscae (Fabaceae)), आर्कीडेसी (Orchidaceae), रूटेसी (Rutaceae), लीमेनेसी (Lemnaceae) आदि में।

रसोवर्गिविज्ञों के द्वारा द्वितीयक मेटाबोलॉइटों का सामान्यत: अध्ययन किए जाने वाला दूसरा वर्ग है — टर्पीनों का वर्ग। रासायनिक भाषा में इन यौगिकों को उनकी आण्विक संरचना के आधार पर कई वर्गों में वर्गीकृत किया जा सकता है जैसे कि मॉनोटर्पीन (monoterpenes), डाइटर्पीन (diterpenes), ट्राइटर्पीन (triterpenes), सेसक्विटर्पीन (sesquiterpenes) आदि और प्रत्येक वर्ग को वर्गिकीय काम में लाया जा सकता है। उदाहरण के लिए, *साल्वीया (salvia)* जीनस में 19 स्पीशीज़ को उनके मॉनोटर्पीनों के आधार पर स्पष्टत: पहचाना तथा वर्गीकृत किया जा सकता है। जीनस के भीतर जीन के — इंट्रोग्रेशन (introgression) तथा संकरण के विश्लेषण में टर्पीन संघटना भी उतनी ही उपयोगी रही है जितनी कि आकारिकी विशिष्टताएं। इसी प्रकार, कुकुरबीटेसी (Cucurbitaceae) एवं कम्पोसिटी (Compositae (Asteraceae)) फ़ेमिलियों के वर्गीकरण में भी ट्राइटर्पीन तथा सेसक्विटर्पीन विशेष तौर पर महत्वपूर्ण तथा उपयोगी रहे हैं।

रसोवर्गिकी में काम आने वाले अन्य द्वितीयक मेटाबोलाइटों में इरिडाइड (iridoid) यौगिक, ऐल्केलॉइड (alkaloids) तथा इलेगिटैनिन (ellagitannins) आते हैं।

7.7.4 सेमेटाइड

पौधों में सूचना-वाहक अणुओं को सेमेंटाइड (semantides) कहा जाता है। इनके तीन प्रकार पहचाने जाते हैं: डीऑक्सीडाइबोन्यूक्लिइक एसिड अथवा DNA (प्राथमिक सेमेंटाइड), राइबोन्यूक्लिइक एसिड अथवा RNA (द्वितीयक सेमेंटाइड) तथा विविध प्रोटीन (तृतीयक सेमेंटाइड)। ये तीनों, आनुवंशिक कोड के हस्तांतरण

में एक के बाद एक क्रमवत आते हैं। इन्हें ... [illegible]
जाने वाले अणु है। पादप प्रोटीनों का दो अलग-अलग विधियों से अध्ययन किया जा सकता है या तो इलेक्ट्रोफोरेसिस (Electrophoresis) से या सीरमविज्ञानीय विधि (serological method) से। विभिन्न पौधों के प्रोटीन रसायन के बारे में सूचना प्राप्त करने के लिए इन दोनों ही प्रक्रियाओं को काम में लाया गया है।

सामान्य खाए जाने वाले गेहूँ *ट्रिटिकम एसटाइवम (Triticum aestivum)* में भंडारण प्रोटीनों (storage proteins) का इलेक्ट्रोफोरेसिस द्वारा विश्लेषण किया गया है। तुलना करने के उद्देश्य से, टेट्राप्लॉइड गेहूँ *ट्रिटिकम डाइकोकम (Triticum dicoccum)* तथा डिप्लॉइड घास *ऐजिलोप्स स्क्वएरोसा* के भंडारण प्रोटीनों का भी इलेक्ट्रोफोरेसिस द्वारा विश्लेषण किया गया। इस अध्ययन से उस निष्कर्ष की पुष्टि हो जाती है जिसमें कहा गया है कि हेक्साप्लॉइड गेहूँ में निश्चय ही उन डिप्लाइड स्पीशीज़ के प्रोटीन का योग मौजूद है जिन्होंने हेक्साप्लॉइड के विकास में योगदान दिया है। इस अध्ययन से आकारिकी तथा कोशिकाविज्ञानीय प्रमाण के आधार पर प्राप्त प्रेक्षणों को समर्थन प्राप्त होता है।

प्रोटीनों का सीरमविज्ञानीय विश्लेषण उस प्रतिरोध प्रक्रिया (immunological reaction) पर आधारित होता है जो स्तनियों में उनके शरीर में किसी बाहरी प्रोटीन के प्रवेश कराने पर होती जाती है। दूसरे शब्दों में, यह विश्लेषण ऐंटीबॉडी-ऐंटीजन प्रतिक्रिया पर आधारित होता है, ऐंटीबाडी किसी ऐंटीजन के प्रति विशिष्ट होते हैं और स्कंदन (coagulation) पैदा करते हैं। तदन्तर इस सूचना का विश्लेषण करके पादप-प्रोटीनों के सीमरविज्ञानीय मूल्यांकन के आधार पर विभिन्न पौधों के संबंधों को समझा जा सकता है। वर्गीकरण के विभिन्न स्तरों पर सीरमविज्ञान एक उपयोगी वर्गिकीय अध्ययन साधन सिद्ध हुआ है। जे.जी. हॉक्स (J.G. Hawkes) (1960) तथा उसके सहकर्मियों ने खेती किए जाने वाले आलू *सोलोनम् ट्यूबरोसम* के विकास को समझने तथा *सोलेनम* की उन स्पीशीज़ को स्थापित करने में, जो खेती के आलू की पूर्वज रही होंगी *सोलेनम्* की अनेक कंद सहत्पादक स्पीशीज़ का अध्ययन किया। इसी प्रकार फ़ेमिली रैनुनकुलेसी में सीरमविज्ञानीय अध्ययनों का कोशिकाविज्ञानीय आंकड़ों से समर्थन प्राप्त हुआ जिनके आधार पर फ़ेमिली का ट्राइबों तथा जीनसों में वर्गीकरण हुआ। फेयरब्रदर्स (Fairbrothers) (1959) तथा उसके सहकर्मियों ने अनेक पादप वर्गों और खास तौर से घास फ़ेमिली के सदस्यों का सीरमविज्ञानीय अध्ययन किया। इन अध्ययनों से एक सामान्य निष्कर्ष यह निकला कि भिन्न पादप-फ़ेमिलियों के सदस्यों में जो भिन्न सीरमविज्ञानी क्रिया पायी जाती है वह प्रोटीनों की प्राथमिक संरचना में क्रमविकासीय विभिन्नता के कारण आयी हो सकती है, यही कारण है कि भिन्न फ़ेमिलियों के सदस्यों के बीच सीरमविज्ञानीय अंतर पाए जाते हैं।

बोध प्रश्न 4

क) वर्गिकीय उद्देश्यों के लिए रासायनिक लक्षणों के उपयोग करने के समर्थन में तीन कारण बताइए।

.....

.....

.....

ख) वर्गिकीविदों के लिए उपयोगी तीन प्रकार के रासायनिक रचकों के नाम लिखिए।

.....

.....

.....

ग) दो विधियों के नाम लिखिए जिनके द्वारा वर्गिकीय उद्देश्य के लिए प्रोटीनों का विश्लेषण किया जा सकता है तथा प्रत्येक विधि द्वारा विश्लेषण की गई जीनस का नाम लिखिए। संक्षेप में यह भी बताइए कि ये दो विधियां किन सिद्धांतों पर आधारित हैं।

.....

.....

.....

7.8 संख्यात्मक वर्गिकी

आज की वर्गिकी अनेक क्षेत्रों में उससे भिन्न हैं जितनी कि वह एक पीढ़ी पहले हुआ करती थी। वर्गिकीविद्‌ों द्वारा कंप्यूटरों के इस्तेमाल ने एक महत्वपूर्ण आधुनिक दिशाप्रवृति स्थापित कर दी है जिसे संख्यात्मक वर्गिकी (numerical taxonomy) अथवा टेक्सीमीट्रिक्स (taximetrics) कहते हैं। वर्गिकीय सूचना के गणितीय एवं सांख्यकीय मूल्यांकन तथा इन आंकड़ों के कंप्यूटरीकरण ने वर्गिकीविद्‌ों को वर्गीकरण समझाने के लिए एक नई दिशा प्रदान की है। इस सेक्शन में आप संख्यात्मक वर्गिकी के मूल आधारों के विषय में पढ़ेंगे एवं इस विज्ञान के सिद्धांतों तथा इसमें काम आने वाली महत्वपूर्ण पारिभाषिक शब्दावली को जानेंगे तथा उन प्रक्रियाओं को जानेंगे जिन्हें इस्तेमाल करके संख्यात्मक वर्गिकीविद्‌ वर्गीकरण पर पहुँचते हैं।

पी.एच.ए. स्निथ (P.H.A. Sneath एवं आर.आर. सोकल (R.R. Sokal) की पुस्तक "Numerical Taxonomy" (1973, W.H. Froo- an, San Francisco) में संख्यात्मक वर्गिकी के उद्देश्यों सिद्धांतों, विधियों तथा परिणामों के संबंध में मूल्यवान सूचना दी गई है।

आप खंड 1 की इकाई 1 तथा 2 में पढ़ चुके हैं कि जीवधारियों को उनके लक्षणों से प्राप्त साक्ष्य के आधार पर वर्गीकृत किया जाता है। आपने यह भी अध्ययन किया है कि कुछ एक या अनेक लक्षणों को लेकर विभिन्न प्रकार के वर्गीकरण तैयार किए जा सकते हैं। एम. ऐडनसन (1763) ने सुझाव रखा था कि वर्गीकरण में पौधे के सभी पहलुओं को लेते हुए बहुत संख्या में लक्षणों को लेना चाहिए, तथा यह भी कि वर्गीकरण के तैयार करने में सभी लक्षणों को समान महत्व दिया जाना चाहिए। इसी विचारधारा ने आज की आधुनिक वर्गिकी का आधार बनाया। इस वर्गिकी को नव-ऐडनसोनियन वर्गिकी (Neo-Adansonian Taxonomy) भी कहते हैं। जहां तक लक्षणों की संख्या का संबंध है, उसकी तो कोई सीमा ही नहीं, मगर संख्या जितनी अधिक होगी टेक्सानों का सामान्यीकरण करने में भी उतनी ही अच्छी दिशा मिल सकेगी। आपको स्मरण रखना चाहिए कि संख्यात्मक वर्गिकी कोई पूर्णतः नई दिशा नहीं है, वरन् यह कंप्यूटरों द्वारा आंकड़ों के मूल्यांकन की एक बहुत ही सुगठित विधि है जिसमें पौधों की अनेक समष्टियों से अनेक लक्षणों का वस्तुपरक एवं दोहराए जा सकने वाले तरीके से मूल्यांकन किया जाता है।

7.8.1 संख्यात्मक वर्गिकी के सिद्धांत

संख्यात्मक वर्गिकी निम्नलिखित 7 सिद्धांतों पर आधारित है :

1. वर्गीकरण के टेक्सॉनों में जितनी अधिक सूचनाएं होगी तथा वर्गीकरण जितने अधिक लक्षणों पर आधारित होगा वह उतना ही ज्यादा अच्छा होगा।

2. प्राकृतिक टेक्सॉनों के निर्माण में प्रत्येक लक्षण का बराबर महत्व है।

3. किन्हीं दो सत्ताओं (entities) के बीच कुल मिलाकर पाई जाने वाली समानता उनके उन अनेक लक्षणों में से प्रत्येक लक्षण की व्यष्टिगत समानताओं का ही कार्य है जिनके बारे में उनकी तुलना की जा रही है।

4. अलग-अलग टेक्सानों को इसलिए पहचाना जा सकता है, क्योंकि अध्ययन किए जा रहे जीवों के समूह में लक्षणों के सहसंबंध भिन्न होते हैं।

5. क्रमविकासीय दिशामार्गों तथा क्रियाविधियों के विषय में कुछ खास कल्पनाएं शामिल करके वर्ग की वर्गिकीय संरचना एवं लक्षण के सहसंबंधों से जातिवृतीय निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं।

6. वर्गिकी को एक आनुभविक विज्ञान के रूप में देखा जाता है एवं उसी तरह उसमें काम किया जाता है।

7. वर्गीकरण लाक्षणिक समानताओं पर आधारित होते हैं।

7.8.2 संख्यात्मक वर्गिकीविदों द्वारा अपनाई जाने वाली प्रक्रियाएं

संख्यात्मक वर्गिकी एक सक्रियात्मक (operational) विज्ञान है, इसलिए इसकी प्रक्रिया को कई दोहराए जा सकने वाले चरणों में विभाजित किया जाता है, और इसमें प्रत्येक चरण पर परिणामों को जांचने की व्यवस्था भी है।

i) अध्ययन किए जाने वाली इकाइयों का चयन — पहला चरण यह है कि किस प्रकार की इकाइयों का चयन किया जाए जिनका अध्ययन करना है। संख्यात्मक वर्गिकी में, अध्ययन की आधारभूत इकाई को "संक्रियात्मक वर्गिकीय इकाई" (operational taxonomic unit) (OTU) कहते हैं। उदाहरण के लिए, यदि वर्गिकीविद् पौधों की किसी एक अकेली समष्टि का अध्ययन कर रहा हो ताकि वह पता चला सके कि उस समष्टि में लक्षणों का विभिन्नता परास क्या है, तो OTU एक व्यष्टिगत पौधा भी हो सकता है। इसी प्रकार यदि प्रकृति में पाई जा रही विभिन्न समष्टियों के रूप में प्रतिदर्शित एक अकेली स्पीशीज़ का अध्ययन कर रहे हों तो पौधों की एक संपूर्ण समष्टि को OTU के रूप में ले सकते हैं, अथवा जब आप एक जीनस का मूल्यांकन कर रहे हों तो विभिन्न स्पीशीज़ को OTU के रूप में लिया जा सकता है। अत: संख्यात्मक वर्गिकी में अध्ययन की जा रही सामग्री के अनुसार OTU बदलता रहता है और इस विधि से वर्गिकीविद् को वस्तुपरक अध्ययन करने में सहायता मिलती है।

ii) लक्षण चयन (character selection) — विभिन्न OTU के चयन के बाद यह आवश्यक है कि उन लक्षणों को चुना जाए जिनके द्वारा उनका वर्गीकरण किया जाना है। अनुभव द्वारा आप यह जान जाएंगे कि संख्यात्मक वर्गिकी में वे ही लक्षण स्पष्टत: अधिक उपयोगी होते हैं जो OTUs में बहुत अधिक भिन्न होते हैं तथा हम यह भी जानते हैं कि जितने भी ज़्यादा से ज़्यादा संभव हों उतने ही लक्षण काम में लाने चाहिए। एक अपेक्षाकृत स्थिर एवं विश्वसनीय वर्गीकरण बनाने के लिए कम से कम 60 और सामान्यत: 80 से 100 या अधिक लक्षण तो होने ही चाहिए। तदन्तर चुने गए लक्षणों को अलग-अलग कोड अथवा कोई प्रतीक या चिह्न दे देना चाहिए। वर्गिकीय सूचना को कोड देने की 2 विधियां हैं।

   क) द्विआधारी कोड (Binary Code) अथवा द्विदशा (two state) कोड बनाना — संख्यात्मक वर्गिकी में अपनाया जाने वाला यह सबसे सरल प्रकार की कोडिंग है, इसमें लक्षणों को "+" तथा "–" या "1" तथा "0" में विभाजित किया जाता है। सकारात्मक लक्षणों को + अथवा 1 के रूप में रिकार्ड किया जाता है और नकारात्मक लक्षणों को – अथवा 0 के रूप में रिकार्ड किया जाता है। इस विधि से अध्ययन किए जा रहे सभी लक्षणों को कोडित करना संभव है। यदि अध्ययन किए जा रहे किसी OTU में कोई एक खास लक्षण हो ही नहीं तब उसके लिए NC कोड अथवा प्रतीक का इस्तेमाल करते हैं जिसका अर्थ है कि उस लक्षण के लिए कोई तुलना नहीं है (no comparison)। फिर भी, कोडिंग की इस विधि का इस्तेमाल करते हुए हमें पता चलता है कि हमारा काम बहुत ज़्यादा बढ़ता है क्योंकि पौधे में विभिन्नताएं तो बहुत ज़्यादा होती है और अनेक बार ऐसा होता है कि एक अकेला लक्षण ही जैसे कि फूल का रंग बहुत-बहुत रूप में भिन्न हो सकता है। गुलाबों में सफ़ेद, गुलाबी, लाल, पीला तथा अन्य रंग हो सकते हैं। यदि हमें इस आंकड़े को द्विआधारी कोड में इस्तेमाल करना है, तब हमें हर रंग को एक लक्षण के रूप में लेना होगा और उसे जैसी भी स्थिति हो + अथवा – में कोड करना होगा।

   ख) बहुदशा कोड (Multi-state coding) — इस विधि में एक ही लक्षण को अनेक अवस्थाओं में कोडित किया जा सकता है और प्रत्येक अवस्था को विभिन्नताओं के विस्तार के आधार पर एक संख्यात्मक प्रतीक अथवा कोड दे दिया जाता है (जैसे कि 1, 2, 3, 4, 5.....)। इस प्रकार यदि हम पुन: गुलाब के फूल के रंग को लें, तो हम अलग-अलग रंग को अलग-अलग कोड दे सकते हैं जैसे कि सफ़ेद = 1, गुलाबी = 2, लाल = 3, पीला = 4, आदि-आदि। फूल के रंग अथवा बीजांडन्यास (placentation) के प्रकार आदि के गुणात्मक लक्षणों के अतिरिक्त, पौधे की ऊंचाई, पत्ती की लंबाई, पत्ती की चौड़ाई, या ऐसे अन्य लक्षणों को भी जिनमें मात्रा शामिल होती है, मात्रात्मक लक्षणों के रूप में बहुदशा कोड से व्यक्त किया जा सकता है। विभिन्नता के परास के लिए एक कोड तैयार किया जाता है तथा परास के भीतर की प्रत्येक इकाई के लिए उचित प्रतीक दे दिए जाते हैं।

OTUs में लक्षणों के स्कोर से प्राप्त आंकड़ों को एक डाटा मेट्रिक्स के रूप में एक सारणी में प्रस्तुत किया जाता है। इस सारणी में एक पार्श्व पर OTUs दिए जाते हैं तथा विभिन्न लक्षणों के लिए कोड प्रत्येक OTU के विपरीत दिए गए होते हैं। उदाहरण के लिए, यदि किसी ने 25 OTUs का अध्ययन किया और प्रत्येक OTU से 75 लक्षणों की स्थितिगणना हुई तब डाटा मेट्रिक्स में $25 \times 75 = 1875$ सूचना इकाइयां होंगी। डाटा मेट्रिक्स में इतनी अधिक विशाल सूचना इकाई के होने से कंप्यूटरों का इस्तेमाल आवश्यक हो जाता है ताकि इस संपूर्ण जानकारी को जल्दी से विवेचन कर पाने में वर्गिकीविदों को सहायता मिल सके। साथ ही यह भी याद रखना महत्वपूर्ण है कि कंप्यूटर प्रोग्राम गणितीय समीकरणों तथा कंप्यूटर भाषा पर आधारित होते हैं और इस काम के लिए डाटा मेट्रिक्स अनिवार्य है। इसके अतिरिक्त संख्यात्मक वर्गिकी में दूसरा चरण पूरी तरह से डाटा मेट्रिक्स पर ही आधारित है।

तदनन्तर सूचना को एक $t \times n$ सारणी अथवा डाटा मेट्रिक्स में प्रस्तुत किया जाता है जिसमें n लक्षणों के लिए प्राप्त हुए t OTUs दिए गए होते हैं (सारणी 7.6)।

सारणी 7.6: कोडित आंकड़े ($t \times n$ सारणी)

	लक्षण (n)			टेक्सॉन OTUs(t)
	(1 - 2)			
	A	B	C	D
1.	+	+	–	NC
2.	+	+	+	+
3.	+	+	+	–
4.	–	+	NC	NC
5.	+	+	+	+
6.	+	+	–	+
7.	+	+	–	NC
8.	NC	–	+	+
9.	+	+	+	+
10.	+	+	+	–
11.	+	NC	-	NC
12.	+	+	+	–

Sneath, 1962, Microbial classification edited by Ainsworth and Sneath के आधार पर

iii) समानता का मापन (measurement of similarity) — कुल मिलाकर समानता (या समानताओं) का प्रत्येक OTU की हर अन्य OTU से तुलना करके, परिकलन किया जाता है। इस समानता को प्राय: प्रतिशतता के रूप में व्यक्त किया जाता है — जिसे पूर्णसमानता के लिए 100 प्रतिशत S, तथा असमानता को 0 प्रतिशत S कहा जाता है। उसके बाद प्रत्येक OTU के लिए S गुणांकों का सारणीकरण करके एक समानता सारणी अथवा मेट्रिक्स बनाया जाता है (चित्र 7.4)।

i) गुच्छ विश्लेषण (cluster analysis) — समानता सारणी बनाने के बाद उसे इस तरह पुन: व्यवस्थित किया जाता है कि जिन OTUs के सदस्यों में अधिकतम समानता हो उन्हें साथ-साथ रख दिया जाता है। इसे अनेक विधियों द्वारा किया जा सकता है तथा संबंधित टेक्सानों तथा समूहों को पहचान लिया

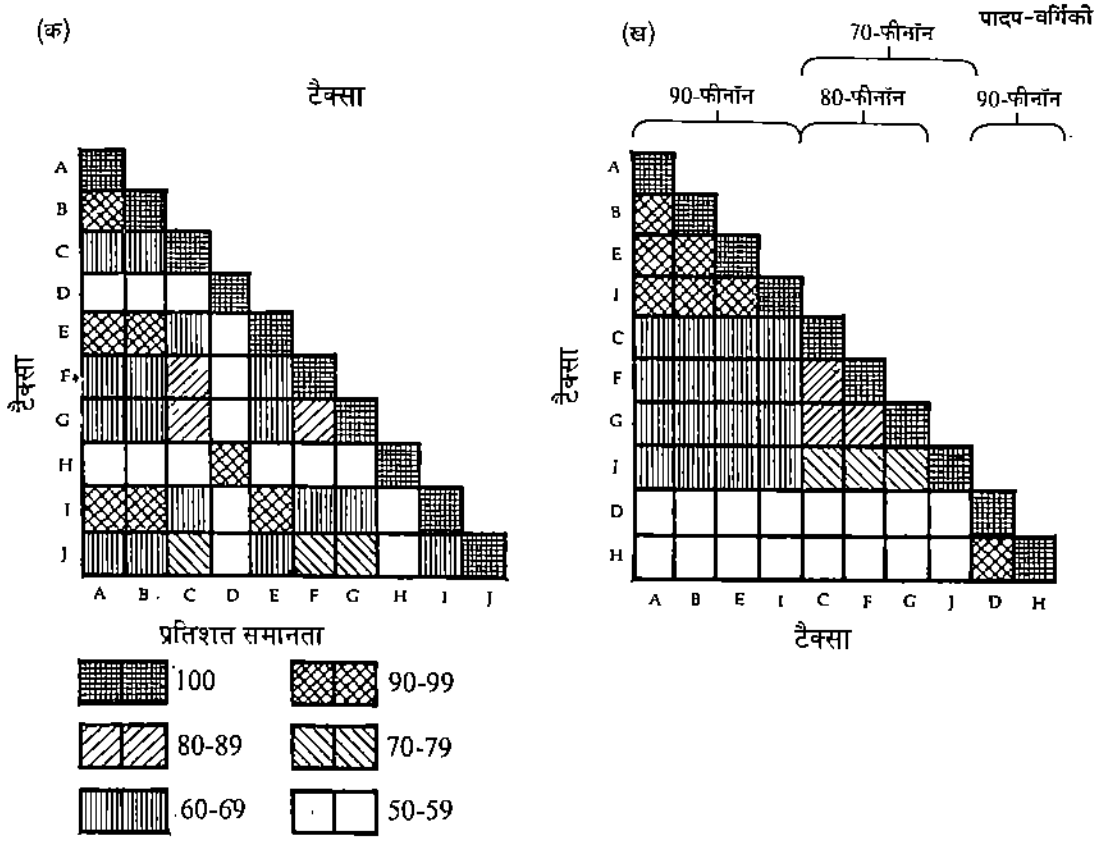

चित्र 7.4 : क) इस योजना ओख में समूहों (टैक्सानों) के जोड़ों के बीच एक परिकल्पित समानता गुणांक दर्शाया गया है, गुणांक की मात्रा शेडिंग के गहरेपन द्वारा दर्शाई गई है।

ख) वे ही गुणांक, समान टेक्सानों को एक दूसरे के आगे रखकर व्यवस्थित करने पर, इससे उच्च समानता मानों का त्रिभुज बन जाता है। फीनॉन वांछित स्तरों द्वारा बने समूह होते हैं (Sneaths, 1962, Microbial Classification के आधार पर)

जाता है। इन गुच्छों को फीनॉन (phenons) कहते हैं और उन्हें एक वृक्षीरेख अथवा डेंड्रोग्राम की शक्ल में पदानुक्रमिक रूप में व्यवस्थित किया जा सकता है (चित्र 7.5)।

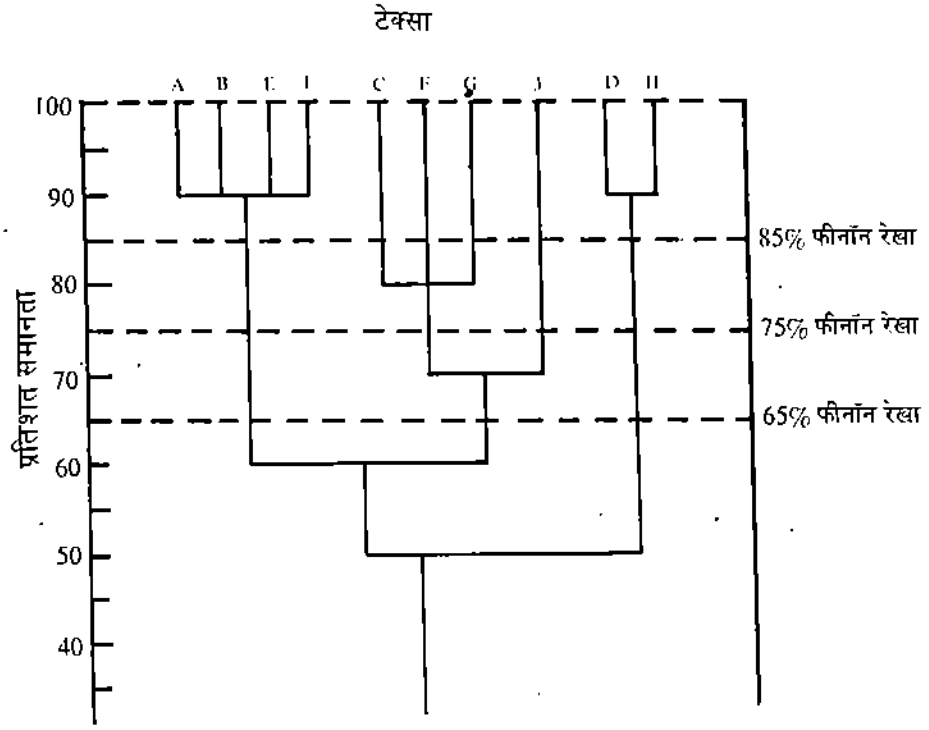

चित्र 7.5 : एक डेंड्रोग्राम जिसमें चित्र 7.4 से प्राप्त समूहों (टेक्सानों) का परिकल्पित पदानुक्रम दर्शाया गया है। ऑर्डिनेट समानता गुणांक दर्शाता है जिस पर शाखाएं जुड़कर उच्चतर स्तर के समूह बनते हैं। क्षैतिजों से समान पद स्तर के समूह परिसीमित होते हैं (प्रतिशत फीनॉन रेखाएं) (Sneath 1962 से) Microbial Classification, Ainsworth and Sneath द्वारा सम्पादित University of Cambridge.

इस प्रकार पहचाने जा सकने वाले समूहों अथवा गुच्छों को शास्त्रीय वर्गिकी में जीनस, फ़ेमिली, आर्डर, आदि के स्तरों को श्रेणियों के तुल्य माना जा सकता है। अनेक वर्गिकीविद्‌ों के सामने एक समस्या यह आती है कि जीवों के विभिन्न वर्गिकीय समूहों के स्तरों के बीच कोई तुल्यता है। उदाहरण के लिए, क्या पुष्पी पौधों की कोई एक फ़ेमिली किसी भी अर्थ में शैवालों या अन्य जीवों की किसी एक फ़ेमिली के तुल्य है। इस समस्या के समाधान के लिए संख्यात्मक वर्गिकीविद्‌ों ने एक नयी शब्दावली सामने रखी है। इसमें एक शब्द "फीनॉन" लाया गया है तथा विशिष्ट फीनॉनों को संख्यात्मक उपसर्ग लगाकर नाम दिया जाता है (जैसे - 80 समानता) जिसमें समानता का स्तर दर्शाया गया होता है, इसी समानता से वे परिभाषित होते हैं। फीनॉनों का परिसीमन करने के लिए किसी एक छाँट लिए गए समानता मान पर डेंड्रोग्राम में आर-पार क्षैतिज रेखाएं खींची जाती है। ऐसे डेंड्रोग्राम में केवल उसी दिए गए एक अध्ययन का संदर्भ होता है और वह सब पर लागू नहीं हो सकता। इस प्रकार फीनॉन, मात्र स्वेच्छ होंगे तथा वे केवल उसी एक विश्लेषण की सीमाओं के भीतर के समूहों के सापेक्ष होंगे।

संख्यात्मक वर्गिकी के बहुसंख्यक अध्ययनों में से यंग एवं वाट्‌सन (1970) द्वारा किया गया द्विबीजपत्रियों का पुनर्वर्गीकरण एक अच्छा उदाहरण है। उनहोंने 543 जीनसों में आकारिकी तथा शारीर से 83 लक्षणों का अध्ययन किया तथा इस सूचना का कंप्यूटरीकरण करके इन ऐंजियोस्पर्मों का वर्गीकरण किया। कंप्यूटर आधारित वर्गीकरण अनेक बातों में अन्य परंपरागत वर्गीकरण के समान था और साथ ही कुछ बातों में भिन्न भी थी। फिर भी, विभिन्न जीनसें बीजांड की प्रकृति के आधार पर स्पष्ट श्रेणियों में विभक्त की जा सकीं, ये श्रेणियां थीं - क्रेसिन्यूसेलेट (बीजांडों में बड़ा न्यूसेलस) तथा टेनुईन्यूसेलेट (न्यूसेलस की कम मात्रा से युक्त बीजांड)। इन नतीजों के आधार पर कुछ वर्गिकीविद्‌ों का मानना है कि मानक प्रविधि के रूप में संख्यात्मक वर्गिकी कभी भी परंपरागत विधियों का स्थान नहीं ले सकेगी। फिर भी यह उन दशाओं में सफल होगी जिनमें या तो अन्य विधियां निष्फल हो चुकी हों या वे इतनी ज्यादा श्रम प्रधान अथवा/अन्यथा कठिन हों कि उनका प्रयोग न हो सके। संख्यात्मक वर्गिकी का सबसे महत्वपूर्ण योगदान इस बात में है कि इसने वर्गिकीविद्‌ों को उनकी विधियों, आंकड़ों तथा निष्कर्षों का अधिक तर्कसंगत एवं वस्तुपरक रूप में विश्लेषण करने में सहायता की है।

बोध प्रश्न 5

क) संरचनात्मक वर्गिकी को नव-ऐंडनसोनियन वर्गिकी भी क्यों कहा जाता है?

.....

.....

.....

.....

ख) संख्यात्मक वर्गिकीविद्‌ों द्वारा अपनायी जाने वाली प्रविधियों का संक्षेप में वर्णन कीजिए।

.....

.....

.....

.....

ग) "संक्रियात्मक वर्गिकी इकाई" (OTU) का क्या अर्थ है?

.....

.....

.....

.....

घ) द्विशाखी कोडिंग तथा बहुदशा कोडिंग में विभेद कीजिए।

.....

.....

.....

.....

ङ) संख्यात्मक वर्गिकी में डांटा मेट्रिक्स के 2 लाभ बताइए।

.....

.....

.....

.....

च) "गुच्छ विश्लेषण" किसे कहते हैं और संख्यात्मक वर्गिकी में इसे किस प्रकार प्राप्त किया जाता है?

.....

.....

.....

.....

7.9 सारांश

इस इकाई में हमने पादप वर्गिकी की आधुनिक प्रवृत्तियों के विविध पहलुओं का संक्षेप में विवेचन किया है। इससे आपको ये सब बातें जानने में सहायता मिली है :

- वर्गिकी में जीवविज्ञान की अन्य सभी शाखाओं से प्राप्त आंकड़ों का उपयोग किया जाता है।
- वर्गिकीय सूचना कभी भी पुरानी होकर बेकार नहीं हो जाती, वरन् यह अधिकाधिक सुधरती जाती है एवं वर्गिकीविद् इसका लागातार समुपयोजन करके वर्गीकरण प्रणालियों का सृजन करते जाते हैं।
- आधुनिक वर्गिकी में बहुविज्ञानशाखीय दृष्टिकोण का अनुसरण किया जाता है।
- ऐल्फ़ा वर्गिकी अथवा शास्त्रीय वर्गिकी एक आनुभविक दृष्टिकोण पर आधारित है जिसमें वर्गिकीय जानकारी के विकास की दो प्रावस्थाएं शामिल है — एक तो अन्वेषणी अर्थात् अग्रणी प्रावस्था और दूसरी वर्गीकरण अथवा समेकन प्रावस्था।
- आधुनिक अथवा ओमेगा वर्गिकी में एक व्याख्यात्मक दृष्टिकोण अपनाया जाता है जिसमें वर्गिकीय एवं जातिवृत्तीय संबंधों को समझने के लिए क्रमविकासीय सूचना का इस्तेमाल किया जाता है। इसमें वर्गिकी की बायोसिस्टेमेटिक अथवा प्रायोगिक प्रावस्था तथा विश्वकोशीय अथवा पूर्णवर्गिकीय प्रावस्था (holotaxonomy) से प्राप्त जानकारी का उपयोग किया जाता है।
- आकारिकीय तथा शारीरीय लक्षणों का प्रकाश माइक्रोस्कोप और इलेक्ट्रॉन माइक्रोस्कोप दोनों ही से अध्ययन किया जा सकता है तथा यह सूचना वर्गिकीय समस्याओं के समाधान में उपयोगी होती है।
- वर्गिकी में एक प्रमाण स्रोत के रूप में पादप भ्रूणविज्ञान बहुत ही उपयोगी सिद्ध हुआ है।
- कोशिकाविज्ञानीय तथा बायोसिस्टेमेटिक आंकड़ों में गुणसूत्रों की संख्या, उनकी संरचना एवं उनके आचरण से प्राप्त सूचना का उपयोग किया जाता है और इससे वर्गिकीविदों को पौधों में परस्पर संबंधों को समझने में सहायता मिलती है।
- रसोवर्गिकी द्वारा रासायनिक लक्षणों से उपयोगी आंकड़े प्राप्त होते हैं। ये रासायनिक लक्षण, पौधों में उसी प्रकार से रासायनिक संबंध दर्शाते हैं जैसे कि अकारिकीय लक्षण आकारकीय संबंधों को दर्शाते हैं। विभिन्न प्रकार के रासायनिक यौगिकों का विभिन्न प्रकार से मूल्यांकन करके वर्गिकीय दृष्टि से उपयोगी

सूचना प्राप्त की जा सकती है।

- संख्यात्मक वर्गिकी में वर्गिकीविद् कंप्यूटरों का उपयोग करके बहुत अधिक संख्या में सूचनाओं का विश्लेषण कर सकते है।

7.10 अंत में कुछ प्रश्न

1. "सिस्टेमैटिक वनस्पतिकी (पादप वर्ग व्यवस्था) एक कभी न समाप्त होने वाला संश्लेषण है।" विस्तार से समझाइए।

2. क) "रैनुनकुलैसी *सेंसु लेटो* (Ranunculaceae *Sensu lato*) तथा रैनुनकुलैसी *सेंसु स्ट्रिक्टो* (Ranunculaceae *Sensu stricto*) में विभेद कीजिए।

   ख) इस फ़ेमिली के परिसीमन में जिस जीनस से यह परिवर्तन आया, उसेका नाम लिखिए।

3. सामान्य खाया जाने वाला गेहूँ *ट्रिटिकम एसटावम (Triticum aestivum)* एक हेक्साप्लॉइड है। कोशिकावर्गिकी तथा रसोवर्गिकी से उन प्रमाणों की सूची बनाइए जिनसे इस हेक्साप्लॉइड गेहूँ के डिप्लॉइड पूर्वजों से विकसित हुए होने का समर्थन मिलता है।

4. संख्यात्मक वर्गिकी में अपनाई जाने वाली प्रविधियों की संक्षिप्त रूपरेखा दीजिए।

5. निम्न पर स्पष्टकारक टिप्पणियां लिखिए :

   क) जैववर्गव्यवस्था (बायोसिस्टैमैटिक्स)

   ख) रसोवर्गिकी में लक्षणों के रूप में द्वितीयक मेटाबोलाइट

   ग) संख्यात्मक वर्गिकी में गुच्छ विश्लेषण

7.11 उत्तर

बोध प्रश्न

1. क) i) ✓
   ii) ×
   iii) ×
   iv) ×
   v) ✓
   vi) ✓

   ख) शास्त्रीय वर्गिकी में एक आनुभविक दृष्टिकोण बरता जाता है जिसमें देखे गए तथ्यों से एक आधारभूत वर्गीकरण को बनाया जाता है। आधुनिक वर्गिकी में एक व्याख्यात्मक मार्ग अपनाया जाता है जिसके द्वारा आधारभूत वर्गीकरण में सुधार किया जाता है।

   ग) C_3 पौधों तथा C_4 पौधों की पत्तियों में विभेद करने वाला सर्वाधिक महत्वपूर्ण शारीय लक्षण C_3 पौधों में क्लोरेंकाइमी आच्छद का न होना है तथा C_4 पौधों में उसका मौजूद होना है।

   घ) छलनी नलिका प्लास्टिड मूलत: दो प्रकार के होते हैं जिन्हें S-प्रकार (स्टार्च संचयी) तथा P-प्रकार (प्रोटीन संचयी) कहा जाता है। इन्हें इलेक्ट्रॉन माइक्रोग्राफी अध्ययन से पहचाना जा सकता है तथा इस सूचना के आधार पर विभिन्न पादप फ़ेमिलियों के विशिष्ट लक्षण बताए जा सकते हैं। साथ ही, प्रमाण के रूप में छलनी नलिका प्लास्टिड का लक्षण को लेकर एकबीजपत्रियों तथा द्विबीजपत्रियों के बीच के संबंध को समझना भी संभव हो गया है।

2. क) i) थैलोफ़ाइटों में जाइगोट से या तो सीधे ही एक नया पौधा बन जाता है या फिर स्पोर बनते हैं जिनसे नए पौधे विकसित होते हैं। एम्ब्रयोफ़ाइटा (Embryophytes) में जाइगोट से पहले तो एक भ्रूण बनता है जिससे फिर आगे एक नया व्यष्टिगत पौधा बनता है।

ii) एकबीजपत्रियों में परिपक्व भ्रूण में एक बीजपत्र होता है तथा द्विबीजपत्रियों में दो बीजपत्र होते हैं।

ख) सारणी 7.2 से किन्ही छः लक्षणों की सूची बनाइए।

ग) i) भ्रूणविज्ञानीय लक्षणों में बहुत उच्च स्तर का सहसंबंध पाया जाता है।

ii) पुष्पी लक्षणों में अपेक्षाकृत कम विभिन्नता पाए जाने के कारण भ्रूणविज्ञानीय लक्षण अधिक स्थिरता दर्शाते हैं।

iii) पारिस्थितिकीय विभिन्नता का भ्रूणविज्ञानीय लक्षणों पर प्रभाव नहीं पड़ता और वे अपरिवर्तित बने रहते हैं।

घ)

जीनसें	फेमलियां
i) *ब्यूटमस (Butomus)*	i) लोरनथेसी (Loranthaceae)
ii) *डैलफिनियम (Daphniphyllum)*	ii) पोडोस्टीमेसी (Podostemaceae)
iii) *एक्सोर्कापस (Exocarpus)*	iii) रेनुनकुलेसी (Ranunculaceae)

या फिर कोई भी अन्य जीनस अथवा फ़ेमिली जिसमें भ्रूणविज्ञानीय लक्षणों को लेकर वर्गीकरण किया गया हो।

3. क) i) मूलभूत गुणसूत्र संख्या का संदर्भ आनुवंशिक सूचना के उस आधारभूत समुच्चय से है जो किसी पौलीप्लॉइड श्रृंखला की अथवा एक स्पीशीज़ की एक व्यष्टि के गुणसूत्र में पाई जाती है।

ii) हेप्लॉइड (अगुणित) गुणसूत्र संख्या युग्मकी गुणसूत्र संख्या होती है जो लैंगिक कोशिकाओं अथवा युग्मकों में पाई जाती है।

iii) डिप्लॉइड (द्विगुणित) गुणसूत्र संख्या दैहिक सुणसूत्र संख्या होती है जो प्रायः व्यष्टि की कायिक कोशिकाओं में पाई जाती है।

ख) निम्न डिप्लॉइड गुणसूत्र संख्या इस प्रकार है :

i) चावल 2n = 24, ii) आलू 2n = 48,

iii) चाय 2n = 30, iv) काफ़ी 2n = 44,

v) आम 2n = 40, vi) प्याज 2n = 16.

ग) i) सेंट्रोमीयर गुणसूत्र की लम्बी भुजा तथा छोटी भुजा के बीच स्थित होता है।

ii) यह गुणसूत्र की दो समान भुजाओं के मध्य में स्थित होता है।

iii) यह गुणसूत्र की भुजा के सिरे पर स्थित होता है।

घ) केरियोटाइप का अर्थ है — वह आधारभूत गुणसूत्र समुच्चय जो प्रकाश माइक्रोस्कोप से दिखाई पड़ता है। इससे हमें गुणसूत्र संख्या, गुणसूत्रों के विभिन्न प्रकारों एवं उनके एक-दूसरे से संबंध के विषय में पता चलता है। इस सूचना की, कोशिकावर्गिकी उद्देश्यों के लिए तुलना की जा सकती है।

ङ) जीनोम विश्लेषण में डिप्लॉइड संकरों में गुणसूत्र युगलन (जोड़ा बनाने) का अध्ययन किया जाता

है। इससे पूर्वज जीनोमों के अभिनिर्धारण के लिए पॉलीप्लॉइडों के अन्वेषण में सहायता मिलती है और इस सूचना का उपयोग करके वर्गिकीय संबंध निश्चित किए जाते हैं।

4. क) i) रासायनिक लक्षण स्थिर होते हैं।

ii) ये असंदिग्ध होते हैं।

iii) रासायनिक लक्षण आसानी से नहीं बदलते।

ख) i) प्रत्यक्षत: दृश्यमान रासायनिक रचक जैसे कि स्टार्च के कण।

ii) द्वितीयक मेटाबोलाइट जैसे कि फीनोलिक यौगिक, ऐल्केलॉइड, आदि।

iii) सेमेंटाइड अथवा सूचनावाहक अणु जैसे कि DNA, RNA, अथवा प्रोटीन।

ग) प्रोटीनों का विश्लेषण जेल-इलेक्ट्रोफ़ोरेसिस द्वारा अथवा सीरमविज्ञानीय विधियों द्वारा किया जा सकता है। जीनस *ट्रिटिकम* का जेल-इलेक्ट्रोफ़ोरेसिस से तथा जीनस *सोलेनम* का सीरमविज्ञानीय विधियों से विश्लेषण किया गया है।

प्रोटीनों को उनके ऐम्फ़ोटेरिक (उभयधर्मी) गुणधर्मों के आधार पर एक ऐसे एक्रिलेमाइड जेल के एक कॉलम में इलेक्ट्रोफोरेसिस की विधि से पृथक् किया जाता है जिसे अलग-अलग मात्राओं में पॉजिटिव अथवा नेगेटिव रूप में चार्ज किया जाता है। सीरमविज्ञान में प्रोटीनों का विश्लेषण प्रतिरोधविज्ञानीय प्रतिक्रियाओं के आधार पर किया जाता है। इसके लिए एक परीक्षण-प्राणी की आवश्यकता होती है ताकि ऐंटीबॉडी-ऐंटीजन प्रतिक्रिया का मूल्यांकन किया जा सके।

5. क) संख्यात्मक वर्गिकी को नव-ऐडनसोनियन वर्गिकी भी कहा जाता है क्योंकि यह एम. एडनसन द्वारा 18वीं शताब्दी में ही बनाए गए वर्गिकी-सिद्धांतों पर आधारित होती है।

ख) उपभाग 7.8.2 को ध्यानपूर्वक पढ़िए तथा इस प्रक्रम को अपने शब्दों में लिखिए।

ग) संक्रियात्मक वर्गिकी इकाई OTU संख्यात्मक वर्गिकी के अध्ययन की आधारभूत इकाई है। यह अन्वेषण की जा रही सामग्री की प्रकृति के अनुसार और साथ ही साथ अन्वेषण उद्देश्य के अनुसार भिन्न हो सकती है।

घ) द्विशाखी कोडिंग दो अवस्था कोडिंग है जिसके अनुसार अध्ययन किए जा रहे प्रत्येक लक्षण का 2 अवस्थाओं में विश्लेषण किया जा सकता है अर्थात् वह है (+) या नहीं है (–), जबकि बहु-अवस्था कोडिंग में उन दो से अधिक अवस्थाओं का विश्लेषण किया जाता है जिसमें कोई एक खास लक्षण मौजूद होता पाया जाता है और उसकी प्रत्येक अवस्था को एक निश्चित प्रतीक अथवा कोड दे दिया जाता है।

ङ) डाटा मेट्रिक्स में मूलत: अध्ययन किए गए सभी OTUs तथा सभी लक्षणों से संबद्ध वर्गिकीय सूचना को एक सारणी के रूप में प्रस्तुत किया गया होता है। यह OTUs के गुच्छन के लिए भी सूचना प्रदान करता है।

च) गुच्छन विश्लेषण ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा OTUs को उनकी कुल मिलाकर समानता के आधार पर अलग-अलग समूहों अथवा गुच्छों में छांट लिया जाता है। समानता तथा असमानता गुणांकों को प्रत्येक OTU की प्रत्येक अन्य OTU से तुलना करके परिकलन कर लिया जाता है और इसे एक प्रतिशतता के रूप में दर्शाया जाता है। इस सूचना को संख्यात्मक वर्गिकी में गुच्छ विश्लेषण के लिए काम में लाया जाता है।

अंत में कुछ प्रश्न

I. वर्गीकरणों के समेकन में वर्गिकीविद् अनेक विज्ञान क्षेत्रों से सूचना का उपयोग करते हैं। इस इकाई में दी गई सामग्री में संक्षेप में वर्णन किया गया है। वर्गीकरण — वनस्पतिकी की अनन्त प्रकृति को विशद बनाने में आधुनिक वर्गिकी में क्या-क्या विकास हुआ है। आपको सम्पूर्ण इकाई को ध्यान से पढ़ना चाहिए और इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए लगभग 1500 शब्दों में एक निबंध लिखिए।

2. क) रेनुनकुलेसी "*Sensu lato*" का अर्थ है फ़ेमिली रैनुनकुलेसी की वर्गिकी में एक मोटी-मोटी परिकल्पना। इससे भिन्न रैनुनकुलेसी "*Sensu stricto*" का अर्थ है एक सीमित परिकल्पना जो इस फ़ेमिली में से एक या अधिक जीनसों को निकाल देने के बाद की है जिन्हें एक अलग फ़ेमिली में वर्गीकृत किया गया है, इससे फ़ेमिली का परिसीमन बदल गया।

ख) जीनस *पायोनिया* को पहले-पहल फ़ेमिली रैनुनकुलेसी (स्थूल परिसीमन) में वर्गीकृत किया गया था किंतु बाद में इसे इस फ़ेमिली से निकाल कर फ़ेमिली को सीमित परिसीमन दे दिया गया।

3. हैक्साप्लॉइड खाद्य गेहूँ *ट्रिटिकम एसटाइवम (Triticum aestivum)* का डिप्लॉइड पूर्वजों से उद्भव हुआ होना कोशिकावर्गिकी के आधार पर स्थापित हो चुका है। *ट्रिटिकम मोनोकोकम* तथा *एजिलोप्स स्पल्टा* के बीच, जो दोनों ही डिप्लॉइड स्पीशीज़ है, संकरण हो सकता हैऔर उनसे प्राप्त संकर में गुणसूत्रों का दुगुना हो जाने से एक टेट्राप्लॉइड गेहूँ *ट्रिटिकम डाइकोकम (Triticum dicoccum)* प्राप्त हुआ और स्वयं यह भी एक अन्य डिप्लॉइड स्पीशीज़ *एजिलोप्स स्कुएरोसा (Aegilops squarrosa)* के साथ संकरण कर सकता है और संकर के गुणसूत्रों के दुगुना होने से हेक्साप्लॉइड गेहूँ *ट्रिटकम एसटाइवम* बन जाता है। रसोवर्गिकी में ट्रिटिकम *डाइकोकम, एजीलोप्स स्कुएरोसा* तथा *ट्रिटिकम डाइकोकम* के बीज-प्रोटीनों के प्रोटीन जेल-इलेक्ट्रोफोरेसिस से प्रमाण मिलता है कि हेक्साप्लॉइड गेहूँ का उदय संकरण से हुआ है।

4. क) के लिए भाग 7.6 ख) के लिए उपभाग 7.7.3 ग) के लिए भाग 7.8 को देखिए।

5. क) भाग 7.4 देखिए।

ख) उपभाग 7.5.3 देखिए।

ग) उपभाग 7.8.2 देखिए और खासतौर से गुच्छ विश्लेषण पर दिए गए पैराग्राफों को पढ़िए।

इकाई 8 प्राणी वर्गिकी में आधुनिक प्रवृत्तियां

इकाई की रूपरेखा

8.1 प्रस्तावना
उद्देश्य

8.2 वर्गिकीविद् संश्लेषणकारियों के रूप में

8.3 वर्गिकी, संवर्गिकी तथा जैवसंवर्गिकी

8.4 वर्गिकी प्रक्रियों के चरण
8.4.1 ऐल्फ़ा वर्गिकी
8.4.2 बीटा वर्गिकी
8.4.3 गामा वर्गिकी

8.5 नवर्गिकी

8.6 वर्गिकी में इलेक्ट्रॉन माइक्रोस्कोपी

8.7 वर्गिकी में भ्रूणविज्ञानीय विधि

8.8 वर्गिकी में पारिस्थितिकीय विधि

8.9 वर्गिकी में व्यवहारविज्ञान विधि

8.10 वर्गिकी में कोशिकाविज्ञानीय विधि
8.10.1 DNA संकरण
8.10.2 केंद्रक संबंधी अध्ययन

8.11 वर्गिकी में जैवरसायनक विधि
8.11.1 क्रोमैटोग्राफ़ी
8.11.2 इलेक्ट्रोफ़ोरेसिस
8.11.3 रोधविज्ञानीय तकनीक अथवा रोध वर्गिकी

8.12 संख्यात्मक वर्गिकी

8.13 सारांश

8.14 अंत में कुछ प्रश्न

8.15 उत्तर

8.1 प्रस्तावना

इकाई 7 में आपने पढ़ा था कि किस प्रकार वर्गिकी का अन्य जीवविज्ञानीय क्षेत्रों के साथ परस्पर संबंध बना हुआ है। आपने यह भी जाना कि पौधों की बहुत सी स्पीशीज़ के अभिनिर्धारण में आकारिकीय आंकड़ों के साथ-साथ जीव विज्ञान के अन्य क्षेत्रों से मिली सूचना को भी इस्तेमाल किया जाता है।

इसी प्रकार आप इस इकाई में देखेंगे कि अक्सर कितनी ही बार आकारिकीय प्रेक्षण इतने पर्याप्त नहीं होते कि उनके द्वारा प्राणियों को पहचाना जा सके या उनका वर्गीकरण किया जा सके। तब वर्गिकीविदों को अन्य विज्ञान क्षेत्रों से भी अतिरिक्त सूचना प्राप्त करनी होती है जैसे कि इलेक्ट्रॉन माइक्रोस्कोपी, भ्रूणविज्ञान, व्यवहारविज्ञान, कोशिकाविज्ञान, जैवरसायन तथा कंप्यूटर विश्लेषण से।

साथ ही आप यह भी जानेंगे कि इस प्रकार के आंकड़ों के उपयोग से वर्गिकी को पहले से कहीं अधिक व्यापक दिशाएं मिली हैं। अब यह मात्र प्राणियों को वर्गीकृत करने तक ही सीमित नहीं है वरन् अब इसके द्वारा अलग-अलग स्पीशीज के बीच जातिवृत्तीय संबंध का भी पता लगाया जाता है। परिणामस्वरूप वर्गिकी अब संवर्गिकी (systematics) अथवा जैवसंवर्गिकी (biosystematics) का भाग बन चुकी है और अपने मतों एवं परिकल्पनाओं के वास्ते उन पर बहुत निर्भर है। जैवसंवर्गिकी का आधार व्यापक है क्योंकि इसमें न केवल अभिनिर्धारण (पहचानने) का ही कार्य किया जाता है वरन् इसमें जीव के प्रत्येक पहलू का तुलनात्मक अध्ययन और साथ ही साथ उसके क्रमविकासीय इतिहास की व्याख्या करना भी शामिल है।

उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- वर्गिकी, संवर्गिकी तथा जैवसंवर्गिकी में विभेद कर सकेंगे
- वर्गिकी की ऐल्फा (α), बीटा (β) तथा गामा (γ) प्रावस्थाओं का स्पष्टीकरण कर सकेंगे
- नववर्गिकी की परिभाषा दे सकेंगे और इस क्षेत्र के विविध दृष्टिकोणों की गणना कर सकेंगे
- नववर्गिकी में विभिन्न विधियों से उपयोग में लाई जाने वाली निम्न तकनीकों एवं उनके महत्व का वर्णन तथा स्पष्टीकरण कर सकेंगे — इलेक्ट्रॉन माइक्रोस्कोपी, भ्रूणविज्ञान, पारिस्थितिकी विज्ञान, व्यवहारविज्ञान, कोशिकाविज्ञान, जैवरसायन तथा संख्यात्मक वर्गिकी।

8.2 वर्गिकीविद् — संश्लेषणकारियों के रूप में

इससे पहले कि इकाइयों में वर्गिकी के विषय में और खासतौर से इसके इतिहास के विषय में जो कुछ आपने पढ़ा है उससे आपको अवश्य पता लग गया होगा कि वर्गिकी का क्षेत्र बहुत बदल गया है। आजकल इस क्षेत्र में बहुत तेजी से प्रगति हो रही है, तथा इसका विस्तार बहुत बढ़ गया है। इसे अब एक नीरस तथा गतिविहीन क्षेत्र नहीं कहा जा सकता, जैसे कि पहले इसे कहा जाता रहा है। अब यह मात्र जीवों को परिरक्षित करने तथा उन्हें सूचीबद्ध करने तक ही सीमित नहीं है। इस इकाई को पढ़ने के बाद आपको पता चल जाएगा कि वर्गिकीविद् आज केवल आकारिकीय आंकड़ों पर ही निर्भर नहीं होते वरन् उनके साथ-साथ कई अन्य विज्ञान क्षेत्रों से भी प्रासंगिक सूचना एवं उनकी तकनीकों का उपयोग करते हैं, जैसे कि भौतिकी, रसायन, जैवरसायन, कोशिकाजैविकी, व्यवहारविज्ञान, गणित आदि। इस प्रकार आज के वर्गिकीविद् के अभिनिर्धारण के वास्ते अन्य विज्ञान क्षेत्रों से, जिससे भी और जब भी संभव हो या उपलब्ध हो, सुसंगत आंकड़ों और तकनीकों को साथ-साथ जोड़ कर एकीकरण (संश्लेषण) करने की कोशिश करते हैं। इसलिए ऐसे वैज्ञानिक को हम जीवविज्ञान और उसकी तकनीकों के संश्लेषण की उपाधि भी दे सकते हैं।

8.3 वर्गिकी, संवर्गिकी तथा जैवसंवर्गिकी

ये तीन शब्द टैक्सोनोमी (वर्गिकी) सिस्टेमेटिक्स (संवर्गिकी) तथा बायोसिस्टेमेटिक्स (जैवसंवर्गिकी) यदाकदा एक-दूसरे के स्थान पर इस्तेमाल किए जाते हैं और इनसे आपको भ्रम भी हो सकता है, खासतौर से इसलिए कि ये वास्तव में पर्याय यानि समानार्थी नहीं है। इनमें से प्रत्येक का विशिष्ट अर्थ है जैसा कि आप नीचे पढ़ेंगे।

वर्गिकी (टेक्सोनॉमी)

टेक्सोनॉमी शब्द ग्रीक शब्द "taxis" से आया है जिसका अर्थ है क्रम अथवा व्यवस्था और "nomos" जिस का अर्थ है "नियम"। यह शाखा वर्गीकरण के सिद्धांतों का अध्ययन है।

इसमें जीवधारियों का समूहन एवं वर्गीकरण किया जाता है। इस कार्य में ये सभी बातें शामिल हैं — जीवों को पहचानना, उनका वर्णन, उन्हें नाम देना (नामकरण) और उनका वर्गीकरण। जिसे हम टेक्सोनॉमी (वर्गिकी), कहते हैं वह सिस्टेमेटिक्स (संवर्गिकी) तथा बायोसिस्टेमेटिक्स (जैवसंवर्गिकी) का ही अंश है, और इन्हीं दोनों पर अत्याधिक निर्भर रहते हुए इसके अपने मत एवं अपनी अभिधारणाएं बनती हैं।

संवर्गिकी (सिस्टेमेटिक्स)

संवर्गिकी की परिभाषा के रूप में हम कहेंगे कि यह विभिन्न जीवों के बीच के संबंधों का अध्ययन है यानि यह जीवविज्ञान की वह शाखा है जिसमें विज्ञान की अन्य शाखाओं की तकनीकों का, जैसे कि जैवरसायन, आनुवंशिकी, जैवभौतिकी आदि की तकनीकों का उपयोग करके जीवों के विभिन्न वर्गों के परस्पर संबंधों का तुलनात्मक अध्ययन किया जाता है।

दूसरे शब्दों में संवर्गिकी के दो भाग हैं। पहला भाग है वर्गिकी (टेक्सोनोमी) जिसका संबंध विविध प्रकार के जीवधारियों के अभिनिर्धारण, उनके वर्णन तथा उन्हें नाम देने से है, और दूसरा भाग है क्रमविकास जिसका संबंध प्रकृति में जीवों के उद्भव तथा उन प्रक्रियाओं को समझने से है जिनके द्वारा उन जीवों में परिवर्तन आया करते हैं अथवा वे स्थिर बने रहा करते हैं।

संवर्गिकी में चार प्रकार के संबंधों का अध्ययन किया जाता है।

1. जातिवृत्त (क्रमविकासीय वंशजता) के संबंध अर्थात् दो जीवों का एक समान पूर्वज से कितना संबंध माना जाता है उसकी मात्रा,

2. आकारिकी (स्वरूप तथा संरचना), कार्यिकी, कोशिकाविज्ञान आदि में समानता के संबंध ।

3. स्थानगत अथवा भौगौलिक संबंध।

4. आहारगत अथवा पोषणगत संबंध, जिनके अंतर्गत यह अध्ययन किया जाता है कि दो या अधिक जीवधारियों के बीच किस हद तक की निर्भरता पायी जाती है अथवा आहार के लिए उन दोनों में किस हद तक प्रतिस्पर्धा पायी जाती है।

जैवसंवर्गिकी (बायोसिस्टेमेटिक्स)

जैवसंवर्गिकी मूलतः संवर्गिकी का ही पर्याय है, हालाकि इसमें आनुवंशिकीय (वंशागति से संबंधित) तथा कोशिकाविज्ञानीय (कोशिका-कार्य तथा कोशिका संरचना से संबंधित), आंकड़ों पर ज्यादा जोर दिया जाता है न कि जितना अकेले-अकेले आकारिकीय, कार्यिकीय, अथवा स्थानगत सूचना पर। यह अध्ययन जनन संगतता तथा जीन प्रवाह (gene pool) के अध्ययन से क्रमविकासीय संबंधों के विषय में निष्कर्ष निकालने का प्रयत्न करता है। जैवसंवर्गिकीविद् समष्टियों में तथा विभिन्न स्पीशीज़ में आनुवंशिक विभिन्नता का मूल्यांकन करते हैं। आनुवंशिकीय अध्ययनों से प्राप्त सूचना का इस्तेमाल करके जैवसंवर्गिकीविद् स्पीशीज़ के पूर्वजता इतिहास के विषय में निष्कर्ष निकालते हैं और इस प्रकार स्पीशीज़ निर्माण (अर्थात् एक स्पीशीज़ से दूसरी स्पीशीज़ के विकास) का अध्ययन करते हैं। ये लोग जीवधारियों की समष्टि में विभिन्नता से संबंधित आंकड़ें इकट्ठे करते हैं और तब समष्टि का विश्लेषण करते हैं। उदाहरण के लिए, विस्कांसिन (Wisconsin) में मक्खी के मैगटों (maggots) की एक एकल समष्टि या तो सेब के या चेरी के वृक्षों के समीप आहार करने, परिपक्व होकर बड़े होने तथा जनन करने लग जाती है। इन दो प्रकार के वृक्षों में वर्ष के अलग-अलग भागों में फल लगते हैं, इसलिए सेब खाने वाले मैगट तथा चेरी खाने वाले मैगट किसी एक ही समय विंदु पर जनन की दृष्टि से एक दूसरे से पृथक् हो गए होते हैं। ऐसी स्थिति में जैवसंवर्गिकीविद् निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि इस विशिष्ट मामलों में स्पीशीज़ निर्माण (speciation) हो रहा है।

बोध प्रश्न 1

नीचे दी गई शब्द सूची में से उचित शब्द चुन कर रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :

क) वैज्ञानिक को, जो मेंढ़क जीनस *राना (Rana)* की अलग-अलग स्पीशीज़ के तुलनात्मक लक्षणों को उनकी आकारिकी, पारिस्थितिकी, वितरण और जीनोटाइप (जीनरूप) के संदर्भ में अध्ययन करता है और स्पीशीज़ निर्माण के आधार पर उनके परस्पर संबंधों का पता लगाता है अधिक सही तौर पर ———— कहते हैं।

ख) उस वैज्ञानिक को, जो बिल्ली की फैमिली की विभिन्न स्पीशीज़ की, उनकी आकारिकी, पारिस्थितिकी तथा व्यवहारिकी के संदर्भ में तुलनात्मक विशिष्टताओं का अध्ययन करता है और उन विभिन्न स्पीशीज़ के परस्पर संबंधों का पता लगाता है उसे अधिक सही तौर पर ———— कहते हैं।

ग) उस वैज्ञानिक को जो *रना (Rana)* की विभिन्न स्पीशीज़ को उनकी आकारिकीय विशिष्टताओं के आधार पर अभिनिर्धारित करता है अधिक सही तौर पर ————कहते हैं।

(जैवसंवर्गिकीविद्, वर्गिकीविद्, संवर्गिकीविद्)

8.4 वर्गिकीय प्रक्रियाओं के चरण

जीवों के किसी एक वर्ग के अध्ययन में इस्तेमाल की जाने वाली प्रक्रियाओं को तीन स्तरों अथवा प्रावस्थाओं में विभाजित किया जा सकता है :

क) ऐल्फ़ा (α) प्रावस्था

ख) बीटा (β) प्रावस्था

ग) गामा (γ) प्रावस्था

8.4.1 ऐल्फ़ा वर्गिकी

वर्गिकी की ऐल्फ़ा प्रावस्था विश्लेषणात्मक है। ऐल्फ़ा वर्गिकी में जीवों को पहचाना जाता है, उन्हें नाम दिया जाता तथा उनका लक्षणीकरण (विशिष्ट लक्षणों को बताना) किया जाता है।

8.4.2 बीटा वर्गिकी

इस चरण को वृहतवर्गिकी अथवा संश्लेषण वर्गिकी कहते हैं। इस स्तर पर विभिन्न स्पीशीज़ को उच्चतरा एवं निम्नतर श्रेणियों के प्राकृतिक क्रम में व्यवस्थित अथवा वर्गीकृत किया जाता है। पहले पहल इस व्यवस्थापन को सर्वाधिक संख्या में उपलब्ध लक्षणों के आधार पर तैयार किया जाता है, अर्थात् यह एक पूर्णतः लक्षण (phenetic) वर्गीकरण है।

8.4.3 गामा वर्गिकी

वर्गिकी के इस चरण को जीवविज्ञानीय वर्गिकी भी कहते हैं और इसका संबंध स्पीशीज़ निर्माण के अध्ययन से है। इसमें प्रमुखतः अंतःस्पीशीज़ विभिन्नताओं का विश्लेषण किया जाता है जिससे आगे चलकर जीवविज्ञानीय स्पीशीज़ एवं उसकी विभिन्न उपस्पीशीज़ के उद्भव, उनके क्रमविकास एवं अभिनिर्धारण का अध्ययन होता है।

वर्गिकी की इन तीन प्रावस्थाओं को हालांकि आपके सामने आलग-अलग रखा समझाया गया है परन्तु वास्तव में व्यवहार की दृष्टि से वे स्पष्टतः अलग-अलग नहीं है और उनमें अतिव्याप्ति एवं एक दूसरे में जुड़ना-मिलना पाया जाता है।

प्राणियों के अधिसंख्य वर्गों में किए गए संवर्गिकी के अध्ययन ऐल्फ़ा एवं बीटा वर्गिकी की सीमा से आगे नहीं जा पाए हैं। केवल कीटों के कुछ आर्डरों जैसे कि लेपिडॉप्टेरा (शलभ, तितली आदि) में तथा कशेरुकियों में विशेषकर पक्षियों में ही गामा स्तर की वर्गिकी में कोई वास्तविक प्रगति हुई है।

बोध प्रश्न 2

नीचे दी गई सूचि में से उचित शब्दों द्वारा रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :

क) एक जीवविज्ञानी जो पक्षियों की किसी एक स्पीशीज़ को परखता, जांचता, पहचानता, वर्णन करता तथा उसका नामकरण करता है वर्गिकी के ---- स्तर पर कार्य कर रहा होता है।

ख) एक जीवविज्ञानी जो पक्षी की एक स्पीशीज़ का अभिनिर्धारण करता तथा उसे वर्गीकरण योजना में स्थान देता और यदि आवश्यक हुआ तो उसके वर्गीकरण में परिवर्तन करता है, तब यह व्यक्ति वर्गिकी के ------स्तर पर कार्य कर रहा होता है।

ग) एक जीव विज्ञानी जो पक्षियों के किसी एक वर्ग का इस उद्देश्य से अध्ययन कर रहा है कि उनमें पाया

जाने वाला जातिवृत्तीय संबंध पता चलाया जाए तब वह ——— स्तर पर कार्य कर रहा होता है।

8.5 नववर्गिकी

इससे पहले की इकाइयों में आपने सीखा कि जीवधारियों के अभिनिर्धारण में अधिसंख्य वर्गिकीविद् तुलनात्मक आकारिकी का उपयोग करते हैं। मगर उनके अभिनिर्धारण में अक्सर स्वयं आकारिकीय लक्षण पर्याप्त नहीं होते, और इसलिए आजकल वर्गिकीविदों को अन्य क्षेत्रों से भी आंकड़ें लेने पड़ते हैं ताकि उन्हें और अधिक सूचना मिलने में सहायता मिल सके।

नववर्गिकी अथवा संवर्गिकी अथवा जैवसंवर्गिकी का उद्देश्य जीवों का मात्र वर्णन करना, उनका अभिनिर्धारण करना तथा उन्हें सुविधाजनक श्रेणियों मे रखना ही नहीं है, वरन् उनके क्रमविकासीय इतिहासों तथा उनकी क्रियाविधियों का समझना भी है। इससे पहले के दृष्टिकोण मूलत: मात्र देखे गए अर्थात् आकारिकीय आंकड़ों पर ही आधारित होते थे जिनमें अंत:स्पीशीज़ अंतर ध्यान में नहीं रखे जाते थे। इस प्रकार अनेक स्पीशीज़ सिर्फ एक या कुछ ही नमूनों के आधार पर जानी गयी हैं। मगर हाल ही में किसी स्पीशीज़ के उपसमूहों जैसे कि समष्टियों तथा उपस्पीशीज़ पर बहुत ध्यान दिया गया है। पुरानी आकारिकीय स्पीशीज़ को आजकल जीवविज्ञानीय स्पीशीज़ कहा जाता है जिसमें साथ-साथ पारिस्थितिकीय, व्यवहारिकीय, आनुवंशिकीय तथा अन्य लक्षणों को भी शामिल किया गया होता है। इन सभी नए दृष्टिकोणों ने विभिन्न स्पीशीज़ की वास्तविक संरचना तथा उनके क्रमविकासीय स्थान के स्पष्टीकरण में बहुत योगदान दिया है तथा इनके द्वारा वर्गिकी की मूल प्रणाली में बहुत संशोधन हुआ है। मगर अधिसंख्य नए दृष्टिकोणों में अतिविशिष्ट विधियों की आवश्यकता होती है।

आजकल के कुछ अधिक महत्वपूर्ण दृष्टिकोणों का इस इकाई में संक्षेप में विवेचन किया गया है। इनमें से कुछ दृष्टिकोण अब भी विकसित होते जा रहे हैं और उनसे जो नए-नए आकड़े तथा नई-नई सूचनाएं मिलती जा रही हैं वे बड़ी ही रोचक हैं। तथापि आपको ध्यान में रखना चाहिए कि आज भी सबसे ज्यादा उपयोग में आने वाले लक्ष्ण आकारिकीय ही हैं क्योंकि ये सबसे ज्यादा आसानी से देखे समझे जा सकते हैं। इसके अतिरिक्त जब आप नई विधियों के विषय में पढ़ रहे होंगे तब आप अनुभव करेंगे कि मात्र किसी एक अकेली विधि से प्राप्त होने वाले आकड़ें हो सकते हैं जीवों को पहचान सकने में पर्याप्त न हो। वर्गिकीविदों का प्रयत्न होता है कि वे जहां तक हो सके अधिक से अधिक विधियों से आंकड़ें प्राप्त करें ताकि सही अभिनिर्धारण हो सके। इस प्रकार आज की वर्गिकी को प्राय: अधिकतर जैवसंवर्गिकी अथवा संवर्गिकी या क्रमविकासीय वर्गिकी अथवा नववर्गिकी कहते हैं क्योंकि इसमें उन स्पीशीज़ को पहचानने की प्रवृत्ति होती है जो एक ही पुर्वज से विकसित हुई होंगी एकमूलोद्भवी पूर्वजता (monophyletic ancestry)। पूर्वजता पर निकाले गए निष्कर्ष जीवधारियों में पायी जाने वाली समानताओं तथा असमानताओं पर आधारित होते हैं। ये समानताएं एवं असमानताएं मात्र आकारिकीय लक्षणों तक ही सीमित नहीं होती। इनमें व्यवहार, भ्रूणविज्ञानीय संरचनाओं, इलेक्ट्रॉन माइक्रोस्कोपी की सहायता से प्राप्त सूक्ष्म आकारिकीय तफसीलों, जैवरसायन, पारिस्थितिकी, कोशिका आनुवंशिकीय तथा संख्यिकीय आंकड़ों में पायी जाने वाली समानताएं तथा असमानताएं शामिल हैं।

8.6 वर्गिकी में इलेक्ट्रॉन माइक्रोस्कोपी

ऐसे आकारिकीय लक्षणों से जो कोरी आंखों से या फिर स्टीरियो माइक्रोस्कोपों से सरलता से देखे जा सकते हैं, जल्दी से अभिनिर्धारण हो जाता है और आज भी वर्गिकीय अध्ययनों में इन्हीं का प्रभुत्व है। इलेक्ट्रॉन माइक्रोस्कोप के आविष्कार से वर्गिकीविदों के लिए और भी ज्यादा संभव हो गया है कि वे विभिन्न अकारिकीय लक्षणों की परासंरचना से उपयोगी आंकड़ें प्राप्त कर सकें। ऐसा इसलिए कि जो आकारिकीय लक्षण पहले कोरी आंखों से अथवा प्रकाश-माइक्रोस्कोप से देखने पर एक ही जैसे लगते थे, अब इलेक्ट्रॉन माइक्रोस्कोप की सहायता से उनकी सूक्ष्म संरचना में स्पष्ट अंतर दिखायी पड़ने लगे हैं। इस प्रकार इस नयी अध्ययन विधि से नए-नए एवं अधिक विश्वसनीय लक्षणों की खोज होने लगी।

संवर्गिकी अध्ययनों में आजकल स्कैनिंग इलेक्ट्रॉन माइक्रोस्कोप (SEM) का व्यापक उपयोग हो रहा है (चित्र 8.1 क और 8.1ख)। इसका उपयोग अकशेरुकियों (invertebrates) और खास तौर से आर्थोपोडों के अध्ययन में अक्सर ही हो रहा है। ऐसा इसलिए क्योंकि कीटों, किलनियों, चिड़ियों तथा अन्य छोटे आर्थोपोडों में ऐसे अनेक सूक्ष्म लक्षण हैं जिन्हें केवल उच्च आवर्धन पर SEM द्वारा ही देखा जा सकता है।

जैसा कि आप जानते ही हैं प्रकाश माइक्रोस्कोप की तुलना में SEM में कहीं ज्यादा आवर्धन तथा रिजॉल्यूशन होता है। इसके अतिरिक्त उससे फोकस में अधिक गहराई प्राप्त हो सकती है, जो प्रकाश माइक्रोस्कोप की तुलना में लगभग 300 गुना अधिक होती है। इस प्रकार SEM के द्वारा देह-सतह का लगभग त्रिविम प्रतिबिंब प्राप्त होता है जो 50 से 10,000 x तक का हो सकता है।

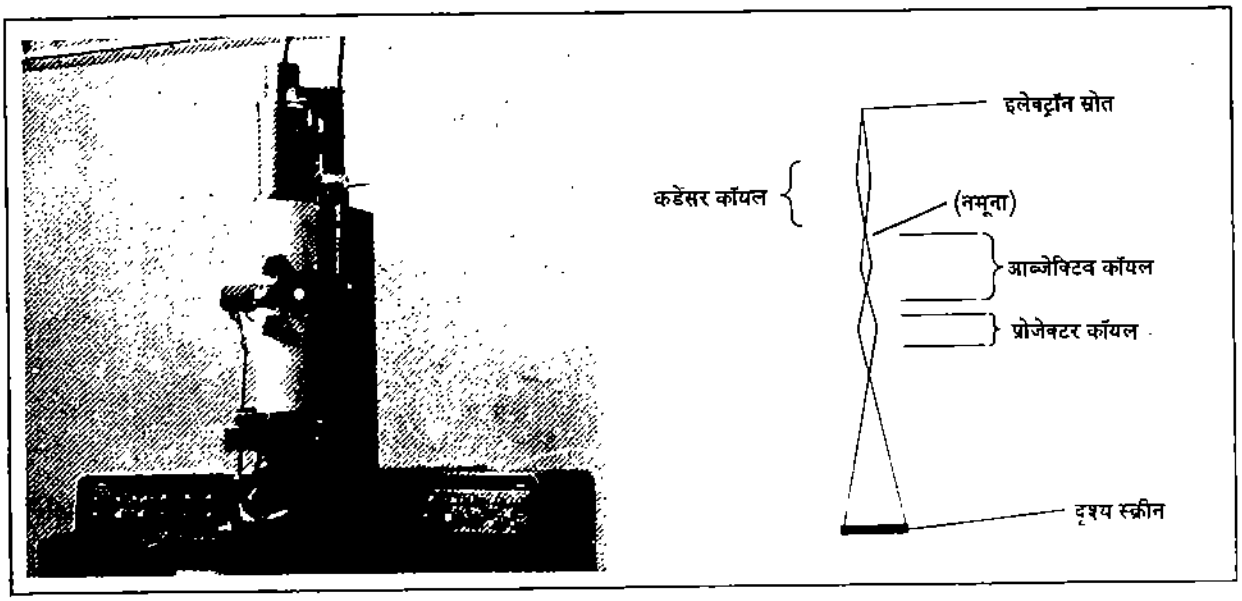

चित्र 8.1 : स्कैनिंग इलेक्ट्रॉन माइक्रोस्कोप का क) बाहरी दृश्य तथा ख) भीतरी दृश्य।

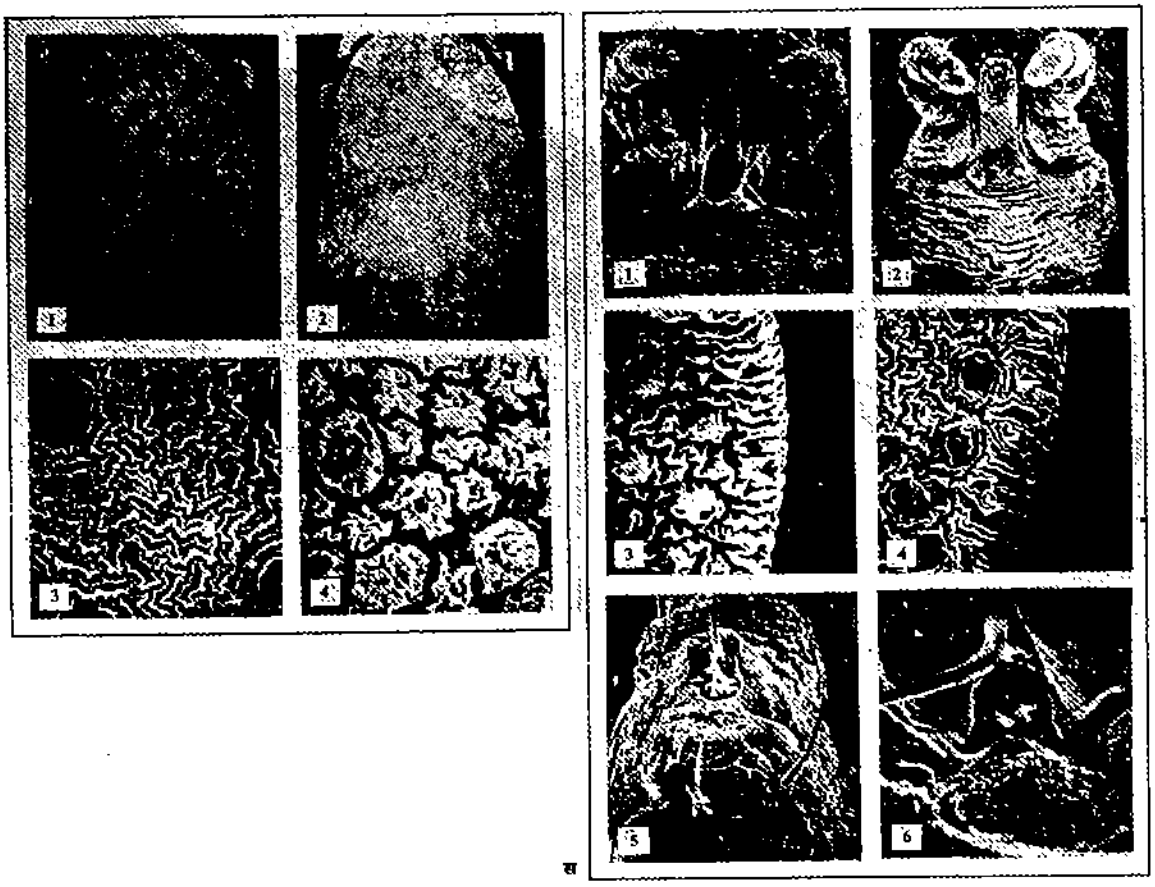

चित्र 8.2 : आरगस *(Argas)* सब मादा स्पीशीज के स्कैनिंग इलेक्ट्रॉन माइक्रोग्राफ क) पृष्ठ दृश्य —— 1. पोलोनिकस *(polonicus)*, 2. वलगैरिस *(vulgaris)* पश्च पृष्ठ अध्यावरण 3. मौरेली *(moreli)*, 4. मोनैक्स *(monachus)* ख) मुंडक अधर दृश्य —— 1. पोलोनिकस *(polonicus)*, 2. वलगैरिस *(vulgaris)* परिधीय रेखित क्षेत्र 3. डैली *(dalei)*, 4. मौरेली *(moreli)* हेलर अंग क्षेत्र (Haller's organ area), 5. पोलोनिकस *(polonicus)* 6. वलगैरिस *(vulgaris)*.

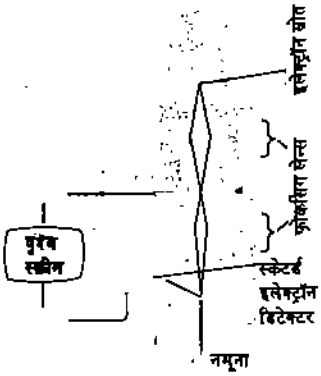

चित्र 8.3 : ट्रांसमिशन इलेक्ट्रॉन माइक्रोस्कोप
क) बाहरी दृश्य तथा
ख) भीतरी दृश्य।

स्कैनिंग इलेक्ट्रॉन माइक्रोस्कोप से, उदाहरण के लिए, कोमल चिंचड़ी (*Argas*) का जैवसंवर्गिकी अध्ययन किया गया है (चित्र 8.2 क तथा ख)। *आरगस (Argas)* में SEM द्वारा किए गए अध्ययनों से एक तरफ पुराने लक्षणों की ऐसी-ऐसी तफसीलें मिली हैं जिनकी कल्पना भी नहीं हो सकती थी, वहीं दूसरी तरफ नए लक्षणों का पता चला है, और इन दोनों के कारण नयी-नयी स्पीशीज़ की खोज संभव हुई है तथा द्विशाखी कुंजियों का बनाना संभव हुआ है।

इस प्रकार का कार्य अब भी अकशेरुकियों के अन्य वर्गों में किया जा रहा है तथा आशा है कि इनके परिणामस्वरूप अनेक स्पीशीज़ सम्मिश्रों को खोला जा सकेगा जिससे वर्गीकरण काफी हद तक सरल हो जाएगा।

आकारिकीय लक्षणों की सूक्ष्म तफसीलों का अध्ययन जिस एक अन्य प्रकार के माइक्रोस्कोप से किया जाता है वह है ट्रांसमिशन इलेक्ट्रान माइक्रोस्कोप (TEM) (चित्र 8.3 क तथा ख)। TEM में SEM की अपेक्षा अधिक आवर्धन होता है तथा इसे जीवों के अंगों के पतले भागों (thin sections), जीवों के अंडों तथा भ्रूणों के अथवा स्वयं संपूर्ण जीवों के अध्ययन में काम में लाया गया है। यह उन जीवों में बहुत ही ज्यादा उपयोगी पाया गया है जिनमें बहुत ही कम बाह्य सतही लक्षण पाए जाते हैं जैसे कि प्रोटोजोअनों में। उदाहरण के लिए, इनके द्वारा दो बहुत ही निकटत: संबंधित स्पीशीज़ *अमीबा (Amoeba)* तथा थीकाअमीबा *(Thecamoeba)* के अभिनिर्धारण में तथा *टरबेलेरिया (Turbellaria)* के प्लेनेरियनों की जैवसंवर्गिकी में सहायता मिली है। लेकिन TEM को अभी तक वर्गीकरण अध्ययनों में SEM की तुलना में कम उपयोग किया गया है।

TEM अध्ययनों से आर्थिक रूप में महत्वपूर्ण दो फल मक्खियों *डेकस ओली (Dacus olae)* तथा *सिरेटाइटस कैपीटेटा (Ceratitis capitata)* (डिप्टेरा: टेफ्रीरिटिड्डी) के अभिनिर्धारण में भी सहायता मिली है। इन स्पीशीज़ के अण्डों की आकृति एवं आकार में एक ऊपरी समानता दृष्टिगोचर होती है और इन्हें SEM के नीचे अध्ययन किये गए केवल इनके अग्र ध्रुव के लक्षण के आधार पर ही अलग किया जा सकता है (चित्र 8.3)। मगर TEM द्वारा अंडों के अध्ययन से इनके अंडों के कवचों में स्पष्ट अंतर दिखाई पड़ते हैं (चित्र 8.4)।

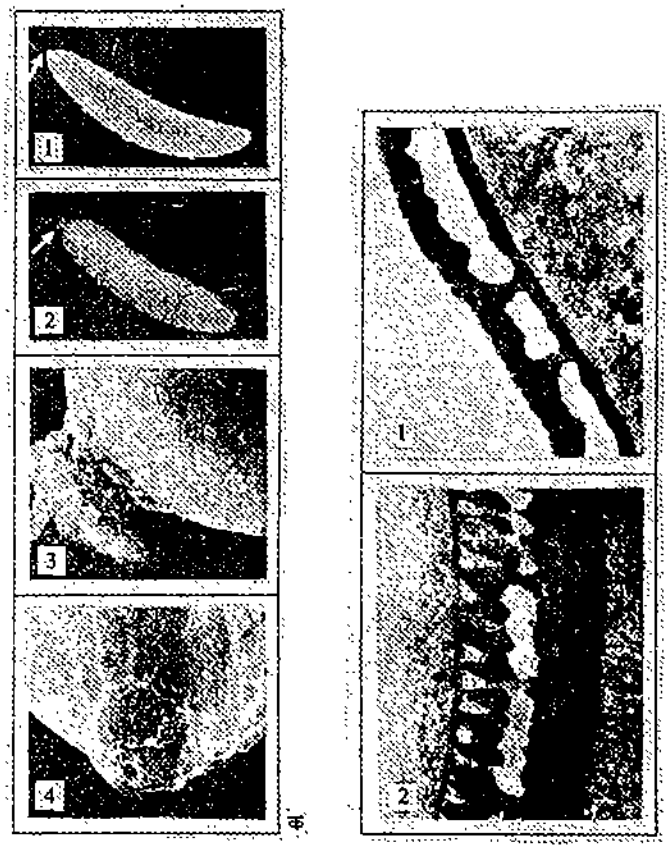

चित्र 8.4 : क) संपूर्ण अंडों के स्कैनिंग इलेक्ट्रॉन माइक्रोग्राफ 1. *सिरेटाइट्स कैपीटेटा* का अंडा, 2. *डेकस ओली* का अंडा तथा 3. और 4. में अंडों का अग्र ध्रुव तीर के निशान से दिखाया गया है —— 3. *डेकस ओली* तथा 4. *सिरेटाइट्स कैपीटेटा* ख) 1. *सिरेटाइट्स कैपीटेटा* तथा 2. *डेकस ओली* के अंडे के मुख्य पिंड के भागों के ट्रांसमिशन इलेक्ट्रॉन माइक्रोग्राफ।

8.7 वर्गिकी में भ्रूणविज्ञानीय विधि

प्राणियों की संवर्गिकी में मात्र व्यस्कों का अध्ययन काफी नहीं है। उनकी भ्रूण एवं बाल अवस्थाएं उनके

अभिनिर्धारण में अक्सर बहुत सहायक होती है, विशेषकर उन जीवधारियों में जिनमें स्पष्ट लार्वा अवस्था पाई जाती है जो निर्मोचन द्वारा एक दूसरे से पृथक् हुई होती है। इसके अतिरिक्त व्यस्कों तथा लार्वा दोनों के अध्ययन से उन जीवधारियों के बीच की दुविधा से बचाव हो जाता है जिनके व्यस्क तथा लार्वा आकारिकीय रूप में पूर्णत: अलग होते हैं। ऐसे मामलों में वर्गिकीय अध्ययन व्यस्कों के आकारिकीय लक्षणों तथा साथ ही साथ विविध युवा अवस्थाओं के सभी लक्षणों के पूर्ण योग पर भी आधारित होते हैं। अनेक प्राणि वर्गों के वर्गीकरण में उनकी अपरिपक्व अवस्थाओं के अध्ययन बहुत सहायता मिली है। अंडे की संरचना के उपयोग से *ऐनोफ़ेलीज़ मैक्युलिपेनिस (Anopheles maculipennis)* सम्मिश्र को अनेक सिबलिंग (sibling) समाभासी स्पीशीज़ में अलग-अलग कर देने में उपयोग किया गया है। *जीनस कैक्टोडीरा (Cactodera)* के सूत्रकृमि (नीमेटोड) में स्पीशीज़ का अभिनिर्धारण करते समय दूसरी युवा अवस्था के लक्षणों का भी अध्ययन किया गया है (चित्र 8.5)।

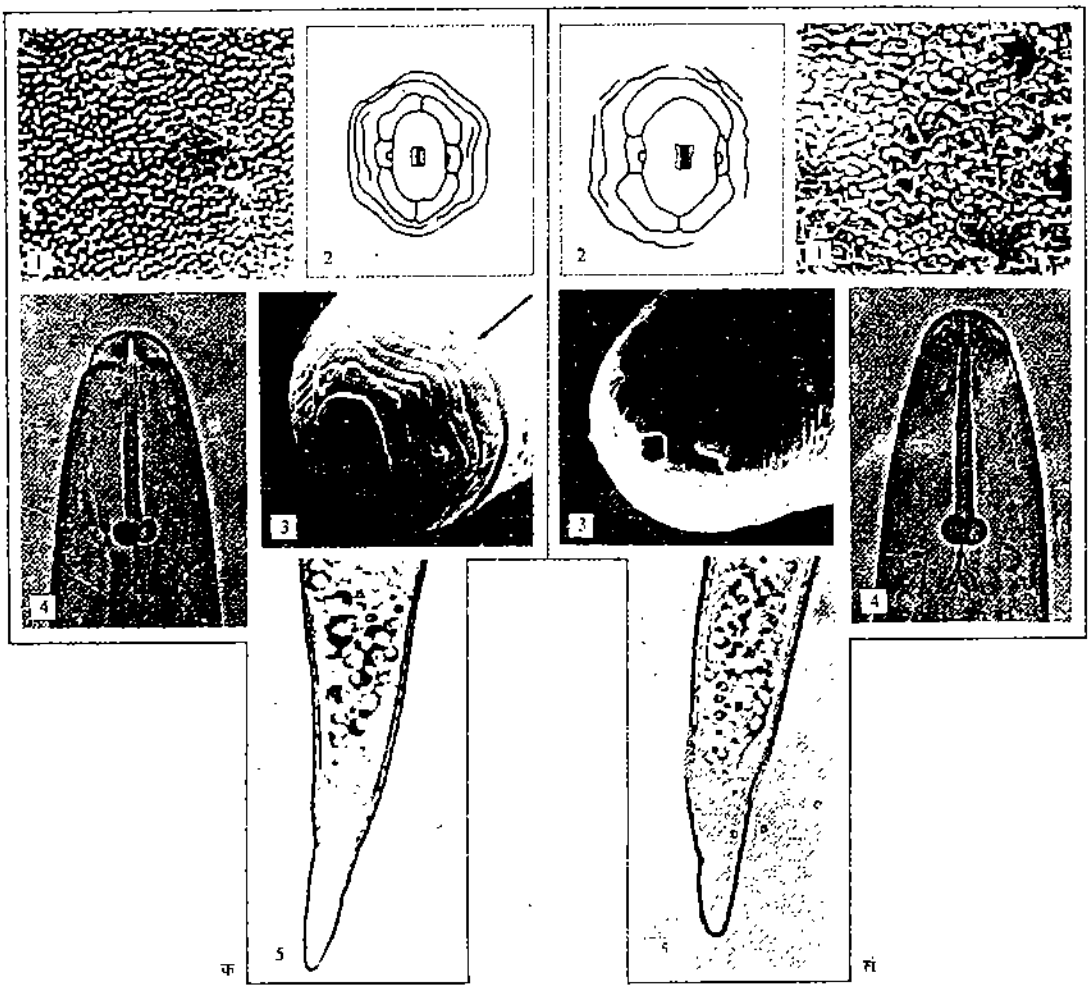

चित्र 8.5 : दो नेमोरोड स्पीशीज़ के जीनस *कैक्टोडीरा (Cactodera)* क) *क. मिलैरी (C. milleri)* और ख) *क. केकटाई (C. cacti)* में लार्वा स्वरूप अभिनिर्धारण के लिए प्रयोग किया गया है। (1) अंडे के बिंदुगत कवच के SEM (2) लार्वा मुख का रेखा चित्र, (3) लार्वा मुख का SEM चित्र, (4) लार्वा शिर का चित्र, (5) लार्वा पुनर्स्थिति।

भ्रूणविज्ञानीय अध्ययनों से उन प्राणि वर्गों की विभिन्न स्पीशीज़ के वर्गीकरण एवं पृथक्करण में भी सहायता मिली है जिनके आकारिकीय लक्षण अपेक्षाकृत कम विश्वसनीय हैं जैसे कि स्पंजों (sponges) में।

8.8 वर्गिकी में पारिस्थितिकीय विधि

आप पहले से ही जानते हैं कि वर्गीकरण में पारिस्थितिकीय आंकड़ों का उपयोग बहुत पहले अफ़्लातुन (प्लाटो) के समय से ही चला आ रहा है। अफ़्लातुन ने जीवधारियों के अभिनिर्धारण में जलीय, थलीय तथा वायवीय आवासों को लक्षणों के रूप में लिया था, मगर आगे चलकर अरस्तु ने प्राणियों के अभिनिर्धारण में इस प्रकार के लक्षणों पर अधिक बल दिया और उन्हें वर्गीकरण प्रणाली में भरपूर इस्तेमाल किया।

अन्य आवास में रहते हुए निकटत: संबंधित स्पीशीज़, कुछ विशेषकों में भिन्न होने पर भी अपने पारिस्थितिकीय स्वरूप में काफी सामान्य होते हैं।

आज संवर्गिकी में पारिस्थितकीय आंकड़ों को अक्सर इस्तेमाल किया जाता है, खास तौर से निकटत: संबंधित अथवा सिबलिंग (समाभासी) स्पीशीज़ के अभिनिर्धारण के मामलों में। वर्गिकी में पारिस्थितिकीय विधि इस

तथ्य पर आधारित है कि प्रत्येक स्पीशीज़ प्रकृति में अपना एक अलग ही निच (Niche) बनाए रखती है जो आहार-अभिरुचि, विविध भौतिक कारकों के प्रति प्रजनन सहनशीलताएं, आदि में अपनी निकटतम संबंधी स्पीशीज़ से अलग होती हैं। इस प्रकार जब कभी दो निकटत: संबंधित स्पीशीज़ एक ही समान आवास में साथ-साथ रह रही हों तब वे अपने पारिस्थितिकीय स्पीशीज़ लक्षणों, जैसे कि आहार-अभिरुचि, आदि अर्थात् निच में अंतर लाकर उस अंतरास्पीशीज़ प्रतिस्पर्धा से बचती है जो घातक हो सकता है।

संवर्गिकी में पारिस्थितिकीय आंकड़ों से अनेक प्राणी स्पीशीज़ के निर्धारण में सहायता मिली है। उदाहरण के लिए, इसे *Drosophila (ड्रासोफिला)* की दो स्पीशीज़ *D. mulleri (मुलैरी)* तथा *D. aldrichi (आल्डरीची)* के अभिनिर्धारण में इस्तेमाल किया गया है, ये दोनों स्पीशीज़ एक ही आवास में रहती हैं, और उनका यह आवास है एक केक्टस *(Opuntia lindheimeri)* ओपनशिया लिन्डेमेरि के फलों का सड़ता गलता गूदा। इन दो स्पीशीज़ को कुछ खास यीस्टों तथा बेक्टीरिया के प्रति विशिष्ट अभिरुचि के आधार पर पृथक् किया जाता है। इसी प्रकार से *ऐनाफ़ेलीज़ मैक्यूलिपैनिस* के सम्मिश्र स्पीशीज़ में विभाजित किया गया है, जैसा कि आप सारणी 8.1 में देख सकते हैं।

सारणी 8.1 : इसमें पारिस्थितिकीय आंकड़ों के आधार पर *Anopheles maculipennis* के सम्मिश्र को छ: सिबलिंग (समभासी) स्पीशीज़ में विभाजित करके दिखाया है।

	स्पीशीज़	जल का प्रकार	आवास	शीतनिष्क्रियता
1.	*atroparrus* (ऐट्रोपेरस)	न्यूनखरा	ठंडा जल	नहीं
2.	*labranchiae* (लैब्रेनकी)	न्यूनखरा	अधिकतर उष्ण जल	नहीं
3.	*maculipennis* (मैक्युलिपेनिस)	अलवण जल	ठंडा बहता जल	होती है
4.	*melanoon* (मेलानून)	अलवण जल	धान के खेत	नहीं
5.	*messea* (मैसी)	अलवण जल	ठंडा खड़ा जल	होती है
6.	*saccharovi* (सैकारोवी)	प्राय: न्यूनखरा	उथला खड़ा जल	नहीं

8.9 वर्गिकी में व्यवहारविज्ञान विधि

प्राणियों में, खासतौर से निकटत: संबंधित स्पीशीज़ के अभिनिर्धारण में लक्षणों का उपयोग अपेक्षाकृत नया है, मगर अत्यंत ही लाभकारी है। अन्य लक्षणों की तरह व्यवहार लक्षण भी आनुवंशिकत: निर्धारित होते हैं और इसलिए वे एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में चलते जाते हैं। साथ ही इनकी एक महत्वपूर्ण भूमिका तो जनन पृथक्करण क्रियाविधि में है और दूसरी नए अनुकूलनों के प्रारंभ करने में भी। यही कारण है कि इन्हीं कारकों की वजह से व्यवहारपरक लक्षणों को वर्गिकीय दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण माना जाता है और इन्हें प्राय: अन्य विधियों के साथ-साथ जोड़कर इस्तेमाल किया जाता है।

कप्राणि संवर्गिकी में उपयोग किए जाने वाले कुछ महत्वपूर्ण व्यवहार लक्षण इस प्रकार हैं — क) ध्वनि उत्पादन, ख) जीव संदीप्ति, ग) अन्य व्यवहारपरक गतिविधियां।

भिन्न मैथुन स्वरों के परिणामस्वरूप ऋतु, काल आदि के संदर्भ में विभिन्न स्वभाव बन जाते हैं जिस से दर्जन पृथक्करण पैदा होता है।

क) ध्वनि उत्पादन (sound production): अभिनिर्धारण में सर्वाधिक उपयोग किया जाने वाला व्यवहार लक्षण विविध स्पीशीज़ द्वारा पैदा होने वाली ध्वनि है। ऐसा इसलिए देखा गया है कि विभिन्न प्राणियों की आवाजों के अथवा उनके मैथुन स्वरों के ध्वनि नमूने जब स्पेक्ट्रोग्रामों (spectograms) अथवा सोनोग्रामों (sonograms) पर रिकार्ड किए गए तब उन्हें प्रत्येक स्पीशीज़ के लिए अलग ही पाया गया। मैथुन स्वरों की अद्वितीयता (सबसे अलग होने की विशिष्टता) की स्पीशीज़ निर्माण अथवा पृथक्करण क्रियाविधि में एक महत्वपूर्ण भूमिका है। ऐसा इस आधार पर संभव होता है कि किसी एक विशिष्ट प्राणि स्पीशीज़ की मादाएं केवल अपनी ही स्पीशीज़ के नरों के प्रणय अथवा प्रजनन स्वरों की ओर आकर्षित होती हैं तथा उनके प्रति अनुक्रिया करती हैं। इस प्रकार ये मादाएं अन्य स्पीशीज़ के साथ प्रजनन से बचती है। इसी विशिष्टता के कारण पक्षियों के मैथुन-स्वरों के स्पेक्ट्रोग्रामों से निकटत: संबंधित स्पीशीज़ के अभिनिर्धारण में बहुत सहायता मिली है (चित्र 8.6)।

कीटों (Insects) की ध्वनियों को रिकार्ड करने के लिए प्राय: एक ऐसी ही युक्ति रिकार्डिंग ओसिलिस्कोप (oscilloscope) काम में लायी जाती है। ऐसी रिकार्डिंगों से *ग्राइलस* (Gryllus) (जंगली झींगुर) की विभिन्न समाभासी स्पीशीज़ को उनकी विशिष्ट आवाजों के आधार पर अभिनिर्धारित करने में बहुत सहायता मिली है

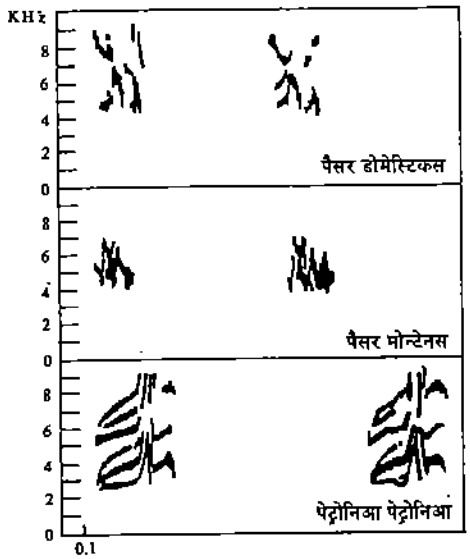

चित्र 8.6 : पक्षियों की तीन स्पीशीज़ के ध्वनि स्पेक्ट्रोग्राम (Thielcke 1964 के आधार पर)।

(चित्र 8.7)। ध्वनि के नमूनों को अन्य प्राणियों के मामलें में भी इस्तेमाल किया जाता है जैसे कि कुछ अन्य कीटों में, ऐम्फीबियनों में, तथा स्तनियों आदि में।

एक ही स्पीशीज़ के अलग-अलग पक्षियों के सोनोग्रामों में भी अंतर दिखाई पड़ते हैं। इसलिए सोनोग्रामों की वर्गिकी को बहुत ही ध्यान से इस्तेमाल में लाया जाता है, इसमें स्थानीय व्यष्टिगत विभिन्नता को ध्यान में रखा जाता है।

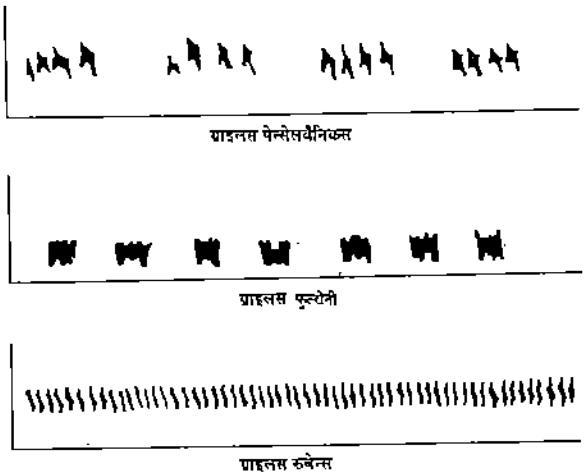

चित्र 8.7 : *ग्राइलस* (जंगली झींगुर) की तीन स्पीशीज़ के ध्वनि स्पेक्ट्रोग्राम अथवा सोनोग्राम।

ख) जीव संदीप्ति (Bioluminescence): जिन प्राणियों में जीव संदीप्ति होती है उनमें जीव संदीप्ति को वर्गिकी में इस्तेमाल किया जाता है। उदाहरण के लिए, इसे जुगनू (*Photuris*) की समाभासी स्पीशीज़ के अभिनिर्धारण में इस्तेमाल किया गया है (चित्र 8.8)।

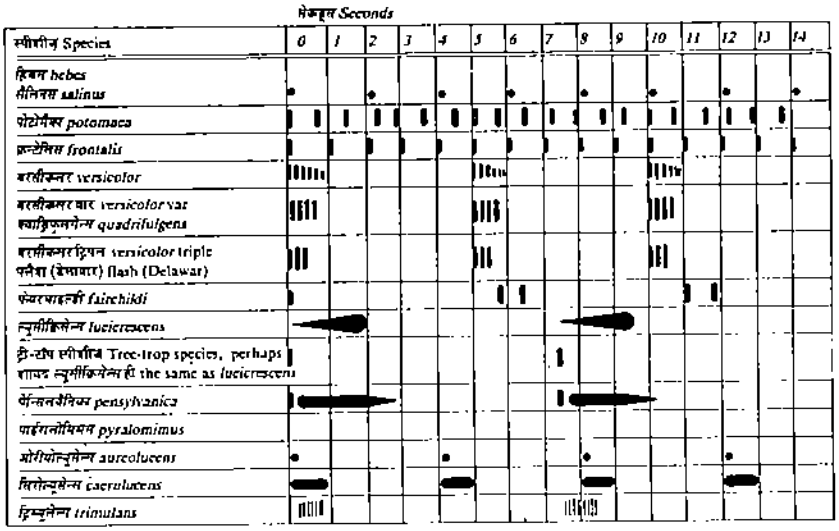

चित्र 8.8 : फोटूरस (*Photuris*) जीनस के जुगनुओं की कुछ स्पीशीज़ में प्रकाश की कौंध-चमकें।

पहले *ओड्यूरस* की जो केवल 3 स्पीशीज़ कही जाती थी वे अब जीव संदीप्ति के आधार पर 18 समाभासी स्पीशीज़ में पहचानी जा सकी हैं। इस जीव संदीप्ति में जिन बातों का अध्ययन किया गया है वे हैं — प्रकाश की आवृत्ति, तीव्रता, व्यष्टिगत कौंध का तथा उसकी आकृति, कौंधों के क्रम जो छोटी या लम्बी अवधियों के लिए होती है जो स्थिर तीव्रता की हो सकती है या जो बढ़ती या घटती रहती है। जीव संदीप्ति के आधार पर विभिन्न स्पीशीज़ को अलग-अलग कर देने के बाद वांछित आवास, प्रजनन-ऋतुओं तथा देह-रंग में भी अंतर पता चले हैं।

ग) अन्य व्यवहारपरक गतिविधियां: संवर्गिकी में व्यवहार तथा गतिविधियों के तुलनात्मक अध्ययनों को भी जीवों के अभिनिर्धारण में इस्तेमाल किया जाता है। फिडलर केकड़े (fidler crab- *Uca*) के व्यवहार के तुलनात्मक अध्ययन से पता चलता है कि उसके नर-प्राणी अपने दाहिने कीलिपीडों (Chelipads) को एक विशिष्ट तरीके से उठा कर दर्शाते हैं। इसका यह अर्थ हुआ कि प्रत्येक स्पीशीज़ के नरों में एक विशिष्ट तरीके से कीलिपीड हिलाने, दर्शाने का नमूना (पैटर्न) पाया जाता है। इस विशिष्ट प्रदर्शन-लक्षण से निकट-संबंध वाली स्पीशीज़ को दूर से ही पहचान लेना संभव हो गया है।

घोंसला बनाने की क्रिया में व्यवहारपरक गतिविधि तथा बन कर तैयार हुए घोंसले के स्वरूप को भी संवर्गिकी के उपयोग में लाया गया है तथा यह आधार न केवल पक्षियों के अभिनिर्धारण में ही उपयोगी पाया गया वरन् कीटों तथा अन्य प्राणियों में भी बहुत उपयोगी पाया गया है।

उदाहरण के लिए, इस विधि को जीनस *एनथीडियम (Anthidium)* तथा जीनस *डाइएनथीडियम (Dianthidium)* की दो मधुमक्खियों को जो आकारिकीय दृष्टि से समान थी, पृथक् करने में इस्तेमाल किया गया है। इन दो स्पीशीज़ का अभिनिर्धारण इनके द्वारा अपने-अपने छत्तों के निर्माण में काम में लाए जाने वाले पदार्थ के प्रकार पर किया गया है। *एनथीडियम* अपने छत्ते के बनाने में पौधों के रेशे इस्तेमाल करती हैं जबकि *डाईएनथीडियम* पौधों के रेजिन (resin) (स्रावों) का तथा रेत या कंकड़ों का इस्तेमाल करती है।

संवर्गिकी में जिस एक अन्य व्यवहार पर लक्षण का उपयोग किया गया है वह है बनाए गए जाले का प्रकार और उसकी प्रकृति। यह लक्षण किलनियों (mites), केटरपिलरों (caterpillars) तथा मकड़ियों (spiders) के अभिनिर्धारण में बहुत ही उपयोगी सिद्ध हुआ है। इस प्रकार व्यवहार आंकड़ों को अन्य विधियों से प्राप्त वर्गिकीय सूचना के साथ जोड़कर अक्सर संवर्गिकी में इस्तेमाल किया गया है।

बोध प्रश्न 3

कॉलम I में दी गई बातों को कॉलम II में दी गई बातों से मिलाइए। अपने उत्तरों को दिए गए कोष्ठकों के भीतर लिखिए तथा उन्हे इस इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से मिला कर जांचिए।

कॉलम I		कॉलम II
1. पारिस्थितिकीय विधि	क)	मेढ़कों की दो स्पीशीज़ की मैथुन ऋतुओं को देखा गया और पता चला कि दोनों की प्रजनन ऋतुएं अलग-अलग हैं।
2. भ्रूणविज्ञान	ख)	दो अति समान नीमेटोडों के शीर्ष प्रदेश के परासंरचनात्मक अध्ययनों से उनको दो अलग-अलग स्पीशीज़ में रखने में सहायता मिलती है।
3. व्यवहारविज्ञान विधि	ग)	जुगनुओं की दो बहुत ही समान स्पीशीज़ को उनकी बहुत ही स्पष्ट अलग-अलग आहार अभिरुचियों के आधार पर पृथक् किया गया।
4. इलेक्ट्रान माइक्रोस्कोपी	घ)	नीमटोड़ों की दो बहुत समान स्पीशीज़ को उनकी बाल अवस्थाओं के आधार पर पृथक् किया गया है।

8.10 वर्गिकी में कोशिकाविज्ञानीय विधि

कोशिकावर्गिकी में कोशिका स्तर पर वर्गिकी के सभी पहलुओं को लिया जाता है। इसमें संरचनात्मक,

आनुवांशिक तथा जैव रसायन संबंधी पहलुओं को लिया जाता है एवं इसके उनके द्वारा जीवधारियों के बीच की आनुवंशिक बंधुता की तुलना की जाती है। संवर्गिकी में सामान्यत: उपयोग में लाए जाने वाले आंकड़े मूलत: दो प्रकार के होते हैं :

1) DNA संकरण

2) केंन्द्रक संबंधी अध्ययन (केरियोटाइप)

8.10.1 DNA संकरण

इस तकनीक के द्वारा दो जीवों के बीच की आनुवंशिक बंधुता की तुलना की जाती है। इन अध्ययनों में दोनों जीवों का डी ऑक्साराइबो-न्यूक्लिइक अम्ल (DNA) निकाल लिया जाता है। उसके बाद दोनों के DNA सूत्रों को अलग-अलग करके, प्रत्येक जीव के DNA का एकल सूत्र लेकर उसे दूसरे जीव के सूत्र के साथ पात्र में संपर्क में लाया जाता है ताकि वे परस्पर जुड़ सकें यानि उनमें संकरण हो सके।

संकरण जिस मात्रा में होता है उससे संकेत मिल जाता है कि वे दो जीवधारी कितने निकट हैं अथवा कितने दूर हैं। सारणी 8.2 में कुछ कशेरुकियों के बीच की आनुवंशिक समानताओं का अनुमान लगाने में इस तकनीक के उपयोग को दर्शाया गया है।

सारणी 8.2 : कुछ कशेरुकियों के बीच की आनुवंशिक समानताएं जैसी कि DNA संकरण की तकनीक से पता चली हैं।

तुलना किए गए टेक्सान	DNA के क्रमों में अंतर की प्रतिशतता
घरेलू चूहा — नार्वे का चूहा	20.0
गाय — सुअर	20.0
गाय — भेड़	7.5
मानव — चिम्पैंजी	1.6
मानव — गिब्बन	3.5
मानव — रीसस बंदर	5.5
मानव — गलागो बंदर	28.0

वर्गिकी समस्याओं के समाधान निकालने में DNA के मेल मिलाने अथवा संकरण की तकनीक की महान् संभावनाएं हैं। परन्तु इस विधि द्वारा हर प्रकार की क्रमविकास संबंधी अथवा जातिवृत्तीय समस्याओं के समाधान निकाल सकना कठिन है क्योंकि अनेक प्राणियों में फॉसिल (fossil) रिकार्ड अधूरा है।

8.10.2 केन्द्रक संबंधी अध्ययन

जैवसंवर्गिकी में मुख्यत: दो प्रकार के केन्द्रक विज्ञान संबंधी आंकड़ें इस्तेमाल होते हैं : 1) केरियोटाइप अर्थात् क्रोनोसोमों की संख्या एवं उनकी स्वरूपव्यवस्था और 2) मेटाफेज (metaphase) पर उनकी संरचना।

गुणसूत्र प्ररूप (केरियोटाइप)

प्राणियों की वर्गिकी में केरियोटाइप अर्थात् क्रोमोसोमों (गुणसूत्रों) की संख्या एवं उनकी संरचना ही वे दो चीजें हैं जिनका अकेले-अकेले अथवा दोनों का एक साथ उपयोग करके वर्गीकरण अध्ययन किया जाता है।

जैसा कि आप जानते हैं क्रोमोसोम संख्या प्रत्येक स्पीशीज में तो स्थिर होती है मगर एक ही जीनस की अलग-अलग स्पीशीज में भिन्न हो सकती है। प्राणियों में क्रोमोसोम संख्या *पारऐसकैरिस इक्वोरम वार युनिवैलन्स (Parascaris equorum var univalens)* में डिप्लॉइड 2 से लेकर लाइकीनिड तितली *(Lysandra atlantica*— लाइसैन्ड्रा एटलानटिका) में 446 तक के परास में भिन्न पायी जाती है। फिर भी अधिसंख्य प्राणियों में यह 12-60 क्रोमोसोम हुआ करते हैं।

जातिवृत्तीय संबंधों का पहचानने में क्रोमोसोम संख्या पर्याप्त नहीं होती मगर कुछ मामलों में जैसे कि मार्सुपियलों की फेमिली डाइडेल्फिडी *(Didelphidae)* ओपोसमों में ऐसा संभव हुआ है। इस फेमिली की जीनस *मोनोडेल्फिस (Monodelphis)* की विभिन्न स्पीशीज़ में क्रोमोसोमों की डिप्लॉइड संख्या 18 तथा *डाईडेल्फिस (Didelphis)* की विभिन्न स्पीशीज़ में क्रोमोसोमों की डिप्लॉइड संख्या 22 पायी गयी है।

इसी प्रकार ट्राइकोप्टेरा ऑर्डर में मात्र क्रोमोसोम संख्या के आधार पर ही इसकी विविध फेमिलियों के जातिवृत्तीय संबधों का पता लगा लिया गया है जैसा कि आप चित्र 8.9 में देख सकते हैं।

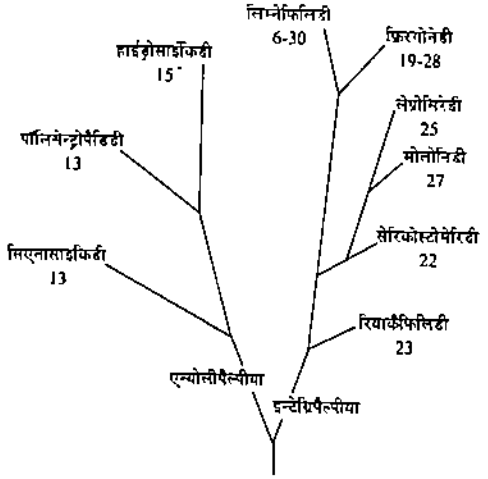

चित्र 8.9 : ट्राइकोप्टेरा की फेमिलियों के जातिवृत्त के सम्मुख क्रोमोसोम संख्याएं अंकित की गई हैं। (Kiauta, 1967)

जैसा कि हमने पहले ही कहा है अधिसंख्य मामलों में जीवों को पहचानने में मात्र क्रोमोसोम संख्या पर्याप्त नहीं होती। ऐसा इसलिए कि एक ही जीनस की अलग-अलग स्पीशीज़ में अथवा विभिन्न जीनसों में हो सकता है कि क्रोमोसोम संख्या एक ही हो। ऐसे मामलों में क्रोमोसोमों की संरचना भी महत्वपूर्ण बन जाती है। इसका कारण यह है कि क्रोमोसोमों की संख्या एक ही होते हुए भी उनकी संरचना भिन्न हो सकती हैं। अत: अधिसंख्य प्राणियों के अभिनिर्धारण में प्राय: केरियोटाइप (Karyotype) ही अधिक उपयोग में आता है। जैसा कि आप जानते हैं केरियोटाइप में अध्ययन किए जाने वाले लक्षणों में ये तीन चीजें आती हैं: हर अलग-अलग क्रोमोसोम की माप, संट्रोमीयर (centromere) का स्थान तथा द्वितीयक सकीर्णन (secondary constriction) का होना या न होना।

ये सभी लक्षण महत्वपूर्ण हैं क्योंकि प्रत्येक क्रोमोसोम की एक अपेक्षाकृत स्थिर लंबाई तथा उसमें एक विशिष्ट सेंट्रोमीयर स्थान होता है, और साथ ही द्वितीयक संकीर्णन का होना या न होना भी काफी स्थिर है।

जीनस *मारमोस (Marmos)* की विभिन्न स्पीशीज़ में क्रोमोसोम में सेंट्रोमीयर (गुणसूत्र बिन्दु) की स्थिति में पाए जाने वाले अंतरों से वर्गीकरण में मदद मिली है। *M .robinsoni (मारमोस रोबिनसनी)* में यह स्थिति मेट्रासेंट्रिक (मध्यकेन्द्री), *M. murine* (मारमोस म्यूरीन) में सबमेटासेंट्रिक (उपमध्य केन्द्री), तथा *M. alstoni (मारमोस एलस्टोनी)* में एक्रोसेंट्रिक (अग्रबिन्दुक) होती है (चित्र 8.10)।

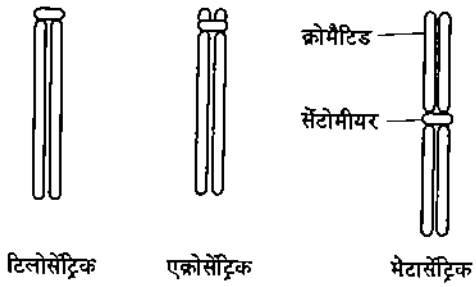

चित्र 8.10 : क्रोमोसोम में भिन्न गुणसूत्रबिंदु स्थिति दिखाई गई है।

हाल ही में कोशिकाविज्ञान में उन्नत तकनीकों के द्वारा संभव हो सका है कि पक्षियों, स्तनियों तथा कीटों (लैपिडाप्टेरा) जैसे कठिन प्राणि-वर्गों में काम किया जा सकता है। इसके द्वारा स्तनियों की एक हज़ार स्पीशीज़, मछलियों की, उभयचर ऐम्फीबियनों (उभयचर) रेप्टाइलों (सरीसृप), उभयचर तथा पक्षियों की कई सौ स्पीशीज़ में अधिक विश्वसनीय केरियोटाइप प्राप्त हो पाएं हैं। साथ ही, स्तनियों, यूरीडेलों, तथा कीटों के कई स्पीशीज़ सम्मिश्रों को भी खोला जा सका है। चित्र 8.11 में कर्णकीट (ईअरविंग), (जीनस *(Labidura) – लेबिड्यूरा*) की दो पर्यायनामी स्पीशीज़ को केरियोटाइप के आधार पर विभेदित किया गया है। इसी प्रकार केरियोटाइपों के अध्ययनों से फल मक्खी की विभिन्न स्पीशीज़ (*ड्रिप्टेरा टेफ्रिटीडी*) के अभिनिर्धारण में भी मदद मिली है (चित्र 8.12)। इस प्रकार आप देख सकते हैं कि प्राणि-संवर्गिकी में

कैरियोटाइपों के उपयोग से जीनोमीकरण में किस प्रकार मदद मिलती है। परंतु ध्यान रहे कि अनेक जीनसों की स्पीशीज़ में उनके केरियोटाइपों में थोड़े, न के बराबर ही या सरलता से न दिखाये जा सकने वाले अंतर पाए जाते हैं। उदाहरण के लिए, टिड्डों में *(एक्रिडिडी)* (2n = 23) एक्रोसेंट्रिक, *(पेम्फेगिडि)* (2n = 19) एक्रोसेंट्रिक और पाइग्मेगोमीफ्रिडो (2n = 19) एक्रोसेंट्रिक में भारी समानता पायी जाती है।

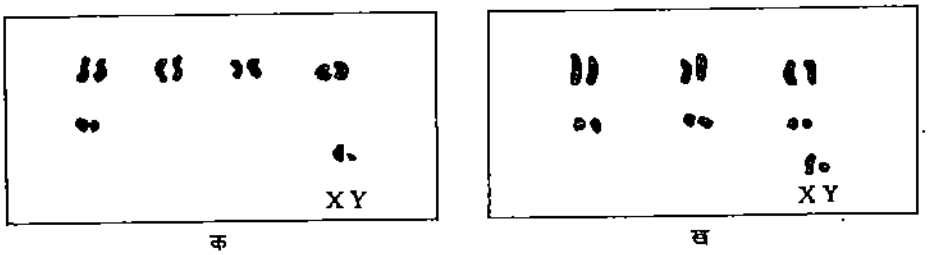

क ख

चित्र 8.11 : नर केरियोटाइप : क) *लैबिड्यूरा रिपेरिया;* ख) *लैबिड्यूरा बेंगालेन्सिस*

इन बातों के अतिरिक्त कुछ प्राणी वर्गों में यह भी देखा गया है कि समस्ती लंबी क्रमविकासीय अवस्थाओं में उनका केरियोटाइप काफी कुछ स्थिर रह चुका है जबकि अन्य वर्गों में, यहां तक कि निकटत: संबंधित विभिन्न स्पीशीज़ में भी इसमें स्पष्ट परिवर्तन हुए हैं। उदाहरण के लिए ओडोनेटा (Odonata) तथा डिप्टेरा (Diptera) तथा कोलियोप्टोरा (Coleoptera) वर्गपंखी गुण जैसे कीटों में क्रोमोसोम सख्या काफी स्थिर रही है जबकि लेपिडाप्टेरा (Lepidaptera) तथा ट्रिकोप्टेरा (Trichoptera) जैसे कीटों में तथा बिच्छुओं एवं मछलियों में इसमें स्पष्ट विभिन्नताएं पायी गयी हैं।

इसके साथ-साथ अनेक निकटत: संबंधित एवं बहुरूपी स्पीशीज़ भी बहुत मात्रा में केरियोटाइप विभिन्नता दर्शा सकती हैं जबकि सुस्पष्ट तथा जननत: पृथक् स्पीशीज़ में हो सकता है। कि बहुत ही समान केरियोटाइप हों और उनमें केवल जीनों (genes) में ही भिन्नता हो सकती है।

इन अपवादों से आपको ज्ञात हो जाना चाहिए कि केवल केरियोटाइप आंकड़ों से ही अभिनिर्धारण नहीं किया जा सकता। इनका इस्तेमाल अन्य वर्गिकीय लक्षणों के साथ जोड़ कर ही करना पड़ेगा।

बोध प्रश्न 4

एक जीवविज्ञानी ने दो प्राणियों के केरियोटाइपों का अध्ययन किया। उसे पता चला कि दोनों का केरियोटाइप एक ही है और निष्कर्ष निकाला कि दोनों प्राणी एक ही स्पीशीज़ में आते हैं, टिप्पणी कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

8.11 वर्गिकी में जैवरसायन विधि

प्राणियों की संवर्गिकी में जीवों के अभिनिर्धारण में और साथ ही साथ उनके परस्पर संबंधों का पता लगाने के काम में तुलनात्मक जैवरसायन का अधिकाधिक उपयोग किया जा रहा है। ऐसा इसलिए कि कभी-कभी पहले वर्णन किए गए तरीकों से समान जीवधारियों में विभेद कर पाना असंभव हो जाता है। ऐसे मामलों में जीवों के रासायनिक पदार्थों की तुलना करके अभिनिर्धारण करना संभव हो सकता है।

इस विधि में वर्गिकीविद् अभिनिर्धारण किए जाने वाले जीवों की जैवरसायनिक संघटनाओं में असमानताओं तथा समानताओं का अध्ययन करता है। ऐसे अभिनिर्धारण में वह वर्गिकीविद् जैवरसायनिक आंकड़ों का उपयोग करता है, इसमें वह विभिन्न प्राणि स्पीशीज़ में एक ही कार्य करने वाले यौगिकों के वर्ग की तुलना करता है। इस तुलना में वह दो तरह से देखता है, एक तो यौगिकों के जैवरसायनिक गुणधर्म पता चला कर और दूसरे शरीर में इन यौगिकों के अलग-अलग अंगों में वितरण का पता चला कर।

अधिकतर मामलों में जिन यौगिकों का अध्ययन किया गया है वे प्रोटीन, ऐमीनों अम्ल तथा पेप्टाइड है। परिणामत: वर्गिकी में जैवरसायनिक अध्ययनों को प्राय: प्रोटीन वर्गिकी ही कहा जाता है।

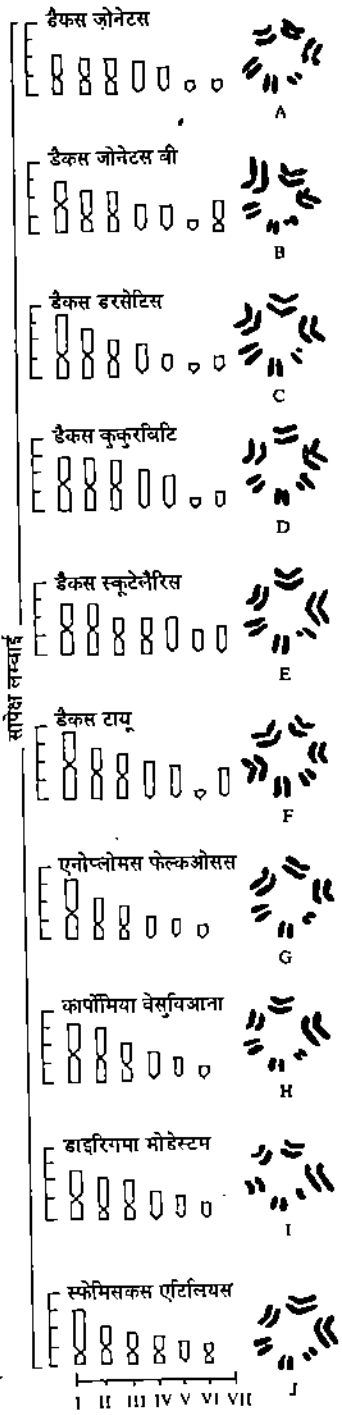

चित्र 8.12 : क) कुछ फल मक्खियों की स्पीशीज़ में इडियोग्रामों का आरेखीय निरूपण तथा ख) उनके साथ में दिए गए केरियोटाइप।

पहले पहल जैवरसायनिक अध्ययन फेमिलियों के स्तर से ऊपर के टेक्सान में किए गए थे।

मगर कभी-कभी गैर प्रोटीन यौगिक भी रसोवर्गिकी में इस्तेमाल किए गए हैं। उदाहरण के लिए *प्राइमेट* रक्त, मूत्र तथा पित्त लवणों में विभिन्न फास्फेजेनों, इंडोलों तथा इमिडोज़ोलों के वितरण पर अध्ययन किए गए हैं, हालांकि जैवरसायनिक वर्गिकी में मूल रूप में प्रोटीनों को ही लिया जाता है।

इस अध्ययन में विभिन्न प्राणियों के भीतर पाए जाने वाले विभिन्न प्रोटीनों की मात्रा में अंतर देखे जाते हैं और इससे भी ज्यादा महत्वपूर्ण है प्रोटीनों के विभिन्न रचक ऐमीनों एसिडों की मात्राओं के अंतरों का पता लगाना।

वर्गिकी समस्या को सुलझाने में मात्रात्मक विश्लेषण किस प्रकार सहायक होता है इसका एक उदाहरण पक्षियों में देखा जा सकता है (चित्र 8.13)। इसमें पक्षियों के विभिन्न आर्डरों के जातिवृतीय संबंधों को ऐस्कॉर्बिक एसिड के मात्रात्मक विश्लेषण से पता चलाया गया, यह एसिड कुछ पक्षियों के गुर्दों में बनता है, कुछ में यकृत में और कुछ में गुर्दे तथा यकृत दोनों में, और कुछ में तो दोनों में से किसी में भी नहीं बनता। वर्गिकीविदों द्वारा किए गए विश्लेषण से पता चला है कि पूर्वज प्रकार के एंजाइम तंत्र शुरू-शुरू में गुर्दों से ही संबंधित थे पर बाद में वे यकृत में स्थानांतरित होकर अंततः कुछ अधिक विकसित पैसेरीन (गौरिया वर्ग) पक्षियों में पूर्णतः विलीन हो गए।

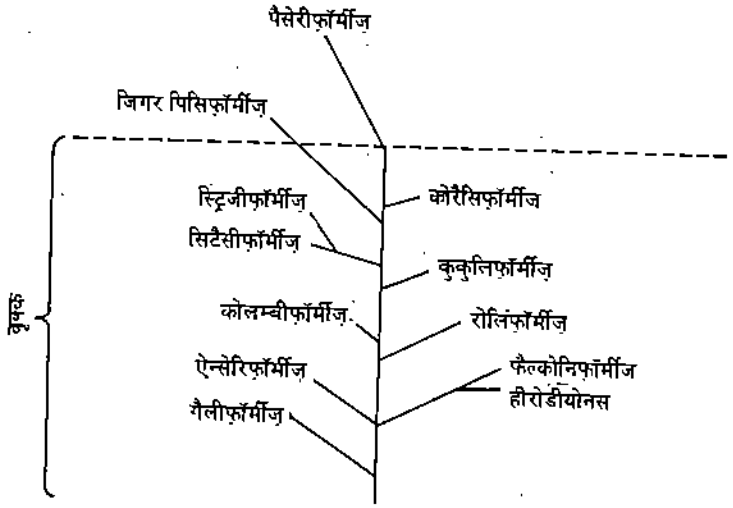

चित्र 8.13 : L-एस्कोर्बिक एसिड के अध्ययन के आधार पर पक्षियों में एक संभावित जातिवृत्तिय निरूपण। कुछ में गुर्दे में, कुछ में केवल यकृत में, कुछ में दोनों में और अधिक संख्या में क्षमताविहीनता।

2. गुणात्मक अंतर (Qualitative Difference)

प्राणियों को दो प्रकार के विश्लेषणों से पहचाना जाता है।

i) अध्ययन किए जा रहे विविध प्राणियों के किसी विशिष्ट पेप्टाइड के ऊपर बने ऐमीनों अम्ल के क्रम का विश्लेषण।

ii) अध्ययन किए जा रहे विविध प्राणियों के किसी विशिष्ट प्रोटीन की तुलना।

i) पौलीपेप्टाइड की लंबाई में विभिन्न ऐमीनों एसिड जिस क्रम में व्यवस्थित होते हैं उसके आपेक्षिक क्रम का विश्लेषण अधिक महत्व का होता है। विभिन्न स्पीशीज़ के फाइब्रिनोजन (fibrinogen) की संरचना के अध्ययनों से स्तनियों के वर्गीकरण पर मूल्यवान सूचना प्राप्त हुई है।

34 विभिन्न स्पीशीज़ में, जो कि मुख्यतः स्तनी थी उनके फाइब्रिनोपेप्टाइड (fibrinopeptide) में ऐमीनों एसिड क्रम का पता चलाया गया और उसे वर्गिकी अध्ययनों में खास तौर से उपयुक्त पाया गया। इस काम में थ्रॉम्बिन (thrombin) की क्रिया के द्वारा फाइब्रिनोजन अणुओं से प्राप्त फाइब्रिनोपेप्टाइड को तोड़कर देखा जाता है। फाइब्रिनोजन का अणु तीन पॉलीपेप्टाइड श्रृंखला (α, β तथा γ) का बना होता है जो डाइसल्फाइड सेतुओं द्वारा जुड़े होते हैं (चित्र 8.14)। प्रोटियोलिटिक (proteolytic) एंजाइम थ्राम्बिन के द्वारा दो फाइब्रिनोपेप्टाइड टूट कर आलग हो जाते हैं, एक तो α श्रृंखला से तथा दूसरा β श्रृंखला से। यही वे दो हैं जिन्हें फाइब्रिनोपेप्टाइड A तथा B कहा जाता है तथा इन्हीं में अम्लों का क्रम पता चलाया गया है।

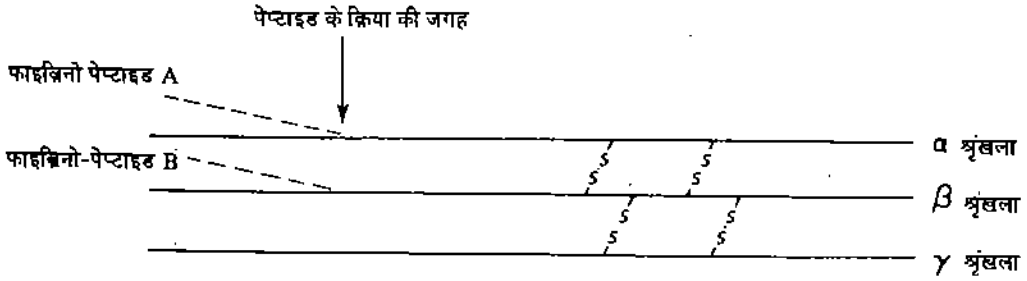

चित्र 8.14 : फाइब्रिनोजन अणु का आरेखीय निरूपण जो और फाइब्रिनपेप्टाइड की रचना को दर्शाता है।

पेप्टाइडों में एमीनों ऐसिड क्रम के आधार पर तैयार किए गए वर्गीकरण और आकारिकीय आधार पर सामान्यत: स्वीकृत योजना में साम्यता पायी गई है। अत: पेप्टाइडों में ऐमीनों एसिडों के क्रमों के आधार पर जातिवृत्तीय संबंधों को तैयार किया जा सकता है जैसा कि चित्र 8.15 में दर्शाया गया है।

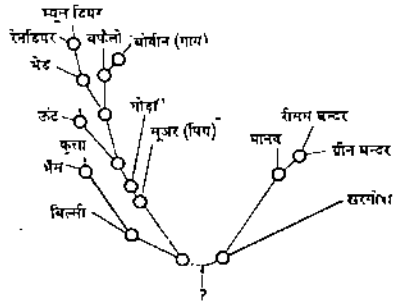

चित्र 8.15 : फाईब्रिनोपेप्टाइड संरचना के आधार पर तैयार किया गया कुछ स्तनियों में पाया जाने वाला जातिवृत्तीय संबंध) (Eck R.V. तथा Dayghoff M.O. (1966) की पुस्तक Atlas of Protein Sequence and Structure, National Biomedical Research Foundation, Maryland से रूपांतरित)।

एक अन्य पेप्टाइड जिसमें ऐमीनों एसिड क्रम पता लगाए गए हैं तथा जो अभिनिर्धारण में बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ है, वह हैं साइट्रोक्रोम (Cytrochrome C)। यह सभी सजीव जीवधारियों की कोशिकाओं में पाया जाता है तथा इसमें लगभग 110 ऐमीनों एसिड होते हैं जिनका क्रम कई प्राणि स्पीशीज़ में पता लगा लिया गया है। देखा गया है कि साइट्रोक्रोम C में ऐमीनों एसिड के क्रमों के आधार पर किया गया स्पीशीज़ का वर्गीकरण आज के प्रचलित वर्गीकरण के साथ काफी ठीक-ठीक मेल खाता है (चित्र 8.16क तथा ख)।

मानव Human	0														
बन्दर Monkey	1	0													
सूअर, गौ, भेड़ Pig, bovine, sheep	10	9	0												
घोड़ा Horse	12	11	3	0											
कुत्ता Dog	11	10	3	6	0										
खरगोश Rabbit	9	8	4	6	5	0									
कंगारू Kangaroo	10	11	6	7	7	8	0								
मुर्गी Chicken, turkey	11	12	9	11	10	8	12	0							
बत्तख Duck	11	10	8	10	8	6	10	3	0						
रैटल सर्प Rattlesnake	14	15	20	22	21	18	21	19	17	0					
ट्यूना Tuna	15	14	9	11	9	9	11	8	7	22	0				
ट्यूना मछली Tuna fish	21	21	17	19	18	17	18	17	17	26	18	0			
मॉथ Moth	31	30	27	29	25	26	28	29	27	31	28	32	0		
न्यूरोस्पोरा	44	47	46	46	46	46	49	47	46	47	49	48	47	0	
कैन्डिडा Candida	51	51	50	51	49	50	51	51	51	51	53	48	43	42	0
यीस्ट Yeast	45	45	45	46	45	45	46	46	46	47	49	47	43	41	27	0

क

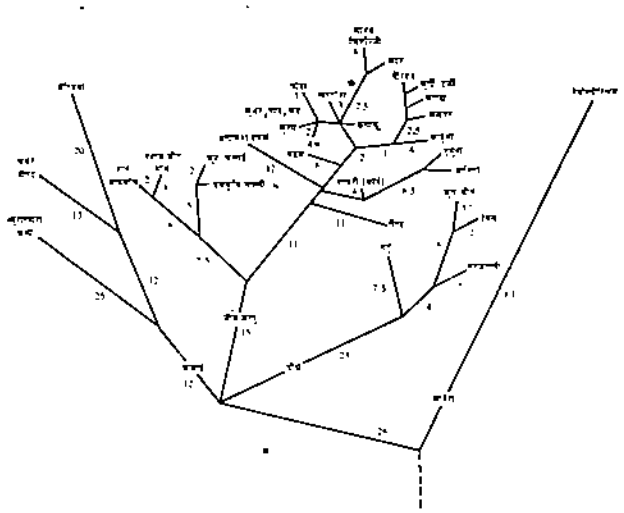

चित्र 8.16 : क) इस आरेख में विभिन्न प्राणियों, पौधों तथा सूक्ष्मजीवों की विभिन्न स्पीशीज़ से प्राप्त साइटोक्रोम में ऐमीनो एसिड क्रमों में पाए जाने वाले अंतर दर्शाए गए हैं। इसमें दी गई संख्याएं संबद्ध स्पीशीज़ से प्राप्त साइट्रोक्रोम C में विभिन्न ऐमीनो एसिडों की संख्या दर्शाती है (Dayoff M.O. तथा Eck R.V. की पुस्तक Atlas of Protein Sequence and Structure, Silver Spring M.D., National Biomedical Research Foundation 1968 से)।

ख) प्रत्येक जीव के ऐमीनो एसिड अनुक्रम पर निर्धारित कंप्यूटर द्वारा विकास वंशवृक्ष की रचना। शाखाओं से सटे अंक इंगित करते – हैं शाखाओं के बीच ऐमीनो एसिड अंक में प्रतिशत परिवर्तन, हर शाखा के उदगम बिंदु के नीचे पूर्वजीय साइट्रोक्रोम C जो कि शाखा के ऊपर के प्रत्येक जीव में सर्वनिष्ट है, दिखलाया गया है।

ii) विभिन्न प्राणियों में विशिष्ट प्रोटीन की तुलना

ऐसा हमेशा जरूरी नहीं होता कि क्रमाविकासीय बंधुताओं का पता लगाने के वास्ते प्रोटीन का संपूर्ण क्रम विश्लेषण किया जाए।

कभी-कभी बस इतनी आवश्यकता होती है कि विभिन्न स्पीशीज़ के रसायनिक पदार्थों को पृथक् कर लिया जाए और उनकी तुलना कर लें। इसके द्वारा समानताएं अथवा भिन्नताएं पता चल जाएंगी जिनसे पता चल सकता है कि ये स्पीशीज़ कितनी निकटत: अथवा दूर से आपस में संबंधित हैं। इन अध्ययनों में काम में लाई गई कुछ महत्वपूर्ण तकनीकें इस प्रकार हैं।

1. क्रोमैटोग्राफी (Chromatography)

2. इलेक्ट्रोफोरेसिस (Electrophoresis)

3. रोधविज्ञानीय अध्ययन Immunological technique) अथवा रोधवर्गिकी (Immuno-taxonomy)

इन अध्ययनों में संयोजित अणुओं यानि प्रोटीन तथा एंजाइमों को शामिल किया

8.11.1 क्रोमैटोग्राफी

इस तकनीक में एक विलायक में विलेयों के मिश्रण (दोहरे मिश्रण) में से विलेयों (यौगिकों) को पृथक् करके उन्हें पहचाना जाता है। इसमें पृथक्करण की क्रिया व्यष्टिगत विलेयों (विलायक में) की उस समय अलग-अलग गति के द्वारा होता है जो एक छिद्रित माध्यम में से होकर गुजरते हैं, यह माध्यम कागज का टुकड़ा हो सकता है (पेपर (paper) क्रोमैटोग्राफी) या पाऊडर की गई चाक हो सकती है (कॉलम (Column) क्रोमैटोग्राफी)।

क्रोमैटोग्राफी के द्वारा जीव के प्रोटीनों में पाए जाने वाले ऐमीनो एसिडों को पहचाना जाता है। ऐसा करने के वास्ते प्रोटीन को उचित एंजाइमों द्वारा रचक ऐमीनो एसिडों में जलअपघटित कर लिया जाता है और फिर उन्हें क्रोमैटोग्राफी से पृथक् किया जाता है। अधिसंख्य मामलों में विलेयों का द्विमार्गी पृथक्करण किया जाता है। इसमें पहले प्रवाह के समकोण पर दूसरा प्रवाह कराया जाता है (चित्र 8.17)।

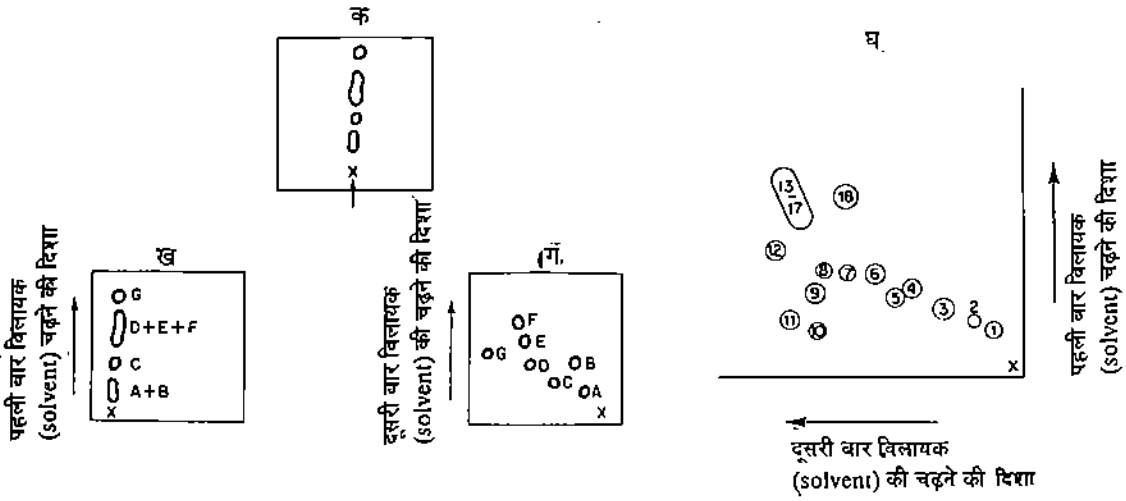

चित्र 8.17 : एकल मार्ग तथा द्विमार्गी क्रोमैटोग्राफी का आरेखीय निरूपण: क) एक मार्गी क्रोमैटोग्राम, ख) द्विमार्गी क्रोमैटोग्राम पहले प्रवाह के बाद, ग) दूसरे प्रवाह के बाद द्विमार्गी क्रोमैटोग्राम, घ) एक प्रोटीन हाइड्रोलाइसेट का द्विमार्गी क्रोमैटोग्राम नि. हाइड्रिन द्वारा प्रकाशित ऐमीनो एसिड, जिनकी पहचान एवं स्थिति उनकी दो तरफा दूरी की गति का परिणाम होती है। विनियोग का बिंदु 1. सिस्टीन, 2. एस्पर्टिक एसिड, 3. ग्लूटामिक एसिड, 4. सेरीन, 5. ग्लाइसीन, 6. थ्रऑनीन, 7. ऐलानिन, 8. हाइड्रोऑक्सीप्रोलीन, 9. हिस्टडीन, 10. लाइसीन, 11. आर्जनीन, 12. प्रोलीन, 13. मिथ्योनीन, 14. वेलीन, 15. फेनाइलऐलानीन, 16. आइसोल्यूसीन, 17. ल्यूसीन, 18. टाइरोसिन।

प्राणी-वर्गिकी में एक सबसे आम इस्तेमाल में आने वाली तकनीक है विभाजन (पार्टिशन) क्रोमैटोग्राफी (Partition Chromatography)। यह या तो पेपर पर की जाती है या कांच की एक प्लेट के ऊपर ऐलुमिना सिलिका जेल की (alumina silica gel) अथवा किसी अन्य पदार्थ की पतली परत पर की जाती है जिसे

क्रोमोप्लेट (chromoplate) कहते हैं। प्राणी वर्गिकी में पेपर क्रोमैटोग्राफी को व्यापक रूप में इस्तेमाल किया जाता है जिसके द्वारा अधिकतर निकटत: संबंधित विभिन्न स्पीशीज़ की रसायनिक संघटना की तुलना की जाती है। इसमें अध्ययन किए जाने वाले यौगिक हैं — पेप्टाइड तथा ऐमीनों एसिड जो निनहाइड्रिन उपचार के साथ गर्म किए जाने पर नीला-बैंगनी सा रंग देते हैं। इस प्रकार बनने वाले चकता-निशानों को उनके दोनों दिशाओं में गति करने की तुलनात्मक दूरियों के द्वारा पहचान लिया जाता है (चित्र 8.19)। प्रत्येक स्पीशीज़ के ऐमीनों अम्लों अथवा पेप्टाइड़ों का एक अपना ही सबसे अलग प्रकार का नमूना चित्र बन जाता है जिसे क्रोमैटोग्राम कहते हैं।

क्रोमैटोग्राफिक तकनीकों से अनेक प्राणियों के अभिनिर्धारण में सहायता मिली है। उदाहरण के लिए, इन्हें व्यस्क मच्छरों में लगभग 21 ऐमीनों एसिडों को पहचानने में उपयोग किया गया है जिससे उनकी संवर्गिकी में बहुत सहायता मिली है। इसी प्रकार गैस्ट्रोपोडों तथा मछलियों की विविध स्पीशीज़ को उनके पेशी प्रोटीन में पाए जाने वाले ऐमीनों एसिडों के आधार पर पृथक् किया गया है।

क्रोमैटोग्राफी की तकनीकों ने संवर्गिकी में बहुत ज्यादा मदद की है। विभिन्न प्राणि-स्पीशीज़ का अभिनिर्धारण उनके क्रोमैटोग्रामों के तुलनात्मक अध्ययन पर आधारित होता है, और ये क्रोमैटोग्राम प्रत्येक स्पीशीज़ के लिए अपनी-अपनी किस्म के अलग ही होते हैं।

बोध प्रश्न 5

प्राणियों के अभिनिर्धारण में क्रोमैटोग्राफी का किस प्रकार उपयोग किया जाता है?

.....

.....

.....

.....

8.11.2 इलेक्ट्रोफोरेसिस

यह क्रोमैटोग्राफी के ही जैसी तकनीक है क्योंकि इसमें भी घुले हुए अणुओं की एक स्थिर माध्यम में से वैसी ही गति होती है। मगर इस मामले में कार्बनिक अणुओं की गति तथा उसके बाद उनका अलग होना एवं अभिनिर्धारण एक विद्युत् क्षेत्र के द्वारा पैदा हुए विभव अंतर के कारण होता है। दूसरे शब्दों में हम इसे यूं कह सकते हैं कि इलेक्ट्रोफोरेसिस की प्रक्रिया एक विद्युत् क्षेत्र के प्रभाव में घोल के भीतर आयनों की गति मात्र है (चित्र 8.18)।

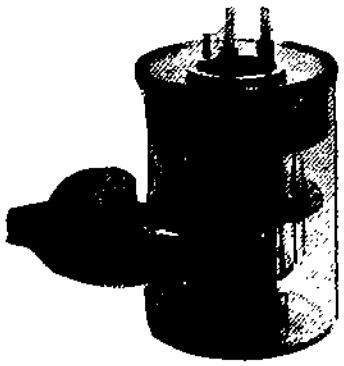

चित्र 8.18 : इलेक्ट्रोफोरेसिस : जेल-इलेक्ट्रोफोरेसिस (gel-electrophoresis) के द्वारा प्रोटीनों की तुलना। इस उपकरण में प्रोटीन से भरी एक जेल-नली पर एक तीव्र विद्युत् विभव लगाया जाता है। विद्युत् विभव के प्रभावस्वरूप जेल में प्रोटीन चलने लगता है, किंतु प्रोटीन की अनुक्रिया की गति उसकी रासायनिक बनावट पर निर्भर करती है।

विद्युत् क्षेत्र में नेगेटिव (negative) तथा पॉजिटिव (positive) चार्ज वाले अणु एक दूसरे की विपरीत दिशा में गति करेंगे, इनमें नेगेटिव चार्ज वाले अणु पॉजिटिव सिरे की ओर चलते जाते हैं तथा पॉजिटिव चार्ज वाले अणु नेगेटिव सिरे की ओर चलते जाते हैं।

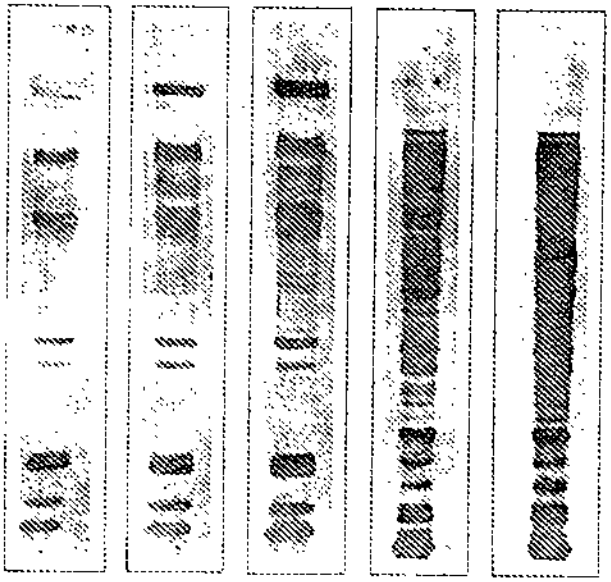

चित्र 8.19 : एक उचित अभिकर्मक द्वारा उद्भासित होने पर प्रोटीनों को देखा जा सकता है और उनके नमूनों की तुलना की जा सकती है। समान प्रोटीन होने पर यह संकेत मिलता है कि तुलना किए जा रहे जीवधारियों के बीच एक निकट का क्रमविकासीय संबंध है।

चार्जयुक्त यौगिकों के आयन जिस दर से गति करते हैं वह उनकी साइज़ (size_) उनकी आकृति एवं उनकी अन्य विशिष्टताओं पर आधारित होती है। अत: इस तकनीक के द्वारा तमाम अणुओं को पृथक् किया जा सकता है। आजकल इलेक्ट्रोफेरेसिस की विविध विधियों ने काफी हद तक अधिसंख्य क्रोमैटोग्राफी तकनीकों का स्थान ले लिया है।

इलेक्ट्रोफोरेसिस का उपयोग किसी भी विशिष्ट पदार्थ के प्रोटीन चित्रों की तुलना करने में किया जाता है ताकि उनके द्वारा विभिन्न स्पीशीज़ के परसंबंध पता चलाए जा सके (चित्र 8.19)। विद्युत् क्षेत्र के प्रति अनुक्रिया के रूप में विभिन्न प्रोटीन एक दूसरे से दूर-दूर चलते जाते हैं और इस गति में उनकी रफ्तार उनकी रासायनिक संघटना पर निर्भर होती है। उचित माध्यम में उद्भासित होने पर प्रोटीनों को देखा जा सकता है तथा उनके नमूनों की तुलना की जा सकती है। समान प्रोटीनों से यह संकेत माना जा सकता है कि तुलना किए जा रहे जीवधारियों के बीच एक निकट संबंध है।

एक सरल घोल, में किया जाने वाला इलेक्ट्रोफेरेसिस (सीमा स्थिर अथवा सीमा-गतिशील इलेक्ट्रोफोरेसिस) का अब शायद ही कहीं उपयोग किया जाता है, इसका स्थान "ज़ोन (zone) इलेक्ट्रोफोरेसिस" ने ले लिया है। ज़ोन इलेक्ट्रोफ़ोरेसिस में आयनों (ions) से युक्त घोल को एक न्यूनाधिक रूप में निष्क्रिय पदार्थ जैसे कि कागज, अगार (agar), स्टार्च (starch), ऐसीटेट सेलुलीज (acitate cellulose) अथवा पॉलीएक्रिऐलोमाइड (polyacrylamide) पर चढ़ाया जाता है।

ज़ोन इलेक्ट्रोफ़ोरेसिस का सर्वाधिक काम में लाया जाने वाला एक रूप है डिस्क (disc) इलेक्ट्रोफ़ोरेसिस। मगर ये सभी इलेक्ट्रोफोरेसिस प्रविधियां प्राय: समान गतिशीलता वाले प्रोटीनों को पृथक् नहीं कर सकती। हाल ही में समान गतिशीलता के, मगर असमान अणु साइज वाले, प्रोटीनों का पृथक्करण आधुनिकतम इलेक्ट्रोफेरेसिस तकनीक "पॉलीएक्रिलेमाइड प्रवणता जेल इलेक्ट्रोफ़ोरेसिस" द्वारा संभव हुआ है।

इस विधि में विभिन्न प्रोटीन उत्तरोत्तर छोटे होते जाते हुए छिद्रों में से गुजरते हैं। इन छिद्रों के साइज का नियमन जेल सांद्रणता को अनुकूल बनाते हुए किया जाता है। जब छिद्र बहुत छोटे हो जाते हैं तब प्रोटीनों का गुजरना कम हो कर अंतत: रुक जाता है। छिद्रों के साइज को लगातार घटते जाने से प्रवासी ज़ोनों (क्षेत्रों) के अग्रगामी सीमांत की गति में बाधा आती है जिसके कारण संहत संद्रित ज़ोन बन जाते हैं। पर जैसा कि आप जानते हैं इस विधि द्वारा समान साइज के प्रोटीनों को पृथक् नहीं किया जा सकता। इन्हें दो दिशा वाली इलेक्ट्रोफ़ोरेसिस तकनीक द्वारा अलग किया जा सकता है, इस तकनीक में पहले तो एक अक्ष पर समान साइज के अणुओं को पृथक् कर लिया जाता है और फिर उसके बाद पहले प्रवाह के समकोण पर दूसरा ज़ोन इलेक्ट्रोफ़ोरेसिस चला कर उनकी गति के अनुसार और आगे पृथक् कर लिया जाता है।

विभिन्न प्राणि वर्गों के संवर्गिकीय अध्ययन में इलेक्ट्रोफ़ोरेसिस का उपयोग काफी सफल रहा है। इससे तुलनात्मक अभिनिर्धारण में तथा जातिवृत्तीय संबंधों के पता लगाने, दोनों में ही मदद मिली है।

उदाहरण के लिए, इलेक्ट्रोफ़ोरेसिस से बैलों, घोड़ों, भेड़ों तथा सूअरों जैसे विविध प्राणियों के ऐमीनों एसिडों में जैवरासायनिक भिन्नता का पता चला है। मिसाल के लिए, बैलों, घोड़ों तथा भेड़ों का इंसुलिन (insulin) अलग-अलग होता है, और सुअर का ACTH बैलों के ACTH से भिन्न होता है।

इन खोजों से ऐसी जातिवृत्तीय समस्याओं को सुलझाने में मदद मिली है जो अन्यथा पारम्परिक वर्गिकी से नहीं सुलझायी जा सकती थी।

इसी प्रकार पक्षियों के अंडे की सफेदी के इलेक्ट्रोफ़ोरेसिस से उनके जातिवृत्तीय संबंधों को जानने में तथा उनके संबंधों के परिकल्पित डैंड्रोग्रामों (dendograms) के बनाने में मदद मिली है। उदाहरण के लिए, आप चित्र 8.20 में "लैसर फ्लेमिंगों" *(फ़ेनिकोनेएन्स मइनर— Phoeniconaians minor)* प्रतिरूपी बतख (एनस जोरजिक- Anas georgica) तथा प्रतिरूपी बगुले *(आरडन हिरोडायस— Arden herodias)* के अंडों की सफेदियों के इलेक्ट्रोफ़ोरेसिस की तुलना कर सकते हैं। इसमें आप देखेंगे कि जैसे-जैसे इलेक्ट्रोफ़ोरेसिस आगे बढ़ता जाता है वैसे-वैसे बगुले तथा फ्लेमिंगों के दशा चित्रों के बीच की समानता तो बनी रहती है जबकि बतख के स्वरूप से वह धीरे-धीरे हटती हुई अलग हो जाती है, जिससे पता चलता है कि बतख की अपेक्षा बगुला तथा फ्लेमिंगों एक दूसरे से निकटत: अधिक संबंधित हैं।

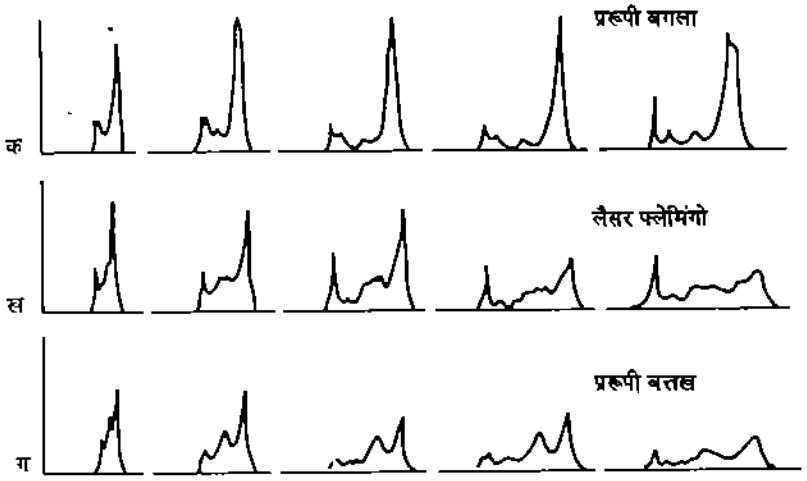

चित्र 8.20 : लैसर फ्लेमिंगों (b) को एक प्रतिरूपी बगुले (c) और एक प्रतिरूपी बतख (a) के साथ तुलना दर्शाते हुए प्रगामी सघनता के दशाचित्र।

इसी प्रकार फ्लेमिंगों की फेमिली (फोनिकोप्टेरिडी—Phoenocopteridae) को , जो कि पक्षियों के आधुनिक वर्गीकरण में काफी कुछ समस्या बनी हुई थी, निम्न फेमिलियों के तुलनात्मक इलेक्ट्रोफ़ोरेसिस के नमूनों की सहायता से वर्गीकृत किया गया है — फोनिकोप्टेरिडी (विविध फ्लेमिंगों पक्षी), ऐन्सेरिफ़ॉर्मीज़ (बतखें) साइकोनाइफ़र्मीज़ (सारस और बगुले) तथा कैरैड्रीफ़ॉर्मीज़ (टिटहरियां)।इसी आधार पर इनके परस्पर संबंधों का एक परिकल्पित डेंड्रोग्राम बनाया गया है (चित्र 8.21)।

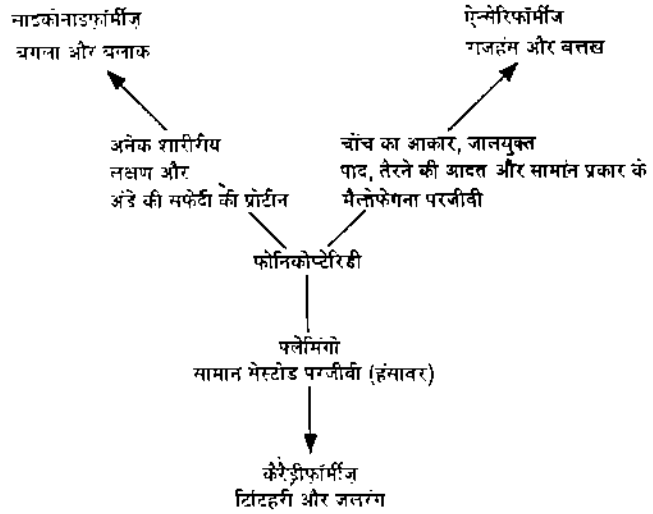

चित्र 8.21 : समानताएं जो कि संभव बंधुताएं दर्शाती हैं।

इलेक्ट्रोफ़ोरेसिस विश्लेषण मौलस्का की वर्गिकी में भी सहायक सिद्ध हुआ है। इस तकनीक से *बलिनस (Bulinus)* जीनस की कुछ स्पीशीज़ को, उनके अंडों के प्रोटीन के अध्ययन के द्वारा पृथक् किया गया है (चित्र 8.22)।

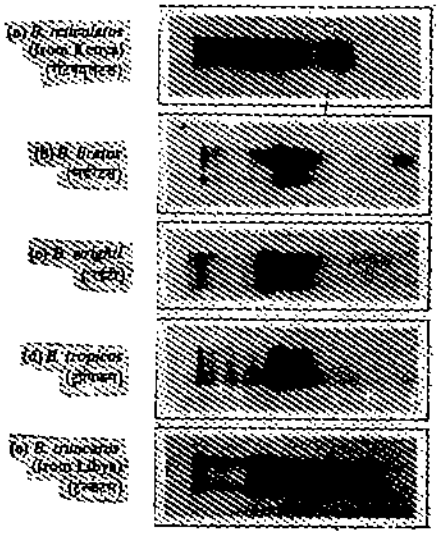

चित्र 8.22 : *बलिनस (Bulinus)* के अंडों के प्रोटीनों का सेलुलोज ऐसिटेट इलेक्ट्रोफ़ोरेसिस (Wright 1974 से)।

अभिनिर्धारण के वास्ते इलेक्ट्रोफ़ोरेसिस अध्ययन अब और भी अनेक प्राणियों पर किए जा रहे हैं जिनमें विश्लेषण के वास्ते उनके विविध पदार्थों को लिया जाता है। हाल ही में एंजाइमों के अतिरिक्त अन्य पदार्थों जैसे कि दूध, आंसू, हीमोलिम्फ, सर्पविष, जिगर तथा पेशियों आदि का भी, अभिनिर्धारण के उद्देश्य से, विश्लेषण किया जा रहा है।

बोध प्रश्न 6

एक जीवविज्ञानी ने जीनस Bulinus के घोंघों की 2 आकारिकीय रूप में समान समष्टियों के अंडों के इलेक्ट्रोफ़ोरेसिस नमूनों का अध्ययन किया, और उसे पता चला कि इनमें समान इलेक्ट्रोफ़ोरेसिस नमूने हैं। इस अनुभव से क्या निष्कर्ष निकाला जा सकता है?

.....

.....

.....

.....

8.11.3 रोधविज्ञानीय तकनीक अथवा रोधवर्गिकी

प्राणि-संवर्गिकी में रोधविज्ञानीय तकनीकें ऐसी विधियां प्रदान करती हैं जिनके द्वारा प्राणियों की विभिन्न स्पीशीज़ के बीच रोध विज्ञानीय भेदों की तुलना की जा सकती है, और फिर इनसे कुल मिलाकर समानता के और अनुमानत: वर्गिकीय बंधुता के माप प्राप्त हो जाते हैं।

इन तकनीकों के द्वारा विविध प्राणि-स्पीशीज़ में उनके प्रोटीनों की परोक्ष तुलना करके उनमें पाए जाने वाले जातिवृत्तीय संबंध पता लगाए जा सकते हैं। रोधविज्ञान संबंधी अध्ययनों का आधार यह है कि जिन जीवों में निकट का संबंध होता है उनमें जीनोटाइप समान तो होते हैं लेकिन सर्वसमान नहीं होते। परिणामत: इन जीवों में समान प्रोटीन होने चाहिए। इस आधार पर प्राणियों के बीच की निकटता का प्रदर्शन रोध विज्ञानीय अथवा सीरमविज्ञानीय तकनीक के उपयोग के द्वारा होता है। इसके पीछे जो सिद्धांत छिपा है वह इस प्रकार है (चित्र 8.23)। मान लिया हमें मानव तथा कुछ अन्य स्तनियों के बीच की बंधुता पता लगानी है। यदि हम कुछ मानव सीरम प्रोटीन को उदाहरण के लिए एक खरगोश के भीतर इन्जेक्ट (inject) करते हैं तब खरगोश में सीरम के एंटीजनों (antigens) के प्रति प्रतिक्रिया होकर एंटीबॉडी बनेंगे (ये भी प्रोटीन होते हैं)। यदि इनमें से

कुछ एंटीबॉडी को मानव सीरम के साथ मिलाया जाए तो एक रोधविज्ञानीय प्रतिक्रिया होती है जिससे एक अवक्षेप बन जाता है। अब यदि इस प्रकार से प्राप्त एंटीबाडियों को अलग-अलग जानवरों के सीरम में मिलाया जाए तो भी एक अवक्षेपण होता है (चित्र 8.23)। एंटीजन-एंटीबॉडी प्रतिक्रिया की मात्रा से जीवों के बीच के संबंध की मात्रा का संकेत मिल जाता है।

अवक्षेपण उस स्थिति में संपूर्ण होता है जब यह क्रिया एंटीबॉडियों के तथा उन विशिष्ट एंटीजनों के बीच होता है जिन्होंने मूलत: इनका बनना उत्तेजित किया था। इस संपूर्ण एंटीजन-एंटीबॉडी प्रतिक्रिया को "समजात" (homologous) अथवा संदर्भ प्रतिक्रिया (reference reaction) कहा जाता है। जब अवक्षेपण होता है मगर कम मात्रा में होता है अर्थात् जब एंटीजन रासायनिक दृष्टि से उससे भिन्न परन्तु संबंधित है जिसने एंटीबॉडी का बनना उत्तेजित किया था, तब ऐसी प्रतिक्रिया को "विषमजात" (heterologous) अथवा क्रास प्रतिक्रिया (cross reaction) कहा जाता है (चित्र 8.23)। अवक्षेप के पूर्ण अभाव से संकेत मिलता है कि जीवों के बीच का अंतर बहुत बड़ा है।

सामान्य रूप से कहा जा सकता है कि प्राणी एक दूसरे से जितने ज्यादा निकटत: संबंधित होंगे उतना ही ज्यादा उनकी रासायनिक बनावट भी समान होगी और परिणामत: उनसे प्राप्त होने वाले एंटीजन भी समान ही होंगे। विषमजात प्रतिक्रियाओं में वे प्राणी जिनसे एंटीबॉडी बने हैं (वर्गिकीय दृष्टि से) जितने ज्यादा नजदीक होंगे उतना ही ज्यादा उनमें अवक्षेपण होगा। इसे "अनुपातता का नियम" कहते हैं। जिस पर रोधवर्गिकी अथवा सीरमवर्गिकी आधारित होती है। एंटीबॉडी निर्माण को उत्तेजित करने के लिए उपयोग में लाया जाने वाला एंटीजन या तो कोई अंडा प्रोटीन हो सकता है या कोई सीरम-प्रोटीन, या आंख के लेन्स का कोई प्रोटीन, कोई ऊतक होमोजीनेट या बहुत छोटे प्राणियों के मामलें में यहां तक कि पूरे-पूरे प्राणी भी हो सकते हैं।

प्राणियों की रोधवर्गिकी में तुलनात्मक अवक्षेपण प्रतिक्रिया का प्राय: निम्न तकनीकों द्वारा अध्ययन किया जाता है :

1. आऊखतरलोनी (Ouchterlony) अथवा अन्य जेल विसरण (gel diffusion) विधियां
2. रोधइलेक्ट्रोफ़ोरेसिस (immunoelectrophoresis)

आऊखतरलोनी अथवा अन्य जेल विसरण विधियां: आज प्राणि वर्गिकी में ऐसी तकनीकें अधिक इस्तेमाल की जाती हैं जिनमें एंटीजन तथा एंटीबॉडी की कम मात्राएं चाहिए। इसलिए अक्सर बचतवाली जेल विसरण विधि इस्तेमाल की जाती है। इन तकनीकों में एंटीजनों तथा एंटीबॉडी के एक जेल में से जो प्राय: अगार होता है, विसरित किया जाता है। जहां पर वे दोनों आ मिलते हैं वहां अवक्षेपण हो जाता है।

सर्वाधिक प्रचलित तकनीक 'आऊखतरलोनी की दोहरी विसरण' विधि है। इस तकनीक में एक पैट्री-डिश (petri-dish) में जेल रखा जाता है तथा इस जेल में गोल-गोल गढ़ें (wells) काट लिए जाते हैं। केंद्र स्थित गढ़े में एंटीबॉडी रखा जाता है, इसके चारों ओर के चार या छ: गढ़ों में अन्य प्राणियों से लिए गए एंटीजनों को रखा जाता है (चित्र 8.24)।

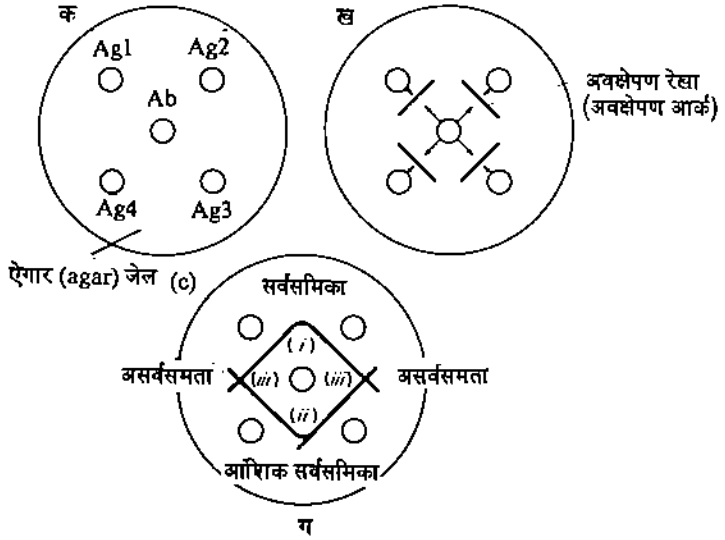

चित्र 8.24 : क. दोहरे विसरण तकनीक का आरेखीय प्रतिदर्श। क) आऊखतरलोनी प्लेट में गढ़ों में एंटीबॉडी (Ab) तथा एंटीजेन Ag 1-4 रखे गए हैं। ख) जहां विसरणरत एंटीबॉडी तथा एंटीजन परस्पर अनुकूलतम सांद्रणों पर मिलते हैं वहां अवक्षेपण होता है; ग) तीन मुख्य प्रकार की प्राप्त हो सकने वाली सूचनाओं को दर्शाता हुआ आऊखतरलोनी क्रम।

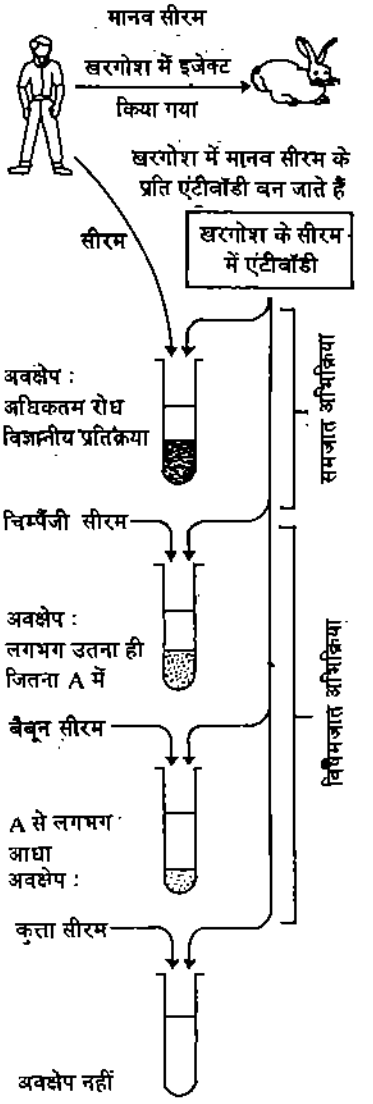

चित्र 8.23 : सीरमविज्ञानीय परीक्षण का सिद्धांत, जिसके द्वारा क्रमविकासीय संबंध स्थापित किए जाते हैं। (Moody, Introduction to Evolution, Harper से)

एंटीबॉडी बाहर को एंटीजन से भरे गढ़ों की ओर विसरित होता है और जब वे भीतर की ओर को विसरित होते हुए एंटीजनों से मिलते हैं तब रोधअवक्षेपण के वक्र अथवा अपारदर्शी रेखाएं बन जाती हैं जो दिखने लगती हैं (चित्र 8.24)। जहां सहवर्ती गढ़ों में सर्वसमान एंटीजन होते हैं अर्थात् एक ही प्राणि-स्पीशीज़ से) वहां बने हुए वक्र (arc) संतत (लगातार जारी) होते हैं (1)। जहां पर आंशिक समानता होती है वहां वक्रों का संगम बन जा सकता है मगर उसमें परिधि की ओर को निकली हुई एक तीली सी बन जाती है (2)। असमानता के मामलें में वक्र परस्पर नहीं जुड़ते वरन् एक दूसरे को काटते हुए आगे निकल जाते हैं (3)।

रोध इलेक्ट्रोफ़ोरेसिस

रोध इलेक्ट्रोफ़ोरेसिस ऐसी बहुभागी प्रणालियों में काम में लाया जाता है जिनमें एक अकेले गढ़े में एंटीजनों का मिश्रण होता है तथा ऐसा ही एक अनुरूपी मिश्रण एंटीबॉडीयों का होता हैं। ऐसी स्थिति में वक्रों की सही-सही व्याख्या करना अक्सर कठिन हो जाता है।

ऐसे मामलों में एंटीजनों को पहले उनकी इलेक्ट्रोफ़ोरेसिक गतिशीलता के आधार पर पृथक् किया जाता है और उसके बाद उन्हें जेलों में से होकर विसरण होते हुए एंटीबॉडी की प्रगामी रेखा की ओर विसरित होने दिया जाता है। जहां पर वे मिलते हैं वहां पृथक् हुए अवक्षेपण वक्र बन जाते हैं।

रोध इलेक्ट्रोफ़ोरिसिस को अय अक्सर एक सूक्ष्म स्तर पर किया जाता है, जिसमें एक माइक्रोस्कोप स्लाइड की एक सतह पर जेल का आवरण चढ़ा दिया जाता है जैसा कि चित्र 8.25 में देखा जा सकता है। यह जेल कई प्रकार का हो सकता है जैसे कि पॉलीएक्रिलेमाइड, स्टार्च, अगार या अन्य किसी उपयुक्त पदार्थ का।

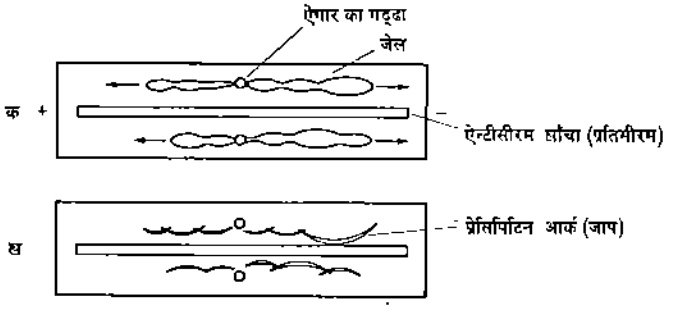

चित्र 8.25 : रोध इलेक्ट्रोफ़ोरेसिस के द्वारा दो भिन्न टेक्सॉनों के प्रेसिपिटिन (अवक्षेप) वक्रों की तुलना। क) एंटीजन घटकों का इलेक्ट्रोफ़ोरेटिक पृथक्करण ख) विसरण करते हुए एंटीजन तथा एंटीबॉडी जहां पर मिलते हैं वहां प्रेसिपिटिन वक्र बन जाते हैं।

प्राणि संवर्गिकी में अब रोधविज्ञानीय तकनीकों का उपयोग काफी व्यापक रूप में हो रहा है। इनके द्वारा बहुत से प्राणि वर्गों के परस्पर संबंधों के अभिनिर्धारण में सहायता मिली है। उदाहरण के लिए, ऐसे अध्ययनों से पता चला है कि सिटेसियां (cetacea) (व्हेल, डाल्फिन आदि) का अन्य स्तनियों की अपेक्षा आर्टियोडेक्टिला — Artiodactyla) (समसंख्या खुरों वाले अंगुलेटों) से अधिक निकटता का संबंध पाया गया है। इन तकनीकों से व्यष्टिगत जीनसों तथा स्पीशीज़ के वर्गिकीय स्थान को भी दर्शाने में सहायता मिली है। उदाहरण के लिए, रोधवर्गिकीय अध्ययनों से प्रमाण मिला है कि विशाल पांडा ऐलिरोपोडा (Ailuropoda) का भालुओं (अर्सिडी—Ursidae) से अधिक निकट का संबंध है न कि छोटे लाल पांडा से जो कि अन्यथा कदाचित् (किंकाजुओं—Kinkanjous) (प्रोसायोनिडि–Procyonidae) एवं रेकूनों से संबंधित है। उत्तरी अमरीका का कस्तूरी सांड, गाय-भैसों (वोविनि—Bovinae) की अपेक्षा भेड़-बकरियों (केपरिनन–Caprinae) से अधिक निकटत: संबंधित है।

रोधविज्ञानीय अध्ययनों से एक ही समूह की विभिन्न स्पीशीज़ के बीच के सहसंबंधों का पता चलाने में भी सहायता मिली है, जैसा कि आप चित्र 8.26 में दर्शाए गए केकड़ा (Crabs) परस्पर संबंध द्वारा देख सकते हैं। अन्य परस्परसंबंध-संबंधी अध्ययन कछुओं, कबूतरों, काकरोचों तथा अन्य प्राणियों पर किए गए हैं।

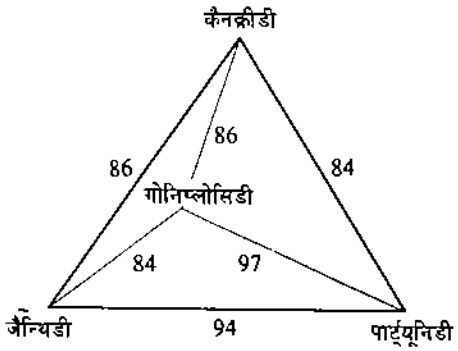

चित्र 8.26 : केकड़ों की चार फेमिलियों के बीच रोधविज्ञानीय दूरियों को दर्शाने हेतु एक पिरामिडी निरूपण।

रोधवर्गिकी से बंधुताओं एवं जातिवृत्त संबंधी अनुमानों की पुष्टि में भी सहायता मिली है। कशेरुकियों की आंख के लेन्स के प्रोटीनों के रोधइलेक्ट्रोफ़ोरेसिस के आधार पर प्राइमेटों का जातिवृत्तीय वृक्ष तैयार करने में सहायता मिली है (चित्र 8.27)।

इसके अलावा रोधवर्गिकीय अध्ययनों से बहुत संख्या में भौगोलिक जातियां तथा सिबलिंग (समाभासी) स्पीशीज़ की खोज में भी मदद मिली है।

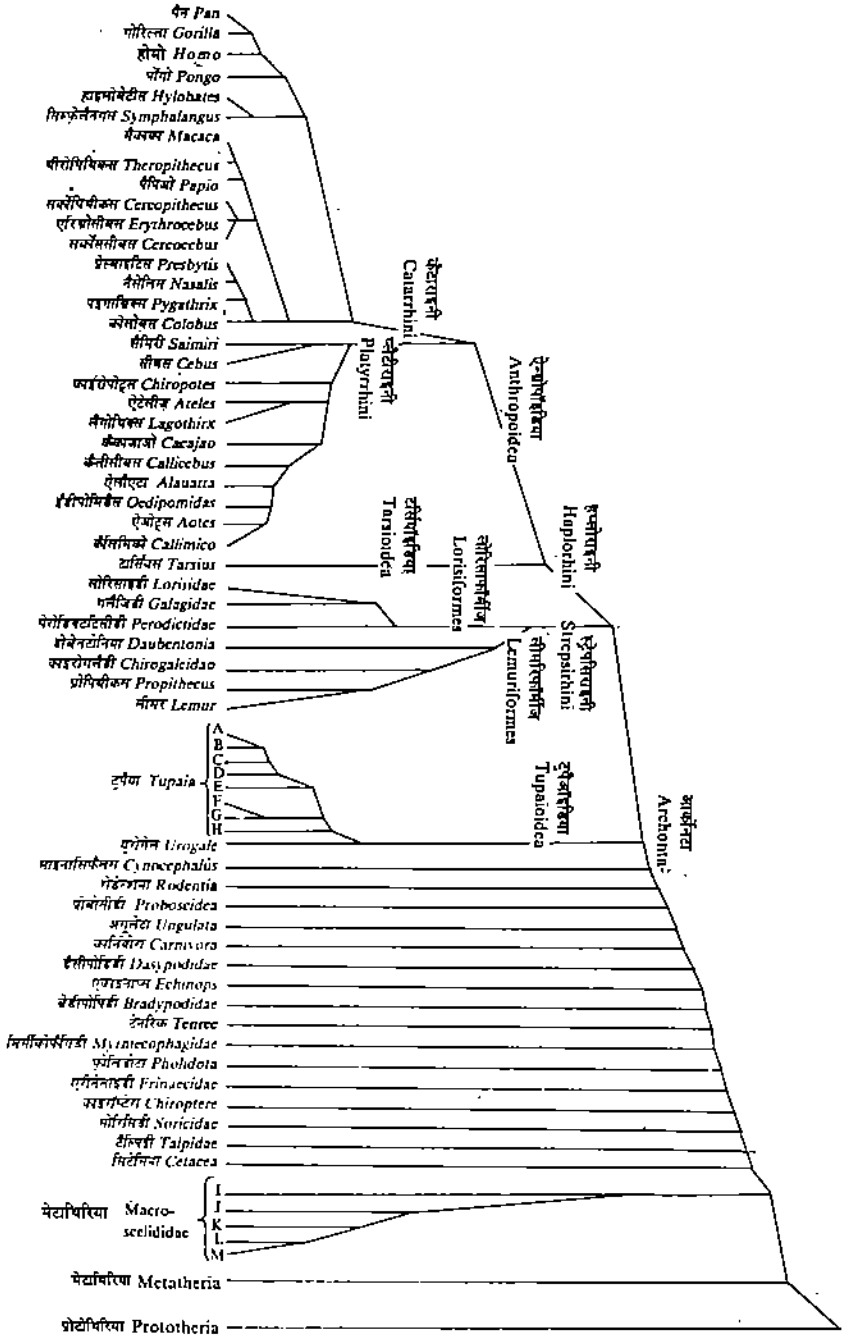

चित्र 8.27 : रोधविसरण प्लेट तुलना पर आधारित एक डेड्रोग्राम वृक्ष। मोटी रेखाएं नीचे को समजात स्पीशीज़ के टेक्सॉनों के रूप में आती है, तथा बारीक रेखाएं केवल उन तक आती हैं जिन्हें विषमजात स्पीशीज़ की तरह उपयोग किया गया है (Goodman, M. 1976, Molecular Evolution में से, F. J. Ayala द्वारा सम्पादित, pp. 141-159)।

बोध प्रश्न 7

समीकरण को पूरा कीजिए :

---------- + ---------- = ----------

1 2 3

(अपक्षेप, ऐंटीजन, ऐंटीबॉडी)

8.12 संख्यात्मक वर्गिकी

वर्गिकी में संख्यात्मक विधियों का उपयोग कोई नई बात नहीं है। सरल संख्यिकीय विधियां जैसे कि मानक विचलन परीक्षण तथा काई स्कवायरों (Chi-square) का उपयोग अनेक वर्षों से होता आया है। हाल में इलेक्ट्रॉनी डिजिटल कंप्यूटरों के विकास से ढेर सारे वर्गिकीय आंकड़ों का अपेक्षाकृत थोड़े से ही समय में संख्यात्मक विश्लेषण किया जा सकना संभव हो गया है। इसके कारण पिछले बीस वर्षों में वर्गिकी की एक नई शाखा का विकास हुआ है जिसे संख्यात्मक वर्गिकी (Numerical Taxonomy) अथवा टेक्सोमीट्रिक्स (वर्गिकीमापन) (Taximetrics) कहा जाता है।

जीवधारियों के बीच की बंधुता अथवा समानता का संख्यात्मक रूप में मूल्यांकन करने के द्वारा आंकड़ों का अभिकलन करने और उसके बाद इन जीवों को विभिन्न टेक्सॉनों (Taxon) में क्रमवत रखने में बहुत ही कम समय, कदाचित् कुछ ही सेकंड का समय लगता है। मगर कंप्यूटर में डालने के लिए इन आंकड़ों को एक उपयुक्त रूप में बनाना बहुत जटिल कार्य है जिसमें सूचना का अत्यंत श्रमसाध्य अध्ययन एवं रिकार्डिंग किया जाता है।

संख्यात्मक वर्गिकी में कंप्यूटर के इस्तेमाल से अब यह बहुत ही सहज हो गया है कि अनेकानेक जीवधारियों के बहुत संख्या में लक्षणों की, अपेक्षाकृत आसानी से, तुलना की जा सकती है। जीवधारियों की तुलना कर लेने के बाद उन्हें उनकी समग्र समानता अथवा असमानता के अनुसार समूहित कर लिया जाता है और जहां आवश्यक हो वहां उन्हें आलेखी रूप में दर्शाया जा सकता है।

संख्यात्मक वर्गिकी में प्राय: 50-100 लक्षणों का लगभग उतने ही अथवा उससे अधिक संख्या के जीवों में अध्ययन किया जाता है। इस अध्ययन क्षेत्र में जीव शब्द का अर्थ व्यष्टियों, समष्टियों, विशिष्ट जीनसों अथवा अन्य किसी भी वर्गिकीय श्रेणी से है, और यही कारण है कि इन्हें सामान्यत: "आपरेशनल टेक्सोनॉमिक यूनिट" (operational taxonomic units) अथवा "OTU s" कहते हैं।

अभिनिर्धारण लक्षण जिन भिन्न-भिन्न दशाओं में पाए जाते हैं उन्हें "लक्षण-दशा" (character state) कहते हैं। कोई एक विशिष्ट अंग या तो विद्यमान हो सकता है या अविद्यमान, यह कार्यात्मक हो सकता है या कार्यविहीन। ऐसे सरल मामलों में इन्हें "द्विदशा लक्षण" (two state characters) कहते हैं। मगर बहुत से ऐसे लक्षण भी हैं जो कई-कई संभावित दशाओं में पाए जाते हैं और इसीलिए उन्हें "बहुदशा लक्षण" (multi-state characters) कहते हैं। द्विदशा लक्षण तथा बहुदशा लक्षण दोनों ही या तो गुणात्मक (qualitative) हो सकते हैं या मात्रात्मक (quantitative)। आइए अब देखें कि वे एक-एक करके कौन से चरण है जिनमें संख्यात्मक आंकड़े तैयार किए जाते हैं तथा उनका विश्लेषण किया जाता है।

संख्यात्मक वर्गिकी का सबसे पहला चरण तो यह निर्णय करना है कि अध्ययन करने के वास्ते किन-किन OTUs को लिया जाए।

1. तब OTUs का अध्ययन करने के वास्ते जिन लक्षणों का उपयोग करना है उन्हें चुना जाता है। लक्षणों को प्राय: बड़ी संख्या में चुना जाता है क्योंकि ऐसा मानना है कि लक्षणों की संख्या जितनी अधिक होगी वर्गीकरण भी उतना ही सही प्राप्त होगा।

कुछ वर्गिकी अभिलक्षण, जैसे आंखें न होने के कारण अंधापन अमान्य है।

2. चुने गए लक्षण OTUs की कोई भी देखी जा सकने वाली विशेषता अथवा लक्षण हो सकता है। ये लक्षण किसी भी OTU से हो सकते हैं जैसे आकारिकी, व्यवहार, पारिस्थितिकी, भ्रूणविज्ञान, आदि से। ऐसे सारे लक्षण देखें जा सकने वाले प्रकटरूपी होने जरूरी हैं। यही कारण है कि इस टेक्सोमीट्रिक प्रक्रिया से प्राप्त परिणामी समूहन, वर्गीकरण अथवा कुंजी को प्रकटलक्षणी (फेनेटिक —phenetic) कहा जाता है। दूसरे शब्दों में यह क्रमविकासीय अथवा जातिवृत्तीय संबंधों पर आधारित नहीं होता। छांटे गए सभी लक्षणों को समान बल दिया जाता है। इस प्रकार प्रत्येक लक्षण का उतना ही महत्व है जितना किसी भी अन्य लक्षण का।

3. एक बार लक्षणों को चुन लेने के बाद उन्हें उपयुक्त रूप में रिकार्ड किया जाता है। इस प्रक्रिया को कोडिंग (Coding) कहते हैं। मात्रात्मक विशेषताओं को जैसे कि नीमैटोड़ों के ओष्ठों की संख्या अथवा शरीर के विभिन्न भागों की मापों को सीधे ही रिकार्ड कर लिया जा सकता है। द्विदशा अथवा बहुदशा लक्षणों को कोडित करना आवश्यक है। द्विदशा लक्षणों के मामलों में लक्षण की विद्यमानता को "1" अथवा "+" द्वारा और अविद्यमानता को "0" अथवा "-" द्वारा कोडित किया जाता है।

4. जब कोई लक्षण एक से अधिक गुणात्मक अवस्था में पाया जाता है तब उसे दो-दो दशा के अनेक लक्षणों में विभक्त कर लिया जाता है। उदाहरण के लिए, कीट की क्यूटिकल सफेद, पीली, भूरी अथवा

काली हो सकती है और तब एक-एक करके हर लक्षण को उसके होने पर "+" अथवा "1" के द्वारा तथा न होने को "–" अथवा "0" द्वारा कोडित किया जाता है, या फिर ऐसा भी किया जा सकता है कि प्रत्येक संभव दशा को एक संख्या दे दी जाए और संगतता अथवा असंगतता (जिन्हें प्राय: मैच अथवा मिसमैच कहा जाता है) को OTUs के बीच की प्रत्येक तुलना के लिए "+" अथवा "–" के रूप में रिकार्ड किया जा सकता है।

5. एक अन्य वैकल्पिक विधि यह होगी कि जब किसी लक्षण को अनेक दशाओं में कोडित किया जा सके तब बहुदशा कोडिंग का उपयोग किया जाए। ऐसे मामलों में प्रत्येक दशा की एक संख्यात्मक प्रतीक अथवा कोड द्वारा दर्शाया जा सकता है जैसे कि 1, 2, 3, आदि जो इस बात पर निर्भर होगा कि विभिन्नता का परास कितना है। इस प्रकार यदि हम एक बार फिर से कीट की क्यूटिकल के रंग को देखें तो उसके विभिन्न रंगोंको अलग-अलग कोड दे सकते हैं जैसे कि सफेद = 1, भूरा = 2, काला = 3, आदि। गुणात्मक लक्षणों जैसे कि बाल, क्यूटिकल आदि के रंगों के अलावा बहुदशा कोडिंग मात्रात्मक लक्षणों में भी उपयोगी हो सकती है जैसे कि आष्ठों की संख्या, सीटाओं (शूकों) की संख्या, शरीर की लंबाई, शरीर की चौड़ाई, निशानों की संख्या, तथा अन्य लक्षण जिनमें मापे निहित हों। विभिन्नता के परास के लिए एक कोड बना लिया जाता है, जैसे कि शरीर की लंबाई को 5–10 mm = 1, 11–15 mm = 2, 16–20 mm = 3, 21–25 mm = 4 आदि रूप में कोडि किया जा सकता है। यदाकदा किसी कारणवश हो सकता है कि तुलना करना संभव न हो या कि OTU s के किसी एक लक्षण के लिए आंकड़े न हों। ऐसी स्थितियों को NC (No Comparison) के रूप में कोडित किया जाता है।

6. अब OTUs को छांट लेने तथा लक्षण दशाओं एवं उनका कोडिंग निर्धारित कर लेने के बाद अगला कदम यह होगा कि OTUs में लक्षणों को गिनते जोड़ते हुए आकड़ें रिकार्ड किए जाएं। इन्हें फिर आगे एक प्राथमिक डाटा मेट्रिक्स (Data matrix) अथवा (t × n) मेट्रिक्स के रूप में प्रस्तुत किया जाए जिसमें t, OTUs को दर्शाता है तथा n लक्षणों को दर्शाता है, (चित्र 8.28क और 8.28ख)।

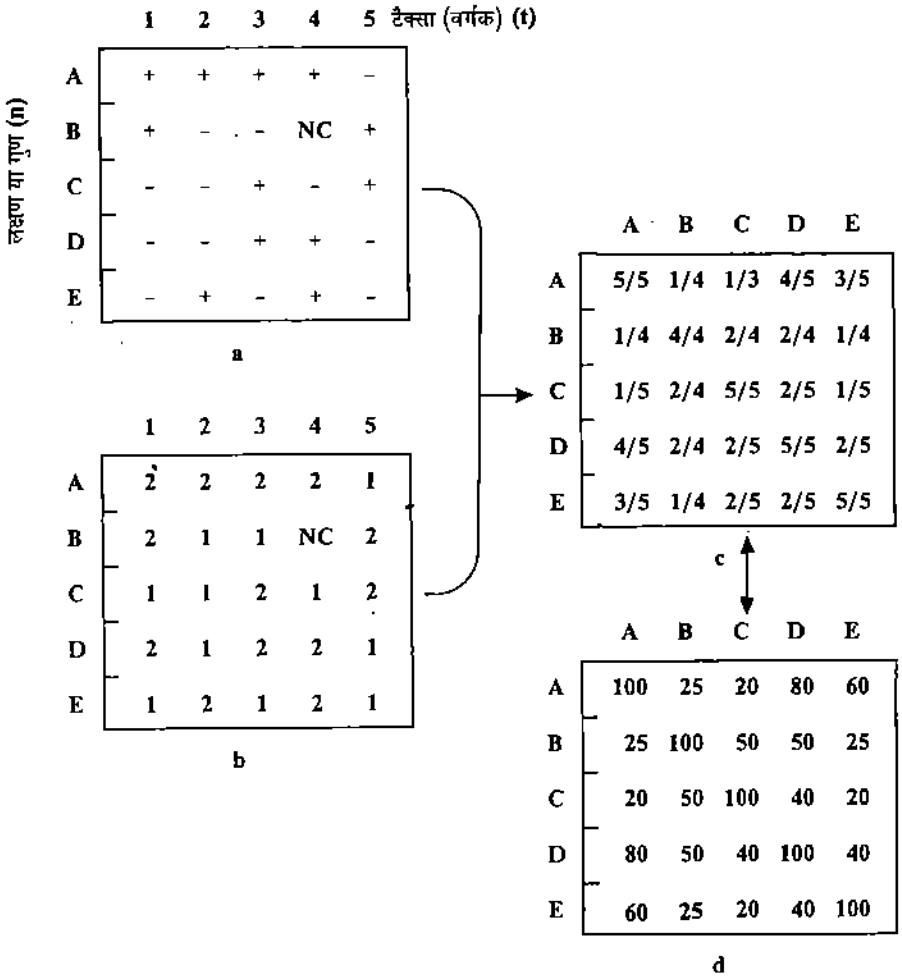

चित्र 8.28 : क तथा ख प्राथमिक डाटा मेट्रिक्स (t × n) ग–घ समानता के गुणांक (colficient of similarity) का मेट्रिक्स, जिसका परिकलन भिन्नों fractions (ग) तथा प्रतिशत (percentage) (घ) में किया गया है।

यदि हमने 50 OTUs का अध्ययन किया है और प्रत्येक में से 100 लक्षणों को गिना है तब हमें 50 × 100 = 50,000 सूचना इकाइयां प्राप्त होंगी। इस प्रकार भारी मात्रा में प्राप्त सूचना से संख्यात्मक वर्गिकी कंप्यूटर का उपयोग प्राय: पूर्णत: अनिवार्य हो जाता है।

7. अब अगले चरण में प्रत्येक OTU की बारी-बारी से सभी अन्य OTUs के साथ लक्षण दशाओं के संदर्भ में तुलना की जाती है (चित्र 8.28ख)। ऐसा कर सकने के लिए समानता की मात्रा कि तुलना करने का कोई साधन होना जरूरी है। इसे समानता के गुणांक का (coefficiet of similarity) परिकलन करके प्राप्त किया जाता है, यह गुणांक (S) होता है। S=m/n निकाला जाता है, जिसमें "m" होता है OTUs के जोड़ों के बीच लक्षण के मिलानों (सुमेलनों) की संख्या तथा n होता है लक्षणों की पूर्ण संख्या (NC प्रविष्टियों को छोड़ दिया जाता है) समानता का गुणांक इस तरह प्रस्तुत किया जाता है जिस तरह चित्र 8.28 ग तथा घ में एक तालिका के रूप में समानता मेट्रिक्स (similarity matrix) में दिखाया गया है जिसमें प्रत्येक OTU की, हर अन्य OTU के साथ तुलना की गई है।

OTUs के लिए समानता गुणांकों को भिन्नों के रूप में या जैसा कि प्राय: अधिकतर होता है दशमलव भिन्नों अथवा प्रतिशतताओं के रूप में दिखाया जाता है (चित्र 8.28घ तथा 8.29ख। चित्र 8.29 में हमने 10 OTUs (A-J) (n) तथा उनके अनुरूप दृश्यमान लक्षणों 1-10 (t) के एक परिकल्पित समानता मेट्रिक्स को लिया है।

n टैक्सोन वर्ग के (OTUS)

t लक्षण	A	B	C	D	E	F	G	H	I	J
A	100	53	80	63	62	82	50	83	50	60
B	53	100	55	57	57	55	86	56	87	56
C	80	55	100	87	62	64	85	51	86	62
D	63	57	62	100	74	63	56	65	56	96
E	62	57	64	74	100	64	56	67	56	72
F	82	55	85	63	64	100	54	87	52	65
G	56	86	51	56	56	54	100	54	85	65
H	83	56	86	63	67	87	54	100	54	67
I	50	87	50	56	56	52	85	54	100	55
J	60	56	62	96	72	65	65	67	55	100

चित्र 8.29 : 10 OTUs (A-J) तथा उनके अनुरूपी दृश्यमान लक्षणों (t) का परिकल्पित समानता मेट्रिक्स।

8. आइए देखें कि समानता के गुणांक को प्रतिशतता में किस प्रकार परिकलित किया जाता है। चित्र 8.28ग में OTUs A तथा B को ले लीजिए। आप देखेंगे कि इसके हर चार लक्षणों में से एक लक्षण मेल खा जाता है, अत: यहां उनके बीच की समानता 1/4 × 100=25% हुई। स्पष्ट है कि यदि समानता 100 प्रतिशत हुई, तो इसका अर्थ होगा कि उस छांटे गए लक्षण के संदर्भ में दोनों समूह सर्वसमान हैं और 0 प्रतिशत का अर्थ होगा कि ये दोनों समूह पूर्णत: भिन्न हैं। यहां जिस प्रकार के संख्यात्मक वर्गिकीय विश्लेषण का वर्णन किया गया वह अनेकानेक संभव तकनीकों में सबसे सरल है। इसे एकल लग्नता गुच्छ विश्लेषण (single linkage cluster analysis) कहा जाता है, इसमें समानता की माप मेल/बेमेल (मैच/मिसमैच) पर आधारित होती है। चित्र 8.29 में, जैसा कि हमने पहले ही कहा है हमने एक परिकल्पित समानता मेट्रिक्स चुना है जिसमें 10 OTUs (A-J) n और उनके अनुरूपी दृश्यमान लक्षण (1-10) (t) लिए गए हैं, जिनके द्वारा आपको समझाया जा सके कि एकल लगन्ता गुच्छा विश्लेषण के द्वारा समानता माप की और आगे किस प्रकार निकाली जा सकती है।

9. आप देखेंगे कि चित्र 8.28घ तथा 8.29 में विकर्ण रेखा की ऊपरी तथा निचली दिशाओं में जो अंक दिए गए हैं वे एक दूसरे के दर्पण प्रतिबिंब हैं। अत: केवल एक ही अंश को दिखाने का प्रचलन बन गया है जैसा कि हमने चित्र 8.30 में दिखाया है।

10. अब अगला चरण यह है कि समानता मेट्रिक्स को इस प्रकार पुन: व्यवस्थित किया जाए कि निकटतम समानता दर्शाने वाले OTUs के समूहों को एक साथ गुच्छित कर लिया जाए। ऐसा कर सकने के लिए भी अनेक तकनीकें उपलब्ध हैं। मगर जैसा कि हमने थोड़े से ही OTUs को लिया है उनके अनुरूपी

t (OTUS)

विरोधक	A	B	C	D	E	F	G	H	I	J
A	100									
B	53	100								
C	80	55	100							
D	63	57	62	100						
E	62	57	64	74	100					
F	82	55	85	63	64	100				
G	50	86	51	56	56	54	100			
H	83	56	86	65	67	87	54	100		
I	50	87	50	56	56	51	85	54	100	
J	60	56	62	96	72	65	55	67	55	100

चित्र 8.30 : इसमें चित्र 8.29 के समानता मेट्रिक्स का केवल एक ही पार्श्व दिखाया गया है क्योंकि 100 की दोनों ओर दर्पण प्रतिबिंब संख्याएं होती है।

लक्षण भी थोड़ें ही संख्या में हैं इसलिए चित्र 8.29 पर निगाह डालने मात्र से यह संभव है कि ACF तथा H के बीच, DE तथा J के बीच और पुन: B, G तथा I के बीच उच्च समानता मात्रा को तत्काल देखा जा सकता है। इस तरह मेट्रिक्स को सुव्यवस्थित करके उच्च समानता वाले ब्लाकों का निर्माण किया जा सकता है जैसा कि चित्र 8.31 में दर्शाया गया है। मगर प्राय: समानता मेट्रिक्स के आंकड़े बहुत ज्यादा होते हैं जिससे कि उच्च समानता के ब्लाकों को केवल कंप्यूटरों की मदद से ही आकलित किया जा सकता है।

	A	C	F	H	J	D	E	G	I	B
A	100									
C	80	100								
F	82	85	100							
H	83	86	87	100						
J	60	62	65	67	100					
D	63	62	63	65	96	100				
E	62	64	64	67	72	74	100			
G	50	51	54	54	55	56	56	100		
I	50	50	52	54	55	56	52	85	100	
B	53	55	55	56	56	57	57	86	87	100

चित्र 8.31 : समानता मेट्रिक्स को इस प्रकार पुन: व्यवस्थित किया जाता है ताकि OTUs के गुच्छों को उनकी समानता के आधार पर दर्शाया जा सके।

चित्र 8.31 में दर्शाए गए समानता ब्लाक सहभागी लक्षण-दशा की प्रतिशतता पर आधारित हैं और उन्हें आलेखीय रूप में एक वृक्ष अथवा डेड्रोग्राम के द्वारा दर्शाया जा सकता है जिसे फीनोग्राम (phenogram) कहते हैं (चित्र 8. 32)। इस प्रकार के आंकड़ा प्रस्तुतिकरण में प्रकट लक्षणी समान OTUs को क्षैतिज रेखाओं से परस्पर जोड़ा जा सकता है जिन्हें एक उदग्र मापक्रम में समानता की मात्राएँ दर्शायी गई होती हैं और जिन्हें, जैसा कि आप देख सकते हैं, प्रतिशतता में व्यक्त किया गया है। समान OTUs के स्पष्ट दिखने वाले गुच्छों को फीनॉन (Phenon) कहते हैं तथा वे स्तर, जो उदग्र मापक्रम पर समानता की मात्रा दर्शाते है, फीनॉन रेखाएं कहलाते हैं।

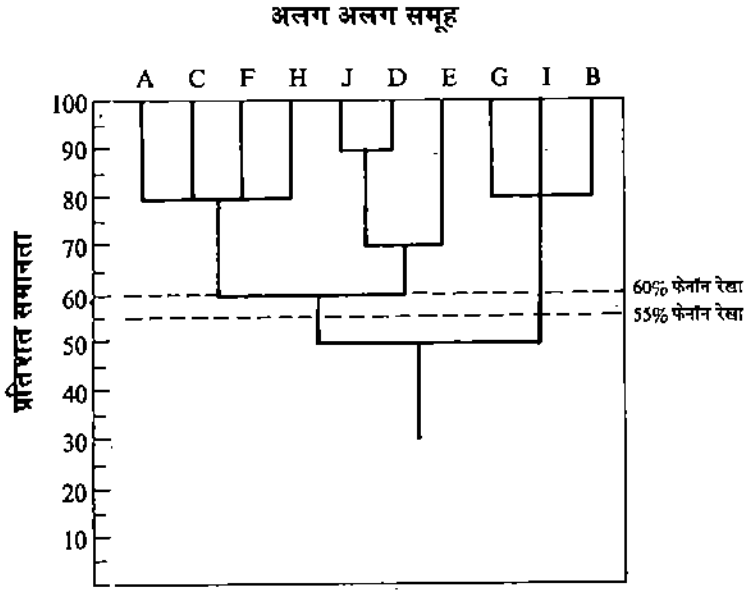

चित्र 8.32 : यह एक फीनोग्राम है जिसे चित्र 8.31 में दी गई सूचना के आधार पर बनाया गया है।

परिकलित डेंड्रोग्राम (चित्र 8.32) में A, C, F तथा H वाले OTUs का एक फीनॉन बन जाता है जिनमें 80-87% समानता है। D तथा J में 96% समानता है, और ये दोनों E के साथ लगभग 70% के स्तर पर जुड़े होते है। G, I तथा B 85-87% के स्तर पर जुड़े है। J, D तथा E द्वारा बना समूह A, C , F तथा H से 60% की फीनॉन रेखा पर जुड़े हैं। इन सातों से अधिक दूरी पर है G, I तथा B जिनसे वे केवल 50-57% की समानता पर जुड़े हैं।

ऐसे डेंड्रोग्रामों को देखकर एक भावना तो यही उठती है कि इन्हें जातिवृत्तीय वृक्ष के रूप में मान लें या कम से कम उनके निकट का तो मान ही लें, मगर ऐसा करना न्यायोचित नहीं है। मुख्यत: यही कारण है और यह भी कि जीनस, उपफेमिली, फेमिली आदि श्रेणियां व्यक्तिनिष्ठ प्रकृति की हैं इसलिए फीनॉन रेखाओं के स्तरों को स्पीशीज स्तर के ऊपर के ही टेक्सॉनों के परिसीमन के लिए इस्तेमाल किया गया है। उदाहरण के लिए, लगभग 70 प्रतिशत समानता वाले फीनॉन को जीनस पद का माना जा सकता है, तथा उदाहरण के लिए 50 प्रतिशत वाले को फेमिली का दर्जा दिया जा सकता है। इस विधि से वर्गिकी पदानुक्रम की विविध श्रेणियों के स्तरों के मानकीकरण की एक स्पष्ट विधि प्राप्त हो जाती है, मगर ऐसी विधि एक यादृच्छिक विधि ही होगी। फीनॉन रेखाओं के न्यूनाधिक रूप में स्थिर स्तरों के द्वारा इस प्रकार जीनसों तथा फेमिली का परिसीमन किया जाए या नहीं, इस बारे में अलग-अलग तर्क दिए जा सकते हैं।

आजकल संख्यात्मक वर्गिकी की कई अन्य तकनीकें उपलब्ध हैं, जिनमें से कुछ के विशिष्ट उद्देश्य होते हैं।

संख्यात्मक वर्गिकी की विधियों पर आधारित वर्गिकरणों में लगभग निश्चय ही कुछ जातिवृत्तीय घटक पाया जाता है, ऐसा इसलिए क्योंकि वे कुछ हद तक समान पूर्वजता के कारण ही अपनी समानताओं के फलस्परूप प्राप्त होते हैं।

जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है, संख्यात्मक वर्गिकी के उपयोग में लिए जाने वाले लक्षणों को न तो कोई प्रकटदर्शी महत्व ही दिया जाता है और न ही कोई अतिरिक्त महत्व। फिर भी, ऊपर दी गई प्रक्रिया एक बार पूरी हो जाने पर और उसके आधार पर वर्गीकरण बना लेने के बाद यह संभव हो जाता है कि उपयोग में लाए गए लक्षणों पर एक बार फिर से गौर कर लिया जाए और निर्धारित कर लिया जाए कि कौन से लक्षण अच्छे हैं। अर्थात् वे कौन से लक्षण हैं जो स्थिर हैं तथा अन्य लक्षणों से उच्च सहसंबंध वाले हैं। तब फिर इन लक्षणों को टेक्सॉनों के निदान में तथा कुंजियों (Keys) द्वारा पहचानने में विशेष महत्व दिया जाता है। इस प्रकार के महत्व दिए जाने को "अनुभवगत" अथवा "सहसंबंध भारण" (co-relation weighting) कहते हैं।

संख्यात्मक वर्गिकी में कंप्यूटर तकनीकों के विकास के साथ-साथ अन्य विभिन्न अनुप्रयोग भी आ गए हैं जैसे कि कुंजी बनाने में तथा स्वचलित अभिनिर्धारण प्रोग्रामों में, वर्गिकीय आंकड़ों के भंडारण एवं उनकी पुन: प्राप्ति में तथा क्रमविकासीय दिशामार्गों के अध्ययनों में होने वाले उपयोग में।

दिए गए आंकड़ों के लिए प्रतिशतता में समानता गुणांक मेट्रिक्स तैयार कीजिए।

	A	B	C	D
A	+	−	+	−
B	+	+	+	−
C	+	+	−	+
D	−	+	+	+

8.13 सारांश

- संवर्गिकी जीवों के अभिज्ञान और क्रमविकास का अध्ययन है।
- जैवसंवर्गिकी और संवर्गिकी एक दूसरे के पर्याय हैं हालांकि जैव संवर्गिकी में मुख्यत: जीवधारियों के स्पीशीज़ निर्माण के अध्ययन पर ज़ोर दिया जाता है।
- वर्गिकी अपनी संकल्पनाओं के लिए संवर्गिकी तथा जैव संवर्गिकी पर बहुत अधिक निर्भर होती है, तथा इसमें जीवों का वर्गीकरण एवं उनके नामकरण का अध्ययन शामिल है।
- किसी भी एक विशिष्ट प्राणि-समूह का अभिनिर्धारण तीन मुख्य चरणों में से गुजरता है 1) ऐल्फ़ा (α) वर्गिकी, 2) बीटा (β) वर्गिकी तथा 3) गामा (γ) वर्गिकी।
- ऐल्फ़ा वर्गिकी वह स्तर है जिस पर विभिन्न स्पीशीज़ के लक्षण स्पष्ट किए जाते एवं उनको अपना-अपना नाम दिया जाता है।
- बीटा वर्गिकी वह स्तर है जिस पर विभिन्न स्पीशीज़ को निम्नतर एवं उच्चतर श्रेणियों की एक प्राकृतिक प्रणाली में रखा जाता है।
- गामा वर्गिकी वह स्तर है जिस पर अंत:स्पीशीज़ विभिन्नता का विश्लेषण किया जाता है तथा जीवधारियों के क्रमविकासीय अध्ययन किए जाते हैं।
- नववर्गिकी में, जिसे आधुनिक वर्गिकी भी कहा जाता है, जीवधारियों के अभिनिर्धारण में मात्र आकारिकीय सूचना के साथ-साथ अन्य जीवविज्ञानीय क्षेत्रों से भी आंकड़े इस्तेमाल में लाए जाते हैं जैसे कि इलेक्ट्रॉन माइक्रोस्कोपी, भ्रूणविज्ञान, पारिस्थितिकी, व्यवहारिकी, जैवरसायन तथा सांख्यिकीय वर्गिकी।

इलेक्ट्रॉन माइक्रोस्कोपी — इसमें स्कैनिंग इलेक्ट्रॉन माइक्रोस्कोप तथा ट्रांसमिशन इलक्ट्रॉन माइक्रोस्कोप की सहायता से आकारिकीय लक्षणों की परासंरचना का अध्ययन किया जाना शामिल है। ये अध्ययन निकटत: संबंधित एवं सिबलिंग स्पीशीज़ के अभिनिर्धारण में उपयोगी सिद्ध हुए हैं।

भ्रूणविज्ञानीय विधि — इस विधि में प्राणियों के अंडों, भ्रूणों तथा लार्वों अथवा बाल्यावस्थाओं का अध्ययन करना शामिल है। यह अध्ययन उन प्राणियों के अभिनिर्धारण में बहुत महत्वपूर्ण है जिनकी अपरिपक्व अवस्थाएं वयस्कों से बहुत भिन्न होती हैं।

व्यवहारिकीय विधि — इस विधि में विभिन्न प्राणि स्पीशीज़ को उनके व्यवहार के आधार पर अभिनिर्धारित किया जाता है जैसे कि उनके विभिन्न मैथुन स्वर, जीवप्रदीप्ति के नमूने तथा घोंसला निर्माण या जाला निर्माण आदि अन्य व्यवहारपरक गतिविधियां।

कोशिकाविज्ञानीय विधि — इस विधि में प्राणियों को DNA संकरण की मात्रा के अंतरों तथा क्रोमोसोमों की संख्या, उनकी आकृतियों तथा इन दोनों का एक साथ (केरियोटाइपों) अध्ययन करके पाए जाने वाले अंतरों के आधार पर अभिनिर्धारित किया जाता है।

जैवरासायनिक विधि — इस विधि में प्राणियों को उनकी आपस में प्रदर्शनीय जैवरासायनिक समानताओं तथा असमानताओं के आधार पर अभिनिर्धारित किया जाता है। ऐसे अभिनिर्धारणों के उपयोग में लायी जाने वाली विविध तकनीकें इस प्रकार हैं : 1) क्रोमैटोग्राफी, 2) इलेक्ट्रोफोरेसिस, 3) रोधविज्ञानीय तकनीकें।

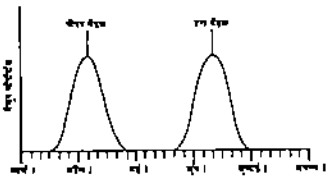

संख्यात्मक वर्गिकी — यह विधि इलेक्ट्रॉनिक डिजिटल कंप्यूटरों पर बहुत ज्यादा आधारित है। इन कंप्यूटरों से बहुसंख्यक प्राणियों के विविध लक्षणों (OTUs) के बहुत बड़ी संख्या में संख्यात्मक आंकड़ों की तुलना की जाती एवं उनका सांख्यिकीय विश्लेषण किया जाता है।

8.15 अंत में कुछ प्रश्न

1. नीचे दिए गए ग्राफ का अध्ययन कीजिए। इसमें कौन सी विधि दर्शायी गई है। क्या कोई जैवसंवर्गिकीविद् इस ग्राफ से कोई निष्कर्ष निकाल सकता है?

   इस ग्राफ में मेंढकों की दो स्पीशीज़ का प्रजनन काल दर्शाया गया है।

2. नीचे दिए गए क्रोमैटोग्रामों के आधार पर बताइए कि कौन से दो पक्षी अधिक निकटत: संबंधित हैं।

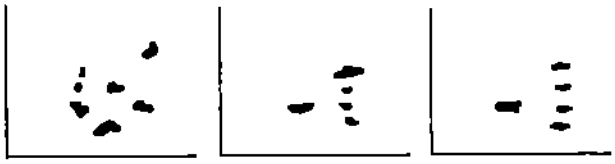

3. नीचे दिए गए चित्र का अध्ययन कीजिए। इसमें कशेरुकियों के साइटोक्रोम C के ऐमीनों एसिड क्रम के अनुरूप खंडों को दिखाया गया है। चित्र के पार्श्व में दी गयी संख्याएं श्रंखला में इन क्रमों का स्थान बताती हैं। अक्षरों द्वारा श्रंखला के विशिष्ट ऐमीनों ऐसिड दर्शाए गए है।

(इस चित्र के आधार पर आगे दिए गए प्रश्न B i, ii, iii तथा iv के उत्तर लिखिए।

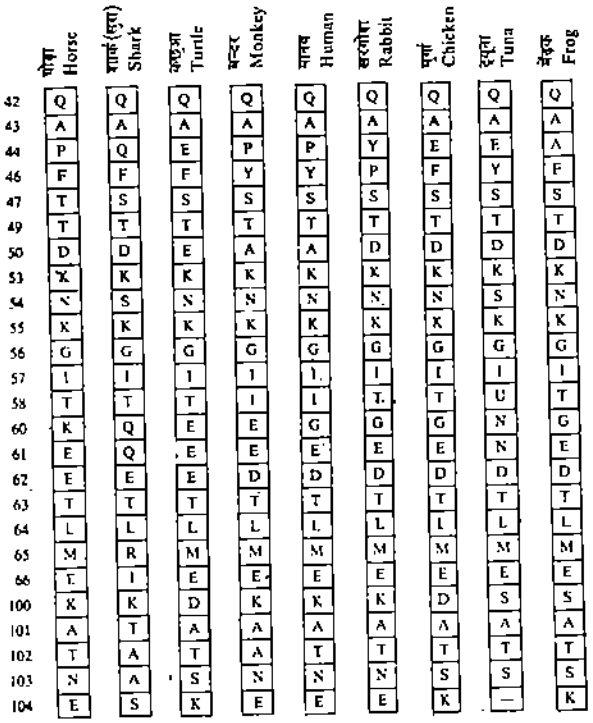

एक चार्ट जिसमें नौ कशेरुकियों के साइटोक्रोम C के ऐमीनो अम्लों के क्रम के अनुरूपो खंड दिखाए गए हैं। चित्र के पार्श्व में दी गई संख्याएं श्रृंखला में इन क्रमों के स्थान को दर्शाती है। दिए गए अंग्रेजी के अक्षर श्रृंखला में विशिष्ट अम्लों का संकेत देते हैं।

i) इस प्रकार के आंकड़ें किस विधि में प्राप्त होंगे?

ii) अपने आंकड़ों को एक सारणी में लिखिए। इसमें दो शीर्षक बनाइए – स्पीशीज और विभिन्नता संख्या। प्रत्येक कशेरुकी के लिए उन ऐमीनो एसिड क्रमों को गिनिए जो मानव के क्रम से भिन्न हैं और उन्हें अपनी सारणी में सूचीवद्ध कीजिए।

iii) आठ कशेरुकियों के क्रमों को उनकी मानवों के प्रति क्रमविकासीय निकटता की मात्रा के अनुसार, अवरोही क्रम में लिखिए।

iv) क) सभी सूचिवद्ध जीवों में से कौन सा एक जीव मानव के अधिकतम निकट है? ख) और कौन सा एक जीव मानव से सबसे दूर से संबंधित है?

4. निम्न में से सही कथनों के सामने दिए गए कोष्ठकों के बीच सही का निशान (✔) लगाइए :

क) जैव संवर्गिकी में किसकी प्रक्रिया का अध्ययन किया जाता है?

i) वर्गिकी ( )

ii) स्पीशीज़ निर्माण ( )

iii) आनुवंशिकी ( )

iv) परिविर्धन ( )

ख) एक संवर्गिकीविद् DNA संकरण से किस-किस के लिए आंकड़ों का उपयोग कर सकता है?

i) स्पीशीज़ में भावी परिवर्तनों की पूर्व घोषणा ( )

ii) यह निर्धारण करना कि कोई स्पीशीज़ अपने समान पूर्वज से कब अलग हुई ( )

iii) विभिन्न स्पीशीज़ के बीज जातिवृत्तीय समानता को पहचानना ( )

iv) जीवन के उद्भव का स्पष्टिकरण ( )

5. यदि लिए गए OTUs की संख्या 150 हो तथा ध्यान में रखे जा रहे लक्षण 100 हों तो बताइए कि कंप्यूटर में भरी जा रही सूचना इकाइयां कितनी होंगी?

8.15 उत्तर

बोध प्रश्न

1. क) जैव संवर्गिकीविद् ख) संवर्गिकीविद् ग) वर्गिकीविद्

2. क) α ख) β ग) γ

3. 1. ग, 2. घ, 3. क, 4. ख

4. जीवविज्ञानी के लिए संभव नहीं है कि वह मात्र केरियोटाइपों के आधार पर प्राणियों की पहचान कर सके, ऐसा इसलिए क्योंकि अनेक विभिन्न प्राणियों के केरियोटाइप समान हो सकते हैं। उसे अन्य वर्गिकीय लक्षणों पर भी ध्यान देना चाहिए, जैसे कि भ्रूणविज्ञान, जैवरसायन आदि।

5. क्रोमैटोग्राफी का उपयोग विभिन्न प्राणियों की ऐमीनो एसिड संघटना का पता चलाने में किया जाता है। इसके बाद विभिन्न प्राणियों की ऐमीनों एसिड संघटनाओं की तुलना की जाती है जिनमें समान संघटना पायी जाती है उन्हें अधिक निकटत: संबंधित माना जाता है।

6. चूंकि Bulinus की दोनों समष्टियों के प्रोटीन नमूने सर्वसमान हैं। इसलिए जीवविज्ञानी मान कर चल

सकता है कि ये दोनों एक ही स्पीशीज़ में आती हैं।

7. एंटिजन + एंटीबॉडी = अवक्षेप

8.

	A	B	C	D
A	100	75	25	25
B	75	100	50	50
C	25	50	100	50
D	25	50	50	100

	A	B	C	D
A	4/4	3/4	1/4	1/4
B	3/4	4/4	2/4	2/4
C	1/4	2/4	4/4	2/4
D	1/4	2/4	2/4	4/4

अंत में कुछ प्रश्न

1. ग्राफ़ को देखने पर जैवसंवर्गिकीविदों को पता चल जाएगा कि मेंढक की समष्टियां अलग-अलग कालों पर प्रजनन करती हैं, जिससे संकेत मिलता है कि इन दोनों समष्टियों में व्यवहार के आधार पर जनन पार्थक्य हो चुका है। अत: वे निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि ये दो मेंढक हो न हो अलग-अलग स्पीशीज़ के सदस्य हैं।

2. B और C को अधिक निकटत: संबंधित माना जा सकता है, क्योंकि उनके क्रोमैटोग्राफिक नमूने बहुत समान हैं। फिर भी एक अंतिम सुनिश्चित अभिनिर्धारण के वास्ते अन्य विधियों से भी आंकड़े प्राप्त करने चाहिए।

3. i) इस प्रकार के आंकड़े जैवरासायनिक विधि से प्राप्त होंगे।

   ii) मानव के संदर्भ में ऐमीनो एसिड क्रम में अंतर

स्पीशीज़

मानव	घोड़ा	शार्क (सुरा)	कछुआ	बंदर	खरगोश	मुर्गा	ट्यूना	मेंढक
0	6	14	8	1	4	7	9	8

अमीनो एसिड क्रम में मनुष्यों के सापेक्ष अन्तर

iii) मानवों से निकटता की मात्रा के अनुसार अवरोही क्रम में रखे गए कशेरुकी स्पीशीज़

शार्क (सुरा)	ट्यूना	कछुआ	मेंढक	मुर्गा	घोड़ा	खरगोश	बंदर	मानव
14	9	8	8	7	6	4	1	0

अवरोही क्रम में कशेरूकीयों का वर्गीकरण जो निकटता की डिग्री के अनुसार व्यवस्थित हैं।

iv) क) चार्ट में दिए गए आंकड़ों के आधार पर बंदर ही मनुष्य के निकटतम संबंध वाला जान पड़ता है, तथा

   ख) शार्क सबसे दूर के संबंध वाली जान पड़ती है।

4. क) ii) ख) iii)

5. 15,000 सूचना इकाइयां

शब्दावली

ऐकीन (ACHENE): एक शुष्क अस्फुटनशील, एकबीजी फल, जो एकल कार्पल से बनता है तथा जिसमें

बीज फल भित्ति से पृथक् होता हैÐ

एंटीबॉडी (Antibody): एक रक्त प्रोटीन जो शरीर में किसी एंटीजन के प्रवेश के कारण लिम्फोसाइट कोशिकाओं से बनता है। एंटीबॉडी का प्रयास होता है कि वह विशिष्टता के आधार पर एंटीजेन के साथ जुड़ कर नष्ट कर दे।

एंटीजन (Antigen): वह पदार्थ जो एंटीबॉडियों के उत्पादन को उत्तेजित करता है।

एनोट्रोपस (Anatropous): एक ऐसा बीजांड जिसमें माइक्रोपाइल्स फ्यूनिकल की अधर दिशा के समीप बना होता है तथा जिसमें कैलेजा विपरीत सिरे पर होता है।

ऐरेकिनड (Arachnids): फाइलम आर्थोपोडा के एक विशिष्ट क्लास के सदस्य जिनमें किलनी, मकडियां, डिडियां तथा बिच्छु आते हैं।

आर्थोपोड (Arthropods): एक फाइलम जिसमें प्राणियों में विशिष्टता के तौर पर संधियुक्त उपांग तथा दृढ़ बाह्य कंकाल होता है। उदाहरण हैं केकड़े, बार्नेकल, कीट, मकड़ियां, आदि।

एवीज (Aves): एक क्लास जिसमें पक्षी आते हैं।

व्यवहारात्मक विभिन्नताएं (Behavioural variations): निकटत: संबंधित जीवों के बीच व्यवहार में अंतर।

जीवसंदीप्ति (Bioluminiscence): सजीव जीवधारियों में रासायनिक अभिक्रिया के फलस्वरूप पैदा होने वाला प्रकाश (जैसे कि जुगनुओं में)

जैवसंवर्गिकी (Biosystematics): जनन क्षमता तथा जीन प्रवाह का अध्ययन।

सीटेसियन (Cetaceans): ममेलिया के आर्डर सीटेसिया के सदस्य– व्हेल, सूंस, डाल्फिन आदि।

कीलिपौड (Cheliped): आर्थोपोड में पहला पाद जिसमें आहार पकड़ने तथा सुरक्षा के वास्ते एक नखर होता है।

क्रोमैटोग्राफी (Chromatography): किसी एक रासायनिक पदार्थ के मिश्रण के उसके घटक में पृथक्करण की क्रिया। यह पृथक्करण इनके साइज़ों तथा चार्जों पर आधारित होता है जिनके परिणामस्वरूप उनकी गति में अंतर के कारण वे अलग-अलग हो जाते हैं।

स्कंदन (Coagulation): गर्मी अथवा विषों के कारण प्रोटीनों का ठोस हो जाना अथवा जम जाना। यह परिवर्तन अनुत्क्रमणीय है (यानि उल्टी दिशा में नहीं हो सकता)।

सीनोसिटिक (Coenocytic): एक बहुकेन्द्रीकयुक्त कायिक कोशिका।

सांद्रण प्रवणता (Concentration gradient): किसी पदार्थ के सांद्रण में दूरी बढ़ते जाने के साथ-साथ होने वाले परिवर्तन।

क्रस्टेशिया (Crustacea): आर्थोपोडा का एक क्लास जिसमें केकड़े, झींगी, लाब्स्टर, बार्नेकल आदि आते हैं।

क्यूटिकल (Cuticle): जीवधारी की बाहरी सतह से स्रावित होने वाले एक मोमिया जलरोधी पदार्थ की परत।

साइटोक्रोम (Cytochrome): एक इलेक्ट्रॉन वाहक अणु जो एक प्रोटीन, एक पारफाइरिन वलय तथा एक धातु आयन का बना होता है।

डिप्लाइड (Diploid): प्रति कोशिका दो संपूर्ण क्रोमोसोम सेटों का होना।

ड्रूप (Drupe): अष्ठिल, एक मांसल फल जिसमें एक पतला एपिकार्प, एक मांसल मीजोकार्प, तथा एक कड़ा एंडोकार्प होता है और भीतर एक अकेला बीज होता है। बीज और एंडोकार्प मिलकर गुठली बनाते हैं, जैसे अलूचा।

इलेक्ट्रोफोरेसिस (Electrophoresis): विद्युत अपघटन– विद्युत् क्षेत्र में चार्जयुक्त कणों का प्रवाह। इस विधि को बहुत प्रकार के मिश्रणों के घटकों को पृथक् करने में व्यापक रूप में इस्तेमाल किया जाता है।

एंडोथीसियम (Endothesium): परागकोश की दीवार की एक तंतुमय परत।

फाइब्रिन (Fibrin): रक्त स्कंदन में सहायता करने वाले लम्बे चिपकदार धागे।

फाइब्रिनोजन (Fibrinogen): रक्त के थक्के (clot) के बनने के वास्ते अनिवार्य एक प्रोटीन।

फॉलिकल (Follicle): अनेक बीजों वाला एक शुष्क फल जो एक एकल कार्पल से बनता है तथा जो विस्फुटन के समय एक पार्श्व में लंबाई में फटता है।

फासिल (जीवाश्म) (Fossils): किसी समय जीवित रहे जीवधारी के अश्मीभूत अवशेष अथवा अंश जो धरती की पपड़ी की चट्टानों में परिरक्षित हो गए हैं।

गैस्ट्रोपोड (Gastropods): मौलस्का के एक क्लास के सदस्य, जिनमें स्लग, न्यूडिब्रैंक आदि आते हैं।

जीन प्रवाह (Gene Flow): एक जीन पूल में से दूसरे जीन पूल में जीनों का चला जाना।

जीन पूल (Gene Pool): एक समष्टि में सभी लक्षणों के कुल मिलाकर जीन।

हेबिटाट (Habitat): आवास।

हैप्लाइड (अगुणित) (Haploid): प्रति कोशिका क्रोमोसोमों का एक एकल सेट।

होमिनिड (Homonid): प्राइमेटों का एक उपवर्ग जिसमें मानव तथा उसके तात्कालिक पूर्वज आते हैं।

संकरण (Hybridisation): असमान आनुवंशिक संरचना का दो व्यष्टियों के बीच प्रजनन करा कर संकर का पैदा करना।

हाइमेनॉप्टेरा (Hymenoptera): कीटों का एक आर्डर जिसमें मधुमक्खी, ततैये, चीटियां, आदि आते हैं।

लार्वा (Larva): प्राणी की अपरिपक्व अवस्था जो अपने स्वरूप एवं जीवन शैली में वयस्क से बहुत भिन्न होती है।

लेपिडॉप्टेरा (Lepidoptera): कीटों का एक आर्डर जिसमें तितलियां और शलभ आते हैं।

लॉक्यसूलिसाइडल (Loculicidal): एक फल जो कार्पलों की मध्यशिराओं पर से फटता है।

मार्सुपियल (Marsup ial): ऐसे स्तनी जिनके बच्चों का जन्म उनकी आरंभिक परिवर्धन-अवस्था पर ही हो जाता है, तथा उनका शेष परिवर्धन अपनी माँ के पेट की एक थैली मार्सुपियम में सम्पन्न होता है। जहां वे अपनी पूरी परिवर्धन प्रक्रिया के दौरान चूचक्क nipple से जुड़े रहते हैं। उदाहरण : कंगारू (Kangaroo)।

मौलस्क (Molluses): वह फ़ाइलम जिसमें कोमल शरीर वाले प्राणी आते हैं, उनमें एक पेशीय पाद तथा एक मेंटल होता है, इस मेंटल से प्राय: एक कवच का स्राव हुआ होता है। उदाहरण : सीपी, घोंघे, स्किवड, आदि।

आकारिकी (Morphology): जीव का बाहरी तथा भीतरी स्वरूप।

जातिवृत्तीय वृक्ष (Phylogenetic tree): जीवधारियों के बीच निष्कर्ष निकाले गए क्रमविकासीय संबंध का मॉडल।

जातिवृत्त (Phylogeny): क्रमविकासीय इतिहास।

प्राइमेट्स (Primates): स्तनियों का एक आर्डर जिसमें बंदर, मानव आदि आते हैं।

पूर्वभ्रूण (Proembryo): कम संख्या में मौजूद कोशिकाओं का एक समूह जो जाइगोट (zygote) के विभाजन शुरू होने से बनता है, और उसकी किसी एक अथवा कुछ कोशिकाओं से खास भ्रूण बनता है।

जनन पार्थक्य (Reproductive isolation): पूर्वत: परस्परिजनन करते रहे जीवों में अब परस्पर संतान पैदा करने की क्षमता का समाप्त हो जाना।

रिजॉल्यूशन (Resolution): माइक्रोस्कोपों की तफसीलों को दिखा सकने की क्षमता।

सीरमविज्ञान विधियां (Serological methods): सूक्ष्मजीवों तथा वाइरसों, उनके रासायनिक घटकों, एवं उनके एक दूसरे से संबंधों को पहचानने की एक विधि। इनमें से एक तो रक्त में एंटीजन की तरह काम करता है तथा इसके प्रति दूसरे की क्रिया का अध्ययन किया जा सकता है।

सीटा (Seta): बाहरी शूकक।

स्पीशीज़ निर्माण (Speciation): एक नई स्पीशीज़ का बनना

टैपेटम (Tapetum): संवहनी पौधों में स्पेर-मातृ कोशिकाओं के समूह के चारों ओर बनी कोशिकाओं की एक आहार संपन्न परत। इसकी कोशिकाएं विघटित होकर अपना भीतरी पदार्थ विमुक्त कर देती हैं जिसे परिवर्धनशील स्पोर अवशोषित कर लेते हैं।

टेक्सॉन (Taxon, Taxa): पदानुक्रम की कोई एक श्रेणी जिनमें जीवों को विभाजित किया जाता है, जैसे स्पीशीज़, आर्डर, क्लास, आदि।

वर्गिकी (Taxonomy): जीवों को वर्गीकरण एवं अभिनिर्धारण की प्रक्रिया के द्वारा उनके अनुमानित संबंधों के अनुसार समूहित करने का शास्त्र।

टर्पीन (Terpenes): ये असंतृप्त हाइड्रोकार्बन वाष्पशील तेल होते हैं जिनमें आइसोप्रीन से व्युत्पन्न सीधी अथवा वलय संरचना होती है।

अंग्यूलेट (Ungulates) : खुरवाले स्तनी, जैसे ऊंट

यूरोडेला (Urodela) : ऐम्फीबियानों का आर्डर जिसमें "(Newts) न्यूटस" तथा मंड पप्पीज (mud puppies) आते हैं ।

पीतक कोश (Yolk Sac): ऐम्नियोट अंडों (स्थलीय कशेरुकियों के चार झिल्लीयुक्त अंडों) में वह झिल्ली जो पीतक को घेरे रहती है, और यह पीतक भ्रूण का आहार होता है।

NOTES

UGZY/BY-10
वर्गिकी तथा विकास
पाठ्यक्रम

खंड

3

विकास-I

इकाई 9

जैव विकास की अवधारणा 5

इकाई 10

जैव विकास के प्रमाण 23

इकाई 11

विकासीय परिवर्तन की प्रक्रिया 53

खंड 3 विकास-I

आपने इस पाठ्यक्रम के पिछले दो खंडों में वर्गीकरण-विज्ञान के इतिहास, साधनों और प्रवृत्तियों का अध्ययन किया। इस खंड में हम पाठ्यक्रम के दूसरे पक्ष, अर्थात् विकास की चर्चा करेंगे।

डार्विन ने विकास को रूपांतरित जातियों का उद्गम (descent with modification) कहकर परिभाषित किया। परन्तु आनुवंशिकी के सिद्धांतों तथा प्रक्रिया की समझ बढ़ने के साथ-साथ विकास की परिभाषा में भी परिवर्तन आए हैं। अब डार्विन की प्राकृतिक वरण या चयन की धारणा को जीनों की बारंबारता और एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक इनमें हुए परिवर्तनों द्वारा पूरी तरह समझाया जा सकता है। डार्विन को आनुवंशिकी की कोई जानकारी नहीं थी, लेकिन वह यह पूर्वानुमान लगा सके कि जीव-समूहों की विविधता अनुकूलन के लिए उत्तरदायी है। आज हम यह जानते हैं कि जीवसमूहों में यह विविधता उत्परिवर्तनों के कारण आती है और आनुवंशिक तत्वों के पुनर्योग से ये विविधताएं बढ़ती हैं। इन प्रक्रियाओं और प्राकृतिक वरण के कारण जीवसमूहों की जीन-बारंबारता में परिवर्तन आते हैं।

इस खंड में तीन इकाइयाँ हैं। इकाई 9 में आपको विकास की धारणा, विकासीय धारणाओं का प्रारंभ तथा विकास, और जैव विकास से जुड़े सिद्धांतों की जानकारी दी जाएगी। जीवन के उद्गम के बारे में सृष्टिवादियों (creationists) के दृष्टिकोण से भी अवगत कराया जाएगा। इकाई 10 में आपको विकास की अवधारणा की पुष्टि में ज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों से प्राप्त प्रमाणों के बारे में बताया जाएगा। ये प्रमाण जीव विज्ञान के विविध क्षेत्रों — जैसे जीवाश्मविज्ञान, जैव-भूगोल, शरीर-रचनाशास्त्र, भ्रूण विज्ञान, शरीर-क्रिया विज्ञान और जैवरासायनिकी से मिले हैं। इन प्रमाणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि विभिन्न वर्गों के अनेक जीवों की संरचना और अनुकूलन की प्रक्रिया में एक तरह की जैवीय निरंतरता है। इकाई 11 में डार्विन की विकास की धारणाओं के गहनतर पक्षों और इससे जुड़ी विभिन्न बातों की चर्चा की गई है। इस इकाई में अलग-अलग पर्यावरणीय परिस्थितियों में प्राकृतिक वरण या चयन की कार्य प्रणाली के सिद्धातों पर भी विचार किया गया है।

अगले खंड में हम प्राकृतिक वरण की कार्य प्रणाली के विशिष्ट उदाहरणों पर विचार करेंगे। हम जातियों के उद्गम यानि जाति उद्भवन और मानवीय विकास की नवीनतम धारणाओं का भी अध्ययन करेंगे।

उद्देश्य

इस खंड का अध्ययन करने के बाद आप :

- प्रारंभिक ग्रीक दार्शनिकों से लेकर अब तक विकास संबंधी अवधारणाओं के उद्गम और विकास का संक्षिप्त इतिहास प्रस्तुत कर सकेंगे,
- जीव विज्ञान की विविध शाखाओं से प्राप्त प्रमाणों के आधार पर विकास की पुष्टि कर सकेंगे,
- डार्विन के सिद्धांत के आधार पर प्राकृतिक वरण के माध्यम से विभिन्न अनुकूलनों के विकास को समझा सकेंगे,
- वंशानुगत विविधताओं के स्रोत बता सकेंगे, तथा
- विभिन्न प्रकार की चयनकारी शक्तियों की विशेषताएं समझा सकेंगे।

इकाई 9 जैव विकास की अवधारणा

इकाई की रूपरेखा

9.1 प्रस्तावना
उद्देश्य
9.2 डार्विन-पूर्व विकासीय विचार
ग्रीक योगदान
जेनेसिस के अनुसार जातियों का उद्गम
पुनर्जागरण के बाद का काल
लामार्कवाद
भूविज्ञान के अग्रणी विद्वान और डार्विन पूर्व
विकास संबंधी अवधारणाएं
बैरन कुवियर और तुलनात्मक शरीरचना
9.3 डार्विनवाद
डार्विनवाद : मूलभूत धारणाएं
डार्विन के योगदान का महत्व
9.4 नव-डार्विनवाद और आधुनिक संश्लेषण
मेंडेलवाद और डार्विनवाद
आनुवंशिकता का गुणसूत्रीय सिद्धांत और डार्विनवाद
9.5 आधुनिक संश्लेषण से अणु आनुवंशिकी तक
जैवरासायनिक आनुवंशिकी और विकास
आण्विक विकास
9.6 डार्विनवाद को चुनौतियां
9.7 सृष्टिवाद
9.8 सारांश
9.9 अंत में कुछ प्रश्न
9.10 उत्तर

9.1 प्रस्तावना

आदिम मानव ने जब से सभ्य जीवन की ओर अपना झिझक भरा पहला कदम उठाया, तब से अब तक वह निश्चय ही इस बात पर उधेड़-बुन में पड़ा रहा है कि उसका और उसके आसपास के विभिन्न प्रकार के जीवों का उद्गम कैसे हुआ? सजीव जगत की दो विशेषताओं ने उसे प्रभावित किया होगा। पहली, उसने अवश्य जीव जगत की विविधता पर ध्यान दिया होगा। दूसरे, उसने विविध प्रकार के जीवों के बीच निश्चित समानता भी महसूस की होगी। आखिर पक्षियों के विविध प्रकारों के बावजूद, वे मूलतः पक्षी ही हैं और इस प्रकार वे मछलियों अथवा चौपाए जानवरों से अलग हैं। स्पष्ट है कि जंतुओं और वनस्पतियों को पहचाने जाने वाले समूहों में वर्गीकृत किया जा सकता है।

मनुष्य को संभवतः इस समानता और विविधता का सबसे आसान और स्पष्ट कारण यही लगा होगा कि यह सब ईश्वर ने किया। प्राचीन भारतीय चिंतकों ने भी ईश्वर को ही सभी जीवों का कर्ता माना जिसने सीधे-सीधे ये प्राणी बना दिए। यह आश्चर्यजनक बात है कि भारतीय चिंतकों ने जीवों के उद्गम के बारे में आने वाली शताब्दियों में भी इस आध्यात्मिक दृष्टिकोण के सिवाय कुछ और नहीं सोचा।

19वीं शताब्दी के महान प्रकृतिविज्ञानी चार्ल्स डार्विन के अनुसंधान के बाद, आज हम यह मानते हैं कि वनस्पतियों और जंतुओं की वर्तमान जातियों का आदिम पूर्वजों से विकास हुआ है। इस इकाई के शीर्षक में हमने "जैव" विकास शब्द प्रयुक्त किया है। बात यह है कि विकास की बात विभिन्न स्तरों पर की जा सकती है। हम ब्रह्मांड, नक्षत्र-प्रणाली अथवा निर्जीव से सजीव के विकास की चर्चा कर सकते हैं। शीर्षक में "जैव" विकास का उल्लेख करके यह स्पष्ट किया गया है कि यहाँ हमारा विषय-क्षेत्र सजीवों के विकास तक सीमित है।

इस इकाई में हम जैव विकास संबंधी धारणाओं की मोटे तौर पर रूपरेखा प्रस्तुत करेंगे। आप इस बात पर जरूर ध्यान देंगे कि इस विषय की प्रारंभिक धारणाएं किस हद तक अनुमानों पर आधारित थीं। वास्तव में बहुत बाद में जैव विकास के सिद्धांतों में वैज्ञानिक तरीके अपनाए गए। विज्ञान के तरीकों से हमारा तात्पर्य आंकड़े एकत्र करने, इनके आधार पर परिकल्पना बनाने, और परिणामों के आधार पर इस परिकल्पना के परीक्षण की प्रक्रिया से है। अगर अनेक स्वतंत्र परीक्षणों के आधार पर परिकल्पना पुष्ट होती है तो इसे सिद्धांत का दर्जा दे दिया जाता है। निश्चय ही आपको पता होगा कि किसी परिकल्पना के परीक्षण के लिए आपको एक या अधिक समुचित प्रयोग करने होते हैं। स्पष्ट है कि जातियों के विकास के सिद्धांत का परीक्षण करने के लिए प्रयोग कर पाना सरल नहीं है। अपेक्षाकृत सीमित कार्य क्षेत्र वाले ऐसे कुछ प्रयोग तो किए गए हैं। दूसरी ओर, अगर आप सजग हैं तो आप इस क्षेत्र में स्वयं प्रकृति द्वारा किए जा रहे प्रयोगों को देख सकते हैं और इनके परिणामों से अपनी परिकल्पना का आकंलन कर सकते हैं। डार्विन ने यही काम बड़ी खूबी से किया। उनके सिद्धांत के बारे में आपको बाद में बताएंगे।

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप :

- विकास के बारे में प्रारंभिक ग्रीक चिंतकों के विचार बता सकेंगे,
- विकास के सिद्धांत के बारे में बाइबिल के "जेनेसिस" सिद्धांत का तात्पर्य समझ सकेंगे,
- डार्विन के विचारों से पूर्व की शताब्दी में विकास अथवा जाति उद्भवन और विविधता संबंधी विचारों को जान सकेंगे,
- यह समझा सकेंगे कि जीवों में वंशानुगत गुणों के उद्गम तथा इनके पीढ़ी-दर-पीढ़ी पहुंचने के बारे में डार्विन की समस्याएं मेंडेल की युगपर्वतक खोजों और इसके बाद में विकसित हुए संश्लेषण सिद्धांतों से सुलझ गई, तथा
- आज के विश्व में "सृष्टिवाद" की प्रासंगिकता का आकलन कर सकेंगे।

9.2 डार्विन-पूर्व विकासीय विचार

यह बताया जा चुका है कि जातियों के उद्गम या जाति उद्भवन के बारे में प्रारंभिक विचार कल्पना और अनुमान मात्र थे। हालांकि प्रारंभिक ग्रीक दार्शनिकों में से कुछ काफी व्यावहारिक थे। आइए देखें कैसे।

9.2.1 ग्रीक योगदान

ईसाई धर्म के प्रारंभ से पूर्व के पाश्चात्य समाज में कुछ ग्रीक दार्शनिक, निश्चय ही, अच्छे प्रेक्षक भी थे। विभिन्न जंतु जातियों के परस्पर संबंध के बारे में अपने प्रेक्षणों के आधार पर उन्होंने विकास के प्रश्न पर विचार किया अर्थात् उन्होंने सोचा कि जीवन "निम्न" स्वरूपों से "उच्च" स्वरूपों तक धीरे-धीरे कैसे विकसित होता है। एनाक्सिमेंडर (Anaximander, 611-547 ईसा पूर्व) का कहना था कि जीवधारी स्वतः पैदा हो गए और प्रथम जीव मछलियां थीं, जिनकी कंटीली या शल्की त्वचा थी और वे नमी में स्वतः पैदा हो गईं। एनाक्सिमेंडर के अनुसार, कुछ समय बाद, मछली के वंशज पानी छोड़कर सूखी जमीन पर आ गए। तत्वांतरण (Transmutations) यानि रूपांतरण के जरिए, अनेक अन्य जीव अस्तित्व में आए। मानव की भी, संभवतः निम्न, जलीय जातियों के तत्वांतरण के बाद उत्पत्ति हुई।

संभवतः आपको विदित होगा कि यूरोप में मध्ययुग में कीमियागर Alchemists) अपधातुओं का स्वर्ण में तत्वांतरण करने का प्रयास करते थे।

ज़ीनोफेनीस (Xenophenes, 576-490 ईसा पूर्व) ने भी ऐसा ही एक उल्लेखनीय विचार रखा। उन्होंने शुष्क पहाड़ों में पशु जीवाश्म देखें और उन्हें पृथ्वी के प्रारंभिक काल के जीवों का प्रतिरूप बताया। उन्होंने यह भी कहा कि प्राचीन काल में ये पहाड़, निश्चय ही, पानी में डूबे रहे होंगे।

अरस्तु (Aristotle, 384-322 ईसा पूर्व) के नाम से आप परिचित हैं। प्रख्यात दार्शनिक होने के साथ-साथ वे परिश्रमी वैज्ञानिक भी थे। वे उत्कृष्ट समुद्र-जीवविज्ञानी भी थे। जंतु रूपों की अपनी व्यापक जानकारी के आधार पर उन्होंने वर्गीकरण की एक प्रणाली विकसित की। उन्होंने बताया कि

जीवों का उनके वंशक्रम की तरह, उनके संघठन की जटिलता के आधार पर सीढ़ी-नुमा अनुक्रम बनाया जा सकता है। अस्तित्व के इस पैमाने (scale of being or 'scala naturae') का 18वीं शताब्दी के विकास संबंधी विचारों पर बड़ा प्रभाव पड़ा। लेकिन इस बात से आप भी निश्चय ही सहमत होंगे कि ऐसे पैमाने का सिद्धांत-मात्र गढ़ देना अलग बात है और विकास का ठोस सिद्धांत प्रस्तुत करना इससे कहीं ज्यादा महत्वपूर्ण है।

इसके बाद अन्य ग्रीक और रोमन दार्शनिकों ने भी अपने-अपने विचार रखे। लेकिन उनके विचार अनुमान मात्र थे। अतः हम उन्हें छोड़कर आगे बढ़ सकते हैं।

9.2.2 जेनेसिस के अनुसार जातियों का उद्‌गम

अग्रणी ग्रीक चिंतकों के विपरीत, ईसाई समुदाय के नेताओं ने बाइबिल की जेनेसिस (Genesis) की कथा को शब्दशः सत्य माना। इस मान्यता के अनुसार ईश्वर ने पृथ्वी को रचा, भूमि को जल से अलग किया और फिर सृष्टि-रचना प्रारंभ की। उसने मनुष्य, वनस्पतियों और जंतुओं की जातियों की सृष्टि की। यह सब कुछ ही हजार वर्ष पूर्व हुआ। एक ऐंग्लिकन बिशप के अनुसार तो यह सृष्टि 4004 ईसा पूर्व में हुई। सृष्टि के प्रारंभ से ही हर जीव बिना किसी परिवर्तन के अपने मूल रूप में ही बना हुआ है और अपने जैसी संतति का जनन करता है।

जेनेसिस की कथा में निम्न महत्वपूर्ण विचार निहित हैं — (i) पृथ्वी कुछ हजार वर्षों से ज्यादा प्राचीन नहीं हो सकती। (ii) ईश्वर द्वारा रचे जाने के कारण जीवधारी अपरिवर्तनीय और अमर हैं।

9.2.3 पुनर्जागरण के बाद का काल

पुनर्जागरण (Renaissance) एक बौद्धिक आंदोलन था जो 14वीं शताब्दी में इटली में प्रारंभ हुआ और अगली दो शताब्दियों में धीरे-धीरे पूरे यूरोप में फैल गया। इसने जीवन के प्रायः सभी पक्षों को प्रभावित किया और मध्यकालीन प्रवृत्तियों और आधुनिकता के बीच जल-विभाजक (watershed) जैसी भूमिका निभाई। अन्य बातों के अलावा, पुनर्जागरण से जातियों के उद्‌गम अर्थात् जाति उद्‌भवन प्रक्रिया के प्रश्न में भी रुचि पनपी। अनेक साहसी नाविकों ने समुद्र यात्राएं की और नई दुनिया के बारे में महत्वपूर्ण तथा रोमांचक जानकारी लेकर लौटे। उन्होंने इन क्षेत्रों के जंतुओं और वनस्पतियों के विचित्र रूपों के बारे में बताया। उन्होंने यह भी देखा कि इन देशों में कई यूरोपीय जीवों की जातियां नहीं पाई जातीं, जैसे — घोड़ा। यह बात भी बड़ी विचित्र लगी कि दूर-दराज के इन क्षेत्रों के लोग लंगूरों से थोड़ा-ही "श्रेष्ठ" लगते थे और मनुष्य के रूप में उन्हें कुछ बुनियादी लक्षणों के आधार पर ही पहचाना जा सकता था।

बाद में, जीव विज्ञान और भूगर्भ विज्ञान के क्षेत्र में अनेक नयी बातें पता चलीं। शुरू में इनमें कोई संबंध नहीं लगता था पर धीरे-धीरे इन्हें मिलाकर देखने से जीवधारियों के विकास का एक सुव्यवस्थित सिद्धांत सामने आया।

इस दिशा में स्वीडन के महान प्रकृति विज्ञानी कार्ल लिनियस (Carl Linnaeus, 1707-1778) का योगदान बड़ा महत्वपूर्ण है। उन्होंने जीव जातियों के अपरिवर्तनीय होने के विचार को वैज्ञानिक आधार दिया। इस विचार पर आधारित जंतुओं और वनस्पतियों की उनकी द्विपद नाम पद्धति (binomial nomenclature) को विश्वव्यापी मान्यता मिली। लेकिन, बाद में वे स्वयं ही जीव जातियों की अपरिवर्तनीयता पर शंका करने लगे।

लिनियस के समकालीन फ्रांस के कोम्ते द बुफो (Comte De Buffon, 1707-1788) का भी इस क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान है और उन्हें सही मायने में डार्विन का पूर्ववर्ती माना जा सकता है। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि उन्होंने एक ही जाति में विविधताओं की बात को पहचाना और इस विविधता का कारण बताते हुए कहा, "··· ईश्वर द्वारा रचे गए विभिन्न कुलों में प्रकृति द्वारा जने और समय द्वारा उत्पन्न निम्न कुल भी हैं।" यह सही है कि वे सृष्टि के ईश्वर-रचित होने की बात मानते हैं पर साथ ही प्रकृति जैसी दूसरी एजेंसी की बात भी करते हैं। प्रकृति, समय के साथ-साथ जातियों के मामूली बदलाव वाले रूप उत्पन्न करती है। हम प्रश्न कर सकते हैं कि क्या लंबे समय-अंतराल में प्रकृति द्वारा उत्पन्न ये मामूली बदलाव बढ़ते-बढ़ते नई जातियों का रूप नहीं ले सकते?

निम्न कुल विविधताओं को व्यक्त करने का एक तरीका है।

बुफो के प्रेक्षणों में दूसरी महत्वपूर्ण बात यह थी कि विभिन्न कुलों (families) के रूपों में विविधताओं के बावजूद उनकी संरचना में एक मूलभूत एकरूपता देखी जा सकती है। कुछ वर्ष बाद, उन्हीं के देश के बैरन कूवियर (Baron Cuvier) ने इस एकरूपता को शरीर योजना की एकता (unity of body plan) कहा और तुलनात्मक शरीर-रचना विज्ञान के अपने अग्रणी कार्य का इसे आधार बनाया।

बाद में, बुफो ने प्राणियों में अपनी जाति को तेज़ी से बढ़ाने की प्रवृत्ति देखी। यह प्रवृत्ति उपलब्ध खाद्य आपूर्ति की प्राणि समूहों के भरण-पोषण की क्षमता से कहीं अधिक तेज है। उन्होंने यह भी देखा कि इसके परिणामस्वरूप हर पीढ़ी में अनेक प्राणियों की मृत्यु हो जाती है और कुछ ही जीवित रह पाते हैं। यह तथ्य महत्वपूर्ण है कि बुफो की मृत्यु के दस वर्ष बाद टॉमस माल्थस (Thomas Malthus, 1766-1834) ने इसी विषय पर अपना प्रख्यात आलेख प्रकाशित कराया। बुफो के कार्य को माल्थस के नियम के रूप में प्रसिद्धि मिली।

इसके बाद हम ज्यां-बैप्तिस्त द लामार्क के महत्वपूर्ण योगदान का अध्ययन करेंगे। उससे पूर्व, आप निम्न बोध प्रश्न का उत्तर देने का प्रयास कीजिए।

बोध प्रश्न 1

कॉलम I में दिए गए विचारों और विचारकों के नाम का कॉलम II में दिए गए कथनों से मेल कीजिए —

कॉलम I		कॉलम II
i) अरस्तू	[ ]	क) उन्होंने जंतुओं और वनस्पतियों की द्विपद नाम पद्धति बनाई।
ii) कार्ल लिनियस	[ ]	ख) ऐसे पहले विचारक थे जिन्होंने किसी जाति में विविधता की बात पहचानी।
iii) बुफो	[ ]	ग) ईश्वर ने पृथ्वी तथा जीवन के विभिन्न रूप रचे जो अपरिवर्तनीय और अमर हैं।
iv) जेनेसिस	[ ]	घ) उन्होंने जीवों को संघठन की जटिलता के आधार पर रैखीय वर्णानुक्रम में वर्गीकृत किया।
v) एनाक्सिमेंडर	[ ]	च) जीवन का स्वतः उद्गम हुआ और मछली पहली प्राणी थी जो नमी में पैदा हुई और जिसकी शल्की त्वचा थी।

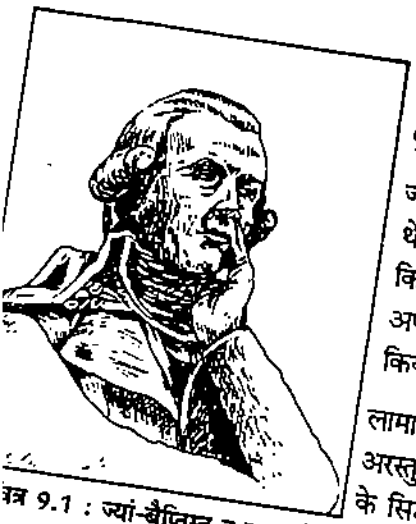

चित्र 9.1 : ज्यां-बैप्तिस्त द लामार्क

9.2.4 लामार्कवाद

ज्यां-बैप्तिस्त द लामार्क (Jean Baptiste De Lamark) (चित्र 9.1) पहले एक वनस्पति-शास्त्री थे, जिन्होंने अंततः जंतुशास्त्री के रूप में प्रसिद्धि पाई। उन्होंने अनेक क्षेत्रों में अपने ज्ञान का योगदान किया लेकिन उन्हें ऐसे विद्वान के रूप में विशेष रूप से जाना जाता है जिन्होंने सर्वप्रथम जातियों की अपरिवर्तनीयता के विरोध में सुसंबद्ध तरीके से तर्क दिये और लामार्कवाद का प्रसिद्ध सिद्धांत प्रतिपादित किया।

लामार्क की दृष्टि में, विकास ईश्वर द्वारा रचे जीवों द्वारा पूर्णता प्राप्त करने की निरंतर तलाश है। उनका अरस्तु के "अस्तित्व के पैमाने" के विचार पर विश्वास था और इसी के आधार पर उन्होंने विकास के सिद्धांत का प्रतिपादन किया। लामार्क के अनुसार, जीवन का प्रारंभ बड़े सरल रूपों में होता है। पीढ़ी-दर-पीढ़ी, अपने ही प्रयासों से, जीवधारी जटिल स्वरूप प्राप्त करते हैं, इस तरह ये प्रकृति के सोपानों पर चढ़ते हुए संरचना के उच्च स्तरों तक पहुंचते हैं।

लामार्क का मानना था कि समय के साथ-साथ भौतिक पर्यावरण बदलता रहता है। उन्होंने तर्क दिया कि जीवित रहने के लिए जीवों को भी इन्हीं परिवर्तनों के अनुरूप अपने जीने के तरीकों को ढालना पड़ता है। ऐसा किस तरह होता है? लामार्क के अनुसार, सर्वप्रथम तो जीवधारी और उनके अंग निरंतर आकार में बढ़ने की प्रवृत्ति रखते हैं। दूसरे, पर्यावरण में परिवर्तन के साथ-साथ जीवों में आवश्यकताएं पैदा होती हैं और नये अंग पनपते हैं। तीसरे, निरंतर इस्तेमाल होने वाले अंग बहुत विकसित हो जाते हैं और इस्तेमाल नहीं होने वाले अंगों का क्षरण (degeneration) होता जाता है। इस तरह पर्यावरण में परिवर्तनों के अनुरूप जीवों की शारीरिक संरचना में धीरे-धीरे परिवर्तन होते हैं। ऐसे छोटे-बड़े परिवर्तन

भावी पीढ़ियों तक पहुंचते है। इन उपार्जित लक्षणों की वंशगति (Inheritance of acquired characters) का दीर्घकालीन संचयी (cumulative) परिणाम ही विकास है। यही लामार्कवाद है।

लामार्क ने अपने सिद्धांत की पुष्टि में जिराफ़ का उदाहरण दिया। उनके अनुसार, आज के जिराफ़ के पूर्वजों की गरदन और कंधों का अनुपात पेड़ों की पत्तियां खाने वाले किसी भी अन्य स्तनपायी जंतु जैसा ही था। लेकिन निचली टहनियों पर उपलब्ध पत्तियों के लिए प्रतियोगिता निरंतर बढ़ने के साथ-साथ कुछ जिराफ़ों ने अपनी गरदनें खींचनी शुरू कीं ताकि पेड़ों की ऊपरी टहनियों से पत्तियां खा सकें। उपार्जित लक्षणों की वंशागति के सिद्धांत के अनुरूप गर्दन की लम्बाई हर पीढ़ी में जुड़ती रही और इस प्रकार आज का लम्बी गरदन और ऊंचे कंधों वाला जिराफ़ विकसित हुआ। इसी के साथ, यह भी उल्लेखनीय है कि चार्ल्स डार्विन के दादा-इरास्मस डार्विन (सन 1731-1802) भी स्वतंत्र रूप से इसी निष्कर्ष तक पहुंचे थे और उन पर लामार्क का कोई प्रभाव नहीं पड़ा था। वे पेशे से चिकित्सक थे। उन्होंने अपनी पुस्तक जूनोमिया (Zoonomia, 1794) में अपने विचार प्रतिपादित किये।

डार्विन सहित, अनेक जीववैज्ञानिक लामार्क के सिद्धांत के प्रति आकर्षित हुए। लेकिन अब यह सिद्धांत मान्य नहीं है क्योंकि यह प्रायोगिक आकलनों की कसौटी पर खरा नहीं उतरा। लामार्क के विचारों के औचित्य को प्रमाणित करने का ताजा प्रयास 1980 के दशक के प्रारंभ में स्टील और गौरज़िंस्की (Steel and Gorezynski) ने किया। उन्होंने प्रतिरक्षात्मक सहयता (immunological tolerance) के गुण के आधार पर ये परीक्षण किये। इसका अर्थ है कि किसी व्यक्ति की प्रतिरक्षा प्रणाली (immune system) अपनी ही कोशिकाओं को स्वीकार कर लेती है, इनके विरुद्ध एंटीबॉडी नहीं पैदा करती। अगर आप चूहे के शरीर में किसी असंबद्ध जीव की कोशिकाएं प्रवेश कराएं तो उसकी प्रतिरक्षा प्रणाली जबरदस्त प्रतिक्रिया करेगी और इसके परिणामस्वरूप दूसरे प्राणी की कोशिकाओं को नष्ट कर दिया जाएगा। लेकिन प्रायोगिक तौर पर मेजबान (host) जंतु के शरीर में अब बाहरी कोशिकाओं के प्रति प्रतिरक्षात्मक सहयता पैदा की जा सकती है ताकि बाहरी कोशिकाएं नष्ट न हों। लेकिन महत्वपूर्ण बात यह है कि ऐसी प्रतिरक्षात्मक सहयता हर चूहे के साथ, हर बार पैदा करनी पड़ती है। स्टील और गौरज़िंस्की ने दावा किया कि चूहों के एक वर्ग में प्रतिरक्षात्मक सहयता पैदा करने के बाद इन चूहों को प्रतिरक्षात्मक सहयता से पीढ़ी-दर-पीढ़ी प्रजनन कराने पर उत्पन्न हुई संतानों में प्रतिरक्षिता का यह लक्षण आ जाता है। दूसरे शब्दों में, उन्होंने इस प्रयोग से एक उपार्जित लक्षण प्रतिरक्षात्मक सहयता की वंशानुगतता प्रमाणित की। लेकिन, अन्य प्रख्यात शोधकर्ताओं के प्रयोगों से इस दावे की पुष्टि नहीं हुई। हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि इस समय लामार्कवाद को कोई वैज्ञानिक समर्थन प्राप्त नहीं है।

9.2.5 भूविज्ञान के अग्रणी विद्वान और डार्विन पूर्व विकास संबंधी अवधारणाएं

बुफो और लामार्क के ही काल में भूविज्ञान के क्षेत्र में नयी जानकारियां मिलीं जिनसे "जैनेसिस" के सिद्धांत के त्रुटियां सामने आयीं और जीव जातियों की उत्पत्ति के बारे में सच्ची वैज्ञानिक समझ का मार्ग प्रशस्त हुआ। इस काल के दो प्रमुख वैज्ञानिक थे — जेम्स हटन (1726-1797), जिन्हें ऐतिहासिक भूविज्ञान का जन्मदाता कहा जाता है और स्तरिकी या स्तर क्रम विज्ञान (stratigraphy) के जनक विलियम स्मिथ (1769-1839)। इन दोनों अग्रणी विद्वानों ने भूपटल (earth crust) में संचित गूढ़ कहानी का अर्थ निकाला। तलछटों की कइयों पर्तों से पृथ्वी का पटल बना है। इनमें से ज्यादातर पर्तों में जीवाश्मों (fossils) के नमूने हैं। कभी-कभी एक परत में केवल एक ही प्रकार के जीवाश्म पाए गए हैं। कभी-कभी एक ही जैसे जीवाश्म-समूह आस-पास की अनेक पर्तों में दोहराए जाते हैं। इनमें से कुछ जीवाश्म समान तो हैं पर बिल्कुल एकरूप नहीं हैं। अर्थात् इन जीवाश्मों में भिन्नताओं के बावजूद एक क्रमिक संबंध है। इस तरह, वे विकास की समान कथा तो कहते हैं, लेकिन कुछ परिवर्तनों के साथ। भूगर्भीय पटलों के निर्माण के लिए उत्तरदायी शक्तियां ही पृथ्वी की रूपरेखा में विविध परिवर्तन (पहाड़, महासागर) करती रही हैं। ये शक्तियां भूगर्भीय परिवर्तनों के काल में ही नहीं, अब भी कार्यरत हैं। उन्होंने पृथ्वी के भू-पटल पर निरंतर प्रभाव छोड़े हैं। इनमें से कुछ शक्तियां हैं — (i) ऊंचे पहाड़ बनाने के लिए पानी में डूबी भूमि के अचानक उठान (बुफो के विचारों को याद करें), (ii) समुद्र के नीचे भूमि का धंसान, (iii) खुली मिट्टी पर हवा के प्रभाव से भूमि का अपरदन, (iv) नदियों के तल में गाद भर जाना, (v) नदियों द्वारा समुद्र में गाद छोड़ना, आदि।

भूगर्भीय पर्तों की इस एकरूपतावादी (uniformitarian) व्याख्या से ही भूगर्भीय समय-मापक्रम (time scale) का महत्वपूर्ण विचार जुड़ा है, जो लाखों-करोड़ों वर्षों में बंटा है। इस व्याख्या और समय-मापक्रम के आधार पर प्रकृति के रहस्यों को समझा जा सकता है। इस तरह, आप समझ सकते हैं कि जीवधारियों में धीरे-धीरे वंशागत परिवर्तनों के जरिए जाति विकास के किसी सिद्धांत को साकार रूप मिलने में लाखों वर्षों का समय निश्चित रूप से पूर्व-शर्त है।

9.2.6 बैरन कूवियर और तुलनात्मक शरीररचना

आपने अभी जीवाश्मों के पाये जाने के बारे में पढ़ा। जीवाश्मों में समुद्री अकशेरूकी (marine invertebrate) जीवों के कवच या खोल (shells) ही नहीं है, बल्कि भूमि और जल के कशेरुकी प्राणियों के खोल भी हैं। कशेरुकी जीवाश्मों की पहचान और व्याख्या तुलनात्मक शारीर अर्थात शरीर रचनाशास्त्र (comparative anatomy) के प्रारंभ के बाद ही संभव हो सकी। बुफों ने भी बाहर से अलग दिखाई देने वाले और अलग-अलग आदतों वाले जीवों की संरचना में मूलभूत समानता की बात कही थी। बैरन कूवियर (1769-1832) तुलनात्मक शारीर में वैज्ञानिक सुस्पष्टता लाए। विभिन्न प्राणियों की शरीर-रचना का व्यापक अध्ययन करने के बाद उन्होंने निष्कर्ष निकाला कि जंतु जगत में कुछ ही प्रकार की शरीर योजनाएं हैं। उन्होंने चार प्रमुख शरीर-योजना समूह बताए — कशेरुकी अर्थात वर्टिब्रेटा (Vertebrata), मोलस्का (Mollusca), आर्टिकुलेटा (Articulata) और रेडिएटा (Radiata)। उन्होंने शरीर-रचना और प्राणी शरीर तथा उसके कार्यों के बीच घनिष्ठ संबंध को भी पहचाना। उनका विचार था कि शरीर रचना को पूरी समग्रता में देखा जाना चाहिए अर्थात् प्राणी को उसके पर्यावरण से अनुकूलन के साथ पूर्णता में समझा जाना चाहिए। उदाहरण के लिए, पक्षियों का उड़ान के कार्य में अनुकूलन करने के लिए वर्टिब्रेट प्राणियों में अग्र पादों (forelimbs) का पंखों में परिवर्तन के साथ-साथ, प्रमुख हड्डियों का भी ऐसा रूपांतर होना चाहिए कि वे हल्की हों और उनमें वायु-कक्ष (air sacs) हों ताकि पक्षी का पूरा शरीर उड़ने के लिए अनुकूलित हो सके। स्पष्ट है कि शरीर में एक अंग-विशेष ही किसी कार्य-विशेष के लिए नहीं होता बल्कि संबंद्ध अंगों में भी जरूरी परिवर्तन हो जाते हैं।

इस विश्वास और समकालीन जीवों के तुलनात्मक शरीररचना-शास्त्र के अध्ययन की मदद से कूवियर ने अपूर्ण जीवाश्म-अवशेषों की पहेली हल करने का प्रयास किया। प्रायः किसी पूर्ण प्राणी के जीवाश्म अवशेष नहीं मिल पाते। कभी-कभी मात्र कुछ अलग-थलग हड्डियों के आधार पर प्राणी के पूरे शरीर का अनुमान लगाना पड़ता है। कभी-कभी तो मात्र एक ही हड्डी के आधार पर ऐसा अनुमान लगाया जाता है। इस प्रक्रिया में शरलॉक होम्स जैसी जासूसी कथाओं की याद आती है।

जीवाश्म वाली चट्टानों की उम्र के आधार पर शरीररचना के ब्यौरों का अध्ययन करते हुए कूवियर ने पाया कि "विभिन्न जातियों के उद्भवन में उल्लेखनीय वंश अनुक्रम है"। उन्हें यह स्पष्ट रूप से पता चला कि भूविज्ञान की दृष्टि से बाद के काल की गाद वाली या जलोढ़ चट्टानों (alluvial deposits) से मिले जैव-रूप उसी क्षेत्र के आधुनिक जीवों के ज्यादा समान हैं जबकि भूगर्भीय दृष्टि से अति प्राचीन स्तरों के जीवाश्मों की जातियों में आधुनिक प्राणियों से कम समानताएं हैं। इस प्रकार चट्टानों से हमें जैव-रूपों में धीरे-धीरे विकसित होती हुई जटिलता का पता चलता है। आप अगली इकाई में जीवाश्मीय रिकार्डों के बारे में और जानकारी हासिल करेंगे।

कुल मिलाकर, विभिन्न जैव-रूपों के उद्गम और उनके संभावित संबंधों के बारे में डार्विन के पहले के विचारों को संक्षेप में हम कैसे व्यक्त कर सकते हैं? इसके लिए धीरे-धीरे सुसंबद्ध वैज्ञानिक व्याख्या देने की प्रवृत्ति विकसित हुई। लेकिन कोई भी विद्वान विविध प्रेक्षणों और अनुमानों को एकरूपता देकर सुव्यवस्थित सिद्धांत का रूप नहीं दे सका। विभिन्न विचारों का सार इस प्रकार है :

1) पृथ्वी की आयु कुछ लाख वर्ष समझी गई।
2) जातियों का स्वरूप न तो अपरिवर्तनीय है, न वे अमर हैं। तुलनात्मक शरीर रचना-विज्ञान के अध्ययन से स्पष्ट होता कि प्राणि जातियों के प्रमुख वर्गों में चाहे वे आज की जातियाँ हों या जीवाश्म हों, शरीर योजना की एकरूपता पायी जाती है। इसके साथ ही, मूलभूत एकरूपता के बावजूद विविधताएं भी एकदम स्पष्ट होती हैं। भू-पटल की चट्टानी पर्तों पर जो जीवाश्म मिले हैं उनसे समय के बीतने के साथ-साथ प्राणि-रूपों के जटिलतर होते जाने का पता चलता है।

3) थोड़े से वैज्ञानिकों की यह भी राय रही है कि तत्वांतरण अथवा रूपांतरण द्वारा भी जातियों में विविधता होने की थोड़ी बहुत संभावना है।

4) ऐसे परिवर्तनों की निश्चित प्रणाली के रूप में व्याख्या करने का उपार्जित लक्षणों की वंशानुगतता का लामार्क का सिद्धांत अपेक्षाकृत सर्वोत्तम प्रयास लगता है।

डार्विनवाद का अध्ययन करने से पहले, निम्न बोध-प्रश्नों को हल करने का प्रयास करें।

बोध प्रश्न 2

क) क्या उपार्जित लक्षण वंशागत हो सकते हैं? एक उदाहरण देकर समझाएं।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

ख) पाठ्य सामग्री के आधार पर उपयुक्त शब्द से रिक्त स्थानों की पूर्ति करें।

i) तलछट चट्टानें बनाने वाली शक्तियों ने भूपटल पर ..... क्रिया की।

ii) बैरन कूवियर का विचार था कि जीवधारियों की संरचना और कार्य के बीच ..... है।

iii) भूपटल की भूगर्भीय पर्तों के जीवाश्म अवशेषों से पता चलता है कि समय बीतने के साथ-साथ जीवों के रूपों में ..... जाती है।

iv) ..... के अध्ययन से प्राणि जगत के प्रमुख वर्गों में शरीर योजना की एकरूपता सिद्ध होती है।

9.3 डार्विनवाद

पिछले भाग में हमने यह निष्कर्ष निकाला कि उस समय जातियों के उद्‌गम या उद्‌भव के मान्य सिद्धांत के सभी तथ्य मौजूद थे लेकिन आवश्यकता ऐसे विवेक-संपन्न विद्वान की थी जो असंबद्ध लगे वाले इन सभी प्रेक्षणों और अनुमानों को सुसंबद्ध सिद्धांत का रूप दे सके। कहावत है कि उचित समय पर सही व्यक्ति जन्म लेता है। ऐसा ही व्यक्ति था — चार्ल्स डार्विन (1809-1882) (देखिए चित्र 9.2)।

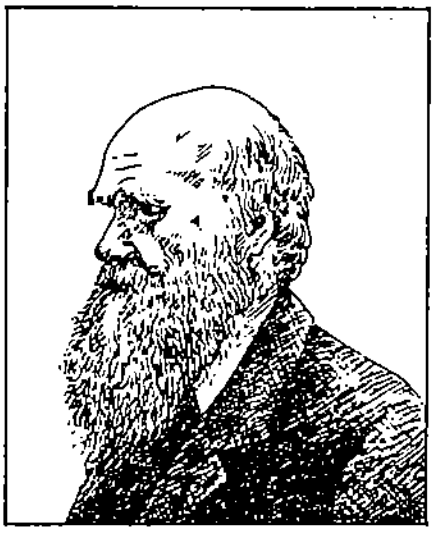

चित्र 9.2 : चार्ल्स राबर्ट डार्विन

चार्ल्स डार्विन उच्च मध्य वर्ग के एक समृद्ध परिवार से थे इसलिए उन्हें रोजी-रोटी के लिए कुछ करने की आवश्यकता नहीं रही। उम्मीद थी कि वे पारिवारिक पेशे को ही अपनाते हुए चिकित्सक बन जाएंगे। इसीलिए उन्हें चिकित्सा-विज्ञान पढ़ने के लिए एडिनबरो भेजा गया। लेकिन चार्ल्स ने चिकित्सा के कैरियर में ज़्यादा रुचि नहीं दिखायी। इसकी बजाय के प्रकृतिविज्ञानियों की मित्रता में रहने लगे। बाद में, जब उनके पिता उन्हें पादरी बनाने के लिए प्रशिक्षित करना चाहते थे, तो वे कैंब्रिज गये। वहां भी औपचारिक पाठ्यक्रम में उनका विशेष मन नहीं लगा। यहां भी उन्होंने प्रकृतिविज्ञानियों से ही मित्रता की। खास तौर से, भूगर्भ वैज्ञानिक एडम सेडविक और वनस्पतिविज्ञानी डॉक्टर जे.एस. हेंसलों उनके अच्छे मित्र थे। जब एच.एम.एस. बिगल (H.M.S. Beagle) नाम का जहाज विश्व-यात्रा पर निकला, तो डॉक्टर हेंसलों ने ही डार्विन की, प्रकृतिवैज्ञानिक के रूप में, इस जहाज में जाने की व्यवस्था की। इस यात्रा के दौरान डार्विन की उपलब्धियों की कहानी जानी-पहचानी है।

9.3.1 डार्विनवाद : मूलभूत धारणाएं

डार्विन ने अपने विकास के सिद्धांत के लिए प्रकृति के पांच देखे जा सकने वाले तथ्यों और इन तथ्यों से निकलने वाले तीन निष्कर्षों को आधार बनाया।

तथ्य 1

जीवधारियों में उत्पन्न संतति की संख्या शुरू में हमेशा माताओं-पिताओं की संख्या से अधिक होती है। इस देखे जा सकने वाले तथ्य से पता चलता है कि जीवधारियों में अपनी संख्या घातीय अनुपात में बढ़ाने की प्रवृत्ति होती है।

तथ्य 2

संख्या बढ़ाने की इस प्रवृत्ति के बावजूद किसी समूह में जाति-विशेष के जीवों की संख्या लगभग स्थिर बनी रहती है।

तथ्य 3

किसी स्थिर पर्यावरण में प्राकृतिक संसाधन सीमित होते हैं और इनकी मात्रा में विशेष परिवर्तन नहीं होता।

निष्कर्ष

चूंकि उपलब्ध संसाधनों द्वारा पोषण क्षमता की तुलना में ज्यादा प्राणी पैदा होते है और चूंकि जीव संख्या लगभग स्थिर बनी रहती है, इसलिए निश्चय ही "जीवन के लिए संघर्ष" (struggle for existence) होता है। सरल शब्दों में, उपलब्ध संसाधन के लिए प्रतियोगिता होती है। किसी जीव-समूह में ऐसी प्रतियोगिता होने से उस जीव-समूह में पैदा हुई कुल संतति में से कुछ ही — बल्कि अक्सर बहुत कम ही जीवित रह पाते हैं।

तथ्य 4

किसी जीव समूह में कोई भी दो जीव पूरी तरह एक जैसे नहीं होते। हर जीव समूह में जीवधारियों के लक्षणों में अनेक विविधताएं होती हैं।

निष्कर्ष 2

लक्षणों की कुछ विविधताएं, अस्तित्व अर्थात् जीवन के लिए संघर्ष की दृष्टि से अनुकूल होती हैं, जबकि कुछ प्रतिकूल यानि हानिप्रद होती हैं। परिणाम यह होता है कि जिन जातियों के लक्षण अस्तित्व संघर्ष के ज्यादा अनुकूल होते हैं, उनके अपेक्षाकृत ज्यादा जीव जीवित रह पाते हैं। दूसरी ओर, जिनके लक्षण इस संघर्ष के प्रतिकूल होते हैं, उनके अपेक्षाकृत ज्यादा जीव मर जाते हैं या अपने पीछे बड़ी संख्या से संतति नहीं छोड़ पाते। जीवित रह पाने की यह असमानता ही प्राकृतिक वरण की प्रक्रिया है।

तथ्य 5

उपर्युक्त विविधता भरे लक्षणों यानि विशेषताओं में से अनेक आनुवंशिक यानि वंशागत होते हैं।

निष्कर्ष 3

इस प्रकार, जीवधारियों द्वारा अपनी परिस्थितियों, वातावरण और जीवन के तरीकों के साथ अनुकूलन और तालमेल की स्थिति सुधारने में या कम से कम इस अनुकूलन और तालमेल को बनाये रखने की प्रक्रिया में प्राकृतिक वरण की निरंतर भूमिका होती है। दीर्घ अवधि में, अर्थात् अनेक पीढ़ियों के बाद अनेक विविधताओं के वंशागत यानि आनुवंशिक होने के कारण, प्राकृतिक वरण के जरिए असमान उत्तरजीविता (differential survival) पैदा होती है जिससे जीवों के गुणों में निरंतर और धीरे-धीरे परिवर्तन आते हैं। ये परिवर्तन आकार-संबंधी (morphological) और शरीर-क्रिया संबंधी (physiological) होते हैं। इन परिवर्तनों से नयी जातियों का उद्भवन होता है। अर्थात् "विकास विविधता और प्राकृतिक वरण के जरिए रूपांतरित जातियों का उद्गम है।" (evolution is descent with modification through variation and natural selection)।

9.3.2 डार्विन के योगदान का महत्व

"कोई प्रकृति-वैज्ञानिक जब जातियों के उद्गम पर विचार करता है तो वह पाता है कि सभी जीवधारियों के बीच आपसी समानताएं हैं। ये समानताएं उनके भ्रूणीय संबंधों, भौगोलिक वितरण, भूगर्भीय अनुक्रम तथा कई अन्य पक्षों में है। इस सभी बातों का विचार करके प्रकृति वैज्ञानिक यही निष्कर्ष निकाल सकता है कि जातियों की अलग-अलग सृष्टि नहीं हुई है, बल्कि उनका अन्य जातियों से विविध रूपों

में अनुक्रम हुआ है।" डार्विन के इस कथन से ही विकास संबंधी विचारों में उनके महत्वपूर्ण योगदान का पता चलता है। उनका यह कथन सत्य है कि जैव विकास के बारे में उक्त निष्कर्ष कोई भी प्रकृति वैज्ञानिक निकाल सकता है। लेकिन उनसे पहले कोई भी इन निष्कर्ष तक नहीं पहुंच सका। उनके पहले के वैज्ञानिक समस्या के किसी एक पक्ष को ही देख सके। कूवियर मात्र तुलनात्मक शारीर या शरीर रचना विज्ञान से ही तथ्यों की व्याख्या कर सके, लायल (Lyell) मात्र जीवाश्मों से प्राप्त संकेतों को ही समझ पाए। परंतु सबसे पहले, डार्विन ही विविध अध्ययन-क्षेत्रों से प्राप्त जानकारी को सही तरीके से संश्लिष्ट रूप दे सके, उनमें एकरूपता ला सके। रिचर्ड लीके (Richard Leakay) का कथन है, "डार्विन ने विविध प्रकार की जानकारी का विकास की पहेली सुलझाने में इस्तेमाल किया। यह जानकारी निम्न विविध क्षेत्रों की थी : आनुवंशिकता और विविधता, जीवाश्म, भूगर्भीय संरचनाएं, भौगोलिक वितरण, भ्रूणविज्ञान, वर्गीकरण विज्ञान, समजातता — डार्विन ने ही सबसे पहले विकास के प्रमाणों के लिए उचित क्षेत्रों की जानकारी दी।"

वे कैसे यह काम कर सके? निश्चय ही, जानकारी के प्रारंभिक संकेत उन्हें अपने दादाजी की पुस्तक "जूनोमिया" में मिले होंगे। एडिनबरों में उनके मित्रों और कैम्ब्रिज में उन्हें विविध जानकारियां देने वालों ने प्राकृतिक इतिहास और भूविज्ञान का प्रकृति के बीच अध्ययन करने को उन्हें प्रेरित किया होगा। बीगल जलयान में यात्रा के दौरान डार्विन, लायल की पुस्तक "प्रिंसिपल्स ऑफ जिओलॉजी" का भी अध्ययन करते थे। इन सब बातों ने उनके मन में अभिरुचि जगाई — जिससे वे इस यात्रा के दौरान अपने प्रेक्षणों और अनुभवों को मिलाकर एकरूपता दे सके। उनके प्रेक्षण किसी एक क्षेत्र तक सीमित नहीं थे। वे एक ही साथ — भूवैज्ञानिक, जीवाश्माविज्ञानी, जैवभूगोलविद्, पर्यावरण-विशेषज्ञ — सभी कुछ थे। इंग्लैंड लौटने के बाद कबूतरों में प्रजनन के प्रयोगों के बारे में उनके अनुभवों और किसानों और पशुओं का प्रजनन कराने वालों से उनकी बातचीत से यह बात साबित होती है। उन्होंने अपने अनुभवों को सुसंबद्ध विचारों का रूप देने में करीब 20 वर्ष का लंबा समय लिया।

वे जैव विकास के प्रमाण जुटाने तक ही सीमित नहीं रहे। "जातियों का विकास कैसे हुआ" — इस प्रश्न पर भी उन्होंने गहराई से सोचा। उनका निष्कर्ष था कि यह विकास वंशागत विविधताओं और प्राकृतिक वरण के संयोग से हुआ।

वास्तव में डार्विन ने अपने विचार प्रस्तुत करने में इतना अधिक समय लिया कि लगभग उसी अवधि में उनके समकालीनों ने भी वैसे ही विचार प्रस्तुत कर दिए। डार्विन के एक समकालीन अल्फ्रेड रसेल वैलेस (1823-1913, चित्र 9.3) का उनके साथ व्यापक पत्र-व्यवहार रहा। बाद में जब वैलेस इंग्लैंड लौटे तो वे डार्विन के मित्र, प्रशंसक और सहयोगी हो गए। पत्र-व्यवहार के कारण वे जातियों के उद्गम के रहस्य का पता लगाने के डार्विन के प्रयासों से अवगत थे। लेकिन उन्हें डार्विन के काम की प्रगति का कोई अंदाज नहीं था। आठ वर्षों तक ईस्ट इंडीस के द्वीपों की यात्रा के दौरान, वे भी जातियों के उद्गम की पहेली सुलझाने का प्रयास करते रहे। वे दक्षिण-पूर्व एशिया में प्रकृति वैज्ञानिक के रूप में विभिन्न जातियों के नमूने जमा करते रहे। वे भी, डार्विन की तरह, इसी परिणाम पर पहुंचे — जातियों के विकास के पीछे प्राकृतिक वरण की "शक्ति" ही काम करती है।

चित्र 9.3 : अल्फ्रेड रसेल वैलेस

ईस्ट इंडीस में लिखे गए उनके आलेख ने डार्विन को भी अपने कार्य को आगे बढ़ाने को प्रेरित किया। वैलेस ने अपना आलेख उन्हें इस आग्रह के साथ भेजा कि इस आलेख को लिनियन सोसाइटी ऑफ लंदन को भेज दिया जाए। ऐसी स्थिति में डार्विन ने, अपने मित्रों की सलाह पर, अपने शोध कार्य का भी सारांश लिखा। दोनों आलेख सोसाइटी की एक ही बैठक में पढ़े गए।

इस तरह, विकास के सिद्धांत के विकास में डार्विन और वैलेस — दोनों को समान श्रेय मिला। विकास के इन सिद्धांत के अनुसार, विकास विविधताओं और प्राकृतिक वरण के जरिए रूपांतरित जातियों का उद्गम यानी जाति उद्भवन है। इस सिद्धांत के साथ मुख्य रूप से डार्विन का ही नाम जुड़ा होने का कारण यह है कि उन्होंने इस विषय का क्रमबद्ध और विस्तृत विश्लेषण किया। उन्होंने हर पक्ष, हर उपलब्ध प्रमाण पर अच्छी तरह विचार किया — भले ही इनमें से कुछ उनके सिद्धांत के ही प्रतिकूल थे। सबसे महत्वपूर्ण बात यह थी कि उन्होंने अपने तर्कों और प्रमाणों की कमियाँ भी ईमानदारी से स्वीकारीं।

ऐसी ही एक कमी थी — आनुवंशिकता की कार्य-प्रणाली की जानकारी न होना। इसे न जानने का अर्थ था वंशागत विविधताओं को नहीं समझा पाना, जबकि वंशागत विविधताओं का डार्विन के सिद्धांत में महत्वपूर्ण स्थान है। इस महत्वपूर्ण प्रश्न पर डार्विन के विचारों में अंतर्विरोध था। वे इस मुद्दे पर लामार्कवाद और अपने अनुमानों पर आधारित विचारों — 'पैनजेनेसिस' (pangenesis) के बीच उधेड़-बुन में पड़े रहे।

निष्कर्ष यह है कि डार्विन अपने विवेक से विकास प्रक्रिया में प्राकृतिक वरण के महत्व को कर्ता के रूप में समझ सके। छोटी-छोटी वंशागत विविधताओं पर प्राकृतिक वरण के निरंतर और संचयी प्रभाव से जाति उद्भवन होता है। विभिन्न भूगर्भीय कालों से गुज़रते हुए इसी प्रक्रिया से जातियों में विविधताएं उत्पन्न होती हैं और वर्गीकरण की दृष्टि से उच्च जाति-वर्ग उभरते हैं।

बोध प्रश्न 3

निम्न कथनों में कौन सही है, कौन गलत? दिए गए स्थान में अपना उत्तर लिखिए।

i) सभी जीवधारियों में घातीय क्रम में अपनी संख्या बढ़ाने की प्रवृत्ति होती है। [ ]

i) किसी जीव-समूह के जीवों में प्रतियोगिता के बाद हर पीढ़ी में पैदा हुए सभी जीव जीवित रहते हैं। [ ]

iii) हर जीव-समूह के जीवों की विशेषताओं में काफी हद तक एकरूपता होती है। [ ]

iv) जैव जातियों की अधिकांश विविधताएं आनुवंशिक होती हैं। [ ]

v) लामार्क "थ्योरी ऑफ पेनजेनेसिस" के प्रणेता थे। [ ]

9.4 नव-डार्विनवाद और आधुनिक संश्लेषण

जातियां लम्बी अवधि में धीरे-धीरे विकसित हुई, डार्विन के इस विचार को उनके जीवन काल में काफी हद तक मान्यता मिली। लेकिन जातियों के विकास में प्राकृतिक वरण की निर्णायक भूमिका के बारे में उनकी धारणा को इतनी मान्यता नहीं मिली। इसकी कुछ वजहें थीं। प्राकृतिक वरण आनुवंशिक विविधताओं की उपलब्धता पर बहुत हद तक निर्भर है, इसलिए आनुवंशिकी की कार्यप्रणाली के बारे में भी स्पष्ट सिद्धांत होना आवश्यक था। क्योंकि अगर हमें यह स्पष्ट नहीं है कि वंशागत गुण एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक कैसे पहुंचते हैं तो यह भी नहीं समझा पाएंगे कि इन गुणों में विविधताएं कैसे आती हैं। आधुनिक शब्दावली में, अगर हमें जीनों की प्रकृति के बारे में कोई जानकारी नहीं है तो हम यह नहीं समझ सकते कि उनमें उत्परिवर्तन कैसे होता है। डार्विन को इस पक्ष की कोई जानकारी नहीं थी। इसीलिए प्राकृतिक वरण के उनके सिद्धांत की आलोचना हुई।

विज्ञान के इतिहास की यह एक विचित्र विडंबना थी कि डार्विन के जीवनकाल में ही उनके सिद्धांत की कमियों का समाधान उपलब्ध था पर डार्विन और उनके समकालीनों को इसकी जानकारी तक नहीं थी। जॉन ग्रेगर मेंडेल (1822-1884) का यह दुर्भाग्य था कि उन्होंने स्वीट पी मटर (sweet pea) पर अपने अनुसंधान के परिणाम को एक अल्प-ज्ञात पत्रिका में प्रकाशित कराया। परिणाम यह हुआ कि उनके अनुसंधान पर 1900 तक किसी प्रख्यात विद्वान की नज़र ही नहीं पड़ी।

9.4.1 मेंडेलवाद और डार्विनवाद

डार्विन को आनुवंशिकता की कार्य-प्रणाली और मेंडेल के निष्कर्षों की कोई जानकारी नहीं थी इसलिए उन्हें उपार्जित गुणों की आनुवंशिकता के लामार्क के दृष्टिकोण पर विश्वास करना पड़ा। 1880 में ऑगस्ट वीज़मैन (August Weissman) ने काय द्रव्य (somotoplasm) और जनन द्रव्य (Germplasm, जर्मप्लाज़्म) के बीच स्पष्ट अंतर किया और अपने प्रयोगों के जरिए यह दिखाया कि आनुवंशिकता जनन द्रव्य से काय द्रव्य की ओर तो चलती है, लेकिन इसकी उल्टी दिशा में कभी नहीं चलती। 1949 में जी.जी. सिंपसन (G.G. Simpson) ने वीज़मैन के विचारों को नव-डार्विनवाद (Neo-Darwinism) नाम दिया। मेंडेल के आनुवंशिक नियमों की पुनर्व्याख्या यानि मेंडेलवाद

(Mendalism) से प्रारंभ में डार्विनवादी अपनी समस्या नहीं सुलझा पाए। मेंडेलवाद की पुनर्व्याख्या करने वाले तीन प्रमुख वैज्ञानिकों में एक ह्यूगो व्रीस (Hugo-De-Vries' 1848-1935) भी थे। उन्होंने तर्क दिया कि मेंडेल द्वारा निर्धारित विशिष्ट गुणों की विविक्त वंशागति यानि आनुवंशिकता (particulate inheritance) का विशिष्ट रूप जातियों के क्रमिक विकास का आधार नहीं बन सकता क्योंकि आनुवंशिक तत्वों में उत्परिवर्तन अचानक होता है। आनुवंशिक तत्वों में अचानक हुए बदलावों से कैसे किसी जीव-समूह के गुणों में सुचारू और क्रमिक परिवर्तन हुए जिसके परिणामस्वरूप जाति उद्भवन हुआ?

चित्र 9.4 : थियोडोसियस डॉबज़ॉन्स्की।

डार्विनवाद की एक प्रमुख विशेषता यह है कि जातियों का उत्तरोत्तर विकास अर्थात् विकास का आधार जीवों की अपेक्षा जीव-समूहों के स्तर पर होने वाला परिवर्तन है। लेकिन, वंशागत विविधता अर्थात् मेंडेल के सिद्धांत के अनुरूप जीवों में उत्परिवर्तन व्यक्तिगत स्तर पर होता है और इस प्रकार उत्पन्न विविधताएं "जीवन के संघर्ष" में उनके भविष्य को प्रभावित करती हैं। दूसरी ओर प्राकृतिक वरण का परिणाम जीव-समूहों के स्तर पर देखा जा सकता है। इसलिए मेंडेलवाद और डार्विनवाद के समन्वय के लिए मेंडेल के आनुवंशिक सिद्धांतों को जीव-समूहों पर लागू करना आवश्यक है। इसलिए हमें जीव विशेष पर उत्परिवर्तन के प्रभावों पर कम ध्यान देना चाहिए। इसके स्थान पर किसी जीन के उत्परिवर्तन के परिणामस्वरूप होने वाले युग्म-विकल्पी (ऐलीलोमार्फ allelomorph) के किसी जीव-समूह में वितरण की बारंबारता यानि आवृत्ति और प्राकृतिक वरण के बाद इन आवृत्तियों के परिवर्तन पर ज्यादा ध्यान देना चाहिए। जीव-समूह आनुवंशिकी अर्थात् समष्टि आनुवंशिकी (population genetics) का यही प्रमुख विषय क्षेत्र है। जीव विज्ञान की इस विषम शाखा का विकास गणितीय पक्ष पर ज्यादा ध्यान देने वाले विकास-वैज्ञानिकों ने किया है। इस दृष्टिकोण से अध्ययन करने पर यह निष्कर्ष निकलता है कि भले ही उत्परिवर्तन अचानक होते हों पर जीव-समूहों पर इनका प्रभाव अचानक और झटके से नहीं होता बल्कि क्रमिक और सुचारू तरीके से होता है। समष्टि आनुवंशिकी के अध्ययनकर्ता की दृष्टि में विकास का अर्थ जीव-समूहों में जीनों की आवृत्तियों या बारंबारता में बदलाव से है।

विस्थानिक जाति उद्भवन (allopatric species) का तात्पर्य ऐसे जाति-समूह से है जो दूसरे जाति-समूह से भिन्न भौगोलिक क्षेत्र में रहते हैं। इसका विलोम समस्थानिक जाति (sympatric species) है जिसमें दो जाति-समूह एक ही भौगोलिक क्षेत्र में रहते हैं।

1930 से 1940 के दशक में, बल्कि 1937 से डॉबज़ॉन्स्की (चित्र 9.4) की पुस्तक "जेनेटिक्स एंड ओरिजिन ऑफ़ स्पीशीज़" के साथ ही आधुनिक संश्लेषण (modern synthesis) का युग प्रारंभ हुआ। उन्होंने स्पष्ट किया कि प्राकृतिक वरण को समझाने के लिए प्रयोगों की रूपरेखा बनाई जा सकती है और ऐसे प्रयोग किए भी जा सकते हैं।

चित्र 9.5 : अरनेस्ट मायर।

इसी बीच, 1942 में अरनेस्ट मायर (Ernest Mayr चित्र 9.5) ने अपनी पुस्तक "सिस्टेमेटिक्स एंड ओरिजिन ऑफ़ स्पीशीज़" में "जाति" शब्द की सटीक परिभाषा दी और स्पष्ट किया कि विस्थानिक जाति उद्भवन (allopatric speciation) ही जाति उद्गम का सामान्य तरीका है। मायर की परिभाषा के अनुसार, जाति ऐसा जीव-समूह है जिसके जीव परस्पर प्रजननशील अर्थात् संकरण (interbreed) करते हैं अथवा संभावित परस्पर प्रजननशील होते हैं। विभिन्न जातियों के प्रजनन के आधार पर पृथक-पृथक समूह होते हैं। यह अब तक की सर्वाधिक स्वीकृत परिभाषा है। आज तक इससे अधिक प्रयुक्त शब्दों की कोई सर्वमान्य वैकल्पिक परिभाषा और जाति उद्भवन की कोई और मान्य वैकल्पिक व्याख्या नहीं हुई है।

चित्र 9.6 : जी.जी. सिंपसन।

आधुनिक संश्लेषण में तीसरा महत्वपूर्ण योगदान जी.जी. सिंपसन (चित्र 9.6) और उनकी दो पुस्तकों "टेंपो एंड मोड इन इवोल्यूशन" (1944 में प्रकाशित) और "मेजर फीचर्स ऑफ़ इवोल्यूशन (1953 में प्रकाशित) का है।

डॉबजॉन्स्की, मायर और सिंपसन आधुनिक संश्लेषण सिद्धांत (modern synthetic theory) के जनक हैं और उन्हें विकास जीवविज्ञान का त्रयी कहा जाता है। इनके अलावा अन्य वैज्ञानिकों ने भी इस सिद्धांत में योगदान दिया। इंग्लैंड के रोनाल्ड ए. फिशर (Ronald A. Fischer) और जॉन बी.एस. हाल्देन (John B.S. Haldane) तथा अमरीका के सेवेल राइट (Sewall Wright) ने प्राकृतिक वरण के अंतर्गत जीनों की आवृत्ति में परिवर्तन के गणितीय सिद्धांत में महत्वपूर्ण योगदान दिया। उन्होंने यह भी बताया कि छोटे-छोटे वरणात्मक विविधताओं द्वारा विकासीय परिवर्तन हो जाते हैं। जूलियन हक्सले (Julian Huxlay) ने अपने विस्तृत ग्रंथ "इवोल्यूशन : दि मॉडर्न सिंथेसिस"

म आनुवंशिकी और सिस्टेमेटिक्स अर्थात् वर्गीकरण विज्ञान के बीच संश्लेषण का विवेचन किया। जी.एल. स्टैबिन्स (G.L. Stebbins) ने अपनी पुस्तक "वेरियेशन एंड इवोल्यूशन इन प्लांट्स" में बताया कि आनुवंशिकी परिवर्तनों के नव-डार्विनवादी सिद्धांतों के अनुसार ही, न केवल जातियों का उद्गम होता है, बल्कि उच्चस्तर के जाति वर्ग का विकास भी इन्हीं सिद्धांतों के अनुरूप होता है। इस प्रकार नव-डार्विनवाद और आधुनिक संश्लेषण सिद्धांत की प्रमुख उपलब्धि यह है कि आनुवंशिकी के मेंडेल के विश्लेषण और विकासीय अवधारणाओं को जीव-समूहों पर लागू किए जाने से इनके बीच तालमेल संभव हो सका।

यह प्रश्न अक्सर पूछा जाता है कि क्या डार्विनवाद की प्राकृतिक वरण की धारणा और संश्लेषण सिद्धांत में कोई अंतर है? अरनेस्ट मायर ने इसे नकारा और स्पष्ट किया कि "संश्लेषण अपने आप में कोई क्रांति नहीं है, बल्कि डार्विन की क्रांति का अंतिम क्रियान्वित रूप है।" अगले उपभाग में मेंडेल के नियमों को मान्यता मिलने और आधुनिक अणु जैविकी तक की विभिन्न महत्वपूर्ण उपलब्धियों की चर्चा की गई है।

9.4.2 आनुवंशिकता का गुणसूत्रीय सिद्धांत और डार्विनवाद

जिस समय समष्टि आनुवंशिकी के विद्वान मेंडेल के आनुवंशिक सिद्धांतों को डार्विनवाद पर लागू करने के प्रयास कर रहे थे, एक अन्य क्षेत्र में ऐसा महत्वपूर्ण कार्य हो रहा था जिससे आनुवंशिकी के सिद्धांत को भौतिक आधार मिल सके। कोशिका-वैज्ञानिकों ने गुणसूत्र (chromosomes) का आविष्कार किया और समसूत्री (mitosis) और अर्धसूत्री (meiosis) विभाजन के दौरान उनके विशिष्ट व्यवहार का विवेचन किया। इस तरह मेंडेल ने जिन विवित्तों (particulate) को आनुवंशिक विशिष्टताओं का निर्धारक (determinant's of particulate inheritance) बताया था, उन जीनों को गुणसूत्रों से संबद्ध करने का मार्ग खुला। आप "धागे में मनकों' (beads-on-a-string) की ही तरह गुणसूत्रों पर व्यवस्थित जीनों के क्रम के मॉडल से परिचित हैं। थॉमस मॉर्गन (Thomas Morgan) और उनके विद्यार्थियों ने अपने अध्ययनों से जीनों और गुणसूत्रों के बीच महत्वपूर्ण संबंध का पता लगाया।

आनुवंशिकी के गुणसूत्र सिद्धांत से डार्विन के विकास सिद्धांत में दो महत्वपूर्ण बातें जुड़ीं। पहली बात यह है कि आनुवंशिक विविधताओं का एक स्रोत तो जीनों में उत्परिवर्तन ही है लेकिन किसी जीव-समूह में जो अधिकांश विविधताएं आमतौर पर पाई जाती हैं, वे अर्द्धसूत्री कोशिकीय विभाजन के दौरान गुणसूत्रों के भागों का परस्पर आदान-प्रदान होने से अनेक नये-नये संयोग (recombination) होने के कारण होती हैं। किसी जीव-समूह में जितनी अधिक विविधताएं होंगी, डार्विन के सिद्धांत के अनुसार उस समूह में प्राकृतिक वरण के काम करने की उतनी ही अधिक संभावनाएं होंगी।

आनुवंशिकी के गुणसूत्र सिद्धांत का एक और महत्वपूर्ण निष्कर्ष यह है कि उत्परिवर्तन के अंतर्गत जीनों में अचानक परिवर्तन के अलावा जीनों के द्विगुणन (duplication) सहित, अन्य कई बातें भी शामिल की जानी चाहिएं। कोशिका विभाजन के दौरान गुणसूत्रों के विविध संयोगों जैसे कि द्विगुणन, विलोपन, स्थानान्तरण तथा प्रतिलोमन के कारण महत्वपूर्ण लक्षण प्ररूपी (phenotypic) अर्थात् शारीरिक परिवर्तन होते हैं जो प्राकृतिक वरण का आधार बनते हैं। गुणसूत्रों के पूरे सेट के द्विगुणन (polyploidy) तथा एक अथवा अनेक गुणसूत्रों के द्विगुणन (aneuploidy) ने वनस्पतियों के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

9.5 आधुनिक संश्लेषण से अणु आनुवंशिकी तक

आनुवंशिक गुणों के निर्धारण में जीनों की भूमिका के बारे में जानकारी बढ़ने से आनुवंशिकता के गुणसूत्र सिद्धांत की पूरी प्रक्रिया स्पष्ट हो सकी। इन प्रगति में आनुवंशिकी को विज्ञान की एक आधुनिक शाखा — जैव-रसायनशास्त्र (biochemistry) से जोड़ने पर काफी योगदान मिला है। इस प्रकार जैवरासायनिक आनुवंशिकी (biochemical genetics) का जन्म हुआ। विज्ञान की इस शाखा में जीनों की कार्यप्रणाली का जैवरासायनिक आधार पर अध्ययन किया जाता है।

9.5.1 जैवरासायनिक आनुवंशिकी और विकास

इस नये विषय में सबसे महत्वपूर्ण योगदान बीडल (Beadle) और टेटम (Tatum) के "एक जीव — एक एंजाइम" के सिद्धांत का है। उन्होंने डबलरोटी की फफूंद — न्यूरोस्पोरा क्रेसा (Neurospora Crassa) पर अपने महत्वपूर्ण अनुसंधान के आधार पर यह सिद्धांत रखा। अब इस सिद्धांत को "एक जीन-एक पॉलीपेप्टाइड" सिद्धांत के नाम से जाना जाता है, क्योंकि सभी प्रोटीन एंज़ाइम नहीं होते। इस सिद्धांत से जुड़े अनेक पक्षों के विस्तार में हम नहीं जा रहे हैं। हमारे लिए इसका यह पक्ष महत्वपूर्ण है कि लक्षण प्ररूप में जीन के व्यक्त रूप का तुरंत परिणाम प्रोटीन होता है।

यहां उल्लेखनीय है कि जिस प्रकार शरीर-रचना और भ्रूण विज्ञान संबंधी निकटताएं तथा अंतरों के आधार पर जैव-विकास को समझाया जाता है और विभिन्न जातियों का विकास दिखाते हुए जाति वंश वृक्ष (phylogenetic tree) बनाया जा सकता है, उसकी तरह प्रोटीनों के घटक ऐमीनो अम्लों के क्रम के अनुक्रमण (sequensing) के उनकी संरचना की तुलना की जा सकती है। ये प्रोटीन विभिन्न जीवधारियों में समान कार्य करते हैं जिनसे इनके "विकास" का पता चलता है। अनुसंधान के इस प्रमुख क्षेत्र के बारे में आप अगली इकाई में पढ़ेंगे।

9.5.2 आण्विक विकास

प्रोटीनों की प्राथमिक संरचना अर्थात् ऐमीनो अम्लों के अनुक्रमण के अध्ययन के साथ ही आण्विक विकास के क्षेत्र में अध्ययन की शुरुआत हुई। जीन की संरचना का पता चल जाने और इसके बाद डी एन ए अणुओं के अनुक्रमण की जानकारी से लक्षण प्ररूपों में जीनों के व्यक्त रूपों अर्थात् प्रोटीनों के बजाय, जीनों की ही निर्माण-प्रक्रिया और उनके विकास की जांच कर पाना संभव हो सका। यह कई दृष्टियों से महत्वपूर्ण उपलब्धि थी। प्रोटीनों के विकास की समीक्षा और जीनों के विकास की समीक्षा में स्पष्ट अंतर है क्योंकि प्रोटीन संरचनात्मक जीनों का व्यक्त रूप है। उच्च और अधिक विकसित जीवों में संरचनात्मक जीन कुल डी एन ए की मात्रा का बहुत थोड़ा हिस्सा होते हैं। इन तरह अनुक्रमण द्वारा डी एन ए क्रम का अध्ययन बड़ा महत्वपूर्ण है और ऐसे अध्ययन से जैव विकास की धारणा के विकास में उल्लेखनीय प्रगति हुई है।

बोध प्रश्न 4

निम्न वाक्यों में सही विकल्प पर सही (✓) का निशान लगाइए।

i) समष्टि आनुवंशिकी जीव-समूहों में जीनों की आवृत्ति के परिवर्तनों से/ जीव-समूहों में धीरे-धीरे होने वाले सुचारू परिवर्तनों से जुड़ा विज्ञान है।

ii) "सिस्टेमेटिक्स एंड ओरिजिन ऑफ़ स्पीशीज़" पुस्तक थियोडोसियस डॉबज़ॉन्स्की/अरनेस्ट मायर ने लिखी है।

iii) जीन का तुरंत व्यक्त रूप लक्षण प्ररूपी/जीन प्ररूपी प्रोटीन है।

iv) जीनों की कार्यप्रणाली को जैवरासायनिक आधार पर समझने का विज्ञान आण्विक विकास/जैवरासायनिक आनुवंशिकी कहा जाता है।

v) जीनों को गुणसूत्रों से संबद्ध मानने के बारे में महत्वपूर्ण प्रमाण मॉर्गन/बीडल ने प्रस्तुत किया।

9.6 डार्विनवाद को चुनौतियाँ

साठ के दशक में आण्विक आनुवंशिकी के क्षेत्र में न्यूक्लिओटाइड्स और ऐमीनो अम्लों के अनुक्रमण की विविध तकनीकों के जरिए जीनों की संरचना का विश्लेषण हुआ। लेकिन इसी दौर में अनेक वैज्ञानिक विकास के संश्लेषण सिद्धांत को चुनौती भी दे रहे थे। आण्विक आनुवंशिकी के क्षेत्र में काम कर रहे इन वैज्ञानिकों ने मनुष्यों और अनेक जीवधारियों के कइयों बार द्विगुणित न्युक्लिओटाइड्स के ऐसे क्रम का पता लगाया जिनका कोई कार्य नहीं था। जीनों के ऐसे निरर्थक और कार्यहीन द्विगुणन से ऐसा लगता है कि ये कार्य प्राकृतिक वरण के प्रभाव में नहीं हुए। चुनौती देने वाले वैज्ञानिकों का यह भी

कहना था कि अनेक उत्परिवर्तनों का अच्छा-बुरा कोई असर नहीं पड़ता और जीवधारियों के जीवित रहने पर इसका कोई प्रभाव नहीं होता। इसे उदासीनतावादी सिद्धांत (neutralists theory) कहा जाता है। इसके अनुसार, विकास प्रक्रिया के बड़े हिस्से के लिए प्राकृतिक वरण की कोई आवश्यकता नहीं होती। बाद में प्राकृतिक वरण के समर्थक वैज्ञानिकों ने तर्क दिया कि चुनौती देने वाले इन वैज्ञानिकों का कहना इसलिए गलत है क्योंकि इन वैज्ञानिकों ने विकास की औसत दर को निश्चित दर (constant rate) समझने की भूल की।

सत्तर के दशक में एस.जे. गोल्ड (S.J. Gould) के नेतृत्व में कुछ जीवाश्म-वैज्ञानिकों ने संश्लेषण सिद्धांत को चुनौती दी। उनका कहना था कि जीवाश्मों के रिकार्ड से ऐसा लगता है लंबे समय तक संतुलन और विराम के बाद अचानक तेज परिवर्तनों के रूप में विकास होता है। इस धारणा को पंक्चुएटेड इक्वीलीब्रियम अर्थात् विराम-युक्त संतुलन (punctuated equlibrium) कहते हैं। लेकिन जी.जी. सिंपसन का कहना है कि विराम के काल भी ऐसे काल होते हैं जिसमें प्राकृतिक वरण कार्य करता है। इस प्रकार आधुनिक संश्लेषण सिद्धांत विज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों की चुनौतियों पर खरा उतरा है। डार्विन ने मानव विकास के बारे में बहुत कम बातें कहीं लेकिन इसका तात्पर्य यह नहीं कि उन्होंने मनुष्य के विकास को अन्य प्राणियों के विकास से बहुत अलग समझा। डार्विन ने भविष्य के बारे में कहा कि "मनुष्य-जाति के उद्गम और इतिहास के बारे में भी जानकारी मिलेगी"। वास्तव में, डार्विन के समय में कोई भी मानवीय जीवाश्म नहीं खोजा गया था। लेकिन 1920 के बाद से बड़ी संख्या में, ज्यादातर अफ्रीका से, मानव जीवाश्म मिले हैं। इन जीवाश्मों से मानव के इतिहास को उसके लंगूर (ape) जैसे पूर्वजों तक समझा जा सका है। इस प्रकार आधुनिक संश्लेषण सिद्धांत से विकासीय जीवविज्ञान की अनेक उलझनों का सबसे अच्छा समाधान मिलता है। विकास एक निरंतर होते रहने वाली प्रक्रिया है। अक्सर यह प्रश्न पूछा जाता है कि मानव विकास के बाद क्या हो? इसका उत्तर सरल नहीं है लेकिन निश्चय ही समकालीन विकास प्रक्रिया की ज्यादा गहराई से और विस्तृत समझ विकसित करने के प्रयास किए जाएंगे। तब विकास के बारे में हमारी समझ और बेहतर हो सकेगी।

9.7 सृष्टिवाद

आज वैज्ञानिक प्रयास विश्वव्यापी हैं और वैज्ञानिक इस बात पर गर्व करते हैं कि विज्ञान राष्ट्रों की सीमाओं में कैद नहीं है। लेकिन यह भी सच है कि आज का विज्ञान पश्चिमी सभ्यता से जन्मा है और इसकी जड़ें पुनर्जागरण के बौद्धिक आंदोलन में हैं। इसलिए यह स्वाभाविक है कि विकास के हर दौर में विज्ञान ईसाई धार्मिक विचारों से मतभेद हुए। प्रख्यात नक्षत्र वैज्ञानिक गैलीलियो (1564-1642) ने अपने प्रयोगों के आधार पर सौर मंडल के केन्द्र में सूर्य के होने के कौपरनिक्स के सिद्धांत की पुष्टि की लेकिन उन्हें धर्म-विरोधी (heretic) घोषित कर दिया गया जिसका दंड जला कर मार देना था। इसी भय से उन्हें अपने विचारों के लिए क्षमा-याचना करनी पड़ी। लेकिन ऐसे भी श्रेष्ठ वैज्ञानिक थे जिनकी धर्म में पूर्ण आस्था थी और उन्हें विज्ञान और धर्म के बीच कोई टकराव नजर नहीं आया। प्रख्यात वैज्ञानिक सर आइज़क न्यूटन (1642-1717) का मानना था कि ईश्वर ही विश्व की सभी गतिविधियों का नियंता है और ब्रह्मांड के सभी कार्य-व्यापारों की निर्धारक कार्य-कारण प्रक्रिया (cause and effect mechanism) को चलाने वाला वही ईश्वर है।

इस पृष्ठभूमि में आप समझ सकते हैं कि शताब्दियों से विकासीय विचारों को किस प्रकार विविध रूप दिये जाते रहे होंगे और इनकी व्याख्या की जाती रही होगी। धार्मिक आस्था वाले प्रकृति-वैज्ञानिकों को उनके प्रेक्षणों के तार्किक परिणामों से गहरा सदमा पहुंचा। ऐसे भी वैज्ञानिक थे जो धार्मिक मामलों में बहुत कट्टर नहीं थे लेकिन चर्च और धर्मभीरू आम जनता की कड़ी प्रतिक्रिया के डर से उन्होंने अपने निष्कर्षों को बड़ी सावधानी के साथ व्यक्त किया। आज भी पश्चिमी देशों के कुछ हिस्सों में चर्च के इसी प्रभाव की छाया सृष्टिवाद के सिद्धांत में मिलती है।

सुसंबद्ध डार्विनवादी विकास के समर्थन में जुटाये गये वैज्ञानिक प्रमाणों की चुनौतियों का जवाब देने के लिए सृष्टिवाद के सिद्धांत में भी काफी परिवर्तन आये। पश्चिमी देशों में सृष्टिवादी विकास के सिद्धांत पर पूरी आस्था रखने वाले शैक्षिक संस्थान हैं, जिनमें इस सिद्धांत के प्रति समर्थन जुटाने के लिए

निरंतर वैज्ञानिक अनुसंधान भी चलते रहते हैं। उनकी सफलता को बताने वाला एक तथ्य यह भी है कि अमरीका के कुछ दक्षिणी राज्यों में ऐसे कानून तक बनाए गये हैं कि हाईस्कूल कक्षाओं में डार्विनवाद और सृष्टिवाद को पढ़ाने में बराबर समय देना ज़रूरी है। सृष्टिवाद संबंधी विवाद के विस्तार में न जा कर हम यहां पूरी स्थिति का सारांश प्रस्तुत कर रहे हैं। विकास के तार्किक सिद्धांत के समर्थक और विरोधी ईसाई चिंतकों को चार वर्गों में रखा जा सकता है।

I-पूर्णतः विकासवादी

ये वैज्ञानिक डार्विनवाद पर पूर्णतः विश्वास करते हैं। इनका मानना है जैव विकास वास्तव में हुआ और यह पूरी तरह संयोगों से हुआ, किसी पूर्व निर्धारित व्यवस्था के तहत नहीं। आप जानते हैं कि उत्परिवर्तनों के बारे में पहले से कुछ नहीं कहा जा सकता अर्थात् ये अचानक होते हैं। इन वैज्ञानिकों के अनुसार, विकास की प्रक्रिया को लाखों वर्षों के संदर्भ में समझा जाना चाहिए। संक्षेपे में, ये ऐसे वैज्ञानिक हैं जो धर्म और विज्ञान को आपस में मिलाने के पक्ष में नहीं हैं।

II-धार्मिक आस्थावान विकासवादी

जो विकास के वैज्ञानिक सिद्धांत को तो मानते हैं पर इनका विश्वास है कि विकास-प्रक्रिया ईश्वर द्वारा पूर्व-निर्धारित है और चलायी गयी है।

III-पूर्णतः सृष्टिवादी

इनका मानना है कि पूरी सृष्टि ईश्वर की रची है और इसकी रचना कुछ ही हजार वर्ष पूर्व हुई। इनका कहना है कि चट्टानों की तहों में मिले जीवाश्मों से मात्र इस बात की ही पुष्टि होती है कि आदिपुरुष नोह (Noah) के काल में विनाशकारी प्रलय हुई थी।

IV-चौथा दृष्टिकोण यह है कि हम स्पष्ट रूप से यह बता पाने में समर्थ नहीं हैं कि अत्यंत प्राचीन काल में ईश्वर ने विश्व की रचना किस प्रकार की। मनुष्य के उद्भव से पूर्व यह रचना सीधे-सीधे सृष्टिवादी तरीके से हुई या डार्विन के सिद्धांत से मिलते-जुलते तरीके से — इस बारे में हम कुछ नहीं कह सकते। किसी युग में, किन्हीं कारणों से कुछ ऐसी गलती हुई जिससे ईश्वर क्रुद्ध हो गया और उसने प्रलय के माध्यम से उस पुराने विश्व को नष्ट कर दिया। इसके बाद अत्यंत तेज गति से सृष्टि का पुनर्निर्माण हुआ और कुछ छह दिनों में सारी सृष्टि हो गयी। परिणामस्वरूप, विश्व की नव-संरचना हुई और सृष्टि के सर्वोत्कृष्ट जीव-मानव की सृष्टि संभव हुई।

विज्ञान के बुनियादी आधारों और विश्लेषण का स्वरूप ऐसा है कि उसके अंतर्गत आध्यात्मिक और धार्मिक आधार वाले दूसरे और चौथे विकल्प के गुण-दोषों का आकलन नहीं किया जा सकता। इसलिए, ऐसे विकल्पों पर कोई फैसला देने की बजाय, हम एक भारतीय भौतिक-विज्ञानी के इस निष्कर्ष पर पहुंच सकते हैं।

"कृष्णन जैसे चिंतक — समय के परिवर्तनों से अविचलित रहकर अपने मन के धर्म का पालन करते हैं, — (और) खोजे जा सकने वाले तथ्यों को खोजते हैं तथा नहीं खोजे जा सकने वाले तथ्यों का शांत मन से सम्मान करते हैं।"

प्रो. (सर) एस.आर. कृष्णन नई दिल्ली-स्थित राष्ट्रीय भौतिक प्रयोगशाला के पहले निदेशक थे।

बोध प्रश्न 5

क) निम्नलिखित के बारे में संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए :

i) उदासीनवादियों का विकास सिद्धांत

.....

.....

.....

.....

.....

ii) विराम-युक्त संतुलन

.....

.....

.....

.....

.....

इस इकाई के अध्ययन के बाद क्या आप सोचते हैं कि इस पृथ्वी पर जीवधारियों की सृष्टि की गयी होगी?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

9.8 सारांश

इस इकाई में आपने निम्न बातों का अध्ययन किया :

- ईसा के जन्म से पूर्व भी विकास संबंधी चिंतन किया जाता था और डार्विन से पहले के अधिकांश चिंतक मानते थे कि विकास के पीछे अलौकिक शक्तियों का हाथ है।
- डार्विन के पूर्ववर्ती लीनियस और बुफो जैसे विचारकों के कार्य से इस विचार को वैज्ञानिक आधार मिला कि जातियां अपरिवर्तनीय हैं।
- डार्विन से पहले के एक जीवविज्ञानी लामार्क ने सबसे पहले एक वैज्ञानिक धारणा के अंतर्गत विकास का सुसंबद्ध सिद्धांत प्रस्तुत किया। लेकिन विभिन्न अंगों के उपयोग करने और न करने तथा उपार्जित गुणों की आनुवंशिकता के उनके सिद्धांत की पुष्टि नहीं हो सकी और इसलिए उसे माना नहीं जाता।
- 1858 में डार्विन के "ओरिजिन ऑफ़ स्पीशीज़" के प्रकाशन के साथ ही विकास-संबंधी अध्ययन में नये युग का सूत्रपात हुआ और रूपांतरित जातियों के उद्गम के सिद्धांत को समकालीन वैज्ञानिकों का सम्मान मिला।
- 1900 में मेंडेल के अनुसंधान की जानकारी और 1930 से 1940 के दौरान ऑगस्ट वीज़मैन के जनन द्रव्य सिद्धांत और आधुनिक संश्लेषण सिद्धांतों से प्राकृतिक वरण के सिद्धांत की सत्यता की पुष्टि हुई।
- सृष्टिवादियों के अनुसार पृथ्वी और जीवन की सृष्टि दैवीय इच्छा के परिणाम हैं।

9.9 अंत में कुछ प्रश्न

1) लामार्क के विकास सिद्धांत की समीक्षा करें।

.....

.....

.....

2) "जीवन के लिए संघर्ष" से आप क्या समझते हैं?

3) जैवरासायनिक आनुवंशिकी से विकास प्रक्रिया को समझने में क्या मदद मिली?

4) आधुनिक संश्लेषण से आप क्या समझते हैं?

9.10 उत्तर

बोध प्रश्न

1) i) घ, ii) क, iii) ख, iv) ग, v) च

2) क) उपार्जित गुणों के वंशागत हो जाने के लामार्क के सिद्धांत की वैज्ञानिक आधार पर पुष्टि नहीं हो सकी है और अब सिद्धांत को मान्यता नहीं दी जाती। इसके अप्रामाणिक होने का एक प्रमाण यह है कि भारत में हिंदू औरतों के कान पीढ़ी-दर-पीढ़ी छिदवाये जाते हैं लेकिन कभी भी कानों में छेद वाली कोई बच्ची नहीं पैदा होती है। अगर लामार्क का सिद्धांत सही होता तो जो सैनिक युद्धों के दौरान विकलांग हो जाते हैं, उनके बच्चे भी विकलांग पैदा होते।

ख) i) एकरूप
ii) घनिष्ठ संबंध
iii) जटिलता बढ़ती
iv) तुलनात्मक शरीर-रचनाशास्त्र

3) i) सही, ii) गलत, iii) गलत, iv) सही, v) गलत

4) i) जीव समूहों में जीनों की बारंबारता या आवृत्ति में परिवर्तन से, ii) अरनेस्ट मायर, iii) लक्षण प्ररूप, iv) जैवरासायनिक आनुवंशिकी, v) मॉर्गन

5) क) i) उदासीनतावादियों का मानना है कि हमारे जीनोमों में न्यूक्लिओटाइडों के अनेक क्रम कई हजार बार द्विगुणित होते हैं और इसका कोई उद्देश्य भी नहीं होता, इसलिए यह संभव है कि ऐसा उद्देश्यरहित और निरर्थक द्विगुणन प्राकृतिक वरण के प्रभाव में नहीं होता।

ii) विरामयुक्त संतुलन की धारणा के अनुसार जीवाश्मों के रिकार्ड से यह पता चलता है कि विकास अचानक तेज परिवर्तनों के बीच लंबी अवधियों तक संतुलन और विराम के दौर रहे।

ख) विद्यार्थी अपनी राय के अनुसार इस प्रश्न का उत्तर दें।

अंत में कुछ प्रश्न

1) लामार्क के उपयोग और अनुपयोग तथा उपार्जित गुणों की वंशागतता के सिद्धांत, पुष्ट न किए जा सकने वाले विचारों पर आधारित हैं। किसी अंग या वस्तु के बार-बार उपयोग से प्रकृति के साथ अनुकूलन संभव नहीं है। उदाहरण के लिए, हरे रंग का कोई कीड़ा अपने शत्रुओं की नजर में आने से बच जाता है। यह प्राकृतिक अनुकूलन है लेकिन ऐसा कीड़ा किसी हरे पेड़ पर लगातार बैठे रहने से हरा नहीं हुआ होगा। इसी तरह अगर उपार्जित गुण वंशागत हो जाते, तो एक पीढ़ी के कुपोषण के प्रभाव और विकलांगता भी दूसरी पीढ़ियों में वंशागत होकर बढ़ती रहती।

2) डार्विन के अनुसार जीवन के लिए संघर्ष वह प्रतियोगिता है जो पर्यावरण के सीमित संसाधनों के उपभोग के लिए किसी जाति के जीवों में होती है। यह प्रतियोगिता जीवाधारियों के विविध गुणों में श्रेष्ठता का परीक्षण है। किसी पर्यावरण में जीव के बने रहने में जो गुण सहायक होते हैं, वही प्राकृतिक अनुकूलन के उदाहरण बन जाते हैं।

3) बीडल और टेटम के "एक जीन — एक एंज़ाइम" सिद्धांत के साथ जैवरासायनिक आनुवंशिकी का महत्व बढ़ा। बाद में इस सिद्धांत को संशोधित कर इसे "एक जीव-एक पालिपेप्टाइड" सिद्धांत का रूप दिया गया। जैवरासायनिक आनुवंशिकी से प्रोटीनों की संरचना और इनके घटक ऐमीनो अम्लों के क्रम की तुलना करना संभव हो सका। विभिन्न ऐमीनो अम्ल विभिन्न जीवधारियों के शरीर में एक जैसी भूमिका निभाते हैं। इससे इन जीवधारियों का विकास होने की बात प्रमाणित हुई।

4) विकास का आधुनिक संश्लेषण सिद्धांत 1930 से 1940 के बीच विकसित हुआ। इसमें आनुवंशिकी, वर्गीकरण विज्ञान और जीवाश्म-विज्ञान के आधार पर प्राकृतिक वरण की धारणा का महत्व स्पष्ट हुआ। आनुवंशिकी से स्पष्ट हुआ कि उपार्जित लक्षण वंशागत नहीं होते और लक्षण प्ररूप जीनों द्वारा नियमित होते हैं। वर्गीकरण विज्ञान से यह प्रमाणित हुआ कि विभिन्न भौगिलिक क्षेत्रों में बसी नस्लों के सदस्यों के बीच और विभिन्न नस्लों के बीच विविधताओं का आनुवंशिकीय आधार है। जीवाश्म-वैज्ञानिकों ने बताया कि जीवाश्मीय विश्लेषण से प्राप्त तथ्यों से नव-डार्विनवादी सिद्धांत प्रामणित होता है।

इकाई 10 जैव विकास के प्रमाण

इकाई की रूपरेखा

10.1 प्रस्तावना
उद्देश्य
10.2 भू-वैज्ञानिक अभिलेखन
सापेक्षिक काल निर्धारण
निरपेक्ष काल निर्धारण
भू-वैज्ञानिक समय मापक्रम
जीवाश्म
अश्व का विकास
10.3 जीव-भूगोल
जीव-भौगोलिक प्रदेश
असंतत वितरण
द्वीपों में जीवन
महासागरों में जीवन
10.4 तुलनात्मक शरीररचना
समजात अंग
समवृत्ति अंग
अवशेषी अंग
10.5 तुलनात्मक भ्रूण विज्ञान
हैकेल का नियम
वॉन बोअर के सिद्धांत
10.6 तुलनात्मक शरीरक्रियाविज्ञान और जीवरसायन शास्त्र
शरीरक्रिया विज्ञान
जीवरसायन शास्त्र
10.7 सारांश
10.8 अंत में कुछ प्रश्न
10.9 उत्तर

10.1 प्रस्तावना

जैव या कार्बनिक विकास की अवधारणा ने मौजूदा स्वरूप कैसे पाया, इसके इतिहास के बारे में आपने इकाई 9 में पढ़ा। आपने डार्विन के सिद्धांत की जानकारी हासिल की। इसके अनुसार जीव विकास ऐसी प्रक्रिया है, जिसमें जीवों में उनके वंशानुगत विविधताओं पर कार्यशील प्राकृतिक वरण द्वारा रूपांतरण लाया जाता है। आज भी डार्विनवाद हमें प्रकृति में मौजूद असीम जीव विविधता को समझने के लिए सबसे अच्छी व्याख्या देता है। मगर किसी जीव के जीवनकाल के दौरान जैव विकास को प्रत्यक्ष देख पाना असंभव है। इसका बड़ा सरल कारण है। विकास के जरिए जाति-उद्भवन एक समय मापक्रम में होता है। यह समय मापक्रम जीव के जीवनकाल से कहीं ज्यादा बड़ा होता है। इस कारण कोई भी जीव शुरू से लेकर आखिर तक समूची विकासीय परिघटना को कभी नहीं देख सकता। इसलिए विज्ञान के कई क्षेत्रों में अप्रत्यक्ष प्रमाण बटोरे गए हैं, जो मिलकर इस अवधारणा को बल देते हैं कि जीव विकास हुआ है। जीवाश्मिकी जीव-भूगोल, तुलनात्मक शरीररचना विज्ञान (शारीर), विकासीय जीव-विज्ञान, शरीरक्रियाविज्ञान (कार्यकी) और जीव रसायनशास्त्र आदि विज्ञान की इन शाखाओं ने जैव विकास की अवधारणा को सबल करने में योगदान किया है। इस इकाई में हम इन्हीं पहलुओं के बारे में जानकारी हासिल करेंगे। इससे अगली इकाई में आपको चार्ल्स डार्विन द्वारा प्रतिपादित प्राकृतिक वरण के सिद्धांत के बारे में बताया जाएगा, जो हमें विकासीय परिवर्तन की प्रक्रिया के बारे में समझाता है।

उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ लेने के बाद आप :

- धरती के पटल पर पाए जाने वाले जीवाश्मों के जैव विकास से परस्पर संबंध को समझा सकेंगे, खासकर उन बड़ी-बड़ी घटनाओं को एक-दूसरे से जोड़ सकेंगे, जो पौधों और जन्तुओं के विकास के दौरान घटी हैं,
- समकालीन पौधों और जन्तुओं की विभिन्न जातियों का भौगोलिक वितरण उनके विकास क्रम से किस तरह से जुड़ा है, इसे अच्छी तरह से समझा सकेंगे,
- समजातीयता और समवृत्तीयता की अवधारणा को समझा सकेंगे और विकास प्रक्रिया से प्रभावित होने वाले संरचना और प्रकार्य को परस्पर जोड़ने में इनके महत्व को बता सकेंगे,
- विकासीय सिद्धांत से जुड़े वाद-विवाद में भ्रूण विज्ञान के योगदानों के बारे में बता सकेंगे, जो हमें हैकेल के नियम और वॉन बोअर के सिद्धांत जैसे व्यापक अवधारणाओं की ओर ले जाते हैं, और
- शरीरक्रियाविज्ञान और जीव रसायनशास्त्र की दृष्टि से विकास को समझा सकेंगे।

10.2 भू-वैज्ञानिक अभिलेखन

युगों से धरती के पटल पर जीवों के जीवाश्मों के रूप में हुए संरक्षण ने ही हम में भू-वैज्ञानिक अभिलेखन के प्रति रुचि पैदा की है। जीवाश्मों के महत्व को ठीक-ठीक से समझने के लिए इस अभिलेखन यानि भूवैज्ञानिक इतिहास के निर्माण के लिए उत्तरदायी कुछेक बुनियादी बातों को हमें जानना होगा। इसलिए हम संक्षेप में भू-विज्ञान के कुछ बुनियादी सिद्धांतों पर चर्चा करेंगे।

आधुनिक भू-विज्ञान के संस्थापकों की सबसे बड़ी उपलब्धि पृथ्वी की उम्र का पता लगाने में रही है। चट्टानों का बनना इस ग्रह के जन्म से चल रहा है। इसी तरह धरती पर जीवन के शुरू होने से ही जीवाश्मन (जीवाश्म बनने की प्रक्रिया) चल रहा है। चट्टानें तरह-तरह की भू-वैज्ञानिक प्रक्रियाओं के परिणामस्वरूप बनती हैं, जैसे — भू-अपरदन, वायु क्रिया, जलमग्न (submergence) होना, उन्नयन (elevation), ज्वालामुखी सक्रियता, परिवहन, भौतिक अपक्षयन (physical weathering) और जलवायु परिवर्तन। इन प्रक्रियाओं के दौरान कीचड़, बालू और पत्थर अवसादनों के तल या तलछटों में, झीलों या समुद्रों की ओर बहा ले जाए जाते हैं और वहां जमा हो जाते हैं। कभी-कभी अनेक जीव भी मरकर ऐसे जल निकायों की तलहटी में दब जाते हैं। इस तरह से निक्षेपित पदार्थ कालांतर में संपीडित (compress) और पिंडित (ठोस बनकर) होकर चट्टानों की परतों या स्तरों को जन्म देते हैं। इन्हीं परतों में जीवाश्म के रूप में जीवन के अवशेष पड़े रहते हैं। इन स्तरित चट्टानों (stratified rocks) की प्रकृति और इनके वितरण की जांच-पड़ताल करने पर हम उस इलाके के भू-वैज्ञानिक इतिहास की रूपरेखा तैयार कर सकते हैं, जहां से चट्टानों को लिया गया हो। इन चट्टानों का विश्लेषण करने से हम उन तमाम वातावरणीय परिस्थितियों का पता लगा सकते हैं, जिनमें इनकी रचना हुई होगी। इसके साथ-साथ चट्टानों की उम्र का अनुमान भी लगाया जा सकता है।

अब सवाल यह उठता है कि आखिर चट्टानों की उम्र का निर्धारण कैसे होता है? इसके लिए भू-वैज्ञानिक दो विधियाँ अपनाते हैं। एक है — *सापेक्षिक काल-निर्धारण* की विधि और दूसरी है — *निरपेक्ष काल निर्धारण*। आगे के उप-भागों में हम आपको इन विधियों के बारे में जानकारी देंगे।

10.2.1 सापेक्षिक काल निर्धारण

सापेक्षिक काल निर्धारण (relative dating) की प्रक्रिया का मूल सिद्धांत स्तरविन्यास अर्थात् अनुक्रमिक परतों में चट्टानों की स्थिति पर आधारित है। अपने साथ पौधों और जन्तुओं के अवशेषों को लेकर ये अवसाद यानि तलछट (sediments) धीरे-धीरे समुद्रों या दूसरे बड़े जल निकायों में बैठ जाते हैं। तलहटी में बैठने पर ये एक के बाद एक चट्टानों की ठोस परतों का रूप लेने लगते हैं। अवसादी चट्टानों में सबसे गहरा या निचला स्तर सबसे पुराना होता है। सबसे सतही या ऊपर का स्तर सबसे नया होता है। वैसे तो ये चट्टानें अविचल रहती हैं। मगर इनके स्तरीकरण में जटिलताएं देखने

म आता ह। वस मूल रूप स य सभा स्तर समतल परता म जमा हात ह, ता भा कालातर म इनका बनावट में विकार आ जाता है। तब इनमें या तो झुकाव आ सकता है, या फिर ये बिल्कुल ही उलट-पुलट सकते हैं। इसलिए ऐसे में हमें शैल (चट्टान) सस्तर के श्रेणीकरण या क्रमनिर्धारण जैसे पैमानों का सहारा लेना पड़ता है। श्रेणीकरण से हमारा मतलब यह है कि घने या सूक्ष्मकणिक स्तर एक लम्बे और निरंतर जमाव के परिणाम से बनते हैं। दूसरी ओर पतले या स्थूल-कणिक स्तरों की रचना, निक्षेपणों की अवधि छोटी होने के कारण होती है। इस तरह चट्टान का स्तरविन्यास हमें शैल निक्षेपणों की उम्र की जानकारी देता है। मगर अवसादन की दर के परिवर्तनीय होने के कारण उम्र का सिर्फ सापेक्षिक आंकलन संभव बन पाता है। सापेक्षिक काल निर्धारण के सिद्धांत को निकालने वाले विलियम स्मिथ पेशे से एक सिविल इंजीनियर थे। उनके बारे में हम आपको इकाई 9 में बता ही चुके हैं।

चट्टानों की अच्छी परख रखने वाले स्मिथ ने खुदाई करने पर भिन्न स्तरों में भिन्न-भिन्न किस्म के जीवाश्म पाए। एक निश्चित समतल से नीचे वाले पुराने स्तरों और उससे ऊपर के नये स्तरों में बिल्कुल भिन्न जीवाश्म थे। इस खोज से ऐसी चट्टानों की उम्र का पता लगाना संभव तो हो ही गया, जो जाने-पहचाने इलाकों से मीलों दूर थीं। बल्कि चट्टान की किस्म बदलने पर भी उन्हें पहचानना, उनकी उम्र का पता लगा पाना आसान हो गया। इसका सबसे बड़ा कारण यह था कि उनमें पाए जाने वाले जीवाश्म एक ही थे। किसी भी प्रकार के जीवाश्म पृथ्वी के इतिहास में कभी नहीं दोहराए जाते। एक बार एक प्रकार के जीव का लोप हो जाए वह दुबारा धरती पर जीवन नहीं पाता। इस तरह आप चट्टानों की उम्र के आंकलन या काल निर्धारण में जीवाश्मों और परतों के अधिस्थापन की भूमिका के महत्व को समझ सकते हैं। आइए, चट्टानों की निरपेक्ष आयु का निर्धारण कैसे किया जाता है, इसे जानें।

10.2.2 निरपेक्ष काल निर्धारण

चट्टानों और जीवाश्म निक्षेपों की निरपेक्ष आयु (absolute dating) का पता हम रेडियोधर्मी काल निर्धारण से लगा सकते हैं। यह विधि इस तत्थ पर आधारित है कि पृथ्वी के पटल पर मौजूद रेडियोधर्मी समस्थानिक एक निश्चित और स्थिर दर पर टूटकर रेडियोसक्रियताहीन तत्वों में बदलते हैं। इस तरह वे एक ही रेडियोधर्मी घड़ी बनाते हैं, जो हमें समय या काल बता सकती है।

रेडियोधर्मी काल निर्धारण इस बात पर आधारित है कि हरेक रेडियोधर्मी समस्थानिक की विशिष्ट "अर्ध-आयु", (half life) होती है। अर्धआयु वह समय है, जो किसी रेडियोधर्मी समस्थानिक की दी गई मात्रा को क्षय होने में लगता है। उदाहरण के लिए यूरेनियम 238 की अर्ध आयु कोई 4.5 अरब वर्ष होती है। अतः इस पूरे काल में यूरेनियम की दी गई मात्रा में से सिर्फ आधे अणु ही टूटकर हीलियम और सीसा (lead) बनाएंगे। यूरेनियम 238 के क्षय से बनने वाला आखिरी उत्पाद सीसा है, जिसका परमाणु भार 206 होता है। इस तरह किसी चट्टान के नमूने में मौजूद मूल रेडियोधर्मी पदार्थ को क्षय उत्पाद (decay product) के अनुपात में मापकर वैज्ञानिक नमूने की निरपेक्ष आयु को आंक सकते हैं। इस विधि को विकिरणमितीयक काल निर्धारण (radiometric dating) भी कहते हैं।

अपने निर्माण की प्रक्रिया के दौरान कुछ चट्टानें गल गई। ऐसी चट्टानों को आग्नेय शैल (igneous rock) कहा जाता है। अनेक आग्नेय शैलों में कोई जीवाश्म नहीं मिलता। मगर उनमें पोटैशियम या दूसरे तत्व मौजूद होते हैं, जिनके काल का निर्धारण रेडियोधर्मिता से किया जाता है।

विकिरणमितीयक काल निर्धारण के लिए काम में आने वाले दूसरे समस्थानिकों में पोटेशियम-40 और कार्बन-14 आते हैं। रेडियोधर्मी पोटैशियम और इसका क्षय उत्पाद आर्गन दोनों यूरेनियम से कहीं ज्यादा पाए जाते हैं। इसलिए काल निर्धारण में इनका ही ज्यादा इस्तेमाल होता है। रेडियोधर्मी कार्बन से किसी भी कार्बनयुक्त (कार्बनिक) पदार्थ का काल निर्धारण किया जा सकता है। जीवित जीव अपने तंत्रों या काय में मौजूद जैव कार्बन का एक छोटा सा हिस्सा रेडियोधर्मी रूप में बराबर उपयोग में लाते हैं। रेडियोधर्मी कार्बन की अर्ध आयु 5,760 + 30 वर्ष होती है। हड्डी, लकड़ी के अवशेषों या दूसरे कार्बनयुक्त मृत जीवों के अस्थि-पंजरों का उनमें मौजूद रेडियोकार्बन की औसत मात्रा को जानने के लिए आमापन किया जा सकता है या दूसरे शब्दों में उनकी वैज्ञानिक जांच की जा सकती है। ताजा ऊतक और जीवाश्म में मौजूद रेडियोधर्मी कार्बन की औसत मात्रा में निकलने वाला फर्क रेडियोधर्मी विघटन या क्षय के कारण हो सकता है। इस तरह हम ज्ञात अर्ध आयु से जीवाश्म की उम्र मालूम कर सकते हैं।

चट्टानों के काल निर्धारण के लिए अब तरह-तरह की तकनीकें उपलब्ध हैं। इससे उनकी और उनमें पाए जाने वाले जीवाश्मों की उम्र का पता लगाना संभव हो पाया है, भले ही वे कुछ हजार साल पुराने

हों या लाखों साल। अगले उप-भाग में हम आपको भू-वैज्ञानिक काल मापक्रम के बारे में बताएंगे। पर इससे पहले आप नीचे दिए गए बोध प्रश्नों को हल करने की कोशिका कीजिए।

बोध प्रश्न 1

खाली स्थानों में सही शब्द भरिए।

i) स्तरविन्यास में चट्टानों का ..... सापेक्षिक काल निर्धारण के लिए महत्वपूर्ण है।

ii) ..... दूर-दराज की चट्टानों की उम्र का पता लगाने का साधन हैं।

iii) ..... का उपयोग करने वाली तकनीक के विकसित होने से चट्टानों का निरपेक्ष काल निर्धारण संभव हो गया है।

iv) कार्बनिक तत्व वाले जीवाश्मों की उम्र का पता ..... से लगाया जा सकता है।

10.2.3 भू-वैज्ञानिक समय मापक्रम

स्तरविन्यास के आंकड़ों को आधार बनाकर जीवाश्मविज्ञानियों (palaeontologists) ने एक भू-वैज्ञानिक कालक्रम (geological chronology) तैयार किया है और इस धरती की उम्र को महाकल्प (era), कल्प (period) और युग (epoch) में बांटा है। उन्होंने विभिन्न भू-वैज्ञानिक कल्पों की सापेक्षिक अवधियों को लाखों वर्षों में आंकने में कामयाबी पा ली है। विभिन्न स्तरविन्यासों से निकाल गए जीवाश्म अभिलेख से हमें उस काल या समय का पता चल जाता है, जब विभिन्न जीवों के मुख्य-मुख्य समूह धरती पर जन्मे थे। इस अभिलेखन से हमें कुछ आधुनिक जीवों के संभाव्य पूर्वजों और निकट संबंधियों के बारे में भी पता चलता है।

समय या काल मापक्रम (time scale) में महाकल्पों, कल्पों और युगों को उनकी अवधि या उम्र के क्रम में रखा गया है। इसी क्रम को ही *भू-वैज्ञानिक समय मापक्रम* (geological time scale) कहा जाता है। इसे तालिका 10.1 में संक्षेप में दिखाया गया है। तालिका का अध्ययन करने से हमें जीव विकास के बारे में कई बातों का पता चलता है। यह तालिका दिखाती है कि किसी भी दिए गए कल्प के जीव पहले के कल्प के कुछ ही जीवों के वंशज रहे हैं, न कि सभी जीवों के। इससे यह भी पता चलता है कि कई जातियां और वंश अपने पीछे कोई वंशज छोड़े बिना ही इस दृश्य से गायब हो गए यानी धरती से उनका लोप हो गया।

तालिका 10.1 : भू-वैज्ञानिक समय मापक्रम में जीवन

महाकल्प	कल्प	युग	शुरू से आज तक का समय	भू-वैज्ञानिक परिस्थितियाँ	जीव-वैज्ञानिक विशेषताएं
नूतन जीवी महा-कल्प या सीनोजोइक (Cenozoic era)	चतुर्थांशन (Quarternary)	नवीनतम (Recent)	0.025	चौथे हिम युग का अंत, अपेक्षतया गरम जलवायु	आधुनिक मानव, स्तनधारी, चिड़िया, मछली, कीड़े-मकोड़े।
(आधुनिक जीवन का दौर-स्तन-धारियों का युग)		प्लीस्टोसीन (Pleistocene)	1	चार हिम युग, ठंडी और मंद जलवायु	विशालकाय स्तन-धारियों का लोप, आदिमानव।
	तृतीयक (Tertiary)	प्लाइयोसीन (Pliocene)	10	ज्वालामुखी सक्रियता, शुष्क और ठंडी जलवायु	मानव-सदृश बंदरों से मानव का उद्भव, आधुनिक स्तनधारियों का विकास।
		माइयोसीन (Miocene)	25	मैदानों और घासी स्थलों का विकास मध्यम जलवायु	स्तनधारी चोटि पर, मानव सदृश पहले बंदर का विकास।

महाकल्प	कल्प	युग	शुरू से आज तक का समय	भू-वैज्ञानिक परिस्थितियाँ	जीव-वैज्ञानिक विशेषताएं
		ऑलिगोसीन (Oligocene)	40	पहाड़ों-पर्वतों का बनाना, मुंद जलवायु	आदि स्तनधारियों का लोप, पहले वानर व कपि का तथा आधुनिक स्तनधारियों का विकास।
		इयोसीन (Eocene)	60	पर्वत अपरदन, भारी बारिश, अपेक्षतया गरम जलवायु	अपरास्तनी स्तन-धारियों का अलग-अलग दिशाओं में विकास।
		पेलिओसीन (Palaeocene)	70	पर्वतों का निर्माण, ठंडी या मध्यम जलवायु	पुरातन स्तनधारी का आधिपत्य, पहले प्राइमेटों, अपरास्तनी स्तनधारियों और पक्षियों का उदय।
मध्यमजीवी मीसोजोइक (मध्यजीवी जीवन का महाकल्प) (Mesozoic era)	क्रिटेशियस कल्प (Cretaceous)		135	अंतरदेशीय समुद्रों और दलदलों का फैलाव, (संडीज, हिमालय, आल्पस, रॉकी इत्यादि) पर्वत शृंखलाओं का उदय	विशालकाय सरीसृपों और दांत वाले पक्षियों का लोप, पहले आधुनिक पक्षी का उदय, पुरातन स्तनधारियों की बहुलता।
सरीसृपों का युग	जुरेसिक (Jurassic)		180	काफी ऊंचे महाद्वीप यूरोप और अमरीका के हिस्सों में छिछले समुद्र	पहले दांत वाले पक्षी का उदय, सरीसृप की बहुतायत, डायनोसौर बड़े होते जाते हैं।
	ट्राइऐसिक (Triassic)		230	महाद्वीपों का ऊंचा उठना (उन्नयन) मरुस्थलों की भरमार	पहले डायनोसौर और अण्डा देने वाले स्तनधारी का उदय, पुरातन उभयचरों का लोप।
पुराजीवी पेलियोज़ोइक (पुरातन जीवन का महाकल्प) (Palaeozoic-era)	पर्मियन (Permian)		270	महाद्वीपों का उदय, बढ़ता हिमनदन, ठंडी जलवायु	कई समुद्रीय अकेशरुकियों का विलोप, आधुनिक कीड़े-मकौड़ों का उदय, सरीसृपों का फैलाव।
(उभयचरों का युग)	कार्बनी (Carboni-ferous)		350	अंतर्देशी समुद्रों, पर्वतों में वृद्धि, जलवायु पहले गरम फिर ठंडी	सरीसृपों और परदार कीड़ों की उत्पत्ति, शाकों और उभय-चरों का फैलाव, क्रिनॉइड जीव शिखर पर।
(मछलियों का युग)	डेवोनियन (Devonian)		400	अंतर्देशीय या ज़मीनी समुद्रों का निर्माण, जमीन ऊँची उठती हैं	उभयचरों और वनों का उदय, मछलियों की बहुतायत।

	सिलूरियन (Silurian)	440	भूमि का उदय, अपेक्षतया चपटे महाद्वीप, मंद जलवायु	जबड़े वाली मछलियों और परहीन कीड़ों की उत्पत्तिः भूमि पर आर्थ्रोपोड़ा जंतुओं और पेड़-पौधों का हमला।
(अवशेरुकियों का युग)	ऑर्डोविसियन (Ordovician)	500	भूमि का जल में डूबना, समुद्रों में विस्तार, आर्कटिक प्रदेशों सहित सब जगह जलवायु गरम	कशेरुकियों का उदय (जबड़ाहीन कवच-धारी मछलियां) अकशेरुकियों की बहुतायत।
	कैंब्रियन (Cambrian)	600	नीचे जमीन, मंद जलवायु	सभी अकेशरुकी संघ स्थापित, ट्राइलोबाइट और ब्रोंकियोपॉड प्रचुर।
प्राग्जीवी या प्रोटेरोज़ोइक (आरंभिक जीवन का महाकल्प) (Protero-zoic)	प्रिकैंब्रियन (Precambrian)	2000	विशाल अवसादन, ज्वालामुखीय सक्रियता, जबर्दस्त भूमि अपरदन, बार-बार हिमनदन, गर्म-नम से ठंडी शुष्क जलवायु	सरल समुद्री कशेरुकी, बिना खोल वाले जीवों का उदय, कम जीवाश्म।
आर्कियोज़ोइक महाकल्प (आदि जीवन का महाकल्प) (Archeo-zoic era)		3,600	अत्यधिक ज्वाला-मुखीय सक्रियता, अवसादन, ज़बरदस्त भूमि अपरदन	जीवन का विकास पहचानने योग्य जीवाश्मों की अनुपस्थिति।

10.2.4 जीवाश्म

जीव विकास का सबसे विश्वसनीय और प्रत्यक्ष प्रमाण जीवाश्मों के अध्ययन से मिलता है। जीवाश्म बीते हुए युगों के जीवों के अभिलेख हैं, जो चट्टानों की परतों में दबकर संरक्षित रह गए। जीवाश्म किसी समूचे जीव या उसके किसी हिस्से के संरक्षण से बनते हैं। कभी-कभी जीव पूरी तरह से विलीन होकर अपनी एक प्राकृतिक छाप या **सांचा** (natural mould) छोड़ जाता है। यह सांचा निक्षेपित पदार्थ से भर जाता है और इस तरह उस जीव का एक असली **ढांचा** (natural cast) बन जाता है। कभी-कभी जीवाश्म किसी जन्तु के **पाद-चिह्न** या किसी चट्टान पर पत्ती की छाप के रूप में मिल सकता है। ऐसे जीवाश्म जो सिर्फ किसी जीव की कोई विशेष गतिविधि को दिखाते हैं, उन्हें **अनुरेख जीवाश्म** (trace fossil) कहा जाता है। पथचिह्न या पथ, बिल और "जीवाश्म मल" अनुरेख जीवाश्मों के कुछ उदाहरण हैं। चित्र 10.1 क, ख और ग में आप जीवाश्म अभिलेखन के कुछ उदाहरण देख सकते हैं।

मोटे तौर पर जीवाश्म के लिए कठोर भागों का होना जरूरी है। जैसे कशेरुकी जंतुओं के दांतों और हड्डियों, अकेशरुकी जीवों के खोल और कंटिकाओं का और पौधों के काष्ठीय (कठोर) हिस्सों का होना जरूरी है। सूक्ष्म-कणिक अवसादी चट्टानों में तो संरक्षित कोमल भाग मुश्किल से ही मिल पाते

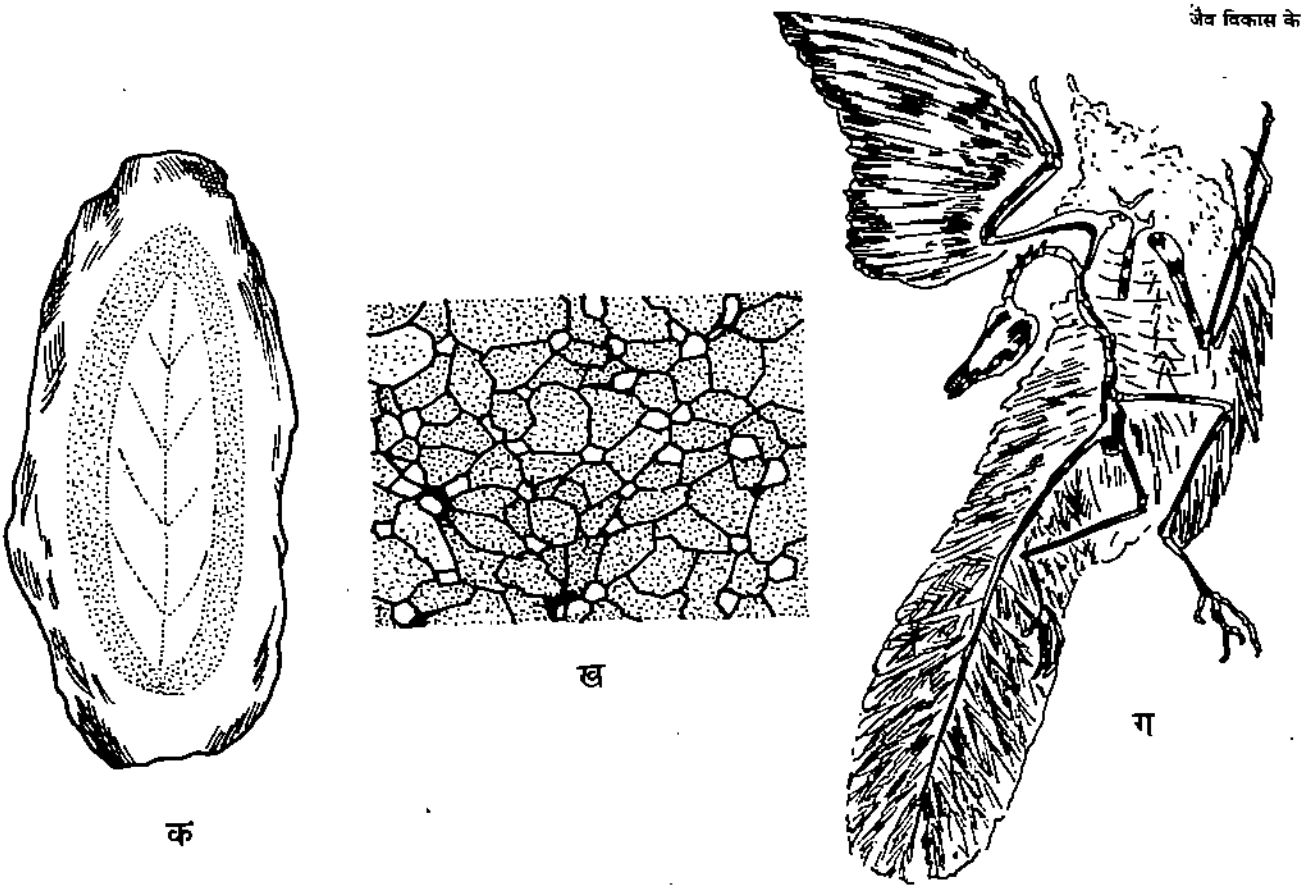

चित्र 10.1 : जीवाश्म अभिलेखन के कुछ उदाहरणः
क) पत्ती की छाप, ख) पत्ती की निचली बाह्यत्वचा की क्यूटिकल, ग) आर्किओप्टेरिक्स।

हैं। **आर्किओप्टेरिक्स** का उदाहरण ही लें। धरती पर जन्म लेने वाले इस पहले पक्षी के छाप या **मुद्राश्म** (impressions) युगों से जस के तस बने रहे हैं। कभी-कभी तो हमें जीवाश्म मल विलुप्त जन्तुओं के खान-पान की आदतों के बारे में बड़े महत्वपूर्ण संकेत देते हैं। जीवाश्म मल को मलगुटिका या **कोप्रोलाइट** (coprolite) कहते हैं।

पॉम्पी में समूचे परिवारों के उनके माल-असबाब और पालतू जानवरों सहित पूरी तरह से संरक्षित जीवाश्म मिले हैं। पॉम्पी 79 ई. में माउंट वेसुवियस नाम ज्वालामुखी में दब गया था।

बहरहाल जीवाश्म अभिलेखन एक सम्पूर्ण भू-वैज्ञानिक अभिलेखन नहीं है। जीवाश्म अभिलेखन के इस अधूरेपन के कारणों को आइए जरा संक्षेप में परख लें। युगों से विद्यमान रहे लाखों जीवों का सिर्फ एक छोटा-सा भाग ही जीवाश्मों के रूप में बना रहा है। जीवों के अवशेष सड़-गल सकते हैं और नष्ट हो सकते हैं। या उनको समूचा या आंशिक रूप से परभक्षी जीव खाकर नष्ट कर सकते हैं। अधिकांश जातियां जीवाश्मन के काबिल नहीं होती। जिन जातियों का जीवाश्मन हो सकता है, उनमें भी अधिकांश जीव दब नहीं पाते। जबकि जीवों का दबना ही उनके संरक्षण के लिए जरूरी है। अवसादन वाले इलाकों से दूर रहने वाले जीवों के संरक्षित होने की संभावना नहीं होती। इसी वजह से जल निकायों या बाढ़ वाले मैदानों को छोड़कर भूमि के अधिकांश हिस्से इस संभावना से बाहर हो जाते हैं। फिर पृथ्वी के इतिहास में आए सभी युग अवसादी चट्टानों के निर्माण और संरक्षण के लिए समान रूप से अनुकूल नहीं रहे हैं। जमीन के जल में डूबने (submergence of land) के कल्प के समय के अवशेषों में जीवाश्म जमीन के उन्नयन (elevation) के कल्पों से कहीं अधिक रहे हैं। इसके अलावा जीवाश्म सहित चट्टानें विभिन्न भू-वैज्ञानिक प्रक्रियाओं द्वारा कई तरह से अपनी जगह से विचलित की जा सकती हैं और उलट-पुलट सकती हैं। अब आपको समझ आ गया होगा कि विकासीय इतिहास का पता लगाने के लिए जीवाश्म अभिलेखन का प्रयोग करते समय उसके अधूरेपन को क्यों ध्यान में रखना पड़ता है।

बहरहाल, अश्व यानि घोड़े, ऊँट और हाथी जैसे जीवों का जीवाश्म अभिलेखन अपने आप में पूर्ण है। अगर इसे कालक्रम में (chronologically) व्यवस्थित किया जाए तो एक पूरी शृंखला बन

जाती है। इस शृंखला से हम इन जन्तुओं के समूचे विकास क्रम को दिखा सकते हैं। इसके एक उदाहरण के बतौर हम अब आपको अश्व के विकास के बारे में बताएंगे।

10.2.5 अश्व का विकास

जीवाश्म अभिलेखन से सबसे पहले अश्वों का ही जातिवृत्त निकाला गया था। अभिलेखन को देखने से हमें पता चलता है कि विकास क्रम के दौरान अश्व के हर भाग पर प्रभाव पड़ा था। आइए, जरा अश्व के विकासीय इतिहास पर संक्षेप में एक नज़र दौड़ा लें।

- आकार में सामान्य वृद्धि।
- मस्तिष्क के आकार में वृद्धि खासकर इसके प्रमस्तिष्क गोलार्ध (cerebral hemisphere) में। इसके साथ ही सिर का आकार भी बढ़ा।
- गर्दन की लंबाई और उसकी गति अर्थात् लचकता में वृद्धि।
- चर्वणक दांत (molar teeth) या दाढ़ की ऊंचाई और उसकी जटिलता में वृद्धि।
- पिछले दो और अंततः अंत के तीन अग्र-चर्वणक दंतों (premolars) के आकार में वृद्धि होकर उनका चर्वण दांतों की तरह हो जाना।
- तेजी से दौड़ने के लिए टांगों का लम्बा होना। मगर साथ में घूर्णी गति (rotational movement) का लोप होना।
- टांगों की हड्डियों का आपस में मिल जाना, जिससे हिन्ज़ जोड़ (hinge joint) बेहतर बन जाते हैं। इससे शरीर के भार को संभालने में भी मदद मिलती है।
- हरेक पैर में अंगुलियों का पांच से घटकर एक लंबी अंगुली (तीसरी) में बदलना, जो एक खुर (पंजे) से ढकी रहती है। बगल की पाद अंगुलियां धीरे-धीरे लुप्त होने लगीं। अंत में दूसरी और चौथी अंगुलियों की महज हड्डियां ही बेर-हड्डी (splints) के रूप में मौजूद रह जाती है।

इस लंबी विकास यात्रा के दौरान इन बदलावों के चलते अश्व एक लंबी टांगों वाला, तेज दौड़ने वाला, जन्तु बन गया। यह अब खुले घास के मैदानों में रहने और उन पर भोजन करने के लायक बन गया। अनेकों दंतवल्क कटकों (enamel ridges) वाले बड़े-बड़े दांतों ने उसे कड़ी घास तथा वनस्पति को चबाने में मदद पहुंचाई।

चित्र 10.2 में अश्व के जीवाश्म अभिलेखन का रेखाचित्र दिया गया है। यह अभिलेखन 6 करोड़ वर्ष का है और इसमें पांचों महाद्वीप शामिल हैं। इससे हमें बीते हुए काल की विकासीय प्रवृत्ति और विविधता, उत्पत्ति, विलोप तथा महाद्वीपों के बीच जीव पलायन के प्रतिरूपों के दस्तावेजी प्रमाण मिलता है।

आगे के भाग में हम आपको विभिन्न जीव प्ररूपों के भौगोलिक वितरण के प्रतिरूपों से जुटाए गए विकास के प्रमाणों की जानकारी देंगे। लेकिन इससे पहले आप नीचे दिए गए बोध प्रश्न के उत्तर देने का प्रयास करें।

बोध प्रश्न 2

क) स्तंभ I में दी गई बातों का स्तंभ II में दी गई बातों से मिलाइए। अपने उत्तर कोष्ठक में दिए गए खाली स्थान में लिखिए।

	स्तंभ I		स्तंभ II
i)	भू-वैज्ञानिक कालक्रम	[ ]	क) जीव की गतिविधि के कारण
ii)	ढांचा जीवाश्म	[ ]	ख) महाकल्प, कल्प और युग
iii)	अनुरेख जीवाश्म	[ ]	ग) किस्म-किस्म के पदार्थों से भरे हुए ढांचे
iv)	अधूरा अभिलेखन	[ ]	घ) सिर्फ जल निकायों के नीचे होने वाला जीवाश्म निक्षेपण।

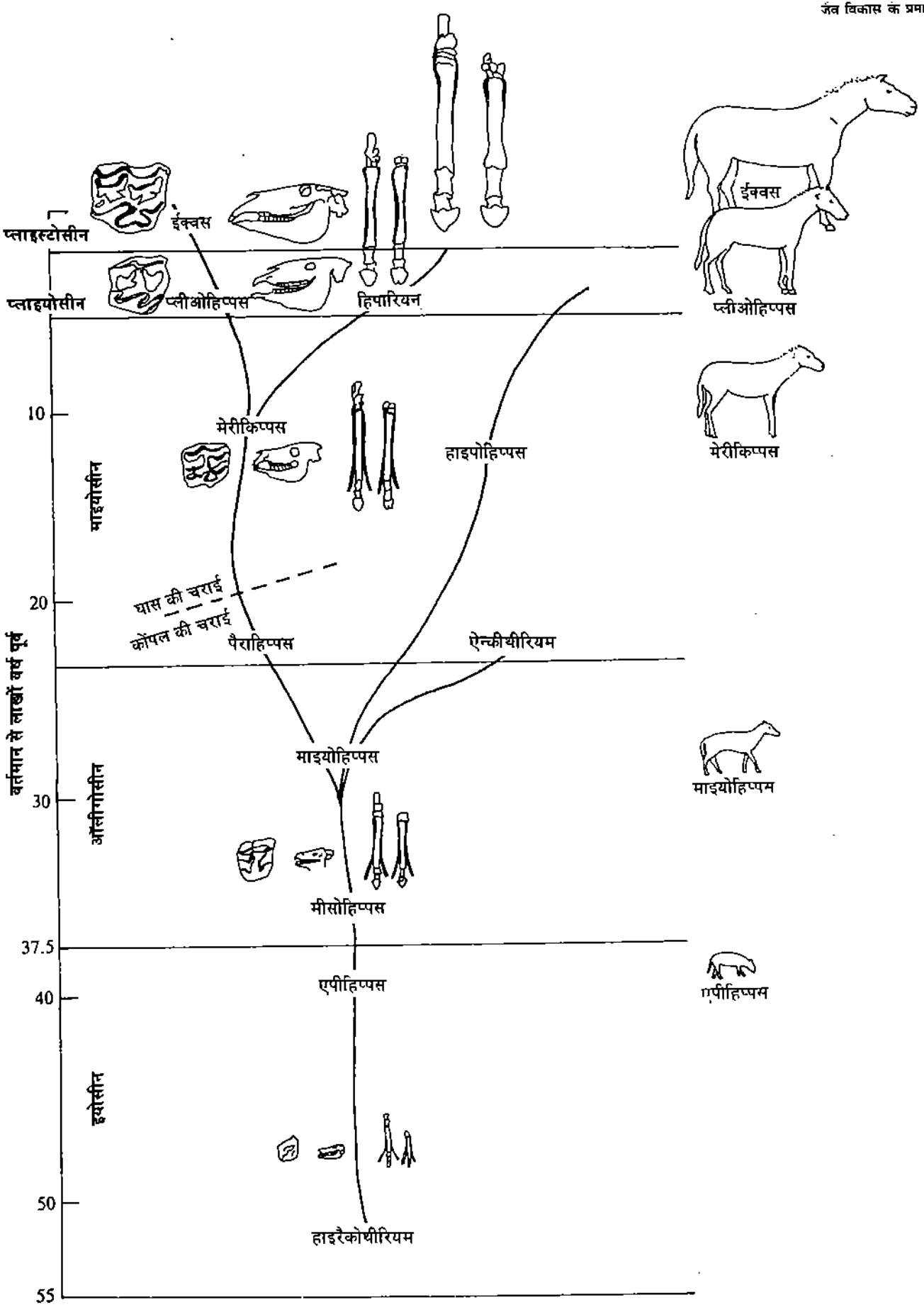

चित्र 10.2 : यह चित्र 6 करोड़ वर्षों के दौरान हुए अश्व की विकासीय प्रवृत्तियों को दर्शाता है। इसमें माइओसीन और प्लीओसीन कल्पों के दौरान घोड़ों में मौजूद विविधता को देखिए। प्लाइयोसीन के खत्म होते-होते अश्वों की सिर्फ एक पाद अंगुली वाली जाति रह जाती है तथा बाकी का लोप हो जाता है।

ख) आधुनिक अश्व की विकास यात्रा में आप दो महत्वपूर्ण बदलावों के बारे में बताइए।

.....

.....

.....

.....

10.3 जीव-भूगोल

परिवर्तन और प्राकृतिक वरण के जरिए ही जीव-जन्तुओं का विकास होता है। अपने इस सिद्धांत को पुख्ता करने के लिए डार्विन ने प्रमाण की एक महत्वपूर्ण धारा विकसित की। यह धारा पौधों और जन्तुओं की समकालीन जातियों के साथ-साथ उनके जीवाश्मों के वितरण की जानकारी से उपजी है यानि जीव भूगोल (biogeography)। डार्विन ने बीगल नामक जहाज पर अपनी समुद्री यात्रा के दौरान गहन छानबीन कर जो निष्कर्ष निकाले थे, असल में उन्हीं से उनका ध्यान इस संभावना की ओर गया। जीव-जंतुओं का वितरण कभी एकरूप या समान नहीं रहता। वह कैसे? आइए, देखें।

पहली बात तो यह है कि भौतिक बाधाओं से अलग हुए जीव-जंतु अक्सर एक दूसरे से बिल्कुल भिन्न होते हैं। अगर उनका वातावरण समान हो, तो भी। दूसरी बात यह है कि समान या एक-दूसरे से काफी समान दिखाई देने वाली जातियां अक्सर ऐसी जगहों में पाई जाती हैं, जो एक-दूसरे से बिल्कुल अलग होते हैं। मध्यवर्ती क्षेत्र में इन जातियों का कोई भी प्रतिनिधि जीव नहीं मिलता। आखिर में समुद्री द्वीपों में काफी कम तादाद में जातियां पाई जाती हैं। इनमें से अधिकतर हरेक द्वीप के लिए एकदम अनूठी होती हैं। आइए, जीव-भूगोल के विभिन्न पहलुओं को देखे।

10.3.1 जीव-भौगोलिक प्रदेश

दुनिया को कुल छः जीवभौगोलिक प्रदेशों में बांटा गया है। यह विभाजन जीव-जन्तुओं और पेड़-पौधों के वितरण में पाई जाने वाली समानताओं और फर्क के आधार पर किया गया है।

i) पैलिआर्कटिक प्रदेश (पुरानी दुनिया) (Palaearctic region-old world)

ii) निआर्कटिक प्रदेश (उत्तरी अमेरिका) (Nearctic region North America)

इन दोनों प्रदेशों को मिलाकर हॉलार्कटिक प्रदेश (Holarctic region) कहा जाता है। इसमें समूचा यूरोप, एशिया की विशाल पर्वत शृंखला हिमालय का उत्तरी भाग और नानलिंग, अफ्रीका में सहारा रेगिस्तान का उत्तरी भाग और उत्तरी अमेरिका में मैक्सिको पठार का उत्तरी भाग आते हैं। भालू, वल्पीज़ वंश की लोमड़ियाँ इस विशाल प्रदेश के कुछ स्तनधारी हैं।

iii) इथियोपीय प्रदेश (Ethiopian region) में अफ्रीकी सहारा रेगिस्तान का दक्षिणी भाग आता है। इस प्रदेश में गोरिल्ला, जिराफ़, शेर और दरियाई घोड़ा जैसे स्तनधारी पाए जाते हैं।

iv) प्राच्य प्रदेश (Oriental region) हिमालय के दक्षिण में स्थित भागों और नान लिंग से मिलकर बना है। इस प्रदेश में गिबन, ऑरैंगउटैन, भारतीय हाथी और उड़न वल्गुल (flying fox) पाए जाते हैं।

v) नवोष्णकटिबंधी प्रदेश (Neotropical region) यानि नियोट्रापिकल प्रदेश में दक्षिणी और मध्य अमेरिका आते हैं। इस प्रदेश में टैपीर, स्लॉथ, परिग्राही पूंछ वाले बंदर और खून पीने वाले चमगादड़ जैसे स्तनधारी जन्तु मिलते हैं।

vi) आस्ट्रेलियाई प्रदेश (Australian region) में आस्ट्रेलिया महाद्वीप आता है। इस प्रदेश में मुख्य रूप से शिशुधानी वाले स्तनधारी, चमगादड़ और कृन्तक (चूहे की जाति के) पाए जाते हैं।

इन सब प्रदेशों में उनसे जुड़े द्वीप भी आते हैं। ये जीवभौगोलिक प्रदेश एक-दूसरे से बड़े-बड़े अवरोधों जैसे — रेगिस्तान, पर्वत और महासागर आदि से अलग हैं। चित्र 10.3 में हमने दुनिया के इन सभी प्रदेशों को दिखाया है।

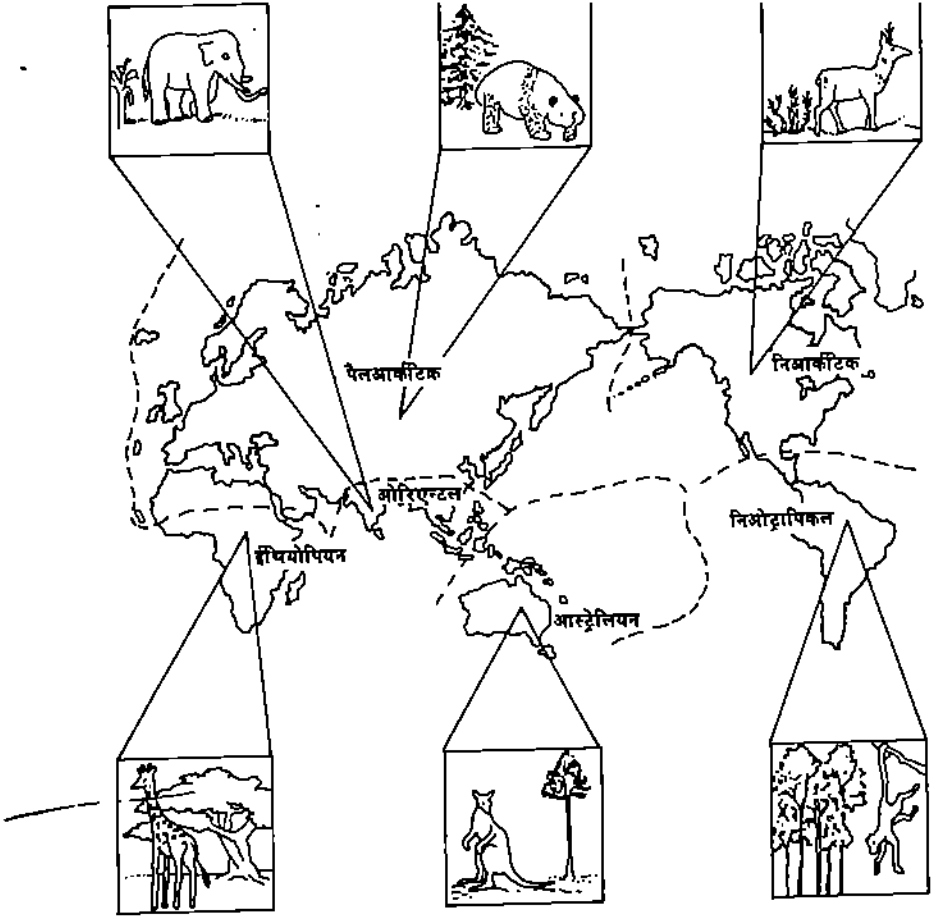

चित्र 10.3 : दुनियां के विभिन्न जीव-भौगोलिक प्रदेश। हरेक प्रदेश में उसके अपने खास जीव-जंतु और पेड़-पौधे हैं।

यहां हमें एक दूसरे पहलू पर विचार करना जरूरी है। ऐसा हो सकता है कि एक प्रदेश की भौतिक परिस्थितियाँ दूसरे क्षेत्र से काफ़ी मिलती-जुलती हों। इसलिए यह समझना लाज़मी है कि ऐसे में एक प्रदेश के पौधों और जंतुओं को दूसरे प्रदेश में रहने में कोई दिक्कत नहीं होगी। मगर ऐसा नहीं होता। समान भौतिक परिस्थितियों वाले प्रदेशों में सिर्फ कुछ गिने चुने ही समान तथा एक-दूसरे से घनिष्ठ रूप से जुड़े जीव-जन्तु मिलते हैं। ये जीव उन जीव समूहों के एकल उत्तरजीवी हो सकते हैं, जो कभी समूचे दुनिया में मौजूद हुआ करते थे। समान प्रदेशों के जीव-जन्तुओं और पेड़-पौधे में पाए जाने वाले इस फर्क को हम बस विकासीय सिद्धांत पर ही समझ सकते हैं। वह भी इस आधार पर कि अलग-अलग प्रदेशों में विकास प्रक्रिया ने अलग-अलग रास्ते अपनाए हैं।

10.3.2 असंतत वितरण

हम पहले बता ही चुके हैं कि एक-दूसरे से घनिष्ठ रूप से जुड़े जीव एकदम अलग छिटके इलाकों में पाए जा सकते हैं। आइए *नायसा* नाम के काले गोंद के पेड़ का उदाहरण लें। इस समय *नायसा* और उसकी नज़दीकी जातियां सिर्फ दक्षिण-पूर्वी एशिया और पूर्वी उत्तर अमेरिका में प्राकृतिक रूप में पाई जाती हैं। इन इलाकों में एक समान भौतिक और जैवीय वातावरण मौजूद है। आपको इन दोनों प्रदेशों को एक-दूसरे से अलग करने वाले बीच के इतने बड़े हिस्से में प्राकृतिक रूप से उगने वाला नायसा कहीं नहीं मिलेगा। जीवाश्म प्रमाण बताते है कि कुछ गर्म युग में नायसा और उससे जुड़ी जातियां एक अखंड क्षेत्र में फैली हुई थीं। इस क्षेत्र में उत्तरी गोलार्ध का एक बहुत बड़ा हिस्सा भी था। हिम युग के दौरान इस क्षेत्र के अधिकांश हिस्सों में जलवायु परिस्थितियां इन पौधों के लिए बिल्कुल असहनीय हो गई। इसका नतीजा यह रहा कि *नायसा* का ज्यादातर हिस्से से पूरी तरह से लोप हो गया और यह सिर्फ उन्हीं इलाकों में जीवित रह सका जहां की जलवायु सहने लायक थी (चित्र 10.4 देखिए)।

अगर *नायसा* स्वतंत्र रूप से दूर-दूर छिटके क्षेत्रों में उगे होते तो शायद ये समान स्थितियों वाले दूसरे इलाकों में भी पाए जाते। ऐसा वितरण जिसमें एक समान जातियां एक-दूसरे से एकदम छिटकी और अलग होती हैं, उसे प्रतिस्थन वितरण (vicariant) कहते हैं।

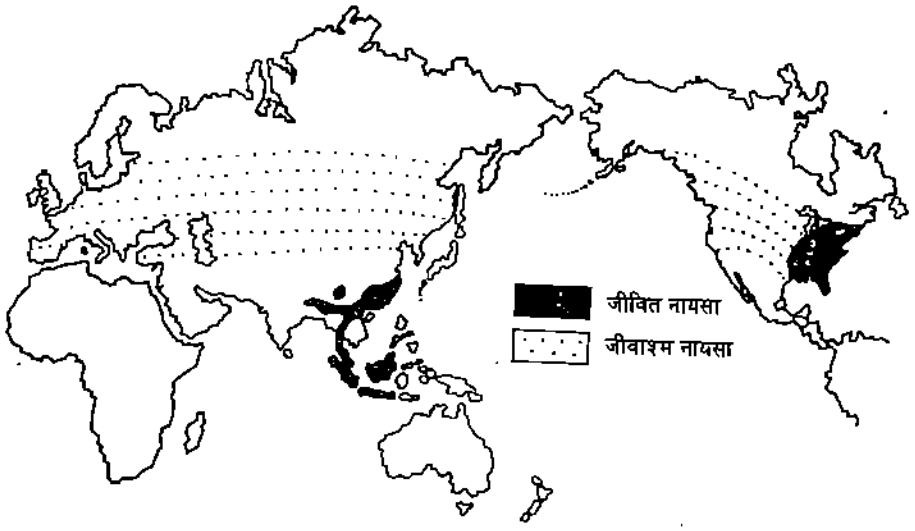

चित्र 10.4 : *नायसा* का वितरण। आच्छादित क्षेत्र जीवाश्म के वितरण को और काले क्षेत्र सजीव रूपों के वितरण को दिखाते हैं।

10.3.3 द्वीपों में जीवन

बीगल जहाज पर अपनी खोज यात्रा में डार्विन ने पाया कि महाद्वीपों से दूर महासागरीय द्वीपों में जीवों की बहुत कम जातियां मौजूद हैं। इन द्वीपों में पाई जाने वाली अनेक जातियां स्थानिक (endemic) हैं। यानि वे किसी दूसरे इलाके में नहीं मिलतीं।

डार्विन ने गैलापैगॉस द्वीपसमूह में जमीनी पक्षियों की 26 जातियां देखीं। इनमें 21 से 23 जातियां स्थानिक थीं। मगर समुद्रीय पक्षियों की कोई 11 जातियों में केवल 2 ही स्थानिक निकलीं। चित्र 10.5

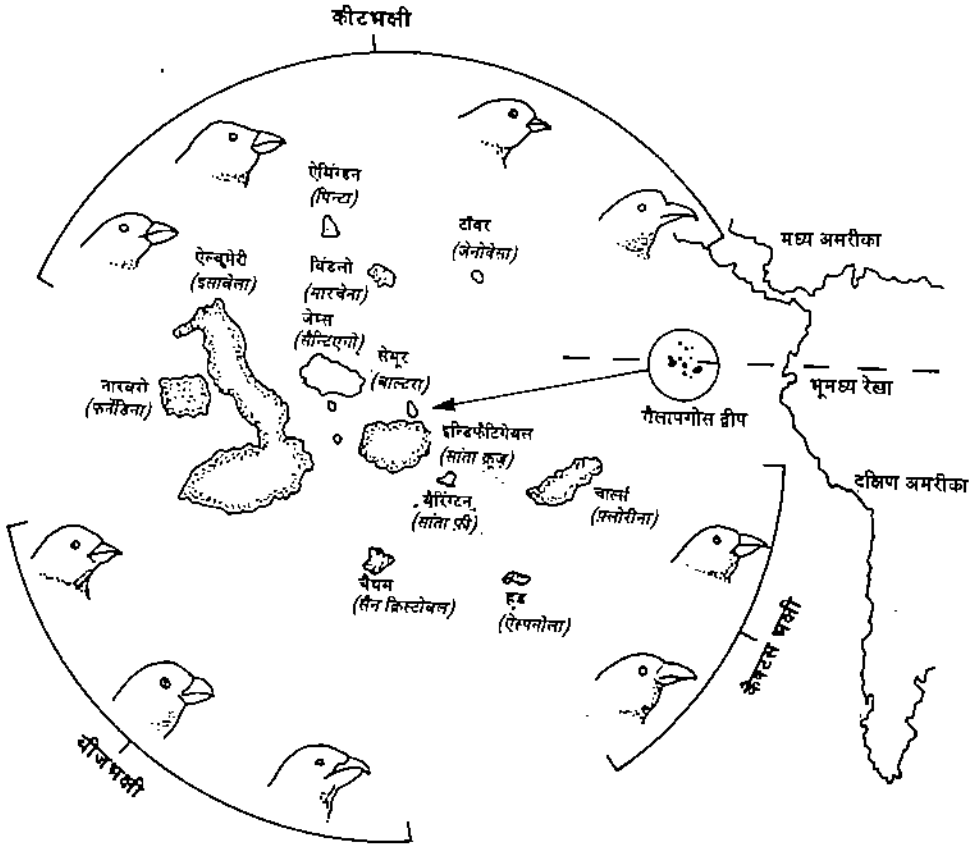

चित्र 10.5 : गैलापैगॉस द्वीप और उपकुल *जियोस्पिजीनी* पक्षियों की चोंच की भिन्न-भिन्न बनावटें। इस भिन्नता का कारण उनके भोजन की आदतें हैं। गैलापैगॉस द्वीप दक्षिण अमेरिका के पश्चिम से 500 से लेकर 600 मील के बीच में फैले हुए हैं।

में हमने जियोस्पिजीवी उपकुल (subfamily geospizinae) के पक्षियों के तरह-तरह की चोंच वाले सिरों को दिखाया है। चोंच की बनावट में यह अंतर उनकी अलग-अलग भोजन-आदतों के कारण है। यह अंतर उन्हें एक सीमित इलाके में अपने लिए अलग-अलग पर्यावरणीय निकेत बना लेने में मदद पहुंचाता है।

दूसरा उदाहरण लें। गैलापैगॉस द्वीपों में फूल वाले पौधों की 436 जातियां हैं। इनमें 223 जातियां स्थानिक हैं। इनमें से अनेक द्वीपसमूह (archipelago) के दो-चार द्वीपों तक ही सीमित है। गैलापैगॉस द्वीपों में पाए जाने वाले जीव-जंतुओं और पेड़-पौधों की स्थानिकता की इस प्रकृति से डार्विन अचरज में पड़ गए। उन्होंने विचार रखा कि इन द्वीपों को मुख्य भूमि से कभी-कभी पलायन कर आने वाले जीव-जन्तुओं ने आबाद किया था। कालांतर में इनके वंशज रूपांतरित होकर नई और एकदम अलग जातियों में विकसित हो गए। जब ये द्वीपसमूह के दूसरे द्वीपों में फैले, इनका हर पृथक जीवसमूह स्वतंत्र रूप से रूपांतरित हुई होगा। इस तरह इनसे घनिष्ठ रूप से जुड़े जीवों के स्थानिक जातियों के समूह बने होंगे। विशाल जल अवरोध की वजह से भी इन जातियों के दूसरे इलाकों में फैलने की संभावना कम हो गई होगी। मगर समुद्री पक्षियों को ऐसे अवरोधों का सामना नहीं करना पड़ता। इसलिए हमें इनका अपेक्षाकृत छोटा हिस्सा ही स्थानिक प्रकृति का मिलता है।

पहली नजर में तो द्वीपसमूह में पाई जाने वाली समकालीन जातियां और उनकी महाद्वीपीय बिरादरी में एक दूसरे से कोई नाता नहीं दिखाई देता। पर हमने आपको ऊपर जो जानकारी दी है, उसके आधार पर आप यह समझ गए होंगे कि भू-वैज्ञानिक अतीत में ऐसी जातियों की पूर्वज कोई एक ही जाति रही होंगी।

दूसरी ओर मनुष्य जब अनेक पेड़-पौधों और जन्तुओं को इन द्वीपों में ले आया, तो वे वहां जीवित भी रह गए और साथ ही उन्होंने अपनी आबादी बढ़ाने में भी कामयाबी हासिल की। इससे यह साबित हो जाता है कि वे द्वीप अनेकों किस्म के जीवों के निर्वाह के लिए अनूकूल हैं।

उभयचर जन्तु अर्थात् जल-स्थलचर और स्थलचर (amphibians and terrestrial) स्तनधारी महासागरीय द्वीपों से आमतौर पर एकदम गायब नज़र आते हैं। इनका कोई अपवाद है तो बस चमगादड़। पर अगर ऐसे जन्तुओं को वहां ले जाया जाए तो अक्सर इनकी तादाद इतनी बढ़ जाती है कि ये एक तरह से परेशानी बन जाते हैं। *बुफो मैरिम्स* (Bufo marims) जाति के टोड को कीड़े-मकोड़ों को खत्म करने के लिए हवाई द्वीपों में ले जाया तो गया, मगर आज वही एक बड़ा सिरदर्द बन गया है। अब आप समझ सकते हैं कि अगर सभी जातियों को ऐसी जगहों में जन्म मिल गया होता, जहां वे जीवित रह सकती हैं, तो उभयचर और स्थलीजीवी स्तनधारी महासागरीय द्वीपों में उतनी ही तादाद में होते, जितने वे अपेक्षतया समान महाद्वीप क्षेत्रों में होते।

10.3.4 महासागरों में जीवन

जमीन की तरह महासागरों में अलग-अलग जैविक प्रदेश हैं, जो जीवों को तरह-तरह के आवास प्रदान करते हैं। जैसाकि चित्र 10.6 में दिखाया गया है, महासागरों में निम्न प्रदेश हैं :

i) **वेलांचल या अंतराज्वारीय प्रदेश** (Littoral or intertidal zone) हर तट पर पाया जाता है। इसमें हमेशा ज्वार आते रहते हैं।

ii) **महाद्वीपीय उपतट** (Continental shelf) वेलांचल प्रदेश से बाद का प्रदेश है। इसके ऊपरी भाग महाद्वीपीय द्वीप बनाते हैं।

iii) **नेरिटांचली प्रदेश** (Neretic zone) छिछले महाद्वीपीय उपतट से ऊपर होता है। यह 600 फुट या 183 मीटर से ज्यादा गहरा नहीं होता। महाद्वीपीय उपतट के किनारे पर महासाग़र तल एकाएक काफी ज्यादा गहरा हो जाता है। इससे कई और अतिरिक्त प्रदेश निकल आते हैं।

iv) **अंबुधी प्रदेश** (Pelagic zone) में पानी की गहराई 600 फुट तक होती है। पानी में ऑक्सीजन और प्रकाश खूब होता है। इस स्तर पर पानी में लहरें उठती हैं।

v) **गभीर प्रदेश** (Bathyal zone) में जल की गहराई 6 हजार फुट होती है। इस स्तर पर पानी शांत और कम प्रकाश वाला होता है।

vi) **वितलीय प्रदेश** (Abyssal zone) को सूरज का उजाला कतई नहीं मिलता। यह गभीर प्रदेश से नीचे का इलाका है। इसमें पानी हमेशा शांत और ठंडा रहता है।

इस विवरण से आप समझ सकते हैं कि इन प्रदेशों में अलग-अलग पारिस्थितिक आवास पाए जाते हैं। इस तरह से ये प्रदेश एक-दूसरे के लिए अवरोध का काम करते हैं। चित्र को देखने से पता चल जाता है कि भिन्न-भिन्न प्रदेशों में भिन्न-भिन्न किस्म के जीव-जंतु व पेड़-पौधे पाए जाते हैं। पहले तीन प्रदेश जीवों से सबसे भरपूर हैं।

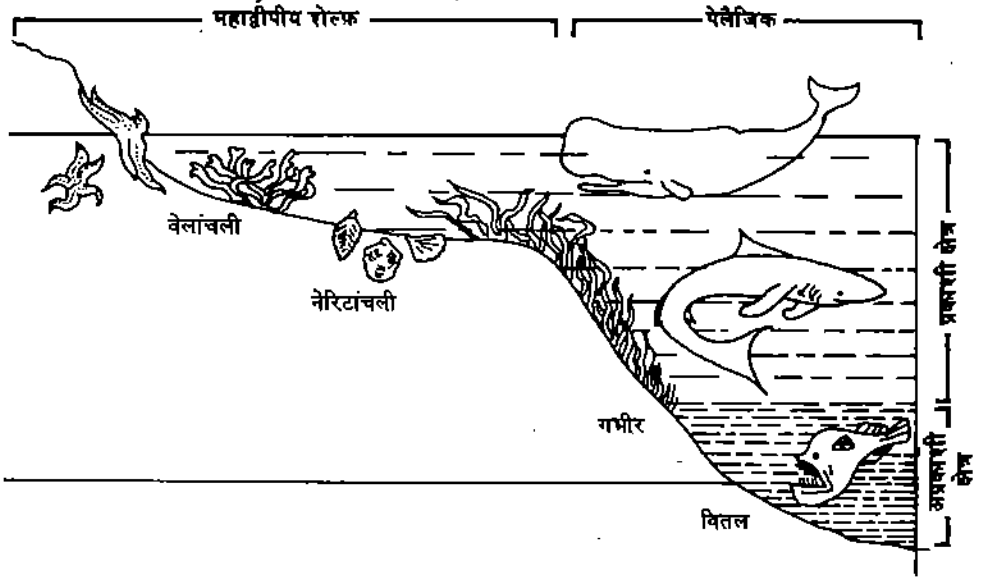

चित्र 10.6 : महासागर में पाए जाने वाले विभिन्न पारिस्थितिक प्रदेश या कटिबंध। हरेक कटिबंध दूसरे कटिबंध के जीव-जन्तुओं के लिए अवरोध का काम करता है।

अब आप एक और बोध प्रश्न का उत्तर दीजिए। उसके बाद हम जीव विकास सिद्धांत के समर्थन में तुलनात्मक शरीररचना अर्थात् शारीर से जुटाए गए प्रमाण का अध्ययन करेंगे।

बोध प्रश्न 3

सही कथनों के आगे (√) का और गलत कथनों के आगे गलत (×) का निशान लगाइए।

i) समान जातियां सिर्फ उन्हीं जगहों में पाई जाती हैं जो एक दूसरे से बिल्कुल अलग होते हैं। [ ]

ii) विभिन्न भौगोलिक प्रदेशों में उनके अपने अलग पेड़-पौधे और जीव-जन्तु होते हैं। [ ]

iii) महासागरीय द्वीपों पर पाई जाने वाली अधिकतर जातियां स्थानिक नहीं हैं। [ ]

iv) धरती में इस समय पाई जाने वाली सभी जातियां एक जगह जन्मी हैं फिर दूसरे प्रदेशों को पलायन कर गईं हैं। [ ]

v) जमीन की तरह महासागर में अलग-अलग प्रदेश पाए जाते हैं, जो पारिस्थितिक रूप से एक-दूसरे से भिन्न होते हैं। [ ]

10.4 तुलनात्मक शरीररचना

जीवों की विभिन्न जातियों की शरीररचना अर्थात् शारीर के तुलनात्मक अध्ययन से यह बात साबित हो जाती है कि उनमें कई संरचनात्मक समानताएं होती हैं। इससे यह साफ जाहिर होता है कि उनका

विकास एक या उससे अधिक पूर्वजों के अपसरण (divergence) के जरिए हुआ है। विभिन्न जीव-जन्तुओं की शरीर रचना और अंगों व अंगों के प्रकार्यों में पाई जाने वाली समानताओं को आधार बनाकर जीवविज्ञानियों ने तीन प्रकार की संरचनाएं पहचानी हैं। ये हैं : समजात अंग (homologous organ), समवृत्ति अंग (analogous organ) और अवशेषी अंग (vestigeal organ)। अब आप इनके बारे में जानेंगे।

10.4.1 समजात अंग

समजातीयता (homology) क्या है? समान वंशावली से उपजे एक-दूसरे से जुड़े जीव-जन्तुओं की संरचना में समानता ही समजातीयता है। आमतौर पर यह समान भ्रौणिक उत्पत्ति में प्रतिबिम्बित होती है। इन अंगों को *समजात अंग* कहते हैं। ऐसी संरचनाएं अपसारी विकास (divergent evolution) यानि अलग-अलग दिशाओं व आयामों में हुए जीव विकास तथा जीवों के विभिन्न प्रकार्यों की पूर्ति के परिणाम हैं।

ऊपरी तौर पर ये संरचनाएं भिन्न नजर आती हैं। समजातीयता का अध्ययन तुलनात्मक शरीररचना विज्ञान का एक बहुत बड़ा पहलू है। जीवों के सभी वर्गों के अंगों और अंग तंत्रों में आपको समजातीयता के कई उदाहरण मिल जाएंगे। समजातीयता अंगों से हमें जीव विकास के लिए बड़े महत्वपूर्ण प्रमाण मिले हैं। उभयचर, छिपकली, पक्षी, चमगादड़ और मनुष्य जैसे अनेक कशेरूकी जन्तुओं के अग्रपाद (fore limbs) की एक ही आधारिक संरचना होती है और उनकी हड्डियां एक जैसी व एक स्थिति में होती हैं। मगर ये अंग आकारकीय (morphological) दृष्टि से भिन्न हो गए। उनके आकार व दिखावट में यह बदलाव विकास के दौरान हुए रूपांतरणों के कारण आया, ताकि वे अपनी भिन्न-भिन्न जरूरतें पूरी कर सकें। चित्र 10.7 में कुछ कशेरुकी अग्रपाद दिखाए गए हैं, जो विभिन्न प्रकार्यों को पूरा करने के लिए रूपांतरित हुए।

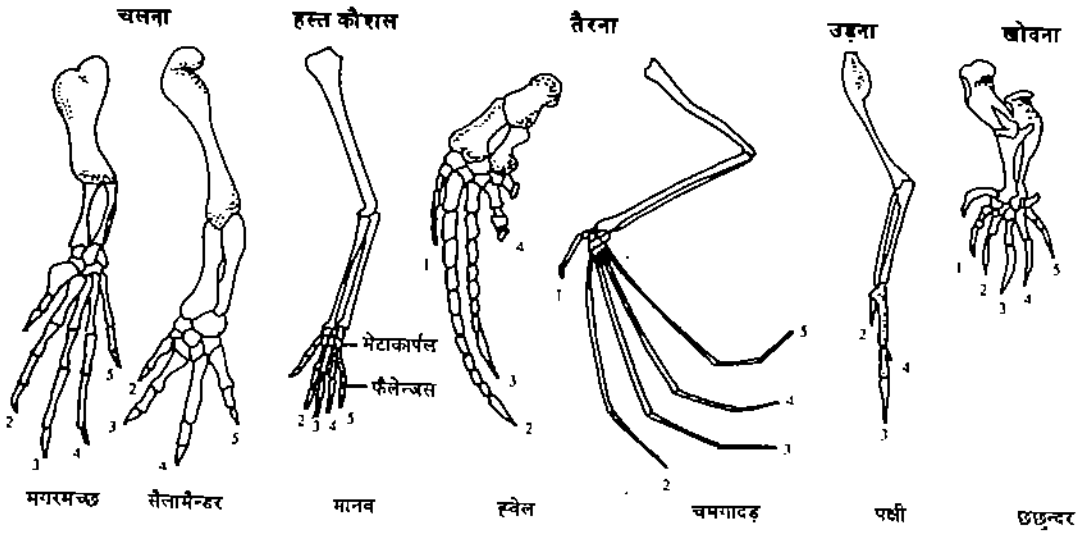

चित्र 10.7 : कुछ कशेरुकी जन्तुओं के बाएं अग्रपाद की हड्डियों में पाई जाने वाली समजातीयता। प्रत्येक जन्तु में एक-सी ही हड्डियां विशेष कार्यों के लिए ढली या अनुकूल बनी होती हैं। यह अनुकूलन विभिन्न हड्डियों की लंबाई, आकृति और भार में अंतर से लाया जाता है।

मेटामेरिक यानि विखंडी जन्तुओं (metameric animals) में एक खास किस्म की समजातीयता देखने को मिलती है। इसका एक अच्छा उदाहरण आर्थ्रोपोड (arthropods) जन्तुओं के संधिपाद (joint appandages) हैं, खासकर क्रस्टेशिआई (crustaceans) जन्तुओं के संधिपाद। क्रस्टेशियाई जन्तु में शरीर के हर खंड (segment) में संधिपादों का एक जोड़ा होता है। ये संधिपाद एक आधारिक संरचना योजना से विकसित हुए हैं। इनका रूपांतरण एक शृंखला क्रम में होता है जिससे कि ये तरह-तरह के कार्य पूरा कर लेते हैं। इसे **क्रमिक समजातीयता** (Serial homology) कहा जाता है। चित्र 10.8 में झींगा में पाई जाने वाली क्रमिक समजातीयता का उदाहरण दिखाया गया है।

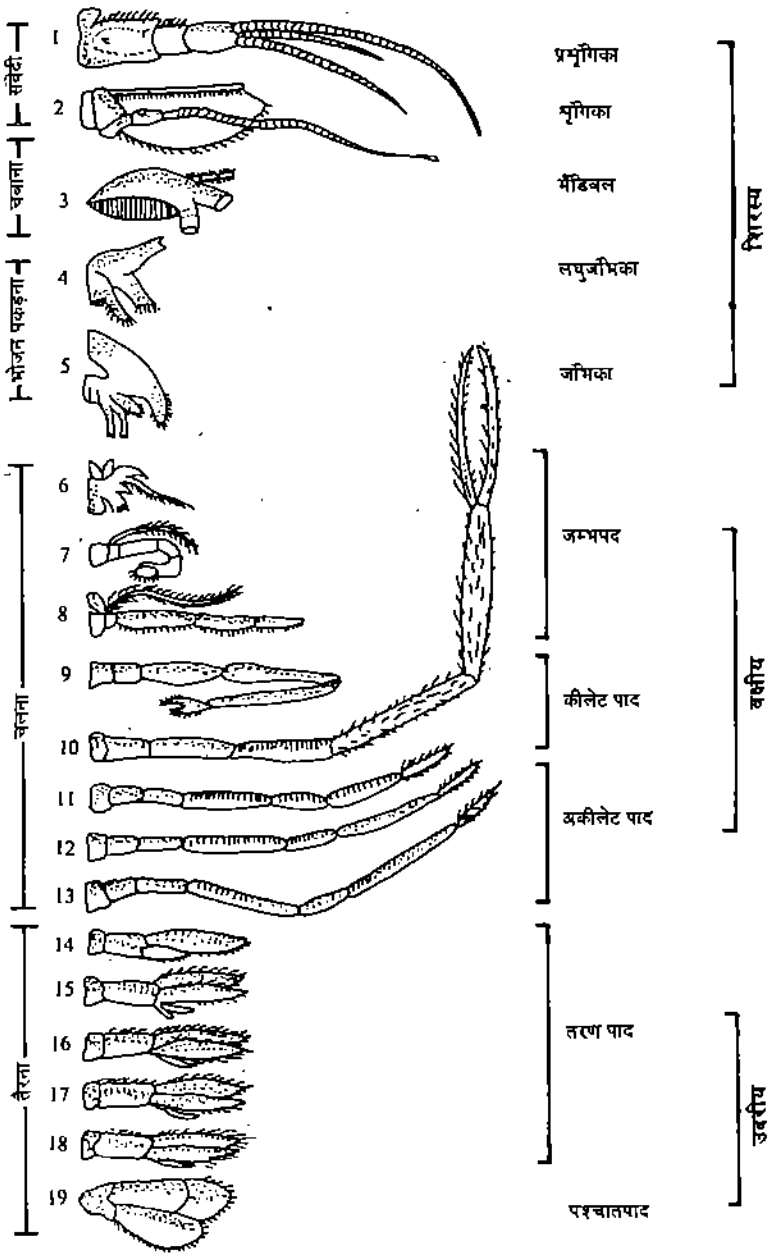

चित्र 10.8 : झींगों में पाए जाने वाले क्रमिक समजात संधिपाद। विभिन्न प्रकार्यों के अनुकूल पाए जाने वाले संरचनात्मक रूपांतरणों को ध्यान से देखें।

समजातीयता असल में एक ही पूर्वज से हुए अनुकूली विकिरण (adaptive radiation) के परिणाम का द्योतक है, जिसके कारण ही जीव विभिन्न पारिस्थितिकी निकेतों में सफलतापूर्वक अनुकूलित हो जाते हैं। अनुकूली विकिरण का एक जाना-पहचाना उदाहरण स्तनधारियों के अग्रपाद हैं। इनकी ऊपरी भुजा में हमेशा एक लम्बी हड्डी पाई जाती है। इस हड्डी को प्रगंडिका या हयूमेरस (humerus) कहते हैं। अग्रभुजा में दो समानांतरण हड्डियां होती हैं। इनमें से एक को अंतःप्रकोष्ठिका या अल्ना (ulna) और दूसरी को बहिप्रकोष्ठिका या रेडियस (radius) कहते हैं। कलाई में आठ मणिबंधिका अस्थियां (carpals) होती हैं, जो चार-चार की दो कतारों में व्यवस्थित होती हैं। पांच समानांतर मेटाकार्पल या करभिकाएं (meta carpals) हथेली का ढांचा बनाती हैं। तीन-तीन अंगुलास्थियों (phalanges) की कतारें अंगुलि का ढांचा बनाती हैं। पर सबसे पहली अंगुलि में सिर्फ दो अंगुलास्थियां होती हैं। चित्र 10.9 में कुछ उदाहरण देखिए। **इंसेक्टीवोरा** (insectivora, कीट) गण टेनरेक (शल्की चींटी भक्षी, tenrec) में आदि **पंचांगुलि** (primitive pentadactyl) भुजा होती है। उधर इनके संबंधी छछुंदरों में पाद **खुदाई** के लिए रूपांतरित होते हैं। यह अनुकूलन इन्हें जमीन के अंदर बिल आदि बनाकर रहने में मदद देता है। इनके पादों की सभी हड्डियां छोटी और चौड़ी होती हैं, जिससे पाद या टांगें बेलचे (shovel like) जैसी हो जाती हैं। काइरॉप्टेरा (chiroptera — चमगादड़)

गण के चमगादड़ों में प्रगंडिका बहिप्रकोष्ठिका और अंतः प्रकोष्ठिका हड्डी के साथ-साथ चारों अंगुलियां काफी ज्यादा लंबी होती हैं, जिससे चमगादड़ के डैने (wings) को एक आधार मिलता है। इस तरह चम्रगादड़ में आगे की टांगें उड़ान भरने के लिए रूपांतरित हो जाती हैं। अश्व जैसे खुरदार जानवरों में प्रगंडिका छोटी और भारी होती है। खुरदार जंतु दौड़ने या धावी आवास (cursorial habitat) में रहने के लिए ढले होते हैं। इनमें आगे की टांगों की बाकी हड्डियां अमूमन बड़ी होती हैं और अंगुलियों की तादाद कम होती है। वयस्क घोड़ों में हड्डियों का आपस में मिल जाना आम बात है। अगर गहराई से देखें तो खुरदार जंतुओं (ungulates) के विभिन्न कुलों में पाद संरचना में बड़ा अंतर देखने में आता है। ह्वेल जैसी जलीय स्तनधारी जन्तुओं की आगे की टांगे अरित्र यानि मीनपक्ष (flippers) में बदल जाती हैं जो उन्हें तैरने में मदद करते हैं।

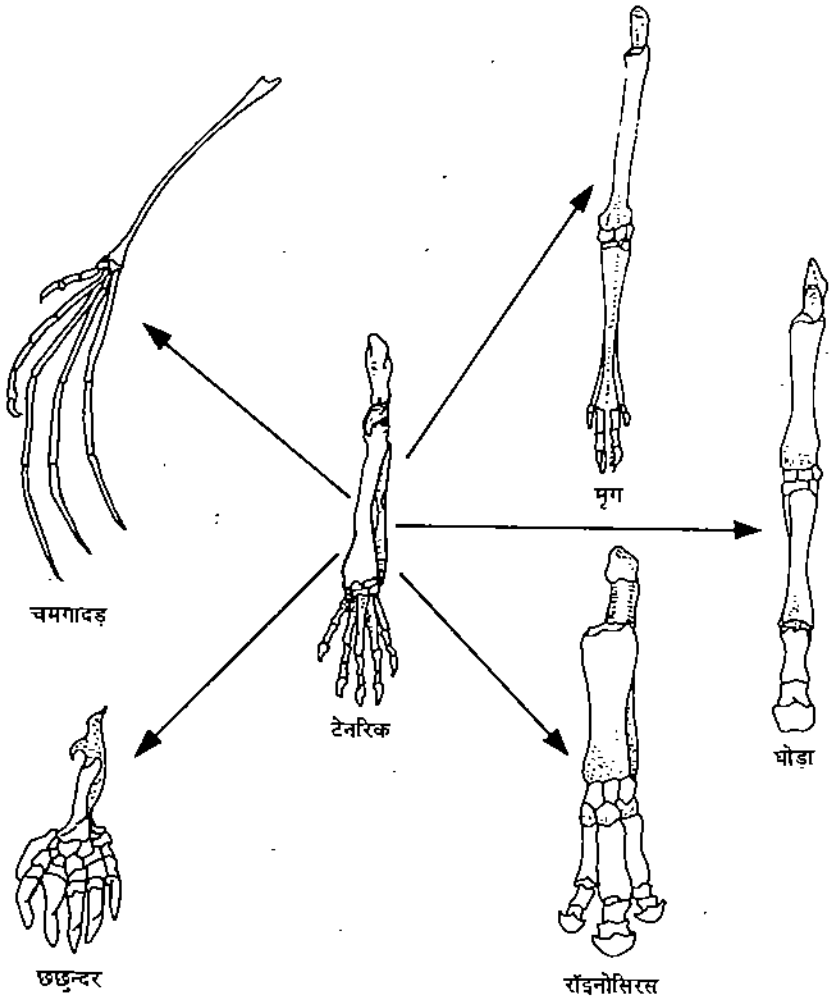

चित्र 10.9 : स्तनधारियों की अगली टांगों में अनुकूली विकिरण

पेड़-पौधों में समजातीय संरचनाएं देखने को मिलती हैं। जैसे बोगेनविला का कांटा, गुलाब का कांटा और कुकरबिटा में पाए जाने वाले प्रतान या टेंड्रिल (tendril) समजातीय संरचनाएं हैं, क्योंकि ये कक्षवर्ती जगह (axillary position) में उगते हैं।

ऐसे अनेक उदाहरण मिलते हैं, जो हमें अंगों की संरचना में भारी विविधता तो दिखाते हैं, मगर उनकी आधारिक संरचना एक-समान होती है। किसी एक वर्गिकी श्रेणी के सभी जीव सदस्य एक योजना पर ढले होते हैं, मगर सदस्यों में भिन्नताएं अवश्य होती हैं, जो उन्हें अपनी-अपनी विशिष्ट जीवन शैली के लिए ढालती हैं।

वर्गिकी श्रेणी जितनी ऊंची होगी उतनी ही ज्यादा उसके सदस्यों में भिन्नता होगी। डार्विन के बाद से अधिकांश जीवविज्ञानियों ने यह मान लिया है कि घनिष्ठ शरीरसंरचनात्मक समानता घनिष्ठ आनुवंशिक संबंध के कारण ही हो सकती है। समानताएं जितनी दूर होंगी आनुवंशिक संबंध उतने ही दूर होंगे।

10.4.2 समवृत्ति अंग

समवृत्ति अंग यानि एक जैसे दिखाई देने वाले अंग ऐसी संरचनाएं हैं, जो आकारिकी की दृष्टि से भिन्न या एक-दूसरे से अलग होते हैं। ये विभिन्न असंबद्ध जीवों में विकसित होते हैं और एक से प्रकार्य करते हैं। मगर इनमें भी कुछ समानताएं होती हैं, जिनका आधार समान प्रकार्यों को पूरा करने के लिए होने वाले अनुकूलन हैं। इन्हें समवृत्ति अंग कहा जाता है। समवृत्ति अंग अभिसारी विकास (convergent evolution) का परिणाम हैं।

समवृत्ति अंग का एक अच्छा उदाहरण — कीड़ों, कुछ विलुप्त सरीसृपों, पक्षियों और चमगादड़ों द्वारा स्वतंत्र रूप से विकसित डैने या पंख हैं। जैसाकि चित्र 10.10 में दिखाया गया है, कीड़े का पंख एक झिल्ली भर है, जो काइटिनी शिराओं (chitinous veins) पर टिका है। समूचा पंख एक जीवनहीन संरचना है जो अपने जड़ से जुड़ी मांसपेशियों के जरिए काम करता है। विलुप्त उड़न सरीसृप टेरोसौर (pterosaur) के डैने त्वचा ही परत से बने होते हैं। यह परत अग्रपाद की चौथी अंगुलि पर टिकी होती है, जो बेहद लंबी होती है। चिड़ियों में डैने की समतल सतह परों से मिलकर बनी होती है। ये पर अग्रपाद की हड्डियों के एक भीतरी ढाँचे पर टिके होते हैं। चमगादड़ों के डैने त्वचा से रूपांतरित हुई झिल्ली से बने होते हैं। चमगादड़ का डैना अग्रपाद के आखिरी चार अंगुलियों की लंबी और बाहर की ओर फैली अंगुलास्थियों पर टिका होता है।

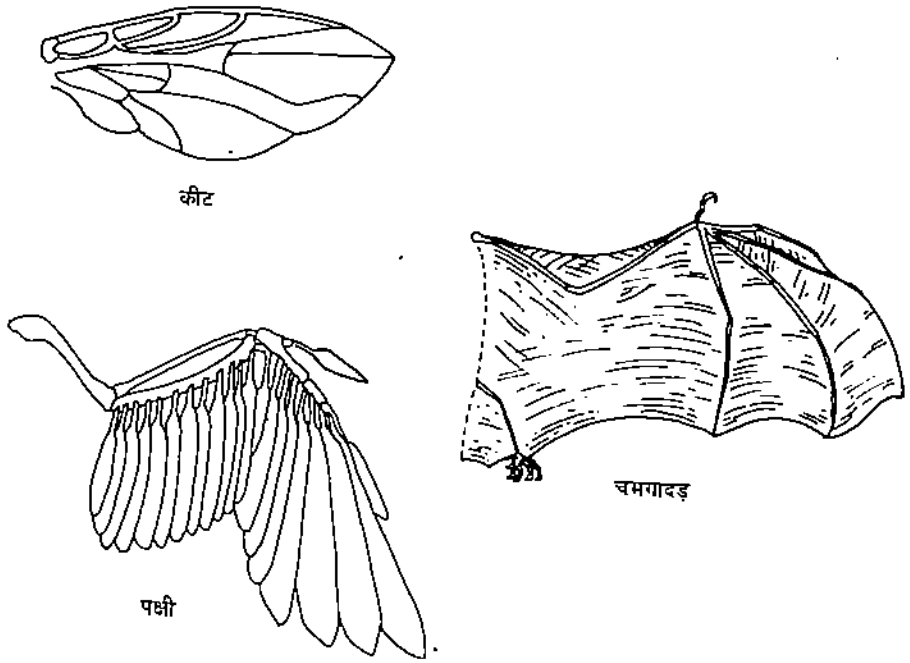

चित्र 10.10 : कीट, पक्षी और चमगादड़ के डैनों या पंखों में समवृत्तीयता। हरेक डैने में समतली सतह अलग-अलग तरह के पदार्थों से बनी है। मगर इनमें दिखाई देने वाली समानता केवल प्रकार्यात्मक अनुकूलनों के कारण होती है।

पौधों से समवृत्ति अंगों का उदाहरण प्रतान या टेंड्रिल हैं। मटर और अंगूर के प्रतान अलग-अलग मूल के हैं। मटर के पौधे में पाया जाने वाला प्रतान एक रूपांतरित पत्ती है, जबकि अंगूर का प्रतान एक रूपांतरित तना। पौधों और जन्तुओं में ऐसे कई उदाहरण पाए जा सकते हैं जो यह दिखा देते हैं कि सतही समानताएं ऐसे प्रकार्यात्मक अनुकूलनों का परिणाम हैं, जो समान वातावरणीय स्थितियों में पैदा होते हैं।

10.4.3 अवशेषी अंग

तुलनात्मक शरीररचना विज्ञान का एक और महत्वपूर्ण पहलू अंग **अवशेषांग** या **प्रारंभिक अंगों** अर्थात् आद्यांग (rudimentary organ) का अध्ययन है। जीवों में अवशेषांग की मौजूदगी हमारी इस धारणा को और पुख्ता बनाती है कि जीति उद्भवन जीव विकास के जरिए होंता है। अवशेषी अंग वे संरचनाएं हैं जो कभी आज के जीवों के पूर्वजों के लिए उपयोगी रहे होंगे। विकास प्रक्रिया के दौरान ये वंशजों में रूपांतरित हो गए। विकास के दौरान होने वाले ऐसे रूपांतरण बदली वातावरणीय

परिस्थितियों के कारण पैदा होते हैं। कई जीवों में इस प्रकार का लघुकृत अंग एकदम नया कार्य करने लगता है। उस कार्य से बिल्कुल भिन्न जिसके लिए मूलतः इसे ढाला गया था। दूसरे मामलों में यह बेकार हो गया है।

अवशेषांगों का सबसे जाना पहचाना उदाहरण मानव में पायी जाने वाली कृमरूप परिशेषिका (vermiform appendix) है। यह कीड़े की तरह दिखाई देने वाली छोटी-सी संरचना है। असल में यह बड़ी आंत की अंधनाल (caecum) के सिरे का सिकुड़ा हुआ हिस्सा है। सेलुलोस से भरपूर मोटा रेशेदार आहार खाने वाले स्तनधारी जन्तुओं में अंधनाल और परिशेषिका काफी बड़े आकार के होते हैं। इसके अंदर मौजूद जीवाणु से सेलुलोस को एंज़ाइमों द्वारा पचाने में मदद मिलती है। मगर मनुष्य में खान-पान की आदतें बदलने यानि आहार में सेलुलोस की मात्रा में भारी कमी आ जाने के कारण परिशेषिका का कोई काम नहीं रह गया है। इसलिए मानव में यह अंग आरंभिक अवस्था या एक अवशेषांग के रूप में रहता है (चित्र 10.11 देखें)। कभी-कभी यह अंग बड़ी परेशानी का कारण बन जाता है क्योंकि इसका आकार बढ़ने पर मनुष्य में एपेंडिसाइटिस (appendicitis) नामक बड़ा तकलीफदेह रोग हो जाता है यह रोग होने पर इस अंग को शल्य-चिकित्सा के द्वारा बिना किसी घातक परिणाम के मनुष्य के शरीर से बाहर निकाला जाता है।

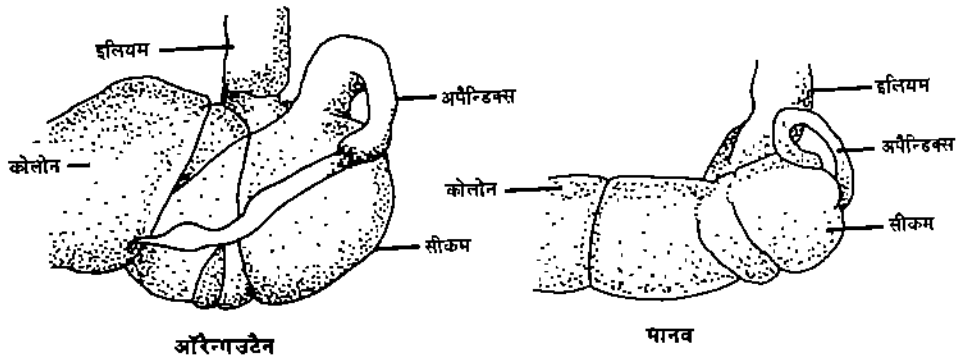

चित्र 10.11 : **ऑरैंगउटैन** और मानव में परिशेषिका।

पौधों और जन्तुओं में अवशेषांगों के ऐसे अनेक उदाहरण मिलते हैं। मनुष्य में आंख की निमेषक पटल (nictitating membrane) बाह्य कर्ण मांसपेशियां और अक्लदाड़ (wisdom tooth), प्राइमेट के उच्च वर्ग के जन्तुओं में अवशेषांग पुच्छ कशेरुक (भ्रौणिक पूंछ — embryonic tail), व्हेल, बोआ और अजगर में श्रोणि मेखला (pelvic girdle), गुफाओं में रहने वाले कशेरुकियों और अवशेरुकियों में अपविकसित आंखें आदि जन्तुओं में पाए जाने वाले अवशेषी अंगों के कुछ उदाहरण हैं। पौधों में पाए जाने वाले अवशेषांगों के कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं: कैक्टस के तन पर ढके रंध्र (stomata), नागफनी में अवशेषी पत्तियां, लैबिएटी (labiatae) के विफल या रुद्धवृद्धि पुंकेसर (abortive stamen) और कुकुरबिटेसी के नर फूलों के रुद्धवृद्धि बंध्य स्त्रीकेसर (abortive pistillodes)। इसी तरह कंपोज़िटी (compositive family) कुल के कुछ सदस्य पौधों के अर-पुष्पकों (ray florets) में रुद्धवृद्धि स्त्रीकेसर होता है। इसमें कोई वर्तिकाग्र (stigma) नहीं होता। इसलिए इसका निषेचन नहीं हो पाता। फलस्वरूप रुद्धवृद्धि बीजांड पैदा होते हैं।

जैविक विकास को पुष्ट करने के लिए तुलनात्मक शरीररचना के योगदान पर अपनी बात हम यहीं पर खत्म करते हैं। आगे बढ़ने से पहले आप निम्न बोध प्रश्न के उत्तर दें।

बोध प्रश्न 4

क) समजात अंगों और अवशेषांगों में फ़र्क बताइए।

.....

.....

.....

.....

.....

ख) मनुष्य में कृमिरूप परिशेषिका का ह्रास महज आद्यांग रूप में क्यों हो जाता है?

.....

.....

.....

.....

.....

10.5 तुलनात्मक भ्रूण विज्ञान

लैंगिक प्रजनन करने वाला हर जीव अपना जीवन एक कोशिकीय युग्मज से शुरु करता है। यह युग्मज कोशिका विभाजन और विभेदीकरण के फलस्वरूप एक व्यस्क जीव में विकसित होता है। जीव का यह आरंभिक विकास भ्रूणविज्ञान या भ्रौणिकी (embryology) के अंतर्गत अध्ययन किया जाता है। आइए, अब तुलनात्मक भ्रूणविज्ञान से मिले उन प्रणामों की जानकारी प्राप्त करें जिनसे जीव विकास की धारणा को बल मिला है।

10.5.1 हैकेल का नियम

जैविक विकास के लिए भ्रौणिकी से मिले प्रमाणों को प्रकाश में लाने का काम जर्मनी के शरीररचनाविज्ञानी अर्नस्त हैकेल (Ernst Hackel) के किया, जब उन्होंने *पुनरावर्तन सिद्धांत* (recapitulation theory) या *जाति-आवर्तन नियम* (biogenetic law) का प्रतिपादन किया। हैकेल का यह नियम या सिद्धांत कहता है कि *व्यक्तिवृत्त जातिवृत्त का पुनरावर्तन करता है* (Ontogency repeats phylogeny)। इसका मतलब है कि एक जीव अपने विकासीय इतिहास में अपनी जातीय इतिहास को दोहराता है। इसका यह मतलब है कि अपनी विकास यात्रा में भ्रूण अपने पूर्वजों के विकासीय क्रम को दोहराते हैं, मगर एक संक्षिप्त रूप में। हैकेल का मानना था कि एक जीव के आरंभिक विकास की विभिन्न अवस्थाएं (व्यक्तिवृत्त) उन विभिन्न रूपों और प्रकारों को प्रतिबिंबित करती हैं, जिससे होकर विकास के दौरान किसी नस्ल या जाति को गुज़रना पड़ा होगा (जातिवृत्त)। इस तरह वे अपने वंश का प्रत्यक्ष प्रमाण दे देती हैं।

जैसाकि चित्र 10.12 में दिखाया गया है, क्रस्टेशियाई जन्तु इसके अच्छे उदाहरण हैं। क्रस्टेशिया के लार्वा (larvae) क्रमिक निमोचन (successive molting) प्रक्रिया के दौरान छः एकदम स्पष्ट अवस्थाओं से गुज़रते हैं। हर लार्वा अवस्था क्रमानुसार इस समूह के आदि से आधुनिक वयस्कों के रूप से बहुत ज्यादा मिलती-जुलती है। आदि या आरंभिक क्रस्टेशियाई जन्तुओं के लार्वा में अवस्थाओं

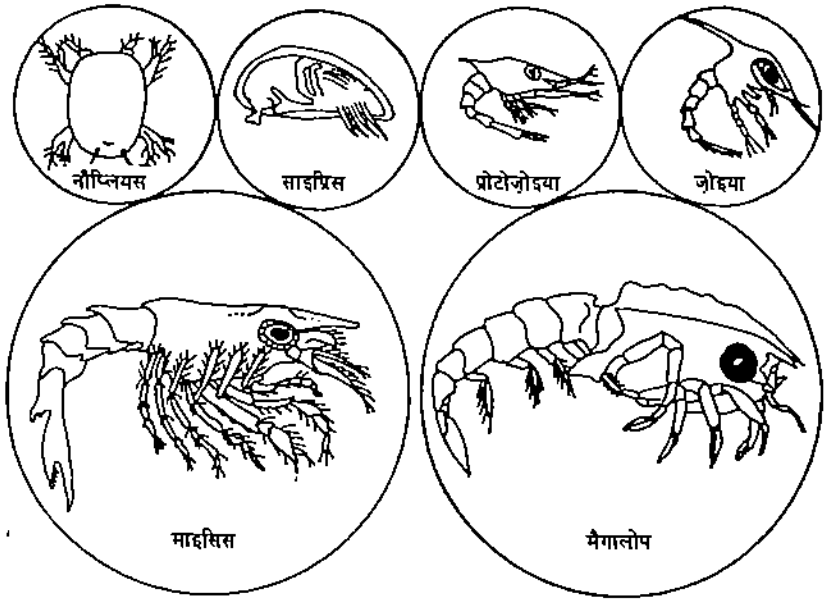

चित्र 10.12 : क्रस्टेशिया जन्तुओं के विकास के दौरान आने वाली छः अवस्थाएं। ये लार्वा अवस्थाएं अक्सर इन्हीं नामों वाले समूहों के वयस्कों से मिलते-जुलते हैं।

के इस क्रम के आरंभिक दौर में ही वृद्धि और विभेदीकरण रुक जाते हैं। मगर आधुनिक क्रस्टेशियाई जन्तुओं के विकास के लगभग सभी अवस्थाएं देखने में आती हैं।

एक और उदाहरण लेते हैं। सभी कशेरुकी जन्तुओं के गुर्दे (वृक्क) नेफ्रोटोम या आदिवृक्क (nephrotome) से विकसित होते हैं। नेफ्रोटोम मेसोडर्म (mesoderm) का खंडित समूह होता है। फिर भी कशेरुकियों में तीन विशेष प्रकार के गुर्दे पाए जाते हैं। ये हैं : *प्राक्वृक्क* (prenephros), *मध्यवृक्क* (mesonephros) और *पश्चवृक्क* (metanephros)। ये तीनों, गुर्दे की वृद्धि और विकास के दौरान एक के बाद एक करके बनते हैं। पहले की जगह दूसरा लेता है और दूसरे की जगह तीसरा। सभी कशेरुकी भ्रूण पहले-पहले प्राक्वृक्क का विकास करते हैं। यह बस नेफ्रोटोम के सबसे आगे के हिस्से को काम में लाते हैं। सिर्फ हैग मछली (hag fish) और चंद अस्थिल मछलियों (bony fishes) में ही यह प्राक्वृक्क एक क्रियाशील व्यस्क गुर्दे में बना रहता है। अधिकांश व्यस्क मछलियों, उभयचरों के साथ-साथ सरीसृपों, पक्षियों और स्तनधारियों के भ्रूणों में गुर्दे का विकास दूसरी अवस्था यानि मध्यवृक्क अवस्था तक पहुंचता है। मध्यवृक्क गुर्दा व्यस्क मछलियों और उभयचरों में क्रियाशील पाया जाता है। अंत में सरीसृपों, पक्षियों और स्तनधारियों में गुर्दे का विकास पश्चवृक्क अवस्था तक चलता है। यह गुर्दा इन वयस्क जन्तुओं में एक कार्यशील अंग है। ये बातें इस ओर इशारा करती हैं कि उच्च कशेरुकी जन्तु निम्न जन्तुओं से विभिन्न संरचनाओं के विस्तृत होने के फलस्वरूप विकसित हुए हैं।

चित्र 10.13 में विभिन्न कशेरुकियों के भ्रूणों को देखिए। अनेक कशेरुकियों के भ्रूण विकास की विभिन्न अवस्थाओं में काफी ज्यादा समानता दिखाते हैं। वृद्धि और विभेदीकरण की बाद की अवस्थाओं में ही वे आकारिकी दृष्टि से भिन्न होते हैं।

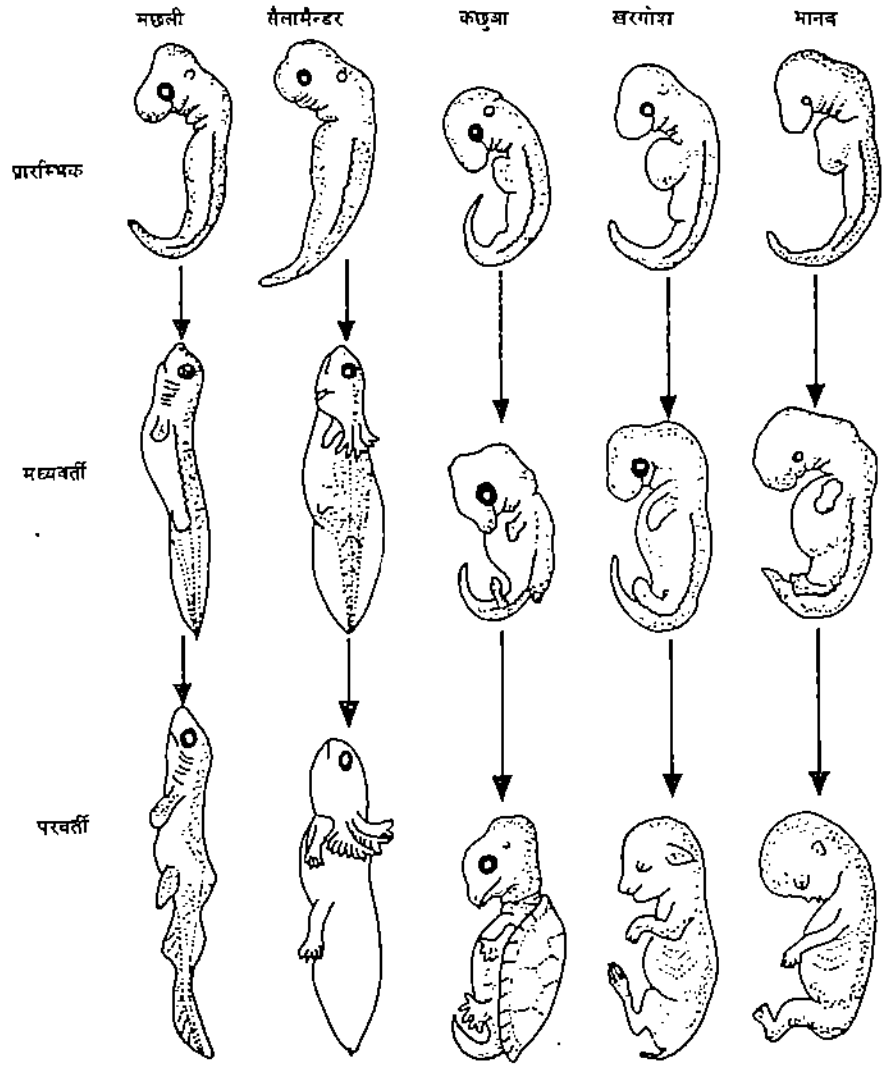

चित्र 10.13 : विभिन्न कशेरुकियों की एक शृंखला के भ्रूण। विकास के तीन अवस्थाओं में इनकी तुलना की गई है। इस शृंखला से हमें पुनरावर्तन के प्रमाण मिलते हैं।

पौधों में पुनरावर्तन इतना स्पष्ट नज़र नहीं आता क्योंकि उनकी भ्रौणिकी बड़ी सरल है। तो भी हमें कुछ अच्छे उदाहरण मिल ही जाते हैं। ऐकेशिया (acacia — बबूल) के पेड़ में बेहद संयुक्त पत्तियां (compound leaves) मिलती हैं। मगर इसकी पौध में इसके पूर्वजों की भांति ही सरल पत्तियां देखने में आती हैं। एक और अच्छा उदाहरण यूकेलिप्टस (eucalyptus) है। जैसे कि चित्र 10.14 में देखने से पता चल जाता है, इसके वयस्क पेड़ की पत्तियां संकरे फलक की होती हैं, जो इसके पतले किनारों को सूरज का प्रकाश प्राप्त करने के लिए मुड़ी होती हैं। मगर इनकी पौध की पत्तियां चौड़ी और दूसरे पेड़ों की तरह अभिविन्यसित होती है।

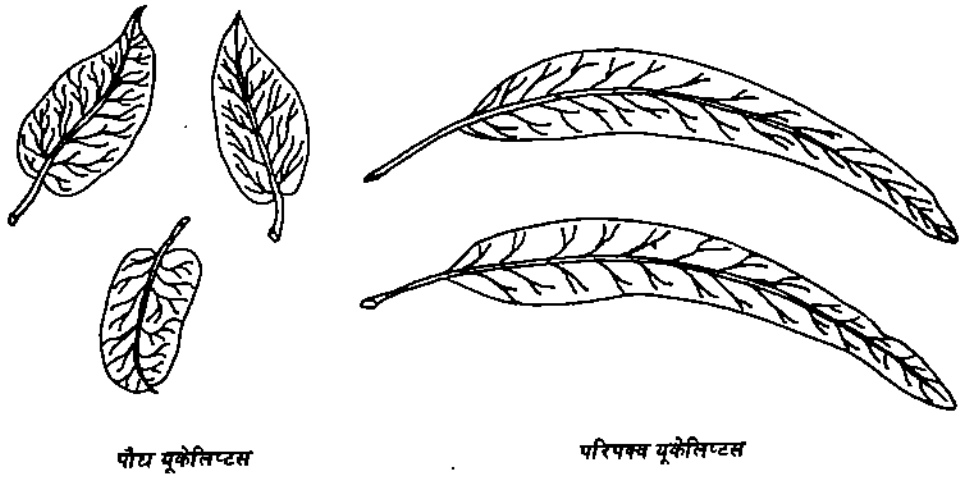

चित्र 10.14 : यूकेलिप्टस के वयस्क पेड़ की पत्तियां लम्बी संकरी होती हैं। पौध की पत्तियां साधारण पौधों की तरह होती हैं।

शंकु वृक्षों यानि कोनिफरों (conifers) में एक बड़ी रोचक और शायद तुलनीय बात नज़र आयी है। अगर कोनिफरों को कहीं ज़ख्म लग जाए और उस जख्म को भरने दिया जाए तो उनमें होने वाली वृद्धि ऊतकीय दृष्टि से सामान्य ऊतकों से अलग होती है। नया ऊतक एक ऐसे किस्म की संरचना दिखाता है जो *मध्यजीव महाकल्प* (mesozoic era) के जीवाश्म कोनिफरों से हू-ब-हू मिलती है।

हैकेल के नियम में थोड़ा-सा दोष है। वह यह कि व्यक्तिवृत्त में कोई वास्तविक जातिवृत्त पुनरावर्तन नहीं होता। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि व्यक्तिवृत्त में दिखाई देने वाली समानताएं मुख्यतः संबंधित जन्तुओं के भ्रूणों में होती हैं, भ्रूणों और व्यवस्क पूर्वजों में नहीं। भ्रूणों और वयस्क पूर्वजों में कभी-कभी पाई जाने वाली समानताएं संयोगवश ही हैं। इस तरह व्यक्तिवृत्त जातिवृत्त का पुनरावर्तन या उसका संक्षिप्त दोहराव सिर्फ इस मायने में करता है कि इसमें पैतृक भ्रूण अवस्थाएं ही दोहराई जाती हैं। यहां तक कि ये अवस्थाएं प्राकृतिक वरण की प्रक्रिया द्वारा उपयोगी समझे जाने वाले अनुकूलनों द्वारा बहुत ज्यादा रूपांतरित हो सकती हैं। प्राकृतिक वरण क्या है, कैसे होता है, इसके बारे में आपको आगे बताया जाएगा।

पुनरावर्तन का सिद्धांत यह मानकर चलता है कि भ्रूणों को सिर्फ अपने अतीत को दोहराने की जरूरत है, जिसमें वे कुछ अवस्थाओं को छोटा कर देते हैं तो दूसरों को दूर कर देते हैं। उन्हें भ्रौणिक जीवन के अनुसार ढलने की जरूरत नहीं पड़ती। मगर वास्तविकता कुछ और ही है। वयस्कों की तरह भ्रूणों को भी विरोधी वातावरण से लड़ने के लिए स्वयं को अनुकूल बनाना जरूरी है। उदाहरण के लिए विभिन्न भ्रूणों के विदलन विधि (cleavage pattern) में जो फ़र्क दिखाई देते हैं वे अण्डों में मौजूद पीतक (egg yolk) की मात्रा से जुड़े हैं। यह एक अनुकूली लक्षण है, जिसका जीव-वैज्ञानिक महत्व बुनियादी है। ताज़े पानी, खारे पानी या स्थलीय आवासों में विकसित होने के लिए अण्डों में होने वाले अनुकूलनों की ओर भी ध्यान दें। शूलचर्मी यानि एकाइनोडर्म (echinoderm) जन्तुओं के भ्रूणों में अनेक समूहों में बड़े अंतर पाए जाते हैं, जिन्हें हम भ्रौणिक अनुकूलन कह सकते हैं। कई जीवविज्ञानी यह मानते हैं कि ये भिन्नताएं अपने पूर्वजों से अलग होने के बाद से लार्वा में प्राकृतिक वरण के कारण हुए जबर्दस्त रूपांतरणों के परिणाम हैं।

10.5.2 वॉन बोअर के सिद्धांत

हैकेल ने अपने निष्कर्षों को वॉन बोअर (von boer) के भ्रौणिक विभेदीकरण सिद्धांतों के आधार पर तैयार किया था। बोअर के सिद्धांत निम्न प्रकार हैं :

- किसी भ्रूण विकास के दौरान उसके जातिवृत्तीय गुणों ("सामान्य" गुणों — phylogenetic traits) का प्रकटन पहले होता है, तथा उसकी जाति के गुणों ("विशेष" गुण — species trait) का प्रकटन बाद में।
- विकास के दौरान इस तरह अधिक सामान्य से कम सामान्य और आखिर में विशेष गुणों की ओर उत्तरोत्तर प्रगति होती है।
- अपने विकास क्रम के दौरान जन्तु अन्य संबंधी जातियों के रूपों से उत्तरोत्तर दूर होता जाता है।
- जन्तु की किशोरावस्थाएं निम्न वर्ग के जन्तुओं की भ्रौणिक अवस्थाओं से मेल तो जरूर खाते हैं, पर उनके व्यस्कों से नहीं।

वॉन बोअर के ये भ्रौणिक सिद्धांत भ्रूण-विज्ञान से मिले उन प्रमाणों को समझने में हमारा बेहतर मार्गदर्शन करते हैं, जिनसे जीव-विकास की पुष्टि होती है।

आइए, अब एक अन्य बोध प्रश्न करें। इसके बाद हम आपको शरीरक्रियाविज्ञान और जीवरसायनविज्ञान से मिले प्रमाणों की जानकारी देंगे।

बोध प्रश्न 5

खाली स्थानों में सहीं शब्द भरिए।

i) हैकेल का नियम कहता है कि .....
.....

ii) सभी कशेरुकी भ्रूण पहले-पहल ..... किस्म के गुर्दे का विकास करते हैं।

iii) ..... की पत्तियां पतली (संकरी) और उनके किनारे ..... का सामना करते हैं।

iv) भ्रूण प्राकृतिक वरण की ताकतों के ..... बनने का प्रयास करते हैं।

v) वॉन बोअर के सिद्धांत भ्रूणवैज्ञानिक प्रमाणों के ..... हैं।

10.6 तुलनात्मक शरीरक्रियाविज्ञान और जीवरसायनशास्त्र

अब तक हमने डार्विनवाद के समर्थन में जीवाश्मिकी, शरीररचनाविज्ञान और भ्रूण विज्ञान जैसे "चिरसम्मत" क्षेत्रों (classical discipline) से जुटाए गए प्रमाणों की चर्चा की। डार्विन के समय का जीवनविज्ञान आकारिकी तक सीमित था। शरीरक्रियाविज्ञान अर्थात् कार्यकी और जीवरसायनशास्त्र, विज्ञान के रूप में अपनी पहचान नहीं बना पाए थे। मगर आज जीवविज्ञानी इस बात पर सहमत हैं कि सभी आकारिकीय या बाहरी लक्षण, प्रोटीन के रूप में जीनों के तत्काल प्रकटन के परिणाम हैं। इनके बीच में जीवरासायनिक विधियां है, जो शरीरक्रियात्मक प्रक्रियाओं का संचालन करती हैं। इसलिए इन क्षेत्रों से जीव विकास के समर्थन में जो प्रमाण मिले हैं, वे वाकई महत्व के हैं।

10.6.1 शरीरक्रिया विज्ञान

अगर हम जीवों के रासायनिक आधार पर नज़र डालें, तो हमें एक सम्पूर्ण एकरूपता साफ़ देखने को मिलती हैं। जीवन से बुनियादी रूप से जुड़े तत्व समूचे जातिवृत्तीय मापक्रम में एक से हैं। इसी तरह जीवित पदार्थ के "निर्माण खंड" (building blocks) जैसे ऐमीनों अम्ल, विटामिन और वसीय अम्ल भी एकसमान होते हैं। यहां तक कि उन प्रमुख रासायनिक अभिक्रियाओं के मामले में भी एकरूपता देखने में आती है, जिनके जरिए जीव अपने शारीरिक प्रकार्यों के लिए जरूरी ऊर्जा प्राप्त करते हैं। इन

सबसे यह मतलब निकलता है कि जाति-उद्भवन (speciation) डार्विन द्वारा बनाए गए तरीके से हुआ होगा। जाति-उद्भवन के बारे में आप इस पाठ्यक्रम में आगे पढ़ेंगे।

आइए, शरीरक्रियात्मक प्रकार्यों से जुड़े दो उदाहरण लेते हैं। आप जानते ही हैं कि पाचन की प्रक्रिया विभिन्न एंज़ाइमों की अभिक्रिया पर टिकी होती है। आइए, कोई एक एंज़ाइम जैसे ट्रिप्सिन को ही लें। यह एंज़ाइम प्रोटीन के बड़े कणों को छोटे-छोटे पेप्टाइड अणुओं में तोड़ता है। सभी जंतुओं में यह एंज़ाइम पाया जाता है। सबसे रोचक बात यह है कि सभी जन्तुओं में इस एंज़ाइम की रासायनिक संरचना हर हालत में समान होती है। ऐसी समानताओं और भिन्नताओं के आधार पर हम एक जातिवृत्तीय वंश वृक्ष खड़ा कर सकते हैं जैसाकि आकारिकीय लक्षण को लेकर वंशवृक्ष बनाया जाता है। पादप जगत का एक उदाहरण लें। प्रकाशसंश्लेषण की प्रक्रिया में काम आने वाले अनेक एंज़ाइम, शैवालों से लेकर आवृतबीजी तक के सभी हरे पौधों में पाए जाते हैं।

उच्च पादपों और जन्तुओं की शरीरक्रिया में बेहद महत्वपूर्ण पदार्थों का एक और वर्ग है। यह वर्ग है हॉर्मोन। ये विभिन्न अंगों की गतिविधियों में समन्वय करने का काम करते हैं। थाइरॉइड हॉर्मोन सभी कशेरुकी जन्तुओं में पाया जाता है और इसकी आपस में अदला-बदली की जा सकती है। मनुष्य में थाइरॉइड हॉर्मोन की कमी को पूरा करने के लिए गाय के थाइरॉइड को काम में लाने में कामयाबी हासिल हो चुकी है। अगर मेंढ़क के टैडपोल की थाइरॉइड ग्रंथि को निकाल लिया जाए तो वह वयस्क मेंढक में नहीं बदल पाएगा। पर अगर उसे स्तनधारी जन्तुओं के थाइरॉइड ऊतक दिए जाएं तो उसमें कायांतरण (metamorphosis) की प्रक्रिया फिर से शुरू हो जाती है।

एक कोशिकीय से लेकर बहुकोशिकीय जीवों में होने वाली विभिन्न शरीरक्रियात्मक प्रक्रियाओं जैसे — श्वसन, पाचन, उत्सर्जन और प्रजनन के अध्ययन से पता चलता है कि इनमें उत्तरोत्तर विविधता आई है। कई मामलों में ये प्रक्रियाएं जाति के अपसार और विकास के समानांतर जटिल होती गई हैं। बहरहाल इन सभी प्रक्रियाओं का बुनियादी सिद्धांत समान रहता है, जो विकास के सिद्धांत को पुष्ट करता है। आइए, अब जीवरसायनशास्त्र से मिले प्रमाण के बारे में चर्चा करें।

10.6.2 जीवरसायन शास्त्र

तुलनात्मक जीवरसायन शास्त्र से हमें यह जानकारी मिली है कि अनेक संश्लेषी और अपघटनकारी रासायनिक अभिक्रियाएं अधिकतर जीवों में समान रूप से पाई जाती हैं, भले ही जीव नज़दीक से जुड़े हों या दूर से। जीवन ऊर्जा के लिए सभी जीव मुख्यतः कार्बोहाइड्रेटों, वसाओं और कुछ हद तक प्रोटीनों पर निर्भर रहते हैं। विभिन्न जीवों में ऊर्जा उत्पादन की क्रियाविधियों का पता लगाने पर हमें अधिकतर जीवों में ग्लाइकोलिटिक चक्र, टीसीए चक्र और इलेक्ट्रॉन परिवहन शृंखला आदि क्रियाविधियां समान रूप से मिलती हैं।

जीव विकास को साबित करने वाले प्रमाण हमें एक और क्षेत्र से मिलते हैं। यह है — *तुलनात्मक सीरमविज्ञान* (serology)। यह अध्ययन इस बुनियादी बात को लेकर किया जाता है कि शरीर में किसी बाहरी जटिल यौगिक जैसे कि प्रोटीन के प्रवेश करने पर जन्तु उसका मुकाबला करने के लिए प्रतिरक्षी (antibodies) बनाता है। प्रतिरक्षी के निर्माण को शुरू करने वाले या प्रेरित करने वाले ये बाहरी पदार्थ प्रतिजन (antigen) कहलाते हैं। अगर किसी जंतु के शरीर के सीरम की थोड़ी-सी मात्रा दूसरे प्रयोगी जंतु के शरीर में डाल दी जाए, तो यह बाहरी सीरम एक प्रतिजन के बतौर काम करता है। इसकी वजह से प्रयोगी जंतु के शरीर में संचरण करने वाले प्रतिरक्षी पैदा होते हैं। अगर हम ऐसा ऐन्टिसीरम (antiserum) बनाएं और उसमें मूल प्रतिजनी सीरम की कुछ बूंदें मिला दें, तो इससे एक अवक्षेप बनता है। प्रतिरक्षी बनाने की इस विधि को प्रतिरक्षित प्रणाली (immune mechanism) कहा जाता है। दूसरे शब्दों में हमनें प्रयोगी जन्तु को उस सीरम के प्रति उदासीन बना दिया है, जिसे उसके शरीर में डाला गया था। ऐसे प्रतिरक्षी, जो प्रतिजन से अभिक्रिया कर अवक्षेप बनाते हैं, उन्हें *अवक्षेपक प्रतिरक्षी* (precipitating antibodies) कहते हैं। इस परीक्षण को *प्रेसिपिटिन टेस्ट* (precipitin test) कहते हैं।

सीरम रक्त का तरल भाग है जो कि कई प्रकार के प्रोटीन का मिश्रण है तथा रक्त में थक्का बनने (clotting) के बाद भी बना रहता है।

आइए, एक और उदाहरण लेते हैं। एक खरगोश के शरीर में मानव सीरम डाला गया है। खरगोश मानव सीरम के प्रति प्रतिरक्षित हो जाएगा और इसके खिलाफ प्रतिरक्षी बनाएगा। खरगोश के खून से

एन्टिसीरम निकाल लिया जाता है, जिसमें मानव सीरम के खिलाफ प्रतिरक्षी होते हैं। अब यह परीक्षण द्रव्य के रूप में काम करता है, इसे चार परखनलियों में बांट लिया जाता है। जैसाकि चित्र 10.15 में दिखाया गया है, परखनली-1 में फिर से मानव सीरम डाला जाता है। इससे प्रतिजन-प्रतिरक्षी अभिक्रिया होगी और एक हल्का सफेद अवक्षेप बनेगा, जो परखनली के तल में बैठ जाएगा। परखनली-2 के एंटिसीरम में चिम्पांज़ी का सीरम मिलाया जाता है। यहां प्रतिजन-प्रतिरक्षी अभिक्रिया इस पर निर्भर करेगी कि चिम्पांज़ी सीरम के प्रोटीन की रासायनिक संरचना मानव सीरम के प्रोटीनों से मिलती है या नहीं। अगर दोनों सीरमों के प्रोटीनों में समानता है, तो एक सीरम के खिलाफ बना प्रतिरक्षी दूसरे के साथ भी अभिक्रिया करेगा। जैसाकि चित्र में दिखाया गया है, परखनली-1 और 2 में उसी मात्रा में अवक्षेप बनता है। इससे पता चलता है कि चिम्पांज़ी का सीरम मानव सीरम का समजातीय है।

इसी तरह अगर बैबून के सीरम को इस ऐंटिसीरम में मिलाया जाए, तो जैसा चित्र में देखने में आता है, कम मात्रा में अवक्षेप बनेगा। इसकी वजह यह है कि बैबून के सीरम में मौजूद प्रोटीन मानव सीरम के प्रोटीनों से पूरी तरह से मेल नहीं खाते। इसलिए हमें एक सुस्पष्ट प्रेसिपिटिन अभिक्रिया नहीं मिल पाती।

परखनली-4 के एण्टिसीरम में कुत्ते का सीरम मिलाया जाता है। यहां हमें कोई अवक्षेप नहीं मिलता। इससे पता चलता है कि कुत्ते के सीरम के प्रोटीन मानव सीरम के प्रोटीनों से इतने अधिक भिन्न हैं कि वे मानव एण्टिसीरम प्रतिरक्षी से अभिक्रिया ही नहीं करते। अतः आप देख सकते हैं कि अवक्षेप की मात्रा विभिन्न जीवों में संबंध की सीमा को प्रतिबिम्बित करती है। विभिन्न जन्तु समूहों के सीरम परीक्षणों के परिणाम भी उन संबंधों की पुष्टि करते हैं, मूलतः जिनका आधार तुलनात्मक आकारिकी (comparative morphology) रही है।

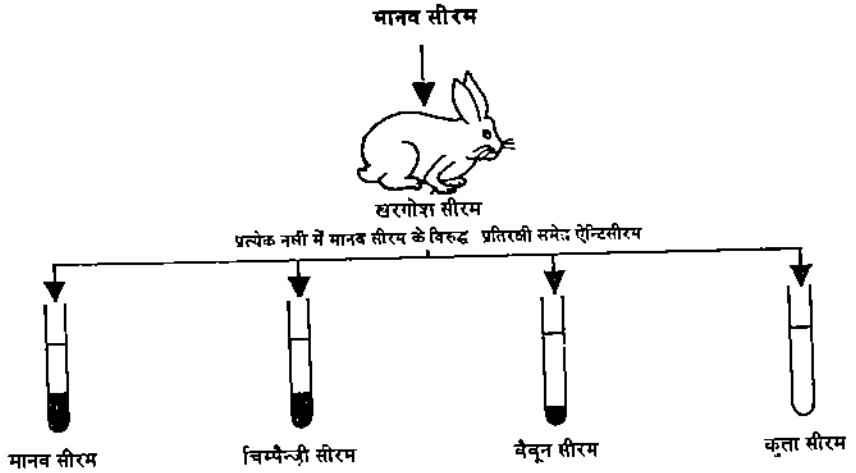

चित्र 10.15 : जन्तु संबंध को साबित करने के लिए किए गए प्रतिजन प्रतिरक्षी अभिक्रिया परीक्षण (प्रेसिपिटिन टेस्ट) के सिद्धांत।

विभिन्न जातियों में अधिकतर पाए जाने वाले प्रोटीनों के *ऐमीनो अम्ल अनुक्रम* (amino acid sequences) का पता लगाया जाता है। इससे उनके बीच कितनी समानता है, इसकी जानकारी मिलती है। आइए, साइटोक्रोम सी (cytochrome C) का उदाहरण लेते हैं। यह श्वसन वर्णक (respiratory pigment) माइटोकॉन्ड्रिया के इलैक्ट्रॉन परिवहन तंत्र (electron transport chain) का एक आवश्यक घटक है।

स्तनधारियों में साइटोक्रोम सी (cytochrome C) 104 ऐमीनो अम्लों से बनी एक पूरी पॉलिपेप्टाइड शृंखला है। यीस्ट और कवकों से लेकर मानव तक कोई 67 पौधों और जन्तुओं में साइटोक्रोम सी के ऐमीनो अम्ल अनुक्रम का पता लगा लिया गया है। अध्ययनों में देखा गया है कि कुछ खास किस्म के ऐमीनो अम्ल कभी नहीं बदलते। ये ऐमीनो अम्ल साइटोक्रोम सी पॉलिपेप्टाइड शृंखला में विशेष स्थानों पर होते हैं। इससे यह मतलब निकलता है कि इन विशिष्ट स्थानों पर इन ऐमीनो अम्लों की मौजूदगी प्रोटीन के लिए जरूरी है ताकि वह अपना काम पूरा कर सके। उधर पॉलिपेप्टाइड शृंखला में ऐसे भी बहुत सारे स्थल हैं, जहां के ऐमीनो अम्ल को कोई दूसरा ऐमीनो अम्ल अगर हटा दे तो

प्रोटीन की जैव क्रियाशीलता पर कोई असर नहीं पड़ता। साइटोक्रोम सी के जातिवृत्त (phylogeny) को देखने पर पता चलता है कि विभिन्न जातियों के साइटोक्रोम सी के अनुक्रम में अंतर सिर्फ ऐसे ऐमीनो अम्लों में होता है, जिनके विस्थापन से इसकी क्रियाशीलता पर कोई असर नहीं पड़ता। घनिष्ठ रूप से जुड़ी जातियों में बस दो चार ऐमीनो अम्ल अवशिष्टों का ही फर्क होता है। दूर से जुड़ी जातियों में यह फर्क काफी ज्यादा ऐमीनो अम्लों का होता है। इन सब जीवन रूपों में साइटोक्रोम सी में पाई जाने वाली समानता एक-समान वंशावली की ओर इशारा करती है। चित्र 10.16 में आप विभिन्न जातियों का विकासीय वर्गीकरण देख सकते हैं। यह वर्गीकरण साइटोक्रोम सी की संरचना में पाई जाने वाली समानताओं और भिन्नताओं पर आधारित है। यह विकासीय वृक्ष आकारिकी पर आधारित जातिवृत्तीय वर्गीकरण के समान ही है।

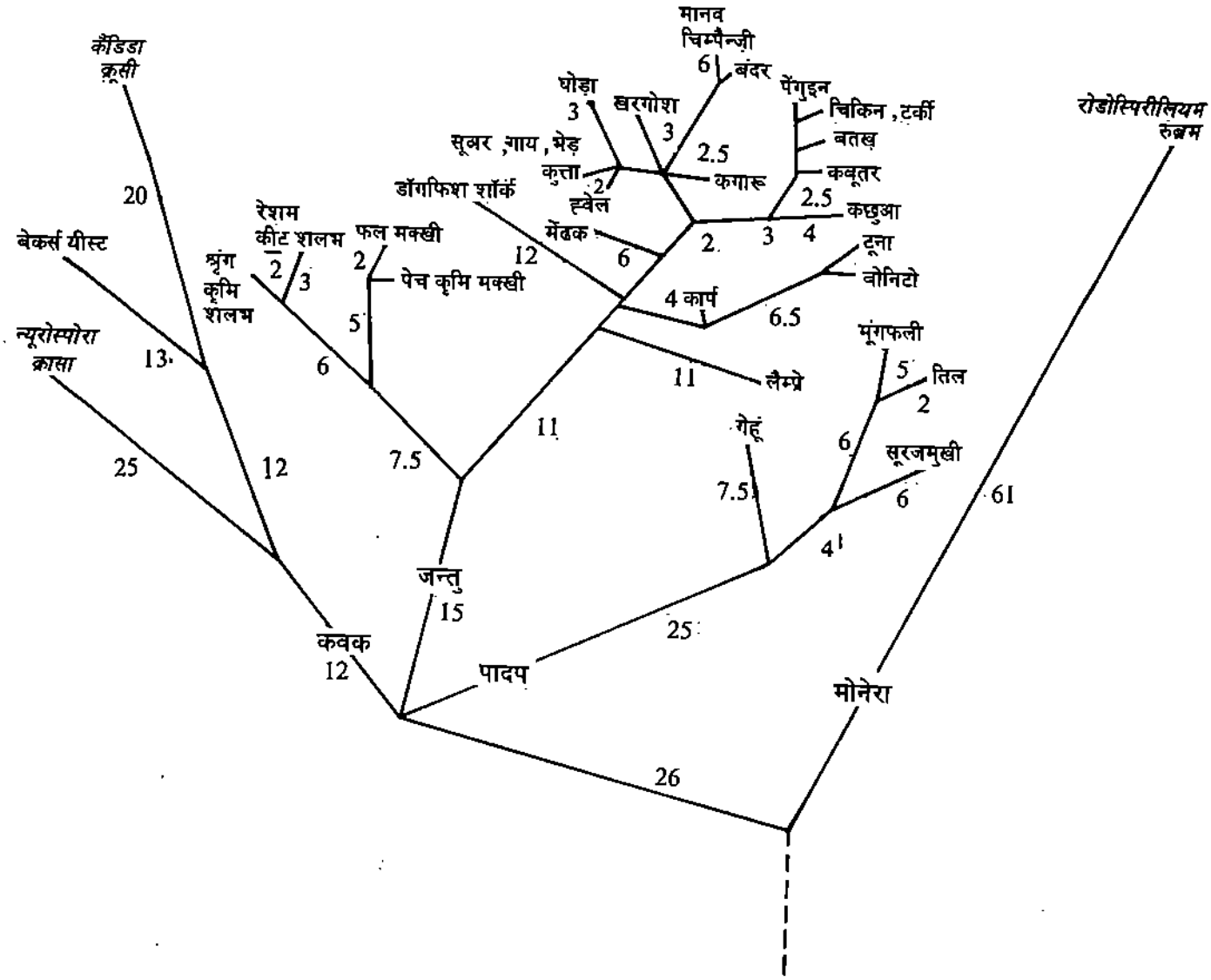

चित्र 10.16 : साइटोक्रोम सी की संरचना पर आधारित विभिन्न जातियों का विकासीय वृक्ष। चित्र में दी गई संख्याएं विभिन्न जीवों के साइटोक्रोम सी के ऐमीनो अम्ल की विभिन्न प्रतिशतता को दर्शाती है।

जीवरसायन अध्ययन में एक और विधि *नाभिकीय अम्ल संकरण* (nucleic and hybridisation) है। यह आण्विक जातिवृत्त (molecular phylogeny) का पता लगाने के लिए किया जाता है। इस विधि में प्रयोगी जाति *क* उदाहरण के लिए मानव से, डी एन ए निकाल लिया जाता है। डी एन ए के द्विसूत्री अणु को गरम करके एकल सूत्रों में अलग कर दिया जाता है। फिर इन एकल सूत्रों को जेल के खंडों (blocks of gel) में फंसा दिया जाता है, ताकि इनके ठंडा होने पर पूरक सूत्र फिर से न जुड़ जाएं। इसी तरह दूसरी जाति *ख* से रेडियोकर्मी फ़ॉस्फ़ोरस से अंकित डी एन ए निकाल लिए जाते हैं और उन्हें अलग कर एकल सूत्रों वाले डी एन ए में बदल दिया जाता है। इसके बाद उन्हें उन जेल खंडों से गुज़रा जाता है, जिनमें पहली जाति *क* के डी एन ए सूत्र मौजूद हैं। जाति *क* व *ख*

के डी एन ए सूत्र के वे भाग एक-दूसरे से जा मिलेंगे जो एक दूसरे के पूरक हैं और इस तरह वे डी एन ए द्विसूत्र बना लेंगे। जेल में द्विसूत्रों के बनने पर द्विसूत्र डी एन ए के साथ-साथ डी एन ए के बिखरे हिस्सों को भी अलग-अलग जुटा लेना संभव हो जाता है। फिर हम इनकी गिनती कर सकते हैं। इस पर आप देखेंगे कि जिन जातियों से हमने डी एन ए के नमूने लिए थे, उनमें जितना गहरा संबंध होगा, हमें जेल से उतनी ही ज्यादा संख्या में द्विसूत्र डी एन ए अणु मिलते हैं। इससे हम फिर एक जातिवृत्तीय वंश वृक्ष बना सकते हैं।

जीव विकास सिद्धांत के समर्थन में विभिन्न क्षेत्रों से जुटाए गए प्रमाणों पर अपनी चर्चा हम यहीं समाप्त करते हैं। इस बारे में सुझाई गई उपयोगी पुस्तकों को पढ़कर आप और अधिक जानकारी प्राप्त कर सकते हैं।

बोध प्रश्न 6

i) शरीरक्रिया विज्ञान से मिले प्रामाणों के बारे में चर्चा करते हुए हमने ट्रिप्सिन एंज़ाइम का उदाहरण दिया था, जो सभी जन्तुओं में पाया जाता है। क्या आप ऐसे किसी एंज़ाइम या प्रोटीन के बारे में बता सकते हैं, जो अनेक जन्तु समूहों में पाया जाता हो तथा जिससे समान वंशावली का आभास मिले?

.....

.....

.....

.....

ii) स्तनधारी स्रोत से लिया गया थाइरॉक्सिन मेंढकों में कायान्तरण की प्रक्रिया को शुरू करता है। क्या आप इससे सहमत हैं कि गो-इंसुलिन मानव में रक्त शर्करा सांद्रण को नियमित करेगा? क्या आपको विश्वास है कि यह फिर समान वंशावली की ओर इशारा करता है?

.....

.....

.....

.....

iii) नीचे दिया गया चित्र एक सीरम परीक्षण के परिणामों को दिखाता है, जिसमें गुरिल्ला प्रोटीन के एण्टिसीरम की दूसरे जन्तुओं के सीरम से अभिक्रिया कराई गई थी। निम्न आंकड़ों की व्याख्या कीजिए।

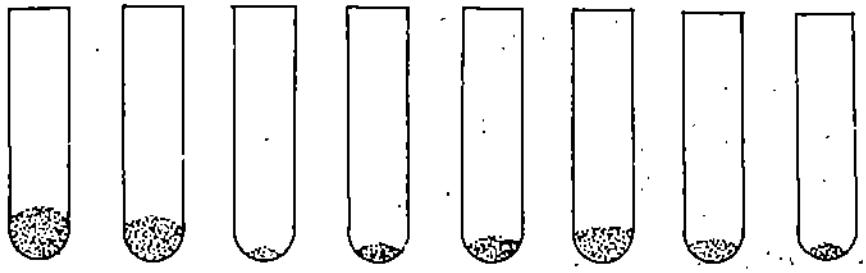

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

10.7 सारांश

इस इकाई में हमने जैविक विकास की अवधारणा को पुष्ट करने वाले प्रमाणों की अनेक धाराओं पर चर्चा की, जो जीव-विज्ञान के अध्ययन से जुड़े विभिन्न क्षेत्रों पर आधारित थे। आपने पढ़ा :

- जीवाश्म अभिलेख एक बेहद लम्बे समय में मौजूद रहे जीवन अनुक्रम को दर्ज करता है। चट्टानों और उनमें मौजूद जीवाश्मों की आयु का पता दो तरीकों से लगाया जाता है। एक है सापेक्षिक काल निर्धारण और दूसरा है, निरपेक्ष काल निर्धारण। जीवन जिन-जिन युगों से होकर आगे बढ़ा उन्हें भूवैज्ञानिक समय मापक्रम में महाकल्प, कल्प और युगों में बांटा गया है। कई मामलों में जीवाश्म अभिलेख अधूरे हैं। बहरहाल घोड़े जैसे अनेक जन्तुओं के जीवाश्म अभिलेख अपने आप में पूरे हैं। उनसे हमें उत्पत्ति, विविधरूपण, विलोपन और विकासीय प्रवृत्तियों के सबूत मिलते हैं।
- दुनिया भर में विभिन्न जीवों का भौगोलिक वितरण यह बताता है कि हर समूह की उत्पत्ति धरती के मुख्य प्रदेशों से किसी एक में हुई थी। इसके बाद वह समूह जहां तक हो सकता था वहां तक अनेक अलग-अलग इलाकों में फैलकर बस गया। यह सब तमाम भौतिक व रासायनिक अवरोधों तथा अन्य जाति समूहों के जीवों से प्रतियोगिता के बावजूद संभव हुआ।
- भ्रूण-विज्ञान से हमें पता चलता है कि हर जीव का अपना इतिहास होता है। विभिन्न कशेरुकी और अकशेरुकी जन्तुओं का भ्रौणिक विकास यह दिखाता है कि विभिन्न संबंद्ध जीवों की विकासीय अवस्थाएं एक-दूसरे से मिलती हैं। साथ ही किसी समूह के भ्रौणिक विकास के दौरान पहले उस वर्ग के सामान्य लक्षण या विशेषताएं प्रकट होती हैं। इसके बाद उस जाति के विशिष्ट लक्षण देखने में आते हैं। ये बातें हमें यह दर्शाती हैं कि उच्च जीव पहले मौजूद रहे जीवों में आए तरह-तरह के रूपांतरणों से जन्मे हैं।
- जातिवृत्तीय विश्लेषण में तुलनात्मक शरीरक्रियाविज्ञान और जीवरसायनशास्त्र से मिले प्रमाण बड़े महत्व के हैं। समूचे प्राणी जगत में एक सी शरीरक्रियात्मक प्रक्रियाएं होती हैं। जीव-रसायन स्तर पर विभिन्न जातियों में आण्विक विभेदीकरण की सीमा उन जातियों में वर्गिकी दूरी को प्रतिबिंबित करता है, जिनमें ये अणु पाए जाते हैं।

10.8 अंत में कुछ प्रश्न

1) क्या आप सोचते हैं कि जीवाश्म अभिलेख अधूरा है? अगर हां, तो अपने उत्तर को उदाहरण देकर सही ठहराइए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2) एक उदाहरण देकर समझाइए कि कुछ जातियों के भौगोलिक वितरण में एक जबर्दस्त अंतराल क्यों है?

.....

.....

.....

.....

.....

3) मानव में अवशेषांग कृमिरूप परिशेषिका की मौजूदगी विकास का प्रमाण देती है। वह कैसे? संक्षेप में समझाइए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

4) हैकेल के नियम की बड़ी कमी क्या है?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

5) प्रेसिपिटिन परीक्षण के मुख्य चरणों के बारे में बताइए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

10.9 उत्तर

बोध प्रश्न

1) i) अध्यारोपण (अधिस्थापन)
   ii) जीवाश्म
   iii) रेडियोधर्मी समस्थानिक
   iv) रेडियोधर्मी कार्बन

2) क) i) ख, ii) ग, iii) क, iv) घ

   ख) 1) आकार के सामान्य वृद्धि।
   2) अग्रपाद की हड्डियों का मिलना और हरेक पाद में अंगुलियों की संख्या पांच से घटकर एक हो जाना।

3) i) गलत, ii) सही, iii) गलत, iv) गलत, v) सही

4) क) समजात अंग संरचना यानि बनावट में समान होते हैं क्योंकि उनकी उत्पत्ति स्रोत एक ही होता है। उनके कार्य समान हों या अलग-अलग, यह अलग बात है।

   समवृत्ति अंग के प्रकार्य एक से होते हैं मगर उनकी उत्पत्ति भिन्न होती है।

   ख) मानव में परिशेषिका अद्यांग रूप में होती है। इसका कारण बदली आहारीय आदतों के लिए हुए अनूकूलन हैं।

5) i) व्यक्तिवृत्त जातिवृत्त का पुनरावर्तन करता है।
   ii) प्राक्वृक्कीय
   iii) वयस्क यूकेलिप्टस, सूरज
   iv) अनुकूल
   v) बेहतर मार्गदर्शक

6) i) हीमोग्लोबिन। यह श्वसन वर्णक सभी कशेरुकी लाल रक्त कोशिकाओं में पाया जाता है। यह केंचुए के सीरस में भी होता है। इसी तरह साइटोक्रोम सी नामक श्वसन प्रोटीन भी प्रोटोज़ोआ से लेकर मानव की कोशिकाओं में पायी जाती है।

   ii) हां। गाय-भैंस जैसे पालतू जानवरों से प्राप्त इंसुलिन मानव रक्त शर्करा सांद्रण को नियमित कर सकता है। असल में बाजार में मधुमेह के इलाज के लिए जो इंसुलिन बिकता है, वह जानवरों से ही निकाला गया होता है। ऐसे उदाहरण विभिन्न जन्तु समूहों के समान वंशावली की ओर इशारा करते हैं।

   iii) सीरम परीक्षण नीचे दिए गए विभिन्न जंतुओं में संभावित संबंध की ओर इशारा करते हैं। इनका वंशवृक्ष धारा इस प्रकार से हो सकता है :

   श्रू ..... लीमर ..... टार्सियर ..... मैकॉक .....
   गिब्बन ..... चिम्पांज़ी ..... गुरिल्ला ..... मानव

अंत में कुछ प्रश्न

1) जीवाश्म अभिलेख अधूरा है। कठोर अंगों वाले और ऐसे इलाकों में जहां अवसादन की प्रक्रिया चली थी, रहने वाले जीव ही संरक्षित हो पाए थे (आप कोई भी उदाहरण दे सकते हैं)।

2) इसे जीवित और जीवाश्म *नायसा* के उदाहरण से समझाया जा सकता है।

3) मानव में परिशेषिका अवशेषांग के रूप में इसलिए है कि वह ऐसे स्तनधारियों के समूह से विकसित हुआ है, जो मोटा रेशेदार आहार खाते हैं और इसके सेलुलोस के पाचन के लिए उन्हें अच्छी तरह से विकसित परिशेषिका की जरूरत होती है। मानव में खान-पान की आदतें बिल्कुल बदल चुकी है, इसलिए उसमें परिशेषिका आदि रूप में मौजूद रह गयी है।

4) हैकेल का नियम कहता है कि व्यक्तिवृत्त जातिवृत्त को दोहराता है। इसका मतलब यह है कि जीवों के भ्रूण उस समूह के व्यस्क सदस्यों से मिलते-जुलते हैं। मगर ऐसा नहीं होता। असल में जीवों की भ्रौणिक अवस्थाएं उस जीव समूह के सदस्यों के भ्रूणों से मेल खाते हैं, न कि वयस्क सदस्यों से।

5) i) प्रतिजन-प्रतिरक्षी अभिक्रियाओं की मदद से दो जन्तुओं के रक्त से एन्टिसीरम का बनना।

   ii) विभिन्न जन्तुओं के रक्त को इस एण्टिसीरम के हिस्सों से मिलाने पर अवक्षेप के निर्माण की जाँच।

   iii) अवक्षेपण की मात्रा की माप कर विभिन्न जन्तुओं के संबंध को स्थापित करना।

इकाई 11 विकासीय परिवर्तन की प्रक्रिया

इकाई की रूपरेखा

11.1 प्रस्तावना
उद्देश्य
11.2 प्राकृतिक वरण का आधार
प्रकृति की उदारता
प्रजनन क्षमता को सीमित करने वाले कारक
जीव समूह में विविधता
प्राकृतिक वरण
11.3 विविधता के स्रोत और उसकी अभिव्यक्ति
विविधता के स्रोत
विविधता की अभिव्यक्ति
11.4 योग्यता की अवधारणा
11.5 विभिन्न वातावरणीय स्थितियों में प्राकृतिक वरण
एकरूप वातावरण में प्राकृतिक वरण की क्रिया
बदलते वातावरण में प्राकृतिक वरण की क्रिया
विषमांगी वातावरण में प्राकृतिक वरण की क्रिया
11.6 सारांश
11.7 अंत में कुछ प्रश्न
11.8 उत्तर

11.1 प्रस्तावना

इस खंड की 9वीं और 10वीं इकाइयों में आपको विकासीय जीव विज्ञान की अवधारणा से अवगत कराया गया था। इकाई 9 में जीव विकास की अवधारणा की उत्पत्ति और इसके विकास में योगदान करने वाले प्रमुख व्यक्तियों के बारे में जानकारी दी गई थी। साथ ही आपने डार्विन के बारे में भी पढ़ा, जिन्होंने अपने गहन खोजबीन और विश्लेषणों के आधार पर यह बताया कि जीव विकास प्रकृति का साधारण तथ्य है। प्रसिद्ध समष्टि अनुवंशिकी (population geneticist) विज्ञानी थियोडोसियस डॉबज़ांस्की ने कहा था: "जीव विकास के आधार के बिना जीव विज्ञान में कुछ भी तर्क संगत नहीं है।" विकास के आधुनिक संश्लेषित सिद्धांत (modern synthetic theory) का प्रतिपादन करने वाले तीन वैज्ञानिकों की त्रयी में से थियोडोसियस एक थे। प्राकृतिक वरण यानि चयन द्वारा जीव विकास का डार्विन सिद्धांत आज समय की कसौटी पर खरा साबित हो चुका है। जूलियन हक्सले ने ठीक ही कहा है: "डार्विन ने जीव विकास के सिद्धांत को एक सच्चाई के रूप में अवश्यंभावी, एक प्रक्रिया के रूप मे बोधगम्य और एक सिद्धांत के रूप में सर्वमान्य बनाया।" इस खंड की इकाई 10 में हमने आपको जीवाश्मिकी, जीव-भूगोल, शरीर रचना-विज्ञान, भ्रौणिकी, शरीरक्रिया विज्ञान और जीव रसायन के क्षेत्र से जीव विकासीय प्रक्रिया की पुष्टि के लिए कई उदाहरण बताए थे। इस इकाई में हम विकासीय परिवर्तन की प्रक्रिया पर विशेष रूप से चर्चा करेंगे। डार्विन सिद्धांत की विस्तार से चर्चा करते हुए हम इसके बुनियादी सूत्रों यानि मतों का विश्लेषण करेंगे। विविधता एक ऐसी बुनियादी प्रक्रिया है, जिसके आधार पर प्राकृतिक वरण से जीवों में अनुकूलन की क्षमता पैदा होती है। इसलिए हम यहां पर विविधता के स्रोतों की भी विस्तार से चर्चा करेंगे। साथ ही हम डार्विन द्वारा दी गई योग्यता अवधारणा को जीवों की प्रजनन सफलता से जोड़ते हुए उसे समझाएंगे। अंत में आपको, प्राकृतिक वरण किन किन तरीकों से क्रिया करता है, इसकी जानकारी दी जाएगी। समग्र में यह इकाई इस पर रोशनी डालती है कि प्राकृतिक वरण किस तरह से जीवों, जीव समुदायों और जातियों में संरचनात्मक, कार्यात्मक तथा पारिस्थितिकीय अनुकूलन विकसित कर उन्हें अपने इर्द गिर्द के वातावरण के अनुसार ढालता है।

उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ लेने के बाद आप:

- इस अवधारणा को सही साबित कर सकेंगे कि प्राकृतिक वरण मूलतः विभेदी या विशिष्ट प्रजनन की एक प्रक्रिया है,
- विविधता के स्रोतों को पहचान लेंगे, जिनके आधार पर प्राकृतिक चयन प्रक्रिया अपना कार्य करती है,
- योग्यता या अनुकूलन के महत्व की व्याख्या कर सकेंगे और यह समझा सकेंगे कि यह किस प्रकार वरण प्रक्रिया का मानदण्ड है, और
- समझा सकेंगे कि प्रकृतिक वरण एकरूपी या समांगी, तथा विषमांगी और बदलते वातावरणों में किस तरह से काम करता है।

11.2 प्राकृतिक वरण का आधार

इस खंड की पहली इकाई में आपने उस आधार के बारे में पढ़ा, जिस पर डार्विन ने जीव विकास के सिद्धांत का प्रतिपादन किया था। इस सिद्धांत के अनुसार जीव का विकास विविधता और प्राकृतिक वरण (natural selection) के जरिए रूपांतरण से होता है। डार्विन ने प्रकृति के इस कार्य को योग्यतम की उत्तरजीविता कहा। अब सवाल है कि "योग्यतम किसे कहते हैं?" इसका जवाब उत्तरजीवियों के रूप में दिया जाता है। मगर इससे हम यह अच्छी तरह से नहीं समझ पाते कि प्राकृतिक वरण के बाद क्या होता है। योग्यता का अर्थ केवल उत्तरजीविता ही नहीं है। विकास की प्रक्रिया में योग्यता दरअसल किसी जीव का अपनी अगली पीढ़ी में मौजूद अपनी संतति की संख्या को ज्यादा से ज्यादा बढ़ाना है। इसका जिक्र हम पहले विकास के आधुनिक संश्लेषण सिद्धांत (theory of modern synthesis) के रूप में कर चुके है। दूसरे शब्दों में योग्यतम की धारणा का मतलब प्रजनन सफलता से है। योग्यता को प्रजनन क्षमता के रूप में आंका जा सकता है, इस आधार पर आइए हम इकाई 9 में डार्विनवाद के मूल मतों पर फिर से विचार करें। उसमें जो पांच महत्वपूर्ण मत बताए गए थे, उनमें से पहला जीवों की घातीय प्रजनन यानि अधिक प्रजनन करने की प्रवृत्ति है इस कारण से प्राप्त संसाधनों के लिए जीवों में होड़ होती है। इस स्पर्धा की परिणति "योग्यतम की उत्तरजीविता" (Survival of the fittest) में होती है। इस तरह प्रजनन क्षमता (reproductive potential) के मामले में प्रकृति सचमुच बड़ी उदार है।

11.2.1 प्रकृति की उदारता

प्रकृति की उदारता (prodigality of nature) का मतलब जीवों में प्रजनन करने की असीम क्षमता का होना है। एक कार्प या सॉलमोन (Salmon) एक बार में कोई दस लाख अंडे देते हैं। इसी तरह एक मेंढक एक बार में लगभग 12,000 अण्डे देता है अगर सभी अंडे जीवित रहें, और नए मेंढकों को जन्म दें, तो यह धरती जल्दी ही मेंढकों से पट जाएगी। डार्विन ने खुद हाथी की प्रजनन दर का पता लगाया था। हाथी को सभी जन्तुओं में सबसे धीमा प्रजनक माना जाता है। माना कोई हाथी अपने सौ वर्ष के जीवन काल में प्रजनन उम्र के साठ वर्षों के अंदर छः बच्चों को जन्म दे, तो 750 सालों में धरती में कोई एक करोड़ 90 लाख हाथी हो जाएंगे। जीव-जन्तुओं में प्रजनन करने की इस असीम क्षमता के ऐसे कई उदाहरण दिए जा सकते हैं।

अब सवाल यह है कि प्रजनन की इतनी ज्यादा क्षमता के बावजूद भी अधिकांश जातियों की जीव संख्या हमेशा एक खास इष्टतम स्तर (optimum level) पर ही कैसे बनी रहती है। झीलें मछलियों से नहीं पट पातीं, खेतों में मेंढकों की भरमार नहीं हो पाती और न ही धरती पर हाथियों का जमघट लगता है—आखिर यह सब कैसे संभव होता है? यह सब वातावरण में मौजूद सीमाकारी कारकों के कारण संभव होता है, जो जीव-जन्तुओं की संख्या को बढ़ने से रोकते हैं। ये सीमाकारी कारक (limiting factors) जैविक और अजैविक दोनों तरह के होते हैं। आइए देखें कि ये कारक क्या हैं।

11.2.2 प्रजनन क्षमता को सीमित करने वाले कारक

विभिन्न जीवों का वातावरण से अपनी जरूरत को पूरा करने के लिए आपस में स्पर्धा करनी पड़ती है। जैसा कि हम आपको पहले बता चुके हैं, यह स्पर्धा भोजन व आवास स्थान के लिए, जलवायु की खराब स्थितियों से उबरने, परभक्षी जीवों से बचने या किसी संक्रामक रोग से लड़ने के लिए करनी होती है। दरअसल यही 'संघर्ष' (struggle) है। यही संघर्ष जीव-समूहों को नियंत्रणीय स्तर तक सीमित रखता है और उन्हें लघुगणकीय पैमाने (logarithmic scale) पर बढ़ने से रोकता है। हमने अभी मेंढक की प्रजनन क्षमता का जिक्र किया था। अगर यह क्षमता पूरी तरह से फलीभूत हो जाए, तो मेंढकों की पैदा होने वाले भारी जीव संख्या या जीव-समूह (population) का उन संसाधनों पर ज़बर्दस्त दबाव पड़ने लगेगा, जिन पर वे अपने जीवन के लिए निर्भर हैं। इसका फल यह होगा कि जल्द ही वे भूखे मरने लगेंगे। मगर ऐसा नहीं होता। जीव समुदायों के आकार अधिकतर बेहिसाब नहीं बढ़ा करते, बल्कि उनमें समय-समय पर सिर्फ कुछ उतार चढ़ाव आते हैं। कुछ जीव समुदायों में किसी खास मौसम में तेजी से वृद्धि होती है। पर साथ ही दूसरे मौसमों में बड़ी तेजी से कमी भी आ जाती है। इसे हम प्रयोगशाला में कोशिका वर्धन (cell culture) करके देख सकते हैं, जहाँ कोई एक संसाधन जैसे भोजन, स्थान अधिक सीमित होता है। इन स्थितियों में शुरू-शुरू में कोशिकाओं में बड़ी तेजी से वृद्धि यानि लघुगणकीय वृद्धि होती है और फिर यह वृद्धि घटकर एक स्तर पर सीमित हो जाती है। जीव समुदाय की इस प्रकार की वृद्धि को यदि ग्राफ पर अंकित किया जाए तो हमें सिग्माभ वक्र (Sigmoid curve) प्राप्त होता है। यह वक्र जीवसमुदायों की वृद्धि का एक आम रूप है (चित्र 11.1)। जिन कारकों के बारे में हमने अभी बताया है, वे प्राकृतिक जीव समुदायों के आकार या उनकी तादाद को वातावरण की वहन क्षमता (carrying capacity) की सीमा में बांधते हैं। उदाहरणतया पौधों के वातावरण की वहन क्षमता इस बात से तय होती है कि उस जाति के हरेक पौधे और दूसरी जाति के पौधों को कितनी जगह चाहिए। इस जगह में तब तक नए बीज या पौधे अंकुरित नहीं हो सकते, जब तक पुराने पौधे मर न जाएं। जैसा कि पहले बताया गया है अधिकांशतः जन्तुओं में आबादी के आकारों को भोजन की आपूर्ति से सीमित किया जा सकता है। जंतुओं की तादाद भोजन की कमी पड़ने तक बढ़ती है। संसाधनों की ऐसी कमी से जंतुओं में प्रजनन कम हो जाता है। इसके बाद ऐसी स्थिति आती है जिसमें जन्तु समुदाय का आकार घट जाता है। इससे वातावरण की वहन क्षमता फिर से इतनी बढ़ जाती है कि वह और अधिक जंतुओं को जीवन आधार देने लगता है। इस तरह यह चक्र बार बार दोहराया जाता है।

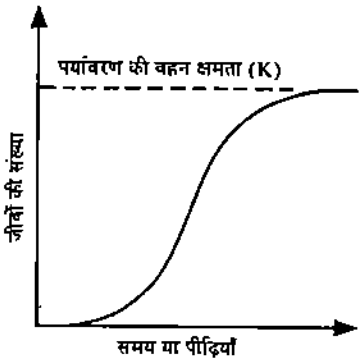

चित्र 11.1 : जीव समुदाय में वृद्धि दर्शाते हुए सिग्माभ वक्र।

अगर जीवन के आधार संसाधनों से भरपूर किसी उपयुक्त वातावरण में कुछ जन्तुओं को रहने के लिए छोड़ दिया जाए, तो उनमें जन्म दर अधिक और मृत्यु दर काफी कम होती है। ज्यों-ज्यों नए-नए जन्तु उस समुदाय से आ जुड़ते हैं, संसाधन कम पड़ते जाते हैं और उनमें मृत्यु दर बढ़ने लगती है। साथ ही जन्म दर भी अपेक्षाकृत घट जाती है। एक समय ऐसा आता है जब जीव-समूह अर्थात जीव संख्या घनत्व जंतुओं की उस अधिकतम संख्या तक पहुंच जाता है, जहां तक वातावरण उनका भरण पोषण कर सकता है। तब जीव संख्या का बढ़ना रुक जाता है। इसी घनत्व को वहन क्षमता (carrying capacity) कहते हैं।

यहां हम यह कहना चाहते हैं कि "संघर्ष" को इसके शाब्दिक व्याख्या के रूप में नहीं लिया जाए। असल में जब डार्विन ने अपनी पुस्तक "ऑरिजिन ऑफ स्पीशीज़" (origin of species) को छपवाया था तब यह आलोचना होने लगी कि उनके सिद्धांत में संघर्ष का अर्थ युद्ध, आक्रमण, नस्लों और वर्गों में लड़ाई तथा जातीय स्पर्धा है। मगर जी.जी. सिम्पसन ने प्राकृतिक वरण सिद्धांत के प्रति इस "रक्त से सनी प्रकृति" जैसे दृष्टिकोण को दुर्भाग्यपूर्ण करार दिया। उनका कहना सही था। डार्विन का संघर्ष भिन्न तथा गूढ़ है। उदाहरण के लिए जो पौधे सूखे पर्यावरण में संघर्ष करते हैं उनमें ऐसी युक्तियों का विकास हो जाता है जो पानी को बर्बाद होने से रोकते हैं। ऐसा नहीं है कि ये पौधे एक दूसरे से पानी सोख कर जीवित रहते हैं।

अतः किसी जीव समुदाय में से अगर कुछ जीव इस प्रकार से संघर्ष से उबर लेते हैं और दूसरी पीढ़ी की संतानों को जन्म देने के लिए जीवित रहते हैं तो इस पर हमारे सामने ये सवाल खड़े होते हैं: क्या इसका निर्धारण संयोग ही करता है कि किस जीव को जीवित रहना होगा और किसको मरना? अगर

नहीं, तब जीवों की उत्तरजीविता को कौन तय करता है? ये सवाल हमको प्राकृतिक वरण की प्रक्रिया में अगले तथ्य की ओर ले जाते हैं। यह तथ्य है जीव समुदायों में विविधता (variability)।

11.2.3 जीव समूह में विविधता

किसी जाति के जीवों में जन्मजात (वंशानुगत) लक्षणों में मौजूद अंतर को विविधता कहते हैं। जैव विकास के अध्ययन में डार्विन का एक बड़ा यौगदान "द वेरियेशन ऑफ़ ऐनीमल्स ऐण्ड प्लांट्स अंडर डोमेस्टिकेशन" (The Variation of Animals and Plants under Domestication) नामक रही। इसका प्रकाशन 1868 में हुआ था। डार्विन ने बताया कि जीव-जंतुओं के जीव समुदायों में सभी जीव समरूप नहीं होते। यह सही है कि एकांडज जुड़वां (monozygotic twins) तक में भी फर्क दिखायी देते हैं। किसी भी जीव समुदाय में जीवों में विभिन्न लक्षणों या गुणों में अंतर के कई उदाहरण दिए जा सकते हैं। ऊंचाई या रंग जैसे कुछ लक्षण बराबर परिवर्ती होते हैं, यानि घटते बढ़ते रहते हैं। जबकि कुछ खास लक्षणों के कारण जीवों के कुछ सुस्पष्ट और एकदम अलग समूह बनते हैं। इन समूहों के बीच कोई भी मध्यवर्ती जीव समूह नहीं होता अर्थात् किसी भी समूह में ऐसे लक्षणों की तीव्रता कम या अधिक नहीं होती। ऐसे लक्षण जीवों में या तो होते हैं या फिर नहीं होते। मानव जनसंख्या का उदाहरण लीजिए। इसमें कुछ पी टी सी स्वादक (PTC taster) और कुछ गैर-स्वादक होते हैं। अलग अलग रक्त समूहों (blood groups) वाले व्यक्ति होते हैं जैसे ए (A), बी (B), एबी (AB), तथा ओ (O) रक्त समूह, कुछ व्यक्तियों की आंखें काली होती हैं, कुछ की भूरी, तो कुछ की नीली। इसी तरह आपको कुछ आदमी दात्र कोशिका आरक्तता (Sickle cell anaemia) के रोगी मिलेंगे, तो कुछ सामान्य होंगे। मटर के पौधों के फूल या तो लाल हो सकते हैं या सफेद। ड्रोसोफ़िला नामक कीड़े में सामान्य या अवशेषी पंख, लाल या सफेद आंखें हो सकती हैं।

जीवों में इस प्रकार की विविधता का सबसे बड़ा स्रोत आनुवंशिक विविधता है। आनुवंशिक विविधता कई तरह के उत्परिवर्तनों (mutations) और आनुवंशिक पुनर्योजन (genetic recombination) से पैदा होती है। उत्परिवर्तन के बारे में हमने आपको LSE-04 अनुवंशिकी पाठयक्रम की 16वीं इकाई में बताया है। प्राकृतिक जीव समुदायों में लक्षणों में विविधता का दूसरा कारण वातावरण के अतिसूक्ष्म प्रभाव हैं। इसका अच्छा उदाहरण नौ पट्टी वाले आर्मेडिलों (nine banded armadillo) के एकांडज चतुष्क (monozygotic quadruplet) हैं। इस आर्मेडिलो के एक साथ जन्में इन चतुष्कों यानि चार बच्चों के कई लक्षणों में विविधता होती है। एक ही मादा अण्डे से जन्म लेने वाली यानि ऐसी एकांडज संतानों में ये फर्क गर्भाशय में मौजूद वातावरण के कारण पैदा हुए थे, जिसमें उनका विकास हुआ था। इससे आपको यह बात साफ समझ आ गई होगी कि एक ही गर्भाशय में विकसित होने वाले आनुवंशिक रूप से भिन्न चार युग्मनज (zygotes) एक दूसरे से तो बहुत ही भिन्न होंगे। बदलते पर्यावरण में प्राकृतिक वरण की भूमिका पर और विस्तार से चर्चा हम इस पाठयक्रम के खंड 4 की इकाई 12 में करेंगे।

11.2.4 प्राकृतिक वरण

अगर यह मान लें कि जीव समुदायों की विविधता आनुवंशिक नहीं होती, तो भी सिर्फ आकस्मिक घटनाएं ही यह तय कर सकती हैं कि कौन जीवित रहेगा। मगर सभी जीवों के लक्षण प्ररूप (phenotype) आनुवंशिक तत्वों के कारण होते हैं। ये लक्षण कुछ हद तक वंशागत होते हैं। अगर जीव में कोई ऐसा लक्षण हो, जो उसे किसी वातावरण पर्यावरण में अच्छी तरह से जीवित रहने में मदद करे तो उसकी संतानों को वह लक्षण प्राप्त हो जाएगा। इसको विभेदी उत्तरजीविता (differential survival) कहा जाता है। विभेदी उत्तरजीविता जीवों की किसी एक पर्यावरण में उत्तरजीविता है, जिसमें वे स्वयं को अच्छी तरह से अनुकूल बना लेते हैं। जिन जीवों में इस प्रकार दिए गए वातावरण के लिए ऐसी अनुकूलनशीलता नहीं होती, वे जीव प्रजनन करने के लिए जीवित नहीं रह सकते। इस प्रकार ये अनुकूलन आनुवंशिक रूप से नियंत्रित होते हैं और वंशानुगत होते हैं। जीवों की इस विभेदी उत्तरजीविता से उनके प्रजनन के समय उनमें उपस्थित युग्म विकल्पियों यानी ऐलील (alleles) का प्रजनन तथा इसे ऐलील का विभेदी प्रजनन कहते हैं। इन्हीं ऐलील पर अगली पीढ़ी की उत्तरजीविता निर्भर होती है। असल में यह कहना आम बात है कि प्राकृतिक वरण का पर्याय ही विभेदी प्रजनन है। जीवों के विभेदी प्रजनन से इतना ज्यादा प्रभाव तो नहीं होता कि इसके बल पर

कोई जीव अवश्य जीवित ही रहे, मगर इतना जरूर है कि ऐसे जीव अपनी आगामी पीढ़ियों में अपने जीनों को कायम रखने में समर्थ रहते हैं। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि जो जीवित रहता है वह वास्तव में जीवों के रूप में जीनों का एक समूह होता है। ऊपर कही गई बातों से यह साफ हो जाना चाहिए कि उत्तरजीविता का मतलब प्रजनन सफलता है और प्रजनन सफलता का अर्थ किसी जीव समुदाय में किसी जीव के ऐलीलों के भविष्य को आगामी पीढ़ियों के जीन कोशों (gene pool) के रूप में सुनिश्चित करना है। यह प्रकार्य दूसरे जीवों के उन ऐलीलों की कीमत पर होता है, जो भिन्न होते हैं तथा उनमें अपने वातावरण के प्रति अनुकूलन नहीं होता। यहां पर यह बात ध्यान में रखी जाए कि सिर्फ जीन ही संतानों को मिलते हैं। संतानों में ये जीन गुणसूत्रों (chromosome) के जरिए पहुंचते हैं।

अतः प्राकृतिक वरण का मतलब एक ही जीन कोश के सदस्यों में विभेदी प्रजनन हो सकता है। हमने पहले बताया है कि प्राकृतिक वरण ऐसे ऐलीलों को बढ़ावा देता है, जो एक वातावरण के लिए बेहतर ढंग से अनुकूलित लक्षण प्ररूपों को जन्म देते हैं। दूसरे शब्दों में एक खास वातावरण के लिए अच्छी तरह से अनुकूलन वाले ऐलीलों की बारंबारता जीवसमुदाय में बढ़ने लगती है। वहीं दूसरी ओर जो ऐलील अनुकूलित नहीं हो पाते उनकी बारंबारता में कमी आने लगती है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि प्राकृतिक वरण जीन बारंबारताओं में बदलाव है। जीन बारंबारता में होने वाले बदलावों की संक्षेप में चर्चा बॉक्स में देखें।

जीन बारंबारता और जीव समुदाय में उनमें होने वाले परिवर्तन

एक अंग्रेज गणितज्ञ जी.एच.हार्डी और एक जर्मन वैज्ञानिक डब्लू बेनबर्ग ने अलग-अलग जीव-समूह आनुवंशिकी के केन्द्रीय सिद्धांत का प्रतिपादन किया था। उनके अनुसार किसी जीव समुदाय में ऐलीलों के एक जोड़े की बारंबारता पीढ़ी दर पीढ़ी स्थिर रहेगी बशर्ते वह जीव समुदाय असीमित ढंग से बड़ा हो, और उसमें प्रजनन बेतरबीत हो। इसके साथ उस जीव समुदाय में किसी तरह का उत्परिवर्तन, वरण, पुनर्योजन या जीन पलायन न हो। मगर प्राकृतिक जीव-समूहों अर्थात जीव समुदायों में ऐसी स्थितियां कभी नहीं मिलती। इसलिए इन साम्य स्थितियों (equilibrium conditions) को प्रकृति में कदापि प्राप्त नहीं किया जा सकता है। दूसरे शब्दों में प्राकृतिक जीव समुदायों में जीन बारंबारता हर पीढ़ी में स्थिर नहीं रह सकती। इसका कारण यह है कि जीव समुदायों में उत्परिवर्तन, पुनर्योजन और जीन पलायन आदि प्रक्रियाएं बेतरतीब ढंग से होती रहती हैं। आइए एक सरल उदाहरण से समझने का प्रयास करें कि किसी जीव-समूह अर्थात जीवसंख्या में जीन बारंबारता किस प्रकार बदलती रहती है।

माना किसी बड़ी जीवसंख्या में A और a दो ऐलीलों की p और q बारंबारता है। यह मान कर चलें कि A और a की बारंबारता का कुल मान 1 आता है। तब $(p + q) = 1$ या $(1 - p) = q$ हुआ। माना A और a दो ऐलील तीन जीन प्ररूप (genotype) AA, Aa और aa बनाते हैं। अब इन जीन प्ररूपों की बारंबारता $(p + q)$ का द्विपद प्रसरण (binomial expansion) होगा, यानि $(p + q)^2$

$$(p + q)^2 = p^2 + 2pq + q^2$$

अतः AA की बारंबारता होगी p^2, Aa की बारंबारता होगी $2pq$ और aa की बारंबारता q^2 होगी।

जैसा कि हमने कहा है $(p + q) = 1$ तो $(p + q)^2$ भी 1 के बराबर होगा। नियम कहता है कि साम्य स्थितियों में बारंबारता नहीं बदलेगी। इसलिए अगली पीढ़ी में A की बारंबारता को A वाहक युग्मक तय करेंगे और यह जीव संख्या में मौजूद A ऐलील के वाहकों की संख्या पर निर्भर करेगा।

तब A की बारंबारता होगी $p^2 + pq$ ($2pq$ का आधा) $= p^2 + p(1 - p) = p^2 + p - p^2 = p$ होगी और a की बारंबारता $(1 - p) = q$ होगी। इसके बाद उत्परिवर्तन, वरण, जीन प्रवाह जैसे जीन की बारंबारता को बदलने वाले कारकों के अभावों में जीन बारंबारता पीढ़ी दर पीढ़ी स्थिर बनी रहती है।

मगर विकास का प्रकटन जीन बारंबारता में बदलाव के रूप में ही होता है। आइए संक्षेप में जीन बारंबारता पर उत्परिवर्तन के प्रभाव पर नजर डाल लें। माना A ऐलील दूसरे ऐलील a में u की दर पर उत्परिवर्तित करता है। मान लें शुरू में A की बारंबारता p और a की q हो तो दूसरी पीढ़ी में A की बारंबारता $p_1 = po - pou$ होगी।

यहां पर po आरंभिक बारंबारता, p_1 दूसरी पीढ़ी की बारंबारता और pou उत्परिवर्तित ऐलीलों की बारंबारता है।

$$p_1 = po - pou = po\ (1 - u)$$

दूसरे शब्दों में A की बारंबारता p से $p_o\ (1 - u)$ में बदल गई है। अब a की बारंबारता $[1 - (po\ (1 - u)]$ या $(1 - p_1)$ होगी। इस बारे में और अधिक जानने के लिए आप LSE-04 आनुवंशिकी पाठ्यक्रम की "जीन समुदाय में जीनों का व्यवहार" इकाई को पढ़ें।

विभेदी प्रजनन के दो काम होते हैं। इसका पहला काम जीवों में वातावरण के प्रति अनुकूलन पैदा करना या उनका बनाए रखना है। यह अनुकूलन जीव समूह या जीव जाति की उत्तरजीविता को तय करता है। इसका दूसरा काम एक ऐसी प्रक्रिया के रूप में है जो यह तय करती है कि लैंगिक प्रजनन करने वाले जीवों के जीन कोश में ऐलीलों की बारंबारता में किस तरह के बदलाव होंगे। डार्विन के सिद्धांतों की बुनियादों पर हम अपनी चर्चा यहीं पर खत्म करते हैं। इसके बाद हम गुणसूत्रीय और आनुवंशिक विविधता के संभावित स्रोतों की जानकारी हासिल करेंगे। साथ ही विविधता को समझाने के लिए समुचित उदाहरण देंगे। मगर इससे पहले आप नीचे दिए गए बोध प्रश्न का उत्तर देने की कोशिश करें।

बोध प्रश्न 1

नीचे दिये गए कथनों में सही व गलत बताइए।

i) आरिजिन ऑफ़ स्पीशीज़ नामक पुस्तक डार्विन और वैलेस ने मिलकर लिखी थी।

ii) "जीव विकास के आधार के बिना जीव विज्ञान में कुछ भी तर्कसंगत नहीं है।" यह बात डॉबज़ांस्की ने की थी।

iii) विविधता प्रकृति में बहुत कम मिलती है।

iv) अस्तित्व के लिए संघर्ष से डार्विन का मतलब यह था कि एक जाति के जीव आपस में हथियारों से लड़ते हैं।

v) प्राकृतिक वरण को किसी जीव समुदाय में जीन बारंबारता में परिवर्तन के रूप में भी लिया जाता है।

vi) अनुकूलनों का विकास जीनप्ररूप और वातावरण के बीच परस्पर क्रिया से होता है।

11.3 विविधता के स्रोत और उसकी अभिव्यक्ति

पहले भाग में हमने जोर देकर यह बात कही थी कि विकास या वातावरण के लिए निरंतर अनुकूलन सिर्फ तभी होता है, जब लक्षण प्ररूपों में विविधता दिखाई दे। विविधता के अभाव में इसकी संभावना है कि जीव विलुप्त हो जाएँ क्योंकि वातावरण में बदलाव आने पर ये जीव अपने पीछे कोई संतान छोड़े बिना ही मर जाएंगे। सौभाग्य से जीव तंत्रों में होने वाले उत्परिवर्तन और आनुवंशिक पुनर्योजन जीवों में जरूरी विविधता पैदा कर लेते हैं। बहरहाल जीव अक्सर ऐसे जीव समुदाय बनाने की कोशिश करते हैं, जो कमोवेश एकरूप होती हैं। यह इसलिए संभव होता है क्योंकि वरण की यह प्रक्रिया कुछ इस तरह से होती है कि किसी भी जीव समुदाय के जीवों में एक निश्चित सीमा तक एकरूपता आरोपित कर दी जाती है। अगर कोई जीव शेष जीवसमूह या समुदाय से कुछ मायने में एकदम कुछ अलग हो, तो वह दूसरे जीवों की तुलना में उस वातावरण में कम ढल पाएगा। इस तरह वह उनके मुकाबले में कामयाब नहीं हो पाएगा। मगर बराबर परिवर्तनशील वातावरण में जीव समुदायों में एक हल्की लक्षणप्ररूपी विविधता कायम रखी जानी जरूरी है। बदलते पर्यावरण में कोई भी लक्षणप्ररूप लंबे समय तक अनुकूलित नहीं रह सकता। यही कारण है कि किसी जीवसमुदाय में विविधता को लगातार

पैदा करने की जरूरत पड़ती है और जैसा डार्विन ने बताया था अनुकूलन विकसित करने के लिए इस विविधता की आवश्यकता होती है। अब हम विविधता पैदा करने वाली क्रियाविधियों के बारे में जानेंगे।

11.3.1 विविधता के स्रोत

उत्परिवर्तन और आनुवंशिक पुनर्योजन (लैंगिक प्रजनन करने वाले जीवों में) प्राकृतिक जीव समूहों में विविधता या रूपांतरण लाने वाले सबसे बड़े स्रोत हैं। इस भाग में हम विभिन्न प्रकार के उत्परिवर्तनों, उनकी दर और उनके प्रकारों के बारे में संक्षेप में समझाएंगे। उत्परिवर्तन और उत्परिवर्तनजन (mutagenesis) को विस्तार से जानने के लिए LSE-04 आनुवंशिकी पाठ्यक्रम के खंड 4 की इकाई 16 को पढ़ें।

उत्परिवर्तन

उत्परिवर्तन (mutation) वह प्रक्रिया है जिससे जीवों के आनुवंशिक पदार्थ में परिवर्तन उत्पन्न होते हैं जिससे विभिन्न प्रकार के आनुवंशिक पदार्थ बनते हैं। उत्परिवर्तन के अलावा विविधता का एक अन्य स्रोत है आनुवंशिक पुनर्योजन। आनुवंशिक पुनर्योजन अथवा गुणसूत्रों के स्वतंत्र अपव्यूहन (independent assortment) से पैदा होने वाली विविधता उत्परिवर्तन से उत्पन्न विविधता से भिन्न है, और यह लैंगिक प्रजनन करने वाले जीवों की विशेषता है। उत्परिवर्तन की दो श्रेणियां हैं: 1) **गुणसूत्रीय उत्परिवर्तन,** जो गुणसूत्रों की संख्या और गुणसूत्र में जीनों की संख्या या उनके क्रम को बदल डालता है। 2) **जीन उत्परिवर्तन,** जो जीन के किसी एक या कुछेक न्यूक्लियोटाइडों को प्रभावित करता है। अब हम उत्परिवर्तन के इन दो पहलुओं पर चर्चा करेंगे।

1. गुणसूत्रीय उत्परिवर्तन

गुणसूत्रीय उत्परिवर्तन (chromosomal mutation) नीचे दिए गए तरीकों से होता है:

क) **गुणसूत्र में जीन की संख्या में बदलाव**

i) **कमी या विलोप (deletion):** गुणसूत्र से एक या कई जीनों वाले किसी खंड का विलोप हो जाता है।

ii) **द्विगुणन (duplication):** किसी गुणसूत्र में एक या अधिक जीनों के खंड का एक से अधिक बार होना द्विगुणन या अनुलिपीकरण कहलाता है। द्विगुणन अक्सर बेतरतीब होता है। यानि एक ही गुणसूत्र में दो या अधिक द्विगुणित खंड एक दूसरे के साथ-साथ भी हो सकते हैं।

ख) **गुणसूत्र में जीन विन्यास में बदलाव**

i) **प्रतिलोमन (inversion):** गुणसूत्र के किसी खंड में जीन के क्रम का उल्टा हो जाना व्युत्क्रमण या प्रतिलोमन कहलाता है।

ii) **स्थानांतरण (translocation):** गुणसूत्र में जीनों के एक खंड की जगह बदल जाती है। यह स्थानांतरण आम तौर से पारस्परिक होता है। यानि यह दो असम जातिय (non-homologous) गुणसूत्रों में जीनों के खंड का परस्पर आदान प्रदान है।

ग) **गुणसूत्र संख्या में बदलाव**

i) **असुगुणिता (aneuploidy):** यह गुणसूत्रों के किसी सामान्य सेट में एक या एक से अधिक गुणसूत्रों की कमी या अधिकता है। किसी युग्म के दोनों गुणसूत्रों का लोप द्विन्यूनसूत्रण (nullisomy) कहलाता है। द्विगुणित (diploid) जीवों में किसी एक गुणसूत्र की एक, तीन या चार बार की मौजूदगी की क्रमशः एकल सूत्रण (monosomy), एकाधिसूत्रण (trisomy), द्विअधिसूत्रण (tetrasomy) कहा जाता है।

ii) **बहुगुणिता (polyploidy):** किसी जीव में गुणसूत्रों के दो से अधिक सेटों की मौजूदगी को बहुगुणिता कहा जाता है अधिकतर जीव द्विगुणसूत्री (diploid) होते हैं। यानि उनकी कायिक कोशिका (somatic cell) में गुणसूत्रों के दो सेट और युग्मक कोशिका (zygotic cell) में सिर्फ एक सेट होता है। बहुगुणित जीव गुणसूत्रों की संख्या तीन होने पर त्रिगुणित

(triploid) और जब चार जोड़े हों तो चतुर्गुणित (tetraploid) कहलाते हैं। बहुगुणिता अक्सर पौधों में पायी जाती है मगर जंतुओं में यह यदा कदा ही दिखाई देती है। बहुगुणिता पौधों में जाति उद्भवन का एक आम जरिया है। उगाए जाने वाले कई कृष्ट पौधे जैसे गेहूं, जई, तंबाकू, आलू, केला, कॉफी, गन्ना और कई फूल वाले पौधे बहुगुणित होते हैं। पौधों का प्रजनन कराने वाले विशेषज्ञ लोग नई किस्मों की इजाद के लिए कृत्रिम तरीकों से उनमें बहुगुणिता पैदा करते हैं। द्विलिंगी जीवों में बहुगुणिता ही एक ऐसा जरिया माना जा सकता है, जिससे एक ही बार में एकदम नई जाति पैदा होती है।

2. जीन उत्परिवर्तन

जीन या बिंदु उत्परिवर्तन (gene or point mutation) तब होते हैं, जब किसी डी एन ए क्रम में जीन का परिवर्तन हो जाता है, जिसके फलस्वरूप संतान में नया न्यूक्लियोटाइड क्रम आता है। ऐसा एक या अधिक न्यूक्लियोटाइडों के जोड़ अथवा विलोप या प्रतिस्थापन या संक्रमण के कारण होता है। न्यूक्लियोटाइड का संक्रमण ट्रांज़ीशन (transition) या ट्रांसवर्शन (transversion) द्वारा हो सकता है। ट्रांज़ीशन में एक प्यूरीन की जगह दूसरा प्यूरीन (जैसे A नामक प्यूरीन की जगह G ले लेता है या G की जगह A लें) या एक पाइरीमिडीन की जगह दूसरा पाइरीमिडीन (C की जगह T या T की जगह C लें) आ जाता है। ट्रांसवर्शन में एक प्यूरीन की जगह कोई पाइरीमिडीन या किसी पाइरीमिडीन की जगह कोई प्यूरीन ले लेता है। (जैसे G या A प्यूरीन की जगह C या T पाइरीमिडीन आ जाए।) अब हम संक्षेप में विभिन्न प्रकार के जीन उत्परिवर्तनों के बारे में बतायेंगे।

क) **प्रतिस्थापन (Substitution) :** किसी पॉलिपेप्टाइड शृंखला में अगर एक बेस की जगह दूसरे बेस का प्रतिस्थापन हो तो इससे ऐमीनो अम्ल बदल जाता है उदाहरण के लिए डी एन ए में मौजूद AAT त्रिक (एम आर एन ए में UUA) में ल्यूसीन के निर्माण को निर्देशित करता है। मगर पहले A की जगह C ले ले तो यह त्रिक वेलीन के निर्माण के लिए कोड बनाएगा। कुछ ऐसे कोडॉन होते हैं जिनके प्रतिस्थापन से निर्दिष्ट ऐमीनो अम्ल में कोई फर्क नहीं पड़ता। उदाहरण के लिए अगर एक कोड AAT त्रिक में A की जगह G ले लें तो भी कोड ऐमीनो अम्ल ल्यूसीन का ही निर्माण करेगा। अगर जीन उत्परिवर्तन प्रोटीन के सक्रिय हिस्से (active site) को प्रभावित न करें, तो फिर वे उसके जैविक प्रकार्यों को नहीं बदल सकते। मगर न्यूक्लियोटाइड प्रतिस्थापन का जो किसी ऐमीनो अम्ल के त्रिक कोड को एक अवसान कोडॉन (termination codon) में बदल डालते हैं, बुरा प्रभाव पड़ता है। AAT में अगर दूसरे A की जगह T लेकर ATT त्रिक बन जाए तो इससे बनने वाला एम आर एन ए कोडॉन UAA एक अवसान कोडॉन होगा। जब किसी एम आर एन ए अणु के बीच में कोई अवसान कोडॉन मौजूद हो, तो आगे के कोडॉनों का अनुवादन नहीं हो पाता। इसका परिणाम यह होता है कि राइबोसोम से अधूरी पॉलिपेप्टाइड शृंखला निकलती है।

ख) जुड़ना और विलोप होना (addition and deletions): किसी संरचनात्मक जीन के डी एन ए क्रम में न्यूक्लियोटाइड के किसी बेस युग्म का जुड़ना या उससे लोप होना अक्सर कोडित पॉलिपेप्टाइड में ऐमीनो अम्लों के अनुक्रम को बदल डालता है। ऐसे जोड़ या लोप के कारण न्यूक्लियोटाइड क्रम के रीडिंग फ्रेम में जोड़ या लोप के स्थान से अणु के अंतिम छोर तक परिवर्तन या स्थानांतरण (shift) आ जाता है। उदाहरण के लिए नीचे दिए गए डी एन ए क्रम को देखें:

CAT–CAT–CAT–CAT–

अगर पहले C के तत्काल बाद T न्यूक्लियोटाइड डाला जाना हो तो यह क्रम इस प्रकार होगा:

–CTA–TCA–TCA–TCA–T

डी एन ए के मूल क्रम अनुलेखन और अनुवादन होने पर एक के बाद एक पांच वैलीन अवशेष प्राप्त होंगे। मगर बदले हुए क्रम में एक एस्पार्टेट और चार सेरीन अवशिष्ट प्राप्त होंगे। इस तरह बेस युग्मों के जोड़ या लोप से होने वाले उत्परिवर्तनों को फ्रेम शिफ्ट उत्परिवर्तन (frame shift mutation) कहते हैं।

हमने अभी तक आपको उन कई तरीकों के बारे में बताया, जिनके जरिए जीवों के अनुवांशिक पदार्थ में बदलाव आ सकते हैं। उत्परिवर्तन दो तरह के होते हैं—**स्वतः उत्परिवर्तन** और **प्रेरित उत्परिवर्तन**।

हाल के वर्षों में उत्परिवर्तन प्रक्रिया के कारणों के बारे में एक अच्छी समझ बन गई है। टॉटोमरी शिफ्ट या स्थानांतरण (tautomeric shift) पराबैंगनी विकिरण तथा हाइड्रॉक्सीलैमीन, नाइट्रस अम्ल, और ऐल्किलन कारक जैसे रसायन डी एन ए के नाइट्रोजन बेस को हमेशा के लिए बदल डालते हैं। इसी तरह एक्रिडीन जैसे ऐरोमैटिक यौगिक भी डी एन ए में बीस से अधिक बेसों को जोड़ या उनका लोप कर सकते हैं।

प्राकृतिक जीव समुदायों में विविधता के एक स्रोत के रूप में उत्परिवर्तन के बारे में हमने यहाँ संक्षिप्त में चर्चा की। ये उत्परिवर्तन अर्धसूत्री विभाजन के समय होने वाले अनुवांशिक पुनर्योजन के साथ मिलकर प्राकृतिक वरण के लिए बुनियादी तत्वों का काम करते हैं।

पुनर्योजन पर संक्षेप में चर्चा करने से पहले आइए हम जीवों में होने वाले उत्परिवर्तन की दर के विषय में संक्षेप में पढ़ें। उत्परिवर्तन के बारे में विस्तार से जानने के लिए एल एस ई-04 आनुवांशिक पाठ्यक्रम के खंड 4 की इकाई 16 को देखें।

उत्परिवर्तन दर

हरेक जीन की अपनी विशिष्ट उत्परिवर्तन दर होती है। उत्परिवर्तन दरों को अक्सर औसत प्रति जीन आधार पर व्यक्त किया जाता है। ड्रोसोफ़िला का उदाहरण लें। इसके 10,000 विस्थलों (loci) में पता लगाए जा सकने वाला एक उत्परिवर्तन होता है, यानि 0.01 प्रतिशत प्रति विस्थल। मनुष्य में रेटिनोब्लास्टोमा (retinoblastoma), कोंड्रोडाइस्ट्रॉफी (chondrodystrophy), हंटिंगटन कोरिया (Hutington's chorea) जैसे घातक जीनों के लिए होने वाले स्वतः उत्परिवर्तनों की दर को आंका गया है। इन जीनों में यह दर 0.01 से 0.001 प्रतिशत प्रति विस्थल है। इसका मतलब यह हुआ कि 10,000 से लेकर 100,000 विस्थलों में एक विस्थल उत्परिवर्तन करता है। अधिकतर यूकैरियॉटिक उत्परिवर्तन दरें भी इस तरह पाई जाती हैं, जो 10^{-4} से लेकर 10^{-6} प्रति विस्थल होती हैं। प्रोकैरियॉटिक जीवों में उत्परिवर्तन दर बहुत कम होती है। यह दर 10^{-7} से 10^{-10} प्रति विस्थल होती है। उत्परिवर्तन उल्टी दिशा में भी हो सकता है। इसका मतलब यह है कि एक उत्परिवर्ती जीन फिर से उत्परिवर्तन करके वापस अपने मूल रूप में आ जाता है। मगर उल्टे या उत्क्रमी उत्परिवर्तन (reverse mutation) की दर अग्रवर्ती उत्परिवर्तन (forward mutation) की दर से बहुत कम होती है।

आनुवांशिक पुनर्योग

प्रोकैरियॉटिक जीवों व अलैंगिक प्रजनन करने वाले जीवों में विविधता पैदा करने का एक मात्र जरिया उत्परिवर्तन है। मगर लैंगिक प्रजनन वाले यूकैरियॉटिक जीवों में एक पीढ़ी में भी उनके गुणसूत्रों के जीनों में अदल बदल होती है इससे उनकी जीव संख्या में आनुवंशिक विविधता को बढ़ावा मिलता है। पुनर्योग अर्थात आनुवंशिक पुनर्योजन से पैदा होने वाली विविधता को प्राकृतिक वरण द्वारा अधिक से अधिक आनुवंशिक पृष्ठभुमि में और कम से कम समय (एक पीढ़ी) में परखा जाता है। इस प्रकार लैंगिक प्रजनन का सबसे बड़ा और बुनियादी लाभ विविधता का जन्म है। अगर जीव संख्याएं बड़ी हों और उनमें उत्परिवर्तन न हों, तो भी लैंगिक पुनर्योग यानि पुनर्योजन लंबे समय तक नए जीन प्ररूप पैदा करता है।

11.3.2 विविधता की अभिव्यक्ति

पहले उपभाग में हमने उन सभी संभावित तरीकों के बारे में बताया था, जिनसे विविधता पैदा होती है। अब हम एक उदाहरण देकर यह समझाएंगे कि विविधता का लक्षणप्ररूप पर क्या असर होता है।

कोई भी जीनप्ररूप वातावरणीय परिस्थितियों की एक छोटी सी हद के भीतर किसी खास लक्षणप्ररूप के लिए एक कोडित आनुवांशिक सूचना है। दूसरे शब्दों में जीनप्ररूप और वातावरण में परस्पर क्रिया से पैदा होने वाला लक्षणप्ररूप जीव के किसी ऐसे अंग या प्रकार्य के रूप में प्रकट होता है जो संभवतः प्राकृतिक वरण के प्रभाव में आता है। आइए एक आनुवंशिक रोग दात्र कोशिका आरक्तता का उदाहरण लेते हैं। इस रोग के ऐलील प्राकृतिक वरण के प्रभाव में अलग-अलग वातावरण में अलग-अलग तरह से अभिव्यक्त होते हैं।

मनुष्य में खून की कमी का यह आनुवंशिक रोग हीमोग्लोबिन की एक दोषपूर्ण शृंखला के कारण पैदा होता है। हीमोग्लोबिन की इस असामान्य शृंखला को *Hbs* कहा जाता है जो प्राकृतिक हीमोग्लोबिन (HbA) से एक ऐमीनो अम्ल में विभिन्न होता है। प्रतिस्थापक उत्परिवर्तन (substitutional mutation) के कारण β (बीटा) शृंखला पॉलिपेप्टाइड के ऐमीनो टर्मिनल सिरे से छटे स्थान पर ग्लूटैमिक अम्ल की जगह वैलीन ले लेता है। यह इसलिए होता है क्योंकि सामान्य शृंखला में ग्लूटैमिक अम्ल के लिए कोडीकरण करने वाले GAA या GAG त्रिक की जगह एम आर एन ए में GUA या GUG त्रिक होते हैं, जो वैलीन के लिए कोड बनाते हैं। विऑक्सीजनीकृत अवस्था में असामान्य हीमोग्लोबिन *Hbs* अवपेक्षित होकर लंबे क्रिस्टल बनाता है। ये क्रिस्टल लाल रक्त कोशिकाओं (RBCs) में एक लाक्षणिक विकार पैदा करते हैं, जिससे ये रक्त कोशिकाएं अर्ध चंद्राकार या दंराती के आकार की हो जाती हैं। उनके इसी आकार के कारण इस रोग का नाम दात्र कोशिका आरक्तता (sickle cell anaemia) पड़ा। आकृति में यह विकार इन लाल रक्त कोशिकाओं की झिल्ली को कमज़ोर कर देता है जिससे कोशिकाओं का अपघटन हो जाता है। इस तरह लाल रक्त कोशिकाओं और हीमोग्लोबिन की हानि से खून की कमी का रोग एनीमिया या आरक्तता हो जाता है। इससे प्रति इकाई समय में ऊतकों को मिलने वाली ऑक्सीजन में कमी आ जाती है। खास तौर पर अगर β-शृंखला वाले जीन के छठे त्रिक के दूसरे स्थान में मौजूद थायमीन की जगह ऐडेनीन ले ले, तो इस प्रस्थापन से तरह-तरह की प्रतिक्रियाएं जन्म लेती हैं। ये प्रतिक्रियाएं जीव की शरीरक्रिया पर असर डालती हैं, जैसा कि हमने चित्र 11.2 में समझाया है। ऐसे जीन वाले समयुग्मजी जीव (Hbs/Hbs) जल्दी ही मर जाते हैं। उधर विषमयुग्मजी (HbA/Hbs) में लाल रक्त कोशिकाओं का कुछ हिस्सा समय-समय पर अपघटित होता है। मगर इससे जीव को कोई नुकसान नहीं पहुंचता और उसकी उत्तरजीविता प्रभावित नहीं होती।

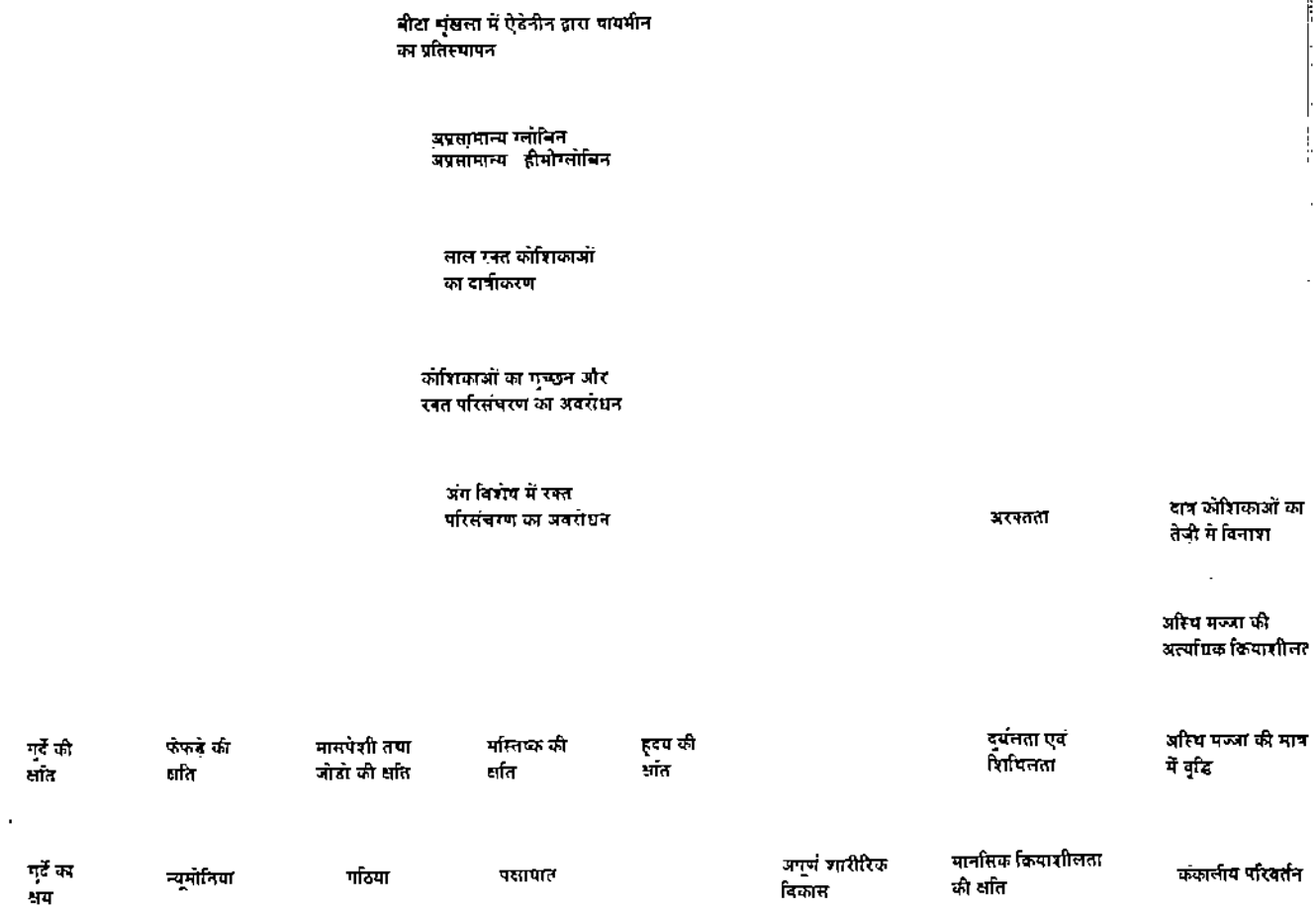

चित्र 11.2 : दात्र कोशिका आरक्तता का प्रभाव। चित्र में दिखाया गया है कि प्रोटीन के सिर्फ एक ऐमीनो अम्ल के प्रतिस्थापन से अनेक प्रकार की प्रतिक्रियाएं जन्म लेती हैं, जो जीव की शरीरक्रिया के कई पहलुओ को प्रभावित कर डालती है।

अन्य स्तनधारी जंतु समुदायों में दंराती के आकार की कोशिकाएं बनती तो हैं, मगर वे लाल रक्त कोशिकाओं को अपघटित नहीं करतीं। उदाहरण के लिए हिरण समुदायों में दात्र कोशिकाएं काफी अधिक मात्रा में खून में मौजूद रहती हैं। ऐसा माना जाता है कि हिरन समुदायों में लाल रक्त कोशिकाओं की झिल्ली अपेक्षाकृत मोटी होती है। यही मोटाई उनको टूटने या अपघटित होने से बचाती है। रोचक बात यह है कि कुछ मानव जनसंख्याओं में β (बीटा) शृंखला जीन के इस असामान्य ऐलील की अत्याधिक बारंबारता रहती है। अब सवाल यह उठता है कि जो जीन अपने समयुग्मजों पर इतना हानिकारक और घातक असर डालता हो, वह कुछ खास मानव जनसंख्याओं में इतनी भारी संख्या में भला कैसे मौजूद हो सकता है। इसका सीधा-सीधा यह मतलब निकलता है कि प्राकृतिक वरण कुछ समुदायों में ऐसे ऐलील के अनुकूल रहता है या फिर कम से कम उन्हें विलुप्त नहीं करता। हमने पहले बताया है कि विषमयुग्मजों में हीमोग्लोबिन की कम हानि होती है। मगर दूसरे सभी कारक बराबर हों, तो भी इतनी हानि को भी अनुकूल स्थिति नहीं समझा जा सकता है और प्राकृतिक वरण जनसंख्या से ऐसे एलील को विलुप्त कर देता है। तो फिर इन स्थितियों में कुछ न कुछ कारण जरूर होंगे जो अफ्रीकी और कुछ ऐशियाई जनसंख्याओं में इस ऐलील को बनाए रखने के लिए विवश करते होंगे। इन जनसंख्याओं में दात्र कोशिका हीमोग्लोबिन (Hbs) का ऐलील सामान्य ऐलील (HbA) के साथ-साथ रहता है।

इस बात के सबूत मिलते हैं कि Hbs ऐलील वाले विषमयुग्मजी जीव फ़ैल्सिपैरम मलेरिया (falciparum malaria) के प्रतिरोधी होते हैं। अफ्रीका और ऐशिया के मलेरिया बहुल क्षेत्र में Hbs ऐलील काफी ज्यादा संख्या में पाया जाता है। अस्पताल में बच्चों की मेडिकल जांच करने पर इसके संकेत मिले हैं कि जिनमें दात्र कोशिका लक्षण (मगर रोग नहीं होता) है, उनमें फैल्सिपैरम मलेरिया के लक्षण प्रकट नहीं होते। अध्ययनों से यह पता चलता है कि ऐसे लोगों को मलेरिया वाहक मच्छरों के काटने के बावजूद भी रोग नहीं पकड़ता है, बशर्ते वे हीमोग्लोबिन β (बीटा) शृंखला जीन के विषमयुग्मजी हों। उधर सामान्य समयुग्मजी (HbA/HbA) लोगों को यह रोग पकड़ लेता है। सामान्य हीमोग्लोबिन समयुग्मजी की तुलना में (HbA/Hbs) विषमयुग्मजी इस मामले में ज्यादा फ़ायदे में रहता है कि उसे उसका मलेरिया के हमले से पूरा बचाव होता है। दात्र कोशिका अरक्तता एक ऐसा उदाहरण है, जिसमें किसी ऐलील या जीनप्ररूप के किसी भाग का दोष एक अनुकूलन साबित होता है।

जब जीनों में सिर्फ एक वन्य प्ररूप (wild type) का ऐलील हो, तो जाहिर है कि जीव समुदायों में उनकी विविधता कम होगी। कुछ जीन अधिक विविधता दिखाते हैं। शरीर क्रियात्मक लक्षणों में विविधता शरीररचनात्मक लक्षणों की तुलना में काफी ज्यादा देखने में आती है। जंतुओं में शरीरक्रियात्मक लक्षणों का विविधता गुणांक (coefficient of variation) 7.1 से लेकर 304 तक पाया जाता है। स्तनधारी जंतुओं में शरीररचनात्मक लक्षणों का विविधता गुणांक 4 से लेकर 10 तक होता है। कुछ लक्षणों की विविधता कुछ जरूरी शरीरक्रियात्मक प्रकार्यों से अप्रत्यक्ष रूप से जुड़ी होती है। उदाहरण के लिए रक्त चाप या ब्लड प्रेशर एक ऐसा शरीरक्रियात्मक लक्षण है, जिसकी देखरेख प्राकृतिक वरण करता है। समान स्थितियों में किसी जनसंख्या में लोगों में इसमें बहुत कम विविधता देखने में आती है। पर इसके ठीक उल्टे उसी जनसंख्या में हृदय गति (heart rate) पर निलय संकुचन (ventricular contraction) के आवेग तथा कोशिकीय व्यास (capillary diameter) काफी ज्यादा विविध हो सकते हैं। अंत में इन सब घटकों पर ही महत्वपूर्ण शरीरक्रियाप्रकार्य हृदय गति निर्भर करती है। इन अलग-अलग घटकों के भिन्न-भिन्न सहायक मानों द्वारा रक्त चाप एक निश्चित मान पर पहुंचाया जा सकता है। उदाहरणतः यह कहा जा सकता है कि 6 का मान 12/2, 18/3, 24/4 आदि से प्राप्त किया जा सकता है।

शरीर संरचना के लक्षणों में ज्यादा विविधता नहीं होती, जैसे सिर की लंबाई, अग्रपादों की सापेक्षिक लंबाई या फिर शक्ति, तैरने की गति या रक्त चाप जैसे कुछ खास शरीर क्रियात्मक लक्षण। ये लक्षण जीवों में विकसित हो जाने के बाद स्थायी दिखाई देते हैं। यही गुण प्रोटीन अणुओं की बनावट में भी देखने को मिलता है। उदाहरण के लिए ऐमीनो अम्ल का विश्लेषण करने पर मनुष्य से लेकर तिलहन तक अलग अलग जीवों की 33 जातियों के साइटोक्रोम C ऐमीनो अम्ल की संरचना में समानताएं पाई गईं। जैसे कि 14, 17, 18 और 80 स्थितियों पर मौजूद ऐमीनो अम्ल अपरिवर्तनीय हैं क्योंकि

इनकी हीम अणुओं से परस्पर क्रिया होती है। अब अगर इन ऐमीनो अम्लों में कोई बदलाव होता है, तो इसका महत्वपूर्ण हीम समूह पर बुरा असर पड़ता है। यही हीम समूह जीवन के लिए जरूरी ऑक्सीकरण अपचयन की अभिक्रिया से गुजरता है। साइटोक्रोम के 80 से लेकर 85 की स्थिति वाले ऐमीनो अम्ल हमेशा जल विरोधी होते हैं और 99 से लेकर 104 तक के ऐमीनो अम्ल कभी जल विरोधी नहीं होते। 86 से लेकर 93 तक के ऐमीनो अम्ल आवेशित होते हैं तो 94 से लेकर 98 तक में कभी आवेश नहीं होता। ऐमीनो अम्लों के आवेश में यह स्थायित्व इस बात की ओर इशारा करता है कि सभी साइटोक्रोम अणु समान तरीके से लिपटे होते हैं। इस अणु की तीन आयामी बनावट को बरकरार रखने के लिए प्राकृतिक वरण ने इस महत्वपूर्ण प्रोटीन के आवेश स्वरूप को बनाए रखा है।

विविधता के स्रोतों और उसकी अभिव्यक्ति पर हम अपनी बात यहीं पर खत्म करते हैं। इसके बाद हम अगले भाग पर आते हैं। पर इससे पहले आप नीचे दिए गए बोध प्रश्न का उत्तर दें।

बोध प्रश्न 2

खाली स्थान भरिए:

i) वातावरण के प्रति सतत अनुकूलन तभी आते हैं, जब लक्षणप्ररूप ..... दिखाएं।

ii) प्राकृतिक जीव समुदायों में विविधता के मुख्य स्रोत ..... और ..... हैं।

iii) किसी गुणसूत्र में मौजूद जीनों के क्रम में जिन परिवर्तनों की वजह से रूपांतरण होता है, वे ..... और ..... हैं।

iv) ..... संवर्धित पौधों के विकास का एक बड़ा जरिया रहा है।

v) बेस युग्मों के जोड़ या लोप से होने वाले उत्परिवर्तन ..... कहलाते हैं।

vi) दात्र कोशिका अरक्तता में हीमोग्लोबिन की बीटा शृंखला में ..... की जगह ..... लेता है।

vii) अफ्रीकी जनसंख्याओं में मलेरिया रोग के प्रति रोधकता ..... से आती है।

11.4 योग्यता की अवधारणा

प्राकृतिक वरण के डार्विन सिद्धांत की आधारभूत मतों की चर्चा करते हुए हमने बताया था कि वरण अयादृच्छिक प्रजनन (non-random reproduction) का पर्याय है। साथ ही आपको बताया था कि उत्तरजीवियों की सफलता इस बात पर निर्भर है कि वे अपने पीछे कितनी संख्या में अपनी संतानें छोड़ते हैं। क्या इस सफलता का कोई परिमाण निर्धारित करना संभव है। दूसरे शब्दों में क्या प्राकृतिक वरण का परिमाण निर्धारित किया जा सकता है। इन सवालों का जवाब है-हां। इन प्रश्नों का उत्तर "योग्यता" (fitness) की अवधारणा से जुड़ा है। योग्यता को डार्विनवादी योग्यता या वरणात्मक मान अथवा अनुकूलन मान भी कहा जाता है। यह किसी जाति के जीव समुदाय में मौजूद एक जीनप्ररूप की दूसरे जीनप्ररूप की तुलना में प्रजनन क्षमता का पैमाना है। आइए अब योग्यता की अवधारणा को एक उदाहरण द्वारा समझें।

माना दो ऐलील A और a तीन जीनप्ररूप AA, Aa और aa बनाते हैं। मान लें कि AA और Aa जीनप्ररूप चार-चार संतानों को जन्म देते हैं और जीनप्ररूप aa सिर्फ दो संतानें ही पैदा करता है। जीनप्ररूप AA तथा Aa की योग्यता या कह लें अनुकूलन मान 4/4 = 1 होगा। उधर aa जीनप्ररूप का योग्यता मान 2/4 = 0.5 होगा। AA तथा Aa जीनप्ररूपों का योग्यता मान समान है और aa जीनप्ररूप में यह मान इन दोनों की योग्यता का आधा है। सबसे अधिक प्रजनन क्षमता वाले जीनप्ररूप को योग्यता मान 1 दिया गया है। दूसरे जीनप्ररूपों की योग्यता को अधिकतम योग्यता मान वाले जीनप्ररूप के सापेक्ष निकाला गया है। योग्यता को W अक्षर से दिखाया जाता है। तालिका 11.1 में आपको विभिन्न जीनप्ररूपों के योग्यता मान निकालने की विधि बताई गई है।

तालिका 11.1 : तालिका में जीनप्ररूपों के अनुकूलन मान और वरण गुणांक निकालने की विधि दिखाई गई है।

	जीनप्ररूप			योग
	BB	Bb	bb	
1) एक पीढ़ी में जीनप्ररूपों की संख्या	30	60	15	105
2) दूसरी पीढ़ी में पैदा हुए युग्मजों की संख्या	90	80	10	180
3) संतति की औसत संख्या	90/30 = 3	80/60 = 1.33	10/15 = 0.66	
4) डार्विनवादी योग्यता (W) (सापेक्षिक प्रजनन क्षमता)	3/3 = 1	1.33/3 = 0.44	0.66/3 = 0.22	
5) वरण गुणांक S = (1 − W)	0	0.56	0.78	

किसी जीनप्ररूप पर पड़ने वाले वरण दबाव माप को वरण गुणांक कहते हैं। डार्विनवादी योग्यता और वरण गुणांक एक दूसरे से संबंधित हैं। यह संबंध एक समीकरण द्वारा दर्शाया जा सकता है। समीकरण है : $W = (1-S)$ या $S = (1-W)$।

यहां W डार्विनवादी योग्यता और S वरण गुणांक हैं। दरअसल S किसी जीनप्ररूप की योग्यता में आने वाली कमी की मात्रा का माप करता है। तालिका 11.1 में जीनप्ररूप BB की योग्यता 1 बताई गई है। इसका यह मतलब हुआ कि इस जीनप्ररूप का वरण गुणांक शून्य है। इसका सीधा मतलब यह है कि प्राकृतिक वरण द्वारा यह जीनप्ररूप विलुप्त नहीं हो सकता है। जीनप्ररूप Bb तथा bb के लिए वरण गुणांक क्रमशः $1 - 0.44 = 0.56$ और $1 - 0.22 = 0.78$ होगा।

इन जीनप्ररूपों में 56 तथा 78 संतानें प्राकृतिक वरण की प्रक्रिया में खत्म हो जायेंगी। योग्यता मान द्वारा पीढ़ी दर पीढ़ी जीनप्ररूपों की बारंबारता में आने वाले बदलावों का पहले से पता लगाया जा सकता है। ऐलीली और जीनप्ररूपी बारंबारताओं तथा जीव समुदायों में उनमें होने वाले बदलावों के बारे में और अधिक जानने के लिए LSE-04 आनुवंशिकी पाठ्यक्रम के खंड 4 की इकई 20 को पढ़ें।

उपरोक्त चर्चा से आप समझ गए होंगे कि जीनप्ररूपों की योग्यता को एक दूसरे के सापेक्ष आंका जाता है और इससे हमें पूर्ण मान नहीं मिलते। दरअसल किसी जीनसंख्या में मौजूद विभिन्न जीनप्ररूपों की यह सापेक्ष प्रजनन क्षमता ही है, जो जीन बारंबारता में होने वाले बदलावों से जुड़ी होती है। परिमाणात्मक रूप में यही प्राकृतिक वरण है। योग्यता मान पर कई तरह के कारकों का असर पड़ता है, जिन्हें **योग्यता घटक** (fitness components) कहा जाता है। ये घटक जीवनक्षमता, विकास की भूमिका, सफल संगम, जनन क्षमता आदि हैं। विभिन्न जीनप्ररूपों के योग्यतामानों में जो अंतर दिखाई पड़ता है वह इनमें से किसी एक या कई घटकों में मौजूद फर्क के कारण होता है। इसे समझने के लिए थैलेसेमिया मेजर (thalessemia major) नामक पैतृक रोग का उदाहरण लेते हैं। यह अनुवांशिक रोग α-(अल्फ़ा) शृंखला में एक दोषपूर्ण विस्थल के कारण पैदा होता है। इससे ग्रस्त व्यक्ति कम उम्र में ही मर जाते हैं इसलिए इन जीवों में योग्यता मान शून्य होता है। दूसरी ओर उपास्थिअविकसन रोगी (achondroplastic dwarf) बौने व्यक्ति सामान्य व्यक्तियों की तुलना में सिर्फ 20 प्रतिशत प्रजनन कर पाते हैं। थैलेसेमिया रोग वाले व्यक्तियों में शून्य अनुकूलनमान उनकी जीवन-अक्षमता के कारण है। उपास्थिअविकसन रोगी में शून्य अनुकूलन मान जननक्षमता में भारी कमी आने के कारण पैदा होता है।

11.5 विभिन्न वातावरणीय स्थितियों में प्राकृतिक वरण

इस भाग में हम यह जानेंगे कि वातावरण की अलग-अलग स्थितियों में जीवसमुदायों पर प्राकृतिक वरण कैसे काम करता है। भिन्न-भिन्न स्थितियों के अनुसार वातावरण तीन प्रकार के होते हैं : 1) ऐसे वातावरण जो कमोवेश एकरूप होते हैं, 2) वातावरण जो बराबर बदलते रहते हैं, तथा 3) ऐसे वातावरण जो विषमांगी होते हैं।

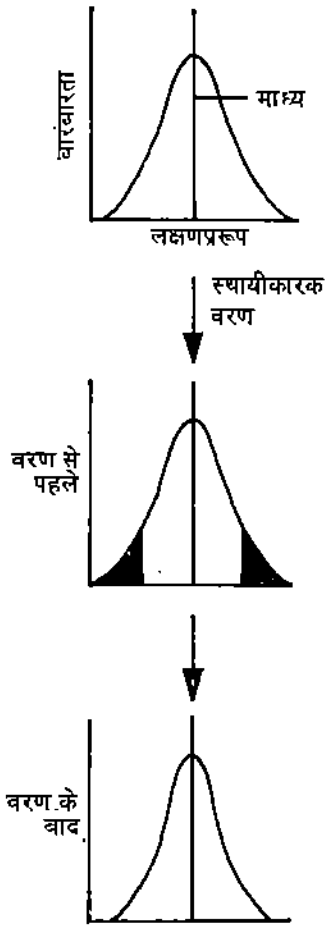

चित्र 11.3 : स्थायीकारक वरण। क) वरण से पहले जीवों का एक विशेष लक्षण के लिए सामान्य वितरण है। आप देख सकते हैं कि जीवसंख्या के अधिक जीवों में उस लक्षण के लिए एक माध्य मान (बिन्दु रेखा) है। ख) स्थायीकारक वरण लक्षण के चरम मान वाले जीवों (आच्छादित क्षेत्र) पर क्रिया करता है। ग) फलस्वरूप जीवसंख्या की विविधता कम हो गई है। मगर माध्य मान वही रहता है।

11.5.1 एकरूप वातावरण में प्राकृतिक वरण की क्रिया

वातावरण में भारी बदलाव न होने के कारण या कह लें ऐसे वातावरण में , जो एकरूप हों, जीवसमुदायों में कई लक्षणों के मामले में एक स्थिर आनुवंशिक गठन बना रहता है। वातावरण में कोई बदलाव न होने के कारण प्राकृतिक वरण भी एक आनुवंशिक समस्थैतिकी या समस्थापन (genetic homeostasis) प्रक्रिया बनाए रखता है। इस प्रक्रिया को **प्रसामान्यीकारक वरण** (normalising selection) कहते हैं।

जीवों के कई लक्षणप्ररूप गुणों को एक रेखीय पैमाने पर क्रमबद्ध रखा जा सकता है। आम तौर पर लक्षणों या गुणों (traits) का वितरण वक्र घंटी का आकार लेता है। जैसा कि चित्र 11.3 क में दिखाया गया है। जीवों की संख्या वक्र के मध्यवर्ती मान पर अपेक्षतया अधिक है, जीवों की संख्या इस वक्र के दोनों अंतिम छोरों की ओर जाने पर धीरे-धीरे घटने लगती है। जैसा पहले कहा गया है, प्रसामान्यीकारक वरण तब होता है जब मध्यवर्ती लक्षणप्ररूपों वाले जीव वरण के अनुकूल होते हैं और दोनों अंतिम छोरों वाले जीव वरण प्रक्रिया में दबाव में होते हैं। इन जीवों में लक्षणों के चरम परिमाप होते हैं (देखें चित्र 11.3 ख)। यह प्रवृत्ति पीढ़ी दर पीढ़ी जारी रहती है। सामान्य वक्र के दोनों अंतिम छोरों वाले चरम परिमाप के लक्षण वाले लक्षणप्ररूपों पर अगर जबर्दस्त वरण दबाव रहता है, तब इस स्थिति में जीव संख्या में कम विविधता देखने में आएगी यद्यपि माध्य मान या औसत मान वही रहता है (चित्र 11.3 ग देखें)। प्राकृतिक वरण लक्षणों की माध्य या औसत मानों वाली जीवसंख्याओं पर प्रसामान्यीकारक या **स्थायीकारक** (stabilizing) वरण प्रभाव डालता है। इस तरह अपने लक्षणों के लिए मध्यवर्ती या औसत मानों वाले जीवों के जीवित रहने के बेहतर अवसर प्राप्त होते हैं। उदाहरण के लिए जो बच्चे औसत से बहुत कम या बहुत ज्यादा वजन लिए पैदा होते हैं, उनमें मृत्युदर अधिक पाई जाती है। जबकि मध्यवर्ती वजन वाले बच्चों को उत्तरजीविता के लिए कम परेशानी उठानी पड़ती है। प्रसामान्यीकारक वरण की अवधारणा को समझने के लिए हम नीचे दो उदाहरण दे रहे हैं। एक प्रकृति से लिया गया है। दूसरा डॉबज़ांस्की और स्पास्की के प्रयोगों से है।

i) बम्पस के अवलोकन

एच सी बम्पस (1899) नाम के एक अमरीकी वैज्ञानिक ने एक बड़ा रोचक अवलोकन किया था, जो हमें प्रसामान्यीकारक वरण को बड़े अच्छे ढंग से समझाता है। बम्पस ने ब्रूड्सहोल नामक जगह से कोई 136 जख्मी गौरैयों को इक्ट्ठा किया। ये पक्षी भयंकर तूफानी हिमवर्षा में घायल हो गए थे। इन पक्षियों में से 64 मर गए। इससे इनके दो वर्ग बन गए — एक वर्ग तूफान से मरी गौरैयों का और दूसरा उन गौरैयों का जो जीवित बचे रह गए थे। अब बम्पस ने उनके कुछ गुणों जैसे पंखों की लंबाई-चौड़ाई, टार्सस (tarsus) की लंबाई, आदि को मापा। इस पर उसने पाया कि जो पक्षी बर्फीले तूफान से मर गए थे उनकी माप घंटी के आकार के वक्र के छोरों पर पहुंच रही थी। इसका यह मतलब निकला कि ऐसे पक्षी जो मध्य मान (median) पर या माध्य मान के करीब थे वही बचे रहे, शेष पक्षी तूफान का मुकाबला नहीं कर सके। प्रसामान्यीकारक वरण अक्सर ऐसे जीवों को किसी प्राकृतिक आपदा या तनावपूर्ण स्थिति में विलुप्त कर डालता है, जिनके लक्षण माध्य मान से कतई मेल नहीं खाते। बम्पस के निष्कर्षों की व्याख्या कर यह कहा जा सकता है कि जिन पक्षियों को अंधड ने आसानी से गिरा दिया था, उनके पंख या तो शरीर के वज़न के हिसाब से काफ़ी लंबे थे जिससे उनका पृष्ठीय क्षेत्रफल सामान्य जरूरत से अधिक था। या फिर उनके पंख शरीर के आकार से काफ़ी छोटे थे जिससे वे तेज अंधड़ में नहीं उड़ सकते थे। इस प्राकृतिक आपदा से पहले इन पक्षियों के गुणों के परिमापों का परास (range) इससे बचे पक्षियों के गुणों के परास परिमापों से बड़ा था। हरेक आपदा जीवसंख्या की विविधता को कम कर सकती है जिससे अनुकूलतम स्तर से कम अनुकूलन वाले जीनप्ररूप विलुप्त हो जाते हैं।

ii) डॉबज़ांस्की और स्पास्की के प्रयोग

थियोडोसियस डॉबज़ांस्की और बोरिस स्पास्की ने अपने प्रयोगों से यह दिखाया कि प्रसामान्यीकारक वरण किस तरह से ड्रोसोफ़िला सूडोओब्सक्यूरा की दो जीवसंख्याओं के व्यवहार या आचरणात्मक लक्षण (behavioural trait) पर काम करता है। ड्रोसोफ़िला की दो जीवसंख्याओं में कृत्रिम वरण कराया गया था। इसमें से एक समुदाय को धनात्मक प्रकाशानुचलित आचरण (positive phototactic behaviour) और दूसरी को ऋणात्मक प्रकाशानुचलित आचरण (negative

phototactic behaviour) के तहत रखा गया। कृत्रिम वरण प्रक्रिया के लिए एक कनस्तर में इन मक्खियों को ऐसी जगह रखा गया, जहां से वे उजाले या अंधेरे की ओर जा सकती थीं। प्रकाशधनात्मक यानि उजाले की ओर जाने वाली मक्खियों को जमा कर उनमें प्रजनन कराया गया। यही प्रकाशऋणात्मक आचरण करने वाली यानि अंधेरे की ओर जाने वाली मक्खियों के साथ दोहराया गया। प्रजनन प्रयोगों को कई पीढ़ियों तक दोहराया गया और हरेक पीढ़ी में कृत्रिम वरण जारी रखा गया। इस तरह कृत्रिम वरण की कई पीढ़ियों बाद दो एकदम अलग जीवसंख्याएं प्राप्त हुईं। इनमें से एक जीव संख्या उत्तरोत्तर प्रकाशधनात्मक थी, तो दूसरी उत्तरोत्तर प्रकाशऋणात्मक। इससे महत्वपूर्ण बात यह देखने में आई कि कृत्रिम वरण खत्म होते ही प्राकृतिक वरण ऐसी मक्खियों के अनुकूल रहा, जिनके व्यवहार या आचरण पर प्रकाश का कोई प्रभाव नहीं था। यानि वे प्रकाश के प्रति उदासीन थी। इस प्रकार दोनों जीवसंख्याएं प्रकाशानुचलन व्यवहार के मध्यवर्ती मान में वापस पहुंच गईं। इसे चित्र 11.4 में दिखाया गया है।

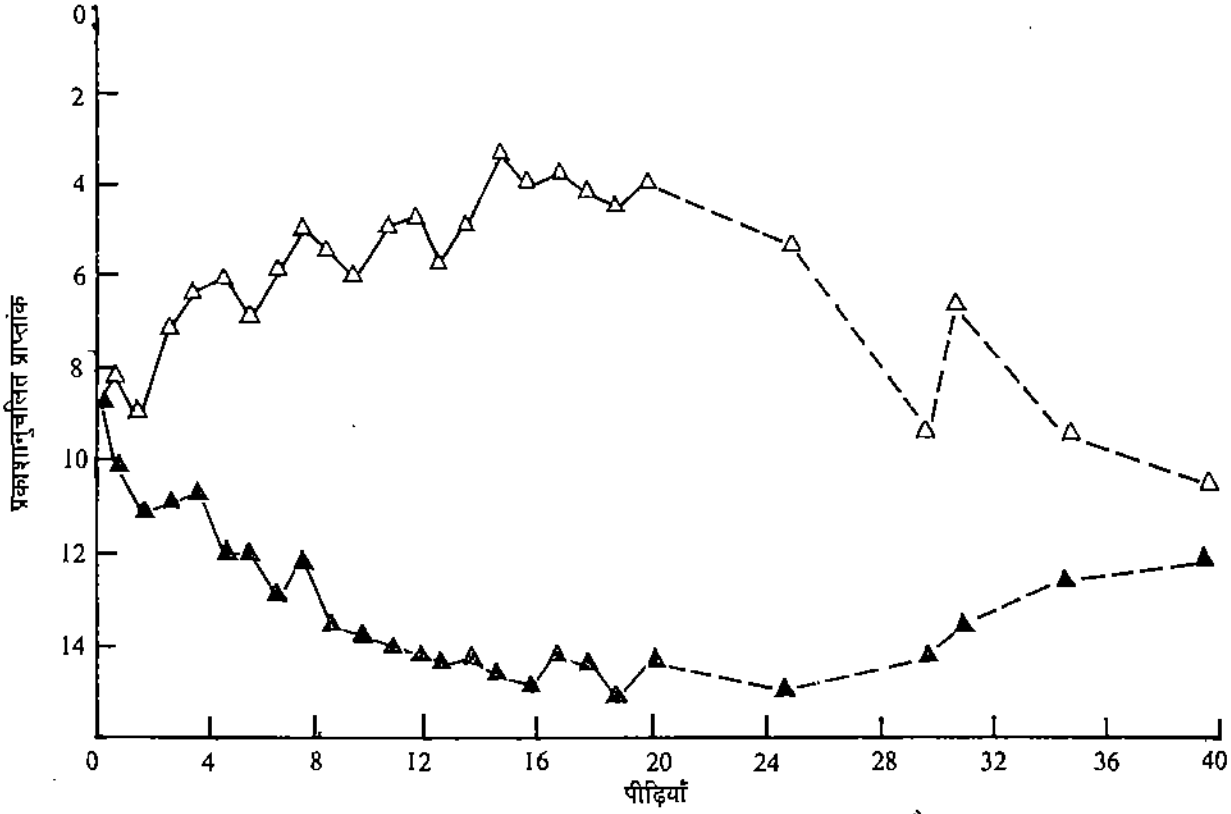

चित्र 11.4 : ड्रोसोफ़िला सूडोओबस्क्योर की प्रयोगशाला जीवसंख्या में धनात्मक और ऋणात्मक प्रकाशानुचलन के लिए कृत्रिम वरण, जिसके बाद सामान्यीकारक वरण होता है। माध्य प्रकाशनुचक्र अंक। कृत्रिम वरण ऋणात्मक (घने त्रिभुज) और धनात्मक (हल्के त्रिभुज) प्रकानुचलनों के लिए 20 पीढ़ी तक सफल होता है। 20 पीढ़ी के बाद जब कृत्रिम वरण रुक जाता है, तो उसके बाद प्राकृतिक वरण फिर से माध्य मान के अनुकूल हो जाता है।

इन दो उदाहरणों से पता चल जाता है कि वरण सामान्तया ऐसे लक्षणप्ररूपों के अनुकूल होता है जो लक्षणों के वितरण मान के बीच में आते हैं। साथ ही वरण विविधता को माध्य मान के आसपास कम तो करता है मगर यह माध्य मान को नहीं बदलता।

11.5.2 बदलते वातावरण में प्राकृतिक वरण की क्रिया

दिशात्मक (directional) या प्रगामी (Progressive) वरण वातावरणीय बदलावों के साथ-साथ होने वाले वरण का रूप है। हमने पहले बताया है कि न बदलने वाले वातावरण में स्थायीकारक चयन या प्रसामान्यीकारक वरण हर पीढ़ी में मौजूद असामान्य लक्षणों या लक्षण के चरम परिमापों को विलुप्त कर डालता है। मगर एक बदले हुए वातावरण में लक्षणों के अनुकूलतम मान के लिए माध्य मान वहीं नहीं रह पाता। इन स्थितियों में वरण सामान्य वक्र के दोनों सिरों से जीवों को असमान रूप से नष्ट कर देता है (देखें चित्र 11.5 ख)। यह प्रक्रिया लक्षण के माध्य को एक नये मगर अनुकूल मान की ओर ले जाती है (चित्र 11.5 ग)। आप इससे यह समझ सकते हैं कि दिशात्मक वरण स्थायीकारक वरण का एक बदला रूप है क्योंकि यह वितरण वक्र के दोनों सिरों पर समान रूप से काम नहीं करता।

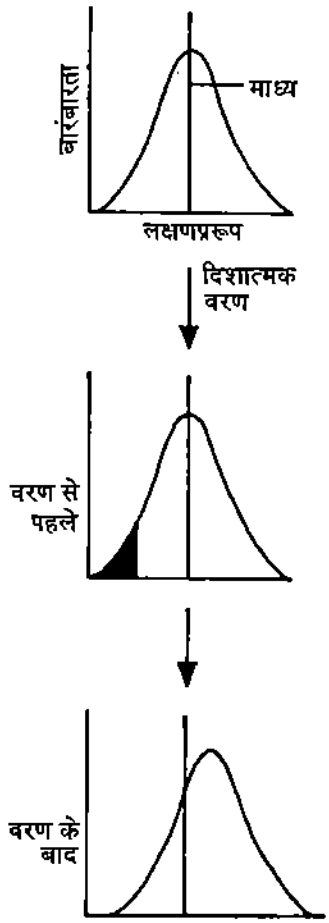

चित्र 11.5 : दिशात्मक वरण। क) वरण से पहले जीव समूह का वितरण। ख) वातावरण बदलने के कारण वरण वक्र के दो सिरों से जीवों को असमान रूप से विलुप्त कर देता है। आच्छादित हिस्से उन जीवों की ओर इशारा करते हैं, जिन पर वरण क्रिया करता है। ग) लक्षण का माध्य मान बदलकर नया अनुकूल माध्य मान बन जाता है।

दिशात्मक वरण किस तरह से काम करता है। इसका एक अच्छा उदाहरण है कीटों के समुदायों में कीटनाशकों के लिए प्रतिरोधकता विकसित करने की योग्यता। मनुष्य कई जीवों के पर्यावरण को बदलने के लिए सबसे अधिक जिम्मेदार रहा है। अपने वातावरण में होने वाले बदलावों में खुद को ढालने के लिए जीव दिशात्मक वरण के जरिए बड़ी तेजी से प्रतिक्रिया करते हैं। 1947 में मक्खियों में डी डी टी के लिए प्रतिरोधकता पैदा होने का पहला समाचार मिला था। तब से पिछले चार दशकों में तरह-तरह के कीटनाशकों के लिए कीटों के प्रतिरोधी बनने के ज्यादा से ज्यादा समाचार मिलते रहे हैं। इन सभी मामलों की एक ही कहानी है। शुरू-शुरू में कीड़ों को काबू में किए जाने के लिए एक नये कीटनाशक की थोड़ी मात्रा काफी होती है। धीरे-धीरे कीटनाशक की यह मात्रा बढ़ती जाती है। साथ ही कीड़ों में कीटनाशकों की अधिक मात्रा को सहने की क्षमता भी बढ़ने लगती है। आखिर में कीटनाशक बिल्कुल बेअसर हो जाता है या फिर उसका इस्तेमाल आर्थिक दृष्टि से अव्यावहारिक हो जाता है।

हर पीढ़ी में दिशात्मक वरण कीटसमुदायों से उन कीड़ों को विलुप्त कर डालता है, जिनमें कीटनाशकों को सहने की क्षमता कमतर होती है। इसको दूसरे शब्दों में कहें तो इसका सीधा मतलब यह हुआ कि हर पीढ़ी में ऐसे कीड़ों का अधिक से अधिक तादाद में वरण होता है जिनमें ज्यादा से ज्यादा कीटनाशक प्रतिरोधकता होती है। कीटों में कीटनाशक प्रतिरोधकता दिशात्मक वरण की प्रभावक्षमता को दर्शाती है। इसका कारण यह है कि कीटनाशक संश्लेषित पदार्थ होते हैं तथा प्राकृतिक वातावरणों में कीड़ों का इन कीटनाशकों से आमना-सामना नहीं हुआ था।

बदलते वातावरण में दिशात्मक या प्रगामी वरण का एक और रोचक उदाहरण औद्योगिक अतिकृष्णता (industrial melanism) है ! यानि बदले हुए पर्यावरण में परभक्षण से बचने के लिए विकसित मिलैनिनीय (melanic) पतंगों की जाति। पतंगों में यह जाति कैसे विकसित हुई, इसके बारे में हम आपको खंड 4 की इकाई 12 में विस्तार से बतायेंगे।

11.5.3 विषमांगी वातावरण में प्राकृतिक वरण की क्रिया

प्रसामान्यीकारक वरण के बारे में बताते हुए हमने कहा था कि एकरूप वातावरणों में वरण जीवसंख्याओं की विविधता को सीमित कर देता है और एक आनुवंशिक समस्थैतिकी या समस्थापन का विकास करता है। विषमांगी वातावरणों में जो वरण प्रक्रिया चलती है, उसे विविधरूपायित या विविधरूपकारी वरण (diversifying selection) कहा जाता है।

विविधरूपकारी वरण प्रसामान्यीकारक वरण का उल्टा है। मान लें कि किसी खास वातावरण में रहने वाली किसी जीवसंख्या में दो या अधिक जीनप्ररूप (AA, Aa और aa) समूह हैं। ये समूह दो या अधिक उप-वातावरण या आवासों में रहते हैं। यह मानें कि दो या अधिक जीनप्ररूपों में एक ऐसा दुर्लभ जीनप्ररूप (aa) है, जो अपने आवास में अच्छी तरह अनुकूलित है और जिसे वरण बढ़ावा देता है। इस जीनप्ररूप की बारंबारता तब तक बढ़ेगी जब तक वह आवास पूरी तरह से न भर जाए। पर जब वह आवास संतृप्तावस्था में पहुंच जाता है, तो उसके बाद इस जीनप्ररूप की बारंबारता देखने में नहीं आएगी। ऐसी स्थिति में यह भी हो सकता है कि इस जीनप्ररूप के समूह दूसरे उप-वातावरण की ओर फैलने लगें और यह नया आवास इस जीनप्ररूप के अनुकूल नहीं बैठ पाए। ऐसे में यहाँ पर विविधरूपकारी वरण अपनी भूमिका निभाता है और अलग-अलग जीनप्ररूपों वाली जीवसंख्या को ऐसे वातावरण में स्थापित करता है। जब किसी जीवसंख्या में एक लक्षण के लिए दो या दो से अधिक जीनप्ररूप होते हैं, तो इस दशा को आनुवंशिक बहुरूपता (genetic polymorphism) कहा जाता है। चित्र 11.6 को देखने से पता लग जाता है कि किस तरह भिन्न-भिन्न उप-वातावरणों में अलग-अलग जीनप्ररूप रहने लगते हैं। जीनप्ररूपों द्वारा वातावरण का यह अधिग्रहण अधिक से अधिक परिपूर्ण और सफल होता है।

वैज्ञानिक ए.डी. ब्रैडशॉ और डी. जोनेल ने इस बात के सबूत दिए हैं कि शारीरिक रूप से एक दूसरे के करीब रहते हुए भी जीवसंख्याएं आनुवांशिक रूप से अलग-अलग हो सकती हैं। इसके प्रमाण उन्होंने भारी धातुओं से दूषित जमीन में उगने वाली शर-घास (bent grass) पर किए गए अपने अध्ययन से जुटाए थे। सीसे और तांबे जैसे भारी धातु प्रदूषक खदानों से निकली मिट्टी के ढेरों में मिलते हैं। ये धातुएं शर-घास सहित अधिकांश पौधों के लिए जहरीली होती हैं। मगर इसके बावजूद भी शर-घास ऐसे ढेरों के ऊपर खूब उगती है। इसका कारण यह है कि ऐसे पौधों में ऐसे जीन होते

हैं, जो इन्हें सीसा और ताँबे जैसे घातक धातुओं की अधिक मात्रा को सहने की क्षमता देते हैं। इन प्रतिरोधी शर-घास पौधों के आसपास कुछ ही दूरी पर दूषणमुक्त जमीन में शर-घास की ऐसी किस्में देखने में आ जाती हैं, जिनमें यह प्रतिरोधकता बिल्कुल नहीं होती। विविधरूपकारी वरण ऐसे प्रभाव पैदा करने में कितना अधिक सक्षम है, यह इस उदाहरण से साफ हो जाता है। यद्यपि प्रतिरोधी और अप्रतिरोधी किस्मों में पर-निषेचन (cross fertilization) हो सकता है तो भी इन दोनों समूहों में आनुवंशिक विभेदन कायम रहता है। इसका कारण यह है कि अप्रतिरोधी किस्में भारी धातु द्वारा दूषित भूमि में नहीं उग पातीं। दूसरी ओर दूषणमुक्त जमीन में प्रतिरोधी किस्में अप्रतिरोधी किस्मों की अपेक्षा बहुत कम उग पाती हैं। कुछ खानें या खंदानें 400 साल से भी कम पुरानी हैं। इससे यह पता चल जाता है कि विविधरूपकारी वरण ने किस तरह से छोटे से समय में प्रतिरोधी जीनप्ररूपों को पैदा कर दिखाया है।

बोध प्रश्न 3

निम्न का परस्पर मिलान करें।

क) वरण गुणांक	i) एक जीनप्ररूप की दूसरे जीनप्ररूप के सापेक्ष प्रजनन क्षमता का परिमाप है।
ख) विविधरूपकारी वरण	ii) आनुवंशिक समस्थैतिकी को बनाए रखता है।
ग) प्रगामी वरण	iii) वरण दाब का परिमाप है।
घ) अनुकूलन मान	iv) विषमांगी वातावरण में कार्य करने वाला वरण।
च) प्रसामान्यीकारक वरण	v) वह वरण है जो सामान्य वक्र के दोनों सिरों के जीवों को असमान रूप से विलुप्त करता है।

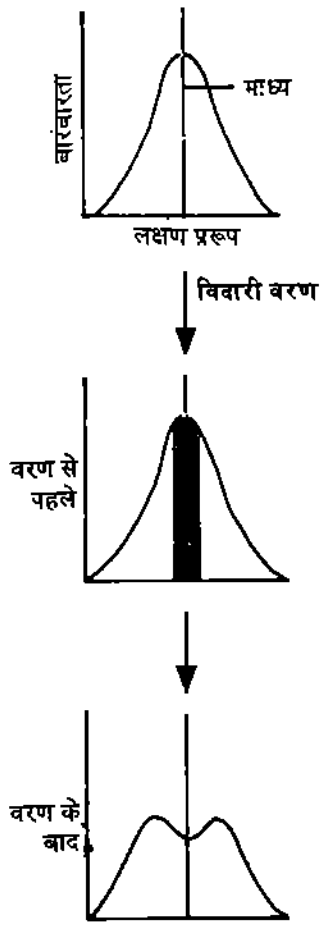

चित्र 11.6 : विदारी या विविधरूपकारी वरण। क) वरण से पहले जीवसंख्या वितरण। ख) वरण मध्यवर्ती लक्षणप्ररूपों के खिलाफ क्रिया करता है और दोनों छोरों पर जीवों के अनुकूल होता है। आच्छादित भाग मध्यवर्ती लक्षणों वाले जीवों पर हो रही वरण की क्रिया को दिखाते हैं। ग) दो अलग अलग जीवसमूह एक दूसरे के पास पैदा होते हैं तथा हरेक का अलग माध्य मान होता है।

11.6 सारांश

- डार्विन द्वारा प्रतिपादित प्राकृतिक वरण का सिद्धांत कुछ खास तथ्यों और निष्कर्षों पर आधारित है। असल में जीवों में प्रजनन करने की भारी क्षमता होती है। मगर उनमें से सिर्फ एक छोटी जीव संख्या ही जीवित बची रहती है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि वातावरण से अपनी विभिन्न जरूरतों को पूरा करने के लिए एक जाति के जीवों में परस्पर स्पर्धा होती है। प्रकृति में पैतृक या आनुवंशिक लक्षणों में विविधता सार्वभौमिक होती है। यह तथ्य इस बात की ओर इशारा करता है कि ऐसी स्पर्धा में इस तरह की आनुवंशिक विविधताएं हैं जो एक वातावरण विशेष में किसी जीव के लिए उपयोगी होती हैं, अनुकूलन बन जाती हैं। ये अनुकूलन इन जीवों की प्रजनन क्षमता को बढ़ाते हैं। इस प्रकार प्राकृतिक वरण की डार्विनवादी अवधारणा जाति के विभेदी प्रजनन से जुड़ी है।

- जीवों में पायी जाने वाली विविधता का सबसे बड़ा कारण उत्परिवर्तन और आनुवंशिक पुनर्योग यानि पुनर्योजन हैं। जीव तंत्रों में गुणसूत्रीय और जीन दोनों तरह के उत्परिवर्तन होते हैं। गुणसूत्रीय उत्परिवर्तन में गुणसूत्रों की संख्या और उनकी बनावट में बदलाव आते हैं। जीन उत्परिवर्तन नाइट्रोजनी बेसों के प्रतिस्थापन या जोड़ या लोप के जरिए जीन की बनावट और इस प्रकार उसके प्रकार्य में बदलाव लाते है। इन्हें बिंदु उत्परिवर्तन भी पुकारा जाता है। यूकैरियॉटिक जीनों के लिए उत्परिवर्तन दर 10^{-4} से लेकर 10^{-6} प्रति विस्थल तक होती है। प्रोकैरियॉटिक जीनों में यह दर 10^{-7} से 10^{-10} तक है। लैंगिक पुनर्योजन से गुणसूत्रों की अदला-बदली सुनिश्चित होती है ताकि युग्मजों का जीनोम माता-पिता से काफी भिन्न होता है।

- परिमाणात्मक रूप में जीनप्ररूपों की प्रजनन क्षमता को योग्यता मान के रूप में मापते हैं। इसे डार्विनी योग्यता और अनुकूलन मान के नाम से भी पुकारा जाता है। योग्यता किसी जीव संख्या

म मौजूद वैकल्पिक जीन प्ररूपों के सापेक्ष किसी एक जीनप्ररूप की प्रजनन क्षमता का सूचकांक है। योग्यता का उल्टा वरण गुणांक होता है। वरण गुणांक जीनप्ररूप पर पड़ने वाले वरण दबाव की परिमाप है। योग्यता मान (W) और वरण गुणांक (S), समीकरण $W = (1-S)$ के द्वारा परस्पर संबंधित होते हैं।

- वरण, जीनप्ररूपों पर जिस वातावरण में वे रह रहे होते हैं, उसके अनुसार प्रभाव डालता है। अगर वातावरण संभागी और एकरूप हो तो प्रसामान्यीकारक या स्थायीकारक वरण काम करता है। यह वरण चरम परिमापी वाले लक्षणप्ररूपों को विलुप्त कर देता है क्योंकि ऐसे लक्षणों पर भारी वरण दबाव पड़ता है। ऐसी स्थिति में जीन समुदाय में विविधता कम हो जाती है पर किसी भी लक्षण का माध्य मान पहले जैसा रहता है। मगर बदलते वातावरण में लक्षण का माध्य मान बदल जाता है क्योंकि वरण सामान्य वितरण के दोनों छोरों पर प्रभाव डालता है। कीड़ों में कीटनाशक प्रतिरोधकता का विकास इस तरह के वरण का उदाहरण है। इसे दिशात्मक या प्रगामी वरण कहा जाता है। अंत में विषमांगी वातावरण में फैली जीवसंख्या पर कार्य करने वाले वरण को विविधरूपकारी या विदारी वरण (disruptive selection) कहते हैं। विषमांगी वातावरण में हरेक जीनप्ररूप को एक उप-वातावरण को घेरना पड़ता है। इसके कारण से सामान्य वितरण वक्र द्विबहुलक बन जाता है जिसमें हरेक जीनप्ररूप का संबंधित लक्षणों के लिए एक अलग माध्य मान होता है।

11.7 अंत में कुछ प्रश्न

1) आप इस कथन को कैसे सही साबित करेंगे कि प्राकृतिक वरण विभेदी प्रजनन का पर्याय है?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2) जीवसंख्याओं में अगर आनुवंशिक विविधता न हो, तो क्या कोई विकासीय प्रक्रिया चलती?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

3) योग्यता मान का क्या मतलब है? मान लें कि किसी जीन प्ररूप का वरण गुणांक 0.35 हो तो उसका योग्यता मान कितना होगा?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

4) अफ्रीका आबादी में वह कौन सा वरण क्रियाशील है, जो विषमयुग्मजी जीनप्ररूप HbA/HbS को उसमें उच्च बारंबारता में बनाए रखता है? (यहां HbA सामान्य हीमोग्लोबिन का ऐलील और HbS दात्र कोशिका हीमोग्लोबिन का ऐलील है।)

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

5) समपादी क्रस्टेशियन *एसेलस एक्वेलिक्स* की जीवसंख्या में किसी जीन विस्थल के ऐसे दो रूपभेद पाए गए जिनमें स्टार्च को तोड़ने वाले एमाइलेज़ एंज़ाइम के लिए कोड थे। A_1 रूपभेद में बीचपेड़ (beech tree) की पत्तियों के स्टार्च पर क्रिया करने की अधिकतम क्षमता पाई गई। दूसरे रूपभेद A_2 में विलोवृक्ष (Willow tree) के पत्तों पर अधिकतम सक्रियता देखी गई। जिस कुंड में समपाद रहते हैं उसके एक ओर बीचपेड़ और दूसरे किनारे पर विलोवृक्ष है। बीचपेड़ों के किनारे से जमा किए समपादी क्रस्टेशियनों में बीच को पचाने वाले एंज़ाइम की मौजूदगी अधिक पाई गई। उधर विलोवृक्ष को पचाने वाले एंज़ाइम की मौजूदगी विलोवृक्ष वाले किनारे से उठाए गए समपादी में अधिक मिली। आप इस स्थिति को कैसे समझायेंगे?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

11.8 उत्तर

बोध प्रश्न

1) i) गलत (सिर्फ चार्ल्स डार्विन पुस्तक के लेखक थे)
   ii) सही
   iii) गलत (वे प्रकृति में सार्वभौमिक होते हैं)
   iv) गलत (पूरी जानकारी के लिए 3.2.2 भाग को पढ़ें)
   v) सही
   vi) सही।

2) i) विविधता
   ii) उत्परिवर्तन और आनुवंशिक पुनर्योजन
   iii) व्युत्क्रमण और स्थानांतरण
   iv) बहुगुणिता
   v) फ्रेमशिफ्ट उत्परिवर्तन
   vi) वैलीन, ग्लूटैमिक अम्ल
   vii) दात्र कोशिका लक्षण।

3) क) iii, ख) iv, ग) v, घ) i, च) ii

अंत में कुछ प्रश्न

1) डार्विन द्वारा प्रतिपादित प्राकृतिक वरण कहता है कि बदलते वातावरण के लिए अनुकूलन के रूप में पैदा हुई आनुवंशिक विविधताएं जीवों की उत्तरजीविता के लिए पहली शर्त है। अंत में जो जीव जीवित बने रहते हैं वे प्रजनन करते हैं। प्रजनन करने वालों में ऐसे जीव जो अपने पीछे सबसे ज्यादा तादाद में अपनी संतानें छोड़ कर जाते है, उन्हें योग्यतम माना जाता है। अतः प्राकृतिक वरण और विभेदी प्रजनन दोनों का मतलब एक है।

2) अगर जीवसंख्या में पैतृक या आनुवंशिक विविधता मौजूद न हो, तो ऐसी स्थिति में संयोग ही यह तय करेगा कि कौन जीव जीवित बना रहेगा और कौन नहीं। विविधता न होने पर जीवसंख्या में सभी जीव एकरूप होंगे। ऐसे में अगर वातावरण बदलकर ऐसे जीवों के लिए प्रतिकूल हो जाए, तो उनकी सारी आबादी खत्म हो सकती है। इसलिए विविधता के अभाव में किसी प्रकार का विकासीय परिवर्तन हो ही नहीं सकता।

3) योग्यता मान किसी जीनप्ररूप की अन्य जीनप्ररूप की तुलना में सापेक्ष प्रजनन क्षमता को परिभाषित करता है। अगर किसी जीनप्ररूप के वरण गुणांक S का मान 0.35 हो, तब उस जीनप्ररूप का योग्यता मान $W = 1 - 0.35 = 0.65$ होगा।

4) अफ्रीकी आबादियों में वरण HbA/Hbs विषमयुग्मजों को उच्च बारंबारता में मौजूद रखता है। इन दोनों विषमयुग्मजों को नीचे दिए गए कारणों से अनुकूल नहीं माना जाता। Hbs/Hbs जीनप्ररूप दात्रकोशिका अरक्तता पैदा करता है और Hbs वाले समयुग्मजी व्यक्ति कम उम्र ही में मर जाते हैं। क्योंकि यह रोग लाल रक्त कोशिकाओं को अपघटित करके उन्हें नष्ट कर डालता है। HbA/HbA समयुग्मज को फ़ैल्सिपैरम मलेरिया रोग लगने का डर रहता है। Hbs ऐलील वाले विषमयुग्मजों में कोशिका दंराती के आकार की हो जाती है।

5) यह उदाहरण विविधरूपकारी वरण को समझाता है। कुछ में दो तरह के समपादी समूह हैं जो एमाइलेज़ एंज़ाइम के कारण एक दूसरे से भिन्न होते हैं। ये समपादी जीव विषमांगी वातावरण में रहने के लिए आए हैं। एक समूह बीचपेड़ों की और दूसरे विलोवृक्षों की ओर जमा हो जाते हैं। प्राकृतिक वरण ने इन दो जीनप्ररूपों को एक दूसरे से अलग कर दिया है मगर उन्हें उसी पास के वातावरणों में रखा है। ये दो जीनप्ररूप इसलिए हैं क्योंकि दोनों समूहों की एमाइलेज़ सक्रियता की प्रकृति एक दूसरे से बिल्कुल अलग है।

शब्दावली

ऐक्रिडीन : ऐरोमैटिक रंजकों (aromatic dyes) का समूह जिसके आयाम बिल्कुल नाइट्रोजन क्षार समूह की तरह होते हैं। ये डी एन ए द्विसूत्रों के प्यूरिनों और पिरिमिडीनों के बीच अड़ जाते हैं और इस तरह डी एन ए की कुंडलिनी (हैलिक्स) में विकार लाते हैं। इससे उनमें जुड़ाव या लोप होता है। ऐक्रिडीन ऑरेन्ज एक जाना-माना उत्परिवर्ती अभिकर्मक है।

अनुकूली विकिरण : सफल जातियों का सभी तरह के पारिस्थितिकीय निकेतों में अनुकूलित होकर फैलना।

जीवभूगोल : धरती पर जीव जन्तुओं के वितरण और उसको चलाने वाले सिद्धांतों का अध्ययन।

वहन क्षमता : सीमाकारी संसाधनों में कायम रखा जा सकने वाला जीवसंख्या घनत्व।

उपास्थिअविकसन : कंकाल तंत्र में विकार पैदा करने वाला एक आनुवंशिक रोग।

स्थानिक : स्थानिक ऐसे जीव कहलाते हैं, जिनका वितरण बहुत थोड़े स्थान पर सीमित रहता है।

युग : भूवैज्ञानिक काल की एक इकाई। यह कल्पों का एक मुख्य उपभाग है।

जीवाश्म : प्राचीन काल के जीवों के अश्मीभूत अवशेष।

जीन पूल : किसी आबादी के प्रजननशील सदस्यों में पाए जाने वाले सभी जीनों का योग।

भूविज्ञान : भू (पृथ्वी) के विज्ञान का अध्ययन।

हंटिंग्टन कोरिया : मस्तिष्क को प्रभावित करने वाला एक विरल वंशानुगत रोग। इसके फलस्वरूप चाल में विकार आ जाता है। चाल में नृत्य के जैसे कंपन्न पैदा होते हैं। बौद्धिक ह्रास और मनोविकार इस रोग के अन्य लक्षण हैं।

समस्थानिक : समान परमाणु संख्या मगर भिन्न परमाणु भार वाले तत्व।

एकलयुग्मजी जुड़वां : एक निषेचित अंडे से पैदा होने वाले जुड़वां। युग्मज के पहले विभाजन से कोशिकाएं बनती हैं। इनमें से हरेक कोशिका अलग भ्रूण में विकसित होती है। इन्हें समरूप जुड़वां भी कहा जाता है।

उत्परिवर्तन : जीन में होने वाला आनुवंशिक बदलाव।

जीवाश्मिकी : जीवाश्म अभिलेखन के जरिए प्राचीन काल के जीवन का अध्ययन।

पैन्जनिवाद (पैन्जेनेसिस) : डार्विन का आनुवंशिकता का एक सिद्धांत। इसके अनुसार शरीर में मौजूद सभी अंग पैन्जीन बनाते हैं। ये सूक्ष्म कर्ण रक्त संचार में बहा दिए जाते हैं और फिर इन्हें युग्मकों में इकट्ठा कर लिया जाता है।

पंचागुलि (पेन्टाडेक्टाइल) : हाथ-पैरों में मौजूद पांच अंगुलियों के लिए यह शब्द इस्तेमाल होता है। यह उच्चवर्गीय कशेरुकियों का विशेष गुण है।

धनात्मक प्रकाशानुचलन : प्रकाश मिलने पर प्रतिक्रिया करने अथवा सक्रिय होने की क्षमता। इसमें जीव प्रकाश की दिशा में चलने लगते हैं। यह ऋणात्मक प्रकाशानुचलन का ठीक उल्टा है, जिसमें जीव प्रकाश से दूर रहने और अंधेरे की ओर चलने लगते हैं।

पी टी सी स्वादक : ऐसे लक्षणप्ररूप जो *फेनिल थायो कार्बेमाइड* के घोल का कड़ुवा स्वाद पहचान सकते हैं। घोल का स्वाद लेने की इस क्षमता को एक प्रभावी जीन संचालित करता है। पी टी सी अ-स्वादकों में इस रसायन के लिए कोई स्वाद नहीं होता है।

रेडियोधर्मी कालनिर्धारण : रेडियोधर्मी तत्वों के क्षय की दर के आधार पर निक्षेपों और जीवाश्मों की उम्र का पता लगाना।

पुनर्योग : यह अर्धसूत्री विभाजन के समय होता है, जिसके कारण गुणसूत्रों और इस तरह जीनों में उलट-फेर होती है।

स्तरिकी : चट्टानों में मौजूद जीवन रूपों की सापेक्षिक आयु के संदर्भ में उनकी सतहों का अध्ययन।

टॉटोमरी विस्थापन : हाइड्रोजन परमाणु की स्थिति में हुए विस्थापन से अणु में आया स्थायी बदलाव। न्यूक्लीय अम्लों में न्यूक्लिओटाइडों के क्षारकों में, टॉटोमरी विस्थापन (tautomeric shift) होने से प्रतिकृति के दौरान दूसरे क्षारकों में बदलाव आ सकता है। ये जीवों में उत्परिवर्तन लाते हैं।

खुरदार : स्तनधारी जिनके पैरों में खुर होते हैं।

प्रतिस्थन : वितरण का एक स्वरूप। इसमें दूर-दराज के इलाकों में संबंधित आबादियां एक-दूसरे की जगह लेती हैं।

कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. *जैव विकास* : आर.एस. लाल, बिहार साहित्य अकादमी
2. *आण्विक जीव-विज्ञान, कोशिकानुवंशिकी एवं जीव-विकास* : सं० कैलाश चंद्र मिश्र आदि, उत्तर प्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी
3. *जाति वर्गों का विकास* : सर चार्ल्स डार्विन, केंद्रीय हिंदी निदेशालय

अंग्रेज़ी माध्यम में कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. Dodson, E.O. (1985). *Evolution: Process and Product,* Wadsworth Publishing Company, California, USA.
2. Lull, R.S. (1984). *Organic Evolution* (Revised edition), Seema Publications, Delhi.
3. Moody, P.A. (1978). *Introduction to Evolution* (Third edition), Kalyani Publishers, Delhi.
4. Stebbins G.L. Jr. (1968). *Variation and Evolution in Plants,* Oxford and IBH Publishing Co., Calcutta.

प्रिय छात्र/छात्रा,

इस पाठ्यक्रम के बारे में आपकी राय जानने के लिए हमनें यह प्रश्नावली तैयार की है, जो इसी खंड के लिए है। आपके उत्तर हमें पाठ्यक्रम को सुधारने में मदद करेंगे।

कृपया इसे भरकर हमें शीघ्र भेज दें।

प्रश्नावली

एल.एस.ई.-07
खंड-3

नामांकन सं.

1) इकाइयों को पढ़ने में आपको कितने घंटे लगे?

इकाई सं.
कुल घंटे

2) इस खंड से संबंधित कार्य को करने के लिए आपको (लगभग) कितने घंटे लगे?

	टी.एम.ए.	सी.एम.ए.
सत्रीय कार्य सं.		
कुल घंटे		

3. हमारे विचार से आपके सामने 4 प्रकार की कठिनाइयाँ आई होंगी, उन्हें निम्नलिखित तालिका में दिया गया है। उपयुक्त कॉलमों में कृपया अपनी कठिनाई पर (√) का निशान लगाइए और सही पृष्ठ संख्या लिखिए।

पृष्ठ सं.	कठिनाइयों के प्रकार			
	प्रस्तुतीकरण स्पष्ट नहीं है	भाषा कठिन है	चित्र स्पष्ट नहीं है	शब्दावली समझाई नहीं गई है

4. हमारा विचार है कि बोध प्रश्नों और अंत में दिये गये प्रश्नों में आपको कुछ कठिनाई हुई होगी। निम्नलिखित तालिका में हमने संभावित कठिनाइयाँ दी हैं। उपयुक्त कालमों में संबंधित इकाइयाँ और प्रश्न संख्या देते हुए अपनी कठिनाइयों पर निशान लगाइए।

इकाई संख्या	बोध प्रश्न संख्या	अंत में दी गई प्रश्न संख्या	कठिनाई का प्रकार			
			प्रश्न स्पष्ट नहीं है	दी गई जानकारी के आधार पर उत्तर नहीं दिया जा सकता	इकाई के अंत में दिया गया उत्तर स्पष्ट नहीं है	दिया गया उत्तर पर्याप्त नहीं है

5. (क) क्या खंड के अंत में दी गई शब्दावली उपयोगी नहीं?
(ख) यदि नहीं, तो निम्न स्थान में कठिन शब्द लिखें।

6. अन्य सुझाव

सेवा में,

पाठ्यक्रम समन्वयिका (एल.एस.ई.-07 वर्गिकी तथा विकास पाठ्यक्रम)
विज्ञान विद्यापीठ
इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय
मैदान गढ़ी
नई दिल्ली-110 068

उत्तर प्रदेश
राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय

खंड

4

विकास-II

इकाई 12
प्राकृतिक वरण व्यवहार में 5

इकाई 13
जाति उद्भवन 26

इकाई 14
मानव का विकास-I 47

इकाई 15
मानव का विकास-II 66

खंड 4 विकास-II

जैव विकासीय परिघटना के बुनियादी सिद्धांतों के बारे में आपने **वर्गिकी और विकास** के खंड 3 में पढ़ा था। उसमें हमने विकासीय विचारधारा का खाका खींचा था, विकास की घटना के पक्ष में प्रमाण दिए थे और जीवों में विकासीय बदलाव लाने वाले एक प्रक्रम के रूप में प्राकृतिक वरण के बारे में चर्चा भी की थी।

इस खंड में आप एक ही जाति के सदस्यों के साथ-साथ असंबद्ध जीवों में अनुकूलनों के विकास में प्राकृतिक वरण क्या भूमिका निभाता है, इस बारे में जानेंगे। आप यह पाएंगे कि समान पारिस्थितिक निकेतों में रहने वाली अलग-अलग जातियों के जीवों द्वारा अनुकूलनों के विकास से सहानुकूलित समुदायों का जन्म होता है। भिन्न पारिस्थितिक निकेतों में रहने वाली जातियों पर सक्रिय प्राकृतिक वरण ने अतिविशिष्ट सहवासों का विकास किया है, उदाहरणतया: सहजीविता, परजीविता और परभक्षण। आप जाति की उस व्याख्या को भी पढ़ेंगे, जिसे अरनेस्ट मायर ने दिया था और पृथक्करण की उन विभिन्न क्रियाविधियों के बारे में जानेंगे, जिनसे जातियों में विशिष्टता आती है।

इस खंड की आखिरी दो इकाइयों में मानव जाति की उत्पत्ति के बारे में विस्तार से बताया गया है, जिसे विकासीय प्रक्रिया का शिखर माना जाता है। इनमें से पहली इकाई सबसे आरंभिक प्राइमेट्स से शुरू होकर ***होमो सेपियन्स*** की उत्पत्ति के आखिरी पड़ाव, मानव तक के विकास में हुई क्रमिक घटनाओं के बारे में बताती है। मानव विकास की इन घटनाओं का क्रम जीवाश्म अभिलेखों पर आधारित है। दूसरी इकाई भाषा, संस्कृति और समाजों के विकास जैसे कुछ खास दार्शनिक मुद्दों के बारे में है। ऐसे पक्षों के विकास के ज्ञान का आधार पारिस्थितिक प्रमाण हैं क्योंकि ऐसी परिघटनाओं का जीवाश्मन हो पाना असंभव ही है। मौजूदा मानव विकास किस दिशा की ओर बढ़ रहा है और इसमें प्राकृतिक वरण की क्या भूमिका है, इस पर यहाँ संक्षेप में चर्चा की गई है।

उद्देश्य

इस खंड को पढ़ लेने के बाद आप :

- जाति के सदस्यों में अनुकूलनों, घनिष्ठ रूप से जुड़ी जातियों के सदस्यों में सहानुकूलित समुदायों और भिन्न पारिस्थितिक निकेतों में रहने वाली जातियों के बीच सहवासों के विकास में प्राकृतिक वरण की भूमिका के बारे में उदाहरण देकर बता सकेंगे,
- अरनेस्ट मेयर द्वारा दी गई जाति की व्याख्या को समझ लेंगे और जातियों के विकास में विभिन्न प्रकार की पृथक्कारी क्रियाविधियों की भूमिका के बारे में समझा सकेंगे,
- प्राइमेट पूर्वजों से लेकर ***होमो सेपियन्स*** के जीवाश्म इतिहास का खाका बना लेंगे और मानव विकास में भिन्न चरणों पर पाए गए विभिन्न जीवाश्मों के विभेदक लक्षणों को बता सकेंगे, और
- मानवों में भाषा और संस्कृति के विकास के बारे में चर्चा कर सकेंगे और मानव विकास जिस दिशा में आगे बढ़ रहा है उसका सार्थक अनुमान लगा सकेंगे।

इकाई 12 प्राकृतिक वरण व्यवहार में

इकाई की रूपरेखा

12.1 प्रस्तावना
उद्देश्य
12.2 औद्योगिक अतिकृष्णता
12.3 अंतराजातीय प्रतियोगिता
अंतःज्ञातीय प्रतियोगिता और अंतराजातीय प्रतियोगिता में भेद
सहानुकूलित समुदाय
गुण विस्थापन और परिस्थितिक अपवर्जन
12.4 परजीविता, परभक्षण और सहविकास
शिकार - परभक्षी सहविकास
पादप - शाकाहारी सहविकास
परपोषी - परजीवी सहविकास
12.5 लैंगिक वरण
12.6 सगोत्र और समूह वरण
सगोत्र वरण
समूह वरण
12.7 सारांश
12.8 अंत में कुछ प्रश्न
12.9 उत्तर

12.1 प्रस्तावना

खंड 3 की इकाई 11 में आपने पढ़ा कि प्राकृतिक वरण ही जीव-जंतुओं में अनुकूलनों का विकास करने वाली सबसे मूल क्रियाविधि है। साथ में दीर्घ कालीन विकासीय परिघटनाओं का मार्गदर्शन भी यही क्रियाविधि करती है। आपने यह भी जाना कि सफल प्राणी वे ही हैं, जो ऐसे युग्मकों (gametes) का योगदान करते हैं, जिनसे अगली पीढ़ी में जननक्षम उत्तरजीवियों की सबसे बड़ी जीवसंख्या पैदा होती है। किसी भी जीवसंख्या अथवा् जीवसमूह के जीव पहले पारिस्थितिकीय सफलता पाते हैं, जिसके बाद उनका लक्ष्य अगली पीढ़ी में अपनी हिस्सेदारी को बढ़ाना होता है। यह काम वे अपने युग्मकों की संख्या को बढ़ाकर करते हैं। इस प्रकार प्राकृतिक वरण का उद्देश्य सभी जीव-जंतुओं की प्रजनन क्षमता को ज्यादा से ज्यादा बढ़ाना होता है। इससे आगे आपको बताया गया था कि वातावरण से अपनी जरूरतों को पूरा करने के लिए एक ही जीवसंख्या के समजातीय जीव एक दूसरे से होड़ करते हैं। अब तक आप जान गए होंगे कि इस तरह की अंतराजातीय प्रतियोगिता निश्चित वातावरण में जीवों की विभिन्नताओं की परीक्षा लेती है (यहाँ हम आनुवंशिक रूप से नियंत्रित होने वाले गुणों की बात कर रहे हैं)। ऐसी विभिन्नताएं जो किसी निश्चित वातावरण में एक जीव के लिए उपयोगी हों, उन्हें हम अनुकूलन कह सकते हैं। ये अनुकूलन ही निश्चित वातावरण में जीव की उत्तरजीविता को संभव बनाते हैं और उसकी प्रजननात्मक सफलता में योगदान करते हैं। चूँकि कोई भी वातावरण स्थिर नहीं होता, इसलिए वातावरण में बदलाव होने पर ऐसे अनुकूलन अपनी सार्थकता खो सकते हैं। तब नये अनुकूलनों का उभरना जरूरी हो जाता है। इसीलिए प्राकृतिक वरण सतत चलने वाला प्रक्रम है।

आप जान ही चुके होंगे की वरण का उद्देश्य ऐसे अनुकूलनों का विकास करना होता है, जो किसी एक जाति में जीवों की प्रजनन क्षमता को ज्यादा से ज्यादा बढ़ाने में सहायक हो। इस इकाई में हम एक दूसरे से जुड़ी और एकदम अलग-अलग जातियों के जीवों में परस्पर अनुकूलनों के विकास में प्राकृतिक वरण की भूमिका के बारे में बताएंगे। इस तरह के अनुकूलन अंतराजातीय प्रतियोगिता के फल हैं। इस इकाई में हम आपको विभिन्न जातियों के जीवों के बीच होने वाली होड़ के बारे में भी विस्तार से जानकारी देंगे। उदाहरण की मदद से हम एकसमान वातावरण में रहने वाली प्रतिस्पर्धी अर्थात् प्रतियोगी जातियों के अनुकूलनों में पूर्णता लाने में प्राकृतिक वरण की भूमिका के बारे में भी आपको बताएंगे।

साथ में यह इकाई एक आहार-शृंखला के अलग-अलग स्तरों में रहने वाली विभिन्न जातियों के बीच विभिन्न प्रकार के संबंधों के विकास के बारे में भी जानकारी देगी। इनमें कुछ संबंध प्रतिद्वन्द्वात्मक होते हैं जैसे – शिकार-परभक्षी और परपोषी-परजीवी संबंध। वरण का उद्देश्य ऐसे प्रतिकूल संबंधों तक को शत्रु और पीड़ित दोनों ही जीवों के लिए लाभदायी बनाना होता है। इस इकाई में आपको लैंगिक वरण, सगोत्र वरण और समूह वरण जैसी धारणाओं व उनके निहित परिणामों के बारे में भी जानकारी मिलेगी।

उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- अंतःजातीय और अंतरजातीय-प्रतियोगिता के बीच अंतर बता सकेंगे,
- यह अच्छी तरह से जान जाएंगे कि प्राकृतिक वरण सहानुकूलित समुदायों के गठन को बढ़ावा देता है,
- निकेत विशिष्टीकरण को सुगम बनाने में प्राकृतिक वरण की भूमिका को समझ लेंगे और पारिस्थितिक अपवर्जन और गुण विस्थापन जैसी परिघटनाओं को समझा सकेंगे,
- शिकार-परभक्षी, पादप-शाकाहारी और परपोषी-परजीवी संबंधों के संदर्भ में सहविकास के बारे में बता सकेंगे,
- यह समझा सकेंगे कि सुस्पष्ट लैंगिक द्विरूपता एक ऐसी युक्ति है, जिसे प्राकृतिक वरण विपरीत लिंगों में एक दूसरे के प्रति आकर्षण को बढ़ाने के लिए प्रोत्साहन देता है, और
- यह जान जाएंगे कि जीवों और समूहों के परोपकारी आचरण की दूरगामी विकासीय सार्थकता है।

12.2 औद्योगिक अतिकृष्णता

प्राकृतिक वरण किस तरह से काम करता है, इकाई के इस भाग में हम इसके एक बेहतरीन उदाहरण की चर्चा करेंगे। पिछली इकाई में कहा गया था कि प्राकृतिक वरण का उद्देश्य हमेशा उन ऐलीलों का विलोप करना होता है, जो वातावरण के लिए कम अनुकूलित होते हैं। इसके ठीक विपरीत वरण अप्रत्यक्षतः उन ऐलीलों को बढ़ावा देता है, जो एक निश्चित वातावरण के अच्छी तरह अनुकूलित होते हैं। प्राकृतिक जीवसमूहों यानि जीवसंख्याओं में किसी ऐलील को प्रोत्साहन और फिर उसकी स्थापना और इस तरह विकसित होने वाले लक्षण-प्ररूप (phenotype) में सैकड़ों हजारों वर्ष लग जाते हैं। मगर असल में ऐसे उदाहरण भी हैं, जहां वरणात्मक शक्तियों ने ऐतिहासिक कालक्रम के भीतर ही जीवों के गुणों में परिवर्तन पैदा किए हैं।

"भारत में सीमेंट बनाने वाले कारखानों के आसपास काफी बड़े इलाके में पेड़-पौधों में इनसे निकलने वाले धुएं की पीली धूल बैठ जाती है। यहाँ आप औद्योगिक अतिकृष्णता का ठीक विपरीत देख सकते हैं, जिसमें फीके रंग के कीट-पतंगे ऐसा ही रहस्यमयी लाभ उठा रहे होते हैं। इसे औद्योगिक रंजकहीनता (Industrial albinism) का नाम दिया जा सकता है और एक विकासीय परिघटना के रूप में इसकी जांच-पड़ताल होनी चाहिए।"

जे.जी.बी. अब्राहम (1990) बायोलॉजी एजुकेशन (मैकमिलन इंडिया 7(4), 248-250

बिस्टन बेटुलेरिया (Biston betularia) जाति का पतंगा (peppered moth) दो रूपों में पाया जाता है। एक अतिकृष्ण (melanic) दूसरा अकृष्ण (non-melanic), जैसा कि चित्र 12.1 में दिखाया गया है। अतिकृष्ण रूप – रंग में काले और अकृष्ण चितकबरे-धूसर रंग के होते हैं। 19वीं सदी के शुरू तक अंतिकृष्ण पतंगे दुर्लभ थे। कीट-संग्राहक इन्हें अपना उत्कृष्ट संग्रह मानते थे। उधर हल्के रंग के अकृष्ण पतंगे प्राकृतिक जीवसंख्या में खूब पाए जाते थे। काले पतंगों के दुर्लभ होने का एक सबसे बड़ा कारण यह था कि ये परभक्षी (predator) पक्षियों के खूब शिकार बनते थे। हल्के रंग और लाइकेन की परतों से ढके पेड़ों पर बैठे काले पतंगे आसानी से पक्षियों का निशाना बनते थे। पर हल्के रंग वाले अकृष्ण पतंगे अपनी पृष्ठभूमि से घुलमिल जाते थे। इस प्रकार वे आसानी से परभक्षियों की नज़र में नहीं पड़ते थे (चित्र 12.1)। औद्योगिक क्रांति के शुरू होने पर अतिकृष्ण रूप के पतंगों को खासतौर से औद्योगिक केंद्रों में भारी बदलाव से गुजरना पड़ा। संग्रहालय के सौ वर्ष तक के कीट संग्रह की जांच करने से पता चला कि अतिकृष्ण रूप की संख्या तो बढ़ रही थी, मगर उधर अकृष्ण पतंगे दिन-ब-दिन दुर्लभ होते जा रहे थे। ऐसी होनी का क्या कारण हो सकता था? औद्योगिक प्रदेशों में कल-कारखानों से निकलने वाले गाढ़े धुएं ने पेड़-पौधों की छाल को काला कर डाला और उन पर उगने वाले लाइकेन की वृद्धि को ही कुंद कर दिया। इसका फल यह हुआ कि ऐसे पेड़ों पर बैठने वाले काले पतंगे परभक्षियों की नज़र से बचने लगे। मगर ऐसी पृष्ठभूमि में आए इस विरोधाभास के कारण हल्के रंग के पतंगे ज्यादा से ज्यादा परभक्षियों का शिकार बनने लगे। इस तरह औद्योगिक इलाकों में पक्षियों ने भारी संख्या में अकृष्ण पतंगों का शिकार किया। दूसरी ओर अन्य इलाकों में अतिकृष्ण पतंगों का खूब शिकार हुआ। अतिकृष्ण या काले पतंगों के अनुपात में यह वृद्धि औद्योगिक गतिविधि के कारण हुई थी, इसलिए हम अक्सर इस उदाहरण को **औद्योगिक-अतिकृष्णता** (industrial melanism) कहते हैं।

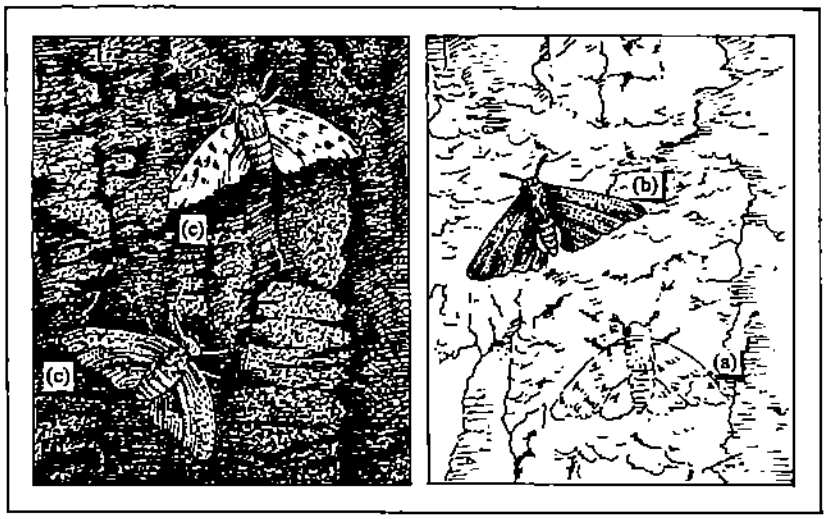

चित्र 12.1 : *बि. बेटुलेरिया* में देखने में आयी औद्योगिक अतिकृष्णता : (a) लाइकेन से ढके पेड़ों पर अकृष्ण पतंगे, (b) लाइकेन से ढके पेड़ों पर अतिकृष्ण पतंगे, (c) अतिकृष्ण और अकृष्ण पतंगे।

औद्योगिक अतिकृष्णता एक ऐसा उदाहरण है जिसमें वरण ने पतंगों में एक खास गुण को समर्थन दिया, जिसे हम रक्षीरंजन (protective colouring) कहेंगे। इंग्लैंड में इस परिघटना का अध्ययन करने वाले वैज्ञानिकों एच.बी.डी. कैटलवेल और ई.बी. फोर्ड ने स्पष्ट किया कि *बिस्टन बेटुलेरिया* की जीवसंख्या में मेलानिन (melanin) अर्थात् अतिकृष्णता का एक प्रभावी एकल जीन होता है (तालिका 12.1 में उनके प्रयोगों के परिणाम दिखाए गए हैं)। औद्योगीकरण से पहले इस पतंगे में उक्त जीन की बारंबारता 1 प्रतिशत से भी कम थी। मगर औद्योगिक क्रांति का आरंभ होने के बाद पचास से भी कम पीढ़ियों में यह बारंबारता बढ़कर 90 प्रतिशत से भी अधिक हो गई।

तालिका 12.1 : दो अलग-अलग स्थानों में हुए प्रयोगों के परिणाम। इन प्रयोगों में *बि-बेटुलेरिया* को पहले चिन्हित कर छोड़ा गया और फिर निश्चित अवधि के बाद उन्हें पकड़ा गया।

		अभिलक्षक रूप	कारबोनेरिया
स्वच्छ अप्रदूषित वुडलैंड	छोड़े गए	496	473
	पकड़े गए	62 (12.5%)	30 (6.3%)
कारखानों की कालिख से प्रदूषित वुडलैंड	छोड़े गए	437	417
	पकड़े गए	34 (16%)	154 (34%)

औद्योगिक अतिकृष्णता का *बिस्टन बेटुलेरिया* ही एक अकेला उदाहरण नहीं। इस परिघटना के बाद में पतंगों की कोई 100 जातियों में पता लगा। सबसे ज्यादा रोचक बात तो यह है कि प्रदूषण नियंत्रण उपायों को कड़ाई से लागू करने से कई औद्योगिक नगरों में पुराना वातावरण फिर से लौट आया है। यानी वहाँ पेड़ों के तने फ़िर से कारखानों की कालिख के जमाव से मुक्त दिखाई देने लगे हैं, जिन पर अब लाइकेन भी उगता है। ऐसी जगहों में प्राकृतिक वरण ने अतिकृष्ण पतंगों की जगह चितकबरे-घूसर रंगी रूपों का पक्ष लिया।

औद्योगिक अतिकृष्णता से एक और धारणा को समझने का मौका मिला है, जिसे दिशात्मक वरण (directional selection) के रूप में जाना जाता है। दिशात्मक वरण एक तरह का प्राकृतिक वरण ही है, जो तब काम करता है, जब जीवों को एक बदलते वातावरण के अनुकूल खुद को ढालना होता है। ऐसा इस कारण होता है कि बदले वातावरण में वरण जिन ऐलीलों को समर्थन देता है वे असल में पहले के वातावरण में पाए जाने वाले ऐलीलों से भिन्न होते हैं। औद्योगिक अतिकृष्णता सक्रिय दिशात्मक वरण का सबसे अच्छा उदाहरण है। बदले हुए वातावरण जैसे कालिख से प्रदूषित वातावरण में अतिकृष्णता यानी मेलानिन

"मेजर लियोनार्ड डार्विन ने ई.बी.फोर्ड को बताया कि एक बार उनके पिता (चार्ल्स डार्विन) ने आशा व्यक्त की थी कि प्राकृतिक वरण की क्रिया और फलस्वरूप होने वाले विकासीय परिवर्तन को मानव के जीवन काल में देखना संभव होगा। औद्योगिक कृष्णता में यहाँ पक्षी प्राकृतिक वरण के कर्मक हैं जो ऐसे पतंगों का नाश करते हैं जो वातावरण में नहीं ढले हैं। (लाइकेन से ढके छाल पर बैठे अतिकृष्ण पतंगे और कारखानों की कालिख से पुती छाल पर बैठे हल्के रंग के पतंगे)। विकास की एक व्याख्या जीन बारंबारता में क्रमबद्ध परिवर्तन है और यहाँ हम देखते हैं कि अतिकृष्णता का जीन धीरे-धीरे व क्रमबद्ध तरीके से 1% से बढ़कर 98% तक हो रहा है। डार्विन की भविष्यसूचक आशा कुछ दशकों में ही औद्योगिक अतिकृष्णता के प्रदर्शन से पूरी हो गई।"

जे.सी.बी. अब्राहम (1990) बायोलॉजी एजुकेशन (मैकमिलन इंडिया) 7 (248-250)

के जीन का वरण कर लिया जाता है। इससे पतंगे की जीवसंख्या का आनुवंशिक गठन बदल जाता है। दिशात्मक वरण एक दूसरे किस्म के वरण का उल्टा है, जिसे स्थायीकारी या प्रसामान्यीकारी वरण (stabilising or normalising selection) कहा जाता है। यह वरण ऐसे ऐलील का समर्थन करता है जो पहले से ही वातावरण के लिए अच्छी तरह से अनुकूलित होता है तथा यह ऐलील में आए किसी भी तरह के स्पष्ट बदलावों का विलोप कर देता है। (इसके लिए एल.एस.ई.-07 के खंड-3 की इकाई 11 देखें।)

बोध प्रश्न 1

खाली स्थानों को भरिए

क) प्राकृतिक वरण का उद्देश्य हमेशा उन ऐलीलों को ..... करना होता है, जो वातावरण के लिए अनुकूलित नहीं हैं।

ख) *बिस्टन बेटुलेरिया* के दो रूप पाए जाते हैं, एक ..... और दूसरा .....।

ग) .... के आरंभ होने के बाद अतिकृष्ण रूप तो संख्या में ..... और अकृष्ण रूप ..... होते जा रहे थे।

घ) औद्योगिक अतिकृष्णता ऐसा उदाहरण है जिसमें ..... ने एक ऐसे खास किस्म के गुण का समर्थन किया जिसे ..... कहते हैं।

च) .... प्राकृतिक वरण का ही एक रूप है जो तब काम करता है जब जीवजंतुओं को बदलते हुए वातावरण में खुद को अनुकूल बनाना होता है।

छ) .... एक ऐसे ऐलील का समर्थन करता है जो पहले से ही वातावरण के लिए अच्छी तरह से अनुकूलित होता है। यह काम वह इसमें हुए सुस्पष्ट परिवर्तनों को दूर करके करता है।

12.3 अंतराजातीय प्रतियोगिता

प्राकृतिक वरण की धारणा का विकास करते समय डार्विन ने एक जाति के जीवों में होने वाली होड़ पर विशेष जोर दिया था। यह **अंतःजातीय या आंतरजातीय प्रतियोगिता** (intraspecific competition) कहलाती है। इसमें जीव वातावरण से अपनी एक-सी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए एक दूसरे से होड़ करते हैं। प्रकृति में भिन्न जातियों के जीवों के बीच भी होड़ देखने में आती है। इसे **अंतराजातीय प्रतियोगिता** (interspecific competition) कहते हैं। इन दोनों प्रतियोगिताओं में क्या अंतर है, यहां हम इसकी चर्चा करेंगे। इसके बाद घनिष्ट रूप से जुड़ी जातियों के सहानुकूलित समुदायों (coadapted communities) के विकास में प्राकृतिक वरण की भूमिका के बारे में बताया जाएगा।

12.3.1 अंतःजातीय प्रतियोगिता और अंतराजातीय प्रतियोगिता में भेद

पिछले खंड में आपने निश्चित तथ्यों और निष्कर्षों के आधार पर विकसित हुए डार्विन के प्राकृतिक वरण के सिद्धांत के बारे में पढ़ा था। आपको ध्यान होगा कि प्राकृतिक वरण की धारणा की एक बुनियाद एक ही जाति के जीवों में होने वाली प्रतियोगिता है, यानी अंतःजातीय प्रतियोगिता। आपको यह भी याद होगा कि अंतःजातीय प्रतियोगिता में दो घटक काम करते हैं – (1) वातावरण से अपनी समान जरूरतों के लिए एक ही जाति के जीवों में होड़, जिसका नतीजा भौतिक प्रतियोगिता में होता है। इस प्रतियोगिता में प्रजनन-संगी (mate) के लिए होने वाली होड़ भी आती है। (2) भावी जीवसंख्याओं में सबसे अधिक वंशज कौन छोड़ेगा, इसको लेकर किसी जाति के जीवों में होड़ हो सकती है। दूसरी किस्म की प्रतियोगिता काफी जटिल होती है। इसका मतलब यह है कि जीव सीधे या शारीरिक तरीके से होड़ नहीं लगाते। इस तरह की प्रतियोगिता की सफलता को संतानों की उत्तरजीविता और इस प्रकार दूसरी पीढ़ी में ऐलीलों में आंका जाता है।

अब तक आप समझ गए होंगे कि ये दोनों प्रतियोगिताएं परस्पर जुड़ी हैं। पहली प्रकार की प्रतियोगिता को **पारिस्थितिक अंतःजातीय प्रतियोगिता** (ecological intraspecific competition) कहा जाता है, जिसमें मिलने वाली सफलता ही दूसरे किस्म की होड़ को सफल बनाने की शर्त है। इस दूसरी प्रकार की प्रतियोगिता को **प्रजननात्मक अंतःजातीय प्रतियोगिता** (reproductive intraspecific competition) कहते हैं। पर इसका यह मतलब कतई नहीं है कि पारिस्थितिक सफलता ही प्रजननात्मक सफलता को

सुनिश्चित करती है । इसकी वजह यह है कि पारिस्थितिक दृष्टि से सफल जीव प्रजनन की दृष्टि से बंध्य यानि अप्रजायी (sterile) हो सकते हैं । मगर प्रजननात्मक सफलता पाने के लिए पारिस्थितिक सफलता हमेशा जरूरी होती है । संक्षेप में इससे हम इतना कह सकते हैं कि अंतःजातीय प्रतियोगिता के फलस्वरूप एक निश्चित वातावरण के अनुकूलन पैदा होते हैं, जिससे सफल जीवों के जीनप्ररूपों को पीढ़ी-दर-पीढ़ी कायम रखने में सहायता मिलती है ।

अंतराजातीय प्रतियोगिता भिन्न जातियों के जीवों के बीच होती है, जिनमें परस्पर संकरण नहीं होता । घनिष्ठ रूप से जुड़ी जातियां वातावरण से समान आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए आपस में होड़ करने लगती हैं । ऐसा खासकर तब होता है जब जिन निकेतों में वे रहती हैं वही निकेत एक दूसरे पर छाने या अतिव्यापन करने लगते हैं । ऐसे समय में पारिस्थितिक स्तर पर उनमें जबरदस्त होड़ होती है । बहरहाल प्रजनन-संगी के लिए उनमें कोई होड़ नहीं होती । पर हरेक जाति अपने स्तर पर कोशिश करेगी कि जीवसंख्या में वह अपने वंशजों का खासा हिस्सा जोड़कर ही जाए । आगे के भाग में हम आपको अंतराजातीय प्रतियोगिता और इसके कारण बनने वाले सहानुकूलित समुदायों (coadapted communities) के बारे में और अधिक बताएंगे ।

12.3.2 सहानुकूलित समुदाय

पारिस्थितिकी के अध्ययन के बाद आप जान ही चुके होंगे की अधिकतर पारिस्थितिक तंत्र काफी जटिल होते हैं, और अनेक आवासों से मिलकर बने होते हैं । ये आवास खुद सूक्ष्मावासों (microhabitat) से बने होते हैं । हरेक सूक्ष्मावासों में विभिन्न जातियों के जीवों के विविध समूह बसे हो सकते हैं । किसी भी सूक्ष्मावास में रहने वाली हर जाति अपने लिए एक पारिस्थितिक निकेत (ecological niche) रच लेती है । किसी भी पारिस्थितिक निकेत से हमें उसमें रहने वाली जाति के विषय में हर जानकारी मिलती है तथा उस जाति का अपने वातावरण के अन्य जैविक और अजैविक घटकों से परस्पर संबंधों का भी पता चलता है । प्रत्येक जाति का अपना एक विशिष्ट और सुस्पष्ट निकेत होता है । निश्चित रूप से यह कहा जा सकता है कि दो जातियों के पारिस्थितिक निकेत समरूप नहीं होते ।

इस परिकल्पना को आर.एच. मैकआर्थर ने अपने एक रोचक अध्ययन के जरिए अच्छी तरह से समझाया है । उन्होंने *डेंड्रोइका जीनस (Dendroica genus)* के वार्बलर पक्षी (Warbler birds) की पांच जातियों का अध्ययन किया जो एक ही स्प्रूस वृक्ष (Spruce tree) में रह रही थी । पांचों जातियों का एक समय में एक ही आहार था—स्प्रूस की कलियों में लगने वाला कीड़ा (spruce bud worm) । मगर हरेक जाति का उसी पेड़ में एक सुस्पष्ट निकेत भी था । इसे चित्र 12.2 में दिखाया गया है । मरटल (मेंहदीरंग की) वार्बलर (myrtle warbler) अपने आपको ज्यादातर पेड़ के तने के आसपास लाइकेन से ढकी डालों तक सीमित रखती थी । ब्लैक (काली) बर्नियर वार्बलर (black burnian warbler) हमेशा पेड़ की सबसे ऊपरी डालों में रहती थी । जबकि काली गर्दन वाली हरी वार्बलर (black throated green warbler) को ज्यादातर मध्यम ऊंचाई वाली शाखाओं पर आहार लेते पाया गया । बाकी की दो, केप-मे वार्बलर (cape may warbler) और (खंड छाती वाली) बे-ब्रेस्टेड वार्बलर (bay-breasted warbler) जातियां भी उसी पेड़ के अलग-अलग हिस्सों से अपना भोजन लेती थीं मगर इन दोनों के आहार मंडल पहली तीन जातियों के आहार मंडलों से अतिव्यापन करते थे । ये दोनों जातियां तभी स्प्रूस वृक्ष पर डेरा डालती थीं, जब उसमें कीड़ा लगता था । इसलिए इन्हें पलायक जाति (fugitive) का नाम दिया गया, जो खानाबदोशों की तरह जीवन बिताती थीं । स्प्रूस के पेड़ पर इस तरह आने वाली इन दो जातियों के चिड़ियों की संख्या आहार जीव यानी स्प्रूस वृक्ष पर लगने वाले कीड़ों की सुलभता पर निर्भर करती थी । स्प्रूस कलिका कीड़ों का प्रकोप होने पर ये दोनों वार्बलर पक्षी खासी तादाद में पेड़ पर दिखाई देते । वार्बलर की पांचों जातियों की मौजूदगी स्प्रूस पेड़ की वहन क्षमता में होने वाली वृद्धि पर निर्भर थी । यह वृद्धि तभी होती जब पेड़ पर लगने वाले कीड़े की संख्या बढ़ती । अन्यथा इन पक्षियों की केवल तीन जातियाँ ही पेड़ के तीन अलग-अलग भागों में रहतीं । पेड़ी के इन तीनों हिस्सों को सुस्पष्ट, अलग पारिस्थितिक निकेत कहा जा सकता है । इनमें हरेक निकेत की अपनी विशिष्ट सूक्ष्मजलवायु होती है, जिसके घटक तापमान, प्रकाश, सापेक्षिक आर्द्रता यानी नमी इत्यादि हैं । उदाहरण के लिए ऊपरी शाखाओं की तुलना में नीचे की शाखाओं में सूर्य का कम प्रकाश, कम तापमान और उच्च सापेक्षिक आर्द्रता होती है । इधर-उधर की शाखाओं में तापमान और प्रकाश अधिक और आर्द्रता कम होती है । इनमें से किसी भी जाति के निकेत में थोड़ा अतिव्यापन (niche overlap) हो सकता है । पर इसका यह मतलब नहीं है कि तीनों जातियों में से किसी का भी पारिस्थितिक निकेत पूरा का

पूरा किसी दूसरे निकेत के समरूप होता होगा। हालांकि स्प्रूस कलिका कीट सभी जातियों का समान आहार है फिर भी पक्षी की हरेक जाति दूसरे कीड़ों का भक्षण भी करती है, जो पेड़ के उस विशेष भाग की विशेषता है, जिसमें वह जाति वास करती है।

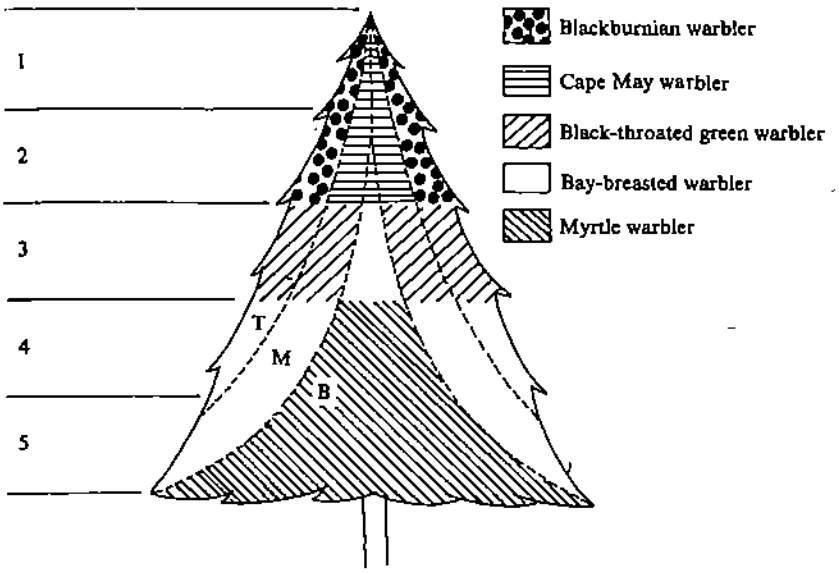

चित्र 12.2 : ब्लैक बर्नियर वार्बलर, केप-मे वार्बलर, काली गर्दन वाली हरी वार्बलर, बे-ब्रेस्टेड वार्बलर, मरटल वार्बलर/स्प्रूस वृक्ष में वार्बलर की पांच विभिन्न जातियों का वितरण दिखाया गया है। T) लाइकेन से ढका निचला भाग; M) पुरानी नुकीली पत्तियों वाला मध्य भाग; B) नई पत्तियों और कपोलों वाला अंतिम भाग।

यह उदाहरण एक और जानकारी हमारे सामने लाता है कि अलग-अलग जतियों के जीवसदस्यों के लिए यह संभव है कि थोड़े से निकेत अति व्यापन के बावजूद भी वे करीबी मगर सुस्पष्ट निकेतों में बसे रहें। दूसरे शब्दों में वार्बलर की भिन्न जातियाँ एक सहानुकूलित समुदाय में वास करती हैं। इस भाग में हम आपको यही बताने की कोशिश कर रहे हैं कि अंतराजातीय प्रतियोगिता से सहानुकूलित समुदायों का विकास होता है। इन पक्षियों की अलग-अलग जातियों ने अपने लिए विशिष्ट पारिस्थितिक समुदाय बना तो लिए, तब भी वे एक ही आहार पर जीवित रहते हैं। इस तरह इन जातियों ने एक समुदाय के रूप में रहना सीख लिया। मैकआर्थर ने जब वार्बलर का अध्ययन किया तो संभव है कि उस समय तक जातियों के बीच हुई होड़ ने पहले से सहानुकूलित समुदायों को जन्म दे दिया हो।

यहां हम यह भी बताना चाहेंगे कि निकेत विशिष्टीकरण एक ऐसी क्रियाविधि है जिसके जरिए जातियों के बीच होड़ को या तो कम से कम किया जाता है या फिर उससे पूरी तरह से बचा जाता है। पर प्राकृतिक वातावरण में ज्यादातर समय जीवों को न सिर्फ अपनी जाति के सदस्यों बल्कि दूसरी जातियों के जीवों से भी परस्पर करनी होती है, साथ ही भौतिक वातावरण से भी, जो कि हमेशा बदलता रहता है। वातावरण में होने वाले परिवर्तन एक जाति के जीवों को दूसरी जाति के करीब ला सकते हैं। इससे उनमें प्रतियोगी पारस्परिक-क्रिया होती है। ऐसे मौकों पर अंतराजातीय प्रतियोगिता एक अनिवार्य लक्षण बन जाता है। इसका कुल परिणाम यह होता है कि पारिस्थितिक अपवर्जन (ecological exclusion) को लेकर गुण विस्थापन (character displacement) होने लगता है। गुण विस्थापन और पारिस्थितिक अपवर्जन को और अच्छे ढंग से समझना जरूरी है। आइए अब हम इन शब्दों को एक उपयुक्त उदाहरण के जरिए समझें।

12.3.3 गुण विस्थापन और पारिस्थितिक अपवर्जन

माना, A और B दो जीव जातियाँ हैं। A जाति की किसी समुदाय में अपनी एक संख्या है। उसी समुदाय में एक और जीवसंख्या B अचानक आ टपकती है और उसे लाने का काम मानव करता है (किसी

समुदाय में नई जातियां और तरीकों से भी प्रवेश कर सकती हैं)। माना दोनों जातियों का आहार जीव समान है (यह कीट या बीज हो सकता है)। दोनों स्पीशीज़ यानि जातियों के आहार के टुकड़ों का परास एक सामान्य वर्क (normal curve) के अंदर आता है। सामान्य वर्क से हमारा यह तात्पर्य है कि किसी

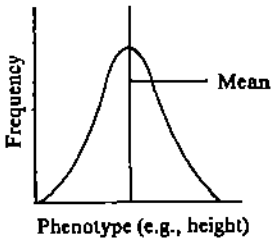

चित्र 12.3 : सामान्य बंटन वक्र।

भी गुण विशेष में कुछ विभिन्नता तो होती ही है। उदाहरण के लिए बीजों या इस मामले में कीड़ों का आकार या फिर चोंच के आकार जैसे गुणों का वितरण कुछ इस तरीके से होता है कि जीवसंख्या के अधिकांश जीवों में गुण का इष्टतम या आकार या माप होता है। केवल गिने चुने जीवों में ही गुण का चरम आकार या माप होता है (चित्र 12.3 देखें)। इसमें दिखाया गया सामान्य वितरण एक घंटी की आकृति के वक्र का रूप लेता है। सामान्य वितरण के बारे में और गहराई से जानने के लिए आप सांख्यकी की कोई प्रारंभिक पुस्तक या फिर इं.गां.रा.मु.वि. की पाठ्य सामग्री एम.टी.ई.-03 गणितीय विधियों (Methematical Methods) के खंड 3 को पढ़ें।

चित्र 12.4 से आप देख सकते हैं कि A और B जाति की आहार पकड़ने की युक्तियों (मुंह, चोंच या दांत के आकारों) के सामान्य वक्रों में काफी अतिव्यापन है। इस अतिव्यापन क्षेत्र का यह मतलब है कि समुदाय में इन दोनों जातियों के सदस्यों को भोजन के लिए एक दूसरे से होड़ करनी होगी। भोजन के लिए एक पारिस्थितिकीय अंतराजातीय प्रतियोगिता तो आवश्यक है। चित्र में आप यह भी देख सकते हैं कि कुछ

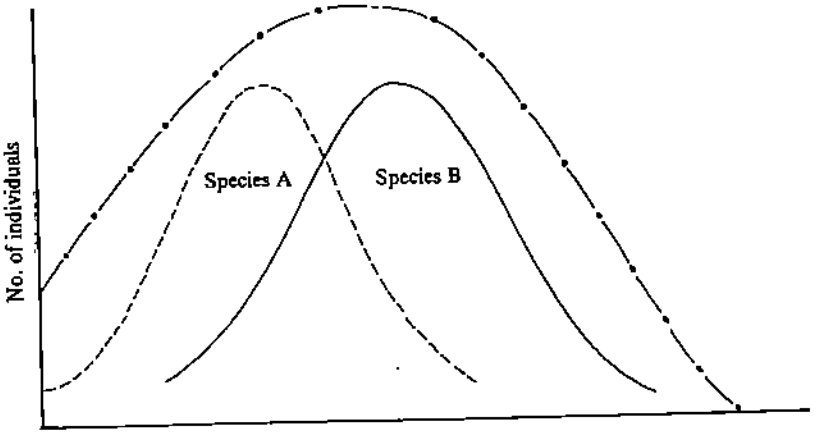

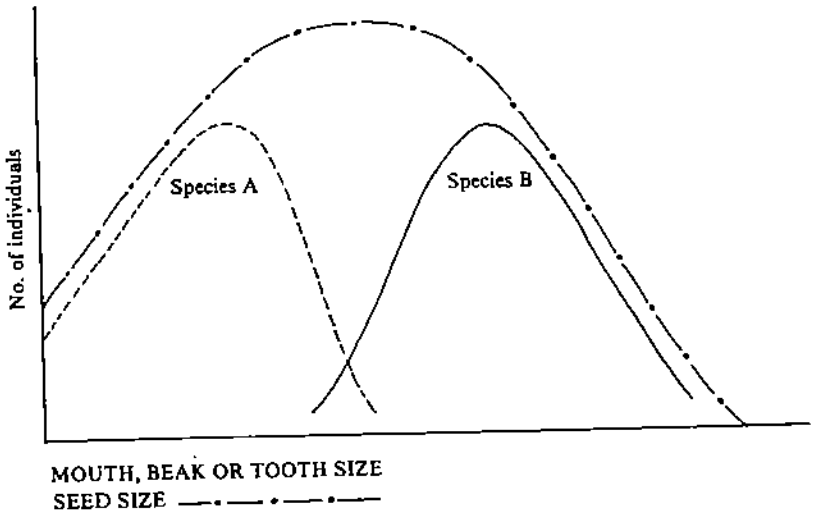

आहार कण (बड़े और छोटे दोनों आकार के) हरेक जाति की पहुँच से बाहर है। हालांकि दोनों जातियों की पूरी जीवसंख्या विभिन्न आकार के आहार कण का भी भोजन कर सकती हैं लेकिन इस समुदाय में कोई एक जीव केवल सीमित आकार के आहार कण का भोजन कर सकता है। माना हर आकार के आहार कण की संख्या समान हो तो आहार कणों तक ऐसे जीवों की पहुँच बेहतर होती है जो अतिव्यापन क्षेत्र से बाहर के हों। उन्हें इन आहार कणों को पाने के लिए कम ऊर्जा खर्च करनी पड़ती है। अब इनकी उन जीवों से तुलना करें जो अतिव्यापन क्षेत्र की हद में आते हैं। उन्हें भोजन के लिए न केवल समजातिक (conspecific) बल्कि दूसरी जातियों के जीवों से भी होड़ करनी पड़ती है। इसका परिणाम यह होता है कि अतिव्यापन क्षेत्र के बाहरी जीवों के पास प्रजनन के लिए अपेक्षतया अधिक ऊर्जा होती है। स्वाभाविक है कि वे आगे की पीढ़ी में अधिक से अधिक संतानें पैदा करने के लिए प्रवृत्त होंगे। इन संतानों में हर हाल में अपने जनकों के ऐलील होंगे, जिनमें वह ऐलील भी होगा, जो आहार कण आकार का निर्धारण करता है। प्राकृतिक वरण के इस प्रक्रम का फल यह होगा कि कई पीढ़ियों के बाद दोनों जातियों के आहार कण के आकार का सामान्य वक्र एक दूसरे से दूर होता जाएगा, जैसा कि चित्र 12.4 **(B)** में दिखाया गया है।

समुदाय में दोनों जातियां एक दूसरे की मौजूदगी के अनुकूल ढल जाती हैं। दूसरे शब्दों में वे सहानुकूलित बन जाती हैं। इस उदाहरण में आप समझ गए होंगे कि जातियों के एक सहानुकूलित समुदाय में विकसित होने के अलावा दो समस्थानिक जातियों (sympatric species) में किसी गुण विशेष (आहार कण, आकार अभिरुचि) को लेकर अपसरण अर्थात् विचलन (divergence) होता है। यह विचलन जातियों के बीच होने वाली प्रतियोगिता की वजह से होता है। गुण में विचलन या अपसारिता की इस परिघटना को गुण विस्थापन (character displacement) कहा जाता है। गुण विस्थापन के साथ हरेक जाति के लिए एक विशिष्ट निकेत (exclusive niche) का निर्माण और अतिव्यापन क्षेत्र का विस्थापन भी होता है। अब आप समझ सकते हैं कि प्राकृतिक वरण ने ऊपर बताए गए उदाहरण में किस तरह हरेक जाति को दूसरी जाति के निकेत से बाहर किया होगा। निकेत को अलग करने की इस परिघटना को पारिस्थितिक अपवर्जन (ecological exclusion) कहते हैं। गुण विस्थापन और पारिस्थितिक अपवर्जन ही सहानुकूलित समुदायों के विकास की बुनियाद हैं।

स्कॉटलैंड के जीवविज्ञानी जे.एच. कोनेल ने इन दोनों परिघटनाओं को एक रोचक अध्ययन से समझाया है। उन्होंने *बैलानस (Balanus* और *थैमलस (Chthamalus)* नाम की भिन्न कुलों की दो जातियों के बार्नेकल्स (barnacles) का अध्ययन किया था। ये दोनों जातियाँ चट्टानी तट के एक ही अंतराज्ञातीय क्षेत्र (intertidal zone) में रहती थीं, जैसाकि चित्र 12.5 में दिखाया गया है। *थैमलस* ऊपरी प्रदेश की चट्टानों में रहती थी और *बैलानस* उसी तट के गहरे प्रदेशों में। इसमें व्यापक अतिव्यापन का एक प्रदेश मौजूद है जहाँ दोनों जातियों के केवल तैरने वाले लारवा कायांतरण के लिए आ बसते हैं। माध्य ज्वारीयस्तर से ऊपर जहाँ *बैलानस* नहीं होता, वहाँ *थैमलस* रह सकता है और इन इलाकों में इसके लारवा भी वयस्क में रूपांतरित होते हैं। मगर अतिव्यापन के इलाके में, जहाँ दोनों प्रकार के लारवा आ जुटते हैं, *बैलानस* की आबादी थैमलस से काफी ज्यादा होती है। यह इसलिए होता है कि *बैलानस* के लारवा बड़ी तादाद में होते हैं और उनके वृद्धि विकास की दर थैमलस से काफी ज्यादा होती है। अतिव्यापन के इस क्षेत्र में यह स्थान के लिए होने वाली अंतराजातीय प्रतियोगिता का एक उदाहरण है। यह असल में दो जातियों के बीच होने वाला भौतिक संघर्ष है। इसमें *बैलानस* ही हमेशा बाजी मार ले जाता है। मगर माध्य ज्वारीय स्तर और चट्टानों में ऊपर की ओर बसे *थैमलस* प्रदेश में अगर *बैलानस* लारवा आ बसते हैं, तो उनमें कोई भी जीवित नहीं रह पाता। इसका बड़ा सीधा सा कारण है कि जल ऊष्मन (desiccation) के लिए प्रतिरोधकता *बैलानस* में होती ही नहीं। पर *थैमलस* लारवा में यह अनुकूलन विकसित होता है। हमारे लिए अब यह स्पष्ट हो गया है कि बार्नेकल की दो जातियाँ किस तरह समुद्र तट में स्वयं को वितरित करती हैं और हर जाति वातावरणीय परिस्थितियों के निश्चित दायरों में जीवित रह सकती है। बार्नेकल का यह किस्सा समस्थानिक जीवसंख्याओं (sympatric populations) के वातावरणीय परासों को बड़े अच्छे ढंग से स्पष्ट कर देता है। इस उदाहरण से आप जान गए होंगे कि हर जाति का एक अनूठा और अनन्य पारिस्थितिकीय निकेत होता है और हर जाति उस निकेत में इष्टतम अनुकूलित होती है।

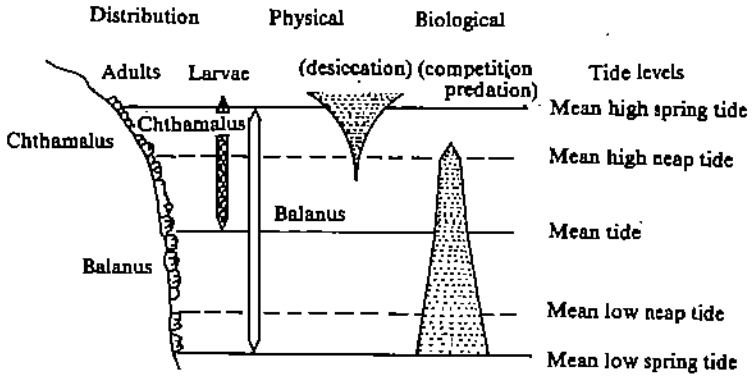

चित्र 12.5 : अंतराज्ञातीय प्रवणता (intertidal gradient) में बार्नेकल की दो जातियों *बैलानस* और *चैमलस* का वितरण। हालांकि दोनों जातियों के लारवा एक व्यापक क्षेत्र में रहते है। मगर उनकी उत्तरजीविता संकुचित दायरों तक सीमित होती है। जल-शुष्कन (desiccation) जैसे भौतिक कारक जहाँ *बैलानस* के वितरण को नियंत्रित करते हैं वहीं प्रतियोगिता *चैमलस* के वितरण को रोकती है।

बोध प्रश्न 2

सही या गलत बताइए। ठीक उत्तर पर सही (✓) का निशान लगाइए।

क) एक जाति के जीवों के बीच यह होड़ कि उनमें से कौन अपने पीछे ज्यादा वंशजों को छोड़कर जाएगा; अंतःजातीय पारिस्थितिक प्रतियोगिता है। सही/गलत

ख) भिन्न जातियों के जीव आमतौर पर आपस में संकरण नहीं करते। सही/गलत

ग) अंतराजातीय प्रतियोगिता प्रजननात्मक स्तर पर अधिक प्रखर होती है। सही/गलत

घ) दो भिन्न जातियों के जीव हमेशा समरूप पारिस्थितिक निकेत में रहते हैं। सही/गलत

च) अंतराजातीय प्रतियोगिता के फलस्वरूप सहानुकूलित समुदायों का विकास होता है। सही/गलत

छ) निकेत विशिष्टीकरण ऐसी क्रियाविधि है जिसके जरिए जातियों में होड़ तेज़ी से होती है। सही/गलत

ज) दो समस्थानिक जातियों में किसी खास गुण में दिखाई देने वाला अपसरण, गुण विस्थापन कहलाता है, जो कि उनके बीच होड़ के कारण होता है। सही/गलत

झ) हर जाति का एक अनूठा और विशेष पारिस्थितिक निकेत होता है और हर जाति उस निकेत के लिए इष्टतम अनुकूलित होती है। सही/गलत

12.4 परजीविता, परभक्षण और सहविकास

अब आप जानते हैं प्राकृतिक वरण का लक्ष्य जीवों में अनुकूलनों का विकास करना होता है। यह विकास निर्जीव जगत में होने वाले वातावरणीय बदलावों के प्रति अनुक्रिया के फलस्वरूप होता है। साथ ही अनेक

अनुकूलन वातावरण में दूसरे जीवों के साथ होने वाली पारस्परिक क्रिया के फलस्वरूप भी पैदा होते हैं। अभी तक हमने घनिष्ट रूप से जुड़ी ऐसी जातियों में पारस्परिक क्रियाओं तथा अनुकूलनों के विकास के बारे में बताया, जो आहार शृंखला में कमोबेश समान स्तर में रहती हैं। ऐसी अंतराजातीय पारस्परिक-क्रियाएं आहार शृंखला के विभिन्न स्तरों में रहने वाले जीवों के बीच भी हो सकती है। इस प्रकार की पारस्परिक क्रियाओं के फलस्वरूप हुए, अनुकूलनों का विकास तरह-तरह के सहवासों (associations) के विकास के लिए भी काफी हद तक जिम्मेदार रहा है, चाहे वह सहभोजिता (commensalism), सहोपकारिता (mutualism), परजीविता (parasitism) हों या परभक्षण (predation)। उदाहरण के लिए मांसाहारियों में पाए जाने वाले पंजों, दांतों, द्रुतगति जैसे गुणों को ही लें। ऐसे अनुकूलनों का विकास इन मांसाहारी जीवों का आहार बनने वाली विभिन्न प्रकार की शिकार-जातियों से परस्पर क्रिया के फलस्वरूप होता है। इसी तरह आविष (toxins), रक्षी रंजन (protective colouring), रासायनिक युद्ध आदि युक्तियां ऐसे कुछ अनुकूलन हैं, जिनका विकास परभक्षी जीवों से बचने के लिए शिकार होने वाली जातियों ने किया है। वरण शिकार-जातियों की जीवसंख्या को परभक्षियों के अनुपात में रखने के लिए उनकी प्रजनन दर को बनाए रखता है। संक्षेप में पारिस्थितिकीय दृष्टि से जुड़ी जातियों के प्राकृतिक वरण द्वारा विकास प्रक्रिया में समन्वयन के सीधे परिणाम ये अंतराजातीय संबंध हैं। रोचक बात यह है कि ऐसे संबंधों के विकास में शामिल दोनों जातियाँ एक दूसरे के लिए वरण के लिए पारस्परिक कर्मक का काम करती हैं। इसी प्रक्रिया को सहविकास (coevolution) का नाम दिया गया है। इस भाग में हम शिकार-परभक्षी (predator-prey), पादप-शाकाहारी (plant-herbivorous) और परपोषी-परजीवी (host-parasite) के संबंधों का सहविकासीय प्रक्रिया के रूप में विश्लेषण करेंगे।

12.4.1 शिकार-परभक्षी सहविकास

परभक्षण एक ऐसा प्रक्रम है, जिसके जरिए एक जीव (परभक्षी) दूसरे जीव (शिकार) को खाता है। अगर शिकार जीवसंख्या प्रचुर हो तो शिकारी यानी परभक्षी जीवसंख्या भी प्रचुर हो जाती है। परभक्षी अगर काफी संख्या में हों और वे शिकार करने में निपुण हों, तो इससे शिकार जीवसंख्या की प्रचुरता में कमी होने लगेगी। शिकार-परभक्षी संबंधों को हम एक ऐसे खेल के रूप में देख सकते हैं, जिसमें हर खिलाड़ी अपने प्रतिद्वंद्वी को परास्त करने या पछाड़ने में तुला रहा है। अगर आप शिकार जीवसंख्या को समझें तो उसमें सिर्फ वे ही जीव जीवित रहेंगे और प्रजनन करेंगे, जो परभक्षण से बचने के लिए अपनी जाति के अन्य जीवों की अपेक्षा बेहतर ढंग से अनुकूलित होते हैं। इसलिए एक शिकार-परभक्षी जीवसंख्या में जहाँ जीवों में क्षमता अर्थात् दक्षता विभिन्न स्तर की होती है, शिकार जातियां परभक्षी से बचने के लिए विकास करेंगी और परभक्षी जाति परभक्षण को बनाए रखने और इसे कारगर बनाने की ओर विकास करेगी। जीवों की दक्षता में विभिन्नता का निर्धारण आनुवंशिक होता है। परभक्षी-शिकार संबंधों का इस प्रकार का सहविकास (coevolution) दोनों जातियों का विलोप हुए बिना ही लंबी अवधि तक जारी रहता है। यह परभक्षी की दक्षता और शिकार की प्रतिरोध क्षमता को एक संतुलित तरीके से उन्नत करके प्राप्त किया जाता है। पहले से ही प्रतिरोधी शिकार की प्रतिरोध क्षमता को और बढ़ाने की बजाए प्राकृतिक वरण का लक्ष्य एक अदक्ष परभक्षी की दक्षता को तेजी से उन्नत करना होता है। दूसरी ओर वरण असुरक्षित व नाजुक शिकार में प्रतिरोधकता का विकास पहले से ही दक्ष परभक्षी की दक्षता की तुलना में काफी तेजी से करता है। प्राकृतिक वरण का यह संतुलन कार्य दोनों जातियों में से किसी को भी दौड़ नहीं जीतने देता है।

प्राकृतिक वरण में जटिल अनुकूलन के ऐसे कई उदाहरण मिलते हैं जो लंबे समय तक सक्रीय विकासीय प्रक्रम के परिणाम हैं। ये अनुकूलन परभक्षी और शिकार दोनों तरह के जीवों में होते हैं। कीटभक्षी छिपकलियों की लंबी और पतली जीभ व सटीक लक्ष्यभेद, मकड़ियों के विस्तृत जाल; शेरों का सामाजिक आखेट व्यवहार आदि परभक्षियों में पाए जाने वाले उदाहरण हैं। रक्षी रंजन, फुरती, हानिकारक पदार्थ और आविष, चेतावनी को आवाजें और प्रहरियों की नियुक्ति आदि अनुकूलनों के ऐसे उदाहरण हैं जिनका विकास शिकार जीव अपनी रक्षा के लिए करते हैं।

12.4.2 पादप-शाकाहारी सहविकास

पौधों और शाकाहारी जंतुओं के बीच एक आदर्श सहविकास रहा है। यह अक्सर एक परस्पर लाभदायक संबंध में विकसित हुआ है। जहाँ पौधे कुछ जन्तुओं जैसे कीट, पक्षी और कुछ खास स्तनधारियों के लिए

भोजन का एक अच्छा स्रोत रहे हैं वहीं बदले में जंतु पराग कणों और बीजों के प्रकीर्णन में पौधों के लिए बड़े सहायक सिद्ध हुए हैं। कीड़ों को भोजन के लिए पौधे मधुरस और परागकण प्रदान करते हैं। बदले में कीड़ों ने परागण (pollination) और बीज प्रकीर्णन (seed dispersal) के लिए घ्राण (olfactory), दृश्य और संरचनात्मक अनुकूलनों का विकास किया है। परागणकारियों (pollinators) को लुभाने के लिए फूल बड़े रंगबिरंगे और खुशबूदार होते हैं। यहाँ ध्यान देने वाली रोचक बात यह है कि कुछ खास किस्म की मक्खियाँ प्यूट्रैसीन (putrecine) और कैडेवरीन (cadaverine) जैसे पदार्थों से निकलने वाली दुर्गंध की ओर आकर्षित होती है।

सहविकासीय प्रक्रम का एक सबसे अच्छा उदाहरण कीट परागणकारियों और कीट परागित पौधों (entomophilous plants) के बीच पनपा संबंध है। कीट परागणकारियों और मालवेसी (Malvaceae), पैपिलियोनेसी (Papilionaceae) और लैबिएटी (Labiatae) कुल के पौधों के संबंध के कई उदाहरण दिए जा सकते हैं। जीनस *पेडिक्युलेरिस (Pedicularis* लाउस वर्ट) और उसके परागणकारी भौंरे (बॉम्बस) पर हुआ एक अध्ययन उल्लेखनीय है। लाउस वर्ट की कुछ खास जातियों जैसे *पी. कैनडेनसिस (P. canadensis)* और *पी. क्रेन्युलैटा (P. crenulata)* का परागण अगन्तुक पृष्ठ स्पर्श (nototribically) से होता है। इसका मतलब है कि भौंरा पौधे से परागकण अपने वक्षपृष्ठ (notum, इस कीट का पिछला कठक) पर उठाता है। कीट को अपने पृष्ठ भाग पर फूलों के पुंकेसरों (stamens) से एक हल्का-सा स्पर्श मिलता है, जैसा कि चित्र 12.6 में दिखाया गया है। जब भौंरे दूसरे पुष्प के पास जाते हैं तो उसके वर्तिकाग्र (stigma) में परागकणों को डाल देते हैं।

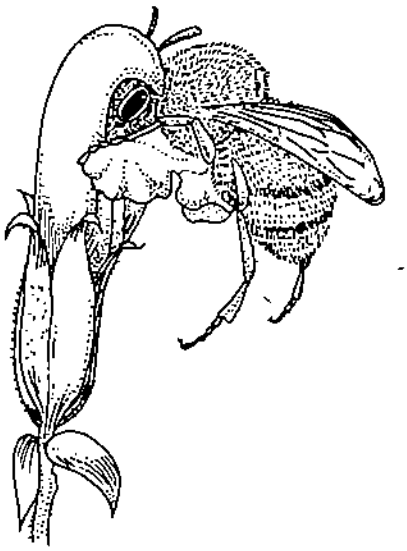

चित्र 12.6 : पृष्ठस्पर्शी परागण।

पी. ग्रोएनलैंडिया (P. groenlandia) में परागण अधर परागक्षेपण (sternotribically) के जरिए होता है। इसका यह मतलब है कि कीट परागकणों को अपने अधरक (sternum) यानी अधर कठक (ventral sclerites) भाग से उठाते हैं, जैसा कि चित्र 12.7 में दिखाया गया है। इसके बाद वे उन्हें पुष्प के वर्तिकाग्र में छोड़ देते हैं। पुष्प की संरचना और कीट संरचना व उसके व्यवहार में जो संगतता है वही सहविकास प्रक्रम में महत्वपूर्ण बात है।

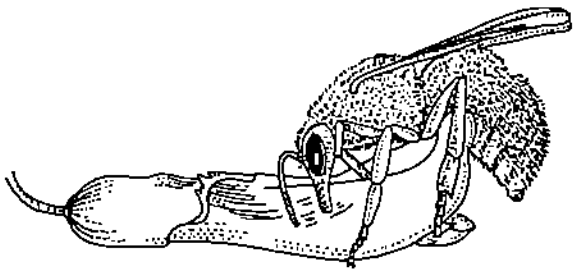

चित्र 12.7 : अधर परागक्षेपी परागण।

इसी तरह कई जन्तु पौधों से प्राप्त भोजन के बदले में बीजों को दूर-दूर स्थानों तक बिखरा कर पौधों की सहायता करते हैं। पौधों में बड़े रंगबिरंगे, गूदेदार और पोषक फलों का विकास हुआ है। इन फलों को खाकर पक्षी इनके बीजों को अपनी बीट से ऐसे वातावरण में उत्सर्जित करते हैं जो पौधे के लिए अनुकूल होते हैं। फलतः बीज अंकुरित होकर पौधों में फूलते-फलते हैं। पक्षियों के अलावा जंगलों में रहने वाले हाथी, गैंडे, जिराफ़ जैसे विशालकाय शाकाहारी जंतु भी फलों का भक्षण कर बीजों का सफल प्रकीर्णन करते हैं। टी.एच. टारज़र और ए.एस. मार्टिन द्वारा किए गए एक अध्ययन से पता चला है कि मध्य अमेरिका में अत्यंतनवीन युग (Pleistocene Era) के दौरान ऊंट, घोड़े, विशाल आर्मेडिलो, हाथियों, भालुओं और बाइसन जैसे अनेक शाकाहारी जंतुओं ने ही पेड़ों व झाड़ियों के प्रकीर्णन का काम किया था। मगर कोई दस हजार साल पहले इन जन्तुओं का लोप होने पर वे पेड़ भी लुप्त हो गए और आज उनकी जगह उनके अवशेष ही रह गए हैं।

सहोपकारिता (mutualism) को बढ़ावा देने वाले ऐसे अनुकूलनों के अलावा पौधों ने ऐसे अनुकूलनों का विकास भी किया है जो उन्हें शाकाहारी जंतुओं के हमले से बचाते हैं। यह भी एक सहविकासीय प्रक्रम है। पौधे ऐसे अनुकूलनों के विकास की ओर उन्मुख होते हैं, जो उन्हें अपना आहार बनाने के लिए शाकाहारी जंतु द्वारा विकसित अनुकूलनों को मात दे सकें। अनेक पौधे अपने ऊतकों में विषैले रासायनों को जमा कर लेते हैं जो उन्हें संभावित भक्षियों के लिए खाने के अयोग्य बना देते हैं। आविषों (विषैले रसायनों) का जमाव करने वाले पौधों को एक वरणात्मक लाभ मिलता है और इस तरह कीड़ों के हमले से उनका बचाव होता है। एक रोचक उदाहरण कुछ खास किस्म के पौधों में किशोर अर्थात् बाल हार्मोन रोधी (anti juvenile hormone) यौगिकों का पता लगना है। बाल हार्मोन कीड़ों में पाया जाने वाला टर्पीनॉयड यौगिक (terpenoid compound) है। इसका स्राव अंतःस्रावी ग्रंथि कार्पस ऐलेटम (corpus allatum) करती है। यह हार्मोन कीड़ों के कायांतरण का नियमन करता है। कीड़े के लारवा के विकास के पूरा होने तक यह हार्मोन उसके रक्त में संचरित होता है। लारवा विकास के अंतिम चरण में रक्त में संचरित होने वाले हार्मोन का माप कम हो जाता है। यह संभवतः ग्रंथि द्वारा इसके स्रावण में कमी करने से होता है। लारवा अब प्यूपा बन जाता है। प्यूपा विकास के अंत में हार्मोन का संचार बिल्कुल बंद हो जाता है और प्यूपा से वयस्क में रूपांतरण होता है। कुछ खास पादपों ने ऐसे रसायनों का विकास किया है जो कॉर्पस ऐलेटम ग्रंथि को निष्क्रिय कर देते हैं। ये रसायन कीड़ों में कालपूर्व (समय से पहले) कायांतरण (precocious metamorphosis) कर डालते हैं। इसीलिए इन्हें **प्रीकोसीन** कहा जाता है। ऐसे पौधों का भक्षण करने वाले कीटों की कॉर्पस ऐलेटम ग्रंथि प्रीकोसीन से बंद हो जाती जो उनके रक्त संचार में प्रवेश पा लेता है। बाल हार्मोन की अनुपस्थिति में कीड़े क्रमिक कायांतरण (लारवा-प्यूपा-वयस्क कीट) से गुजरने के बजाए असामान्य या कालपूर्व वयस्कों में विकसित हो जाते हैं और वे बिना प्रजनन किए ही मर जाते हैं। इस प्रकार कीट हमले का सामना करने के लिए प्रीकोसीन पौधों को एक अच्छी सुरक्षा क्रियाविधि प्रदान करते हैं।

पौधों को भोजन बनाने वाले जंतुओं के लिए निवारकों की तरह काम करने वाले रसायनों का एक और उदाहरण *डेनौस प्लेक्सीपस (Danaus plexippus)* जाति की तितली का है। इस तितली से ब्लू जे (blue jays) जैसे पक्षी बड़ी घिन करते हैं। यह कीट *ऐस्क्लीपियस (Asclepias)* जाति के मिल्कवीड पौधे (एक

प्रकार की घास) का आहार करता है और इससे शरीर में हृदय ग्लाइकोसाइडों (cardiac glycosides) को जमा कर लेता है। ऐसे कीटों को खाने वाले पक्षियों को भारी कै हो जाती है, जो इसी रसायन का प्रभाव होता है। ऐसा ही उदाहरण टिड्डे, *पोइसिलोसेरा पिक्टा (Poecilocera picta)* का है जो पक्षियों का शिकार नहीं बन पाता। इसकी वजह यह है कि यह कीट भी ऐसेलिपीडिएसी कुल (Asclepediace family) के दूसरे सदस्य पादप *कैलोट्रोपिस जाईगेंटिया (Calotropis gigantea)* को खाता है और अपने शरीर में हृदय ग्लाइकोसाइडों को जमा कर लेता है।

12.4.3 परपोषी–परजीवी सहविकास

परजीवियों (parasites) और उनके परपोषियों (host) के बीच सहविकास संबंध परभक्षियों और उनके शिकार-जीवों के संबंधों से काफी ज्यादा जटिल हो सकते हैं। शिकार-परभक्षी संबंध की ही तरह हम उम्मीद कर सकते हैं कि परपोषी हमलावर परजीवी के विरुद्ध और अधिक प्रभावशाली सुरक्षा युक्तियों का विकास करेगा और बदले में परजीवी भी और अधिक शक्तिशाली बन सकता है। यहां भी एक संतुलन क्रिया जरूरी होती है क्योंकि परपोषी जीव की कीमत पर परजीवी अपनी प्रजनन दक्षता को नहीं बढ़ा सकता है। परपोषी की मृत्यु का मतलब है कि दूसरे सजीव परपोषी तक संचरित होने से पहले ही परजीवी भी मर जाएगा। अगर परजीवी को एक परपोषी से दूसरे तक स्थानांतरित होना ही है तो परजीवों को कम उग्रता का विकास करना ही होगा ताकि परपोषी की मृत्यु न हो। "जियो और जीने दो" – इस कहावत पर ही सफल परपोषी-परजीवी संबंध का विकास होता है।

एक जाना-माना आस्ट्रेलियाई उदाहरण हमें बड़ी अच्छी तरह से खरगोश परपोषियों और मिक्सोमा नामक विषाणु परजीवी के बीच सहविकास की धारणा को समझाता है। *ऑरिक्टोलैगस कनीक्यूलस (Oryctolagus cuniculas)* जाति के यूरोपीय खरगोश को 19वीं सदी के मध्य में आस्ट्रेलिया लाया गया था। दस वर्ष से भी कम समय में इन खरगोशों की संख्या इतनी ज्यादा बढ़ गई कि ये उप-अल्पाइन से लेकर उपोष्ण कटिबंधीय क्षेत्रों तक के विभिन्न प्रकार के वातावरणों में छा गए। 19वीं सदी के *मध्य* तक इनकी संख्या करोड़ों में हो गई। खरगोशों को अब एक गंभीर नाशक जीवसंख्या यानी महामारी के रूप में देखा जाने लगा। फलतः इनकी संख्या को कारगर ढंग से काबू में लाने के लिए खरगोशों के प्राकृतिक शत्रुओं की खोज की गई। इस खोज से पता चला कि मिक्सोमा नामक विषाणु खरगोशों में एक अधिजंतुक (epizooite) के रूप में गुणन कर सकता है। मच्छर इस परजीवी के संपर्की स्थानांतरण के लिए प्राकृतिक रोगवाहक बन सकते थे। खरगोशों में यह विषाणु एक भयंकर रोग पैदा करता है, जिसे मिक्सोमता (myxomatosis) कहते हैं (चित्र 12.8)। इस रोग से काफी संख्या में खरगोश मरने लगते हैं। इस परजीवी को 1950 की सर्दियों में जंगली खरगोशों की आबादियों में प्रवेश कराया गया। 1950 के क्रिसमस से पहले-पहले इस रोग का एक व्यापक प्रकोप आस्ट्रेलिया की खरगोश जीवसंख्या के वितरण के साथ सहवर्ती (coexistent) बन चुका था। जल्द ही यह देखने में आया कि जहाँ कहीं भी मिक्सोमता रोग फैला वहीं खरगोश जीवसंख्याओं में भारी मौतें हुई। कुछ खास इलाकों में तो समूची खरगोश जीवसंख्या ही नष्ट हो गई।

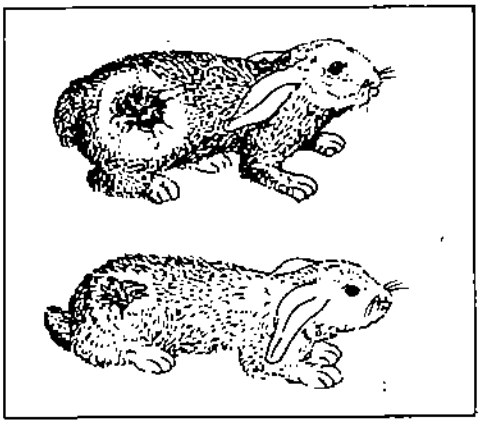

चित्र 12.8 : मिक्सोमता रोग से पीड़ित खरगोश।

इस घातक विषाणु के प्राकृतिक संक्रमण पर हुए एक विशेष अध्ययन में 5000 खरगोशों की एक जीवसंख्या गिरकर 50 तक आ पहुँची। इसमें करीब 99 प्रतिशत मृत्युदर हुई। उत्तरजीवी खरगोशों ने प्रजनन किया और इससे पैदा हुई पीढ़ी पर भी विषाणु का हमला हुआ। मगर इस बार मृत्युदर केवल 90 प्रतिशत रही। यह विषाणु की उग्रता में हुए बुनियादी बदलाव की ओर संकेत था। आगे के 15 वर्षों तक एक अध्ययन से पता चला कि इस परजीवी की उग्रता में भारी गिरावट आई है। 1950-51 में जिस विषाणु ने भारी उग्रता दिखाई थी, 1963-64 के दौरान उसने खुद को एक मध्यम रूप से उग्र परजीवी में रूपांतरित कर लिया था। निम्न उग्रता वाले मिक्सोमा विषाणु भी देखे गए, पर वे कुल विषाणु जीवसंख्या का सिर्फ 5 प्रतिशत थे। यह पाया गया कि निम्न उग्रता वाले विषाणु ने सफलतापूर्वक प्रजनन नहीं किया। अब आप यह सवाल कर सकते हैं कि विषाणु ने उच्च उग्रता खोकर मध्यम उग्रता क्यों पा ली। इसका जवाब इसके संचरण की रीति में है क्योंकि प्राकृतिक वरण इस विशेषक पर क्रिया करता है न कि उग्रता पर। अगर विषाणु अधिक से अधिक उग्र बना रहता है और खरगोश को खत्म करने में देरी नहीं करता, तो इस स्थिति में मच्छरों को इस विषाणु को ग्रहण करने के लिए थोड़ा-सा समय मिलेगा। क्योंकि मच्छर सिर्फ सजीव खरगोशों को ही काटता है। फिर निम्न उग्रता वाला विषाणु तेजी से संवर्धन या गुणन नही कर सकता। इसका नतीजा यह होता है कि मच्छरों के लिए विषाणु को ग्रहण करने की ज्यादा संभावना नहीं रह जाती। इसलिए संचरण की अधिकतम दर तब होगी जब बाह्य त्वचीय विक्षतों (जख्मों) में विषाणु का उच्च संकेंद्रण हो और जब खरगोश इनसे अति शीघ्रता से नहीं मरे। इसके साथ-साथ परपोषी में परजीवी हमले के लिए एक सापेक्षिक प्रतिरोधकता का विकास भी चलता है। पहले जंतुमारक आक्रमण के सिर्फ 1 प्रतिशत उत्तरजीवियों की संख्या अगली पीढ़ी में बढ़कर 10 प्रतिशत हो गई। अब हर वर्ष खरगोशों की ऐसी नई आबादी उभरने लगी, जिनमें प्रतिरोधकता अधिक थी और जिनमें घटती उग्रता के विषाणु होते थे। इसे तालिका 12.2 में दिखाया गया है।

तालिका 12.2 : 1950 और 1964 के दौरान आस्ट्रेलिया में मिक्सोमा विषाणु की नस्लों में हुए परिवर्तन

नस्ल	1950-51	1958-59	1963-64
नस्ल-1, (उच्च उग्रता)	100%	0%	0%
नस्ल-2, (काफी उच्च उग्रता)	0%	25%	0%
नस्ल-3 व 4 (मध्यम उच्च उग्रता)	0%	70%	95%
नस्ल-5 (निम्न उच्च उग्रता)	0%	5%	5%

भिन्न पोषी स्तरों में बसने वाली दो भिन्न जातियों पर प्राकृतिक वरण की इस क्रिया को सहविकासीय प्रक्रम का एक बेहतरीन मॉडल माना जा सकता है। एक परपोषी और उसके नये परजीवी के बीच ऐसे सहविकासीय प्रक्रम अनेकों बार देखने में आए हैं। उत्तरजीविता की संभावनाओं को परजीवी ज्यादा से ज्यादा बढ़ाएगा, परपोषी के शरीर में सफलता पूर्वक वास करेगा और जितना संभव होगा उसे कम से कम नुकसान पहुंचाएगा। इसके समानांतर परपोषी की उत्तरजीविता इस बात पर निर्भर करती है कि वह परजीवी के प्रभाव का प्रतिरोध करने में कितना समर्थ है। प्राकृतिक वरण जहाँ ऐसे परजीवियों का पक्षधर होता है जो अपनी संक्रामकता को बनाए रख सकता है वहीं वह ऐसे परपोषियों को बढ़ावा देता है जो संक्रमणरोधी बन सकते हैं या संक्रमण होने पर परजीवियों के विषाक्त प्रभावों का प्रतिरोध कर सकते हैं।

बोध प्रश्न 3

खाली स्थान भरिए

क) ..... न केवल निर्जीव जगत में होने वाले वातावरणीय बदलावों के प्रति अनुक्रिया के फलस्वरूप पैदा होते हैं बल्कि वातावरण में दूसरे जीवों की उपस्थिति से होने वाली अनुक्रिया के फलस्वरूप भी जन्म लेते हैं।

ख) आहार शृंखला में भिन्न स्तर पर रहने वाली जातियों में होने वाली पारस्परिक क्रिया ही ..... और ..... जैसे सहवासों के विकास के लिए काफी हद तक जिम्मेदार रही है।

ग) ..... के प्रक्रम से दो जातियों के बीच एक पारिस्थितिकीय सहवास का विकास होता है, जिसमें हर जाति दूसरे के चयन के लिए एक पारस्परिक कर्मक के रूप में काम करने लगती है।

घ) ..... का लक्ष्य है अक्षम ..... को तेजी से सक्षम बनाना न कि ..... की प्रतिरोध क्षमता को बढ़ाना।

च) पादप और शाकाहारी के बीच सहविकास से अक्सर .... संबंध बने हैं।

छ) सफल परपोषी-परजीवी संबंध का विकास ..... की धारणा पर आधारित है।

12.5 लैंगिक वरण

इस भाग में आपको प्राकृतिक वरण की धारणा के एक परिवर्ती रूप के बारे में बताएंगे, जिसे डार्विन ने लैंगिक वरण (sexual selection) का नाम दिया था। विभिन्न जंतु समूहों के विपरीत लिंगों की दिखावट में नज़र आने वाले सुस्पष्ट और असाधारण भेदों को शायद आपने देखा ही होगा, खासतौर से पक्षियों और स्तनधारियों में। जब जंतुओं के लिंगों के बीच भेद दिखाई देने लगते हैं, तो इसे लैंगिक द्विरूपता (sexual dimorphism) कहते हैं। लैंगिक द्विरूपता का सीधा सा मतलब यह है कि बनावट में नर व मादा एकरूप नहीं होते हैं। बल्कि वे दो भिन्न रूपभेदों को व्यक्त करते हैं। आम तौर पर जीव जातियों में नर असाधारण रूप से मादाओं से अलग होते हैं। वैसे इस नियम के अपवाद जरूर हो सकते हैं। नर अधिक आक्रामक, आकर्षक रंग वाले हो सकते हैं। या उनमें अलंकृत कलंगी, चटकीली पक्षति (plumage), आकर्षक तथा विस्तीर्ण सींग, सजावटी अंकुश, दांत (हाथी), या पदकंट (spurs) इत्यादि हो सकते हैं। मादाओं से नर क्यों भिन्न होते हैं? क्या ऐसी अतिरिक्त संरचनाओं की वजह से वे आसानी से अपने शत्रुओं की निगाह में नहीं आ जाते हैं और उनके हमलों का निशाना नहीं बनते? तो क्या ऐसे गुणों को अलाभकर या कु-अनुकूलन मान लिया जाए? अगर यह बात सही है तो क्या यह प्राकृतिक वरण सिद्धांत की ही काट नहीं करता है?

इन सभी सवालों के जवाब में डार्विन ने लैंगिक वरण के सिद्धांत का प्रतिपादन किया। इस सिद्धांत के अनुसार, जातियों में मादाएं अपने-अपने नरों का चुनाव करती हैं। इसलिए ऐसा नर, जो अधिक आकर्षक हो या अपने ही लिंग के दूसरे सदस्यों से अधिक ताकतवर हो, उसके पास मैथुन करने और अपने पीछे संतानों को छोड़ जाने के बेहतर अवसर होते हैं। नर में ऐसे गुणों का सतत विकास होगा जो मादाओं को आकर्षित करें। लैंगिक वरण को एक ही लिंग के सदस्यों के बीच होने वाली ऐसी प्रतियोगिता कहा जा सकता है, जिससे वे विपरीत लिंग के सदस्यों का मन जीतते हैं।

बहुसंगमनी (polygamous) समाजों में लैंगिक वरण अधिक प्रखर रूप में दिखाई देता है। लैंगिक वरण का एक उदाहरण अलास्का के करीब प्रिबिलॉफ द्वीप में पाई जाने वाली फर सील (fur seal) *कैलोरिनस अर्सिनस (Callorhinus arsinus)* के मैथुन व्यवहार का है। फर सील के नर, मादाओं से कोई डेढ़ गुना अधिक लंबे और छः गुना अधिक वजन वाले होते हैं। मैथुन से पहले ये समुद्री सांड प्रजनन स्थल पर मिलते हैं और फिर इनमें भयंकर भिडंत होती है। इस लड़ाई में कई नर मारे जाते हैं और कुछ मैदान से भाग खड़े होते हैं। विजेता नर इसके बाद अपनी गायों (मादा फर सील) के एक "हरम" के साथ किसी चट्टानी तट पर बस जाता है।

यह उदाहरण प्राकृतिक जीवसंख्या से लिया गया है। लैंगिक वरण को स्पष्ट करने के लिए प्रायोगिक उदाहरण तो अधिक नहीं हैं। स्वीडन के एक जीवविज्ञानी एम. एंडरसन (1982) ने अफ्रीकी विडो बर्ड (पक्षी) *यूप्लेक्टस प्रोग्ने (Euplectus progne)* में लैंगिक वरण को प्रदर्शित किया है। इन चिड़ियों में एक सुस्पष्ट लैंगिक द्विरूपता देखने में आती है। इनके नरों में कोई आधा मीटर लंबी आकर्षक पूंछ होती है और डैनों में बड़ी साफ व रंगीन चित्तियां मौजूद होती हैं। पर मादाओं की पूंछ काफी छोटी और रंग बड़ा फीका होता है। नर पक्षियों के आचरण में बड़ी जबरदस्त प्रादेशिकता दिखाई देती है और अपने-अपने इलाके में हरेक नर पक्षी नीडन मादा पक्षियों अर्थात् मादाओं से भरे अनेक घोंसले रखते हैं। एंडरसन ने अपने एक प्रयोग में नर पक्षियों की पूंछ की लंबाई में विभिन्नता पैदा की। यह काम उन्होंने कुछ नर पक्षियों की पूंछों को आधा कतर कर और फिर उन्हें सामान्य नर पक्षियों से जोड़ कर किया। इस तरह उन्होंने नर पक्षियों के तीन भिन्न वर्ग बनाए : छोटी पूंछ वाले, सामान्य पूंछ वाले और लंबी पूंछ वाले। इन नर पक्षियों को जब उनके प्राकृतिक आवास में छोड़ा गया, तो तीनों वर्गों ने अपने-अपने इलाकों की स्थापना करने में कामयाबी पा ली। मगर अपने प्रदेश में मादाओं को आकर्षित करने में सबसे सफल लंबी पूंछ वाले नर पक्षी रहे और सबसे कम सफल छोटी पूंछ वाले। इस प्रयोग ने यह दिखा दिया कि लिंगों के बीच भेदों को बनाए रखने में कुछ निश्चित गुण महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। ऐसे ही गुणों के लिए मादा की पसंद से नरों को अनुकूली लाभ हासिल हो जाता है।

लैंगिक वरण की बात करते समय एक सवाल अक्सर उठाया जाता है कि क्या किसी गुण का अति विशिष्टीकरण जाति विशेष को विलुप्ति की ओर ले गया होगा? एंडरसन के प्रयोग में यह दिखाया गया था कि मादाओं ने अधिकतर लंबी पूछों वाले नरों को ही चुना था। इससे नर संतानों की अधिकांश संख्या लंबी पूंछ वाला होगी। अगर इस प्रक्रम को जारी रखा जाय तो लंबी पूंछ के जीन का जीवसंख्या के लिए वरण कर लिया जाएगा। कालांतर में जीवसंख्या में सिर्फ लंबी पूंछों वाले पक्षी ही होंगे और उनमें से कुछेक में पूंछ का अति विकास होगा। हमने पहले बताया ही है कि लंबी चटकीली पूंछ जैसे ध्यानाकर्षी गुण सीधे ही परभक्षियों को अपनी ओर खींचते हैं। इसलिए मध्यम लंबाई वाली पूंछों के पक्षियों की तुलना में ऐसे पक्षी परभक्षियों के आक्रमण के लिए सुलभ हो जाते हैं। ऐसे गुण जीव की योग्यता को कम कर सकते हैं और संभवतः इनकी वजह से जातियों का विलोप भी हो सकता है। आर.ए. फिशर ने इस तरह की वरण प्रक्रिया को पलायित वरण (runaway selection) कहा है।

बोध प्रश्न 4

बताइए नीचे दिए गए कथनों में कौन सही है, कौन गलत। सही उत्तर पर (√) का चिह्न लगाइए।

क) विपरीत लिंगों में दिखावट में सुस्पष्ट और असाधारण समानता वाले जंतुओं को लैंगिक द्विरूपता दिखाने वाला कहा जाता है। सही/गलत

ख) लैंगिक वरण सिद्धांत कहता है कि मादाएं अपने संगी का वरण खुद करती हैं। इसलिए जो नर अपने लिंग के दूसरे सदस्यों से अधिक आकर्षक या ताकतवर होगा उसे मैथुन करने और अपने पीछे संतानें छोड़ने के अवसर मिलेंगे। सही/गलत

ग) किसी गुण का अति विशिष्टीकरण एक निश्चित वातावरण के लिए जीव की योग्यता को कम कर सकता है और संभवतः किसी जाति का विलोप भी कर सकता है। सही/गलत

12.6 सगोत्र और समूह वरण

प्राकृतिक वरण की धारणा को समझाते हुए हमने इस बात को विशेष जोर देकर कहा था कि प्राकृतिक वरण विभेदात्मक अयादृच्छिक प्रजनन का ही पर्याय है। प्राकृतिक वरण का लक्ष्य उन जीनों का गुणन करना होता है, जो जीवसंख्या की प्रजननात्मक सफलता में योगदान करते हैं। दूसरे तरीके से कहें तो अगर कोई जीन किसी भी तरह से जाति की प्रजननात्मक सफलता में कोई योगदान नहीं करता तो इसकी संभावनाएं अधिक हैं कि वह जीवसंख्या से ही दूर हो जाए। डार्विन के कुछ आलोचकों का कहना है कि जीवों का परोपकारी (altruistic) व्यवहार प्राकृतिक वरण के विरोध में प्रमाण देता है। यह सही है या नहीं इसकी चर्चा हम आगे के भाग में करेंगे।

12.6.1 सगोत्र वरण

सगोत्र वरण (kin selection) की बात शुरू करने से पहले आइए यह जान लें कि परोपकारिता (altruism) क्या है। यह जीवसंख्या के किसी सदस्य जीव के व्यवहार का ऐसा स्वरूप है, जिससे दूसरे सदस्यों को लाभ पहुँचता है। संभव है कि परोपकारिता के जीन ही ऐसे जीवों के आचरण को नियमित करते हों। अपने झुंड के दूसरे सदस्यों को किसी खतरे के प्रति खबरदार करने के लिए एक पक्षी द्वारा दिया जाने वाला चेतावनी संकेत या अपने छत्ते को बचाने के लिए आक्रमणकारी को मधुमक्खी का काटना आदि परोपकारिता के चंद उदाहरण हैं। दोनों ही मौकों पर हो सकता है कि परोपकारी जीव जीवित नहीं रह पाए। संकेत देने वाला पक्षी परभक्षी का ध्यान खींचकर उसके हत्थे चढ़ सकता है और मधुमक्खी डंक मारने के बाद प्रायः मर जाया करती है। इससे आप समझ ही गए होंगे कि इन जीवों के मरने से ऐसे व्यवहार से संबंधित जीन का भी विलोप हो जाता है। डार्विन के आलोचक तर्क करते हैं कि परोपकारिता एक व्यवहार के तरीके के रूप में एक अनुकूलन तो है, मगर यह सचाई कि परोपकारियों को ही ऐसे व्यवहार के लिए शिकार बनना पड़ता है, इस धारणा को ही गलत ठहरा देती है कि प्राकृतिक वरण जीवसंख्या में अनुकूल जीनों को बढ़ावा देता है।

ब्रिटिश जीवविज्ञानी डब्ल्यू.डी. हैमिल्टन ने प्रभावशाली तरीके से सिद्धांत स्थापित किया कि परोपकारिता प्राकृतिक वरण की काट करने वाला प्रमाण नहीं। उन्होंने परोपकारी व्यवहार को समझाने के लिए सगोत्र वरण का प्रतिपादन किया। सगोत्र वरण को हम प्राकृतिक वरण के समतुल्य ही रख सकते हैं, यदि हम

किसी जीव के नातेदार या संबंधी के बारे में ज्ञात कर रहे हों। उदाहरण के लिए एक मां अपने बच्चों को स्तनपान या उनके लालन-पालन में ऊर्जा खर्च तो करती है, पर साथ ही में अपनी संतान के माध्यम से वह अपने जीनों की प्रजननात्मक सफलता को ही सुनिश्चित करती है। सगोत्र वरण ऐसे परोपकारी व्यवहार का ही पक्ष तब लेता है कि जब इसमें किसी जीव द्वारा उठाए गए खतरे या खर्च की गई ऊर्जा के बदले में उससे कई गुना लाभ उसके संबंधियों को मिल रहा हो।

सगोत्र वरण पर आइए एक और दृष्टिकोण से विचार करें। किसी जनक की दो संतानें हैं। माना कि इस जनक की परोपकारी मृत्यु हो जाती है। या कह लें कि वह अपने बच्चों की रक्षा करते हुए मारा जाता है। यह ऐसा उदाहरण है, जिसमें वरण संतान के माध्यम से जनक परोपकारिता के जीन को बढ़ावा देता है। जे.बी.एस. हाल्डेन ने बड़े ही सटीक शब्दों में परोपकारिता और सगोत्र वरण को समझाया है : "मैं अपने दो भाइयों या आठ चचेरे भाइयों के लिए अपनी जान दे दूँगा।" इस एक वाक्य में ही सगोत्र वरण का सार है। किसी जीव के जीनों में उसके भाइयों या बहिनों के अंश की प्रायिकता (probability) आधी और चचेरे भाई-बहनों के लिए एक आठवीं होती है। यानी जीव के जीनों का आधा अंश सहोदरों और आठवां अंश चचेरे भाई-बहिनों में होता है। अब अगर जीव अपने परोपकारी व्यवहार के कारण मर जाए तो भी अपने सहोदरों और चचेरे भाई-बहिनों के जरिए उसके जीनों के जीवसंख्या में प्रसारित होने की अधिक संभावनाएं होती हैं। इसके विपरीत अगर जीव "स्वार्थी" ही रहता है, तो इससे वह अपनी ही नहीं, बल्कि अपने सभी संबंधियों की जान गवां सकता है। उदाहरणतः अगर किसी परभक्षी या आक्रमणकारी के दिखाई देने पर चेतावनी की पुकार नहीं लगाई जाती है तो इससे समूची बस्ती ही उजड़ सकती है, जीवसंख्या का समूचा जीनोम ही लुप्त हो सकता है।

सगोत्र वरण दरअसल अध्ययन के एक और बड़े क्षेत्र यानी समाज-जैविकी (socio-biology) का एक पहलू है। हार्वर्ड के एक जीवविज्ञानी और जीव-विज्ञान के इस क्षेत्र में पथ-प्रदर्शक वैज्ञानिक ई.ओ. विल्सन ने तरह-तरह के जंतु समाजों का सर्वेक्षण किया। अपने इस अध्ययन से उन्होंने यह प्रमाणित किया कि प्राकृतिक वरण के डार्विनवादी अवधारणा के परिपेक्ष्य में परोपकारी व्यवहार को समझा जा सकता है। मधुमक्खियों का छत्ता, दीमकों का टीला, शेरों का झुंड, कौओं का झुंड, बैबूनों का दल, आदि सब ऐसे उदाहरण हैं जिनमें जंतु अधिकांश अपने संबंधियों या जातिवर्ग के साथ रहते हैं। मधुमक्खी जैसे सामाजिक कीटों में तो एक बड़ी ही रोचक बात देखने में आती है। मधुमक्खियों की बस्ती में एक रानी अनेक अगुणित नर (haploid drones) मक्खियां और भारी संख्या में द्विगुणित मादा बांझ कर्मी (diploid female sterile workers) होते हैं। कर्मियों के जीनोम का करीब 75% अंश समान होता है। बस्ती में अनेक कर्मियों के बीच कोई एक मधुमक्खी संभावित रानी होती है। नर और रानी का काम सिर्फ प्रजनन करना होता है। मगर कर्मियों को भोजन की खोज करने से लेकर बस्ती की रक्षा करने तक तरह-तरह के काम करने होते हैं। सही मायनों में वे परोपकारी होती हैं। बांझ होने के कारण वे अपने जीनों को सीधे तरीके से जीवसंख्या में नहीं फैला सकती हैं। मगर अपने परोपकारी व्यवहार से बस्ती की निरंतरता को सुनिश्चित कर लेती हैं और जब वे अपनी एक बहिन को अपने कुनबे की रानी बनाती हैं तो इस तरह उन्हें अपने जीनों को फैलाने की अधिक प्रायिकता हासिल हो जाती है। इस प्रकार प्राकृतिक वरण मधुछत्ते में बांझ मादा कर्मियों की मौजूदगी की व्याख्या करता है।

12.6.2 समूह वरण

बस्तियों या जीवसंख्या पर प्राकृतिक वरण के उस प्रभाव को जो एक जीव समूह की अपेक्षा दूसरे समूह को समर्थन देता है, समूह वरण (group selection) कह सकते हैं। समूह किसी जीवसंख्या या बस्ती में जीवों का छोटे से छोटा जमावड़ा हो सकता है। ध्यान देने की बात है कि समूह वरण अलग से जीवों वाले वरण से एकदम भिन्न है। जीवसंख्या में विभिन्न समूहों के जीनप्ररूपों की योग्यता अलग-अलग हो सकती है। परोपकारिता की धारणा समूहों के लिए भी लागू हो सकती है। परोपकारी सदस्यों वाली बस्ती के लिए उत्तरजीविता की संभावनाएं उस बस्ती से बेहतर होती हैं, जिसके जीव स्वार्थी होते हैं। आइए ऐसी स्थिति की कल्पना कर लें, जिसमें एक बस्ती के जीव वातावरण की वहन क्षमता की तनिक भी परवाह किये बिना बेहिसाब प्रजनन करते हैं। जबकि दूसरी तरह की जीवसंख्या वृद्धि पर अंकुश लगाने वाले जीनों वाले जीवों की एक और बस्ती है, जो वातावरण के भोजन संसाधनों का भरपूर उपयोग कर रही है। वरण हर हाल में इसी समूह का ही पक्ष लेगा और हो सकता है कि पहले वाले समूह को विलोपन का सामना करना पड़े।

बोध प्रश्न 5

निम्न में रिक्त स्थान भरिये ।

क) ..... जीवसंख्या में किसी जीव का ऐसा व्यवहार है जिससे दूसरे सदस्यों को लाभ पहुँचता है ।

ख) .... परोपकारी व्यवहार का पक्ष तब लेता है जब कि किसी एक जीव द्वारा उठाए गए खतरे का खर्च की गई ऊर्जा के बदले में उससे कई गुना लाभ उसके संबंधियों को मिल रहा हो ।

ग) बस्तियों या जीवसंख्या पर प्राकृतिक वरण के उस प्रभाव को, जो एक जीव समूह का दूसरे समूह की अपेक्षा पक्ष लेता है .... कह सकते हैं ।

12.7 सारांश

इस इकाई में हमने विकास की एक मार्गदर्शक शक्ति के रूप में प्राकृतिक वरण की भूमिका के बारे में जाना । इस इकाई को पढ़ लेने के बाद आप निम्न बातें जान गए होंगे :

- औद्योगिक अतिकृष्णता का उदाहरण, हमारे जीवन काल में ही प्राकृतिक परिस्थितियों में प्राकृतिक वरण किस तरह से काम करता है, इसकी जानकारी देता है । औद्योगिक अतिकृष्णता यह भी दिखाता है कि किसी जीवसंख्या से किसी जीन का तब तक विलोप नहीं होता, जब तक कि उसमें ऐसा वैकल्पिक जीन मौजूद नहीं हो जो उत्तरजीविता के लिहाज से श्रेष्ठ न हो । आगे यह उदाहरण दिशात्मक वरण पर भी प्रकाश डालता है, जो एक बदलते वातावरण में जीवों के अनुकूलनों के विकास में प्राकृतिक वरण की भूमिका को समझाता है ।
- वातावरण से अपनी विभिन्न जरूरतों को पूरा करने के लिए जाति के जीवों में प्रतिस्पर्धा यानि प्रतियोगिता होती है । इसके फलस्वरूप अनुकूलनों का विकास होता है । कभी-कभार ऐसी होड़ भिन्न-भिन्न जातियों के जीवों के बीच भी देखने में आती है । ऐसे मौकों पर दो जातियों के निकेतों में अतिव्यापन होता है । यह अतिव्यापन बार-बार गुण विस्थापन और पारिस्थितिक अपवर्जन की ओर ले जाता है । इन सारी परिघटनाओं का कुल नतीजा ऐसी जातियों के विकास में होता है जो मैत्रीभाव से पारस्परिक क्रिया करती हैं । ये विकसित जातियां ऐसे समुदायों में रहती हैं, जहाँ प्रतिस्पर्धा कम से कम होती है या फिर उससे पूरी तरह से दूर रहा जाता है । ऐसे समुदायों को सहानुकूलित समुदाय कहा जाता है ।
- सहविकास की धारणा दो या उससे अधिक जातियों के समन्वित विकास से जुड़ा है । ये जातियां आहार-शृंखला के भिन्न-भिन्न स्तरों में रहती हैं । जातियों के बीच अक्सर एक जैविक पारस्परिक क्रिया होती है । ऐसी पारस्परिक क्रियाएं परस्पर लाभकारी या एक दूसरे के विरोधी हो सकते हैं । सहविकास प्रक्रम से उपजने वाले अंतर्जातीय संबंधों के विभिन्न रूप होते हैं । ये हैं पादप — शाकाहारी, परपोषी-परजीवी और शिकार-परभक्षी सहवास ।
- लगिक वरण का सिद्धांत कहता है कि मैथुन के लिए साथी को लेकर नरों में प्रतियोगिता होती है । इसी प्रतियोगिता ने ऐसे गुणों का विकास किया है जो मादाओं को अपनी ओर आकर्षित करते हैं ।
- परोपकारिता किसी जीव का ऐसा व्यवहार है, जिससे उसके कुल या समाज के दूसरे सदस्यों को लाभ पहुँचाता है । सगोत्र और समूह वरण यह स्पष्ट करते हैं कि परोपकारिता प्राकृतिक वरण के सिद्धांत की कोई काट नहीं करती । इसके विपरीत सगोत्र और समूह वरण यानी चयन सिद्धांत समाज-जैविकी का आनुवंशिक आधार बनता है ।

12.8 अंत में कुछ प्रश्न

1. अंतःजातीय और अंतराजातीय प्रतियोगिता में भेद बताइए । संक्षेप में समझाइए कि अंतराजातीय प्रतियोगिता से सहानुकूलित समुदायों का विकास होता ।

.....

.....

2. गुण विस्थापन से आप क्या समझते हैं? एक उचित उदाहरण देकर बताइए कि गुण विस्थापन अंतराजातीय प्रतियोगिता का नतीजा है ।

3. संक्षेप में सहविकास की धारणा की व्याख्या दीजिए । परपोषी-परजीवी संबंध का एक उदाहरण देकर इस धारणा के बारे में विस्तार से बताइए ।

4. व्यवहार में प्राकृतिक वरण को दिखाने के लिए एक श्रेष्ठ मॉडल औद्योगिक अतिकृष्णता है । इस कथन का विवेचनात्मक विश्लेषण करिए ।

5. लैंगिक वरण से आप क्या समझते हैं । एक अच्छे उदाहरण के साथ उत्तर दीजिए ।

6. आप डार्विनवाद के खिलाफ इस आलोचना का किस तरह उत्तर देंगे कि जीवों के आम परोपकारी व्यवहार ने प्राकृतिक वरण की काट में प्रमाण दिया है?

12.9 उत्तर

बोध प्रश्न

1. क) विलोप
   ख) अतिकृष्ण, अकृष्ण
   ग) औद्योगिक क्रांति, बढ़ते, दुर्लभ
   घ) वरण, रक्षी रंजन
   च) दिशात्मक वरण
   छ) स्थायीकारी वरण

2. क) असत्य; ख) सत्य; ग) असत्य; घ) असत्य; च) सत्य; छ) असत्य; ज) - सत्य; झ) सत्य;

3. क) अनुकूलन
   ख) सहभोजिता, सहोकारिता, परभक्षण और परजीविता
   ग) सहविकास
   घ) प्राकृतिक वरण, परभक्षी, शिकार
   च) पारस्परिक लाभदायक
   छ) जियो और जीने दो।

4. क) असत्य; ख) सत्य; ग) सत्य;

5. क) परोपकारिता
   ख) प्राकृतिक वरण
   ग) समूह वरण

अंत में कुछ प्रश्न

1. **अंतःजातीय प्रतियोगिता :** एक ही जाति के जीवों के बीच यह प्रतियोगिता पारिस्थितिक और प्रजननात्मक दोनों स्तरों पर होती है। पारिस्थितिक स्तर पर प्रतियोगिता वातावरण से समान जरूरतों को पूरा करने के लिए होती है। इनमें मैथुन के लिए साथी की जरूरत भी आती है। प्रजननात्मक स्तर पर अपने पीछे अधिक से अधिक वंशजों को छोड़ने के लिए प्रतियोगिता होती है।

   अंतराजातीय प्रतियोगिता : यह भिन्न जातियों के जीवों में होने वाली प्रतियोगिता है। यह पारिस्थितिक स्तर पर अधिक प्रखर होती हैं। अंतराजातीय प्रतियोगिता से सहानुकूलित समुदायों का विकास होता है। इस बात को समझाने के लिए आप आर.एच. मैकआर्थर द्वारा किए गए अध्ययन का जिक्र कर सकते हैं जो उन्होंने स्प्रूस वृक्ष में भिन्न निकेतों में वास करने वाले वार्बलरों पर किया था। आप यह भी चर्चा कर सकते हैं कि वार्बलर की विभिन्न जातियां निकेत अतिव्यापन से किस तरह बड़े आराम से बच लेती हैं और तब भी ये जातियां एक ही स्प्रूस वृक्ष में भोजन और स्थान के लिए कोई ज्यादा होड़ किए बिना एक साथ रह लेती हैं।

2. एक निकेत में रहने वाली दो जातियां किसी एक गुण को लेकर अपसारित होती हैं या कह लें एक दूसरे से किसी खास गुण के मामले में एकदम अलग होती हैं। यह उनमें होने वाली प्रतियोगिता की वजह से होता है। गुण में अपसारिता को ही गुण विस्थापन कहते हैं। भाग 12.2.3 में दिए गए बार्नेकल के उदाहरण से आप इस धारणा को अच्छी तरह से स्पष्ट कर सकते हैं।

3. सहविकास दो या उससे अधिक जातियों के सहानुकूलित विकास को सार्थक बनाता है। यह दो जातियों के बीच जैविक पारस्परिक क्रिया के परिणामस्वरूप होता है जो किसी आहार शृंखला में दो भिन्न स्तरों में बसी होती है। सहविकास को स्पष्ट करने के लिए आप 12.3.3 भाग में दिए गए परजीवी-परपोषी संबंध का जिक्र कर सकते हैं। इसमें आस्ट्रेलियाई खरगोश और मिक्सोमा नामक विषाणु के बीच में हुए सहविकास के बारे में विस्तार से बताया गया है। अगर आपकी जानकारी में कोई और उदाहरण हो तो उससे भी आप इस परिघटना के बारे में बता सकते हैं।

4. औद्योगिक अतिकृष्णता का संबंध पतंगों की उन जातियों से है जो पहले तो हल्के रंग की थीं मगर औद्योगिक क्रांति के दौरान वे अतिकृष्ण रूपभेद में विकसित हो गईं। इन अतिकृष्ण रूपभेदों ने औद्योगिक इलाकों में अकृष्ण रूपों की जगह ले ली। औद्योगिक अतिकृष्ण काले धुएं से प्रदूषित औद्योगिक इलाकों में अकृष्ण जातियों को अतिकृष्ण जातियों से हटाने में वरण की भूमिका के बारे में हमें बताती हैं। 12.4 भाग में इस विषय पर और विस्तार से चर्चा की गई है।

5. मैथुन-संगी के लिए प्रतियोगिता (प्रायः मादाओं को आकर्षित करने के लिए नरों में होने वाली प्रतियोगिता) से कुछ खास गौण लैंगिक गुणों का चयन हुआ है। नरों में ऐसे गुणों का सतत विकास होता है, जो मादाओं को अपनी ओर आकर्षित करते हैं। खूबसूरत रंग-रूप, अलंकृत कलंगी, चटकीला पक्षति, विस्तीर्ण सींग, अलंकारी दांत और आक्रामक व्यवहार आदि सभी गौण लैंगिक गुण हैं, नरों ने जिनका विकास मादाओं को आकर्षित करने के लिए किया है।

   लैंगिक वरण के लिए फर सील के प्रणय-आचरण का जिक्र किया जा सकता है (12.5 भाग देखें)। एक दूसरा उदाहरण विडो बर्ड पर एंडरसन द्वारा किया गया अध्ययन है जो यह साबित करता है कि कुछ खास गुणों के लिए मादाओं की पसंद नर को एक अनुकूली लाभ देती है (12.5 भाग देखें)।

6. परोपकारिता किसी जीवसंख्या में दूसरे सदस्यों के हित के लिए एक जीव में पाया जाने वाला व्यवहार है। ऐसे जीवों के व्यवहार का नियमन संभवतः परोपकारिता का जीन करता है। उदाहरणतः दूसरे पक्षियों को सावधान करने के लिए जब कोई पक्षी चेतावनी का संकेत देता है तो इससे वह परभक्षी की नजर में पड़ सकता है और उसके हाथों मारा जा सकता है। ऐसे जीवों की मृत्यु से उन जीनों का भी लोप हो सकता है, जो ऐसे व्यवहार से जुड़े हैं। एक व्यवहार के रूप में परोपकारिता हालांकि एक अनुकूलन है फिर भी असल बात यह है कि परोपकारी जीव ही ऐसे व्यवहार के शिकार बन जाते हैं। दूसरे शब्दों में अनुकूली या अनुकूल समझे जाने वाले जीनों का लोप तो हो जाता है, जबकि प्राकृतिक वरण को जीवसंख्या में ऐसे अनुकूल जीनों का प्रोत्साहन देने वाला समझा जाता है। इसी प्रसंग में ब्रिटिश जीवविज्ञानी हैमिल्टन ने परोपकारिता के व्यवहार को समझाने के लिए सगोत्र वरण के सिद्धांत का प्रतिपादन किया। इस बारे में विस्तार से चर्चा के लिए आप 12.6 भाग को देख सकते हैं।

इकाई 13 जाति उद्भवन

इकाई की रूपरेखा

13.0 प्रस्तावना
उद्देश्य
13.2 जाति की संकल्पना
13.3 जाति उद्भवन की क्रियाविधियाँ
समस्थानिक जाति उद्भवन
भौगोलिक जाति उद्भवन
13.4 बहुरूपजाति और जाति उद्भवन
13.5 पृथक्करण के दौरान आनुवंशिक पुनरप्रतिरूपण
13.6 पार्थक्य क्रियाविधियाँ
13.7 पूर्व-संगमी पार्थक्य क्रियाविधियाँ
भौगोलिक पृथक्करण
पारिस्थितिक पृथक्करण
व्यवहारिकीय पृथक्करण
यांत्रिक पृथक्करण
13.8 पश्च-संगमी पार्थक्य क्रियाविधियाँ
अंतर्जातीय बंध्यता
संकर बंध्यता
13.9 आनुवंशिक विचलन
13.10 सारांश
13.11 अंत में कुछ प्रश्न
13.12 उत्तर

13.1 प्रस्तावना

विकास के इस पाठ्यक्रम की 11वीं और 12वीं इकाई में हमने आपको समझाया था कि अनुकूलनों का विकास जीन प्ररूपों में होने वाले क्रमिक बदलावों से होता है। ये बदलाव प्राकृतिक वरण अर्थात् चयन के कारण होते हैं। प्राकृतिक वरण अलग-अलग वातावरणीय परिस्थितियों में अलग-अलग किस्म के अनुकूलनों को बढ़ावा देता है। अब चूंकि वातावरणीय परिस्थितियाँ समय-समय पर और जगह-जगह बदलती रहती हैं, जीनोम (Genome) में भी बदलाव आने स्वाभाविक हैं ताकि इसमें विकसित होने वाले लक्षण प्ररूप बदले वातावरण के लिए सबसे अधिक अनुकूलित हों। जीवों और उनके गुणों में पाई जाने वाली विविधता प्राकृतिक प्रक्रमों का ही फल है। इस इकाई में हम इसी संकल्पना को और आगे ले जाएंगे और जीव जातियों की उत्पत्ति कैसे होती है यह समझाएंगे। "जाति क्या है?" हम इस का जवाब भी पूछेंगे। जैसा कि हम बाद में बतायेंगे जातियों का बड़ा महत्व है क्योंकि सजीव प्रकृति में एकीभवन का एक खासा स्तर उनमें देखने में आता है। हम पहले जीव जातियों की संकल्पना की व्याख्या देंगे और फिर जाति उद्भवन के प्रक्रम के विषय में पढ़ेंगे। जीव विकास में जाति उद्भवन महत्वपूर्ण है क्योंकि यह प्रकृति में विविधता लाता है और कुछ खास मौकों पर प्रगामी विकास (progressive evolution) को जन्म देता है। जाति और जाति समस्या पर मुख्य रूप से अनुसंधान करने वाले जीव-विज्ञानी अरनेस्ट मायर कहते हैं कि जाति उद्भवन एक ऐसा प्रक्रम है, जो जैव जगत की विकासीय विविधता का मूल है। जाति उद्भवन जाति का गुणन है। यानी एक जनक जाति का अनेक संतान जातियों में विभाजन। अपनी पुस्तक **ओरिजिन ऑफ स्पीशीज़** में डार्विन ने जाति शब्द की सटीक व्याख्या नहीं दी। हाँ उन्होंने जननात्मक पृथक्करण (reproductive isolation) के रूप में जाति उद्भवन को समझाया जरूर था। पर अपनी इस पुस्तक में भी डार्विन ने जननात्मक पृथक्करण का प्रयोग नहीं किया था। डार्विन ने जोर देकर कहा था कि हर एक

जाति का विशिष्ट पारिस्थितिक निकेत में अधिकार करना जाति उद्भवन का एक मुख्य अभिलक्षण हो सकता है।

इस इकाई में हम जाति की संकल्पना का जैविक जाति पर बल देते हुए संक्षेप में विश्लेषण करेंगे और जाति उद्भवन की विभिन्न क्रियाविधियों की विस्तार से चर्चा करेंगे। आगे हम संक्षेप में यह जानेंगे कि पृथक्करण किस प्रकार आनुवंशिक पुनरप्रतिरूपण पैदा करता है। इसके बाद हम कुछ उदाहरण देकर आपको पृथक्करण की क्रियाविधियों की जानकारी देंगे। पार्थक्य क्रिया विधियों का किस तरह धीरे-धीरे विकास होता है, इसे समझाने के लिए हम वलय जाति संकल्पना के बारे में बताएंगे, जिसका मतलब है एकदम नई जातियों का विकास। आखिर में आनुवंशिक विचलन के बारे में चर्चा की जाएगी। हालांकि आनुवंशिक विचलन का जाति उद्भवन प्रक्रम से कोई कारण-संबंध नहीं है, मगर इससे हमें पता चलता है कि प्रतिचयन-त्रुटि (sampling error) की वजह से परिरेखीय पृथक्कृतों में जीन बारंबारताओं का विचलन (drift) होता है।

उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ लेने के बाद आपः

- जाति संकल्पना को समझ जाएंगे और जाति की व्याख्या कर सकेंगे,
- जाति उद्भवन के मुख्य प्रकारों को बता सकेंगे,
- पार्थक्य क्रियाविधि के क्रमिक विकास से वलय जातियों के निर्माण को समझा लेंगे,
- पृथक्करण प्रक्रम के दौरान होने वाले आनुवंशिक पुनरप्रतिरूपण की संकल्पना को स्पष्ट कर सकेंगे, और
- आनुवंशिक विचलन परिघटना यानी छोटी जीवसंख्याओं में जीन बारंबारताओं में बड़े पैमाने पर होने वाले बदलाव के बारे में बता सकेंगे।

13.2 जाति की संकल्पना

खंड 3 की 11वीं इकाई में हमने जीवों में पाई जाने वाली विभिन्नताओं की सर्वव्यापकता के बारे में बताया था। खंड 1 की इकाई 3 वर्गिकी के पाठ में आपने जीवों के भिन्न जीव जगतों (Kingdoms) में विभाजन के बारे में पढ़ा था। हर जगत आगे संघ, समूह, वर्ग आदि में बंटा होता है। ऐसे वर्गीकरण जीवों के भिन्न समूहों में पायी जाने वाली विभिन्नता के आधार पर किए जाते हैं। पर जैसे-जैसे हम जैव-विकास के निचले स्तर पर आते हैं विभिन्नताओं का पता लगाने के लिए हमे और अधिक सुक्ष्म विधियों की जरूरत पड़ती है। सूक्ष्मजीवों से लेकर मानव तक जैविक संगठन में बढ़ती जटिलता देखी तो जा सकती है, मगर यह जटिलता क्रमानुसार नहीं होती। संगठन में पायी जाने वाली असंगतियां कुछ खास मध्यवर्ती जीवों के विलोपन को दर्शाती हैं। अत्यधिक विलोपन और जीवाश्म अभिलेख के अधूरेपन को देखते हुए इस जगत में रहने वाले सभी जीवों को एक संग्रह में क्रमबद्ध कर पाना कभी संभव नहीं होगा। पर इसके साथ ही हमें यह भी याद रखना होगा कि जीवों के विभिन्न समूहों में मौजूद इन्हीं असंगतियों के कारण ही जीवों का वार्गीकरण संभव हुआ है। किसी एक जीव (या जीवों) को इस या उस समूह में शामिल करने को लेकर कुछ मतभेद हो सकते हैं, मगर समग्र में वर्गीकरण प्रणाली को लेकर एक आम सहमति है। कोई जीवों के एक गण को कई कुलों में बांट सकता है, तो दूसरा इन कुलों को एक गण में रख सकता है। मगर इस पर सहमति जरूर है कि किसको बाँटा और किसको समूहित किया जाना चाहिए। पर जीवों का समूहों में वर्गीकीय विभाजन स्वाभाविक होने के बजाए मनमाना है और कुछ सुविधाओं पर आधारित है। अगर ऐसा है तो फिर जाति (species) क्या है?

जाति की कई व्याख्याएं दी गईं, पर उनमें कोई भी संतोषजनक नहीं निकली। इन व्याख्याओं से निश्चित रूप से यह पता नहीं चल पाया कि कोई दो समान समूह अलग-अलग जातियां हैं या महज उप-जातियां। फिर किसी जाति की भिन्नता को तय करने की कसौटी क्या है? कुछ लोगों ने अंतर की मात्रा (degree of difference) बताने की कोशिश की जो एक जाति को दूसरी जाति से भिन्न करती थी। ऐसे भेदों को परिमाण में बांधने में आने वाली मुश्किल के अलावा दूसरे किस्म की समस्याएं भी हैं। कुछ खास जीवरूप बिल्कुल भिन्न जातियां निकलीं, जबकि उनमें बहुत कम आकारिकीय भेद दिखाई देते हैं। अब *होमो*

सेपियंस (मानव जाति) को लें, जिसकी एक ही जाति होने में कोई संदेह नहीं है। मगर इसकी विभिन्न नस्लों में सुस्पष्ट भेद या अंतर दिखाई पड़ते हैं। ऐसा लगता है कि समूहों के बीच असंगति अंतर की मात्रा पर कम और भेदों की स्थिरता पर अधिक निर्भर करती है।

जाति को परिभाषित करने के लिए एक और तरीका अपनाया गया। इसमें परस्पर संबंधित जीवों को प्रजनन करने की उनकी अयोग्यता के आधार पर अलग-अलग किया गया। जाति की अनेक परिभाषाएं अंतराजातीय बंध्यता और संतानों की बंध्यता यानी संकर बंध्यता (hybrid sterility) पर आधारित है। लेकिन इसमें भी कुछ समस्याएं हैं। ऐसे मामलों का पता लगाना आसान नहीं होता, जिनमें जीव अंतःप्रजनन (परस्पर प्रजनन) न करते हों, या जो प्रजनन कर सकते हैं पर कुछ कारणों से न कर पाते हों। ऐसे में बंध्यता (sterility) जाति को परिभाषित करने की एक सही कसौटी नहीं मानी जा सकती। तब भी अनेक विकासवादी जीव-विज्ञानियों ने चाहे वह डॉबज़ांस्की हों, गोल्डस्मिथ हों या फिर अरनेस्ट मायर हों, जाति की जो परिभाषाएं दी हैं, उनमें जननात्मक पृथक्करण (reproductive isolation) या प्रजनन अक्षमता ही समान आधार है। जननात्मक पृथक्करण जाति और जाति उद्भवन को परिभाषित करने का आधार रहा है। यह पार्थक्य क्रियाविधि संबद्ध जीवसंख्याओं के बीच जीवों के प्रवाह में एक प्रतिरोध बनकर खड़ी हो जाती है। जैव-जातियों की धारणा इसी परिघटना के इर्दगिर्द घूमती है।

अभी तक तीन प्रकार की जाति संकल्पनाएं सामने आई हैं: (1) प्ररूप जाति संकल्पना; (2) नामरूपवादी जाति संकल्पना, और (3) जैविक जाति संकल्पना। आइए संक्षेप में हर संकल्पना के बारे में जानें और पता लगाएं कि जाति की व्याख्या के लिए जैविक जाति संकल्पना दूसरी संकल्पनाओं से अधिक सही क्यों लगती है।

1. प्ररूप जाति संकल्पना

प्ररूप जाति संकल्पना (Typological species concept) को 2000 साल से भी पहले प्लूटो ने सुझाया था। इस संकल्पना के अनुसार प्रकृति में मौजूद भारी विविधता को गिने-चुने "प्ररूपों" में वर्गीकृत किया जा सकता है। जीवों में भिन्नताएं हो सकती हैं मगर वे एक प्ररूप से जुड़े होते हैं। व्यवहार में यह केवल आकारिकीय जाति संकल्पना (Morphological species concept) है। आज के ज्यादातर विकासवादी प्ररूप जाति संकल्पना को अपर्याप्त मानते हैं क्योंकि यह एक जड़ संकल्पना (static concept) है। ऐसा इसलिए क्योंकि यह संकल्पना एक महत्वपूर्ण विकासीय प्रक्रम के रूप में जाति उद्भवन की गतिशीलता को नहीं समझा पायी है।

2. नामरूपवादी जाति संकल्पना

इस संकल्पना के समर्थक प्लूटो के "प्ररूपों" के अस्तित्व को ही नहीं मानते। उनके लिए बस जीवों का ही अस्तित्व है। जातियां मानव द्वारा रची कपोल-कल्पना मात्र हैं। मगर ऐसे प्रकृति-विज्ञानी अर्थात् वे जीवविज्ञानी जिन्होंने अनेक वर्षों तक पौधों और जन्तुओं का प्राकृतिक परिस्थितियों में करीब से अध्ययन किया है, दावा करते हैं कि नामरूपवादी जाति संकल्पना में कोई सचाई नहीं है।

3. जैविक जाति संकल्पना

यह संकल्पना दावा करती है कि जातियां प्राकृतिक जीवसंख्याओं से बनी होती हैं और वे वास्तविक व वस्तुगत होती हैं। वे मानव द्वारा गढ़ी आत्मगत कपोल-कल्पनाएं मात्र नहीं। इस संकल्पना के अनुसार किसी जाति के सदस्य जननात्मक समुदाय होते हैं। जाति एक पारिस्थितिक इकाई भी है। एक इकाई के रूप में वह दूसरी जातियों से परस्पर-क्रिया करती है जिनके साथ वह वातावरण में मौजूद संसाधनों का उपयोग करती है। जाति एक जीन कोश (gene pool) भी है। जैविक जाति संकल्पना के इन पहलुओं को हार्वर्ड विश्वविद्यालय के जीवविकास विज्ञानी अरनेस्ट मायर ने अपनी प्रसिद्ध व्याख्या में स्पष्ट किया है। मायर के अनुसार, "जातियां अंतःप्रजनन करने वाली प्राकृतिक जीवसंख्याओं के समूह हैं, जो जनन की दृष्टि से ऐसे दूसरे समूह से पृथक होती हैं।" जैविक जाति किसी निश्चित काल में एक स्पष्ट इकाई ही नहीं है, बल्कि इसमें लंबे अर्थात् लाखों वर्षों में बदलने की विकासीय क्षमता भी होती है।

बोध प्रश्न 1

नीचे दिए गए कथन सत्य (स) हैं या असत्य (अ) बताइए :

क) जीवों के समूहों के बीच असंगति अंतर की मात्रा पर कम, अंतरों की स्थिरता पर अधिक निर्भर करती हैं। ( )

ख) जननात्मक पार्थक्य क्रियाविधि जाति और जाति उद्भवन की परिभाषा का आधार रही है। ( )

ग) प्ररूप जाति संकल्पना जाति उद्भवन की सबसे अधिक मजबूत और गतिशील संकल्पना है। ( )

घ) जातियां अंतःप्रजनन करने वाली प्राकृतिक जीवसंख्याओं की समूह हैं जो जनन की दृष्टि से ऐसे दूसरे समूहों से पृथक होती है। ( )

13.3 जाति उद्भवन की क्रियाविधियां

अभी हमने जाति की संकल्पना के बारे में विस्तार से चर्चा की थी और यह निष्कर्ष निकाला था कि जैविक जाति की संकल्पना और मेयर द्वारा दी गई जाति की परिभाषा को जीवविज्ञानियों में एक व्यापक सहमति मिली है। इस भाग में हम जाति उद्भवन की क्रियाविधियों या जाति की रचना कैसे होती है इस बारे में बताएंगे। जाति की मायर परिभाषा यह अच्छी तरह से बताती है कि जाति का दर्जा पाने के लिए जीवों को जननात्मक दृष्टि से दूसरे समूहों से पृथक होना चाहिए। इससे सहज ही एक सवाल उठता है कि क्या एक ही प्रदेश में रहने वाली जीवसंख्याओं से कोई नई जाति पैदा हो सकती है। दूसरे शब्दों में क्या नई जाति के निर्माण में जनक जाति की जीवसंख्याओं को एकदम अलग प्रदेशों में ही रहना चाहिए? प्राकृतिक चयन पर चर्चा करते हुए हमने आपको बताया था कि अनुकूलनों की उत्पत्ति एक क्रमिक प्रक्रम है। ठीक यही बात जाति उद्भवन के लिए भी लागू होती है। जीव-विज्ञानियों के अनुसार जाति उद्भवन तीन प्रकार का होता है :

- समस्थानिक जाति उद्भवन
- परिस्थानिक जाति उद्भवन
- विस्थानिक जाति उद्भवन

परिस्थानिक और विस्थानिक जाति उद्भवन को एक ही समूह में रखा जा सकता है, जिसे **भौगोलिक जाति उद्भवन** कहते हैं। अब हम विभिन्न प्रकार के जाति उद्भवनों के बारे में बताएंगे।

13.3.1 समस्थानिक जाति उद्भवन

समस्थानिक जाति उद्भवन एक ऐसा जाति उद्भवन है, जिसमें जनक जाति संतति जाति को कुछ इस तरह से पैदा करती है कि उस जाति के जीव-सदस्यों को स्थान या प्रदेश के कारण पृथक होने की जरूरत नहीं पड़ती। समस्थानिक जाति-उद्भवन के तात्कालिक और क्रमिक दोनों तरह के मॉडल सुझाए गए हैं। तात्कालिक जाति उद्भवन (instantaneous speciation) की एक क्रियाविधि को छोड़कर समस्थानिक जाति उद्भवन की दूसरी सभी विधियों पर बड़ा विवाद रहा है। यह एक क्रियाविधि बहुगुणिता (polyploidy) कहलाती है।

पौधों में बहुगुणिता आम रूप से पायी जाती है। (बहुगुणिता के बारे में और अधिक जानने के लिए LSE-03 आनुवंशिकी के खंड 2 की 10वीं इकाई को पढ़े।) दो द्विगुणित (diploid) पोधों में संकरण होने से चतुर्गुणित (tetraploid) संकर पौधे पैदा हो सकते हैं। यह संकर जनन की दृष्टि से अपने द्विगुणित जनकों से पृथक रहेंगे। ऐसे पृथक्करण की वजह यह है कि अगर प्रतीप संकरण (back crossing) के कारण एक त्रिगुणित (triploid) पौधा पैदा हो तो वह ज्यादा संख्या में जीवनाक्षम युग्मकों (nonviable gametes) को ही पैदा करेगा। एक और संभावना यह है कि द्विगुणित और चतुर्गुणित रूपों या विभिन्न चतुर्गुणितों में संकरण होने से दूसरे बहुगुणित पौधों का भी जन्म हो सकता है।

लैंगिक प्रजनन करने वाले जीवों में बहुगुणिता दुर्लभ या कह लें नहीं ही है, ऐसे जीवों में लगभग सभी जन्तु आ जाते हैं। लैंगिक प्रजनन करने वाले जीवों में उत्परिवर्तनीय बदलाव या बहुगुणिता जैसे गुणसूत्र परिवर्तन से अगर जननात्मक पृथक्करण पैदा हो तो जीव सफलता से जनन नहीं कर सकते जब तक कि उनमें निकटतम संबंधियों में अंतः प्रजनन नहीं हो। जंतुओं में निकटतम अंतःप्रजनन होता ही नहीं है। मगर हाइमनोप्टरी परजीवी कैलिसडोइडिया (chalcidoidea) में भाई और बहनों में ही मैथुन होता है। ये भाई-बहिन एक ही परपोषी में पैदा होते हैं। इस तरह के मैथुन से इस समूह में भारी जाति विविधता आई है। पर जंतुओं में ऐसे तात्कालिक जाति उद्भवन के उदाहरण बिरले ही मिलते हैं। आमतौर पर जाति उद्भवन एक क्रमिक या धीरे-धीरे होने वाला प्रक्रम है। अब ऐसा जाति उद्भवन अंतःप्रजनन करने वाली एक ही जीवसंख्या में हो सकता है या नहीं, यह एक बहस का मुद्दा है। तब भी इस तरह के जाति उद्भवन की संभावना से पूरी तरह इंकार नहीं किया जा सकता, जैसा कि हम आगे की चर्चा में पाएंगे।

यह पहले ही बताया जा चुका है कि समस्थानिक जाति-उद्भवन तब होता है जब कभी विदारी वरण अथवा चयन सक्रिय हो। (विदारी चयन के बारे में खंड 3 की विकास की 11वीं इकाई में विस्तार से बताया गया है) उदाहरण के लिए AA और A^1A^1 जीनप्ररूपों वाले जीवों की कोई जीवसंख्या लें। ये दोनों जीवसंख्याएँ क्रमशः पौधों की 1 और 2 जातियों पर रहने अर्थात् आवास के लिए अनुकूलित हैं। विषमयुग्मजी AA^1 पौधे की दोनों में किसी भी जाति के लिए भली भांति अनुकूलित नहीं है। इसका यह मतलब है कि हर एक समयुग्मज में अधिक योग्यता (fitness) होगी अगर वह अपव्यूही या अन्यादृच्छिक संगमन करे। अपव्यूही संगमन (assortative mating) या अयादृच्छिक (non-random) संगमन से यह तात्पर्य है कि समान लक्षणप्ररूपों (यानी जीन प्ररूपों) वाले नर और मादा एक दूसरे के साथ संगमन या मैथुन करते हैं।

इस तरह का अपव्यूही संगमन अयोग्य विषमयुग्मजी (heterozygous) संतानों की संख्या में भारी कमी लाता है। उधर वरण प्रक्रम भी दो भिन्न-भिन्न जीवसंख्याओं की स्थापना करता है, जिनका अपना अलग-अलग स्पष्ट व अलग जीन प्ररूप होता है। इकाई 11 के अध्ययन से आपको याद होगा कि विदारी या विविधरूपकारी वरण की यही भूमिका है। एक दूसरा विस्थल (locus) ख दोनों प्रकार के जीनप्ररूपों को अपव्यूही संगमन गुण अर्थात् विशेषक (assortative mating trait) प्रदान कर सकता है। यह विस्थल मैथुन व्यवहार को प्रभावित कर सकता है। या फिर मैथुन करने और अंडे देने के लिए यह एक खास परपोषी जीव को चुनने के लिए जीव को उकसा सकता है। जीनप्ररूप BB और Bb एक परपोषी में मैथुन कर सकते हैं और अंडे दे सकते हैं। जीनप्ररूप bb दूसरे परपोषी में मैथुन कर सकता है और अंडे दे सकता है। यहाँ आप देख सकते हैं कि विशिष्ट परपोषी जाति के चयन से दोनों जीनप्ररूप एक-दूसरे से पृथक हो जाते हैं। इस तरह जननात्मक पृथक्करण शुरू हो जाता है। पेड़ों में पाए जाने वाले टिड्डे जैसे पादपभक्षी (phytophagous) कीटों के समूहों में यह देखने में आता है कि घनिष्ठ रूप से जुड़ी जातियां आहार और प्रजनन के लिए विभिन्न परपोषी पादपों को चुनती हैं।

13.3.2 भौगोलिक जाति उद्भवन

करीब-करीब सभी जंतु समूहों में भौगोलिक जाति उद्भवन (geographical speciation) ही जाति उद्भवन की एक आम विधि है। नई जाति बनने की संभावना रखने वाली जीवसंख्या के लिए यह जरूरी है कि वह भौगोलिक दृष्टि से अपनी जनक जाति से पृथक हो जाए। अरनेस्ट मायर के अनुसार जाति उद्भवन होने के लिए भौगोलिक पृथक्करण हर हाल में आवश्यक है। जैसा कि हमने पहले भी बताया है, भौगोलिक जाति उद्भवन को निम्न दो श्रेणियों में बांटा जा सकता है :

1) विस्थानिक जाति उद्भवन

जंतुओं में जाति निर्माण की सबसे आम रीति है, जनक जाति की ऐसी जीवसंख्याओं द्वारा जाति-उद्भवन जो एकदम अलग प्रदेशों में बसी होती है। विस्थानिक जाति उद्भवन (allopatric speciation) विशाल महाद्वीपीय क्षेत्रों में और संभवतः विस्तृत महाद्वीपीय ढलानों और महासागरीय तल में भी होता है। किसी जीवसंख्या को जो कभी सतत शृंखला में थी एक नया अवरोध दो भागों में बांट सकता है। यह अवरोध नया-नया बना रेगिस्तान, नदी या पर्वत शृंखला हो सकता है। इस नये अवरोध के दोनों ओर की जीवसंख्या भौगोलिक दृष्टि से अलग-अलग हो जाती है। यह पृथक्करण धीरे-धीरे हो सकता है, जैसाकि चित्र 13.1 में दिखाया गया है। विस्थानिक जाति उद्भवन के इस मॉडल को डंब बैल मॉडल (dumb-bell model) कहा जाता है।

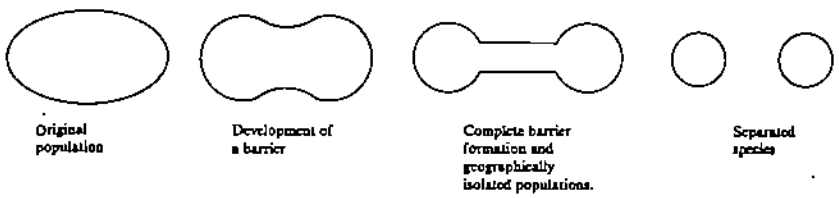

चित्र 13.1 : विस्थानिक जाति उद्भवन

विस्थानिक विधि में जाति उद्भवन हर हाल में एक जीवसंख्या में लगभग उपविभाजन से ही होता है। माना जाता है कि विस्थानिक जाति उद्भवन K- युक्तिकारियों की विशेषता है। ये युक्तिकारी बहुत ज्यादा गतिशील, अधिक आयु वाले और प्रतियोगी योग्यता में काफी आगे होते हैं।

K युक्ति (K Strategy) : करीब-करीब संतृप्त हो चुके वातावरणों में रहने वाली जीवसंख्याओं को K- वरणित कहा जाता है। इन जीवसंख्याओं में वरण अनुकूलनों के उत्तम तालमेल को प्राथमिकता देता है। जीवसंख्याओं की जनन दर हो सकता है कि अधिक न हो। इसमें बेहतर अनुकूलनों के विकास पर ज्यादा जोर रहता है। ऐसे जीव जिन पर K- वरण सक्रिय रहता है K- युक्तिकारी कहे जाते हैं।

2) परिस्थानिक जाति उद्भवन

जनक जीवसंख्या के वितरण की परिधि अर्थात् परिसर में अलग-थलग पड़ी छोटी जीवसंख्याओं में होने वाले जाति उद्भवन को परिस्थानिक जाति उद्भवन (peripatric speciation) कहा जा सकता है। छोटी, परिधीय जीवसंख्याएं उन पारिस्थितिक निकेतों में रहती हैं जहाँ जनक जीवसंख्या का कोई दखल नही होता। इन संस्थापक जीवसंख्याओं में जनक जीवसंख्या की आनुवंशिक परिवर्तनशीलता (genetic variability) का सिर्फ छोटा सा हिस्सा मौजूद हो सकता है। परिस्थानिक जाति उद्भवन से जाति की उत्पत्ति को इस प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है :

शुरू में जाति समानरूप से वितरित जीवों से बनी होती है (चित्र 13.2 A)। जीवों को ऐसी जीवसंख्याओं के रूप में समूहित किया जाता है जिनके बीच सीमित जीन प्रवाह होता है। यह जीन प्रवाह जीवसंख्याओं को एक संगठित जाति में बांधे रखता है। जब तक जीनों का मुक्त प्रवाह होता है, भले ही यह सीमित मात्रा में है, नई जाति नहीं बन सकती। परिधीय जीवसंख्याओं (यानी किसी जीवसंख्या के बाहरी छोर या परिधि में रहने वाले जीवों) में मध्य जीवसंख्याओं की तुलना में जीनों का कम प्रवाह हो सकता है (चित्र 13.2 B)। मगर अब भी वे उस जाति का ही एक अभिन्न अंग होती हैं। जब जीवसंख्या परिधि में पृथक्कृत (13.2 C) हो जाती है यानी वह सिर्फ परिधीय जीवसंख्या ही नहीं रहती, तभी नई जाति के बनने की संभावना होती है (चित्र 13.2 D)।

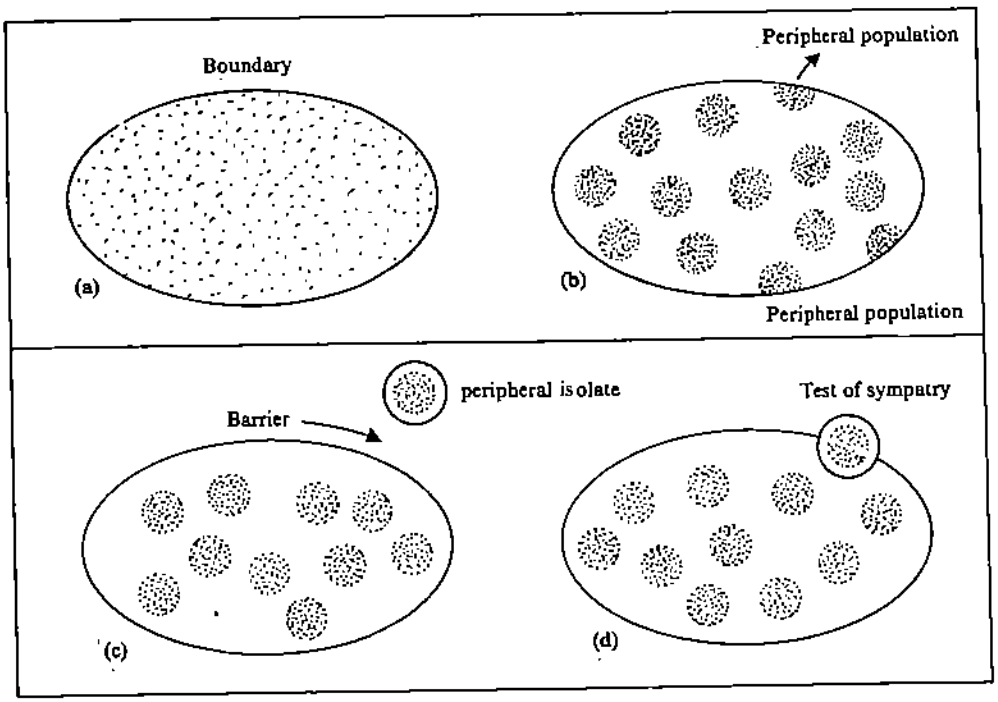

चित्र 13.2: परिस्थानिक जाति उद्भवन।

अलग-अलग वातावरणों में परिधीय पृथक्कृत जीवसंख्या का निर्माण हो सकता है। उदाहरण के लिए इसकी रचना किसी बड़े महाद्वीप से दूर किसी द्वीप में हो सकती है। एच.एम.एस. बीगल नामक जहाज पर अपनी समुद्री यात्रा के दौरान डार्विन ने ऐसी ही तूतियों (finches) (एक प्रकार की चिड़िया) को देखा था। इन पक्षियों का विकास दक्षिण अफ्रीका के पश्चिमी तट से दूर गैलापगोस द्वीप में परिधीय पृथक्कृत जीवसंख्याओं से हुआ था।

नई जाति के निर्माण में सहायता करने वाली पृथक्करण की विभिन्न क्रियाविधियों पर विस्तार से चर्चा करने से पहले हम दो संकल्पनाओं के बारे में जानेंगे: 1) वलय जाति की संकल्पना (concept of ring

species) – ऐसा उदाहरण जो हमें बड़ी खूबसूरती से यह दिखाता है कि जाति का पृथक्करण किस तरह धीरे-धीरे विकसित होता है और जिससे एकदम भिन्न नई जाति बनती है। (2) पृथक्करण के दौरान होने वाले आनुवंशिक पुनरप्रतिरूपण की संकल्पना (genetic repatterning)। पर इससे पहले निम्न बोध प्रश्न को कर लें।

बोध प्रश्न 2

पाठ्य सामग्री से सही शब्द चुनकर इन खाली स्थानों को भरो।

क) जाति का दर्जा पाने योग्य बनने के लिए जीव को दूसरे समूहों से .... होना चाहिए।

ख) .... का तात्पर्य जाती उद्भवन की उस प्रक्रिया से है, जिसमें जाति के जीव स्थान या प्रदेश द्वारा पृथक या अलग नहीं होते।

ग) ..... पौधों में जाति उद्भवन की एक आम क्रियाविधि है।

घ) समस्थानिक जाति उद्भवन वहां हो सकता है जहाँ कहीं ..... सक्रिय हो।

च) नई जाति बनने की संभावना रखने वाली जीवसंख्या के लिए जरूरी है कि वह जनक जाति से .... हो।

छ) ..... जाति उद्भवन जनक जाति की ऐसी जीवसंख्याओं में होने वाला जाति उद्भवन है जो एकदम अलग प्रदेशों में रहती है।

ज) जनक जीवसंख्या के वितरण की परिधि पर पृथक छोटी जीवसंख्याओं द्वारा होने वाला जाति उद्भवन .... है।

13.4 बहुरूपजाति और जाति उद्भवन

जाति उद्भवन की मौजूदा धारणा के अनुसार व्यापक रूप से वितरित जाति को अंशतः पृथक जातियों में बंटा होना चाहिए। वरण और दूसरे कारकों की क्रिया की वजह से विभिन्न उपजातियों में और अंतर पैदा हो जाते हैं। इससे नस्लों का एक वृत्त या समूह (Rassenkreis) बन जाता है। ऐसे वृत्त का आखिरी सदस्य दूसरों से इतना भिन्न होता है कि एक बंध्यता अवरोध खड़ा हो जाता है। इस संकल्पना को हम ऐम्फ़ीबिया (उभयचर) जाति का एक उदाहरण देकर समझाएंगे।

अमेरिका के पश्चिमी तट पर दो ऊँची पर्वतमालाएं हैं। एक है तटीय पर्वतमाला (Coastal range) और दूसरी है सियेरा नेवाडा पर्वतमाला (Sierra Nevada)। कनाडा की सीमा के पास उत्तरी छोर पर ये पर्वतमालाएं मिली हुई हैं (चित्र 13.3 देखें)। दक्षिण की ओर बढ़ते-बढ़ते इन दोनों पर्वतमालाओं को एक गर्म और सूखा रेगिस्तान पृथक कर देता है। आगे और दक्षिण में मैक्सिकी सीमा के नज़दीक ये उँची पर्वतमालाएं फिर मिल जाती हैं। किसी दिए गए स्थान पर एक ऐम्फ़ीबिया *एंसाटिना एस्चस्कोल्टज़ाइ (Ensatina eschscholtzii)* पाया जाता है। इसे चित्र 13.4 में A नाम दिया गया है। ऐसा माना जाता है कि यह मूल जाति B और G दो जीवसंख्याओं में बंट गई, जो अलग-अलग इन पर्वतशृंखलाओं की ओर चली गई। एक पर्वतमाला में जीवसंख्याएँ धीरे-धीरे B से C, C से D, D से E और E से F में परिवर्तित हुई हैं। दूसरी पर्वतमाला पर B की तरह ही A से बनकर G जीवसंख्या भी दक्षिण की ओर बढ़ते हुए धीरे-धीरे H, I, J, और K जीवसंख्याओं में परिवर्तित हुई हैं। जब ये बदलाव हो रहे थे, दोनों पर्वतमालाएं रेगिस्तान द्वारा एक दूसरे से दूर हो गई। साथ में पार्थक्य क्रियाविधियां धीरे-धीरे विकसित होती रहीं। यह उभयचर *एंसाटिना* चलने-फिरने में कमजोर होता है, जिससे इसे कनाडा की ओर की सीमा से मैक्सिकी सीमा तक पहुंचने में सैकड़ों वर्ष लगे होंगे। इससे यह साबित होता है कि B और G जीवसंख्याओं में पृथक्करण क्रियाविधियां सबसे कम होंगी। D से लेकर I तक की जीवसंख्याओं में पृथक्करण क्रियाविधियां अधिक होंगी। E और J के बीच वे और अधिक होंगी। आपको याद होगा कि B C D E और G H I J दोनों जाति शृंखलाएं एक ही जाति *एंसाटिना एस्चस्कोल्टज़ाइ* से निकली हैं जिसे चित्र 13.3 में A नाम दिया गया है। मगर जब ये मैक्सिकी सीमा पर पहुँचती हैं तो दो जीवसंख्याएं f और K बिना मैथुन किए भी अतिव्यापन कर लेती हैं, जैसा कि चित्र में आड़ी-तिरछी रेखाओं वाले क्षेत्र में देखा जा सकता है। इन दोनों ने समस्थनिकता की परीक्षा पास कर ली है। F और K अब दो एकदम भिन्न जातियां हैं। ऐसी ही

वलय जातियां सामुद्रिक-गल (sea-gulls) में बनती देखी गई हैं जो दुनिया के चारों ओर एक परिधीय वलय बनाती हैं।

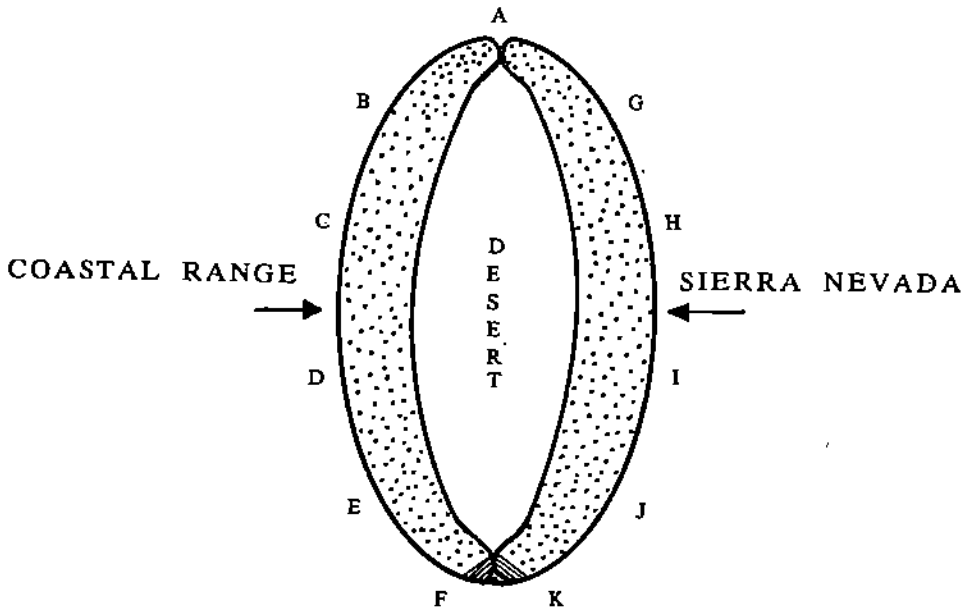

चित्र 13.3 : वलय जातियों का उद्भवन।

13.5 पृथक्करण के दौरान आनुवंशिक पुनरप्रतिरूपण

द्वीप में बसे कुछ गिने-चुने ही जीव या सिर्फ एक जोड़ा या अकेली अण्डपूर्ण मादा (gravid female) ही बसी हो सकती है। जब द्वीप के इन शुरुआती वासियों से एक नई जीवसंख्या का विकास होता है तो ये भारी आनुवंशिक पुनरप्रतिरूपण (genetic repatterning) से गुजरते हैं। इसे कभी-कभी आनुवंशिक क्रांति भी कहा जाता है। संस्थापक जीवों की संख्या कम होने के कारण इन वासियों में सबसे पहला बड़ा बदलाव विभिन्ना में भारी कमी (चित्र 13.4 A, B) के रूप में होता है। अंतःप्रजनन विभिन्नता को और घटा देती है (चित्र 13.4 C)। अंतःप्रजनन अप्रभावी लक्षणों को समयुग्मजों के रूप में दूर कर देता है और आनुवंशिक भार कम हो जाता है। निर्णयाक परिवर्तन एक बड़ी मुक्त अर्थात् विवृत जीवसंख्या (open population) से बंद या संवृत जीवसंख्या (closed population) में होता है। बंद जीवसंख्या में विषमयुग्मज (Aa) की दो समयुग्मजों (AA और aa) पर अतिप्रभाविता बढ़ जाती है। अतिप्रभाविता का मतलब उत्तम योग्यता से है। जीनों की अविकल्पी (non-allelic) प्रबल पारस्परिक-क्रियाएं जीन संकरों के प्रकार्य को बुरी तरह से पलट देती हैं। इसके फलस्वरूप आनुवंशिक संसंजकता (genetic cohesiveness) टूट जाती है और संस्थापक जीवसंख्या सघट्य और इतनी वशवर्ती हो जाती है कि उसे बेहतर अनुकूलनों वाली एक नई जीवसंख्या में ढाला जा सकता है। यही आनुवंशिक पुनरप्रतिरूपण या आनुवंशिक क्रांति का सार है।

परिधीय पृथक्कृत यानी संस्थापक जीवसंख्या विभिन्नता में आई भारी कमी के कारण आमतौर पर विलुप्त हो जाती है (चित्र 13.4 C)। पर अगर यह जीवसंख्या आनुवंशिक क्रांति से बच निकले तो यह भारी विभिन्नता और बेहतर अनुकूलता पैदा कर लेती है (चित्र 13.4 D)। यह अपनी मूल जनक जीवसंख्या से भी अधिक विभिन्नता उपार्जित कर सकती है। अब यह एक नई जाति के रूप में उच्च आनुवंशिक संसंजन स्तर पर स्थायी हो जाती है (चित्र 13.4 E)। जनक जाति से भिन्न नई जाति का यह दर्जा आनुवंशिक क्रांति के दौरान पार्थक्य क्रियाविधियों के विकास से ही संभव बनता है।

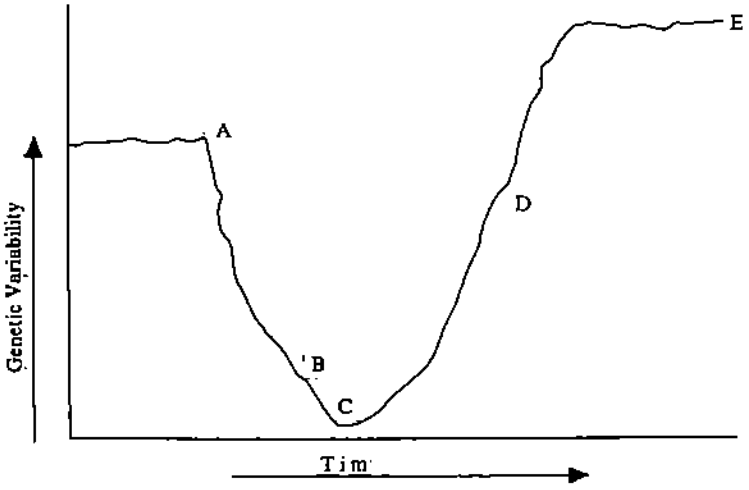

चित्र 13.4 : आनुवंशिक क्रांति अर्थात् पुनरप्रतिरूपण ।

बोध प्रश्न 3

निम्न में प्रत्येक का लगभग 50 शब्दों में उत्तर दीजिए ।

क) वलय जाति को संक्षेप में समझाइए ।

.....

.....

.....

.....

.....

ख) पृथक्करण के दौरान आनुवंशिक पुनरप्रतिरूपण की धारणा को समझाइए ।

.....

.....

.....

.....

.....

13.6 पार्थक्य क्रियाविधियाँ

इकाई के इस भाग में हम उन कारकों के बारे में चर्चा करेंगे, जिनके जरिए जीवसंख्याएं एक दूसरे से अलग-थलक या पृथक होती हैं, इसके बाद सबसे पहले उपजाति का दर्जा पाती हैं फिर आखिर में ऐसी

क्रियाविधियों का विकास कर लेती हैं, जो उन्हें स्थानीय जीवसंख्याओं के साथ मैथुन करने से रोकती है। अब ये उपजातियां नई जाति कहलाती हैं। संक्षेप में हम उन क्रियाविधियों के बारे में बताएंगे जिनकी वजह से जीवसंख्याएं एक दूसरे से दूर रहती हैं और फलतः नई जातियों की उत्पत्ति होती है। आप जानते ही हैं कि स्थानीय जीवसंख्याएं प्रायः अंतःप्रजनन ही करती हैं। बहिर्जनन तो यदा-कदा ही देखने में आता है। इसलिए, एक ही जाति की भिन्न जीवसंख्याओं के जीनप्ररूपों में कुछ या अनेक विस्थलों में भिन्नताएं देखने में आती हैं। इससे विकसित होने वाले लक्षणप्ररूपों को शरीर के विभिन्न भागों में अंतर के आधार पर उपजातियों में बांटा जा सकता है। दूसरी जीवसंख्याओं से अपनी नजदीकी के कारण ये उपजातियां दूसरे सदस्यों से भी मैथुन करते हैं। इसके फलस्वरूप प्रायः एक अकेली मध्यवर्ती और परिवर्ती जीवसंख्या का निर्माण होता है। इससे जीवसंख्या के लिए उपजाति का दर्जा समाप्त हो जाएगा। मगर यदि लंबे समय तक कोई उपजाति अलग-थलग रहती है और अपने संबंधियों के साथ इसका प्रजनन रुक जाता है तो यह आनुवंशिक भिन्नताओं के सतत संचयन के जनक जाति से प्रजनन करने की क्षमता खो बैठती है। ऐसी स्थितियों में उपजाति एक जाति का दर्जा पा जाती है। इस प्रकार की जाति उद्‌भवन प्रक्रिया मायर द्वारा दी गई जाति परिभाषा को पूरी तरह से संतुष्ट करती है। दो जीव समूह भौगोलिक दृष्टि से जब एक दूसरे से अलग-थलग होते हैं, तो यह पता लगाना अक्सर कठिन होता है कि उनमें अंतःप्रजनन हो रहा है कि नहीं। दूसरे शब्दों में क्या उन्हें विस्थानिक जाति (allopatric species) कहा जा सकता है? जब ऐसी जातियां एक ही प्रदेश में आकर रहती हैं, अंतः प्रजनन नहीं करतीं और मध्यवर्ती जीवसंख्याओं का निर्माण करती हैं, तब कहा जाता है कि उन्होंने समस्थानिकता (sympatric) की परीक्षा पास कर ली है। अब उन्हें समस्थानिक जाति कहा जा सकता है। अनेक उदाहरणों में यह देखा गया है कि जाति का दर्जा स्थापित होते ही चयन उन गुणों को बढ़ावा देने वगता है, जो संकरों (hybrids) के निर्माण में रुकावट का काम करते हैं, क्योंकि संकर जातियों में आमतौर पर कम योग्यता (fitness) होती है।

जीव विकास की गुत्थियों में गहन रुचि रखने वाले अमरीकी तंत्रिकाविज्ञानी जॉर्ज रोमेनस (George Romanes) ने एक बार लिखा था, "पृथक्करण के बिना या अंतःप्रजनन को रोके बिना जैव विकास किसी भी सूरत में संभव नहीं।" नई जातियों की उत्पत्ति पर हुए अनेक अध्ययनों ने यह साबित कर दिया है कि इस गुत्थी के आकलन में रोमेनस काफी हद तक सही थे। आइए पढ़ें कि पृथक्करण क्रियाविधि (isolating mechanisms) क्या है।

पार्थक्य अर्थात् पृथक्करण क्रियाविधियों को अरनेस्ट मायर ने दो मुख्य प्रकारों में बांटा है : पूर्व-संगमी पार्थक्य और पश्च-संगमी पार्थक्य क्रियाविधियां। इन दोनों प्रकारों में निम्न अंतर है :

पूर्व-संगमी पार्थक्य क्रियाविधियां मैथुन होने से रोकती हैं और पश्च-संगमी पार्थक्य क्रियाविधियां ऐसे मैथुन या संगम हो जाने पर उन्हें असफल करती हैं। पूर्व-संगमी पार्थक्य क्रियाविधियों पर इस चर्चा में हम जीवों द्वारा विकसित किए जाने वाले उन जैविक अवरोधों के बारे में भी बताएंगे जो जीवों के बीच मैथुन को बड़े कारगर ढंग से रोकने का काम करते हैं। साथ ही हम स्थान द्वारा होने वाले पृथक्करण की भी चर्चा करेंगे। पारिस्थितिकी, मौसम और जीवों का व्यवहार जीवसंख्याओं में पृथक्करण लाने और इस तरह नई जाति का निर्माण होने में किस तरह से सहायक हैं, इस बारे में भी हम जानेंगे। साथ ही हम विस्तार से पश्च-संगमी क्रिया विधियों के बारे में भी जानेंगे, जो सफल संकरों के निर्माण को रोकती है और इस तरह जाति की सुस्पष्टता और पहचान को सुनिश्चित करती हैं।

13.7 पूर्व-संगमी पार्थक्य क्रियाविधियाँ

हम पहले बता चुके हैं कि पूर्व-संगमी पार्थक्य क्रियाविधियों का काम अंतराजातीय प्रजनन को रोकना है। ऐसी स्थितियों में :

क) संभावित सहवासी नहीं मिलते। इसी स्थिति में पृथक्करण भौगोलिक, मौसमी या आवासीय कारणों से होता है।

ख) संभावित सहवासी मिलते तो हैं, मगर मैथुन नहीं करते। इस स्थिति में पृथक्करण व्यवहारिकीय कारणों से होता है।

ग) संभावित सहवासी मिलते हैं और मैथुन भी करते हैं। मगर शुक्राणुओं का हस्तांतरण नहीं होता। इस स्थिति में पृथक्करण यांत्रिक कारणों से होता है। आइए विस्तार से हरेक क्रियाविधि के बारे में जानें।

13.7.1 भौगोलिक पृथक्करण

अनेकों जीव जातियों का वितरण सीमित होता है, भले ही वे एक विस्तृत भौगोलिक प्रदेश (geographical region) में पायी जाती हों। जीवों के वितरण मानचित्रों की सहायता से किए गए अध्ययनों से एक बात पता चली है। हालांकि जीव विस्तृत भूभागों में बराबर पाए जा सकते हैं, मगर जरा गहराई से उनकी जांच की जाए तो पता चलता है कि उनका वितरण उन प्रदेशों तक सीमित होता है, जो पारिस्थितिक दृष्टि से उनके अनुकूल हों। उदाहरण के लिए अमरीकी चिनार *प्लेटेनस ऑक्सीडेन्टलिस (Platanus occidentalis)* को ही लें। वैसे जो यह पौधा अमेरिका के आधे से अधिक हिस्से में पाया जाता है, मगर इसके प्राकृतिक कुंज निचली भूमि और जलधाराओं के किनारे तक ही सीमित हैं। यही बात अनेक जीव जातियों के लिए भी लागू होती है, जिनकी जीवसंख्याएं प्रादेशिक अवरोधों से अलग हैं। इन अवरोधों का जातियां पारिस्थितिक कारणों से उपयोग नहीं कर सकतीं। उभयचर या ऐम्फ़ीबिया जंतुओं का ही उदाहरण लें। खारे पानी का एक छोटा सा कुंड भी इनके वितरण में अवरोध का काम कर सकता है। अभयचर जीव महासागरीय द्वीपों में नहीं रहते हैं। इसका अपवाद सिर्फ हवाई द्वीप हैं, जहाँ मानव ने ही उभयचरों को पहुंचाया है। मीठे पानी या अलवण जल में पाई जाने वाली मछलियों के लिए भी खारा पानी या लवण-जल एक अवरोध है। प्रशांत महासागर में अलवण जल की कई समानांतर जलधाराएं मिलती हैं। हर एक जलधारा में मछलियों की अपनी उपजातियां या जातियां हैं। वर्षा ऋतु के दौरान बाढ़ आने पर ये जलधाराएं एक दूसरे से आ मिलती हैं। तभी अलग-अलग जाति या उपजाति की मछलियों को एक साथ देखा जा सकता है।

इसी तरह थल चर या स्थलीय पक्षियों की जीवसंख्याएं विशाल जल अवरोधों से पृथक हो जाती हैं। नदियों के आमने-सामने के किनारों पर रहने वाले पक्षियों की जातियाँ और उपजातियाँ आमतौर पर एक दूसरे से भिन्न होती हैं। मायर ने पाया था कि पक्षियों की भिन्न उपजातियां भिन्न-भिन्न उष्णकटिबंधी द्वीपों में रहती हैं। इन द्वीपों की आपसी दूरी ज्यादा न होने के बावजूद भी यह बात देखी गई। डार्विन ने जानकारी दी थी कि थलचर पक्षियों की 26 जातियों में 21 जातियाँ और समुद्री पक्षियों की 11 जातियों में सिर्फ 2 जातियाँ गैलापगोस द्वीपों में ही पायी जाती हैं। यह एक महत्वपूर्ण खोज है कि जल अवरोध की वजह से पक्षी किसी भी दिशा में पलायन नहीं कर सके और इस तरह अपने ही प्रदेशों तक बने रह गए। जल अवरोध पक्षियों की अपेक्षा स्तनधारी जन्तुओं के वितरण में अधिक रुकावट बनते हैं। नदियों के आमने-सामने के किनारों पर रहने वाले कृंतक (Rodents) आम तौर पर भिन्न उपजातियों के होते हैं।

निचली भूमि पर रहने वाले जीवों को अलग करने का काम अक्सर पर्वत करते हैं। खरगोशों की विभिन्न जातियों के वितरण पर किए गए अध्ययन से विशिष्ट भौगोलिक प्रदेशों तक उनके सीमित वितरण के बारे में पता चला है। *सिल्वीलैगस फ्लोरिडैनस (Sylvilagus floridanus)* जाति का खरगोश मैदानी इलाकों तक सीमित रहता है जबकि इसका विरादर जैक खरगोश *लेपस अमेरिकैनस (Lepus americanus)* अमेरिका के पहाड़ी इलाकों में ही पाया जाता है। इसी तरह सफेद पैरो वाला चुहा *पेरोमिस्कस ल्यूकोपस (Peromyscus leucopus)* प्रेअरी (घास के मैदानों) में पाया जाता है और इसका निकट संबंधी *पे. मैनीक्यूलेटस (P. maniculatus)* पर्वतों में रहता है। इस तरह हर किस्म की प्राकृतिक विशेषता किसी पौधे या जन्तु के लिए एक अवरोध बन सकती है और इस तरह उपजाति उद्भवन और अंततः जाति उद्भवन प्रक्रम का रास्ता तैयार कर सकती है।

13.7.2 पारिस्थितिक पृथक्करण

पारिस्थितिक पृथक्करण (ecological speciation) इस कारक पर आधारित है कि जीवसंख्या एक खास आवास को वरीयता देती है। घासस्थलों में रहने वाले जीवों के वितरण में विस्तृत वन अवरोध बन जाते हैं। इसके ठीक उल्टे वन में रहने वाले जीवों के लिए घास के मैदान यानी प्रेअरी अवरोध बन जाते हैं। पेड़ पर रहने वाला लाल चुहा *फेनोकोमिस लांगीकैडस (Phenocomys longicadus)* फर पेड़ों पर रहता है और फर (सुई की तरह नुकीली) पत्तियों का आहार करता है। यह बात आसानी से समझने में आ जाती है कि इन चूहों के वितरण के लिए न सिर्फ प्रेअरी बल्कि ऐसे जंगल भी अवरोधक बन जाते हैं, जिनमें फर के पेड़ नहीं होते।

आपको याद होगा कि इस खंड की 11वीं इकाई में हमने वार्बलर पक्षी की पांच जातियों पर मैक आर्थर के अध्ययन के बारे में विस्तृत चर्चा की थी. जो एक ही स्प्रूस वृक्ष में रह रही थीं। समान वितरण होते हुए भी

डॅंड्रोइका की पांचों जातियां पारिस्थिक कारकों द्वारा एक दूसरे से पृथक हो जाती हैं। सच तो यह है कि बार्बलर की विभिन्न जातियों की पारिस्थितिक और आहार वरीयताएं बिल्कुल मिलती-जुलती हैं। ऐसी स्थिति में हम उनमें भारी प्रतियोगिता की आशा कर सकते हैं। मगर हर जाति अपने लिए एक सुस्पष्ट निकेत बना लेती है। भिन्न-भिन्न प्रजनन दिनों के कारण और प्रजनन मौसम से बाहर विभिन्न आवासों में रहना ऐसे कारक हैं जिनकी वजह से इन जातियों में कम से कम होड़ और अतिव्यापन होता है। ऐसे दूसरे उदाहरण भी मिलते हैं, जिसमें संभावित सहवासी अपनी आवास वरीयताओं के कारण एक दूसरे से दूर रहते हैं। इन स्थितियों में एक व्यापक निकेत अतिव्यापन हो सकता है और जीव समान इलाके में मौजूद हो सकते हैं। मगर तब भी उपजाति और जाति की सुस्पष्टता कायम रखी जाती है। अमेरिका से डाइस ने *पेरोमिस्कस मैनीक्यूलेटस (Peromyscus maniculatus)* जाति के चूहे की दो उपजातियों का उदाहरण दिया है जिनके निकेत एक दूसरे में अतिव्यापन करते हैं। ये उपजातियाँ प्रकृति में अंतःप्रजनन नहीं करती हैं। वैसे प्रयोगशाला में इनमें अंतःप्रजनन होता देखा गया है। एक और अध्ययन ने इसी तरह यह साबित कर दिखाया है कि पानी के सांप *नैट्रिक्स सीपेडैन (Natrix sipedon)* की मीठे और खारे पानी की नस्लें एक दूसरे के समीप आ सकती हैं। पर अपनी आवास वरीयताओं के कारण ये नस्लें अंतःप्रजनन नहीं करतीं।

ए. पिक्टेट ने स्विस पतंगे *निमियोफिला प्लैंटाजिनिस (Nemeophila plantaginis)* पर एक रोचक अध्ययन किया। इस पतंगे की दो नस्लें पाई जाती हैं। एक 2700 मीटर से अधिक की ऊँचाई और दूसरी 1700 मीटर से नीचे रहती है। इन दोनों नस्लों में एक जीन का अंतर होता है। 2200 मीटर की ऊँचाई पर इन दो नस्लों की एक संकर जीवसंख्या पाई जाती है। इस ऊँचाई पर रहने वाले सभी पतंगे विषमयुग्मजी होते हैं। जब दोनों नस्लों को प्रयोगशाला में लाकर उनमें प्रजनन करवाया गया, तो इनसे उपजी संतानों में एक प्ररूपी मेंडलीय आनुवंशिकता देखने में आई। F1 संतति में समयुग्मजी और विषमयुग्मजी दोनों थे। इस तथ्य से कि 2200 मीटर की ऊँचाई पर सिर्फ विषमयुग्मजी जीनप्ररूप पाए जाते हैं यह कहा जा सकता है कि इतनी ऊँचाई पर समयुग्मजों पर वरण अत्यधिक दबाव डालता है जिससे सभी समयुग्मजी लुप्त हो जाते हैं। इस उदाहरण से आप समझ सकते हैं कि आवासीय आवश्यकताओं में अंतर यादृच्छिक संगमन या मैथुन के लिए अवरोधों का काम करते हैं।

विभिन्न जीवसंख्याओं, नस्लों या उपजातियों में अंतर प्रजनन तब भी प्रभावशाली ढंग से रुक सकता है यदि इन जीवों के प्रजनन मौसम अलग-अलग हों। यह प्रक्रिया पौधों में काफी आम है। इसका एक अच्छा उदाहरण हमें सरू वृक्ष (Cypress tree) के *क्यूप्रेसस* सीनस (*Cupressus* genus) की पांच जातियों पर हुए एक अध्ययन से मिलता है। इसे पेड़ की पांचों जातियों ने स्वयं को दस समूहों में वितरित कर रखा है। इनमें से हर समूह को उपजाति माना जा सकता है। हर समूह का अपना एक सीमित वितरण होता है और उसमें गिने-चुने पेड़ ही हो सकते हैं। इतने आसपास रहते हुए भी इन दो समूहों में संकरों का निर्माण बिरले ही होता है। इसका कारण है कि ये समूह अपने-अपने परागकणों को अलग-अलग समयों या मौसमों में बिखेरते हैं। इससे उनमें परस्पर परागण (cross pollination) नहीं हो पाता। संकरों की विरल उत्पत्ति इस बात से स्पष्ट हो जाती है कि कुछ पेड़ अपने परागकणों को समय से पहले या फिर बाद में छोड़ते हैं।

ऐसे जन्तु समूहों जिनके प्रजनन मौसम बहुत ही सीमित होते हैं, में मौसमी पृथक्करण बड़ा प्रभावी होता है। यह बात सभी असमतापी (poikilothermy) कशेरुकियों और अकशेरुकियों के लिए लागू होती है। इसका एक अच्छा उदाहरण हमें उत्तरी-पूर्वी अमेरिका में पायी जाने वाली मेंढक की तीन जातियों पर हुए अध्ययन से मिलता है। ये तीनों जातियां एक ही तालाब में रहती हैं और प्रजनन करती हैं। इन तीनों जातियों, *राना क्लैमिटैंस (Rana clamitans)*, *रा. पीपिएंस (R. pipiens)* और *रा. सिल्वैटिका (R. sylvatica)* का प्रजनन मौसम बड़ा अस्थिर होता है। *रा. सिल्वैटिका* दूसरी दोनों जातियों के तालाब में आगमन से पहले ही प्रजनन पूरा कर लेती है। *रा. क्लैमिटैंस* का प्रजनन काल तभी शुरू होता है जब सभी जातियां प्रजनन पूरा कर चुकी होती है। ऐसा लगता है कि हर जाति का प्रजनन काल तालाब के पानी के तापमान से तय होता है, जिसमें वे रहती हैं। नीचे दी गई तालिका में वे तापक्रम दिए गए हैं, जिन पर मेंढक अपना प्रजनन शुरू करते हैं।

मेंढक जाति	पानी का तापमान जिस पर प्रजनन शुरू होता है
राना सिल्वैटिका	44° फा.
रा. पीपिएंस	55° फा.
रा. क्लैमिटैंस	< 60° फा.

फिर हर जाति का अपना एक विशिष्ट और आकर्षक संगमन (संकेत) उद्घोष (mating call) विकसित होता है। यह अंतर भी समस्थानिक जातियों के बीच प्रजनन होने से रोकता है। अंततः जातियों में अगर प्रजनन हो भी जाता है, तो विकास भ्रूण अवस्था से आगे नहीं बढ़ पाता है। इस तरह मौसमी पृथक्करण ने बंध्यता अवरोध पैदा किया है और इसकी कोई संभावना नहीं कि मेंढक की ये तीन जातियां संकरों को जन्म दें।

13.7.3 व्यवहारिकीय पृथक्करण

अलग-अलग जातियों के सदस्य परस्पर मैथुन से इसलिए दूर रहते हैं क्योंकि उनके आचरण अर्थात् व्यवहार में अंतर होते हैं। आचरण से जुड़े ऐसे अंतर आम तौर पर विभिन्न जातियों में विकसित विशिष्ट अनुरंजन व्यवहार (courtship behaviour) में देखने में आते हैं। जंतुओं में इस तरह के अंनुरंजन व्यवहार पौधों की तुलना से अधिक स्पष्ट होते हैं। जंतुओं में भी अनुरंजन व्यवहार समुद्री जीवों की अपेक्षा स्थलीय और मीठे पानी (अलवणीय जल) में रहने वाले जीवों में अधिक प्रखर होता है, मायर के अनुसार उन जीवों में अंतराजातीय संकर विरले ही पाए जाते हैं, जिनमें विस्तृत अनुरंजन व्यवहार होता है। घनिष्ठ रूप से जुड़ी जातियाँ जिनमें जोड़ों को बांधने वाली अनुरंजन रस्में नहीं होतीं, अक्सर संकरों को जन्म देती हैं। मायर का मानना है कि ऐसी जातियों. जिनमें एक विशिष्ट अनुरंजन व्यवहार पाया जाता है,के जोड़ों के एक ही जाति के न होने पर "सगाई" टूट सकती है।

ड्रोसोफिला की छः जातियों के प्रणय व्यवहार का गहराई से अध्ययन करने से पता चला है कि अनुंरजन व्यवहार और मैथुन को छः चरणों में बांटा जा सकता है। इनमें से किसी एक चरण पर भी अगर असंगतता होती है, तो सहवासी एक दूसरे से अलग हो जाते हैं और अनुरंजन बीच में ही टूट जाता है।

प्रयोगशाला परिस्थितियों में भी अंतराजातीय संकरण सफल नहीं रहे हैं और अनुरंजन पहले ही चरण में टूट गया। यहाँ सबसे रोचक बात यह है कि विभिन्न जातियों में देखने में आने वाले अनुरंजन व्यवहार में अंतर एक अनुभवी पर्यवेक्षक को तो तुच्छ और महत्वहीन लग सकते हैं। मगर जातियां इन खास संकेतों को पहचान लेती हैं और उसका अनुकूल उत्तर देती हैं। कुछ अन्य प्रकार के जीवों में जातियों के अनुरंजन व्यवहार में अंतर काफी स्पष्ट हो सकते हैं। *यूका* (समुद्रतटीय केकड़ा) की विभिन्न जातियों के अनुरंजन नृत्यों को दूर से ही पहचाना जा सकता है। सरह (सैलामैंडर, Salamanders), कछुओं और पक्षियों के प्रणय नृत्यों को भी दूर से आसानी से पहचाना जा सकता है।

पहले यह समझा जाता था कि *राना* जीनस में एक ही जाति होगी। यह अनुमान आकारिकी से संबद्ध तर्कों पर आधारित था। मगर आज शोधकर्ताओं ने अनेक जातियों का पता लगा लिया है। मेंढकों को अपनी ही जाति को पहचानने में कोई मुश्किल नहीं होती। शोधकर्ता और मेंढक दोनों ही हर जाति के विशिष्ट प्रणय गीतों को पहचान सकते हैं। इक्का-दुक्का आकाररिकीय भेदों वाली पक्षियों की कुछ जातियों को भी उनके प्रणय गीतों से आसानी से पहचाना जा सकता है।

अपने सहवासियों को ललचाने के लिए जीवों द्वारा विकसित जाति विशिष्ट नृत्यों और गीतों के अलावा कुछ जीवों द्वारा जाति पहचान के लिए विशिष्ट गंध भी पैदा की जाती है। इन गंधों को फेरोमोन (Pheromone) कहा जाता है। यदि एक ही इलाके में दो घनिष्ठ रूप से जुड़ी जातियों की मादाओं के बीच नरों को छोड़ा जाता है तो ये नर विशिष्ट प्रकार की गंधों की मदद से ही अपनी जाति की मादा को पहचानते हैं। स्केंडिनेवियाई घाटी (Scandinavian valley) में बी. पैटरसन (B. Patterson) द्वारा किए गए अध्ययन से पता चला है कि एक ही जाति के पतंगों की कोई सैंतीस जातियां परस्पर अंतःप्रजनन किए बिना भी साथ-साथ रहती हैं। इन जातियों के बीच गिने-चुने आकारिकीय भेद होने के बावजूद भी उनमें समजातिक प्रजनन ही होता है। इसकी वजह हर एक जाति द्वारा पैदा की जाने वाली विशिष्ट गंध है। इन सारी बातों से यही पता चलता है कि जाति पहचान में विशिष्ट व्यवहार एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं और एक शक्तिशाली पार्थक्य क्रियाविधि के रूप में काम आते हैं। इस प्रक्रम को व्यवहारिकीय प्रथक्करण ethological isolation) कहते हैं।

13.7.4 यांत्रिक पृथक्करण

कुछ खास उदाहरणों में विभिन्न जातियों के जननांगों के आकारकीय अंतर इनके बीच सामान्य प्रजनन को

असंभव बना देते हैं जिससे समजातिक जीवों की जातियां पृथक ही बनी रहती हैं। जब मैथुन के लिए नर और मादा के बाह्य जननांगों के बीच कोई मेल ही न हो तो भिन्न जातियों के जीव जनन की दृष्टि से पृथक हो जाते हैं। जननांगों में ठीक मेल नहीं होने पर भी जब जीवों में अंतराजातीय मैथुन हुआ तो इससे मैथुनकर्ता जोड़ों की मृत्यु हो गई। इस तरह के घातक मैथुन का उदाहरण कीट (insects) और घोंघे (snails) हैं, जिनकी मृत्यु जननांगों में मौजूद यांत्रिक भेदों अर्थात् आकारिक अंतरों के कारण होती है। यहाँ यह बात भी बतानी जरूरी है कि कभी-कभी मैथुन अंगों में मौजूद भेद भी अनेक बार अंतःप्रजनन में बाधक नहीं बन पाते। भिन्न-भिन्न नस्लों के कुत्तों के बीच होने वाला प्रजनन इसका उदाहरण है।

यांत्रिक पृथक्करण पौधों के जाति उद्भवन में अधिक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता प्रतीत होता है। चूंकि पर-परागण (cross pollination) में अनेक पौधों को कीटों और पक्षियों से मदद मिलती है, इसलिए पौधों और परागण कर्मकों के बीच आकारिकी संगतता होनी जरूरी है। 11वीं इकाई में दिया गया उदाहरण आपको याद होगा जिसमें *पेडिक्युलेरिस (Pedicularis)* पौधे की विभिन्न जातियों के पौधों में परागण भौंरों (bumble bees) द्वारा अलग-अलग तरह से होता है। *पेडिक्युलेरिस* की मधुरस पैदा करने वाली जाति में परागण रानी मधुमक्खी करती है। इन पौधों की दूसरी जातियों में परागण अधर-परागक्षेपण या पृष्ठ-स्पर्श से होता है। इस प्रकार यांत्रिक प्रथक्करण (mechanical isolation) जातियों को प्रथक रखता है।

13.8 पश्च-संगमी पार्थक्य क्रियाविधियाँ

पार्थक्य क्रियाविधियों का दूसरा वर्ग पश्च-संगामी पार्थक्य क्रियाविधि अंतराजातीय संगमन को तो बढ़ावा देती है मगर साथ ही जीवनक्षमता को कम करती है। इस वर्ग को दो प्रकारों में बांटा जा सकता है:

- अंतराजातीय बंध्यता : भिन्न जातियों के जीव मैथुन तो कर सकते हैं मगर वे संतान पेदा नहीं कर सकते।
- संकर बंध्यता : इसमें अंतराजातीय संकरण से F1 संतति की उत्पत्ति तो हो सकती है, पर वह बंध्य निकलती है।

आइए अब इन बंध्यता क्रियाविधियों को पौधों और जन्तुओं के उदाहरणों के आध्यम से संक्षेप में जाने।

13.8.1 अंतराजातीय बंध्यता

अंतराजातीय बंध्यता (interspecific sterility) में संगम में असफलता शुक्राणुओं के अण्डज तक न पहुँच पाने के कारण और पौधों में परागकणों के बीजांड तक न पहुंच पाने के कारण होती है। अंतराजातीय संगमन से पौधों में आमतौर पर या तो पराग-नलिकाएँ उगती ही नही या फिर उनकी वृद्धि में कमी आ जाती है। अगर दूसरी जाति के पराग को समजातिक पौधों के पराग के साथ किसी पौधे में स्थानांतरित कर दिया जाए तो समजातिक की पराग नलिका की वृद्धि दूसरी जाति की पराग नली की तुलना में ज्यादा तेजी से होती है और संपूर्ण निषेचन समजातिक होता है।

अंतराजातीय संगमनों के कुछ उदाहरणों में पराग नली वृद्धि तो करने लगती है मगर फिर फट जाती है। इस तरह निषेचन हो ही नहीं पाता। ऐसा तब होता है जब नर जनक की गुणसूत्र संख्या मादा जनक से अधिक हो। तम्बाकू के पौधे का उदाहरण लें जिसकी तीन जातियां पायी जाती हैं। ये हैं : *निकोटिना टोबैकम (Nicotiana tabacum), नि. सिल्वेस्ट्रिस (N. sylvestris)* और *नि. टोमेन्टोसा (N. tomentosa)*। *नि. टोबैकम* में 48 गुणसूत्र होते हैं। शेष दोनों जातियों में प्रत्येक में गुणसूत्रों की संख्या 24 होती है। *नि. टोबैकम* संभवतः शेष दोनों जातियों में परस्पर संकरण से पैदा हुई चतुर्गुणित जाति है। दोनों में से किसी भी जाति और *नि. टोबैकम* के बीच संकरण तभी सफल होता है जब *नि. टोबैकम* को मादा जनक के रूप में काम लाया जाए। ऐसे संकरण के वर्तिका ऊतकों में 48 गुणसूत्र होते हैं जबकि परागरली में सिर्फ 12 गुणसूत्र होते हैं। इस तरह से गुणसूत्रों का अनुपात 4 : 1 होता है। नि. सिल्वेस्ट्रिस और नि. टोमेन्टोसा के बीच संकरण होने पर दोनों जातियों के वर्तिका ऊतक में 24 और पराग नलिका में 12 गुणसूत्र होते हैं, जिससे 2 : 1 का अनुपात बनता है। पर अगर *नि. टोबैकम* नर जनक हो और शेष दो जातियों में कोई एक मादा, तो वर्तिका ऊतक में 24 और पराग नलिका में भी 24 गुणसूत्र होते हैं। इस तरह गुणसूत्रों का 1 : 1 का अनुपात आता है। पराग नलिका तभी फटती है जब गुणसूत्रों का अनुपात 1 : 1 के करीब

पहुँच जाए। ऐसा माना जाता है कि पराग नलिका में उच्च परासरण दाब पैदा होने से वह फट जाती है। इस विशेषक अर्थात् गुण को एक जीन नियंत्रित करता है। इस तरह तंबाकू के पौधे में अंतराजातीय संगमनों यानी संकरणों का अनुवंशिकी तथा कार्यकी दोनों ही द्वारा अवरोध होता है।

ऐसे दूसरे उदाहरण भी मिलते हैं, जिसमें युग्मजन (zygote) तो बनते हैं, मगर एक अवस्था के बाद इसका आगे का विकास रुक जाता है। इसलिए खर-पतवार पौधे जिमसन (jimson) के अंतराजातीय संकरों में भ्रूण आठ कोशिकीय अवस्था तक पहुँचते मर जाता है। संकर पौधों में ऐसा माना जाता है कि विकासशील भ्रूणों और भ्रूणपोष के बीच एक अपर्याप्त पोषण संबंध होता है। इससे भ्रूणों की मौत हो जाती है।

अनेक मामलों में अंतराजातीय बंध्यता का आनुवंशिक आधार ठीक से समझ में नहीं आता है। तब भी इसका एक अच्छा उदाहरण हमें *जीफ़ोफ़ोरस (Xiphophorus)* जीनस की उष्णकटिबंधीय मछली पर हुए अध्ययनों से मिलता है। *जी. मैक्युलेटस* (मूनफिश) *(X. maculatus)* में एक प्रभावी जीन होता है जिसकी वजह से इसके पृष्ठ पख (dorsalfin) में एक काली चित्ती होती है। यह जीन वृहद मेलानोफोर (macro melanophore) का उत्पादन करता है जो कि संभावित रसौलियाँ हैं। इसकी घनिष्ठ संबंधी जाति *जी. हेल्लेरी* (असिमीन) *(X. heileri)* में यह जीन अप्रभावी रूप में होता है। इन दोनों जाति में संकरण कराने पर प्रजननशील संतानें पैदा हुईं। संकर संतान में विषमयुग्मजी जीन प्ररूप Sdsd होता है। ऐसी स्थिति में इनके पख समयुग्मजी जीन प्ररूप sdsd से कहीं ज्यादा रंजित होते हैं। जीनप्ररूप sdsd वाली संतति में हमेशा घातक रसौलियां होती हैं। Sdsd जीनप्ररूपी पछली का अप्रभावी जीनप्ररूप sdsd से प्रतीप-संकरण (backcross) कराने पर पैदा हुई आधी संतानों में घातक जीन प्ररूप sdsd में पाया गया। इस तरह *जीफ़ोफ़ोरस* में अंतराजातीय बंध्यता का प्रकटन ऐसी संतान के रूप में होता है जो घातक जीन लेकर पैदा होती है।

13.8.2 संकर बंध्यता

संकर बंध्यता (hybrid sterility) को अंतराजातीय बंध्यता का एक और रूप माना जा सकता है। अंतराजातीय संकरों की संतानें मुख्यतः बंध्य होती है। भूवैज्ञानिक अध्ययनों से पता चला है कि संकर जीव अर्धसूत्री विभाजन के दौरान अंतग्रंथन (synapses) नही कर पाते। इसकी वजह से या तो उनमें युग्मक (gametes) बन ही नहीं पाते, या अगर वे बनते भी हैं तो वे दोषयुक्त निकलते हैं। जब तक जनकों के गुणसूत्र सही-सही विभाजित नही होते, जीवनक्षम युग्मकों का जन्म नहीं होता। अधिकतर स्थितियों में युग्मक बनते ही नहीं और अगर उनका निर्माण होता भी है तो वे जननक्षम नहीं हो सकते। इसका एक सामान्य उदाहरण खच्चर (mule) है। खच्चर गधे और घोड़े के बीच संकरण से पैदा होने वाला बंध्य जानवर है। संकर जातियों मे आमतौर पर अपसामान्य प्रजनन तंत्र होता है। अगर उनमें प्रजनन तंत्र सामान्य भी हो तो अर्धसूत्रण अपसामान्य होता है और उनमें जीवनाक्षम युग्मक (nonviable gametes) बनते हैं।

इस प्रकार जाति में सुस्पष्टता और अद्वितीयता बनाए रखने के लिए जीवों के विभिन्न समूहों में अलग-अलग तरह की जननात्मक पार्थक्य क्रियाविधियां सक्रिय रहती हैं।

बोध प्रश्न 4

i) निम्न को मिलाएं :

क) संभावित सहवासियों का नहीं मिलना	(1) व्यवहारिकीय पृथक्करण
ख) संभावित सहवासी मिलते तो हैं मगर मैथुन नही करते	(2) यांत्रिक पृथक्करण
ग) संभावित सहवासी मिलते और मैथुन करते हैं मगर शुक्राणुओं का स्थानांतरण नही होता	(3) भौगोलिक मौसमी या आवासीय पृथक्करण

ii) लगभग 50 शब्दों में उत्तर दीजिए

क) उचित उदाहरणों से भौगोलिक पृथक्करण की धारणा को समझाइए।

.....

.....

.....

.....

.....

ख) आवासीय वरीयता जाति उद्भवन प्रक्रम को किस प्रकार बढ़ावा देती है?

.....

.....

.....

.....

.....

ग) एक उदाहरण द्वारा समझाइए कि जीवसंख्याओं का अत्यधिक सीमित प्रजनन मौसम पृथक्करण प्रक्रम को बढ़ावा देता है।

.....

.....

.....

.....

.....

घ) पृथक्करण प्रक्रम में अनुरंजन व्यवहार और गंधों की भूमिका के बारे में बताइए।

.....

.....

.....

.....

.....

च) अंतराजातीय बंध्यता और संकर बंध्यता में भेद बताइए।

.....

.....

.....

.....

.....

13.9 आनुवंशिक विचलन

यहां हम छोटी जीव संख्याओं से जुड़ी एक परिघटना के बारे में चर्चा करेंगे। आनुवंशिकी (LSE 03 खंड 4 इकाई 20) के पाठ में आपने पढ़ा था कि बड़ी जीवसंख्याओं में ऐलीलों की बारंबारता पीढ़ी दर पीढ़ी स्थिर बनी रहती है बशर्ते जीवसंख्याओं को उत्परिवर्तन, आनुवंशिक पुनर्योजन, जीन प्रवासन और चयन जैसी प्रक्रियाओं से नहीं गुजरना पड़े। आपको याद होगा कि इस परिघटना को हार्डीवेइनवर्ग साम्य (Hardy Weinberg equilibrium) कहा जाता है। मगर विकास तो जीन बारंबारताओं में परिवर्तन पर निर्भर

करता है। (LSE 03 खंड-4 में जीवसंख्याओं में जीनों का व्यवहार नामक इकाई में आप ऐसे उदाहरण पढ़ सकते हैं कि प्राकृतिक जीवसंख्याओं में उत्परिवर्तन और प्राकृतिक चयन जैसे कारण किस तरह जीन बारंबारताओं को प्रभावित करते हैं। ऐसे कारक हालांकि जीन बारंबारताओं को प्रभावित तो करते हैं पर ऐसा ये छोटे स्तर पर करते हैं। मगर आनुवंशिक विचलन अर्थात् अपवाह (genetic drift) एक ऐसी परिघटना है जो छोटी जीवसंख्याओं में बड़ा बदलाव या जीनों की बारंबारताओं में विचलन (drift) पैदा करती है। इसका पहले पहल अध्ययन अमरीकी आनुवंशिकी विज्ञानी सेवाल राइट (Sewall Wright) ने किया था। इसलिए इसको सेवाल राइट प्रभाव भी कहा जाता है।

आमतौर पर यह माना जाता है कि आनुवंशिक विचलन प्रतिचयन त्रुटि (sampling error) के कारण होता है। जैसा कि हमने पहले बताया है यह छोटी जीवसंख्याओं में होता है जैसे कि परिधीय पृथक्कृतों में आनुवंशिक विचलन को हम एक छोटे से प्रयोग के जरिए समझ सकते हैं। समान आकार मगर अलग-अलग रंग के मनके लें जैसे नीले, लाल, हरे और पीले। हर रंग के हजार मनके लें उन्हें किसी थैले में मिला लें। 4000 मनकों की अब एक जीवसंख्या बन गई है। अब आप बिना देखे थैले में हाथ डालें और उसमें से चार मनके निकाल लें। माना आपके हाथ 2 नीले, एक लाल और एक हरा आते हैं। इसका यह मतलब हुआ कि नीले मनके 25% से बढ़कर 50% हो गए हैं। मगर पीले घटकर शून्य पर आ गए हैं। अब आप समझ गए होंगे कि रंगीन मनकों की बारंबारताओं में यादृच्छिक विचलन या भारी बदलाव प्रतिचयन दोष के परिणाम हैं। जिस तरह इस प्रयोग में रंगीन मनकों की बारंबारताओं का यादृच्छिक अपवाह होता है ठीक उसी तरह छोटी जीवसंख्याओं या परिधीय पृथक्कृतों में भी जीन बारंबारताओं में प्रतिचयन दोष की वजह से विचलन हो सकता है। इसलिए इस परिघटना को आनुवंशिक विचलन कहते हैं।

क्या ऐसा विचलन प्राकृतिक जीवसंख्याओं में भी देखा जा सकता है! हाँ। माना चूहों की चार-पांच परिवारों वाली कोई छोटी सी जीवसंख्या किसी किसान के धान के खलियान में रह रही है। इन्हें खत्म करने के लिए किसान तरह-तरह के उपाय करता है जैसे चूहे-दानी लगाना, बंदूक दागना, आकस्मिक आगमन, बिल्लियां आदि। किसान की ऐसी हरकतें चूहों पर बड़ा जबर्दस्त चयन दबाव डालती हैं। ऐसी स्थितियों में जिन गुणों अर्थात् विशेषकों (traits) का चयन होगा वे हैं चपलता, छोटी पूंछ, श्रवण तीक्ष्णता, सतर्कता इत्यादि। अब इन विशेषकों को नियंत्रित करने वाले ऐलीलों की बारंबारताओं का चूहों की जीवसंख्या में अधिक होना स्वाभाविक है। इसकी वजह यह है कि सिर्फ वे चुहे ही ऐसे विरोधी वातावरण में जीवित रह सकते हैं जिनमें ये विशेषक मौजूद हों। माना कुछ महीनों के बाद वातावरण में बदलाव आ जाता है और कड़ी सर्दी शुरू हो जाती है। अब किसान खुद को सर्दी से बचने के लिए अलाव तक सीमित रखता है और इसके फलस्वरूप ऊपर बताए गए विशेषकों पर से चयन दबाव हट जाता है। इस बदले वातावरण में जीवित रहने के लिए चूहों में एकदम से अलग विशेषकों का होना जरूरी है और उन्हीं चूहों का चयन होगा, जिनमें ऐसे विशेषक हों। अब चपलता श्रवण तीक्ष्णता जैसे विशेषकों का चयन नहीं होता। बल्कि मोटे फरदार और ऐसे ही विशेषकों वाले चूहों का चयन होगा, जो उन्हें सर्दी के कोप से बचाएं। इसका कुल परिणाम यह होगा कि पहले के वातावरण में विशेषकों को नियंत्रित करने वाले ऐलीलों की बारंबारताओं में विचलन हो जाता है। यानी नये वातावरण में उनकी बारंबारता में भारी कमी आ जाती है। यहाँ ध्यान देने की बात यह है कि ऐसा विचलन सिर्फ छोटी जीवसंख्याओं की विशेषता है।

सेवाल राइट का मत था कि विकास के लिए आनुवंशिक विचलन महत्वपूर्ण परिणाम हो सकता है। एक बार तो उन्होंने यहाँ तक कहा कि विशेष परिस्थितियों में आनुवंशिक विचलन डार्विनी प्रकृतिक चयन पर हावी हो जाता है। उनके इस मत की ऑक्सफोर्ड के जीव विज्ञानी आर.ए. फिशर और ई.बी. फोर्ड ने आलोचना की, जिन्होंने यह साबित कर दिखाया कि प्राकृतिक चयन विकासीय परिवर्तन का एक मुख्य कर्मक केवल बड़ी और मध्यम जीवसंख्याओं में ही नहीं बल्कि छोटी से छोटी जीवसंख्याओं में भी मौजूद होता है। ई.बी. फोर्ड ने इंग्लैंड के साउथ वेस्टन सिरे पर स्काइली टापू (Isles of scylly) में रहने वाली मीडो ब्राउन तितलियों (Meadow brown butterflies) की छोटी जीवसंख्याओं में पाई जाने वाली पंखचित्ती बहुरूपता (wingspot polymorphism) का प्रदर्शन किया। फिर जहां कहीं भी बहुरूपता मिलती है, यह बात तय है कि प्राकृतिक चयन वहां अपनी पूरी क्षमता से सक्रिय है। सेवाल राइट ने भी इन तर्कों को सही पाया और अब उन्होंने अपने अनुवंशिक विचलन सिद्धांत में सुधार कर उसे स्थानांतरी संतुलन सिद्धांत (shifting balance theory) में बदल लिया है जो कि उनके पहले सिद्धांत से अधिक स्वीकार्य है।

खाली जगहों को सही शब्दों से भरिए :

क) बड़ी जीवसंख्याओं में जीन बारंबारताओं को पलटने वाले कारक .... और .... हैं ।

ख) जीन बारंबारतो में भारी परिवर्तन करने वाली प्रक्रिया .... छोटी जीवसंख्याओं की विशेषता है ।

ग) छोटी जीवसंख्याओं या परिधीय पृथक्कृतों में आनुवंशिक विचलन प्रायः .... के कारण होता है ।

घ) आनुवंशिक विचलन को .... भी कहा जाता है ।

च) सेवाल राइट ने अपने आनुवंशिक विचलन सिद्धांत को .... सिद्धांत में रूपांतरित कर लिया है ।

13.10 सारांश

इस इकाई में आपने :

- जाति की संकल्पना और उसकी परिभाषा के बारे में पढ़ा । जातियां अंतःप्रजनन करने वाली ऐसी जीवसंख्याओं का समूह होती हैं जो ऐसे ही दूसरे समूहों से प्रजनन की दृष्टि से पृथक होती हैं । प्ररूपी या नामरूपवादी जाति संकल्पनाओं की तुलना में जैविक जाति संकल्पना अधिक वास्तविक है । यह जाति की व्याख्या काल की एक स्पष्ट इकाई के रूप में करती है, जिमें लंबी काल अवधि में बराबर बदलते रहने की क्षमता होती है । संक्षेप में जातियों में विकास करने की क्षमता होती है ।

- जाति उद्भवन के विभिन्न तरीकों के बारे में जाना । क) समस्थानिक जाति उद्भवन साथ-साथ रहने वाली जीवसंख्याओं में होने वाला जाति उद्भवन है । ख) विस्थानिक जाति उद्भवन स्थान या प्रदेश से पृथक हुई जीवसंख्याओं में होने वाला जाति उद्भवन है । ग) परिस्थानिक जाति उद्भवन परिधीय जीवसंख्या के रूप में पृथक हुए जीवों में होने वाले जाति उद्भवन को कहते हैं ।

- वलय जाति (ring species) संकल्पना के बारे में जाना, जिसमें जीवसंख्या पृथक होती है, धीरे-धीरे बदलती है, समस्थानिकता की परिक्षा पास करती है और अंततः एक अलग जाति का दर्जा हासिल कर लेती है ।

- आनुवंशिक पुनरप्रतिरूपण के बारे में पढ़ा, जिसमें आनुवंशिक पुनरप्रतिरूपण प्रक्रम के जरिए किसी द्वीप के आरंभिक जीवों से एक नई जीवसंख्या का विकास होता है । विभिन्नता में कमी, अंतःप्रजनन प्रक्रम के जरिए समयुग्मजी अप्रभावियों का विलोप, विषमयुग्मजी श्रेष्ठता पैदा करने वाली अतिप्रभाविता और प्रबल अविकल्पी पारस्परिक-क्रियाएं आदि कुछ ऐसी आनुवंशिक घटनाएं हैं जो जीवसंख्याओं की आनुवंशिक संसंजता को तोड़ती है । ऐसी घटनाएं संस्थापक जीवसंख्या को अधिक सुघट्य और वशवर्ती बना डालती हैं और इसे बेहतर अनुकूलनों युक्त एक नई जाति में ढाल देती हैं ।

- विभिन्न प्रकार की पृथक्करण क्रियाविधियों के बारे में आपने पढ़ा । ये हैं भौगोलिक, पारिस्थितिक, यांत्रिक, व्यवहारिकीय और जननात्मक (पूर्व-संगमी और पश्च-संगमी) । ये सभी जाति के निर्माण और उसकी सुस्पष्टता को बढ़ावा देते हैं ।

- अनुवंशिक विचलन एक ऐसा प्रक्रम है जो छोटी जीवसंख्याओं में उनकी जीन बारंबारताओं में भारी बदलाव लाता है । इसे सेवाल राइट प्रभाव के नाम से भी जाना जाता है । यह विचलन छोटी जीवसंख्याओं में प्रतिचयन दोषों के कारण पैदा होता है ।

13.11 अंत में कुछ प्रश्न

1. संक्षेप में जाति संकल्पना के तीन प्रकारों के बारे में बताइए ।

.....

2. समस्थानिक, परिस्थानिक और विस्थानिक जाति उद्भवन के भेद बताइए।

3. वलय जाति से आप क्या समझते हैं? उचित उदाहरण से उत्तर दीजिए।

4. निम्न अवरोध किस प्रकार के पृथक्करण से जुड़े हैं?
   क) मीठे पानी के जीवों के लिए एक अवरोध के रूप में खारा पानी .....
   ख) महासागरीय द्वीप जिनमें उभयचर रहते हैं .....
   ग) स्थलीय पक्षियों के लिए अवरोध के रूप में विशाल जल काय .....
   घ) वन जीवों के लिए अवरोध के रूप में प्रेअरी .....
   ङ) निम्न स्थलीय जीवों के लिए अवरोध के रूप में पर्वत .....
   च) सीमित प्रजनन मौसम .....
   छ) अनुरंजन व्यवहार .....
   ज) विशिष्ट संगमन उद्घोष .....
   झ) विशिष्ट गंध .....
   ञ) जननांगों की भिन्न आकारिकी .....
   ट) संकर बंध्यता .....
   ठ) नर जनक में उच्च गुणसूत्र संख्या .....

5. छोटी जीवसंख्याओं में जीन बारंबारताओं में अक्सर विचलन होता है। उपयुक्त उदाहरण देकर इस कथन के तर्क को उचित ठहराइए।

13.12 उत्तर

बोध प्रश्न

1. क) स, ख) स, ग) अ, घ) स.

2. क) प्रजनन की दृष्टि से पृथक
   ख) समस्थानिक जाति-उद्भवन
   ग) बहुगुणिता
   घ) विदारी चयन
   च) भौगोलिक दृष्टि से पृथक
   छ) विस्थानिक
   ज) परिस्थानिक जाति उद्भवन

3. क) ऐसा काफी संभव है कि चयन की क्रिया विभिन्न उपजातियों में और अंतर पैदा कर नस्लों के वृत्त या समूह बना डाले। ऐसे वलय या वृत्त का आखिरी जीवसदस्य दूसरों से काफी भिन्न होता है जिससे कि एक नई जाति का विकास हो जाए जिसे वलय जाति कहते हैं।
   ख) जब द्वीपों के आरभिक वासियों से एक नई जीवसंख्या का विकास होता है तो वह कई प्रकार के आनुवंशिक बदलावों से गुजरती है जैसे कम विभिन्नता, अप्रभावी समयुग्मजों का विलोप, आनुवंशिक भार में कमी, विषमयुग्मजों की श्रेष्ठ योग्यता, और प्रबल अविकल्पी पारस्परिक क्रियाएं। ये सब आनुवंशिक क्रांति या आनुवंशिक पुनरप्रतिरूपण को जन्म देते हैं।

4. i)) क – 3, ख – 1, ग – 2
   ii) (क) भौगोलिक पृथक्करण की संकल्पना का मतलब उपयुक्त पारिस्थितिक विशेषताओं वाले कुछ विशिष्ट भौगोलिक क्षेत्रों तक ही जीवों का सीमित हो जाना है। उदाहरण के लिए महासागरीय द्वीपों में उभयचर प्राणी नही पाए जाते। प्रशांत महासागर में अनेक समानांतर जलधाराएं आ मिलती हैं जिनमें से हर एक की मछलियों की अपनी जाति या उपजातियां होती हैं जो अलग-अलग रहती हैं।

   ख) जाति उद्भवन प्रक्रम को आवासीय वरीयता बढ़ावा देती है। स्विस पतंगे *निमिओफिला प्लैंटाजिनिस (Nemeophila plantaginis)* की दो नस्लों में आवास की वरीयता जाति-उद्भवन प्रक्रम को बढ़ावा देती है। पतंगे की एक नस्ल 2700 मीटर की ऊँचाई पर और दूसरी 1700 मीटर से नीचे रहती है। वैसे दोनों नस्लें प्रयोगशाला में प्रजनन तो कर लेती हैं मगर प्रकृति में उनकी संकर जीवसंख्या 2200 मीटर की ऊँचाई तक सीमित होती है।

   ग) क्यूप्रेसस वंश के सरू वृक्ष की पांच जातियां 10 समूहों में बंटी होती हैं। हर एक को उपजाति कहा जा सकता है। हालांकि ये समूह एक दूसरे के काफी नज़दीक रहते हैं परन्तु दो समूहों के बीच संकर बिरले ही बनते हैं। इसका एक कारण यह नज़र आता है कि ये समूह अपने परागकणों को अलग-अलग समय या मौसम में बिखेरते हैं, जिससे उनमें संकर परागण नहीं हो पाता।

   घ) अनुरंजन व्यवहार संकर निर्माण में एक निवारक के रूप में काम करते हैं। अनुरंजन व्यवहार हर जाति के लिए बहुत विशिष्ट होता है। ऐसा भिन्न जातियों के सदस्यों में मौजूद व्यवहारीय भेदों के कारण होता है। मायर का मत है कि जहाँ भी अनुरंजन व्यवहार मौजूद हो, परन्तु जोड़ अगर एक ही जाति के न हों तो उनके बीच "सगाई" टूट जाती है। इसी तरह कुछ जीवों द्वारा अपने सहवासियों को आकर्षित करने के लिए जो विशिष्ट गंधें पैदा की जाती हैं वे भी जाति पहचान प्रक्रम में सहायता करती हैं।

   च) **अंतराजातीय बंध्यता** : भिन्न जातियों के जीव मैथुन तो कर सकते हैं, मगर वे संतान पैदा नहीं कर पाते हैं।
   संकर बंध्यता : अंतराजातीय संकरण से बंध्य F1 संतान पैदा हो सकती है।

5. क) चयन, उत्परिवर्तन, आनुवंशिक पुनर्योजन और जीन प्रवासन ।
   ख) आनुवंशिक विचलन ।
   ग) प्रतिचयन त्रुटि
   घ) सेवाल राइट
   च) स्थानांतरी संतुलन ।

अंत में कुछ प्रश्नों के उत्तर

1. अभी तक तीन प्रकार की जाति संकल्पनाएं सामने आई हैं । – क) प्ररूपी जाति संकल्पना, के अनुसार प्रकृति में पाये जाने वाले किस्म-किस्म के जीवों को कुछ "प्ररूपों" में बांटा जा सकता है । इस संकल्पना का प्रतिपादन प्लूटो ने किया था । इस संकल्पना का मानना था कि जीव अलग-अलग हो सकते हैं मगर वे एक ही प्ररूप से जुड़े होते हैं । (ख) नामरूपवादी जाति संकल्पना ने जाति को आदमी की गढ़ी कपोल-कल्पना भर समझा । (ग) जैविक जाति संकल्पना में जाति को एक जननात्मक समुदाय के सदस्यों और एक पारिस्थितिक इकाई के रूप में समझा । यह संकल्पना जाति परिभाषा की समस्या की ओर एक अधिक वास्तविक और वस्तुगत दृष्टिकोण है । इसमें जाति को एक आनुवंशिक इकाई के रूप में भी माना है जिसमें जीवों को एक विशाल, मजबूत रूप से एकताबद्ध जीन पूल के रूप में बांधे रखा जाता है ।

2. समस्थानिक जाति उद्भवन मे जाति के सदस्य जीवों के अलग हुए बिना जनक जाति संततिजाति को जन्म देती है । एकदम पृथक प्रदेशों में रहने वाली जनक जाति की जीवसंख्याओं द्वारा जाति उद्भवन विस्थानिक जाति उद्भवन है । यह जाति निर्माण का सबसे आम तरीका है । जनक जीवसंख्या के वितरण में बाहरी छोर या परिधि पर अलग-थलग हुई छोटी जीवसंख्याओं द्वारा होने वाले जाति उद्भवन को परिस्थानिक जाति उद्भवन कहा जा सकता है ।

3. वलय जाति जाति उद्भवन की वह संकल्पना है जिसमें व्यापक रूप से वितरित जीवसंख्या अंशतः पृथक जातियों में बंट जाती है । इसके बाद चयन और दूसरे कारकों की सक्रियता के फलस्वरूप नस्लों के वृत्त या समूह या बहुरूपजाति में विकसित हो जाती है । उदाहरण के लिए भाग 13.4 को देखें ।

4. क) भौगोलिक पृथक्करण, ख) भौगोलिक पृथक्करण, ग) भौगोलिक पृथक्करण, घ) पारिस्थितिक पृथक्करण, ङ) पारिस्थितिक पृथक्करण, च) पारिस्थितिक पृथक्करण, छ) व्यवहारिकीय पृथक्करण, ज) व्यवहारिकीय पृथक्करण, झ) व्यवहारिकीय पृथक्करण, ञ) यांत्रिक पृथक्करण, ट) जननात्मक पृथक्करण, ठ) जननात्मक पृथक्करण ।

5. छोटी जीवसंख्याओं में आनुवंशिक विचलन प्रतिचयन दोष के कारण होता है । यह किसी खास ऐलील की बारंबारता में आकस्मिक मगर महत्वपूर्ण उतार-चढ़ाव है । 100 जीवों वाली एक जीवसंख्या में माना सिर्फ एक ही जीव में एक ऐलील मौजूद है । यहाँ दो संभावनाएं हैं । या तो ऐलील दो एक पीढ़ी में जीवसंख्या से हमेशा के लिए लुप्त हो जाए या फिर ऐलील की बारंबारता 10 प्रतिशत बढ़ जाए । दूसरे शब्दों में, आनुवंशिक विचलन के कारण जीन या तो लुप्त हो जाते हैं या छोटी जीवसंख्याओं में पूरी तरह से स्थायी हो जाते हैं । उदाहरण के लिए 13.3 भाग को देखें ।

इकाई 14 मानव का विकास-I

इकाई की रूपरेखा

14.1 प्रस्तावना
उद्देश्य
14.2 प्राइमेट वंश परंपरा
14.3 मानव विकास की प्रवृतियां
14.4 औस्ट्रालोपिथेसिन
14.5 *होमो हैबिलिस* और *होमो इरेक्टस*
14.6 *होमो सेपियंस*
14.7 होमीनिड जातिवृत का अवलोकन
14.8 सारांश
14.9 अंत में कुछ प्रश्न
14.10 उत्तर

14.1 प्रस्तावना

मानव जाति का विकास जीवधारियों के जाति इतिहास का चरम बिंदु माना जा सकता है। इस खंड की पिछली इकाइयों और पिछले खंड में विकासीय परिवर्तनों के तरीकों और प्रक्रियाओं के बारे में बताया गया। जन्तु और वनस्पति जगत के विभिन्न उदाहरणों के जरिए इन प्रक्रियाओं को समझाया गया। विकास के इस पाठ्यक्रम में हमने जातियों के स्तर तक ही विभिन्न समूहों के विकास पर विचार किया है। यद्यपि विकास की वह शृंखला महत्वपूर्ण है जिससे अंततः मानव का प्रादुर्भाव हुआ। वर्तमान में हम विकास की प्रक्रिया के अंतिम परिणाम हैं और इतने सक्षम हैं कि जाति इतिहास की समीक्षा कर सकते हैं। साथ ही हम उन जीवधारियों के अवशेषों पर भी विचार कर सकते हैं जो विकास की इस शृंखला के अभिन्न अंग रहे हैं।

मानव जाति के इतिहास के जीवाश्मीय अवशेष हालांकि एकदम प्रारंभिक रूपों के हैं लेकिन इनसे मानव जाति के क्रमबद्ध इतिहास और विकास के निर्धारण में काफी मदद मिली है। यह कहना कठिन है कि प्राकृतिक वरण ने भी मानव जाति का विकास निर्धारित किया है। यह हो सकता है कि वरण की यह प्रक्रिया यांत्रिक रही हो जिसके अंतर्गत जीवधारियों के समूहों ने परिस्थितियों के अनुकूलित होकर और जीवधारियों को जन्म दिया। प्रारंभिक नर-वानर गण (प्राइमेट्स,primates) से लेकर वर्तमान तक के जीवाश्म इतिहास को देखने से स्पष्ट रूप से यही निष्कर्ष निकलता है। इस इकाई में हम प्रारंभिक प्राइमेट्स से अब तक मानव विकास की प्रवृतियों का अध्ययन करेंगे। इस खंड की अंतिम इकाई में मानव के सामाजिक और सांस्कृतिक विकास के विविध पक्षों की चर्चा की जाएगी। और विकास के भावी स्वरूप पर विशेष जोर दिया जाएगा। अगली इकाई में हम कुछ सवाल उठाएंगे जैसे कि मानवीय विकास की प्रक्रिया किस दिशा में बढ़ रही है और क्या मानव अपने विकास को स्वयं दिशा देने में समर्थ है। संभव है कि इन प्रश्नों के हमें तुरत उत्तर न मिलें लेकिन फिर भी प्रयास तो करना ही होगा।

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आपः

- मानव जाति के जीवाश्मीय इतिहास को स्पष्ट कर सकेंगे,
- मानव और कपि (apes) के समान वंश का निर्धारण करते हुए दोनों वर्गों के बीच समानताएं तथा असमानताएं स्पष्ट कर सकेंगे,
- जंतु जगत में मानव की विशिष्ट स्थिति को स्पष्ट कर सकेंगे और
- मानव जाति से जुड़ी संस्कृति, धर्म और नीति शास्त्र जैसी धारणाओं की चर्चा कर सकेंगे।

14.2 प्राइमेट वंश परंपरा

तालिका 14.1 में इस समय जीवित प्राइमेट (नर-वानर) गण का वर्गीकरण किया गया है। प्राइमेट गण का जीवाश्मीय इतिहास 6 करोड़ वर्ष प्राचीन अर्थात् पुरानूतन (पेलियोसीन paleocene) काल के क्रेटेशियस युग का है, इस काल के स्तनपायियों के जीवाश्मों के दांतों, जबड़ों और खोपड़ी में लीमरॉइडस (lemuroids) से समानताएं हैं।

तालिका 14.1: प्राइमेट्स के वर्गीकरण का सारांश

नर-वानर गण (आर्डर प्राइमेट्स)
सब आर्डर (उप गण) प्रोसिमी
महाकुल (सुपर फैमिली) लिमरिफार्मीज़ - लेम्यूर, इन्द्रीज, आई-आई
महाकुल लॉरिसी फॉर्मिज - लौरिसी, पौटो, ब्रुश बेबी
महाकुल टॉरिसी फार्मिज - टार्सियर
उप गण - ऐनथ्रोपॉइडिया
महाकुल सेबॉइडिया - न्यू वर्ल्ड वानर
उप गण - होमीनॉइडिया
कुल (फैमिली) हाइलोबैटिडी - निम्नवर्ती वनमानुष, गिबन, सियामैंग्स
कुल पोंगिडी - उच्चवर्ती कपि, औरंगउटान,. गोरिल्ला, चिपांजी
कुल होमीनिडी - मानव

इन सभी जीवाश्मों में चर्वण दांतों (मोलर) का स्वरूप समान होता है जो सभी प्राइमेट्स की विशेषता है। इनके विकास-क्रम में खोपड़ियों में मस्तिष्क के निरंतर विस्तार और मुख के छोटे होते जाने की प्रवृति है। आंखें प्रारंभिक रूप में पार्श्वीय (lateral) थीं। धीरे-धीरे ये मुख पर सामने की स्थिति में आ गई हैं। कपाल (क्रेनियम) के आकार में भी क्रमिक वृद्धि दिखायी देती है जिससे कि इसमें ज्यादा बड़े आकार का मस्तिष्क आ सकें (चित्र 14.1)

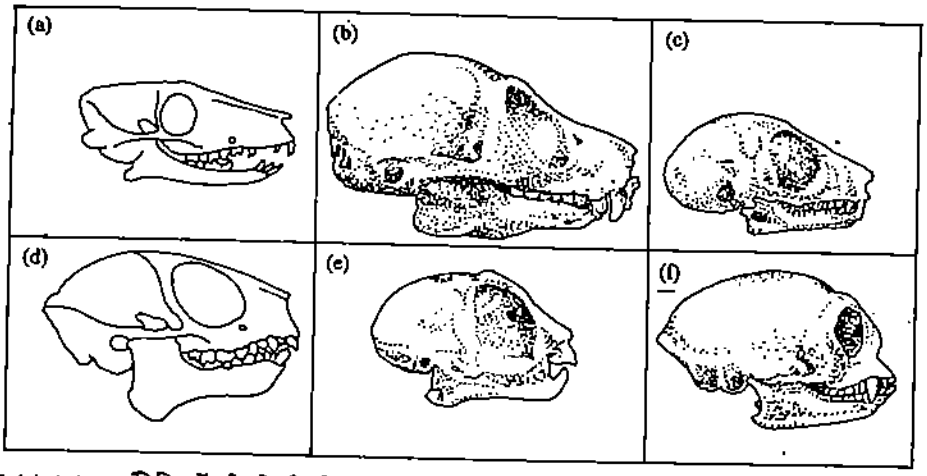

चित्र 14.1: कुछ प्रासिमियनों की खोपड़ी की आकृतिक विशेषताओं की तुलना (a) ट्री श्रू, (b) तथा (c) लेमूरीफॉर्म्स, (d) तथा (e) टार्सियर्स, (f) प्रारंभिक वानर।

आदिनूतन (इओसीन) युग के जीवाश्मीय रूपों में जो लेम्यूर (lemur) पाये गये हैं (चित्र 14.2a), वे लगभग वर्तमान लेम्यूरों जैसे ही थे लेकिन उनके मस्तिष्क आकार में छोटे थे और विशिष्ट कार्यों के लिए दांत विशिष्ट नहीं थे। इओसीन युग के भी टार्सियर्स (चित्र 14.2b) के जीवाश्म पाए गए हैं जिनकी खोपड़ी, मस्तिष्क और शारीरिक अंग प्रारंभिक स्तर के हैं। एक महत्वपूर्ण बगात यह है कि इनके दांत 44 से घट कर 32 हो गये थे जो कि एक मानवाभ (एंथ्रोपॉइड) लक्षण है। इनके अलावा द्वयग्री अग्रचवर्णक (bicuspid premolars) और त्रियग्री चवर्णक (tricuspid) का स्वरूप मूलतः मानवाभ जीवों सा था। आदिनूतन (इओसीन) काल के अंत तक उत्तरी अमेरिका और यूरोप में प्राइमेट बड़ी संख्या में थे लेकिन फिर पूरी तरह विलुप्त हो गये।

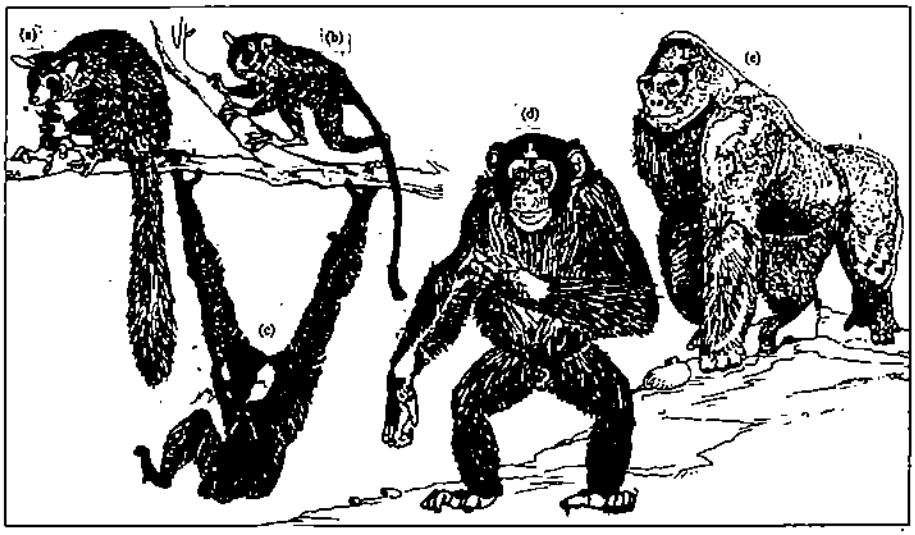

चित्र 14.2: (a) लेम्यूर (b) टार्सियर (c) गिबन (d) चिंपांजी (e) गोरिल्ला।

अल्पनूतन (ऑलिगोसीन oligocene) युग अर्थात् करीब 3 करोड़ वर्ष पहले के प्राइमेटस के जीवाश्मीय अभिलेख बहुत कम हैं। मिश्र में फयूम (Fayum) नामक स्थान में प्राइमेट गण के जीवाश्मों की बड़ी विविधता मिली। ये जीवाश्म प्राइमेट *ऐजीप्टोपिथीकस* (Aegyptopithecus), *एपीडियम* (Apidium), *ऐलोपिथीकस* (Aelopithecus), और *औलिगोपिथीकस* (Oligopithecus) जीनस (genera) के तथा इओसीन (eocene) युग के लीमराइड जीवाश्मों से स्पष्ट रूप से भिन्न थे। ये सभी छोटे स्तनपायी थे और इनकी विशेषताएं मानवाभों अर्थात् एंथ्रोपॉइडस जैसी थीं। *ऐजीप्टोपिथीकस* के जबड़ो वाली खोपड़ी तथा कंकाल के अन्य भागों का एक लगभग पूर्ण जीवाश्म मिला है। यह जीवाश्म पेड़ में रहने वाले पूंछ वाले जानवर से समानता रखता है और यह जंतु बाहुओं वाला यानि बैकिएटर (brachiator) नहीं है। जीवाश्म के अनुसार, इस जंतु का लंबा थूथन था, आंखों के गड्ढे छोटे और हड्डियों वाले (bony eye sockets) थे, नर और मादा के कैनाइन दांतों में अंतर था (sexual dimorphism of canines) तथा इसके दांत कपियों जैसे थे। संभवतः यह जंतु गिबन का पूर्वज था।

करीब दो करोड़ वर्ष पूर्व मध्यनूतन (माइयोसीन) युग के सेक्रोपिथेकॉइडस और होमीनॉइड्स (मानवसम) के जीवाश्म मिले हैं। इसी युग के अंत में प्राचीन वानरों (ओल्ड वर्ल्ड मंकीज - old world monkeys) का उद्भव हुआ। इन वानरों के दो समूह थे – पत्तियां खाने वाले *कोलोबाइन* और फल खाने वाले *सेक्रोपिथेसिन*। ये जंतु अफ्रीका से लेकर भारत और पाकिस्तान तक फैले थे। मायोसीन युग के बाद के वर्षों के प्राइमेट *ओरियोपिथीकस* और गिबन (चित्र 14.2c) में बड़ी मसानताएं थीं। हालांकि इस जंतु के दांतों की संरचना से लगता है कि यह मात्र बंदर था, होमीनॉइड नहीं। इसी माइयोसीन युग में यूरोप और अफ्रीका में होमीनॉइडों का एक और समूह – *पोंगिड* था।

प्राचीनतम पोंडिग प्रोकोंसल (Proconsul) जीनस के थे। इस जीवाश्म का काल एक करोड़ सत्तर लाख से दो करोड़ दस लाख वर्ष पूर्व का निर्धारित किया गया है। प्रोकोंसल की विभिन्न जातियों के जीवों का वजन 20 किलोग्राम तक था। इनके अग्र चवर्णक (प्रीमोलर) और चवर्णक (मोलर) दांत होमीनॉइडों जैसे थे। लेकिन आधुनिक पोंगिडों जैसे इनके गजदांत (tusk) नहीं थे। अगला महत्वपूर्ण जीवाश्म *ड्रायोपिथेकस (Dryopithecus)* का है, जो प्रोकोंसल का वंशज था। इस जंतु के दांत वर्तमान कपि जैसे और हाथ-पैरों की हड्डियां लंबी थीं। इन हड्डियों के लंबे होने से बाहुओं वाले जंतुओं की शुरुआत (brachiation) के संकेत

मिलते हैं। *ड्रायोपिथीकस,* पोंगिडी कुल के ड्रायोपिथेसिन उपकुल का सदस्य है, इसी उपकुल में चिंपांजी (चित्र 14.2 d), गोरिल्ला (चित्र 14.2 e) तथा औरंगउटान आते हैं।

अगला प्रमुख जीवाश्म अतिनूतन प्लाइयोसीन (Pliocene) युग का है जो करीब एक करोड़ वर्ष पुराना है। ये जीवाश्म मध्यनूतन (माइयोसीन miocene) युग के अंतिम वर्षों के भी मिले हैं। उपकुल ड्रायोपिथेसिनी के ये दुर्लभ जीवाश्म जीनस *सिवापिथीकस* और जीनस *रामापिथीकस* के हैं और उत्तर भारत की शिवालिक पर्वत-श्रेणी में पाए गए थे। ये जीवाश्म तथा केन्या और हंगरी में पाए गए जीवाश्म पहचाने जा सकने वाले सर्वप्रथम होमीनिड (Hominid) जीवाश्म थे। इसके बाद, भारत में शिवालिक पहाड़ों और दक्षिण चीन में अत्यंत नूतन (प्लीस्टोसीन Pleistocene) युग के अवशेषों में जाइगेंटोपिथीकस (Gigantopithecus) जीनस के जीवाश्म मिले। इन सभी जीवाश्मों में होमीनिड और पोंगिड – दोनों समूहों के लक्षण थे।

होमीनिड विशेषताएं हैं – मुख का छोटा होना, चबाने वाले मोलर दांतों के इनेमल का मोटा होना और छेदने वाले कैनाइन दांतों का कम विकास। पोंगिड विशेषताएं हैं - प्रीमोलर और मोलर दांतों की समांतर पंक्तियां, छेदने वाले – इन्साइजर (incisor) दांतों और कैनाइन (canine) दांतों के बीच डाएस्टेमा (diastema) कहा जाने वाला खाली स्थान, प्रथम अग्र-चवर्णक दांतों की सतह तीखी होना, जिस पर कैनाइन दांत सान की तरह चढ़ा हो। 1982 में पिलबीम (Pilbeam) द्वारा खोजे गए *सिवापिथीकस* के एक बड़ी अच्छी तरह परिरक्षित खोपड़ी के टुकड़े से इन जीवाश्मों की होमीनिड विशेषताएं स्पष्ट हुई। यह खोपड़ी औरंगउटान से मिलती-जुलती थी। सारांश में, यह कहा जा सकता है कि मध्यनूतन और अतिनूतन काल के अनेक जीवाश्मों के मिलने के बावजूद इस बारे में आम राय नहीं थी। वे होमीनिड्स के हैं। वास्तविक होमीनिड जीवाश्म अत्यंत नूतन युग से पहले के (वर्तमान से करीब अस्सी लाख वर्ष पूर्व के) नहीं मिले। अगले भाग में *होमो* जीनस के पूर्ववर्ती होमीनिड जीवाश्मों की चर्चा की जाएगी। इन जीवाश्मों ने आधुनिक मानव का विकास होना प्रमाणित किया। इससे पहले आप निम्न प्रश्नों का उत्तर देने का प्रयास करें।

बोध प्रश्न 1

निम्न वाक्यों में रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :

i) लेम्यूर और टार्सियर प्राइमेट गण के ..... उपगण के सदस्य हैं।

ii) *ऐजीप्टोपिथिकस* के लक्षणों से लगता है कि वे ..... से मिलते-जुलते हैं।

iii) पहचाने जा सकने वाला प्राचीनतम होमीनिड जीवाश्म ..... का है।

iv) ..... प्राचीनतम पोंगिड-होमीनिड जीनस है, जो केन्या के मायोसीन अवशेषों के क्षेत्र से प्राप्त हुआ।

14.3 मानव-विकास की प्रवृत्तियां

मानव जाति के जीवाश्म इतिहास पर आगे चर्चा करने से पहले हम यह स्पष्ट करेंगे कि मानव अथवा जीनस *होमो* के सदस्य अपने पूर्वज कपि या वनमानुष से किस प्रकार भिन्न हैं। इन विभिन्नताओं से मानवीय विकास की प्रवृत्तियों के स्पष्ट संकेत मिलते हैं। उपलब्ध जीवाश्मीय प्रमाणों से भी इन संकेतों की पुष्टि होती है। क्या यह संभव है कि किसी जीवधारी को होमिनिडी (hominidae) कुल के *होमो* जीनस में रखने के मापदंड निर्धारित किए जा सकें? इस प्रश्न के उत्तर से हमें मानव विकास की कुछ निश्चित प्रवृत्तियों के भी संकेत मिलेंगे। मानव विकास की कुछ ऐसी आम प्रवृत्तियां जिनकी चर्चा इस इकाई में होती रहेगी निम्नलिखित हैं :

i) दो पांवों पर चलने की प्रवृत्ति (bipedalism) का विकास, ताकि अग्रबाहुओं (हाथों) का उपयोग विशिष्ट कार्यों के लिए किया जा सके (चित्र 14.3)।

ii) दृष्टि की स्पष्टता (visual acuity) का विकास, जिसकी चरम परिणति द्विनेत्री अर्थात् दोनों आंखों की त्रिविमीय दृष्टि (binocular, stereoscopic vision) के विकास में हुई।

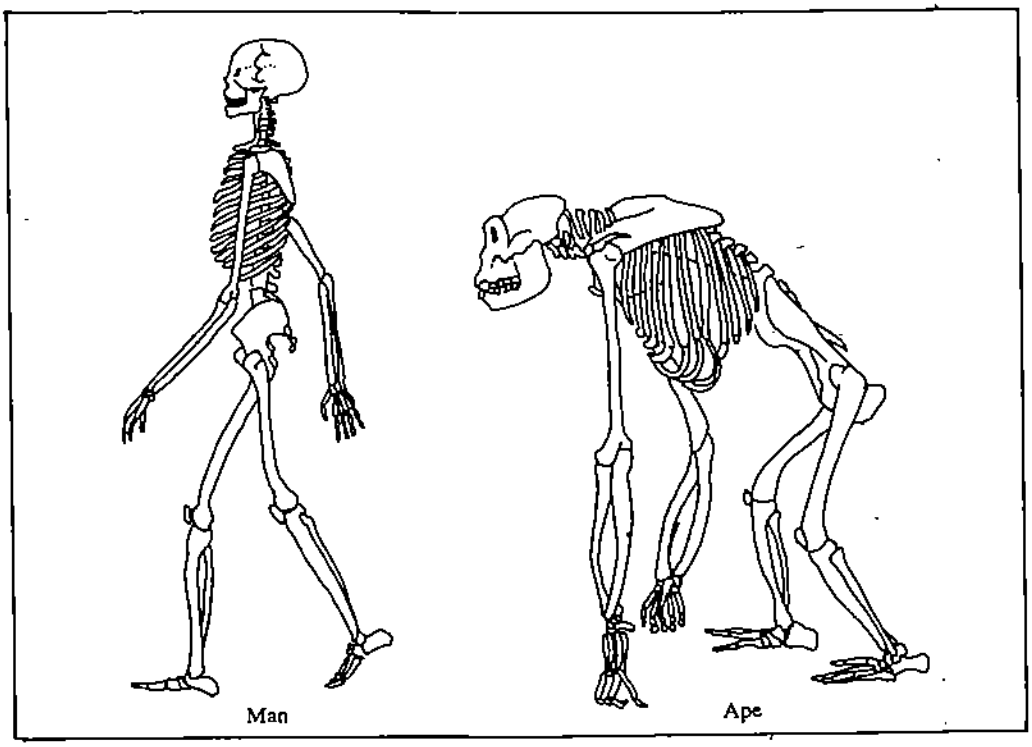

चित्र 14.3: द्विपादिता का विकास।

iii) कपाल अर्थात् क्रेनियम की क्षमता (cranial capacity) में विकास ताकि बड़े आकार का मस्तिष्क उसमें समा सके (चित्र 14.4)।

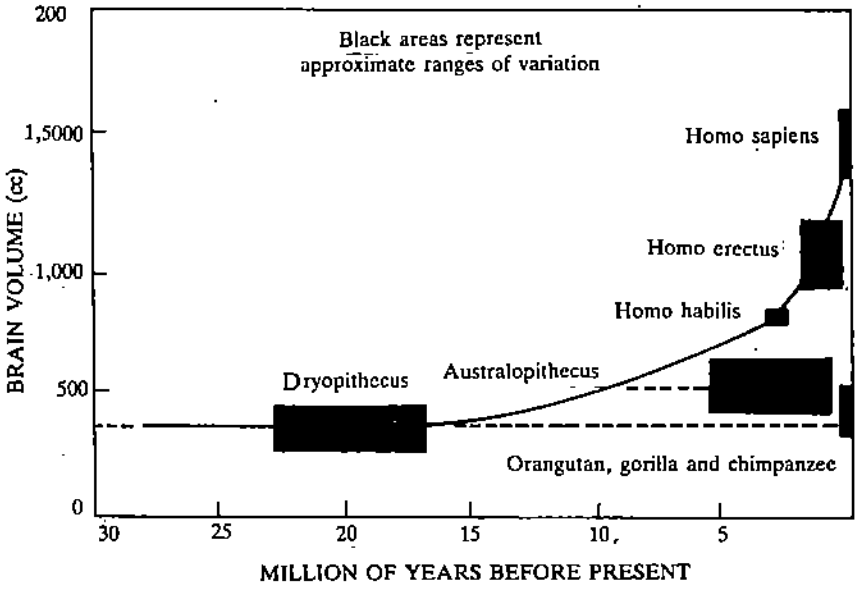

चित्र 14.4: प्राइमेटों की विभिन्न जातियों के मस्तिष्क का आयतन।

iv) माथे का घटता आकार

v) अंगुलियों के सामने की दिशा में (opposable) अगूंठे अर्थात् प्रतिस्थापनीय अंगूठे का विकास (चित्र 14.5)।

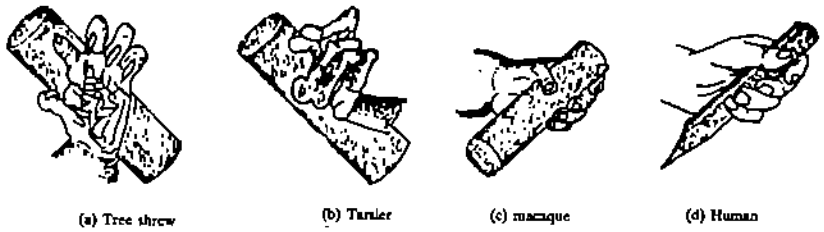

चित्र 14.5: प्राइमेटों के हाथों के विकासीय परिवर्तन, जिससे अंगूठे का विकास अंगुलियों के सामने की ओर हुआ ताकि मानव अंगूठे और अंगुलियों से कोई भी वस्तु पकड़ सके।

vi) चाप (arch) वाले पैरों का विकास

इन शरीर रचना के परिवर्तनों के अलावा, *होमो* जीनस को विशिष्ट तथा अलग रूप देने वाली कुछ अन्य विशेषताएं हैं :

i) संस्कृति का विकास; इसका तात्पर्य है कि समाज के लोग कुछ धारणाएं बनाते हैं और समाज के अन्य लोगों को इन धारणाओं को संप्रेषित करते हैं।

ii) संप्रेषण का तात्पर्य है कि संस्कृति के मूलभूत माध्यम के रूप में भाषा का विकास किया जाए।

अगले भागों में हम उक्त प्रवृत्तियों का जीवाश्मीय अभिलेखों के संदर्भ में विश्लेषण करेंगे। शरीर-रचना की विशेषताओं और कुछ हद तक सांस्कृतिक विकास के जीवाश्मीय प्रमाण तो मिल सकते हैं पर भाषा को जीवाश्मीय रूप में नहीं संजोया जा सकता। हम इस इकाई में संक्षेप में और अगली इकाई में विस्तार से मानवीय समाजों के संप्रेषण कौशलों की चर्चा करेंगे।

14.4 औस्ट्रालोपिथेसिन

दक्षिण अफ्रीका में तौंग (Taung) में 1924 में पहला औस्ट्रालोपिथेसिन (Australopithecine) जीवाश्म मिला। यह छह वर्ष के एक बच्चे की खोपड़ी थी और इसमें मनुष्य और कपि की मिली-जुली विशेषताएं थीं। इस असामान्य जीवाश्म को औस्ट्रालोपिथीकस (*Australopithecus*) (दक्षिणी कपि -southern ape) नाम दिया गया। इसके बाद, अनेक अन्य कंकाल मिले जिनमें ज्यादातर अधूरे थे। इन सभी को दो समूहों में रखा जा सकता है – (i) अपेक्षाकृत हल्का, ज्यादा प्रगतिशील समूह, (ii) अपेक्षाकृत भारी, कम प्रगतिशील समूह। हल्के समूह को ग्रेसाइल टाइप (gracile type) और भारी समूह को रोबस्टस टाइप (robustus type) कहा गया।

होमीनिडों के प्राचीनतम निर्विवाद जीवाश्म पूर्वी अफ्रीका में दो स्थानों पर मिले। पहला स्थान लैतोली (Laetoli) है जो तन्ज़ानिया में ओल्दुवाई (Olduvai gorge) तंग घाटी से 50 किलोमीटर दक्षिण में है। यहां एम. लीकी (M. Leaky) ने बीस मीटर क्षेत्र में तीन होमीनिडों के पैरों के निशान पाये। ये निशान 37 लाख 50 हजार वर्ष पूर्व के थे और ज्वालामुखी के लावे से निकली राख पर बने थे। इनके अलावा तेरह व्यक्तियों के जीवाश्मों के टुकड़े भी मिले। इनमें मुख्य रूप से दांत, जबड़े, और खोपड़ी की पीछे की हड्डियां थीं। दूसरा क्षेत्र इथियोपिया के दुर्गम अफ़ार (Afar) क्षेत्र में हदार (Hadar) था। 1974 में अमरीकी मानवविज्ञानी डी.सी. जोहॉन्सन को एक उल्लेखनीय होमीनिड जीवाश्म मिला जो 0.9 मीटर लंबी औस्ट्रालोपिथेसिन मादा का 40 प्रतिशत कंकाल था।

37 लाख पचास हजार वर्ष प्राचीन जीवाश्मीय पदचिह्नों से यह स्पष्ट होता है कि तब दो पैरों से सीधे चलने की प्रवृत्ति काफी विकसित हो गई थी। इस तथ्य को मस्तिष्क के आकार के संदर्भ में देखा जाना चाहिए। औस्ट्रालोपिथेसिन जाति के क्रेनियम की क्षमता 400 घन सेंटीमीटर से कुछ ही ज्यादा थी। हदार

की 40 लाख वर्ष पूर्व की खोजों से भी इस तथ्य की पुष्टि हुई। निश्चित रूप से, करीब 40 लाख वर्ष पूर्व अफ्रीकी कपि और होमीनिड्स की शखाएं अलग-अलग हुई (चित्र 14.6)। अब हम औस्ट्रालोपिथेसिन समूह के लक्षणों की चर्चा करेंगे जिससे पता चलता है कि वे होमीनिड्स के पूर्वज थे।

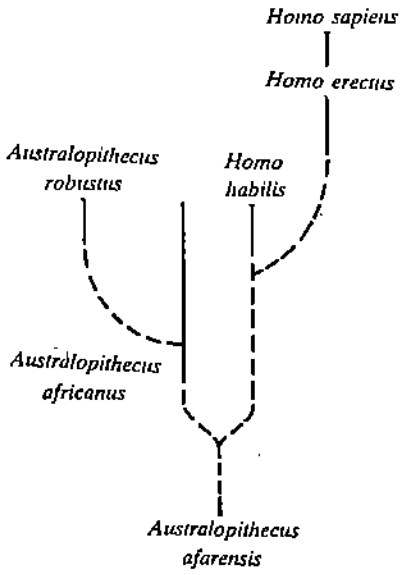

चित्र 14.6: करीब 40 लाख पूर्व औस्ट्रालोपिथेसिन और होमीनिड्स का अलग-अलग शखाओं में बंटना।

औस्ट्रालोपिथेसिन जंतुओं के मस्तिष्क विवर अर्थात् क्रेनियम (brain case) का आयतन प्रायः 400 से 600 घन मीटर तक रहा। यह उनके करीब 1.2 मीटर के बाद और 23 किलोग्राम के वजन के अनुपात में काफी अधिक था। ज्यादातर जीवाश्म गुफाओं के क्षेत्र में मिले हैं जिसका तात्पर्य है कि करीब 20 लाख वर्ष पूर्व आश्रय-स्थल के रूप में गुफाओं का इस्तेमाल शुरू हो गया था। ऐसे भी प्रमाण हैं कि ये लोग पत्थर के औज़ारों का इस्तेमाल भी करते थे। जॉनसन ने *औस्ट्रालोपिथीकस अफारेंसेसिस* (इस प्राप्त मादा कपि के जीवाश्म का नाम लूसी रखा गया था) में द्विपाद-प्रवृत्ति को समझाते हुए अपनी राय रखी थी कि नर सदस्यों को परिवार के लिए भोजन जमा करना होता था, अतः अग्रबाहुओं को मुक्त रखते हुए दो पांवों से चलना पहले नर प्राणियों ने ही सीखा होगा। दूसरे शब्दों में, द्विपाद-अवस्था परिवार के लिए आवश्यक सामग्री जुटाने के सिलसिले में विकसित हुई। माथा चिंपांजी से कहीं ज्यादा गोलाई लिए हुए था और आंख की भौहों के किनारे बहुत उभरे होते हुए भी चिंपांजी से कम उभरे थे। जबड़े आगे को उभरे हुए थे लेकिन यह उभार आधुनिक कपि (वनमानुष) से कम था। औस्ट्रालोपिथेसिन के दांतों का समूह कुल मिलाकर कपि और ज्यादा विकसित होमीनिडी की बीच की स्थिति का था। कैनाइन दांतों के आकार और प्रीमोलर और मोलर दांतों के आगे को प्रमुखता से निकले होने में भी यही स्थिति थी (चित्र 14.7)।

दांतों की पंक्ति के आकार में भी कपि की तुलना में *औस्ट्रालोपिथीकस* और मानवों में भिन्नताएं थीं। कपियों में कैनाइन, प्रीमोलर और मोलर दांत जबड़े के दोनों ओर समातंर पंक्तियों में होते हैं और इनसाइज़र उनसे समकोण बनाते हैं। अन्य दोनों समूहों में दांतों के दो समूह परवलय (parabola) के आकार की पंक्ति बनाते हैं जैसा चित्र 14.7 से स्पष्ट है। पश्चकपाल को मेरू रज्जु (spinal cord) से जोड़ने वाले ऑक्सिपिटल कोंडाइल (occipital condyle) का आकार भी *औस्ट्रालोपिथीकस* और मानव का, कपि की तुलना में, ज्यादा मिलता-जुलता है जो इन जीवों की सीधे खड़े रहने की स्थिति बताता है।

मानव और औस्ट्रालोपिथेसिन के कंकाल के अन्य भागों में भी समानताएं हैं। हाथों-पैरों की हड्डियों, भुजाओं का अधिक विकास, कूल्हे की हड्डियां, पैर की बड़ी अंगुली (बड़ी पाचांगुलि) और पदचापों का विकास – ये सभी बातें सीधे खड़े रहने और दो पैरों से चलने की स्थिति बताते हैं। कंकाल के विवरण के अलावा शरीर-रचना, जैव-रासायनिक प्रमाणों तथा गुणसूत्र प्ररूप (karyotype) विश्लेषण तथा डी.एन.ए.

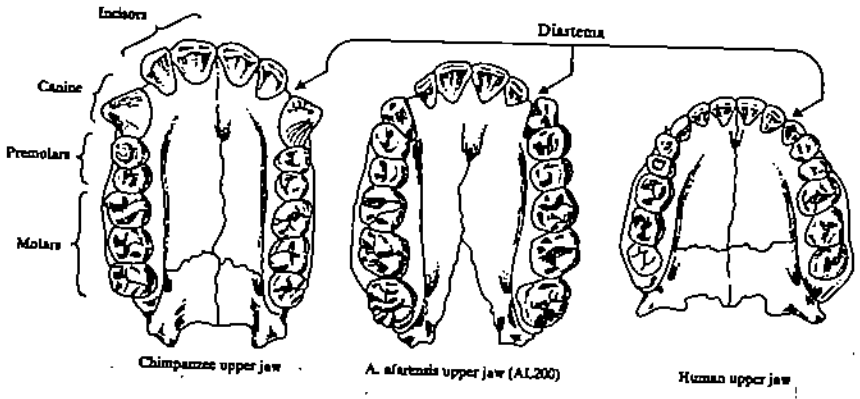

चित्र 14.7: चिंपांजी, औस्ट्रालोपिथेसिन और मानव के दंत-क्रम की परस्पर तुलना।

संकरण अर्थात् हाइब्रिडाइजेशन (DNA hybridization) तकनीकों से संकेत मिलते हैं कि मानव और अफ्रीकी कपियों के आनुवंशिक तत्वों में 98 प्रतिशत समानता है।

उपलब्ध जीवाश्मीय प्रमाणों से यह स्पष्ट तौर से नहीं कहा जा सकता कि किस विशिष्ट समय पर औस्ट्रालोपिथेसिन से अलग होकर जीनस *होमो* अलग शाखा के रूप में विकसित हुआ। *ए. रोबस्टस (A. robustos)* और *ए. बोइसेई (A.boisei)* जातियां बहुत अधिक विशिष्टीकृत हैं और इन्हें औस्ट्रालोपिथेसिन की उन्नतम अवस्था के अंतिम जंतुओं में माना जा सकता है। आज की स्थिति में, ऐसा मानने के तर्क हैं कि *ए.अफ्रीकेनस (A. africanus)* जाति वह अंतिम बिंदु हो सकती है, जहां से जीनस *होमो* स्वतंत्र शाखा के रूप में विकसित होना प्रारंभ हुआ। जब तक विभाजन के किसी अन्य क्रम को बताने वाले नये जीवाश्म नहीं मिलते, तब तक यह धारणा उचित ही लगती है। इसी के साथ जीनस *होमो* के पहले पूर्वज औस्ट्रालोपिथेसिन की चर्चा हम समाप्त करते हैं। अगले भाग में आप अन्य जातियों के मानव-जीवाश्मों का अध्ययन करेंगे और वर्तमान मानव—*होमा सेपियंस* के विकास के विभिन्न चरणों को समझेंगे।

बोध प्रश्न 2

कॉलम I में दिए गए विवरण का कॉलम II से मेल कीजिए।

कॉलम I	कॉलम II
i) कैनाइन, प्रीमोलर, मोलर-समांतर पंक्ति में और इनसाइज़र इनके समकोण	क) मानव के दांतों की व्यवस्था
ii) *ऑस्ट्रालोपिथीकस अफारेंसिस (A.afarensis)*	ख) तन्ज़ानिया
iii) औस्ट्रालोपिथीकस रोबस्टस *(A.robustus)*	ग) औस्ट्रालोपिथेसिन समूह की अंतिम जाति
iv) पद-चिह्नों के जीवाश्म	घ) हदार
v) दांतों की परवलय जैसी व्यवस्था	च) कपियों का लक्षण

14.5 होमो हैबिलिस और होमो इरेक्टस

मानव की वंश परंपरा के निर्धारण में दो जीवाश्मों की महत्वपूर्ण भूमिका है। ये अफ्रीका में ओल्दुबाई क्षेत्र में और मध्य जावा में पाए गए हैं। हालांकि जीनस *होमो* के विकास की पहली घटनाएं द्विपाद-चालन और हाथों का अन्य कार्यों के लिए मुक्त हो जाना मानी जाती है, लेकिन बाद का मानवीय विकास मुख्य रूप से

मस्तिष्क के आकार के विकास पर निर्भर रहा। मस्तिष्क के आकार का विकास करीब 20 वर्ष पहले हुआ। केन्या और तन्ज़ानिया में मिले जीवाश्मों से पता चलता है कि इन जंतुओं के कपाल (क्रेनियम) की क्षमता 650 घन सेंटीमीटर से अधिक और 800 घन सेंटीमीटर के करीब थी। ये पहले जीवाश्म थे, जो मानवीय रूप प्रदर्शित करते थे तथा इन्हें *होमो हैबिलिस* नाम दिया गया। लुई लीकी (Louis leaky) और उनके सहयोगियों ने 1964 में इसे हैंडी मैन (handy man) (हाथों से सुविधा से काम करने वाला मानव) नाम दिया। *होमो हैबिलिस (Homo habilis) के कई लक्षण ए. अफ्रीकेनस (A. africanus)* के समान थे। जैसे – समान ऊंचाई तथा वजन और दो पैरों से चलना। लेकिन इनमें कुछ स्पष्ट विभिन्नताएं हैं। जैसे – *होमो हैबिलिस* का बड़ा सिर (चित्र 14.8), अपेक्षाकृत छोटी, ज्यादा गोलाई लिए गरदन, अपेक्षाकृत चपटा और कम उभरा चेहरा। साथ ही, इस *होमो जीनस* के दांत *ऑस्ट्रालोपिथीकस* से कम भारी और छोटे थे। "हैंडी मैन" का मतलब है – औज़ार बनाने वाला आदमी। 1972 में रिचर्ड लीकी ने केन्या के कूबी फोरा (Koobi fora) में क्रेनियम की 800 घन सेंटीमीटर क्षमता वाली होमीनिड खोपड़ियां खोजी हैं। इन खोपड़ियों के साथ औज़ार भी मिले हैं जिनसे इस जाति को *हैबिलिस* कहना और इसे *होमो* गण में शामिल करना उचित जान पड़ता है।

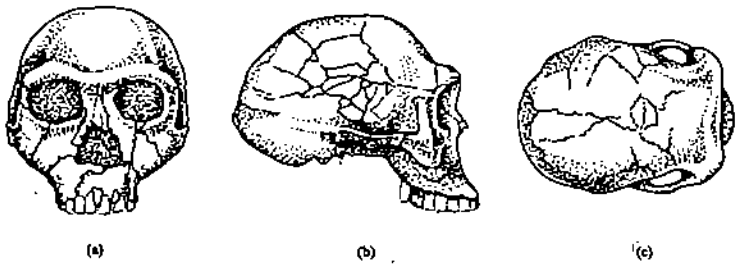

चित्र 14.8: *होमो हैबिलिस* की खोपड़ी का (a) अग्र (b) पार्श्व और (c) ऊपर से चित्र।

होमो इरेक्टस (Homo erectus) का प्रादुर्भाव करीब 16 लाख वर्ष पूर्व हुआ। अनुमान है कि करीब 6 लाख वर्ष तक यह जाति फलती-फूलती रही और इसी अवधि में *होमो सेपियंस* के विकसित होने का क्रम चला। इसके जीवाश्मों से कई बातों का संकेत मिलता है जो मानव इतिहास में पहली बार हुई। पहली बार मानव ने परस्पर सहयोग से मिलकर शिकार करना शुरू किया जबकि पहले वह अवसरवादी भक्षक (scavenger) की तरह शिकार करके मृत जीवों का मांस खाता था। पहली बार, उसने आग का इस्तेमाल जाना। अब वह पत्थरों को उल्टे-सीधे छील देने की बजाय सुनियोजित तरीके से औज़ार बनाने लगा। ऐसे प्रमाण हैं कि उसके काम करने के शिविर थे और पहली बार अफ्रीका के बाहर, यूरेशिया में ऐसे जीवाश्म मिले।

होमो इरेक्टस को *पिथिकैन्थ्रोपस, सिनैनथ्रोपस* और *एटलांथ्रोपस* नामों से भी जाना जाता है। यह सबसे पहले प्लीस्टोसीन अंतर-हिमनद (Interglacial) काल में आया। ऐसा लगता है कि इसके विशिष्ट लक्षण जैसे–बुद्धिमता, बड़ा शरीर, लंबा जीवन, प्रतीकात्मक मानव शैली की संस्कृति और शारीरिक ऊष्मा में कमी–प्राकृतिक वरण से प्रभावित हुए। पिथिकैन्थ्रोपाइन मानव के क्रेनियम की क्षमता 800 से 1125 घन सेंटीमीटर तक थी (चित्र 14.9)। *होमो इरेक्टस* की बाद की पीढ़ियों गुहा-मानव (cave man) अथवा कपि मानव (ape man) कहलाई। पिथिकैन्थ्रोपाइन के जीवाश्मों के अनेक लक्षणों से आदिम मानवों का स्पष्ट रूप सामने आता है।

होमो इरेक्टस सामान्य ऊंचाई, हाथ-पैरों की सीधी हड्डियों और कूल्हे की चौड़ी हड्डियों वाला था तथा ऑक्सिपिटल कोंडाइल उसके शरीर में लगभग आधुनिक मानव की तरह ही स्थित था। इन गुणों से पता चलता है कि *होमो इरेक्टस* सीधे या फिर लगभग सीधे खड़ा होता था। उसकी टांगों तथा भुजाओं का अनुपात आधुनिक मानव जैसा था। इसका माथा छोटा हो रहा था लेकिन जबड़े अब भी उभरे थे, हालांकि यह उभार कपियों से कम था। इनके जबड़े और दांत बड़े-बड़े थे और ठोढ़ी (chin) नहीं थी। दांत, उनका

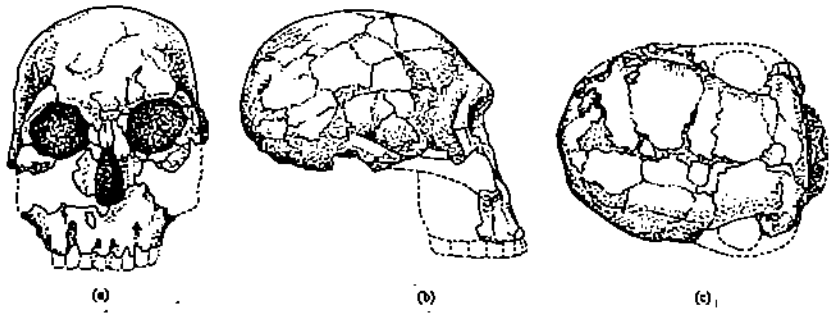

चित्र 14.9: *होमो इरेक्टस* की खोपड़ी का (a) आग्र (b) पश्च और (c) ऊपर से चित्र।

आकार तथा क्रम, कपियों की तुलना में, मानव से ज्यादा मिलता था। पिथिकैन्थ्रोपाइन के विभिन्न जीवाश्मों में मस्तिष्क विवर के आकार में विविधताएं थीं। जावा मानव (Java man) के क्रेनियम की क्षमता 775 से 900 घन सेंटीमीटर और औसतन 860 घन सेंटीमीटर थी। पीकिंग मानव (Peking man & China man) के क्रेनियम की क्षमता 850 से 1225 घन सेंटीमीटर और औसतन 1075 घन सेंटीमीटर थी। यह क्षमता गोरिल्ला (500 घन सेंटीमीटर) और आधुनिक मानव (1350 घन सेंटीमीटर) के बीच की है। हालांकि बुद्धिमता और मस्तिष्क के आकार के बीच कोई सीधा संबंध निर्धारित नहीं किया जा सकता, लेकिन फिर भी जीवाश्मीय अवशेषों से ऐसे संकेत मिलते हैं कि *होमो इरेक्टस* कपियों की तुलना में काफी चतुर और आधुनिक मानव की तुलना में मंद बुद्धि था।

जैसा पहले बताया गया है, *होमो इरेक्टस* की दो विशेषताएं उसके सभी पूर्ववर्तियों से उसे स्पष्टतः अलग करती हैं। ये हैं – (i) औज़ार निर्माण का बढ़िया कौशल (ii) परस्पर सहयोग से शिकार का कौशल। इन दोनों कौशलों का कारण इस जाति का बड़ा मस्तिष्क हो सकता है। औस्ट्रॉलोपिथेसिन जाति के जीवों के प्रारंभिक औज़ार कंकड़-पत्थरों के थे। इनमें एक किनारा इक तरफ या दोनों तरफ छाँट-तराश कर तेज़ तथा तीखा बना लिया जाता था। विकसित जातियों में भी औज़ार बनाने की यही बुनियादी शैली अपनायी गई जिन्होंने ज्यादा विविधताओं वाले बेहतर औज़ार बनाये। वास्तव में आस्ट्रेलियन अबऑरिजिनीस (Australian aboriginees) के कुछ पूर्वज इसी प्रकार से अपने औज़ार बनाते थे। इससे प्रतीत होता है कि *होमो इरेक्टस* जाति से *होमो सेपियंस जाति* में संक्रमण मे औज़ार बनाने की कला में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। लेकिन *होमो सेपियंस* जाति के लोगों ने ज्यादा परिष्कृत और बेहतर औज़ार बनाये। छाँट कर औज़ार बनाने की कला जावा मानव और पेकिंग मानव की परंपरा यूरेशिया और अफ्रीका में दो दिशाओं में विकसित हुई। एक परंपरा शल्क औज़ारों (flake tools) की थी जिसमें पत्थर को तोड़कर उसकी परतें (flakes) निकाल ली जाती थीं और इन परतों के एक सिरे को और तराश दिया जाता था। दूसरी परंपरा में द्विमुखी धार वाले (biface core) औज़ार अर्थात् हाथ की कुल्हाड़ियां बनायी गई। दूसरी परंपरा में परतों को छाँटने के बाद पत्थर को दोनों शिरों पर तराश कर काटने के लिए औज़ार तैयार किया जाता था। जीवाश्मीय अवशेषों से पता चलता है कि उष्ण कटिबंधीय क्षेत्रों में हाथों की कुल्हाड़ियों का उपयोग होता था, जबकि उत्तर वन-क्षेत्रों (boreal Regions) में शल्कीय औज़ार बड़ी संख्या में मिले हैं। उदाहरण के लिए, पिछले हिमनद काल में हाथ की कुल्हाड़ियां यूरोप से लुप्त हो गयीं। इससे पता चलता है कि यहां की जातियां दक्षिण की ओर चली गयीं। शल्कीय औज़ार जानवरों की खाल निकालने के लिए हाथ की कुल्हाड़ियों से बेहतर थे। उत्तरी क्षेत्र के लोग जानवरों के बालों वाले फर के वस्त्र पहनते थे, इसलिए उन्होंने ऐसे औज़ारों का अधिक इस्तेमाल किया। संक्षेप में, *होमो इरेक्टस* निम्न पुरापाषाण (Paleolithic) काल की मुख्य जाति थी। पत्थरों के औजारों के उद्योग के दो वर्ग थे – (i) **ओल्दुवान (Olduwan) उद्योग** (चित्र 14.10 क) : ये औज़ार सीधे-सादे और किसी विशिष्ट उपयोग के लिए विशेष रूप से नहीं बनाये गये (unspecialised) थे और इनका भौगोलिक क्षेत्र सीमित था। पर बाद में इस उद्योग के कौशल और

विशिष्टीकरण में सुधार हुआ जैसा कि दक्षिणी और पूर्वी अफ्रीका से मिले उपकरणों से पता चलता है। (ii) *एक्यूलियन (Acheulian) उद्योग* (चित्र 14.10 ख) : इनमें हाथ की बड़ी कुल्हाड़ियां हैं जिनमें बढ़िया तराश है। फ्रांस से भारत तक के क्षेत्र में ऐसे औज़ार बड़ी संख्या में मिले हैं। यह उद्योग करीब दस लाख वर्ष तक चला। संभवतः *होमो सेपियंस* जाति के लोगों ने भी इन औज़ारों का उपयोग किया।

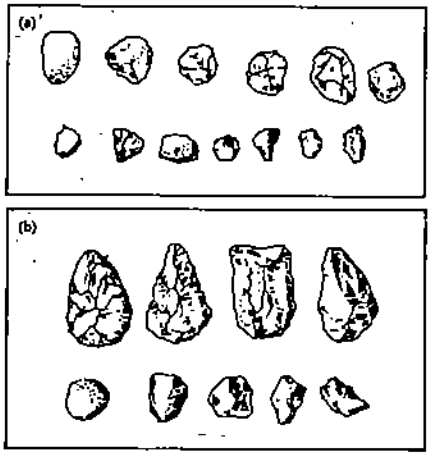

चित्र 14.10: निम्न पुरापाषण काल के औज़ार (a) ओल्दुवान उद्योग (b) एक्यूलियन उद्योग।

आधुनिक मानव के विकास में सबसे महत्वपूर्ण घटना उसका आखेटक-भोजन संग्राहक (Hunter-gatherer) से बड़े पैमाने पर शिकारी के रूप में विकसित होना है। मध्य प्लीस्टोसीन युग में विशाल स्तनधारियों के बड़े-बड़े झुंड थे। इन विशाल स्तनधारियों की हड्डियां, मानव जीवाश्मों और तत्कालीन औज़ारों के साथ मिले हैं। यह भी कहा जाता है कि मानव द्वारा बड़े पैमाने पर शिकार करने से यूरेशिया में प्लेस्टोसीन युग के विशाल स्तनधारी जंतु पूरी तरह समाप्त हो गए। इन जीवों में मैमथ (Mammoths), मास्तोदोन (Mastodons), बालों वाला गेंडा (wooly rhinoceros), गुफाओं वाला भालू (cave bear) और जाइंट डीअर (giant deer) शामिल हैं। संभवतः शुरू में बड़े पशुओं का शिकार बड़े पैमाने पर नहीं किया गया और जब भी यह काम किया गया तो परस्पर सहयोग से किया गया। इस तरीके में अनेक नर मानव एक पशु को घेर का आसान तरीके से मारा करते थे। महत्वपूर्ण बात यह थी कि पूरी प्रक्रिया परस्पर सहयोग की थी। यह भी सच है कि सारी प्रक्रिया के सहकारी होने के बावजूद, *होमो इरेक्टस* शिकार की पहले से कोई विस्तृत योजना नहीं बना पाता होगा क्योंकि उसके पास संप्रेषण के तरीके नहीं थे। लेकिन इस सहकारी तरीके का बड़ा लाभ यह हुआ कि इससे बहु-परिवार समूहों का बनना और सामाजिक प्रवृत्तियों का विकास होना शुरू हुआ। साथ ही, इससे यह भी धारणा बनती है कि ऐसी स्थितियों में एक से ज्यादा नर हों। इससे प्रभुत्व वाली पदानुक्रम परंपराओं (dominant hierarchy) के विकास की भी संभावनाएं बनी होगी। सहकारी आखेट से मिलकर शिकार करने के साथ-साथ, प्राप्त भोजन को बांट कर खाना भी संभव हुआ। एक मस्तोदोन का मांस एक परिवार के इस्तेमाल से बहुत अधिक होता था इसलिए बांट कर खाने की परंपरा शुरू हुई। इस प्रवृत्ति से समाजीकरण और विभिन्न परिवारों का बनना शुरू हुआ। साथ ही, ऐसा लगता है कि बड़े पैमाने पर इस शिकार के काम से औरतों को अलग रखा गया क्योंकि वे बच्चों को जन्म देने और पालने की प्रक्रिया के कारण इस काम में शामिल नहीं हो पाती थीं। दूसरे शब्दों में, बड़े पशुओं के शिकार ने पुरुषों और औरतों के लिए अलग-अलग भूमिकाएं निर्धारित कर दीं। इस तरह श्रम-विभाजन शुरू हो गया और औरतों का काम मुख्यतः बच्चों को जन्म देना, उनका लालन पालन, शाकाहारी भोजन जमा करना और मामूली शिकार तक सीमित रह गया।

बड़े पशुओं के शिकार की वजह से मानवों की शारीरिक रचना में भी कुछ परिवर्तन हुए। पुरुष दिन में शिकार करते थे। इस तरह जानवर का पीछा करने और उसे पकड़ने का कठिन कार्य दिन की कड़ी धूप में

करना पड़ता था। प्राकृतिक वरण के अनुसार इस परिस्थिति के लिए वे लोग उचित थे जिनके शरीर की मेटाबोलिक अर्थात् उपापचयी ऊष्मा जल्दी खत्म हो ताकि बहुत गर्मी से शरीर पर प्रतिकूल प्रभाव न पड़े। संभवतः इसी कारण मानव शरीर से बालों की भारी परत इसी काल में कम हो गई और त्वचा में सघन स्वेट (पसीना) ग्रंथियां (sweat glants) विकसित हुई। इससे शरीर से पानी तेजी से उड़ जाता और शरीर को ठंडक तथा आराम मिलता।

इसके साथ ही, *होमो इरेक्ट्स* ने आग का इस्तेमाल सीखा जिसके अनेक उपयोग थे। यह स्पष्ट नहीं है कि मानव ने आग पर नियंत्रण पाना कैसे सीखा लेकिन शरीर से बालों की भारी परत के लुप्त हो जाने के बाद ठंड से बचने के लिए आग गरमी का अच्छा स्रोत है, यह मानव सीख गया। बड़े मांसाहारी जीवों को डराकर भगाने में भी आग सहायक थी। अब मानव के दांत सामान्य किस्म के रहे थे, अतः सख्त मांस और वनस्पतियों को मुलायम बनाना ज़रूरी था। इसके लिए भी आग में सेंकना उपयोगी था। आग से लकड़ी वाले भालों के अगले हिस्से भी सख्त बनाये जाते थे। आग से सामाजिक व्यवहार को भी नया रूप मिला। क्योंकि आग से घर को गरम करके औरतें-बच्चे एक इकाई के रूप में उसके पास बैठते थे और पुरुष शिकार करने बाहर जाते थे।

होमो इरेक्टस का युग संभवतः 2 लाख 75 हजार वर्ष पूर्व समाप्त हुआ। लेकिन तब तक आधुनिक मानव की सभी विशेषताएं *होमो इरेक्टस* में आ गई थीं। जीवाश्म-शास्त्रियों और मानवविज्ञानियों के लिए उस समय का ठीक-ठाक निर्धारण कठिन है जब *होमो इरेक्टस* से *होमो सेपियंस* में संक्रमण हुआ हालांकि *होमो सेपियंस* के प्रारंभिक जीवाश्म कम से कम तीन लाख वर्ष पुराने हैं। अब हम *होमो सेपियंस* के विकास की प्रवृत्तियों का अध्ययन करेंगे।

बोध प्रश्न 3

निम्नलिखित प्रश्नों का निर्धारित स्थान में संक्षिप्त उत्तर दें।

क) जीनस *होमो* के विकास की प्रमुख प्रवृत्तियों को बताएं।

.....

.....

.....

.....

ख) प्राप्त जीवाश्मों के आधार पर पिथिकैन्थ्रोपाइन और औस्ट्रॉलोपिथेसिन के बीच क्या विभिन्नताएं हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

ग) *होमो इरेक्टस* द्वारा अपनायी गयी वे दो विशेषताएं कौन-सी हैं जिनसे सामाजिक प्रवृत्तियों और पारिवारिक जीवन का विकास हुआ?

.....

.....

.....

.....

14.6 होमो सेपियंस

होमो सेपियंस के प्राचीनतम जीवाश्म अवशेष 2 से 3 लाख वर्ष पुराने हैं। ये जीवाश्म इंग्लैंड के स्वान्सकोंब मानव (चित्र 14.11a) और जर्मनी के स्टेनहैम (Steinheim) मानव (चित्र 14.11b) के हैं।।

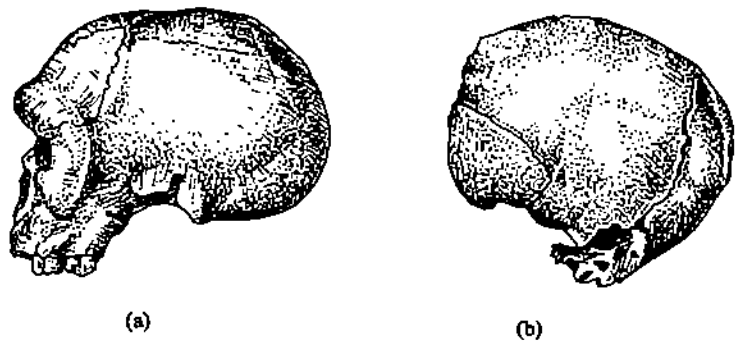

चित्र 14.11: (a) स्वान्सकोंब खोपड़ी (b) स्टेनहैम खोपड़ी।

होमो इरेक्टस और *होमो सेपियंस* के बीच बहुत मामूली शारीरिक अंतर है और *होमो सेपियंस* के प्राचीनतम ज्ञात समूह – निएंडरथल (Neanderthal) मानव – से यह स्पष्ट हो जाता है कि *होमो इरेक्टस* से ही *होमो सेपियंस* का विकास हुआ। इसी कारण, कुछ विद्वान निएंडरथल मानव को *होमो इरेक्टस* जीनस में रखने के पक्ष में हैं। पिथिकैन्थ्रोपाइन की तुलना में *होमो सेपियंस* की प्रमुख विशेषताएं बड़ा और गोल मस्तिष्क विवर, भौंहों के छोटे किनारे, और ज्यादा स्पष्ट ठोढ़ी (chin) है। इसकी तुलना में निएंडरथल मानव कोई मध्यवर्ती जीव लगता है (14.12)।

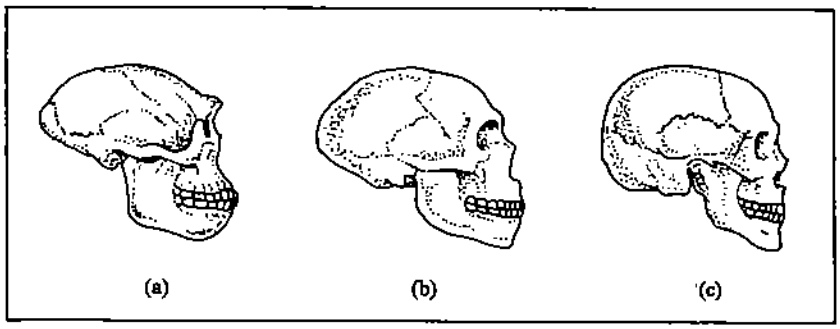

चित्र 14.12: (a) निएंडरथल मानव की खोपड़ी (b) पिथिकैन्थ्रोपाइन मानव और (c) आधुनिक मानव की खोपड़ी।

निएंडरथल मानव की बस्तियां यूरोप, एशिया और अफ्रीका में दूर-दूर तक फैली थीं। उनके क्रेनियम की क्षमता आधुनिक मानव से अधिक थी। यह स्पष्ट नहीं है कि निएंडरथल मानव आधुनिक मानव के विकास की एक कड़ी है अथवा वह आधुनिक मानव की ही कोई दूसरी जाति है। उपलब्ध प्रमाणों के आधार पर दूसरी बात ज्यादा सही लगती है। ***वर्म ग्लेशिएशन* (wurm glaciation)** के अंतिम वर्षों में दोनों जातियां साथ-साथ रहीं। इस प्रकार ऐसे संकेत हैं कि निएंडरथल मानव आधुनिक मानव की ही एक अलग जाति है। निएंडरथल मानव-जाति अपने परिष्कृत **माउस्टेरियन (Mousterian)** औज़ार उद्योग (चित्र 14.13) के लिए जाने जाते हैं। इस उद्योग में हाथ की कुल्हाड़ी के स्थान पर अनेक दूसरे औज़ार अपनाये गये।

हिमनदीकरण (Glaciation) मानवीय जीवाश्मों का तिथि-निर्धारण पृथ्वी पर हुए कुछ महत्वपूर्ण जलवायु-परिवर्तनों के आधार पर किया जाता है। ऐसा लगता है कि पृथ्वी पर बार-बार उल्लेखनीय रूप से बर्फ का फैलाव हुआ। इनके बीच गर्म अंतर-हिमनदकाल आये। संभवतः पहला हिमनदीकरण काल 13 लाख वर्ष पहले प्रारंभ हुआ और यह 6 लाख वर्ष तक चला। दूसरा हिमनदीकरण काल पांच लाख वर्ष पूर्व शुरू हुआ और यह ढाई लाख वर्ष तक चला। तीसरा हिमनदीकरण काल दो लाख 25 हज़ार वर्ष पूर्व शुरू हुआ और यह एक लाख वर्ष तक चला। करीब एक लाख वर्ष पूर्व अंतिम बार बर्फ पृथ्वी पर फैली और करीब 11,000 वर्ष पूर्व तक यह अंतिम हिमनदीकरण काल चला। अंतिम हिमनदीकरण काल को वर्म ग्लेशियसन (Wurm Glaciation) कहा जाता है।

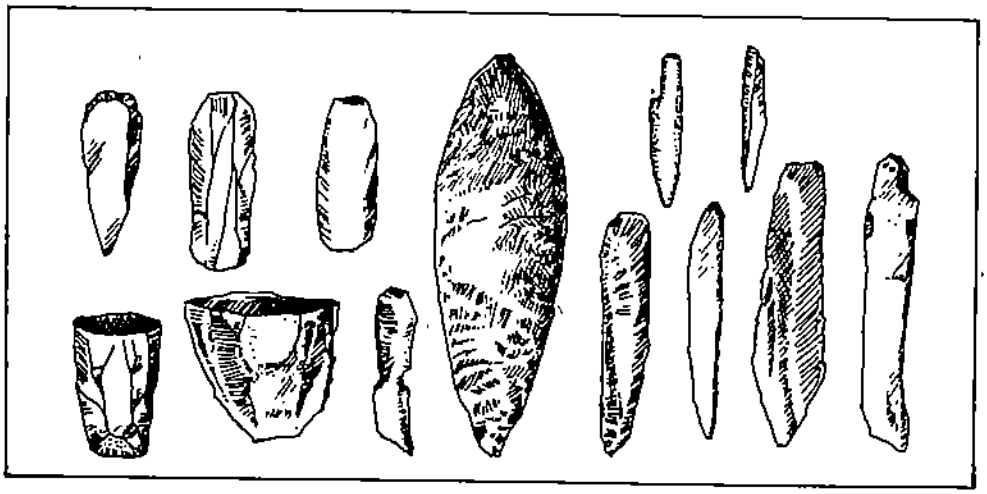

चित्र 14.13: माउस्टेरियन औज़ारों के कुछ नमूने।

निएंडरथल मानव की खोपड़ी बड़ी और मोटी हड्डियों वाली थी। आंखों की भौहों के किनारे कुछ उभरे थे। माथा छोटा (receeding) था और क्रेनियम आधुनिक मानव से भी बड़ा, औसतन 1450 घन सेंटीमीटर का था। आधुनिक मानव की तुलना में दांत और जबड़े बड़े और भारी थे और ठोढ़ी छोटी थी। ऐसे संकेत हैं कि उसकी गरदन की पेशियां काफी ताकतवर और हाथ-पैरों की हड्डियां मजबूत थीं। उसका कंकाल उच्च स्तर के कार्यों और तनाव झेलने के लिए उपयुक्त था। उसके हाथ की रचना से उसकी मजबूत पकड़ होने का संकेत मिलता है। उसका कद 1.5 मीटर था और वह गुफाओं में रहता था। निएंडरथल मानव संभवतः सांस्कृतिक रूप से ज्यादा उन्नत था। ये लोग मृतकों को श्रद्धा के साथ दफनाते थे। कब्रगाहों के पास फूलों के मिलने से यह बात प्रमाणित होती है। जैविक रूप से यह बड़ा सफल समूह था और बड़े विस्तृत क्षेत्र में समान रूप से फैला था।

आधुनिक मानव, *होमो सेपियंस सेपियंस* के सबसे पुराने जीवाश्म करीब 33 हजार वर्ष पुराने हैं। सबसे पहले ऐसे जीवाश्म फ्रांस में क्रोमेग्नॉन आश्रय-स्थल (Cromagnon shelter) से मिले। इन जीवाश्मों को क्रोमेग्नॉन मानव के नाम से जाना गया (चित्र 14.14)।

चित्र 14.14: एक क्रोमेग्नॉन खोपड़ी।

बाद में, ऐसे ही अनेक जीवाश्म फ्रांस, इटली और मध्य पूर्व के देशों से मिले। इन सभी में भौहों के उभार कम थे तथा सपाट माथा, ऊंचा गोल मस्तिष्क विवर; छोटा चेहरा और स्पष्ट ठोढ़ी थी। ये भरे शरीर वाले लेकिन निएंडरथल मानव की तुलना में ठिगने थे। आधुनिक यूरोपीय लोगों से इनकी शरीर-रचना में काफी समानताएं थीं। ऐसा लगता है कि पत्थर के औज़ार बनाने की तकनीकी में इन्होंने बड़ी महारत हासिल कर ली थी। जीवाश्मों के साथ कई तरह के लंबे, पतले पत्थर के ब्लेड मिले हैं। क्रोमेग्नॉन मानव की कलात्मक रुचियां भी थीं। उन्होंने मनके बनाये प्रतिमाएं तराशीं और नक्काशी कर के चित्र भी बनाये भित्ति-चित्र इनके सौंदर्य बोध को दर्शाते हैं। ये विभिन्न रस्मों के साथ अपने मृतकों को दफनाते थे। इससे इनके सांस्कृतिक जीवन का पता चलता है। यह कहा जा सकता है कि आधुनिक क्रोमेग्नॉन मानव के आगमन के

साथ ही मानव की रचना-संबंधी विकास लगभग पूर्ण हो गया और इसके बाद उसका आगे सांस्कृतिक और भाषायी विकास ही हुआ। इस बारे में हम विस्तृत चर्चा अगली इकाई में करेंगे। यहाँ हम मानवीय प्रगति की कुछ महत्वपूर्ण घटनाओं का संक्षेप में उल्लेख करेंगे।

करीब 10,000 वर्ष पूर्व मानवीय गतिविधियों के स्वरूप में महत्वपूर्ण परिवर्तन आया। इस परिवर्तन का मानवीय जीवन के विविध पक्षों पर असर पड़ा। उदाहरण के लिए, आखेट और भोजन जमा करने की बजाय खेती करने की दिशा में परिवर्तन आया। औज़ार बनाने की प्रक्रिया में भी परिवर्तन आया। पूर्व-पाषाण काल में पत्थर के औज़ार बनते थे। अब मानव ने पहले कांसे और फिर लोहे के औज़ार बनाने शुरू किए। करीब 5000 वर्ष पहले विशेष पेशे विकसित हुए, नगर-निर्माण प्रारंभ हुआ और संस्कृति के विविध पक्ष, जैसे – लेखन, इतिहास, संपत्ति, आमोद-प्रमोद, विज्ञान और कलाएं विकसित हुई। संक्षेप में आधुनिक मानव के विकास की यही कहानी है।

बोध प्रश्न 4

कोष्ठक में सत्य कथन के लिए (स) और असत्य कथन के लिए (अ) लिखें।

i) निएंडरथल मानव और आधुनिक मानव दो अलग-अलग जातियों से संबद्ध हैं। ( )
ii) माउस्टेरियन औज़ार उद्योग *होमो इरेक्टस* से संबद्ध है। ( )
iii) निएंडरथल मानव के क्रेनियम की क्षमता करीब 1450 घन सेंटीमीटर थी। ( )
iv) निएंडरथल मानव जैविक रूप से काफी सफल और दूर-दूर तक फैले हुए थे। ( )
v) क्रोमेग्नॉन मानव और आधुनिक यूरोपीय लोगों की शरीर-रचना में काफी समानताएं हैं। ( )
vi) करीब 35,000 वर्ष पूर्व मानवीय गतिविधियों के स्वरूप में महत्वपूर्ण परिवर्तन आया। ( )

14.7 होमीनिड जातिवृत का अवलोकन

अब तक हमने प्राइमेट गण के जीवाश्मों के रिकॉर्ड का, खासतौर से कपियों और मानवों के जीवाश्मों के रिकार्ड की चर्चा की। हालांकि पिछले कुछ वर्षों में अनेक होमीनिडों के जीवाश्म मिले हैं, फिर भी मानवों का जीवाश्म-इतिहास पूर्ण नहीं है और अब तक आधे-अधूरे प्रमाण ही मिले है। इसलिए यह जरूरी है कि उपलब्ध प्रमाणों के आधार पर मानवीय जाति-इतिहास का किसी स्वीकृत विचारधारा को निर्धारित किया जाए। होमीनिड कुल के पूर्वज ड्रायोपिथेसिन थे। जीवाश्म अभिलेखों के अनुसार, *प्रोकोंसल* और *रामापिथीकस* होमीनिडी कुल के उद्गम-बिंदु के निकट के प्राणी हो सकते हैं। एक समय जीवाश्म-विशेषज्ञों और मानवविज्ञानियों की आम राय थी कि *रामापिथीकस* पहचाना जाने वाला प्राचीनतम होमीनिड था। माइयोसीन काल के अंत और प्लायोसीन काल के प्रारंभ में प्राइमेट जीवाश्म नहीं मिले हैं। प्लायोसीन काल के अंत में ही, पहला उल्लेखनीय होमीनिड जीवाश्म *औस्ट्रालोपिथीकस एफारेंसेस* (लूसी) प्राप्त हुआ। ऑस्ट्रालोपिथेसिन होमीनिडों के विकास की एक अलग शाखा है और आधुनिक विश्व में इनके कोई वंशज नहीं हैं। इसका तात्पर्य है कि जीनस *होमो* की पूर्वज औस्ट्रालोपिथेसिन जाति के जीवाश्म अभी तक प्राप्त नहीं हो सके हैं। सम्भवतः इस जाति की वंशज *होमो हेबिलिस* और फिर *होमो इरेक्टस* से होते हुए वर्तमान *होमो सेपियंस* जातियां हों। एक और विचारधारा भी है जिसके अनुसार *औस्ट्रालोपिथीकस एफारेंसेस* के बाद *ए. आफ्रीकेनस* जाति का विकास हुआ जो दो वंश-परंपराओं में विभाजित हो गयी – (1) *औस्ट्रालोपिथीकस रोबस्टस* और *औस्ट्रालोपिथीकस बोइसेई,* जिसके साथ ही औस्ट्रालोपिथीसी वंश परंपरा समाप्त हो गयी। (2) दूसरी ज्यादा प्रगतिशील वंश-परंपरा में क्रमशः *होमो हेबिलिस, होमो इरेक्टस* और *होमो सेपियंस* विकसित हुए।

मानव जाति के जीवाश्म इतिहास से एक बात स्पष्ट है। किसी निर्धारित समय में जीनस *होमो* की मात्र एक जाति अस्तित्व में रही है, भले ही उसी समय अनेक उप-जातियां रही हों। जीवाश्मीय अभिलेखों के अनुसार *होमो इरेक्टस* से *होमो सेपियंस* का उद्भव मध्य प्लीस्टोसीन काल में हुआ।

आधुनिक मानव के उद्भव पर चर्चा करते समय बताया गया था कि निएंडरथल एक अलग जाति थे। बाद के निएंडरथल जाति के विशिष्ट जीवाश्म पश्चिम यूरोप में मिले हैं हालांकि प्रारंभिक निएंडरथल मानवों के जीवाश्म पूर्वी यूरोप और एशिया में मिले। स्पष्ट है कि दूसरे अंतर-हिमनदीय काल (interglacial period)

में *होमो सेपियंस* से अलग निएंडरथल मानवों की एक विशिष्ट आधुनिक जाति रहती थी। चौथे हिमनदीय काल में विशिष्ट निएंडरथल मानव मुख्य जनसंख्या से अलग हो गये। ऐसा समझा जाता है कि *होमो सेपियंस* का उद्भव मुख्य जनसंख्या से हुआ होगा। और बाद में उसका ज्यादा प्रगतिशील *क्रोमेग्नॉन मानव* में विकास हुआ। पूर्वी यूरोप से क्रोमेग्नॉन मानव पश्चिम में आए और निएंडरथल मानवों को समाप्त कर दिया। निएंडरथल जीवाश्म कम से कम 45,000 वर्ष प्राचीन हैं और माउस्टेरियन औज़ार उद्योग से जुड़े हैं। करीब 40,000 वर्ष पूर्व के निएंडरथल मानव और आधुनिक मानव दोनों के जीवाश्म मिले हैं। ये जीवाश्म पूर्वी यूरोप में मिले हैं। इस तथ्य से ऐसा लगता है कि आधुनिक मानव का उद्भव मध्य-पूर्व यूरोप में हुआ जहां से वह बाहर निकला और उसने निएंडरथल मानव को समाप्त कर दिया। संभव है कि ऐसे समय में निएंडरथल और क्रोमेग्नॉन मानवों के बीच आपसी शारीरिक संबंध भी हुए होंगे और क्रोमेग्नॉन मानवों को वंश-परंपरा में निएंडरथल गुणसूत्र तथा उनकी विशेषताएं भी मिली होंगी।

इसके साथ ही, हम मानवीय विकास के एक पक्ष की चर्चा समाप्त करते हैं। लेकिन विकास निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है। वर्तमान समय में भी, मानव जाति अपनी संस्कृतियों के अनुरूप जैविक समायोजन करते हुए विकास कर रहा है। अथवा क्या जैविक और सांस्कृतिक विकास दो परस्पर भिन्न पक्ष हैं? अगली इकाई में प्रतिकवाद (symbolism) भाषा, संस्कृति और विकास की भावी संभावनाओं की चर्चा की जाएगी। हम प्रतीक विकसित करने की क्षमता के विकास और प्रतीकात्मक संस्कृति के उद्गम की भी चर्चा करेंगे जिसने मानव को समायोजन की नई दहलीज पर ला खड़ा किया जहाँ सांस्कृतिक विकास के साथ समायोजन किया जाता है।

बोध प्रश्न 5

निम्न वाक्यों में सही विकल्प पर सही ( ) का निशान बनायें

i) मानव जाति का जीवाश्म-इतिहास पूर्ण/अधूरा है।

ii) होमीनिड कुल का उद्गम *रामापिथेकस/औस्ट्रालोपिथीकस एफारेंसिस* से हुआ।

iii) पहला उल्लेखनीय होमोनिड जीवाश्म *होमो हैबिलिस/औस्ट्रालोपिथीकस एफारेंसिस* का था।

iv) *होमो इरेक्टस* से *होमो सेपियंस* का उद्भव मायोसीन काल के उत्तरार्ध/मध्य प्लीस्टोसीन काल में हुआ।

v) विकास निरंतर जारी रहने वाली/तुरंत समाप्त हो जाने वाली प्रक्रिया है।

14.8 सारांश

इस इकाई में हमने बहुत कम मात्रा में मिले जीवाश्मों के प्रमाणों के आधार पर मानवीय विकास के कुछ पक्षों को क्रमबद्ध रूप देने का प्रयास किया। इस इकाई में आपने पढ़ा कि :

- मानव के विकास का इतिहास करीब 6 करोड़ वर्ष पुराना है। यह समय प्लायोसीन युग के क्रेटेशियस काल का है। पेलियोसीन युग के प्राइमेटों में अनेक एंथ्रोपोइड विशेषताएं थीं, जैसे – शरीर का आकार, दांतों की संख्या और क्रेनियम की संरचना।

- माइयोसीन काल में होमीनिडों का उद्भव होने लगा और इस काल के अंत में ओल्ड वर्ल्ड बंदरों का बोलबाला था। 1.7 से 2.1 करोड़ वर्ष पूर्व के जीनस *प्रोकोंसल* एक पोंगिड के जीवाश्म में अनेक होमीनॉइड विशेषताएं थीं और यह *ड्रायोपिथीकस* का सीधा पूर्वज था।

- करीब एक करोड़ वर्ष पूर्व, माइयोसीन काल के अंत में *सिवापिथीकस* और *रामापिथीकस* जीनस के जीवाश्म उत्तर भारत में शिवालिक पर्वतीय क्षेत्र में पाए गए। ये पहचाने जा सकने वाले प्राचीनतम होमीनिड जीवाश्म थे। इनके लक्षणों में होमीनिडों और पोंगिडों का मिश्रण था। इन्हें होमीनिडों में शामिल करने वाली विशेषताएं हैं – चेहरे का छोटा होना, मोलर दांतों के इनेमल का मोटा होना और कैनाइन दांतों का कम विकास।

- होमीनिड जीवाश्मों की खोज के साथ ही मानवीय विकास का इतिहास शुरू होता है। इन जीवाश्मों में ऐसी कुछ विशेषताएं हैं, जिनके विकास से आगे चलकर आधुनिक मानव का विकास हुआ। ये विशेषताएं हैं – दो पांवों से चलना, क्रेनियम की क्षमता का बढ़ना, माथे और आंखों की भौंहों के उभार

घटना, दोनो आंखों की त्रिआयामी दृष्टी का विकास, अंगुलियों के सामने की दिशा में अंगूठे और चाप-मुक्त पांवों का विकास।

- जीवाश्मीय प्रमाणों के आधार पर कहा जा सकता है कि औस्ट्रालोपिथेसिन से होमीनिड वंश-परंपरा करीब 35 लाख वर्ष पूर्व अलग हुई। *ए. रोबस्टस* और *ए. बोइसेइ* के विकास के साथ ही औस्ट्रालोपिथेसिन समाप्त हो गए। होमीनिड वंश-परंपरा *होमो हेबिलिस* और *होमो इरेक्टस* से होते हुए आधुनिक मानव में विकसित हुई। आधुनिक मानवीय जाति की ही एक नस्ल निएंडरथल संभवतः *होमो इरेक्टस* और *होमो सेपियंस* को जोड़ने वाली कड़ी थी। *होमो सेपियंस सेपियंस* जाति की पहली मानव नस्ल क्रोमेग्नॉन मानव की थी। संभवतः क्रोमेग्नॉन मानव निएंडरथल मानव से आधुनिक मानव के बीच संक्रमण काल की नस्ल थी।

14.8 अंत में कुछ प्रश्न

1. प्राइमेट गण की होमीनिड वंश-परंपरा का संक्षेप में उल्लेख करें।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2. आप कैसे इस बात को उचित ठहराएंगे कि औस्ट्रालोपिथेसिन मानवों के पूर्वज थे?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

3. जीवाश्मीय प्रमाणों के आधार पर *होमो इरेक्टस* और *होमो सेपियंस* की विशेषताओं की तुलना करें।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

4. संभावित होमीनिड जाति-इतिहास पर संक्षिप्त टिप्पणी करें।

14.9 उत्तर

बोध प्रश्न

1. i) प्रोसिमी
   ii) वनमानुष (कपि)
   iii) *रामापिथीकस*
   iv) *प्रोकोंसल*
2. i) च ii) घ iii) ग iv) ख v) क
3. i) जीनस *होमो* के विकास की प्रमुख प्रवृत्तियां हैं :
   i) द्विपाद-चालन का विकास
   ii) दोनों आंखों की त्रिविमीय दृष्टि का विकास
   iii) क्रेनियम की क्षमता का विकास
   iv) घटता माथा
   v) अंगुलियों के सामने की दिशा में अंगूठे का विकास
   vi) चापयुक्त पांवों का विकास

   ख) ऑस्ट्रॉलोपिथेसिन जीवाश्म करीब 30 लाख वर्ष पुराने हैं। तब सीधे खड़े होकर चलना शुरू ही हुआ था। क्रेनियम की क्षमता 400 घन सेंटीमीटर से कुछ अधिक, कद 1.2 मीटर और वजन करीब 23 किलोग्राम था इस जाति ने पत्थर के औज़ार बनाये। ये प्रायः मृत जीवों का मांस खाते थे।

   पिथीकेंथ्रोपाइनूस का उद्भव प्लीस्टोसीन काल में करीब 17 लाख 50 हजार वर्ष पूर्व हुआ। इनके क्रेनियम की क्षमता 800 से 1125 घन सेंटीमीटर तक थी। इनकी लंबाई सामान्य, हाथ-पैरों की सीधी हड्डियां, कूल्हे की चौड़ी हड्डियां और ऑक्सिपिटल कोंडाइल आधुनिक मानव जैसी थी। ये सीधे खड़े रहते थे। ये सुचारू रूप से औज़ार बनाते थे और आखेट तथा संग्रह करके भोजन जुटाते थे।

   ग) पारिवारिक समूहों और समाजीकरण की दिशा में *होमो इरेक्टस* ने दो विशेषताएं विकसित कीं। ये विशेषताएं थीं -
   1) आखेटक-संग्राहक से बड़े पशुओं का बड़े पैमाने पर शिकार करने की स्थिति में संक्रमण। इस प्रयास में परस्पर सहयोग आवश्यक होता था। बड़ी संख्या में पुरुष किसी एक बड़े शिकार को घेरकर सबसे सुविधाजनक तरीके से उसे मारते थे।
   2) बड़े पशुओं के शिकार के लिए दोहरी धार वाले औजारों या हाथ के कुल्हाड़ों की जरूरत होती थी। इन औज़ारों की मदद से जानवर की खाल निकालने और खाल के वस्त्र बनाए जाते

थे। इससे भी पुरुषों को एक साथ मिलकर काम करने का मौका मिला।

4) i) अ ii) अ iii) स iv) स v) स vi) अ

5) i) अधूरे
   ii) *रामापिथीकस*
   iii) *औस्ट्रालोपिथीकस अफारेंसिस*
   iv) मध्य प्लीस्टोसीन
   v) निरंतर जारी रहने वाली

अंत में कुछ प्रश्न

1. प्राइमेट गण के होमीनिड पूर्वजों की परंपरा 6 करोड़ वर्ष पुरानी अर्थात् पेलियोसीन काल की है। इस दौर के प्रोसिमियनों के जीवाश्मों के कई लक्षण एंथ्रोपोडियन हैं। मिस्र से मिले प्राइमेट जीवाश्मों से पता चलता है कि स्तनधारी छोटे शरीर के, लंबे थूथन तथा छोटी हड्डियों के कोटरों वाली आंखों वाले थे। इनमें नर-मादा का अंतर मांसभक्षी जीवों जैसा था और ये कपियों से मिलते-जुलते थे। (विस्तृत विवरण के लिए भाग 14.2 देखें।)

2. होमीनिडों के पूर्वज औस्ट्रालोपिथेसिन थे, इस बात के अनेक प्रमाण हैं। इन्होंने सीधे खड़े होकर चलना सीख लिया था और अपने प्राइमेट पूर्वजों की तुलना में इनके क्रेनियम की क्षमता अधिक थी। ये गुफाओं में रहते थे और इन्होंने पत्थर के औज़ार बनाये। उन्होंने सामाजिक जीवन भी अपना लिया था।

3. *होमो इरेक्टस* का उद्भव करीब 16 लाख वर्ष पूर्व हुआ। उसके क्रेनियम की क्षमता 800 से 1125 घन सेंटीमीटर तक थी। वह सामान्य लंबाई, हाथ-पैरों की सीधी हड्डियों और कूल्हे की चौड़ी हड्डियों वाला था। उसका माथा घट रहा था पर आंखों की भौहें उभार वाली थीं। उसके जबड़े और दांत बड़े थे और ठोढ़ी (chin) नहीं थी। वह उपकरणों का कुशल निर्माता था और उसका सुनिर्धारित सामाजिक जीवन था। जीवाश्मों के अनुसार *होमो सेपियंस* का उदय 33 हजार वर्ष पूर्व हुआ था। जीवाश्मों के अनुसार उसकी आंखों की भौहें कम उभार-युक्त, सपाट माथा ऊंची-गोल खोपड़ी, छोटा चेहरा और स्पष्ट हड्डी थी। उसने उच्च तकनीकी कौशल के पत्थर के औजार बनाये। गुफाओं में बनाये गए भित्ति चित्रों से उसकी कलात्मक रुचि का पता चलता है। मृतकों को रस्मों के साथ दफनाने की उनकी प्रवृत्ति से उनके सांस्कृतिक जीवन का पता चलता है।

4. होमीनिड कुल का उद्भव ड्रायोपिथेसिन पूर्वजों से हुआ। जीवाश्म अभिलेखों के अनुसार होमीनिडी कुल के उद्भव का सबसे निकटतम बिन्दु पर *प्रोकोंसल* और *रामापिथेकस* रहे होंगे। प्लायोसीन युग में पाया जाने वाला पहला होमीनिड जीवाश्म *औस्ट्रालोपिथीकस एफारेंसिस* मिला है। *औस्ट्रालोपिथेसीन* होमीनिडों के विकास की एक अलग शाखा थी और आधुनिक विश्व में उनका कोई वंशज नही हैं। *होमो* जाति की पूर्वज, निश्चय ही कोई औस्ट्रालोपिथेसिन जाति रही होगी।

इकाई 15 मानव का विकास-II

इकाई की रूपरेखा

15.1 प्रस्तावना
उद्देश्य
15.2 प्रतीकों तथा भाषा कुशलता का विकास
15.3 संस्कृति का विकास
15.4 प्राकृतिक वरण और मानव का भविष्य
15.5 सारांश
15.6 अंत में कुछ प्रश्न
15.7 उत्तर

15.1 प्रस्तावना

पिछली इकाई में हमने मानवीय विकास के इतिहास पर मुख्यतः जीवाश्म विज्ञान के दृष्टिकोण से विचार किया। हालांकि उपलब्ध जीवाश्म प्रमाण अधूरे हैं, फिर भी उनसे मानव के उद्गम और विकास का काफी हद तक क्रमबद्ध इतिहास तैयार किया जा सकता है। इन जीवाश्मों से पता चलता है कि मानव के पूर्वज प्राइमेट थे तथा इनसे मानवीय विकास की विविध प्रवृत्तियों का भी बोध होता है। वर्तमान समय में आधुनिक मानव को विकास प्रक्रिया का चरम बिंदु माना जाता है। लेकिन प्रश्न यह है कि अब मानव के विकास की दिशा क्या है और भविष्य में यह कौन-सी दिशा लेगा? क्या मानव का आगमन ही विकास प्रक्रिया का चरम बिंदु है अथवा मानव का जैव विकास अब भी जारी है? इन प्रश्नों का सीधा उत्तर देना संभव नहीं है क्योंकि विकास दीर्घकालीन प्रक्रिया है और इसके प्रभाव हजारों वर्षों की अवधि में ही स्पष्ट रूप से देखे जा सकते हैं।

इस इकाई में हम मानव के सांस्कृतिक विकास की विस्तार से चर्चा करेंगे। संचार के तरीके और भाषा का विकास सांस्कृतिक विकास के सबसे महत्वपूर्ण पक्ष हैं। इस इकाई में समाजों में परिवारों के विकास पर भी विचार किया जाएगा। यह भी चर्चा की जाएगी कि क्या वर्तमान मानव पर प्राकृतिक वरण की प्रक्रिया अब भी कार्यरत है। इकाई के अंत में मानव के भावी विकास की प्रवृत्तियों की भी चर्चा की जाएगी।

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप :

- मानवीय संस्कृति के विकास में भाषा की भूमिका को समझा सकेंगे,
- मानवीय समाजों में विभिन्न संस्कृतियों के विकास की चर्चा कर सकेंगे,
- इस बात पर विचार कर सकेंगे कि क्या प्राकृतिक वरण की प्रक्रिया अब भी मानव पर कार्यरत है, और
- मानव के भावी विकास के बारे में अपने निष्कर्ष निकाल सकेंगे।

15.2 प्रतीकों तथा भाषा कुशलता का विकास

भाषा विचारों और भावनाओं के आदान-प्रदान का सशक्त माध्यम है। निश्चय ही मानव जाति के विकास में इसकी महत्वपूर्ण भूमिका रही होगी। विकास के संदर्भ में मानवों की भाषा के बारे में ये दो प्रश्न पूछे जा सकते हैं – (1) भाषा का प्रारंभ कब हुआ? (2) विचारों के आदान-प्रदान के सशक्त माध्यम के रूप में भाषा के विकास के पीछे प्राकृतिक वरण के क्या दबाव रहे होंगे? इन प्रश्नों के स्पष्ट उत्तर नहीं दिये जा

सकते, पर हम कुछ अनुमान लगा सकते हैं।

वातावरण अर्थात् परिवेश के अनुकूलन की दिशा में एक प्रमुख प्रयास प्रतीकात्मक तरीके से सोचना और प्रतीकात्मक भाषा के जरीए अपने विचार अभिव्यक्त करना है। भाषा मानव-संस्कृति का आधार है और इसे अपनाने से मानव अन्य जंतुओं से विशिष्ट और श्रेष्ठ बना। यूं तो अन्य प्राणी भी कुछ बातें सीख सकते हैं। उदाहरण के लिए, पक्षी, दूसरे पक्षी की देखा-देखी अपनी चोंचों का किसी नये तरीके से इस्तेमाल कर सकते हैं। चिंपांजी दो लकड़ियों को जोड़कर ज्यादा ऊंचाई पर लगे फल को तोड़ सकता है। लेकिन वह ऐसा तभी कर सकता है, जब सभी चीजें उसके सामने हों। अर्थात्, चिंपांज़ी सोचकर फल तोड़ने के लिए लकड़ी तलाशने नहीं जा सकता। हालांकि पिछले दिनों किये गये अध्ययनों से पता चला है कि मानव का निकटतम संबंधी, चिंपांजी, कुछ हद तक प्रतीकात्मक तरीके से सोचने की क्षमता रखता है।

निश्चय ही, प्रतीक (symbol) विकसित करने की क्षमता ने मानव को प्राकृतिक वरण के नये क्षेत्र में पहुंचाया। प्रतीकों की दुनिया से शब्दों की दुनिया में प्रवेश मानवीय विकास की दिशा में बहुत बड़ा कदम था। वाचिक (बोलने की) भाषा (spoken language) के विकास से यह संभव हुआ होगा कि बाह्य परिवेश के प्रति सीधी प्रतिक्रिया हो सके। इस इकाई के प्रारंभ में हमने भाषा के उद्गम का प्रश्न उठाया था। लेकिन भाषा के विकास के जीवाश्मीय अभिलेख नहीं हो सकते। हमें भाषा के उद्गम का अप्रत्यक्ष तरीकों से पता लगाना पड़ेगा। मानव मस्तिष्क की अन्य जंतुओं के मस्तिष्क की तुलना में जो विशिष्टताएं हैं, उनके आधार पर इस प्रश्न का तर्कपूर्ण उत्तर तलाशा जा सकता है। होमीनिडों के औज़ारों और कलात्मक वस्तुओं का अगर ज्यादा गहराई से अध्ययन किया जाए तो बोली जाने वाली भाषा के लिए आवश्यक वस्तुओं को पहचानने की संज्ञान क्षमताओं (cognitive abilities) का संकेत मिलता है।

भाषायी क्षमता का मस्तिष्क के आकार से सीधा संबंध हो सकता है। ज्यादातर लोगों में भाषा-केंद्र मस्तिष्क के बायें गोलार्ध (Left cerebral hemisphere) में होते हैं। यह गोलार्ध दायें गोलार्ध से थोड़ा-सा बड़ा होता है। मानव की वाणी की संरचना, अर्थ और बोलने के लिए कंठ तथा मुख की पेशियों के बीच तालमेल मस्तिष्क के विशिष्ट केंद्रों से नियंत्रित होता है।

मस्तिष्क के बायें गोलार्ध के पार्श्व (side) और सामने स्थित दो केंद्र – **वर्निक-क्षेत्र** (Wernich's area) और **ब्रोका-क्षेत्र** (Broca's area) कुछ उभरे से दिखायी देते हैं (चित्र 15.1)। लेकिन यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि भाषा की क्षमता का कारण बायें गोलार्ध का प्रमुख होना और उपर्युक्त केंद्रों का होना है क्योंकि ऐसा लगता है कि चिंपांजी में, हालांकि कम स्तर पर, ये विशेषताएं होती हैं।

आधुनिक मानव के क्रेनियम का लचीला और मेहराबदार जैसा आकार (flexed & vaulted) ऐसी विशेषताएं हैं, जिससे इसमें स्वर उपकरण (vocal apparatus) अच्छी तरह समा सकते हैं। कपियों का बेसिक्रेनियम अपेक्षाकृत चपटा होता है। औस्ट्रालोपिथेसिन का बेसिक्रेनियम कपियों से मिलता-जुलता है और *होमो इरेक्टस* में यह आधुनिक मानव जैसा, लेकिन अधूरा होता है।

ऐसा लगता है कि दो अन्य कौशलों का मानवों की संप्रेषण-क्षमता बढ़ाने में महत्वपूर्ण योगदान रहा होगा। इन दोनों कौशलों का संबंध भाषा से नहीं है। इनमें पहला कौशल क्रमबद्ध और सुव्यवस्थित तरीके से निरंतर बेहतर औज़ार बनाने का है। पिछले 25 लाख वर्षों में बने पत्थर के औज़ारों से पता चलता है कि औज़ारों का निश्चित और मानक रूप विकसित करने में निरंतर प्रगति हुई है। अच्छे और परिष्कृत औज़ार बनाने में समय-समय पर जो निश्चित प्रगति दिखायी देती है, वह *होमो इरेक्टस*, निएंडरथल और आधुनिक मानव के विकासक्रम के अनुरूप है। *होमो इरेक्टस* के उद्गम, फिर उससे निएंडरथल में और निएंडरथल से आधुनिक मानव में संक्रमण की तिथियां, पत्थर के औज़ारों की गुणवत्ता की प्रगति के अनुरूप, क्रमशः 15 लाख, डेढ़ लाख और 40 हज़ार वर्ष पूर्व की है।

औज़ार बनाने में मानकीकरण (standardisation) से, इन औज़ारों को बनाने और इस्तेमाल करने वाले समाजों की प्रकृति का पता चलता है। प्रख्यात पुरातत्व वैज्ञानिक ग्लिन आइज़क (Glynn Isaac) का कहना है कि पत्थर के औज़ारों में निरंतर सुव्यवस्था होने से निरंतर सुव्यवस्थित होते समाज का संकेत मिलता है। आइज़क का यह भी मानना है कि ऐसा सुसंयोजित समाज बोली जाने वाली एक गहन (complex) भाषा के विकास के बिना नहीं विकसित हो सकता। जीवाश्मीय प्रमाणों से सुस्थापित

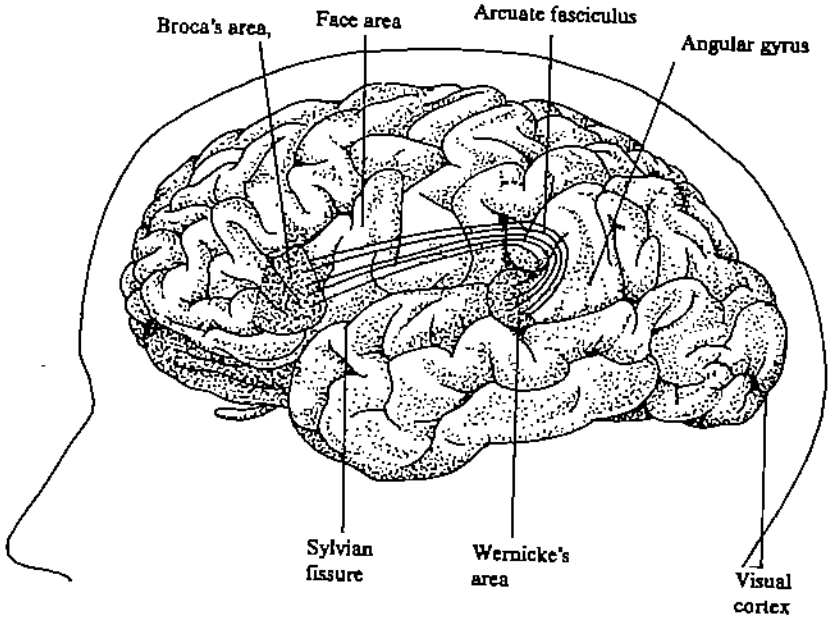

चित्र 15.1: मानव मस्तिष्क में भाषा केंद्र।

सामाजिक संबंधों, संसाधनों के कुशल दोहन और सामूहिक पहचान की सशक्त अभिव्यक्ति का पता चलता है। ये सब बातें बड़े सुव्यवस्थित समाजों में ही संभव हैं। औज़ार बनाना और बोलने की भाषा का विकास – दोनों ही प्रक्रियाओं के लिए इनके विभिन्न संघटक भागों का क्रमबद्ध विकास जरूरी है अर्थात् इन संघटकों का एक निश्चित क्रम में विस्तार से विकास किया जाना जरूरी है। इस क्रम को नहीं अपनाने पर अंतिम उत्पाद निरर्थक और अनुपयोगी होता है। मानव विज्ञानी गॉर्डन ह्यूस (Gorden Hewes) की भी राय है कि औज़ार बनाने और भाषा बोलने में कई बातें समान हैं। हाथ से निश्चित तरीके काम करने तथा जीभ और मुख हिलाने में घनिष्ठ संबंध है। संप्रेषण के लिए वाचिक भाषा से पहले हाथों से ही इशारे किये जाते रहे होंगे। शब्दों के बिना संप्रेषण अथवा प्रतीकात्मक भाषा ने प्रारंभिक होमीनिडों के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी होगी। वास्तव में, वर्तमान परिस्थितियों में भी यह तथ्य सही है।

आदिम मानव के मस्तिष्क की दूसरी महत्वपूर्ण ग़ैर-भाषायी क्षमता कलात्मक कार्य करने की है। कलात्मक कार्य वस्तुओं को प्रतीकात्मक रूप देने के लिए किया गया होगा और आदिम मानव के लिए इसकी काफी उपयोगिता रही होगी। प्रतीकात्मक संस्कृति किसी सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में विकसित हुई होगी। मानव की प्राचीनतम हस्त-कला कृति (artifact) कम से कम 3लाख वर्ष पुरानी है। यह एक बैल की पसली पर बनी है, जिसमें दोहरे मेहराबों की एक झालरदार शृंखला तराशी गयी है (चित्र 15.2 a)। ऐसी ही एक 40,000 वर्ष पुरानी हस्तकला-कृति मिली है। बीच के समय में, ऐसी कोई कृति नहीं मिली है, जिनकी इन कृतियों से तुलना की जा सके। माउस्टेरियन औज़ार बनाने वालों के संग्रह में नकाशीदार हड्डियां और हाथी दांत मिले हैं। पुरा-पाषाण काल (Paleolithic) के उत्तरार्ध से ऐसी वस्तुओं की संख्या और विविधता बढ़ती रही है। (चित्र 15.2b तथा c)। इन वस्तुओं की संख्या और बारीकी में निरंतर सुधार से वाचिक भाषा के निरंतर विकास का पता चलता है। ऐसा नहीं है कि वाचिक भाषा इस काल का प्रथम आविष्कार है लेकिन इस काल में भाषा में काफी परिष्करण हुआ है। कैलीफोर्निया विश्वविद्यालय के तंत्रिका जीवविज्ञानी (Neurobiologist) हैरी जैरिसन (Harry Jerison) की राय है कि मस्तिष्क में परिवेश का बेहतर मॉडल बनाने की आवश्यकता निरंतर बढ़ती रहती है, इसी की प्रतिक्रिया में भाषा का निरंतर विकास होता रहता है। आर्थिक रूप से परस्पर निर्भर समाज के सामाजिक संदर्भ में भाषा का विशिष्ट रूप से विकास हुआ।

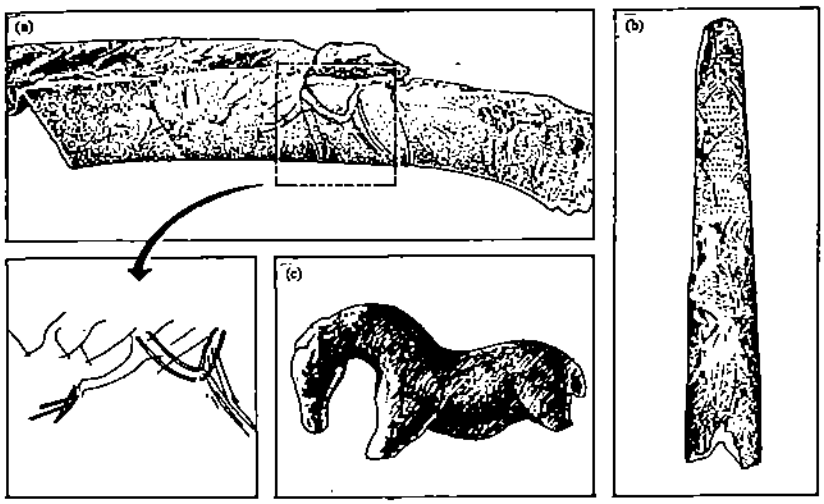

चित्र 15.2: (a) बैल की पसली पर झालरदार मेहराबों की तराश वाली प्राचीनतम कलाकृति, यह तीन लाख वर्ष पुरानी है। (b) रेंडियर के सींग का टुकड़ा, जिसमें गर्भिणी घोड़ी दिखायी गयी है (12000 वर्ष प्राचीन), (c) मैमथ हाथी दांत पर तराशा तीन लाख वर्ष प्राचीन घोड़े का चित्र।

क्या कुशल संप्रेषण प्रणाली विकसित कर पाने वाला एकमात्र प्राणी मानव है? क्या इसीलिए उसे उसके जैविक संबंधियों, जैसे कपियों से अलग रखा जाना चाहिए? कुछ विद्वानों की राय में मात्र मानव ने ही भाषा विकसित की। जी.जी.सिंपसन की यही राय है। डॉब्ज़ान्स्की (Dobzhansky) के अनुसार, सभी जीवों में मानव का विशिष्ट स्थान है। जे.सी.बी. अब्राहम (1990) इन महान् विद्वानों की राय से सहमत नहीं है। उनकी राय है कि "अगर कपियों और मानवों के बीच आकृति, शरीर रचना और शरीर-क्रियाओं में अटूट निरंतरता है तो भाषा, आत्म जागरूकता और व्यक्तिगत तथा सामाजिक सौंदर्यबोध संबंधी, नैतिक तथा व्यवहार संबंधी उच्च गुणों के मामले में भी इस निरंतरता को स्वीकार किया जाना चाहिए।" जे.सी.बी. अब्राहम के अनुसार, डार्विन के विकास के सिद्धांत को उसकी अंतिम तार्किक परिणति तक स्वीकार किया जाना चाहिए। अपनी बात की पुष्टि में उदाहरण देते हुए, वह कहते हैं कि चिंपांजी भले ही शब्दों का उच्चारण नहीं कर पाता, लेकिन वह अमरीकी इशारों की भाषा का कुशलता से प्रयोग कर सकता है। मादा चिंपांजी 'वाशो (Washoe)' पांच वर्ष की आयु तक 160 शब्दों का प्रयोग कर सकती थी। वाशो दूसरे चिंपांजियों को भी इशारों की यह भाषा समझा सकती थी। यह स्थिति मानवीय समाज के समान ही है कि जहाँ बच्चे माता-पिता की नकल करके मातृभाषा और अन्य बातें सीखते हैं। अन्य कार्यकर्ताओं ने भी यह दिखाया है कि इन जीवों में उचित नियमों के साथ मानवीय भाषा समझने और इसे भाषा का अपने साथी दूसरे जीवों तक सांस्कृतिक रूप से पहुंचाने की भी क्षमता होती है। इसलिए, ऐसा लगता है कि यह परिकल्पना उचित नहीं है कि चिंपांजी और मानवों के बीच स्पष्ट विभाजन है और कोई संपर्क सूत्र नहीं है।

प्रतीकात्मक और वाचिक भाषाएं अकसर लिखित भाषाओं का रूप भी ले लेती हैं। लिखित भाषा का एक लाभ यह भी है कि लिखी गयी बातें भूल जाने पर फिर पढ़कर समझी जा सकती हैं। इस तरीके से संस्कृति समृद्ध होती है और स्पष्टता बढ़ती है। ज्ञान में अत्याधिक वृद्धि से यह बड़ा कठिन होता गया कि सारी जानकारी लोगों के मस्तिष्क तक पहुंचायी जाए और वहां उसे घनीभूत (condenced) रूप में रखा जा सके। इसलिए जानकारी का स्रोत व्यक्तियों के स्थान पर पुस्तकें हो गयीं। वास्तव में, नयी जानकारी का संग्रह अब एक व्यक्ति का काम न होकर सामूहिक काम होता है। मानव के सांस्कृतिक विकास में लेखन

का विकास मील का पत्थर साबित हुआ । सभी लोगों तक पुस्तकों के सुलभ हो जाने से ज्ञान के विस्तार में बड़ी मदद मिली ।

बोध प्रश्न 1

निम्न कथनों में सही कथन के लिए कोष्ठक में 'स' और असत्य कथन के लिए कोष्ठक में 'अ' लिखें ।

i) संप्रेषण के माध्यम के रूप में भाषा ने मानव जाति के विकास के इतिहास में विशेष महत्वपूर्ण भूमिका नहीं निभायी । ( )

ii) प्रतीकात्मक चिंतन और इसका प्रतीकात्मक भाषा के रूप में इस्तेमाल मानव द्वारा अपनायी गयी प्रमुख प्रणालियों में हैं । ( )

iii) चिंपांजी में भी कुछ हद तक प्रतीकात्मक चिंतन की क्षमता होती है । ( )

iv) भाषा की क्षमता के विकास को दर्शाने वाले पर्याप्त जीवाश्म अभिलेख उपलब्ध हैं । ( )

v) मस्तिष्क में भाषा केंद्र दायें गोलार्ध में स्थित होते हैं । यह गोलार्ध बायें गोलार्ध से कुछ बड़ा होता है । ( )

vi) आधुनिक मानव का क्रेनियम लचीला और मेहराबदार होता है जिससे इसमें स्वर उपकरण सुविधा से समा जाते हैं । ( )

vii) पत्थर के औज़ार बनाने की कला में निरंतर बढ़ती सुनियोजितता से समाज के निरंतर ज़्यादा से ज़्यादा सुव्यवस्थित होने का पता चलता है । ( )

viii) संप्रेषण के माध्यम के रूप मे वाचिक भाषा से पहले हाथों के इशारे अपनाये गये होंगे । ( )

15.3 संस्कृति का विकास

मानवीय विकास के अध्येता सभी विद्वानों, जो कि अपनी दार्शनिक मान्यताओं पर बड़े दृढ़ हैं, की आम राय है कि मानव विकास प्रक्रिया का असाधारण परिणाम है । हमारे पूर्वज जीवों और इनके संबंधियों के जीवाश्मीय अवशेषों से तुलनात्मक आकार और शरीर-रचना का अध्ययन कर जीव-वैज्ञानिक वर्गीकरण किया जा सकता है, लेकिन जीवाश्मों से मानव के व्यवहार संबंधी पक्षों का पता नहीं चलता । इसलिए यह आवश्यक है कि जो कलाकृतियां मिलती हैं, अथवा जीवाश्म जिस पर्यावरण में प्राप्त होते हैं, उस पर्यावरण का बड़े विवेक से अध्ययन कर के उस युग के मानव के व्यवहार और सांस्कृतिक पक्षों के बारे में निष्कर्ष निकालने चाहिए । उदाहरण के लिए, आक्रामकता ऐसा व्यवहार है, जिसका जीवाश्मों से पता नहीं चल सकता । दूसरी ओर, जिस परिवेश में तेज़ हथियार और शिकार कर के मारे गये बड़े पशुओं के जीवाश्म मिलें, उस पर्यावरण या परिवेश के मानवों की आक्रामकता प्रमाणित होती है । मानव की विशिष्टता का आधार उसके द्वारा स्वाभाविक रूप से विकसित संस्कृति (instinctive culture) मानी जा सकती है । संस्कृति मानव जाति की कुल जानकारी और व्यवहार के तरीकों का योग है । एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को यह सांस्कृतिक विरासत मिलती है हालांकि यह विरासत आनुवंशिक रूप से जीनों के द्वारा नहीं, बल्कि निर्देशों, सीखने, उदाहरणों और नकल द्वारा मिलती है । दूसरे शब्दों में, संस्कृति जीनों द्वारा नियंत्रित तो नहीं होती, परंतु इसे प्राप्त करने की क्षमता जीनों के आधार पर तय होती है । जैसा कि पिछले भाग में बताया गया, प्रतीकों की प्रणाली ने संस्कृति को एक से दूसरे व्यक्ति और अंततः समाज तक पहुंचाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी होगी । संस्कृति जीनों द्वारा एक से दूसरे व्यक्ति तक नहीं पहुंचायी जा सकती, इसीलिए इसे 'अति जैविक' (Super Orgenic) कहा जाता है । इस धारणा का हर स्थिति में सही होना जरूरी नहीं है । वास्तव में, जीनों के आधार पर जो मानव हैं (Human genotype), वही तो संस्कृति के प्राप्तकर्ता, जनक और वाहक हैं । दूसरे शब्दों में, मानव जीनप्ररूप संस्कृति के लिए अपरिहार्य (indispensible) हैं लेकिन ये जीनप्ररूप स्वयं यह निर्धारित नहीं करते वर्तमान विविध संस्कृतियों में से कौन-सा रूप वे प्राप्त करेंगे । अर्थात् हिन्दू, मुस्लिम, सिक्ख अथवा अमरीकी, चीनी और यूरोपीय संस्कृतियों का निर्धारण करने वाले कोई जीन नहीं होते । किसी संस्कृति को ग्रहण करना उस परिवेश पर निर्भर है, जहाँ बालक का पालन-पोषण होता है । यही तर्क भाषा सीखने की धारणा और उसके प्रयोग पर भी लागू किया जा सकता है । ये कार्य जीनों से निर्धारित तो होते हैं, लेकिन जीन यह नहीं निर्धारित करते कि कौन-सी भाषा सीखी जाएगी ।

पिछली इकाई में हमने जीवाश्मीय आंकड़ों के आधार पर मानव विकास की जटिलताओं का अध्ययन

किया । ये जटिलताएं आकार और शरीर-रचना की विविधताओं में प्रकट हुईं । प्रश्न है कि क्या सांस्कृतिक विकास भी विकास के अन्य पक्षों जैसा ही जटिल है? क्या सांस्कृतिक विकास की प्रगति को उसी तरह परिभाषित किया जा सकता है, जिस तरह हमने क्रेनियम की क्षमता में वृद्धि और दो पांवों से चलने में हुई प्रगति को बताया था? क्या ऐसा कोई तरीका बताया जा सकता है जिसके अपनाने से कोई संस्कृति दूसरी संस्कृतियों की तुलना में किसी परिवेश के ज़्यादा अनुकूल हो? क्या संस्कृति में वास्तव में निम्न स्थिति से उच्च स्थिति की दिशा में प्रगति होती हैं?

इन प्रश्नों के उत्तर जटिल हो सकते हैं । संस्कृति के संभावित मापदंड क्या हो सकते हैं? पाश्चात्य वैज्ञानिकों ने कार्य-कुशलता को संस्कृति का मापदंड माना है । कार्य-कुशलता का मतलब है कि कम ऊर्जा खर्च कर अधिक ऊर्जा प्राप्त की गयी । इस तरह से जब मानव ने मृत पशुओं का मांस तलाशकर खाने की बजाए बड़े पशुओं का आखेट शुरू किया तो ज्यादा ऊर्जा प्राप्त हुई । खेती की शुरुआत के बाद उसने ज़्यादा अन्न उपजाना शुरू किया । आधुनिक औद्योगिक टैक्नोलॉजी से और भी अधिक मात्रा में बकाया उत्पादन होने लगा । भविष्य में नये ईंधनों, सौर ऊर्जा और अन्य गैर-परंपरागत ऊर्जा स्रोतों का ज्यादा इस्तेमाल होने की संभावना है । उम्मीद है कि इससे और अधिक ऊर्जा मिल सकेगी । लेकिन इस बारे में यह अलोचना की जाती है कि यह प्रवृति कुल संस्कृति के एक छोटे हिस्से पर लागू होती है और संपूर्ण संस्कृति का प्रतिनिधित्व नहीं करती । साथ ही, यह भी हो सकता है कि संस्कृति का यह कार्यकुशलता वाला पक्ष, किसी काल-विशेष में मानव जाति के अस्तित्व बने रहने की दृष्टि से सबसे महत्वपूर्ण न हो । यह भी संभव है कि संस्कृति के इस पक्ष का अंतिम परिणाम यह हो कि पर्यावरण अथवा परिवेश के साथ इसका उचित तालमेल न हो पाये अर्थात् अनुकूलन न हो पाये (inadaptiveness) ।

सांस्कृतिक विकास का एक पक्ष यह भी है कि अगर इसका संस्कृति के ही साथ अनुकूलन हो और बाहरी परिवेश के साथ न हो, तो यह आत्मघाती होकर अपने आप को ही नष्ट कर सकता है । उदाहरण के लिए, आज की दुनिया के सारे औद्योगिक और तकनीकी विकास ने मानव के लिए बड़ी पर्यावरण, पारिस्थिकीय (ecological) और भावनात्मक समस्याओं को जन्म दिया है । ऐसी परिस्थितियां जिन कारणों से पैदा हुई; वे बदली हुई सांस्कृतिक परिस्थितियों के अनुरुप अनुकूलनों का परिणाम थे । अर्जित सांस्कृतिक अनुकूलन आगे और जटिल समस्याएं पैदा कर सकते हैं । यहाँ हम इसी बात की ओर ध्यान दिलाना चाहते हैं । ऐसा संभव है कि बदलती संस्कृतियों के प्रति मानव द्वारा किये गये अनुकूलनों की उसकी जैविक आवश्यकताओं और उससे संबद्ध जंतुओं तथा वनस्पतियों से कोई प्रासंगिकता नहीं हो । वास्तव में ऐसा भी हो सकता है कि मानव के सांस्कृतिक अनुकूलनों का दायरा उसकी जैविक आवश्यकताओं द्वारा सीमित कर दिया जाए । उदाहरण के लिए, मानव निरंतर विकसित होती मोटर-वाहनों की संस्कृति के अपने को अनुकूल बनाता चला जाए, लेकिन जैविक अनुकूलन, अर्थात् प्रदूषण झेल पाने की उसके फेफड़ों की क्षमता सीमित होगी । फिर भी, कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि जैविक विकास के स्थान पर सांस्कृतिक विकास होने का यह निश्चित लाभ तो है कि इससे परिवर्तन की रफ़्तार बढ़ जाती है ।

जैविक विकास बड़ी धीमी प्रक्रिया है । इसकी तुलना में सांस्कृतिक विकास काफी तेज प्रक्रिया है । कभी-कभी तो यह प्रगति जबरदस्त तीव्रता से होती है । इन दोनों प्रकार के विकास प्रक्रियाओं की गति के अंतर से मानव को जलवायु तथा अन्य पर्यावरणीय मानकों के अनुरूप अस्थायी समायोजनों का मौका मिल जाता है । यह भी कहा जा सकता है कि मानव के मामले में जैविक विकास सांस्कृतिक विकास के साथ-साथ नहीं चल सका और पिछड़ गया । अगर किसी जैविक समायोजन के पूर्व ही सांस्कृतिक समायोजन कर लिया जाए, तो जैविक समायोजन हो ही नहीं पाएगा । इसलिए यह कहा जा सकता है कि संस्कृति ने बड़े सूक्ष्म तरीके से मानव के कुल जीनप्ररूप अर्थात् जीनोम को उसके भू-भौतिक पर्यावरण से अलग कर दिया है ।

अगले भाग में प्राकृतिक वरण और मानव के संदर्भ में हम इस पक्ष पर आगे चर्चा करेंगे ।

बोध प्रश्न 2

रिक्त स्थानों पर उपयुक्त शब्द भरिए ।

i) मानव की विशिष्टता का कारण उसके द्वारा विकसित ..... है ।

ii) जीनों द्वारा एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में न पहुंचने के कारण संस्कृति को ..... कहते हैं ।

iii) किसी संस्कृति विशेष को प्राप्त करना उस ..... पर निर्भर है, जिसमें बच्चे का पालन-पोषण होता है ।

iv) अगर अनुकूलन में बाहरी पर्यावरण का ध्यान न रखा गया हो और यह मात्र संस्कृति तक सीमित हो, तो यह ..... हो सकता है।

v) मानव का ..... विकास ..... विकास की तुलना में पिछड़ गया।

15.4 प्राकृतिक वरण और मानव का भविष्य

प्राकृतिक वरण की प्रक्रिया से ही पूरा जैविक विकास निर्देशित होता है। इस प्रक्रिया के अंतर्गत ऐसे आनुवंशिक परिवर्तनों को दिशा दी जाती है, जो पर्यावरण के अनुकूल होने पर जीनोम में रह जाते हैं। दूसरे शब्दों में, मानव को भी, अन्य जीवों की तरह, बदलती पारिस्थितिक स्थितियों के अनुरूप निष्क्रिय रूप से अनुकूलन प्रक्रिया में शामिल होना पड़ता है। ये अनुकूलन धीमी गति से, पीढ़ी-दर-पीढ़ी, जीनों में परिवर्तनों के जरिए आते हैं। प्रश्न है कि क्या प्राकृतिक वरण की प्रक्रिया मानव पर भी उसी तरह लागू होती है, जैसे वह अन्य जीवों पर लागू होती है। मानव तथा अन्य ज़ीवों के बीच प्रमुख अंतर यह है कि मानव अपने विकास को स्वयं दिशा देने में भी सक्षम है, जबकि अन्य जीव ऐसा नहीं कर सकते। प्रख्यात मानव जीवाश्मशास्त्री और मानववैज्ञानिक टेलहार्ड द' शार्दे (Teilhard De Chardin) के अनुसार – "पृथ्वी पर जीवन का विकास रुका नहीं है, बल्कि नये चरण में पहुंच रहा है। प्राकृतिक वरण द्वारा जीवों की उत्तरजीविता डार्विनवादी विकास के युग के बाद अब स्वयं-निर्धारित आविष्कारों और उपायों (calculated inventions) के जरिए श्रेष्ठ स्तर के जीवन (super life) का लामार्कवादी विकास का युग शुरू हो रहा है।" ऐसे कथन से इस अवधारणा को बल मिलता है कि मानव भविष्य में अपने विकास का स्वयं निर्धारण कर सकेगा।

इस बात के प्रमाण हैं कि मानव ने टैक्नोलॉजी की क्रांति के जरिए प्राकृतिक वरण की प्रक्रिया में परिवर्तन किया है। उदाहरण के तौर पर आंख के कैंसर – रेटिनोब्लास्टोमा – को लें। यह रोग एक प्रभावी उत्परिवर्तन (dominant mutation) के कारण होता है। यह रोग बच्चे की एक आंख में ट्यूमर के रूप में होता है और फिर दूसरी आंख में भी फैल जाता है और फिर मस्तिष्क में पहुंचकर बच्चे के वयस्क होने से पहले ही उसकी मृत्यु का कारण बन जाता है। अगर शुरू में ही कैंसर का पता चल जाए तो आपरेशन से ट्यूमर को निकाल कर बच्चे की जान बचायी जा सकती है। हालांकि उसकी एक आंख की दृष्टि चली जाती है। बच्चा लगभग सामान्य वयस्क के रूप में बड़ा होता है। उसकी संतानें भी हो सकती हैं लेकिन संभावनाएं यह होती हैं कि आधे बच्चों में रेटिनोब्लास्टोमा कैंसर हो। फिर ऐसे बच्चों की आंखों का भी ऑपरेशन आवश्यक होता है। इस उदाहरण से स्पष्ट होता है कि ऑपरेशन के बाद भी, एक घातक जीन बना रहता है और एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में संक्रमित हो जाता है। सामान्य रूप से प्राकृतिक वरण की प्रक्रिया में इस जीन को मानव जाति में समाप्त हो जाना चाहिए था। लेकिन इस घातक स्थिति का हर रोगी में इलाज करने से, कुल जनसंख्या में इस जीन की उपस्थिति की आवृत्ति (frequency) धीमी वृद्धि होने लगती है।

कुछ विद्वानों की राय है कि मानव को जो आनुवंशिक गुण वंशगत रूप से मिले हैं, उनमें गिरावट आ रही है। संभव है कि जीवन की परिस्थितियों में निरंतर सुधार और आधुनिक चिकित्साशास्त्र की प्रगति के कारण ऐसा हुआ हो। उदाहरण के लिए, इंसुलिन के कम कीमत पर उपलब्ध हो जाने से वंशगत रूप से मधुमेह (diabetes) का बीमार भी जीवित रहकर संतान पैदा कर सकता है। इसी तरह, चश्मे के आविष्कार से वे जीन भी (नष्ट होने के स्थान पर) जमा होते जाते हैं, जिनका होना अच्छी दृष्टि के लिए नुकसानदेह है। ऐसे उदाहरण है जहां जीवन की परिस्थितियों में सुधार होने से संपूर्ण मानव जाति में बुरे जीन जमा हुए हैं। दूसरे शब्दों में, कुछ ऐलीलों यानि युग्मविकल्पी जीनों ने अपने वैकल्पिक जीन के वरण की संभावनाएं, आधुनिक चिकित्सा प्रणालियों के कारण, कम कर दी है। साथ ही, आधुनिक सभ्यता ने कुछ ऐलीलों के वरण की संभावनाएं बढ़ा दी हैं। उदाहरण के लिए, तेज रफ़्तार वाले वर्तमान जीवन में स्किज़ोफ्रेनिया (Schizophrenia) को बढ़ाने वाली प्रवृत्तियां बढ़ी हैं। इन उदाहरणों से मानव के भावी विकास में प्राकृतिक वरण की प्रक्रिया के लगातार परिवर्तित होते चले जाने का संकेत मिलता है।

यह कथन एक हद तक सही है कि स्वास्थ्य सुविधाओं में प्रगति से मानव जाति के आनुवंशिक गुणों में गिरावट आई है। क्या यह गिरावट रोकी जा सकती है? इस प्रश्न का उत्तर सुजननिकी (Eugenics) में

मिल सकता है । विज्ञान की यह शाखा मानव के आनुवंशिक गुणों में सुधार लाने का प्रयास करती है । सकारात्मक सुजननिकी के अंतर्गत वांछित ऐलीलों को गुणित (multiplication) कर के बढ़ाया जाता है । दूसरी ओर नकारात्मक सुजननिकी में अवांछित ऐलीलों को फैलने से रोकने के प्रयास किये जाते हैं ।

मानव को प्राप्त आनुवंशिक गुणों में चार तरीकों से सुधार लाये जा सकते हैं । ये हैं – आनुवंशिक परामर्श, (genetic counselling) आनुवंशिक इंजीनियरी, (genetic engineering), सही पुरुष शुक्राणु और स्त्री डिंब अर्थात् जननाणु का चयन (germinal selection) और कोशिकाओं को क्लोन करना अर्थात् एक कोशिका से कई कोशिकाओं को उत्पन्न करना (cloning)। । इन तरीकों का विवरण न देकर हम मात्र यही उल्लेख कर दें कि सुजननिकी के तरीकों के नैतिक तथा सामाजिक मान्यताओं पर व्यापक प्रभाव होते हैं ।

इन सभी तरीकों को अब तक व्यवहार में नहीं अपनाया जा सका है । आनुवंशिक परामर्श जैसे तरीके तो बिल्कुल उचित हैं और आनुवंशिक इंजीनियरों के जरिए आनुवंशिक कमियां दूर करने के तरीके सामाजिक और नैतिक तरीके से आपत्तिजनक नहीं लगते । यह निश्चित है कि मानव हस्तक्षेप करे या न करे, मानवीय समाजों का आनुवंशिक विकास तो जारी ही रहेगा । इस प्रक्रिया में सकारात्मक और नकारात्मक – दोनों प्रकार की सुजननिकी के प्रभावों का परीक्षण हो जाएगा । भावी पीढ़ियां ही यह निर्णय कर पाएंगी कि अपने विकास की दिशा स्वयं निर्धारित कर मानव ने उचित किया या अनुचित ।

मानव के भावी विकास का एक और पक्ष उसके सांस्कृतिक विकास का मार्ग है क्योंकि अब मानवीय अनुभव का क्षेत्र संस्कृति में ही है, बुनियादी जीवविज्ञान में नहीं । जहां तक परिवर्तन का प्रश्न है, मानव ने उसे सैकड़ों दिनों में मापे जाने योग्य बना लिया, जिसे कभी करोड़ों वर्षों में मापा जाता था । दूसरे, अनेक जीवधारियों की तुलना में मानव-जाति सबसे कम विशष्टीकृत है । इसका तात्पर्य यह है कि मानव ने अपने आवास और भोजन की आदतों को अनेक स्थितियों के अनुरूप ढाल लिया है । उसके भोजन का दायरा विस्तृत है और वह विश्व भर में सभी स्थानों पर रहता है । उसने जो टैक्नोलॉजी विकसित की है, उससे वह समुद्र में गोता लगा सकता है, उड़ सकता है, यहां तक कि जमीन के भीतर भी रह सकता है । संक्षेप में, प्राकृतिक अनुकूलन की दृष्टि से, मानव जाति सबसे आगे है और पृथ्वी में उसकी शानदार सफलता का यही कारण है ।

निरंतर सीखने की प्रक्रिया मानव की सामाजिक और आर्थिक गतिविधियों का एक हिस्सा है । इस प्रक्रिया ने मानव को अन्य जीवों से पूरी तरह भिन्न बना दिया है । क्लिफर्ड गीर्त्ज (Clifford Geertz) का कहना है, "मानव की सीखने की प्रक्रिया अति विशिष्ट है । इस प्रक्रिया में धारणाओं की समझ तथा सामाजिक संदर्भ की प्रणालियों की जानकारी और उनके प्रति आशंका दोनों शामिल हैं ।" इन्हीं बातों से संस्कृति विकसित हुई है । मात्र मानव ही संस्कृति विकसित कर सका है । गीर्त्ज का कहना है, "मानव बिना संस्कृति के उस कपि की तरह है जो स्वयं की खोज नहीं कर सका ।" बिना संस्कृति के "मानव बेकार का दैत्य ही होगा जिसमें बहुत कम स्वाभाविक अनुभूतियां और पहचाने जाने लायक भावनाएं होंगी और बुद्धि बिल्कुल नहीं होगी ।" यह प्रश्न पूछा जा सकता है कि क्या मानव ने संस्कृति को जन्म दिया या संस्कृति ने आज का मानव विकसित किया? सामाजिक जीवविज्ञानी ई.ओ. विल्सन ने अपने महत्वपूर्ण अध्ययन में कहा है कि जीनों और संस्कृति में एक प्रकार का परस्पर सहयोगी विकास होता है । इसके परिणामस्वरूप मानवीय व्यवहार की छोटी से छोटी बात को आनुवंशिकी के आधार पर समझाया जा सकता है ।

आनुवंशिक परामर्श (genetic counselling) के अंतर्गत माता-पिता बनने वाले लोगों को उनमें से किसी एक या उनके परिवारों के असामान्य गुण की आनुवंशिक विशेषताओं की जानकारी दी जाती है । साथ ही, उन्हें होने वाली संतान में इन गुणों के आने की संभावनाओं के बारे में भी बताया जाता है । आनुवंशिक इंजीनियरी (genetic engineering) के अंतर्गत आनुवंशिक पदार्थों (पुरुष और स्त्री जननाणु) में सीधे सुधार के प्रयास किये जाते हैं । जननाणु चयन (germinal selection) के अंतर्गत, वांछित आनुवंशिक गुणों वाले पुरुषों और स्त्रियों के क्रमशः शुक्राणुओं और डिंब का कृत्रिम निषेचन (artifical fertilisation) किया जाता है । कोशिकाओं को क्लोन करना (cloning) ऐसी प्रक्रिया है जिसके अंतर्गत संतान किसी जीव की हूबहू आनुवंशिक प्रति होती है । मेंढकों और टोहों में यह तकनीक सफल रही है ।

बोध प्रश्न 3

निम्न में सही शब्द (शब्दों) का चयन कीजिए ।

i) मानव अपना भावी विकास निर्धारित करने में सक्षम/असक्षम है ।

ii) टैक्नोलॉजी की प्रगति से मानव के आनुवंशिक गुणों में सुधार/गिरावट आयी है ।

iii) इन्सुलिन की उपलब्धता से डायबिटिज यानी मधुमेह का मरीज संतान उत्पन्न करने में समर्थ/असमर्थ हो जाता है ।

iv) सकारात्मक/नकारात्मक सुजननिकी अवांछित जीनों के प्रसार से बचने से संबंधित है ।

v) गंभीर आनुवंशिक कमियों को दूर करने के लिए आनुवंशिक इंजीनियरी, सामाजिक और नैतिक दृष्टि से आपत्तिजनक है/आपत्तिजनक नहीं है ।

vi) मानवीय व्यवहार की छोटी से छोटी बात को आनुवंशिकी के आधार पर समझाया जा सकता है/नहीं समझाया जा सकता ।

15.5 सारांश

इस इकाई में आपने निम्न बातों का अध्ययन किया :

- आपने मानव समाजों में प्रतीकों की अवधारणा और भाषा कौशल के विकास का अध्ययन किया। प्रतीकात्मक चिंतन को प्रतीकात्मक भाषा के जरिए अभिव्यक्ति मिली। भाषा मानव संस्कृति की बुनियाद बनी। प्रतीक बना सकने और भाषा-कौशल से मानव अनुकूलन के नये दौर में पहुंचा। मानव जाति में भाषा के कौशल का विकास मानव मस्तिष्क तथा इसमें स्थिति विशिष्ट केंद्रों के विकास से घनिष्ठता से जुड़ा है। मानव क्रेनियम की रचना भी ऐसी है कि इसमें स्वर उपकरण अच्छी तरह आ जाएं। औज़ार तथा कलाकृति बनाने के कौशलों ने भी मानव की संप्रेक्षण क्षमता बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। यह अब भी विवाद का विषय है कि क्या इन संप्रेक्षण क्षमताओं के कारण मानव अन्य जीवों से विशिष्ट और अलग है। ऐसा लगता है कि प्रतीकात्मक और मौखिक अर्थात् वाचिक भाषा के विकास के बाद लेखन-क्षमता विकसित हुई।

- व्यवहार और संस्कृति भी मानव की अनूठी विशेषताएं हैं। संस्कृति अनुभूतिजन्य अर्थात् स्वाभाविक होती है और इसमें सूचनाओं का कुल भंडार तथा व्यवहार के तरीके शामिल हैं। संस्कृति के विकास में पर्यावरण और आनुवंशिकता दोनों की महत्वपूर्ण भूमिका है। हालांकि संस्कृति की माप-तौल करना कठिन है, लेकिन फिर भी संस्कृति को कुशलता के इस पैमाने से मापा जाता है कि कितनी कम ऊर्जा खर्च करके कितनी अधिक ऊर्जा प्राप्त हुई। मृत पशुओं का मांस बटोरने से लेकर बड़े पशुओं के आखेट, कृषि और औद्योगिक टैक्नोलॉजी तक मानव के सांस्कृतिक विकास के विभिन्न चरणों में ऊर्जा में, और इस तरह कुशलता में वृद्धि हुई है। भावी विकास सौर-ऊर्जा तथा ऊर्जा तथा ऊर्जा के अन्य ग़ैर-परंपरागत तरीकों को अपनाने पर निर्भर करता है।

- प्राकृति वरण समय के साथ-साथ आनुवंशिक गुणों में परिवर्तनों खासतौर पर विभिन्न आनुवंशिक गुणों अर्थात् जीन प्ररूपों की उत्तरजीविता अर्थात् जीनों के जीवन में बने रहने से जुड़ा है। मानव पर भी इस प्रक्रिया का निरंतर प्रभाव पड़ता रहा है। लेकिन मानव पर्यावरण की चुनौतियों का मुकाबला, अपने को पर्यावरण के अनुरूप बनाकर अथवा पर्यावरण को ही बदल कर करता है। ऐसा लगता है कि मानव ने अपने विकास की दिशा को खुद निर्धारित करना शुरू कर दिया है। मानव के आनुवंशिक गुणों में सुधार लाने के लिए आनुवंशिक परामर्श, आनुवंशिक इंजीनियरी, उचित पुरुष शुक्राणु और स्त्री डिंब का चयन और कोशिकाओं को कलोन करने जैसे सुजननिकी के तरीके अपनाने के प्रयास किये गये हैं। हालांकि इनमें से कुछ प्रक्रियाओं से सामाजिक और नैतिक मुद्दे जुड़े हैं, फिर भी मानव का भावी विकास इन प्रक्रियाओं को अपनाने पर निर्भर कर सकता है। मानव का वर्तमान विकास उसके पिछले विकास की तुलना में काफ़ी कम समयावधि के संदर्भ में मापा जा सकता है। साथ ही, मानव पर्यावरण के अनुरूप स्वयं को ढालने की उत्कृष्ट क्षमता रखता है। इसका प्रमुख कारण उसके द्वारा अपनायी गयी व्यापक तरीके की टैक्नोलॉजी है। मानव ही ऐसा प्राणी है जो धारणाएं बनाने जैसी सीखने की विशिष्ट प्रक्रिया अपना पाया है। मानव की एक अनूठी विशेषता संस्कृति विकसित करना भी है, जो उसे अन्य जीवों से विशिष्ट बनाती है। ऐसा लगता है कि मानवीय जीनों का विकास और सांस्कृतिक विकास परस्पर संबद्ध रहा है।

15.6 अंत में कुछ प्रश्न

1) क्या आप सोचते हैं कि अभिव्यक्ति की क्षमता मानव को अन्य जीवों से अलग और श्रेष्ठ बनाती है? अपनी राय के समर्थन में संक्षेप में चर्चा कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

) मानव की औज़ार बनाने की क्षमता संप्रेषण क्षमता के विकास से किस तरह जुड़ी है?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

) क्या संस्कृति का विकास मानव के जैविक विकास से भिन्न है? अपने उत्तर को औचित्य प्रमाणित कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

) क्या आप मानते हैं कि प्राकृतिक वरण की प्रक्रिया मानव में अन्य जीवों की तुलना में कम भूमिका निभाती है।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

15.7 उत्तर

बोध प्रश्न

1) i) अ ii) स iii) स iv) अ
   v) अ vi) स vii) स viii) स

2) i) संस्कृति ii) अति-जैविक (सुपर ऑर्गेनिक) iii) पर्यावरण
   iv) आत्मघाती v) जैविक, सांस्कृतिक

3) i) सक्षम ii) गिरावट iii) समर्थ
   iv) सकारात्मक v) आपत्तिजनक नहीं है vi) नहीं समझाया जा सकता।

अंत में कुछ प्रश्न

1) अन्य जीवों से विशिष्ट अभिव्यक्ति क्षमता के कारण मानव जाति को श्रेष्ठ मानने के बारे में दो तरह के विचार हैं। डॉबज़ान्सकी और सिंपसन का मानना है कि भाषा मानव की अनूठी उपलब्धि है और इसके उसे अन्य जीवों से उत्कृष्ठ और विशिष्ट स्थिति प्रदान की है। अन्य विद्वानों की राय है कि मानव और कपियों में आकार, शरीर-रचना विज्ञान के मामले में निरंतरता है और भाषा, आत्म-जागरुकता और अन्य गुणों में भी यह निरंतरता स्वीकार की जानी चाहिए। (आप इस विषय पर अपनी राय व्यक्त कर सकते हैं)।

2) मानव की औज़ार बनाने की क्षमता और संप्रेषण क्षमता के बीच परस्पर संबंध लगता है क्योंकि बोलने और औज़ार बनाने में कई बातें समान हैं। जीभ और मुख की पेशियों की गतिविधियां हाथ के विशिष्ट कामों से जुड़ी हैं। ऐसा लगता है कि मौखिक यानि वाचिक भाषा से पूर्व हाथों का इशारा ही संप्रेषण का माध्यम रहा। औज़ार बनाने और भाषा बोलने में संबद्ध अंगों को क्रमबद्ध तरीके से हिलाना-डुलाना पड़ता है और इसे विशिष्ट तरीके से विकसित किया जाता है।

3) इस प्रश्न का उत्तर सकारात्मक लगता है। जैविक विकास पूरी तरह जीनों के क्रम में परिवर्तनों पर निर्भर करता है, लेकिन ऐसा लगता है कि संस्कृति जीनों के जरिए एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक नहीं पहुंचती, इसीलिए अतिजैविक (सुपर ऑर्गेनिक) कही जाती है। लेकिन यह तथ्य भी सही है कि मात्र मानव जैसी जीनों वाली जाति ही संस्कृति का विकास और हस्तांतरण करने तथा इसमें नये परिवर्तन लाने में सक्षम है। साथ ही, अगर अनुकूलन मात्र संस्कृति के अनुरूप किया जाता है और पर्यावरण का ध्यान नहीं रखा जाता है तो यह आत्मघातक सिद्ध होता है। सांस्कृतिक और जैविक विकास का अंतर इस उदाहरण से स्पष्ट होता है कि मानव अपने आपको निरंतर फैलती मोटर-वाहनों की संस्कृति के अनुकूल बना सकता है, पर इसके साथ ही उसे अपने फेफड़ों को प्रदूषण झेलने में समर्थ बनाकर जैविक अनुकूलन भी करना पड़ेगा।

4) ऐसा लगता है कि आधुनिक मानव अपने विकास की दिशा स्वयं निर्धारित करने में समर्थ है। खास तौर पर ऐसे समय में, जबकि वह आनुवंशिक परामर्श और आनुवंशिक इंजीनियरी जैसे तरीकों से अपने आनुवंशिक गुणों में वृद्धि कर सकता है। (प्राकृतिक वरण की संभावित भूमिका और मानव में विभिन्न अनुकूलन विकसित करने में इसकी भूमिका के बारे में विद्यार्थी अपने निष्कर्ष बता सकते हैं।)

शब्दावली

एक्यूलियन उद्योग: पत्थर के औजारों का उद्योग जो ओल्डुवान उद्योग से कुछ उन्नत और करीब 15 लाख वर्ष पुराना है। इस उद्योग की विशेषताएं आंसू की बूंदों जैसे आकार की हाथ की कुल्हाड़ियों का मिलना है।

परोपकारित (परोपकारवाद): संभवतः आनुवंशिक आधार पर नियंत्रित होने वाली व्यवहार की ऐसी विशेषता, जिसमें जाति के अन्य प्राणियों को लाभ पहुंचाने की प्रवृत्ति होती है।

बेसिक्रेनियम : कपालास्थि के निचले हिस्से का क्षेत्र ।

वहन क्षमता : किसी पर्यावरण की इष्टतम जीवसंख्या को वहन करने की क्षमता

गुण विस्थापन: दो जातियों की अपने गुणों में विभिन्नता लाने की ऐसी प्रवृत्ति, जब उनके अस्तित्व के लिए पर्यावरणीय आवश्यकताएं एक-दूसरे से बहुत मिलती-जुलती हैं अर्थात् उनके निकेतों में अतिव्यापन होता है । शुरू में यह समानता अर्थात् निकेत अतिव्यापन अधिक होता है लेकिन प्राकृतिक वरण की प्रक्रिया के कारण यह अतिव्यापन समाप्त हो जाती है ।

सहअनुकूलन: एक जैसे पर्यावरणीय विशेषताओं के क्षेत्र अर्थात् निकेतों में रहने वाली दो जातियों द्वारा अपनी विशिष्ट आवश्यकताओं के अनुरूप ऐसे अनुकूलन, जिससे उन जातियों के बीच अस्तित्व के लिए प्रतियोगिता कम से कम हो जाए ।

सहविकास: दो या अधिक पर्यावरण की दृष्टि से संबद्ध जातियों का साथ-साथ विकास ।

विशात्मक वरण: नयी पर्यावरणीय परिस्थितियों के अनुरूप अनुकूलनों का चयन (वरण) ताकि परिवर्तन आये ।

आनुवंशिक विचलन: बहुत छोटे जीव समूहों के जीन-क्रम में बिना किसी निर्धारित प्रक्रियाओं से आने वाले परिवर्तन ।

आनुवंशिक पुनरूप्रतिरूपण: किसी आवास में पुराने अर्थात् आरंभिक निवासियों के स्थान पर नया जीव समूह विकसित होते समय विभिन्न आनुवंशिक प्रक्रियाओं द्वारा जीवों का आनुवंशिक सामंजस्य खत्म हो जाता है । इससे ऐसे पुराने निवासियों से टूट सकने वाला और बदला जा सकने वाला अर्थात् सुघट्य तथा वशवर्ती जीव समूह विकसित होता है, जिससे नयी जाति को ढाला जा सकता है ।

समूह वरण: ऐसा वरण (चयन) जिसका उद्देश्य एक जीव समूह को समाप्त करना है, ताकि अन्य जीव समूह विकसित हो सकें । वरण की इस प्रक्रिया से संकेत मिलता है कि वरण की इकाई एक जीव नहीं, बल्कि जीव समूह है ।

संकर बंध्यता: विभिन्न जातियों के संकरण से जन्मी संतानों की बंध्यता ।

अंतराजातीय बंध्यता: जंतुओं में एक जाति के शुक्राणु के दूसरी जाति के डिंब तक और वनस्पतियों में एक जाति के पराग-कणों के दूसरी जाति के अंड तक न पहुँच पाने की स्थिति, जिसकी वजह से इनका संयोग संभव नहीं हो पाता ।

सगोत्र वरण: किसी जाति के प्राणियों द्वारा अपने जैसी जीन वाले बंधुओं के प्रति लाभकारी व्यवहार को प्रोत्साहित करने वाला चयन ।

माउस्टेरियन उद्योग: निएंडरथल मानव अर्थात् *होमो सेपियंस* निएंडरथेलेंसिस संस्कृति के औज़ार तथा सामग्री । माउस्टेरियन संस्कृति 35000 से 40000 वर्ष पूर्व तक चली और इसी से पूर्णतः आधुनिक मानव *होमो सेपियंस* का विकास हुआ ।

निकेत: किसी जाति के लिए आवश्यक कुल पर्यावरणीय परिस्थितियां ।

ओल्डुवान उद्योग: इथोपिया से पाए गये 25 लाख वर्ष पुराना औज़ारों का उद्योग । यह पत्थर के औज़ारों का प्राचीनतम उद्योग है । इसमें बेहद अनगढ़ छीलने और काटने के औजार तथा फलक शामिल हैं ।

पश्च-संगमी पृथक्करण प्रक्रिया: संगमन के बाद दोनों जीवों को अलग रखने की प्रक्रिया।

पूर्व संगमी पृथक्करण प्रक्रिया: संगमन के पूर्व दोनों जीवों को अलग रखने की प्रक्रिया।

रैसेनक्रेसिस (बहुरूपजाति : ऐसी प्रक्रिया, जिसके अंतर्गत भौगोलिक पृथक्करण की स्थिति में कोई उप-जाति विकसित हो कर नयी जाति बन जाती है।

जाति उद्भवन: पूर्वज जीव समूह में से नयी जाति का विकास।

स्थायीकारी वरण: ऐसा प्राकृतिक वरण जिसमें जाति में होने वाले किसी भी असामान्य परिवर्तन को समाप्त करके अनुकूलन की स्थिति बनाये रखी जाती है। इसे सामान्यीकरण वरण भी कहते हैं।

अनुरंजन व्यवहार: जीवों द्वारा संगमन के लिए अपने सहवासी को आकर्षित करने के लिए तरह-तरह के व्यवहार जैसे कि विशिष्ट गन्धे, गीत, नृत्य, उद्घोष और अन्य कलाएँ।

प्रिय छात्र/छात्रा,

इस पाठ्यक्रम के बारे में आपकी राय जानने के लिए हमने यह प्रश्नावली तैयार की है, जो इसी खंड के लिए है। आप के उत्तर हमें पाठ्यक्रम को सुधारने में मदद करेंगे।

कृपया इसे भरकर हमें शीघ्र भेज दें।

प्रश्नावली

एल.एस.ई-07

खंड

नामांकन सं०

1) इकाइयों को पढ़ने में आपको कितने घंटे लगे?

इकाई सं०					
कुल घंटे					

2) इस खंड से संबंधित कार्य को करने के लिए आपको (लगभग) कितने घंटे लगे?

	टी.एम.ए.	सी.एम.ए.
सत्रीय कार्य सं०		
कुल घंटे		

3) हमारे विचार से आपके सामने 4 प्रकार की कठिनाइयाँ आई होंगी, उन्हें नीचे दिया गया है। उपयुक्त कालमों में कृपया अपनी कठिनाई पर ( ) का निशान लगाइए और सही पृष्ठ संख्या लिखिए।

पृष्ठ सं०	कठिनाइयों के प्रकार			
	प्रस्तुतीकरण स्पष्ट नहीं है	भाषा कठिन है	चित्र स्पष्ट नहीं है	शब्दावली समझाई नहीं गई है

4) हमारा विचार है कि बोध प्रश्नों और अंत में दिए गए प्रश्नों में आपको कुछ कठिनाई हुई होगी। निम्नलिखित तालिका में हमने संभावित कठिनाइयाँ दी हैं। उपयुक्त कालमों में संबंधित इकाइयाँ और प्रश्न संख्या देते हुए अपनी कठिनाइयों पर निशान लगाइए।

इकाई संख्या	बोध प्रश्न संख्या	अंत में दी गई प्रश्न संख्या	कठिनाइयों के प्रकार			
			प्रश्न स्पष्ट नहीं है	दी गई जानकारी के आधार पर उत्तर नहीं दिया जा सकता	इकाई के अंत में दिया गया उत्तर स्पष्ट नहीं है	दिया गया उत्तर पर्याप्त नहीं है

5) क) क्या खंड के अंत में दी गई शब्दावली उपयोगी रही?
ख) यदि नहीं, तो निम्न स्थान में कठिन शब्द लिखें।

6) अन्य सुझाव

डाक टिकट लगाइए

सेवा में,

पाठ्यक्रम समन्वयिका (एल.एस.ई.-07) वर्गिकी और विकास पाठ्यक्रम
विज्ञान विद्यापीठ
इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय
मैदान गढ़ी, नई दिल्ली-110 068